* ओ३म् *

आर्य्यमित्र का ऋष्यङ्क ।

सर्वात्मा सच्चिदानन्दो, नन्दो योन्याय कृच्छुचि ।
भूयात्तमा सहायो नो, दयालु सर्वशक्तिमान् ॥ १ ॥

वर्ष २०] बृहस्पतिवार-दीपावली, स० १९७३ वि०-ता० २६ अक्टूबर सन् १९१६ [अङ्क ४१-४२

ईश्वरप्रणिधान-पञ्चक ।

१ "अज, अद्वितीय, अखण्ड, अक्षर, अर्यमा, अविकार है ।
अभिराम, अव्याहत, अगोचर अग्नि, अखिलाधार है ॥
मनु, मुक्त, मङ्गलमूल, मायिक, मानहीन, महेश है ।
करतार ! तारक है; तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

२—वसु, विष्णु, ब्रह्मा, बुध, बृहस्पति, विश्वव्यापक, बुद्ध है ।
वरुणेन्द्र, वायु-वरिष्ठ,—विश्रुत, वन्दनीय, विशुद्ध है ॥
गुणहीन, गुरु, विज्ञानसागर, ज्ञान—गम्य—गणेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

३—निरुपाधि—नारायण निरञ्जन, निर्भयामृत—नित्य है ।
अत्ता, अनादि, अनन्त, अनुपम, अन्न, जल, आदित्य है ॥
परिभ, पुरोहित, प्राण, प्रेरक, प्राज्ञ—पूज्य—प्रजेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

४—कवि, काल, कालानल, कृपाकर, केतु, करुणा-कन्द है ।
सुखधाम, सत्य, सुपर्ण, सच्छिव, सर्व-प्रिय, स्वच्छन्द है ॥
भगवान, भावुक—भक्त—वत्सल, भू, विभू भुवनेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह वेद का उपदेश है ॥

५—अव्यक्त, अकल, अकाय, अच्युत, अङ्गिरा, अविशेष है ।
श्रीमच्छुभाशुभशून्य, शंकर, शुक्र, शासक, शेष है ॥
जगदन्त—जीवन—जन्मकारण, जातवेद, जनेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है,, ॥

"शङ्कर"

एक प्रश्न की मीमांसा।

श्रीमान् पं० घासीराम एम० ए०, एल एल०, बी०, प्रधान सभा



आजकल जाति के सन्मुख यह प्रश्न बड़ा विकटरूप धारण करके उपस्थित हो रहा है कि सन्तान को किस प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिये। वास्तव में यह प्रश्न बहुत ही मर्मस्पृक है—इसी पर जाति का भविष्य निर्भर है—यदि हम उपयुक्त प्रणाली का अवलम्बन कर सकेंगे तो हमारा भविष्य अवश्य ही सुनहरा होगा और यदि दौर्भाग्य से हम उस का ग्रहण न कर पायेंगे तो इस में भी अणुमात्र सन्देह नहीं कि हमारा भविष्य नैराश्यमय होगा—इसलिए हमें इस प्रश्न का ठीक उत्तर ढूंढने में भरसक यत्न करना चाहिये।

प्रचलित शिक्षाप्रणाली बहुत ही निराली है। वह ऐसे लोगों ने प्रचरित की जिन्हें हमारी सभ्यता, हमारी धार्मिक और सामाजिक अवस्था और आवश्यकताओं का बहुत ही न्यून और अधूरा ज्ञान था। सम्भवतः वह हमारी सभ्यता को सभ्यता ही नहीं समझते थे। ईसाई पादरियों ने हमारा ऐसा भद्दा चित्र अंग्रेज़ शासकों के साम्हने रक्खा था जिसे देखकर वह हमें जंगलियों से कुछ ही अच्छा समझते थे। उन्हें हमारी दशा पर दया आती थी और वह हमें योरुपीय सभ्यता के भूषणों से भूषित करके हमारी असभ्यतारूपी असुन्दरता को दूर करना चाहते थे।

इन्ही या ऐसे ही भावों से प्रभावित होकर हमारे शासकों ने योरुपीय विद्यामन्दिर का द्वार हम पर खोला। हम यह नहीं कहते कि उन्होंने हमारे साथ कोई अत्याचार किया बल्कि हम मुक्तकण्ठ से उन के प्रति कृतज्ञता के भाव प्रकट करते हैं और उन्हें अपना हित-साधक समझते हैं। यदि उनके दान से हमारा दारिद्र्य पूर्णतया दूर नहीं हुआ तो हम उन को कोई दोष नहीं देते। उसके कारण और ही हैं। जिन्हें

हम संक्षेपतः इन शब्दों में वर्णन कर सकते हैं कि नवीन शिक्षाप्रणाली मे हमारी सभ्यता और साहित्य, हमारी सामाजिक अवस्था और जीवन, हमारी धार्मिकदशा पर कुछ भी विचार नहीं किया गया। इसलिए यदि नवीन शिक्षाप्रणाली के फल उतने सरस और स्वादु नहीं हुए जितने सरस और स्वादु होने की आशा की जाती थी या कोई २ फल कटु भी हुए जिस की कभी भी आशा नहीं की जाती थी तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

जब नवीन शिक्षा का श्रीगणेश हुआ तो जनता ने उसे बड़ी संदिग्ध दृष्टि से देखा, जैसे कि हर एक नई वस्तु देखी जाती है। पहिला ही विचार जो उस के मन में उत्पन्न हुआ यह था कि नवीन शिक्षा भारतवासियों को ईसाई बनाने के लिए प्रचरित की गई है और इसकी पुष्टि किसी अंश तक इस घटना से भी हुई कि सबसे पहले जो अंग्रेज़ी स्कूल खुले वह ईसाई पादरियों की ओर से खुले जिन का वास्तव में उद्देश्य ईसाई मत का प्रचार करना था और इस घटना से भी हुई कि आरम्भ में बहुत से स्थानों में अंग्रेज़ी स्कूलों में शिक्षा प्राप्त किये हुए हिन्दु युवक अपने पैतृक धर्म को तिलाञ्जलि देकर ईसा की भेड़ें बन गये। परन्तु धीरे २ जब लोगों ने देखा कि अंग्रेज़ी की थोड़ीसी शिक्षा पाकर भी मनुष्य सरकारी कर्मचारी बन जाते हैं तो अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रति उन की उपेक्षा कम होने लगी और समय पाकर यह उपेक्षा अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रति उत्कट उत्कण्ठा में परिणत हो गई और बहुत ही अल्प समय के पश्चात् यह दृश्य उपस्थित हो गया कि हर एक पिता यही स्वप्न देखने लगा कि उस का पुत्र अंग्रेज़ी शिक्षा पाकर सरकारी कर्मचारी बने। और इसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज़ी शिक्षा ही उदरपोषण का एक मात्र साधन समझी जाने लगी और लोग अपनी पैतृक जीविकाएं छोड़ २ कर नौकरियों के पीछे दौड़ने लगे। किसान का पुत्र पढ़ लिखकर हलवाहना छोड़कर सरकारी दफ़्तर में सफ़ेद क़ाग़ज़ पर लेखनीसे काली काली क्यारियां बनाने लगा। वैश्य पुत्र टूटी फूटी अंग्रेज़ी सीखकर हाट के कपाट बन्द करके नौकरी की हाट ओहने लगा। ब्राह्मण वंशावतंस भी शास्त्राध्ययन तजकर सेवा सेवा भजने लगा। समासत, विद्या क्रय विक्रय की वस्तु बन गई। जैसे लकड़हारा जंगल से लकड़ी

काटकर इसलिए लाता है कि मैं उसे बाज़ार में चार आने को बेचूंगा ऐसे ही लोग मैट्रिक आदि की परीक्षाएं केवल इसलिए पास करने लगे कि हमें उनका मूल्य इतने रुपया मासिक की नौकरी मिले।

एक ओर तो विद्या का उद्देश्य इस प्रकार नीचा हुआ दूसरी ओर एक और भयंकर परिणाम हुआ। जिन लोगों ने उच्च अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त की उनके मन की दशा विलक्षण हो गई। उनका शरीर तो भारतवर्षीय रहा, जो रहता ही, क्योंकि उसे योरुपियन बनाना उस के सामर्थ्य से बाहर था और जहा तक उनका बस चला उन्होंने योरुपियन चालढाल, रंगढंग, वेषभूषा, रहनसहन की अनुकृति करके उसे योरुपियन बनाया भी। अस्तु, परन्तु उनका मन योरुपियन हो गया या हो ही सा गया। अपनी सभ्यता, साहित्य और धर्म के विषय में उन के वही विचार हो गये जो उन के शिक्षकों के थे। जो जो उन्हें त्यागकर ईसाई हो गये उन की तो कुछ बात ही नही परन्तु जिन्होंने उन्हें खुल्लमखुल्ला नहीं त्यागा उन्होंने मन में अप्रकट रूप से अवश्य त्याग दिया। वेदों को वह जंगली या अधिक से अधिक अर्द्ध जंगली गड़रियों की वाणी मानने लगे। वैदिके संस्कारों को ढकोसला समझने लगे। कोई २ तो सम्भवतः मन ही मन में यहा तक कुढ़ते हों कि वे वैदिक आर्य्यों के वंशधर ही क्यों हुए। उन की दशा बिलकुल वैसी ही होगई जैसी उस नाव की होती है जिसकी रस्सी काट दी जाय और फिर वह लहरों के थपेड़ों और हवा के झोंकों से डावाडोल होकर बहती हुई चली जाय। ऐसे लोगों का मानसिक सम्बन्ध अपने जनों से बहुत न्यून रह गया। पुत्र और पिता, पति और पत्नी के विचारों में पश्चिम और पूर्व का अन्तर हो गया। उन्होंने अपनों को पराया बना लिया परन्तु पराये अपने नहीं बने।

अनेक शिक्षित जन यूरोप के इतिहास और साहित्य को पढ़कर असन्तोष सागर में मग्न हो गये। यूरोप में प्रजा की स्वतन्त्रता को देखकर वह स्वयं भी उसी स्वतन्त्रता का आस्वाद लेने के लिये लालायित होने लगे। उनमें बहुत बड़े भाग ने तो अपने अधिकारों की रक्षा और विस्तार के लिये नियमानुकूल आन्दोलन का आश्रय लिया जिसका अवतार नेशनल कांग्रेस है। परन्तु कुछ (यद्यपि बहुत ही कम) ने न्याय, मर्यादा, नियम को भाड़ में झोंक कर उस कुटिल, कराल

और घिनौनी अराजकता का अनुकरण किया जिसने सब से पहिले यूरोप में ही जन्म लिया था। यह विषवृक्ष भारत की अमृतमयी भूमि में बोया गया—जिसका परिणाम यह हुआ कि अनेक निरपराधियों की जानें गईं, जीत के माथे कलंक का टीका लगा—राजा और प्रजा के बीच में अविश्वास का सूत्र पात हो गया और सरकार ने कठोर कानून बनाए जिससे प्रजा को अनेक कष्ट हुए और हो रहे है।

सरकार भी और प्रजा भी इस अनिष्ट का कारण प्रचलित शिक्षा को ही बताती है। जिसमें धर्म और ईश्वर के लिए कोई स्थान ही नही रक्खा गया। सर्व साधारण में भी जो सोचने और समझने वाला भाग है वह प्रचलित शिक्षा प्रणाली से सन्तुष्ट नही है और प्रचलित प्रणाली मे उदासीनता के भाव का अभाव नही है। यद्यपि यह देख कर कि स्कूलों और कालिजों में हर वर्ष विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती चली जाती है और इससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि लोगों में प्रचलित प्रणाली के लिए उत्साह और चाव है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। लोग शिक्षा के लिये उत्साह और चाव रखते हैं और जब सिवाय स्कूलों और कालिजों के शिक्षा के द्वार है ही नहीं तो उन्हे विवश होकर अपनी सन्तान को उन्हीं में भेजना पड़ता है। दूसरा कारण जो बहुत ही प्रबल है वही है जिसकी ओर हम पहले संकेत कर चुके है। सरकारी शिक्षा रोटियों की दुकान समझी जाती है और इसी लिए वहा भूखों का जमघट रहता है। वही प्रतिष्ठा की टकसाल गिनी जाती है और इसी लिये लोग अपने सोने चांदी तांबे को उसमें देते हैं।

यह बात कि प्रचलित प्रणाली से जनता में असन्तोष का अंकुर उत्पन्न हो गया है इस बात से स्पष्ट है कि ऐसी पाठशालाएं स्थापित हो रही हैं जिनमें सरकारी प्रणाली से भिन्न ढङ्ग की शिक्षा का यत्न किया जा रहा है। सरकार भी उससे असन्तुष्ट है। जिसका प्रमाण यह है कि शिक्षाविभाग स्कूलों और कालेजों को अधिक से अधिक अपने अधिकार में लाने का यत्न करता जाता है।

गुरुकुल भी शिक्षा प्रणाली के सुधार और परिवर्तन के अभिप्राय से ही स्थापित किये गये हैं। ऋषि दयानन्द ने जहां जाति के और

का ऐसा रोग लगा है और उसे वकीलों की बढ़ोतरी ने ऐसा बढ़ा दिया है कि उसका अन्त ही होता दिखाई नहीं देता। पश्चिमी विचार रखने वालों की सम्मति में मुक़द्दमा बाज़ी का बढ़ना समाज के समृद्ध होने का चिन्ह है। परन्तु हम तो यह जानते है कि उसका परिणाम दरिद्रता, कलह, क्लेश और पाप कर्म्मों की वृद्धि है। यह कहा जाता है कि वृक्ष अपने फलों से पहिचाना जाता है। हम पूछते हैं कि प्रचलित शिक्षा प्रणाली कैसी लता है स्वर्गीय वा ?

जो कुछ हमने कहा उस से यह न समझ लेना चाहिए कि हम अंग्रेज़ी की शिक्षा के विरुद्ध है या उसे अनुपयोगी समझते है। यूरोपीय साहित्य और विज्ञान से लाभ न उठाना बुद्धिमत्ता का काम नही। हम यदि विरुद्ध हैं तो उस ईश्वर हीन (Godless) और लक्ष्यहीन (Aimless) प्रणाली के हैं जिस की कार्य्यप्रशस्ति हम ऊपर कर आए है। गुरुकुल-शिक्षा प्रणाली इस त्रुटि को दूर करती है— नवीन साहित्य, पाश्चात्य विज्ञान मे जो उपयोगी है उस से लाभ उठाना वर्जित नही करती। हां, वह बल देती है चरित्र की पवित्रता पर, मनुष्य के कर्त्तव्य परायण होने पर, प्राचीनादर्शप्रिय होने पर, वैदिक सभ्यता की प्रतिष्ठा करने पर। हमें विश्वास है परन्तु अन्धा विश्वास नही कि केवल भारतवर्ष कोही नही सारे संसार को इस प्रणाली की आवश्यकता है। क्योंकि हम सभी देशों में एक प्रकार की विकलता और व्याकुलता पाते हैं, मनुष्य का जीवन शान्ति मय नही बन रहा बल्कि अशान्त हो रहा है। पश्चिम में विज्ञान की हर प्रकार की उन्नति होते हुए भी आत्मिक सुख का ह्रास हो रहा है। इन्द्रियविलास बढ़ रहा है। बलवान निर्बल का सहायक नहीं प्रत्युत विनाशक हो रहा है।

परन्तु गुरुकुलशिक्षा—प्रणाली आदर्श प्रणाली सही, सब सुख दिलाने वाली सही, उसको पूर्णतया उपयोग में लाने के लिए भी बहुत से अनुभव, विद्या व्यय, सहानुभूति, और सब से अधिक अनथक परिश्रम और धैर्य की आवश्यकता है। इस प्रणाली के नाम में कोई जादू नहीं है कि सब कुछ इस महा मन्त्र के जाप से ही सिद्ध हो जाय। लोग कभी कभी बहुत ही अधीर हो उठते हैं। हमारी श्रद्धा की भित्ति

रेत पर जो तनिक से दबाव से खिसक जाती है। अभी इस प्रणाली पर कार्य होते हुए २० वर्ष भी नहीं हुए और आक्षेप वाक्यों की भरमार होने लगी। हर ओर से यही शब्द सुनाई देने लगे कि गुरुकुल से हमें यह आशाएं दिलाई गई थी कि इस से कणाद और गोतम उत्पन्न होंगे। जो स्नातक निकले हैं वह विलक्षण प्रकृति और आकृति के नहीं है। साधारण डील डौल और साधारण ही ज्ञान के मनुष्य हैं। यह आक्षेप सत्य भी हों तौ भी गुरुकुल प्रणाली को स्पर्श नहीं करते। इस समय में यह प्रणाली एक परीक्षण है जिस का सफल होना बहुत से साधनों पर निर्भर है। कोई परीक्षण भी प्रतिकूल घटना समूह में सफल नहीं हो सकता। तनिक सी भूल भी सारे श्रम, व्यय को व्यर्थ कर सकती है। जब साधन, सामग्री, उपकरण सभी ठीक होंगे, परीक्षक भी आवश्यक गुण सम्पन्न होगा तभी सफलता प्राप्त होगी। मानलो गुरुकुलों से अभी गौतम और कणाद उत्पन्न नहीं हुए और हम कहते हैं कि यह भी मानलो कि अभी एक दो शताब्दि तक और भी उत्पन्न न हों। और गुरुकुल के पक्षवालों ने जो आशाएं दिलाई थीं वह अभी पूरी नहीं हुई तोभी क्या इस से गुरुकुलो की निष्फलता हो गई ? यह भी क्या दस वीस वर्ष का काम है ? दस बीस लाख रुपया के व्यय से सिद्ध हो सकता है ? गुरुकुलों को सफलता पूर्वक कार्य करते हुए देखना हमे क्या, स्यात् हमारी सन्तान को भी न मिले। लाखों रुपया व्यय होजाने और कितनों के ही जीवन भी इस में लगजाने पर भी संभव है कि पूरी सफलता का मुख देखना न मिले परन्तु अधीर होने का कोई कारण नहीं है। सफलता अवश्य होगी परन्तु कब होगी और किस को उसका सुन्दर बदन देखना मिलेगा यह प्रश्न अलग है। हमें नैराश्य नहीं क्योंकि यह परीक्षण नया होते हुए भी सर्वथा नया नहीं। इसी देश में यद्यपि अन्यकाल और अवस्था में वह सिद्ध हो चुका है। यही राम, कृष्ण, गौतम, कणाद उत्पन्न कर चुका है। ऋषि प्राचीन शास्त्रों और इतिहास के आधार पर इसी प्रणाली के अनुसार शिक्षा देने का उपदेश कर गये हैं। क्या ऋषि के बचन निर्मूल हैं ? क्या इतिहास के उदाहरण झूठे हैं ? यदि नहीं तो हम अश्रद्धालु क्यों हैं ? हमें फिर यह संशय क्यों होता है कि गुरुकुल सफलता प्राप्त नहीं

कर सकेंगे। यदि हमें अभी सफलता प्राप्त नही हुई है तो अवश्यमेव हमने कुछ भूल की है, अवश्यमेव हमारे साधनों में न्यूनता रही है, अवश्यमेव हमें पर्याप्त और उपयुक्त सामग्री उपलब्ध नही हुई है अवश्यमेव हम में श्रम की मात्रा कम है। और वास्तव में ऐसा है भी, माना आर्य्य जनता ने अपनी शक्ति भर गुरुकुलों को दान दिया परन्तु यह सत्य ही है कि वह पर्याप्त नहीं। अभी पूरी बिल्डिंग भी नहीं बन पाई है। पुस्तकालय और परीक्षणालय, व्यायामशाला इत्यादि के ही लिए लखों रुपया चाहियें। अध्यापकों और संरक्षकों की कमी है। अच्छे अध्यापक और संरक्षक नहीं मिलते। जो ब्रह्मचारी हमें मिलते हैं वह भी सुसंस्कृत नहीं होते। यह त्रुटिया हैं जिन्हें हमे दूर करने का यत्न करना चाहिये। निःशुल्क शिक्षा का प्राचीन आदर्श बहुत ऊंचा है। समय के हेर फेर से हम अभी उस तक नही पहुंच सके और बहुत काल तक नहीं पहुंच सकेंगे परन्तु इस आदर्श को हमें सदैव अपने सम्मुख रखना चाहिए और इसके लिये सदैव यत्नशील रहना चाहिये। अध्यापक मनुष्य हैं कई गृहस्थी भी हैं उन्हें खाने को भी चाहिये, पहनने को भी चाहिये बिना कुछ लिये वह कैसे कार्य्य कर सकते हैं। सभी कुछ धन साध्य है जब तक इतना धन गुरुकुल के कोष में न हो जावे जिससे सब व्यय चल सकें तब तक निःशुल्क शिक्षा हमारे लिये स्वप्नवत् रहेगी।

एक बहुत बड़ा परन्तु हमारी दृष्टि में सब से छोटा आक्षेप यह किया जाता है कि गुरुकुल के स्नातक क्या करेंगे? उन्हें सरकारी नौकरियां नहीं मिल सकेंगी। ठीक है ' गुरुकुल के सञ्चालकों ने यह कब कहा था कि वह गुरुकुलों से सरकारी दफ्तरों के लिये क्लर्क उत्पन्न करेंगे। जिन्हें अपने पुत्रों को नौकरी करानी है उन्हें गुरुकुल में अपने पुत्रों को भेजना ही नहीं चाहिये। वह एनजिनियर और डाक्टर नहीं बन सकेंगे। ऐसा होने से क्या अनिष्ट हो जायगा? कोई आसमान टूट पड़ेगा या धरती फट जायगी ' परन्तु यह ठीक नहीं है गुरुकुलों में अब नहीं तो आगे को वैद्यक और उसके साथ डाक्टरी की शिक्षा का प्रबन्ध हो सकेगा। और फिर गुरुकुल के ब्रह्मचारी सरकारी सनद न

रखते हुए भी लोगों की व्याधियां हर सकेंगे। एनजिनियर बन कर सरकारी कारखानों में न सही प्राइवेट कारखानों में काम कर सकेंगे या उनमें से कोई अपने ही कारखाने खोल सकेंगे जिसमें वह स्वयं और अपने दस भाइयों को जीविका दे सकेंगे। और यदि ऐसा प्रबन्ध न भी हो सके तो भी क्या हानि होगी अब भी कितने ग्रेजुएट एनजिनियर या डाक्टर बन सकते हैं? उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। हमारे ब्रह्मचारी वकील बैरिस्टर न बन सकेंगे। हां जी म ीं बन सकेंगे। क्या आप चाहते हैं कि बनें, तो वास्तव में आपने गुरुकुल के आदर्श को बहुत ही नीचा समझ रक्खा है। समाज में मुकद्दमा बाजी का बढ़ना अच्छा नहीं है इसलिये यह श्रेणी तो जितनी कम हो उतना ही समाज का कल्याण होगा परन्तु इन दो चार द्वारों के सिवाय अन्य सब द्वार हमारे ब्रह्मचारियों पर खुले रहेंगे। कृषि का विस्तृत क्षेत्र उनके लिये उपस्थित है। भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश के लिए उत्तम किसानों की कितनी आवश्यकता है आप यदि लाखों उत्तम कृषक उत्पन्न करदें तो भी उनकी मांग पूरी न हो सकेगी फिर व्यापार का बाज़ार खुला हुआ है। सत्य व्यवहार के न होनें से उद्यम और व्यवसाय के अभाव से देश का करोड़ो रुपया नष्ट हो रहा है और अन्यों की जेबों में जा रहा है क्या इसे रोकने का कोई यत्न नहीं होना चाहिये? क्या देश की कारीगरी को जो दिन प्रति दिन लुप्त होती चली जा रही है स्थिर और पुनरुज्जीवित करने का कोई उपाय नहीं करना चाहिये? हमारे ब्रह्मचारी यदि व्यापारी और व्यवसायी बनेंगे तो अन्यों से कुछ घाटे में रहेंगे। इसमें भी लाखों मनुष्यों की खपत है। इसके अतिरिक्त वह लेखक सम्पादक, अध्यापक, उपदेशक, रियासतों के मैनेजर इत्यादि सभी कुछ बन सकेंगे। विद्या, बुद्धि, शुद्धाचरण, सच्चा व्यवहार, अपने भाइयों से प्रेम और दीन दरिद्रों पर अनुकम्पा, परिश्रम शीलता, निर्भयता, सत्य प्रियतादि गुण कभी निष्फल गये हैं जो अब निष्फल जायंगे। हां यदि दास वृत्ति करने वाले उदास बुद्धि के ही मनुष्य आपको चाहियें तो गुरुकुल से आपका यह मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता।

दूसरा एक विचार और भी है जिसकी ओर हम संकेत करना चाहते हैं वह यह कि जो लोग यह देखकर कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी नौकरी न कर सकेंगे, घबरा उठते हैं, यह स्मरण नहीं रखते कि जितने विद्यार्थी प्रति वर्ष सरकारी ढङ्ग की शिक्षा की शिक्षा देने वाले स्कूलों और कालजों से निकलते हैं उन में से सरकारी नौकरी और फिर भी उच्च पद कितनों को मिलना है—भारतवर्ष भर में ऐसे पद पांच सौ लाख सौ से अधिक को नहीं मिल सकते—और छोटे दर्जे की नौकरी की इच्छा करना और अपनी सन्तान को दुर्दम्य प्रलोभनों में डालना तो हमारी सम्मति में उन का अनिष्ट चिन्तन करना है—हमारे आक्षेपकर्ता यह भूल जाते हैं कि गुरुकुलों से जितने ब्राह्मण निकलेंगे उन के लिये तो यह प्रश्न करना ही अनावश्यक है कि वह क्या करेंगे वित्तोपार्जन उन का उद्देश्य ही नहीं होगा और इस की उन्हें स्वयम् चिन्ता न होगी फिर आप को क्यों? विद्या और तप ही उन का धन होगा जो क्षत्रिय निकलेंगे उन के लिये भी यह चिन्ता व्यर्थ ही है प्रथम तो सरकारी सेवा में ही उन की खपत हो सकती है और दूसरे देशी रजवाड़ों में उन की खपत हो जायगी और वैश्य तो कृषि और व्यापार करेंगे ही वह तो मिट्टी में से भी सोना निकालने की शक्ति रक्खेंगे। जैसा हम कह आये है शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य बनना है न कि टका धर्मी उत्पन्न करना। जो लोग विद्या को रोटियों की दुकान बनाना चाहते हैं वह विद्या का अपमान करते हैं। वह भर्तृहरि के इस वाक्य को भूल जाते हैं "विद्वान् सर्वत्र पूज्यते,,।

—:0:—

"सब दानों में वेद विद्या का दान अति श्रेष्ठ है। इस लिये जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करें। जिस देश में यथा योग्य ब्रह्मचर्य्य विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान होता है।,,

———

"मैं संसार को क़ैद कराने नहीं आया हूं वरन क़ैद से छुड़ाने आया हूं यदि कोई अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें।,, —ऋषि दयानन्द सरस्वती।



महेश वृत्त।

मूल शङ्कर एक, तू संसार का।
बीज वैदिक-धर्म, के विस्तार का॥
अर्थ तू गुरु-मंत्र, का निर्दिष्ट है।
इष्ट मानव जाति, के उद्धार का* ॥

लावण्यात्मक लावनी।

* १ *

कर सत्य-सनातन-धर्म, आप अपनाते।
यदि दयानन्द-गुरुदेव, उदार न आते॥
अवतार कहा कर जो न, कुभार उतारे।
बन कर जो बुद्ध विशुद्ध, न यश विस्तारे॥
जनता पर जिस का पुत्र, न प्रेम पसारे।
कर प्यार न जिस का दूत, समाज सुधारे॥
उस एक सर्व-गत के न, भक्त बन जाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

* २ *

जिस में मत-भेद प्रवाह, घने बहते हैं।
जिस में अनमेल कुभाव, भरे रहते हैं॥
जिस के कुल घोर-दरिद्र, दुःख सहते हैं।
हँस हँस हिन्दू बन "हिन्द,, जिसे कहते हैं॥
उस भारत मे सुविचार, प्रचार न पाते।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते॥

"महेशवृत्त'' नया रचा गया है। इस का रूप यों है (S।SIIS। SSS।S यह वर्ण वृत्त है। इसी चाल का "पीयूषवर्ष,, नामक एक प्राचीन मात्रिक छन्द है। उसका प्रत्येक चरण १०,६ के विराम से पूरा होता है। (शङ्कर)

* ३ *

कर घोर घृणा मुख मोड़, पाहनी हर से ।
घन दिये महा–व्रत धार, पिता के घर से ॥
पढ़ विरजानन्द विरक्त, ज्ञान सागर से ।
बन वैदिक सिद्ध प्रसिद्ध, मिले शङ्कर से ॥
किस के यों अनुकरणीय, चरित्र सुनाते ।
यदि दयानन्द गुरु–देव, उदार न आते ॥

* ४ *

दृढ़ ब्रह्मचर्य्य–बल धार, विवेक बढ़ाया ।
तज भोग सिद्ध कर योग, जन्म फल पाया ॥
करणी–धरणी पर धर्म, मेघ बरसाया ।
सब को देकर उपदेश, देश अपनाया ॥
बुध–वरद संविदादर्श, किसे बतलाते ।
यदि दयानन्द गुरु–देव, उदार न आते ॥

* ५ *

भारत भर में भय त्याग, विचरते डोले ॥
सब के गुण दूषण टेक टिकाय टटोले ॥
धर तर्क तुला पर कूट, कथानक तोले ।
कर परम सत्य स्वीकार, असत्य न बोले ॥
किस के गुण यों जय बोल, बोल कर गाते ।
यदि दयानन्द गुरु–देव, उदार न आते ॥

* ६ *

नव द्रव्य, धर्म, गुण, कर्म, शुभाशुभ जाने ।
अनुभूत प्रमाण प्रयोग, विधान बखाने ॥
समझे, ऋषि तंत्र सुधार, सुधा रस माने ।
भ्रम जाल भरे नर ग्रन्थ, विशुद्ध न माने ॥
किस पर मारालिक न्याय, निदान कराते ।
यदि दयानन्द गुरु–देव उदार न आते ॥

७

समुचित आचार विचार, शोध समझाये ।
कर पुण्य प्रकाशित पाप, जघन्य जनाये ॥

रच पद्धति वैदिक-याग, व्रतादि बताये ।
लिख लेख सदर्थ अनर्थ, भेद दरसाये ॥
विधि और निषेध प्रमान, न ज्ञान जनाते ।
यदि दयानन्द गुरु-देव, उदार न आते ॥

* ८ *

जड़ पूजन की जड़ काट मोहमठ फोड़े ।
कर दूर अवैदिक दर्प, दम्भ गढ़ तोड़े ॥
मत पन्थ प्रसारक पक्ष, न जीवित छोड़े ।
सटकी भ्रम की भरमार, भिड़े न भगोड़े ॥
नट खट खण्डन की मार, कहो कब खाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* ९ *

कब लम्पट लोलुप लगठ, लबार लताड़े ।
प्रतिवाद, प्रमाद, प्रपञ्च, प्रचण्ड पछाड़े ॥
उलझे झुक झिझक झुण्ड, भड़ाभड़ झाड़े ।
उखड़े अक्खड़ खल खर्ब, उखाड़ अखाड़े ॥
कब कुल भयानक भूत, कपूत कहाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* १० *

कर कोप न कल्पित प्रेत, पिशाच पुकारें ।
भुमिया भैरव हनुमान, न अब हुंकारें ॥
चढ़ चामड़ चेत चुड़ैल, न फूक पजारें ।
जखई जिन पीर मसान, मसोस न मारें ॥
मिल जल मरे यमदूत, सदैव सताते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* ११ *

जब गुरुकुल विद्यापीठ सदा बढ़ते थे ।
बटु ब्रह्मचर्य व्रत शील, वेद पढ़ते थे ॥
जब शिष्य यथोचित वर्ण, धार कढ़ते थे ।
गौरव गिरि पै प्रण रोप, रोप चढ़ते थे ॥

अब क्या तब के अनुसार, बडुक पढ़ाते ।
यदि दयानन्द गुरु देव, उदार न आते ॥

* १२ *

प्रतिभा धर दत्त दयालु, विप्र पद पावें ।
क्षत्रिय पढ़ वेद बलिष्ठ, वरिष्ठ कहावें ॥
करकृषि वाणिज्य सुबोध, वैश्य बन जावें ।
वह शूद्र जिसे द्विज दास अबोध बनावें ॥
गुण, कर्म, स्वभाव न वर्ण, विभाग बनाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* १३ *

पिय साथ सुहागिनि काल, समोद बितावे ।
सधवा पुनि अक्षत योनि, राड बनजावे ॥
विधवा हत योनि नियोग, सिद्ध फल पावे ।
कुलटा बनके कुल को न, कलङ्क लगावे ॥
द्विज दम्पति क्या इस ओर, ध्यान कुछ लाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* १४ *

कर ब्रह्म कथामृत पान, बिसार उदासी ।
बनगये मृत्यु भय त्याग, अमर सन्यासी ॥
उमगे बुध सज्जन देश, विदेश निवासी ।
चिढ़ गये विदूषक चोर, चबोर बिसासी ।
किसके बल से किस भाँति, किसे समझाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* १५ *

सब ओर सुधार पसार, सुनीति बिराजी ।
मंगल मुख दुन्दुभिधर्म, विजय की बाजी ॥
गरजे सुन वैदिक नाद, सुजान समाजी ।
छुपगये उलूक उतार, प्रतारक पाजी ॥
कब देख सभ्य दल दृश्य, दस्यु दब जाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

* १६ *

अवनी पर आर्य्यसमाज, कल्पतरु फूले ।
शुभ सिद्ध मनोरथ रूप, धार फल झूले ॥
कुल घातक तक्षक क्रूर, कुभाव न भूले ।
अटके धर कोप कुठार, विरोध वसूले ॥
इन असुरों का कब घोर, घमण्ड घटाते ।
यदि दयानन्द गुरुदेव, उदार न आते ॥

—○:o:○—

महर्षि दयानन्द और शान्तियुग

(श्रीयुत मास्टर आत्माराम जी ऐज्यूकेशनल इन्सपेक्टर)

आर्ष ग्रन्थों में तीन वार शान्ति उच्चारण करने की प्रथा किसी शुभकाम वा शुभलेख की समाप्तिपर देखने में आती है । जर्मन देश का विद्यानिधि शोपनहार लिखता है, कि इस से बढ़कर उत्तम प्रार्थना कि हम सभा, समाज के विसर्जन समय पर शान्तिपाठ करें, कहीं दृष्टि नहीं पड़ती । सोलह संस्कार हों वा विशेष हवनयज्ञ, पहिले शान्ति-पाठ करना ही होगा । यूरुप का जीवन चरित्र दर्शा रहा है कि वहां इन बातों को जीवन में लाना कठिन है । आजकल भारतवर्ष में अंग्रेजी लिखे पढ़े १०० में ९५ पुरुष तो सच्चे मन से महोदय डारविन के मत के भक्त बन रहे हैं और कह रहे हैं कि शान्ति युग के भाव कवियों के मनोद्गार नहीं तो क्या हैं ? ऐसी विकट शताब्दी में ऋषि दयानन्द ने भारत में काम किया—युक्ति तथा प्रमाण से उन्होंने सिद्ध कर दिखाया कि शान्तियुग लाना असंभव नहीं, यदि मनुष्य सच्चे आस्तिक होजावें । इसी उद्देश्य अर्थात् शान्तियुग लाने के दृढ़ विचार से उन्होंने हम अयोग्य, शक्तिहीन, शुभसंस्कार शून्य मनुष्यों को जो वेदविद्या तथा संस्कृत विद्या से रहित थे वा किसी अंश तक ही जानते थे, समाज में संगठन किया । गुरुदत्त से मेधावी, पण्डित, जिज्ञासु ने

ऋषि के मार्ग को समझलिया, पर उनकी आयु ने उन का साथ न दिया। उनके पीछे आर्य्यसमाज गुरुकुलों, तथा वैदिकधर्म प्रचार द्वारा शिर तोड़ कोशिश कर रहा है कि देश में जाग्रति फैले, पर धन हीन, शक्तिहीन, आर्य्यसमाज अभी १० लाख भी तो आर्य्यसभासद बना नहीं सका। ऋषि ने अपने जीवन को एक शान्तिमय जीवन बना कर दिखा दिया था। जो उस पर पत्थर पर पत्थर फैंकते थे, यह उन को आशीश ही देते रहे। जिन्होंने उनका अपमान किया, इन्होंने वहां शान्ति का ही उच्चारण किया। बुद्धदेव शान्तियुग लाने मे सफल मनोरथ हुए, यह इतिहास दर्शा रहा है। महर्षि दयानन्द का जीवन बुद्धदेव से कई अंशों में बहुत ही उच्च था तिस पर भी यदि आज तक भारतसंतान शान्तियुग के महत्व को नहीं समझी तो दोष ऋषि का नहीं, पर हमारे जन्म जन्मान्तरों के मन्द संस्कारों का है। एक सिरे से दूसरे सिरे तक ऋषि का जीवन चरित्र पढ़ जाओ, उस के ज्ञान में परिवर्तन हुआ, उस के मत में फेर हुआ। वह शैव से वैदिक आर्य्य बना और तिलक छाप से सच्चा आस्तिक बनकर वेदों का प्रचार करने लगा। उसने गुरुकुल वा संस्कृत शालाएं खोलीं उसमें उसको सफलता न हुई, यह सब परिवर्तन और अनुभव उसने प्राप्त किये। अनुभव पर नया अनुभव उसने प्राप्त किया—पर एक बात जिसमें हम परिवर्तन नही देखते, जो मानो माता के दूध के साथ ही उसने अमृतवत् पान की थी वह उस की परोपकारी वृत्ति वा शान्तियुग लाने की चेष्टा थी। उसने मत बदला पर उत्तमोत्तम वृत्ति नहीं बदली। न मालूम कितने जन्मों के शुभ संस्कार लेकर वह योगिराज जन्मा था—अहो! उस के मन में कितनी उत्कट इच्छा थी कि:—

"सब से सब को सुख लाभ पहुंचे।,,

वह अविद्या का शत्रु था। वह भ्रान्त विचारों को खंडन करता था, पर उसने मनुष्य शान्ति का कभी खंडन किया? नहीं २, कभी नहीं। विष खाकर, प्राण देते हुए, औरों का भला ही चाहता रहा। ऐसा ऋषि, सच्चा योगी इस समय में हमारे सामने नहीं पड़ता। संभव है कि वैसे ही योगिराज अब भी हिमालय और आबू में सच्चे जिज्ञासुओं को दर्शन दें। पर हम से आलसी प्रमादियों को हमारे घरों में

आकर उपदेश देने वाला योगिराज यदि कोई था तो वह शान्ति युग की शिला रखने वाला महर्षि दयानन्द ही था। लोग कहते हैं कि द-यानन्द ने "प्राचीन वाद,, की मात्रा का अधिक प्रचार कर भारत की भावी उन्नति और भावी आविष्कारों को रोक दिया। हम कहेंगे कि यदि वादी तीसरे नियम को "प्राचीन वाद,, के अर्थों मे ही लेते हैं तो वह कृपा कर के इससे अगला चौथा नियम साथ ही क्यों नहीं पढ़ लेते, जिसका भाव यह है कि सबको सत्यज्ञान के ग्रहण करने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। प्रथम तो यह कथन ठीक नही कि वेद प्रचार प्राचीन वाद है, यदि मान भी लें तो फिर नवीनवाद का उपदेश क्या साथ नहीं? इन दोनों वादों व सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए जो शान्ति वाद नही २ शान्ति के अटल सिद्धान्त का ऋषि ने प्रचार छटे नियम मे किया है, उनको देखकर यूरुप का एक भारी विद्वान् भी आश्चर्य के सागर में निमग्न हो जाता है। शान्ति प्रेम, इसका दया-नन्द एक मात्र प्रचारक था। उसका जीवन शान्त जीवन है। किसी से बैर करना कभी स्वप्न में भी उसके मन में नहीं आया। जो कुछ उसने किया एक मात्र ईश्वराज्ञा के पालन तथा शान्तियुग लाने के लिये। इस ऋषिवर के मुक्ति पा जाने से भारत शताब्दियों उन्नति के मार्ग से दूर होगया। भूगोलपर एक भी महर्षि वा आदर्श सन्यासी इस समय उस के समान नहीं है। ईश्वर कृपा करें जिस से भारत अपने जगाने वाले के लक्ष्य को अनुभव कर सके।

—○.०:○—

दयानन्द की अपूर्वता

(ले० वेदतीर्थ पण्डित नरदेव शास्त्री)

दयाशाली दयानन्द की किस २ अपूर्वता का वर्णन किया जाय जिस ने स्वदेश और स्वधर्म की ठीक पहिचान करादी। जिसने सुराज्य और स्वाराज्य (मोक्ष) का यथार्थ भेद बतलाया, जिसने भारतवासियों का पश्चिम की ओर उठा हुआ मुख फिर पूर्व की ओर

कर ज्ञानरूपी सूर्य के–वेद रूपी भगवान् के साक्षात् दर्शन कराये, गुजरात होकर भी जिस ने केवल गुजरात ही नहीं–भारतवर्ष ही नहीं–किन्तु समस्त संसार के कल्याण के हेतु यत्न किया; उदीच्य कुल का होकर भी जिस ने अपनी संकुचित मर्यादा छोड़ कर समस्त भारतवर्ष और तद्वारा सकल संसार को अपना कुल बनाया; सामवेदी होकर भी जिस ने केवल सामवेद ही नहीं, ऋग्वेद ही नहीं, यजुर्वेद ही नहीं किन्तु चारों वेदों के उद्धार के लिये यत्न किया और सब से पूर्व यजुर्वेद और तत्पश्चात् ऋग्वेद का भाष्य कर सच्चे ब्रह्मा बनने का सौभाग्य प्राप्त किया–उस मूलशंकर की, उस यति दयानन्द की, मुनि दयानन्द की, महादेव की तलाश में घनघोर जंगलों में भटकने वाले दयानन्द की, योगिराज दयानन्द की, मृत्यु को जीतने वाले दयानन्द की, गुरुभक्त दयानन्द की, सत्य के लिये अपने ही देश के-भारतवर्ष के लोगों के हाथों से सैकड़ों असह्य कष्ट सहने वाले दयानन्द की किस २ अपूर्वता का वर्णन करें ?

प्राचीन समय की शिक्षा के दृश्य दिखला कर गुरुकुल का मनोहारि अनुपम चित्र खेंचने वाला चित्रकार दयानन्द, मनुस्मृति में उपवर्णित धर्ममर्यादाओं पर पूर्व पक्ष उत्तर पक्ष द्वारा विवेचन करने वाला धर्मशास्त्रकार दयानन्द; राजा प्रजा के कर्त्तव्याकर्त्तव्य की मीमांसा करने वाला प्रतिवाद भयङ्कर दयानन्द; किसी न किसी अंश में वेद शास्त्रों का सहारा लेने वाले परन्तु परस्पर अत्यन्त विभिन्न रूप को प्राप्त हुये नौसौ निन्यानवे मतमतान्तरों का झगड़ा मिटा कर शान्ति स्थापना करने की चेष्टा कराने वाले न्यायाधीश दयानन्द; पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान–संस्कृत में शून्य होने पर भी पौरस्त्य ज्ञान–विज्ञान–संस्कृत की छाप समस्त भूमण्डल पर बिठाने वाले दयानन्द; इन भिन्न २ दयानन्द की चित्रच्छायाओं को देख कर कौन विज्ञ पुरुष है जो दयानन्द की अपूर्वता को नहीं समझ सकेगा ? कुशल से कुशल चित्रकार भी इन समस्त छायाओं से यक्त दयानन्द के चित्र को नहीं खींच सकता । यदि कोई चित्रकार दावा करता है तो वह सामने आवे ।

गीता शास्त्र के सदृश दयानन्द को समझना भी कठिन कार्य्य है । जैसे भिन्न २ सम्प्रदाय वाले गीता मे से ही अपने २ अभिप्राय निकाल लेते

हैं और प्रत्येक गीता को अपनाता है। कुछ काल से कुछ ऐसी ही गति दयानन्द के विषय में हो रही है। जैसे गीताशास्त्र चहुंओर से मीठा लगता है वैसे अब दयानन्द सबको प्यारा लगने लगा है। और इसी लिये प्रत्येक सम्प्रदाय अपनी २ दृष्टि से दयानन्द को विशिष्ट स्थान देने लगा है। प्रथम प्रथम तो लोगों ने न दयानन्द को ही समझा न आर्य्यसमाज को, फिर ऐसा काल आया कि लोग दोनों को ही अपनाने लगे। अब दयानन्द को तो अपनाते हैं और आर्य्यसमाज को छोड़ते जाते हैं। बहिर्मण्डल तथा अन्तर्मण्डल दोनों में यह दशा है। उदारभाव वाले महाशय चक्रवर्त्ती दयानन्द को समझने के लिये उदार बनने की आवश्यकता है, संकुचित भाव, संकुचित विचार वाले लोग दयानन्द को कभी भी ठीक २ नहीं समझ सकेंगे। जो किसी विशेष दृष्टि से ही दयानन्द की प्रशंसा करने पर उतरते हैं और अपने अभीष्ट बातों को मानकर अन्य अंशों में त्याज्य समझते हैं वे एक देशीय दयानन्द के ग्राहक हैं न कि सर्व देशीय दयानन्द के।

"दया भी प्यारी और आनन्द भी प्यारा दोनों मिलाकर दयानन्द प्यारा,, ऐसा गाने वालों ने भी किसी २ अंश में दयानन्द को इतना संकुचित कर दिया है कि इनके हाथों से खींचा हुआ चित्र नहीं पहिचाना जाता कि यह किस दयानन्द का चित्र है ? ये तो रहे मानसिक चित्र ! अब लौकिक चित्र भी देखिये ये भी कहां एक दूसरे से मिलते हैं ? नये २ फ़ोटो वाले और चित्रकार स्वामी को भिन्न २ विस्खलित रूप में दिखाते हैं। यदि फ़ोटोग्राफ़र ठीक २ फ़ोटो नहीं ले सकता तो फ़ोटोग्राफ़र का दोष है न कि फ़ोटो खिचवाने वाले का। यदि चित्रकार ठीक चित्र नहीं खींच सकता तो वह चित्रकार का दोष है न कि ध्यानावस्थित मूर्त्ति का, जिस चित्र या फ़ोटो से उस पुरुष की यथार्थ दशा का बोध नहीं होता या स्वरूप विरूप हो जाता है वह चित्र चित्र नहीं, वह फोटो फोटो नहीं। जिस दिमाग़ में स्वा० दयानन्द की बातें नहीं आईं वह दयानन्द का यथार्थ चित्र नहीं बना सकता। दयानन्द ! स्वामी दयानन्द ! आपही बतलाइये कि वह कौनसा निपुण शिल्पकार है, वह कौनसा चित्रकार है जो आपको यथार्थ रूप में दिखा सकता हो। वैसे तो सबके दीखते हो और फिर भी सब

से अलग हो, वैसे तो दया का इतना भण्डार है, उधर सफ़ाई का भी कुछ ठिकाना नहीं, एक एक की वह ख़बर ली है कि जिस जिस को लगी है वही जानता है, उधर समस्त संसार के उपकार का प्रण है तो इधर भारतवर्ष के करुणान्तक नाटक का भी हृदय विदारक दृश्य खींचते हो, क्या समझें, क्या कहें, क्या बतलाएं देवों के देव ! आओ तुम्हीं समझाओ कि तुम क्या हो ? हमतो "अपूर्व दयानन्द,, इतना ही कह कर चुप हो जाते हैं। हम तो एक तुच्छ अनुचर हैं—जब कुछ समझने योग्य होंगे तब हम भी अपने मनका सा एक सुन्दर चित्र खैंचकर लोगों को दिखलाएंगे और कहेंगे "यह देखो उस दयानन्द की तसवीर जो प्राचीन भारत को जगा गया—जगा गया,,

—:o:—



महर्षि दयानन्द सरस्वती।

(ले० श्रीयुक्त प्रो० पीतमलाल गुप्त, एम० एस सी०)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जो जाति अथवा देश अवनति की दशा को पहुंच जाता है, वहां परमात्मा की अपार कृपा से सुधारक उत्पन्न होते है। यह महात्मा आत्म परित्याग कर के अपने देश तथा जाति की दशा को उत्पन्न करते हैं, अपने जीवन को सफल करते है और मरने के पश्चात् आने वाली सन्तान के लिये पथ प्रदर्शक बनते हैं। ऋषि दयानन्द सरस्वती, मुहम्मद साहब, तथा ईसा मसीह इत्यादि की गणना ऐसे ही सुधारकों में है। स्वामी दयानन्द जी अन्य सुधारकों की अपेक्षा अत्यन्त उच्च श्रेणी के सुधारक थे। उन्होंने मत-चक्र में घूमते हुये अशांत जिज्ञासुओं के लिये बतलाया कि केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान के भंडार हैं। और इस बात की जांच के लिये 'विज्ञान और तर्क, की कसौटी बताई। जो पुस्तकें विज्ञान और तर्क के प्रतिकूल हैं, उनको सर्वथा असत्य, और जो पुस्तकें उन के अनुकूल हैं उन को सत्य और माननीय मानना चाहिये। समस्त मतों के मान्य ग्रन्थो को परीक्षा की कसौटी पर कसने से केवल वेद ही सच्चे

सिद्ध होते हैं। स्वामी दयानन्द की शिक्षा के आधार वेद ही हैं।

स्वामी दयानन्द के समय मे परमात्मा, आत्मा, और प्रकृति के विषय में लोगों के विचार ठीक नही थे। कोई २ मत तो नास्तिक थे। किसी मे आत्मा को कुचल २ कर मृत प्रायः कर दिया था। किसी ने आत्मा, और किसी ने प्रकृति को ही सब कुछ माना था। और किसी ने "प्रकृति निरर्थक है और आत्मा शक्ति हीन है, ऐसे सिद्धान्तों का प्रचार किया। वास्तव मे बात यह है कि स्वामी जी के समय से पहिले के सुधारकों ने इन मर्मों को समझा ही नथा। परन्तु स्वामीजी ने बताया कि वेद मतानुसार परमात्मा, आत्मा, और प्रकृति भिन्न २ हैं। परमात्मा सब सत्य गुण सम्पन्न निराकार, निर्विकार इत्यादि है। आत्मा कर्म करने मे स्वतंत्र और फल भोगने में परतंत्र है, कर्मों द्वारा ईश्वरीय गुण धारण करना ही इसका परम कर्तव्य है। प्रकृति एक बड़ा साधन है, जिसके ठीक उपयोग से सब मनोरथ सिद्ध होते है।,,

पाठक गण! इस सिद्धान्त की महत्ता पर विचार कीजिये। इस सिद्धान्त ने सब मतों पर पानी फेर दिया। सासारिक सुख और पारलौकिक सुख दोनों का एक ही साधन बतलाया। आत्मा को कुचलने के स्थान में प्रबल और कर्मवीर बनाने का धर्म सिखाया। किसी विशेष मनुष्य की उपासना न कराकर एक ही सत्यरूप परमात्मा की उपासना कर्मयोग द्वारा करने का उपदेश किया। किसी मंदिर अथवा मसजिद में परमात्मा को क़ैद न कर के तथा उनको दीन जनों से दूर न रख कर, सर्व व्यापक बतलाया और उपदेश किया कि "प्यारे भाइयो! ईश्वरीय नियमों को शिरोधार्य समझो। वे अटल हैं। उन नियमों का अनुकरण करना पुण्य और विरोध करना पाप है। यदि आप उसकी आज्ञा पालन करेंगे तो वह आपकी सहायता करेंगे और बल और सफलता प्रदान करेंगे और यदि आप आज्ञा का उल्लंघन करेंगे तो परमात्मा आप को निर्बल बनावेंगे,,।

महर्षि ने हम को बतलाया कि केवल वैदिक धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो प्रत्येक जाति, प्रत्येक देश और प्रत्येक जीव के लिये प्रत्येक समय में हितकारी है। उन्होंने अन्य

संकुचित मन और हृदय वाले सुधारकों की तरह दूसरे मत वालों पर तलवार चलाने का आदेश नही किया, उन्होंने किसी पुरुष को धर्म-पुस्तक पढ़ने या सुनने से वंचित नहीं रक्खा, किन्तु उनका उपदेश है कि ईश्वरीय ज्ञान अथवा वेद उसी प्रकार सबकी सम्पदा है जैसे सूर्य और वायु।

एक और महत्वपूर्ण बात जिसका स्वामी जी ने उपदेश दिया वह वही गीता का रहस्य श्री भगवान कृष्ण के वाक्य है। "निष्काम कर्म करना ही परम धर्म और मोक्ष का साधन है,, कर्म को कर्तव्यहित करना चाहिये न कि फल प्राप्ति की इच्छा से,, इस उपदेश से लोगों को ज्ञात हुआ कि अकर्मण्यता कोई गुण नही किन्तु वह एक झूठा बैराग्य, कायरता और आलसी पन है जिसके आशय से सदैव दु:ख भोगना पड़ेगा।

मनुष्य सामाजिक जीव है। वह समाज बिना नहीं रह सकता है। अतः मनुष्य का परम कर्त्तव्य है कि वह समाज के हित में लगा रहे। समाज के हित को अपना हित और समाज के अनहित को अपना अनहित समझे। सबसे मिल कर संगठन द्वारा समाज की उन्नति के लिये प्रयत्न करता रहे। समाज सेवा को सर्वोत्तम कर्म समझे। वर्त्तमान आर्यसमाजो तथा उसके नियमों की स्थापना इसी महान् सिद्धान्त की क्रियात्मकता है। ऋषि चाहते थे कि मनुष्य उनके इस संदेश को सुन कर संगठन में रहकर काम करना सीखें और "गुरूडम,, के भूत का सर्वनाश करें।

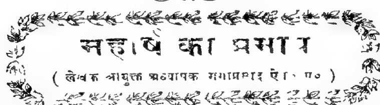
स्वामी दयानन्द कर्मयोगी थे। जो बात वह सत्य मानते थे उसको कार्यरूप में कर दिखाते थे और ऐसा करने में वह प्रत्येक कष्ट को सहन करते थे। वह ऐसे लोगों को बहुरूपिया बताते थे जो मन में कुछ मानते हों और कर्म कुछ करते हों। ऐसा करने से आत्म-घात होता है और मनुष्य का मनुष्यत्व जाता है। उनके जीवन से यह प्रत्यक्ष है कि उन्होंने अपने सिद्धान्त के प्रचार में अनेक दुःख सहे और अन्त में प्राणों का भी परित्याग किया। परन्तु आत्मा के वि-रुद्ध आचरण करना असम्भव था।

ऋषि का प्रत्येक सुधार बतलाता है कि उन का हृदय मनुष्य

[illegible] हुआ हुआ था। गुरुकुलों की स्थापना, बि-धवा विवाह, [illegible] आदि ऐसी ऐसी संस्थाएं इस विचार का प्रत्यक्ष [illegible] है।

पाठक [illegible] उपरोक्त बातों से आप सहज ही में इस परिणाम पर पहुंच सकते हैं कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के हृदय व मन, उन-का ईश्वर व वेद पर [illegible] तथा उनके सर्व सिद्धान्त ऐसे हैं जो वैज्ञानिक [illegible] पर [illegible] हैं और मनुष्य मात्र के लिये उपयोगी हैं। अतः यह [illegible] उनके उत्तर में हां [illegible] तो [illegible] हम महर्षि के [illegible] जीवन के महत्त्व को समझें। [illegible] सिद्धान्तों के [illegible] को जानें। उनकी शिक्षाओं को कार्य्य रूप में परिणत करें। [illegible] का नाश करके कर्मयोगी बनें। सब के सुख को अपना सुख और सब के दुःख को अपना दुःख समझें। स्वयम् सदाचारी बनकर मनुष्य मात्र को वैसा बनावें। उनके दुःखों का नाश करें। और सदा इस वाक्य पर ध्यान दें "कर्मण्येव अधिका-रोऽस्ति मा फलेषु कदाचन,, ऐसा करना ही ऋषि का सच्चा आदर करना है। उनके ऋण से उऋण होने का यही मार्ग है। ईश्वर सहा-यता दे कि हम सदा श्रेयस्कर कार्यों में लगे हुये धर्म में [illegible] रहें। यही प्रार्थना है।

—○·o.○—



महर्षि का प्रमाण

(लेखक श्रीयुत अध्यापक गंगाप्रसाद एम० ए०)

ऋषि दयानन्द ईसा की १९ वीं और विक्रम की २० वीं शताब्दी के संसार भर में सब से बड़े पुरुष थे। उनके महत्व का प्रमाण यह नहीं है कि समस्त सुशिक्षित जनता ने एक स्वर होकर उन को महान मान लिया है। वस्तुतः सहस्त्रों विद्वानों ने ऋषि दयानन्द का नाम भी नहीं सुना सर्व साधारण की तो बात ही क्या है। भारत वर्ष के विद्वानों से यद्यपि ऋषि का नाम छिपा नहीं है तथापि बहुत कम लोग ऐसे हैं जिन्होंने इन के ग्रन्थों का अवलोकन किया तथा इन के

सिद्धान्तों का मर्म जाना है। परन्तु ऋषि दयानन्द की महत्ता का सब से अच्छा प्रमाण उन का प्रभाव है जो आज संसार नहीं तो भारतवर्ष की प्रत्येक संस्था पर पाया जाता है। विश्वव्यापी विद्युत् के नाम तथा गुणों से बहुत कम लोग अभिज्ञ हैं। परंतु जड़ पदार्थों से लेकर कीट, पतंग, पशु, पक्षी तथा मनुष्य सब ही इस के प्रभाव से प्रभावित हो रहे हैं। वस्तुतः जितनी महान शक्तियां हैं वे अज्ञात अवस्था में भी प्रभाव डालती हैं और ज्ञात तो यह केवल विचक्षण पुरुषों ही को होती हैं। ऋषि दयानन्द मर गये, उन के शरीर की राख हो गई। उनके आत्मा ने अन्य अवस्था प्राप्त करली, उनका सिद्धान्त तथा कार्य्य रूपी आत्मा विभु होकर भारत वर्ष के प्रत्येक कार्य्य को चलायमान कर रहा है। और न केवल भारत किन्तु समस्त संसार पर कुछ न कुछ प्रभाव डाल रहा है। ऋषि के अनुयायी, अननुयायी, मित्र, विरोधी तथा उदासीन सब ही उस के सिद्धान्त के आगे जाने या बेजाने शिर झुका रहे हैं। इस से अधिक महत्व का प्रमाण दिया नहीं जा सकता।

धार्मिक संसार को लीजिये। इस समय के प्रकृति-उपासक जगत में भी संसार ईश्वर-हीन नहीं हो गया, अब भी धार्मिक नियम ही जगत् को चला रहे हैं। और यदि हम विचार दृष्टि से देखें तो स्वामी दयानन्द की शिक्षाने समस्त मत मतान्तरों में खलबली पैदा करदी है। एण्ड्रयू जैक्सन डेविस ने जो यह लिखा था कि आर्य्यसमाज रूपी भट्टी में सब मत मतान्तर भस्म हो जायंगे। उन की यह घोषणा अक्षरशः सत्य हो रही है। इस का यह तात्पर्य नहीं है कि आर्य्यसमाज के सभासद अधिक हो रहे हैं किन्तु देखना प्रभाव का है। ऋषि दयानन्द को स्वर्गवासी हुये ३३ वर्ष हुये। यदि विचार करें तो मालूम होगा कि जो सिद्धान्त किसी धर्म के ३३ वर्ष पूर्व थे उन में और उस मत के आजकल के सिद्धान्तों में आकाश पाताल का भेद है। पौराणिक लोगों में शैव और शाक्त के झगड़े एक प्रसिद्ध बात थी परन्तु आज सनातन-धर्म सभा के प्लेटफ़ार्म पर सब पौराणिक संयुक्त हो गये हैं। पौराणिकों की असंख्य शाखाओं का एक करना स्वामी दयानन्द का काम था। आज शैवों के त्रिपुण्ड से वैष्णवों की श्री नहीं शर्माती, आज सनातन-धर्म के प्रचारक मान गये हैं कि शिव और विष्णु दो नहीं। ऋषि

दयानन्द ने पुराणों का विरोध किया। पौराणिकों को बुरा लगा। और उनके प्रतिपादन के लिये सनातनधर्म सभाएँ खोलीं। बहुत विष उगला गया परन्तु परिणाम क्या हुआ?—स्वामी के लगाये दोषों को कोई दूर न कर सका। सनातनधर्म सभा के प्रचारक स्वामी दयानन्द को अपने "सत्यार्थविवेक,, में मानना पड़ा कि "पुराण के भी बहुत ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं और बहुत स्थानों में प्रक्षिप्त अंश भी आगये हैं,,। (देखो पृ० २९०)। अभी सोलन मे शास्त्रार्थ करते हुये स्वामी केशवानन्द ने सनातनधर्म सभा की ओर से पुराण मानने से निषेध किया। ऋषिकुल के श्री पं० गिरिधर शर्मा और श्री०पं० इन्द्र जीमें जो शास्त्रार्थ हुआ और जिस में आर्य्यसमाज की ओर से पुराणों के प्रमाण देने पर आग्रह किया गया उस पर पौराणिकों की ओर से कितनी हिचकिची और संकोच हुआ। यह सब क्यो? केवल इस लिये कि ऋषि दयानन्द ने इन के आत्मा पर अंकित कर दिया है कि पुराण दोष युक्त हैं। इस से भी विचित्र बात यह है कि कई महानुभाव पुराणों के छापने में उन में से वह श्लोक निकाल डालने का प्रयत्न कर रहे हैं जिन को ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश आदि में उद्धृत किया है। इस से शायद उनका प्रयोजन इतना ही है कि आर्य्यसमाज के साथ शास्त्रार्थ करते हुये यह कह सकें कि ऋषि दयानन्द ने झूठ मूठ इन श्लोकों को लिख दिया है। परन्तु वस्तुतः इस से ऋषि का विजय ही सिद्ध होता है क्योंकि उस के दोष युक्त बताये हुये श्लोकों को लोग अपने धर्म ग्रन्थों में रखना भी नहीं चाहते। इस से अधिक ऋषि की और क्या इच्छा थी? वह भी तो यही चाहता था कि पवित्र ग्रन्थों से अपवित्र बातें निकाल कर शुद्ध करलो। बहुत से लोग पुराणों की घटनाओं को सच्ची न मान कर केवल उनको आलङ्कारिक सिद्ध करने का उद्योग करते हैं। एक पौराणिक महाशय ने मुझ से कहा कि विष्णु क्षीरसागर में नहीं सोते और न लक्ष्मी उन के पैर दाबती हैं। यह केवल अलङ्कार है। मैंने कहा बहुत अच्छा! आप इन सब बातों को अलङ्कार मानिये। हमारा झगड़ा निबट गया। यही हम कहते हैं कि इन बातों को सच्ची कथायें मानना भूल है पौराणिक धर्म का सिद्धान्त था कि वेद मन्त्र शूद्र के आगे न पढ़ो। यदि शूद्र श्रुति को सुनले तो उस के कान में

सीसा पिघला कर डाल दो। परन्तु आज सनातनधर्म के प्लेटफार्म पर वेद मन्त्र पढ़े जाते हैं। यह सब ऋषि की शिक्षा का फल है। पौराणिक लोग नाम के लिये जन्म से वर्ण व्यवस्था मानते हैं। परन्तु व्यवहार गुणकर्मानुसार ही होता है। आर्य्यसमाज ने मैचों की शुद्धि की लोग बड़े बिगड़े परन्तु आज सनातन सभायें "गङ्गा गङ्गेतियोब्रूयात्,, आदि से स्वयम् शुद्ध कर रही हैं। क्या एक हजार वर्ष से लोगों को यह श्लोक याद नहीं रहा था? फिर क्यों ऋषि से पहले लोगों ने मुसल्मानों की शुद्धि नहीं की। बाल विधवा विवाह के प्रचारक कितने सनातन धर्मी हैं। श्रोत्रिय शंकरलाल आर्य्यसामाजिक न थे। पं० राधाचरण गोस्वामी भी सामाजिक नहीं हैं। 'अष्ट वर्षा भवेत्गौरी, वाला श्लोक और उस के पूर्ववत् अनुयायी अब सनातन धर्म सभा के प्लेटफार्म से लुप्त होगये; क्यों? केवल ऋषि की शिक्षा के प्रभाव से। मूर्त्तिपूजा भी अब वह नहीं रही जो ऋषि के प्रचार करने से पूर्व थी। नये नये प्रमाण गढ़े जाते हैं। शब्दार्थ में खींचा तानी हो रही है। पंडित लोग घबरा रहे हैं कि किस प्रकार प्रतिमा पूजन रूपी गिरते हुये दुर्ग की रक्षा की जाय।

मुसलमानों के सिद्धान्तों में जो परिवर्त्तन हुए हैं उसे वही जानते हैं जिन्होंने कभी शास्त्रार्थ सुनने का अवसर प्राप्त किया हो। जबलपुर के शास्त्रार्थ में मौ० सनाउल्ला साहेब हदीसों से इन्कार कर गये। एक समय एक मौलवी ने इलहाम की परिभाषा वही की जो आर्य्यसमाज करता है। स्वर्ग और नरक को केवल "अवस्था,, बतलाया। जिब्रील को फ़रिश्ता न मान कर केवल ईश्वर की शक्ति बतलाया। क्या ऐसी बात ऋषि से पूर्व भी मुल्ले से आती थी। उन्होंने बतलाया कि ईश्वरीय ज्ञान में पदार्थ विद्या भी होनी चाहिये। अब लोग खींचातानी कर के कुरान से पदार्थ विद्या सिद्ध कर रहे हैं यही हाल ईसाइयों का है। वस्तुतः जिधर देखो लोग ऋषि के सिद्धान्तों को मानते चले जा रहे हैं। केवल स्पष्ट रूप से ऋषि को धन्यवाद नहीं देते। यह नहीं कहते कि हम ऋषि के अनुयायी हैं पर इस से क्या? ऋषि का उद्देश लोगों को अपना अनुयायी बनाना न था किन्तु सच्चाई सिखलाना! और यह सचाई वह भले प्रकार सिखला रहा है।

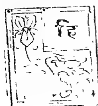
वस्तुतः ऋषि का उद्देश पूरा हो रहा है केवल नाम का ि द है। ऋषि के मौलिक सिद्धान्तों में से एक भी नहीं जिस को किसी न किसी रूप से लोगों ने नही ग्रह ण किया।

शिक्षा के विषय मे तो ऋषि दयानन्द स्वतः प्रमाण ही होगये हैं। उन के शिक्षा सम्बन्धी विचारो ने प्रत्येक शिक्षक के हृदय में घर कर लिया है। गु कुल की देखा देखी ऋषिकुल और आचार्यकुल खुल जाना तो एक साधारण बात है। पाश्चात्य विद्वान भी मान गये हैं कि ुरुकुल प्रणाली से अच्छी कोई शिक्षा प्रणाली नहीं।

भारतव ीय धार्मिक सभाओं और समितियों के जन्मदाता तो ऋषि दयानन्द ही थे। क्योंकि सनातनधर्म सभा, अंजमन इशायत इस्लाम तथा अन्य कई सभायें स्वामी द ानन्द का विरोध करने के लिये ही खोली गई थी। परन्तु विरोध करते २ ही यह सब ऋषि के विचारों को शनैः २ ग्रहण करती जा र ी हैं। जिस प्रकार भूमि में दबा हुआ बीज फूल कर इधर उधर की भूमि को तड़का देता है परंतु उस का अंकुर दिखाई नही देता इसी प्रकार ऋषि के सिद्धा त रूपी बीज ने लोगों की हृदय रूपी भूमि का तड़का दी है। इधर उधर खलबली पड़ रही है। परिवर्तन की आवश्यकता सर्वत्र अनुभूत हो रही है। परन्तु जब इस बीज से अङ्कुर निकलेंगे उस समय लोगो को ऋषि दयानन्द की विचित्र शक्ति का ज्ञान होगा। जो लोग ऋषि के मिशन से निराश हो गये है उन्हे संसार की अदृष्ट गतियों पर विचार करना चाहिये।

ऋषि दयानन्द और वर्ण व्यवस्था

(श्री मनीषी नारायण प्रसाद जी, मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल वृन्दावन)



न्दुस्तान को छोड़कर कोई देश, हिन्दू जाति को छोड़ कर कोई सभ्य जाति पृथिवी तल पर नहीं है जो जन्म से जाति (वर्ण) मानती हो। जाति के सम्बन्ध मे दो बड़ी भू ें हिन्दू जाति में प्रचलित है एक जन्म से जाति का मानना दूसर इस प्रकार की कल्पित जातियो में

नीच ऊंच का भेद करना, जाति (वर्ण) का वास्तविक रूप क्या है ? इसको मनु महाराज भली भांति प्रकट करते हैं। मनुस्मृति में ब्राह्मणादि वर्णों के जो कर्म बतलाये गये हैं उन पर दृष्टिपात करने से प्रकट होता है कि वे कर्म दो प्रकार के कर्त्तव्यों का समुदाय है। एक पारलौकिक कर्म (दीनी) दूसरे लौकिक कर्म (दुनियवी)। नीचे का चित्र प्रत्येक वर्ण के कर्म उपर्युक्त विभाग के साथ प्रकट करेगाः—

वर्ण	परलोक सम्बन्धी कर्म	लोक सम्बन्धी कर्म
(१) ब्राह्मण	(१) पढ़ना,	(१) पढ़ाना
	(२) यज्ञ करना	(२) यज्ञ कराना
	(३) दान देना	(३) दान लेना
(२) क्षत्री	,,	प्रजा की रक्षा करनाआदि
(३) वैश्य	,,	(१) कृषि
		(२) व्यापार
		(३) पशु-रक्षा

(४) शूद्र का एक ही कर्म सेवा बतलाया गया है।

उपर्युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के कर्मविभाग से स्पष्ट है कि परलोक सम्बन्धी कर्म तीनों वर्णों के एक ही है। लोक सम्बन्धी कर्मोंमें भेद है। लोक सम्बन्धी कर्म जीविका उपलब्ध करने के लिये हैं। ब्राह्मण को पढ़ाकर, यज्ञ कराके, दान लेकर, जीविका उपलब्ध करनी चाहिये। क्षत्रिय को प्रजा के रक्षणादि और वैश्य को कृषि आदि से धनोपार्जन करना चाहिये। इस प्रकार वर्णभेद जीविका उपलब्ध करने सम्बन्धी कर्मों में है। जीविका किस आश्रम मे उपलब्ध की जाती है? केवल गृहस्थ आश्रम में। प्रत्येक गृहस्थ का कर्त्तव्य है कि वह न केवल अपने लिये किन्तु शेष तीनों आश्रम वाले पुरुषों के लिये भी जीविका पैदा करे। तो प्रकट होगया कि वर्ण व्यवस्था का सम्बन्ध केवल गृहस्थ आश्रम से है इसी लिये ब्रह्मचर्य्य, वानप्रस्थ और सन्यस्थ आश्रमों में कोई वर्ण भेद नही होता। वर्ण व्यवस्था श्रम भेद Division of labour के नियमों पर अवलम्बित है और एक Scientific नियम है। जब वर्ण व्यवस्था चार आश्रमों में से केवल बीच के एक आश्रम (गृहस्थ) से सम्बन्धित है तो फिर उसे जन्म पर निर्भर ठहराना कितनी बड़ी

भूल है। ऋषि दयानन्द ने वर्ण व्यवस्था को छेद शास्त्रानुसार गुण कर्म पर निर्भर बतलाकर हिन्दू जाति के साथ बड़ा उपकार किया है जाति हलिभागिनी होगी यदि इससे लाभ न उठावे। दूसरी बात वर्णों मे निचाई ऊंचाई की है। वस्तुओं मे भेद दो प्रकार का होता है Kind (श्रेणी) और उसके अन्तर्गत Degrees (दरजों) का, जिन वस्तुओं मे (Kind) श्रेणी का भेद होता है उनमे दरजो का भेद बुद्धिमान नही ढूढ सकते हा एक श्रेणी की वस्तुओं में दरजो का भेद हुआ करता है। कोई यह नहीं पूछ सक्ता कि मेज अच्छी है या दावात, क्योंकि उनमें Kind का भेद है। हां एक श्रेणी की वस्तु मेज या दावात में यह प्रश्न हो सक्ता है कि कतिपय मेजों में कौन सबसे अधिक अच्छी और किसका नम्बर किसके पीछे है। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्यों में जीविका सम्बन्धी कर्मों में भेद के लिहाज़ से श्रेणी का भेद है इस लिये इनमें यह प्रश्न नहीं उठाया जा सकता कि ब्राह्मण अच्छा है या क्षत्री, हा ब्राह्मण अथवा क्षत्री अथवा वैश्य में से प्रत्येक एक श्रेणी का समुदाय है उनमे दरजों का भेद हो सकता है अर्थात् कतिपय ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों में यह प्रश्न हो सक्ता है कि कौन ब्राह्मण किस ब्राह्मण से अथवा कौन क्षत्री किस क्षत्री से अथवा कौन वैश्य किस वैश्य से अच्छा है।

ऐसी दशा में हिन्दू जाति में प्रचलित विचार कि ब्राह्मण क्षत्री से ऊंचा और क्षत्री वैश्य से; सर्वथा अनुचित असंगत और परस्पर विरोध बढ़ाने वाली प्रथा है इस लिये इस दुर्विचार को भी जाति से निकालना चाहिये अन्यथा यह सम्भव नहीं हो सकता कि जाति से वैर विरोध दूर होकर उन का स्थान प्रेम को दिया जा सके। वह दिन बड़े सौभाग्य का होगा जब जाति (वर्ण) के सम्बन्ध में उपर्युक्त दोनों भूलें सुधार कर ऋषि दयानन्द के आदेशानुसार गुण कर्मानुसार वर्णों की व्यवस्था होगी। उसी समय हिन्दू (आर्य्य) जाति, जाति शब्द के सच्चे अर्थों में प्रयुक्त भी हो सकेगी।

———.ऽ.———

स्वामी दयानन्द की सफलता का रहस्य

(लेखक श्रीयुत पं० शिवनारायण शुक्ल, बी० ए०, ऐल ऐल० बी)



अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त सज्जनों की कोटि मे प्रायः ऐसे बहुत से महानुभाव मिलते हैं जिनका विचार यह है कि यदि स्वामी दयानन्द अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त होते तो उन्हें अपने बहुत से विचारों मे परिवर्त्तन करना होता। यदि ऐसा विचार उस समय प्रकट किया जाता जब स्वामी जी अपनी ओजस्विनी, अमृतमयी वाणी से अपनी प्रभाव शालिनी लेखनी से, धूर्त रचित, बालू पर खड़े हुए अजेय दुर्गों पै अनवरत बाण चला रहे थे, तो सम्भवतः इसमे कुछ सत्य की झलक आती परन्तु प्रसन्नता की बात है कि समय स्वयं प्रकट कर रहा है कि अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त सज्जनों का यह विचार नितान्त भ्रम मात्र है।

इसमे कोई सन्देह नहीं कि एक मनुष्य जितनी ही अधिक भाषाएं जानता हो उतना ही उसको अनुभव अधिक होगा और हम यह भी स्वीकार करने के लिए तैय्यार हैं कि यदि स्वामी जी अंग्रेज़ी जानते होते तो वे सत्वर अंग्रेज़ी वैज्ञानिकों के मतों को उन्हीं की दृष्टि से देख कर उन पर विशेष रूप से समालोचना कर सकते। परन्तु हम यह कदापि मानने के लिए तैय्यार नहीं कि उनके सिद्धान्त—या यों कहिये कि वैदिक सिद्धान्त अंग्रेज़ी विज्ञान ने बिलकुल असत्य ठहरा दिये हैं। इसे आप चाहे गर्व कहें, परन्तु मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि विज्ञान ने एक भी वैदिक सिद्धान्त को इस ५० वर्ष के भीतर विज्ञान—विरुद्ध प्रमाणित न कर पाया। मैंने असीम आश्चर्य और प्रसन्नता के साथ ८ सितम्बर सन् १९१६ के पायोनियर को पढ़ा। दूसरे पृष्ठ पर वैज्ञानिक उन्नतियां (Scientific developement) शीर्षक एक लेख एक अंग्रेज़ विद्वान का लिखा हुआ प्रकाशित हुआ है। मेरा विचार है मैं इस लेख का अनुवाद आपके सम्मुख रखूं परन्तु इस लेख मे केवल दो एक बातों का उल्लेख करूंगा।

एक स्थल पर लिखा है कि "एक समय था जब वैज्ञानिकों का यह मत था कि सूर्य्य की उष्णता शनैः २ घट रही है जैसे धीरे २ कोई जलमयी वस्तु ठन्डी बनती है परन्तु अब सिद्धान्त पर हँसी आती है,,।

थोड़ी दूर आगे चल कर प्रशंसित लेखक ने लिखा है कि "चाहे हम उसे जिस नाम से संबोधित करें परन्तु हमें एक शक्ति अवश्य माननी पड़ेगी जो परिमाणुओं को मिलाने या प्रथक करने की सामर्थ्य रखती है और जो परिमाणुओं से भिन्न और चैतन्य गुण वाली है,,।

यह हैं विचार इस बीसवीं शताब्दि में उन वैज्ञानिकों के जिनकी चरण रज के उपासक स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों को विज्ञान विरुद्ध बतलाते हैं। ज्यों २ समय बीतता जाता है स्वामी के सिद्धान्त ठीक दिखलाई पड़ते हैं। फिर भला यह कैसे सत्य माना जा सकता है कि यदि स्वामी दयानन्द इस वैज्ञानिक समय में जीवित होते तो उन्हें अपने विचारों में परिवर्त्तन करना पड़ता। मै तो यह कहता हूं कि यदि वे अंग्रेजी जानते होते तो शायद उन्हें अपने बिचारों में परिवर्त्तन करना पड़ता। आधुनिक सभा तथा कान्फ्रेंसों की प्रस्ताव-सूचियों को उठाकर पढ़ जाइये और बतलाइये वह कौनसा विषय है जो स्वामी दयानन्द के विचारों के अनुकूल नही है। आप साहित्य सम्मेलनों सोशल कान्फ्रेंसों की कार्यवाही पढ़ जाइये और बतलाइये कि निज भाषा का प्रचार क्या दयानन्द ५० वर्ष पूर्व ही नही बतला गए हैं। स्वामी ने शास्त्रार्थ किए हिन्दी भाषा में, पुस्तकें लिखी तो अपनी देश भाषा में, समाजों के लिए नियम बना गये तो वे भी यह कि नागरी भाषा में ही सब कार्यवाही हो। आज सोशलकान्फ्रेंस क्या कर रही हैं। क्या सोशल कान्फ्रेंस बाल-बिवाह का पक्षपात कर रही है? क्या सोशल कान्फ्रेंस शूद्रों को त्याज्य मान रही है? क्या सोशल कान्फ्रेंस जाति पाति का भेद करने का परामर्श दे रही है? सज्जनों जो बातें ऋषि दयानंद पचास वर्ष पूर्व कह रहा था वह आज सत्य प्रमाणित हो रही हैं। मैंने बहुत से सुशिक्षित सज्जनों को यह कहते सुना है कि अजी हवन से क्या फ़ायदा है बस ! वायु की शुद्धि से तात्पर्य है आज पश्चिमी विज्ञान वाले गला फाड़ फाड़ कर कह रहे हैं कि हवन में जो पदार्थ डाले जाते हैं वे सभी प्रायः रोग नाशक

(germicide) हैं। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को हास्यजनक दृष्टि से देखते हुये अंग्रेज़ी शिक्षा के विद्वान प्रायः कहते थे कि यह माता पिता से छुड़ा कर गुरुकुल में रख कर वहशी पैदा कर रहे हैं। बहुत अच्छा ! मगर लार्ड हार्डिंजमहोदय भारत से चलते समय महात्मा मुंशीराम जी से कहते हैं कि भारतवासियों को शिक्षा देशीय भाषा द्वारा दीजानी चाहिये कौन जानता था कि महात्मा मेकाले का गुरुमंत्र एक शताब्दी के पश्चात् उन के शिष्य छोड़ना उचित समझेंगे।

मेरे कहने का तात्पर्य्य यह है कि स्वामी दयानंद जी महाराज के अंग्रेज़ी न जानने से कोई अधूरा पन, कोई अदूरदर्शिता उनके विचारों में प्रमाणित नहीं हो सकती। जिन महानुभावों ने अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करके देश का उपकार करना चाहा उनके कार्य से स्वामी दयानन्द का कार्य कई गुणा अधिक तथा चिरस्थायी है। और फिर क्या आपने बहुत से अंग्रेज़ विद्वानों को यह कहते नहीं सुना कि भारत वासियों में जो जाग्रति है वह अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रभाव है स्वामी दयानन्द का कार्य, स्वामी दयानन्द का जीवन इन आक्षेपों का बहुत अच्छा उत्तर है। मेरा तो विचार यह है कि स्वामी दयानन्द के जीवन से सब से उत्तम शिक्षा जो हमें मिल सकती है वह यह कि अपनी भाषा जानता हुआ भी विदेशी वायु के झोकों से बचा हुआ भी, विदेश की ओर मुहं न करने वाला भी, आधुनिक उपाधियाँ न होने पर भी एक भारतवासी चाहे तो बहुत कुछ कर सकता है। मैं कहता हूं हमारे लिए यह क्या कम अभिमान की बात है कि स्वामी दयानन्द देशी भाषा, और केवल देशी भाषा जानते हुए भी हमारा इतना उपकार कर गए कि जिस को आने वाली सन्तानें कभी भूल नहीं सकतीं आइये भ्रातृगण ! दीपावली आगई। ऐसे महान् ऋषि के जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण करें। जो लोग देशी बातों को बुरा कह कर पश्चिमीय सभी बातों के अनुकरण करने वाले हैं वे देखलें कि भारत में उत्पन्न हुआ, भारत के जल वायु से पालित पोषित, भारत की ही भाषाओं को जानने वाला एक अज्ञात स्थान का रहने वाला, कोई उपाधि न रखने वाला, यदि चाहे तो संसार में अपनी यशपताका फैलाता हुआ, अपना नाम चिरस्थायी कर सकता है। भगवन हमें शक्ति

दीजिये कि हम में से कोई दो चार दयानन्द, गुरुदत्त पैदा होकर संसार का उपकार करें। माता, भगवती वसुधरा क्या तुम्हारी कोख खाली है ?

—○·o·○—

निवेदन।

(कविवर श्री० बा० मैथिलीशरण जी गुप्त)

भावुक ! भरो भाव-रत्नों से
भाषा का भाण्डार भरो।
देर न करो देश वासी गण !
अपनी उन्नति आप करो॥
एक हृदय से एक देश का
धरो विविध विध ध्यान धरो।
विश्व-प्रेमरत रोम रोम से
गद्गद निर्झर सदृश झरो॥
मन से वाणी से कर्म्मों से
आधि-व्याधि-उपाधि हरो।
अमर आत्मा के अधिकारी
किसी विघ्न-भय से न डरो॥
विचरो अपने पैरों के बल
भुज-बल से भव-सिन्धु तरो।
जियो कर्म्म के लिए जगत में
और धर्म्म के लिए मरो॥

—○.o ○—



दया पूर्ण दयानन्द ।

श्रीयुत प० रत्नाकर शास्त्री, एम० ए०, एल एल० बी०, विद्यार्थी

ऋषि ने मानव जाति के स्त्री भाग को पुरुष भाग के बराबर आसन दिय तथा उनकी सच्ची प्रतिष्ठा का पुनरुद्धार किया और उनपर जो २ अत्याचार किये जाते हैं उनका निवारण किया। पूर्व पुरुषाओंके पवित्र जीवनों को स्वार्थियों ने कलङ्कित किया हुवा था उनके जीवनोंको आदर्श जीवन सिद्ध किया। स्वामी जी ने अपने पवित्र जीवन से उदाहरणतया संसार को दिखा दिया कि ईश्वर के सच्चे भक्त, वेदों के सच्चे अनुगामी ऋषि मुनि कैसे हुवा करते थे। उन्होंने गुरुकुलशिक्षा प्रणाली का उपदेश देकर हमको बतलादिया कि यदि पूर्वकाल का आर्य्यगौरव फिर किसी प्रकार से प्राप्त हो सकता है तो वह गुरुकुल शिक्षाप्रणाली द्वारा वैदिक शिक्षा से ही हो सक्ता है। अन्यथा चाहे वह आज हो चाहे कल सामाजिक संगठन की वह नीम डाली है कि यदि उसके सभासद् निःस्वार्थ भाव से कार्य्य करें तो वैदिक धर्म का डङ्का संसारभर में बज सकता है, संसार को आर्य्य जाति के सन्मुख अपना सिर झुकाना पड़े क्योंकि इस संगठन को उस सार्वभौमिक, सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक ईश्वरी ज्ञान के आधार पर बांधा है जिससे उत्तम संसार में कुछ हो ही नहीं सकता। वेद ने जो मानव जाति के समय का विभाग चारों आश्रमों में किया है तथा वर्णव्यवस्था द्वारा कार्य्यविभाग हो सक्ता है? इन विभागों के अनुसार जिस आर्य्य जाति का संगठन हो उस की उन्नति में संदेह ही क्या हो सक्ता है। मनुष्य जाति ही नहीं किंतु अन्य जीवधारिजातियां भी स्वामी की दया का पात्र है, उन्होंने जीवमात्रको पर दया करने का उपदेश हम को दिया है, लोग यज्ञ में पशुघात कर के ढोंगके साथ मांस भक्षण करते थे उन के सिद्धान्त की पोल खोल कर पशुओं पर असीम दया दिखाई है। पाखण्डों तथा मतमतान्तरों को निर्मूल सिद्ध कर एक सच्चे वैदिक धर्म की स्थापना कर आर्य्य जाति को प्रेम सूत्र में बद्ध होने का अवसर देना भी उन की दयाका प्रमाण है। भरात

में किसी न किसी रूप में जो जागृति दिखाई दे रही है वह उन की ही असीम दया और असीम निःस्वार्थ परोपकार का स्पष्ट परिणाम है। हे दयालो ! स्वामिन् ! हम कहां तक आप की दयालुता का वर्णन करें आप का प्रत्येक उपदेश, प्रत्येक कार्य्य तथा प्रत्येक अङ्ग दया से परिपूर्ण है। आप की दयालुता का चित्र खींचना हमारी शक्ति के बाहर है जिन पर कि आपने दया की है। कहीं कार्य्य भी अपने कर्त्ता के असली स्वरूप को जान सकता है। कहां तक कहें आप यहां तक दयापूर्ण हैं कि आज दिवाली से संसार यात्रा समाप्त करते हुये भी आपने जो उपदेश इन वाक्यों में हम को दिया है कि "प्रभो ! तेरी इच्छा पूर्ण हो,, उस से बढ़ कर क्या हो सकती है ? यह वाक्य हमारे सारे संदेहों को मिटाने वाला है। यह दिन सदा आप की दया का स्मरण कराता रहेगा। भगवन् ! आप सचमुच दयापूर्ण थे।

—○:०:○—

महर्षि दयानन्द का उपकार।

(श्रीयुत कर्ण कवि जी)

जिसने फैला हुआ अवैदिक जाल हटाया,
खोया भ्रम, तम आर्य्यधर्म ही शुभ बतलाया।
मत वादी जिस से न विजय कोई भी पाया,
जिसने सब का युक्ति वाद से, पक्ष गिराया।
कवि कर्ण प्रेम के साथ उस दयानन्द ऋषि राज के,
गुण गाओ, बनकर वेग ही सेवक आर्य्यसमाज के॥ १॥

जिस ने देशोद्धार किया, शुभ नाम कमाया,
बोया हित का बीज, अहित को मार भगाया।
रखना जिसने मेल मिलाप सप्रेम सिखाया,
चीत सभी का भला, काम कर खूब दिखाया।
कवि कर्ण कभी भूलो न उस दयानन्द देवेश को।
फैला दो अब सर्वत्र ही उसके शुभ आदेश को॥ २॥

जिन पर हमने खूब ईंट-पत्थर बरसाये,
अज्ञ दशा में परख ही न जिसको हम पाये।
जिस ने तो भी हमें प्रेम का पाठ पढ़ाया;
शुचि साहित्य प्रदान किया, निज मान्य बढ़ाया।
कवि कर्म अधिक उत्साह से उस नरेन्द्र पर रीझिए,
वह अमर हुआ, उसको कभी, चित्त से भुला न दीजिए ॥३॥
हमें दयानन्दर्षि जो न उपदेश सुनाते;
जो वह, हित के साथ, चेत हम को न कराते।
जो वह कर वेदार्थ न वैदिक तत्व सिखाते,
तो हम अपने में न आज वैदिकता पाते।
कविकर्म उन्होंने सत्य का, पक्ष सदा ही तो लिया।
अन्त समय लों जो काम भी किया भला ही तो किया ॥ ४॥

—○:०:○—

ऋषि दयानन्द का गौरव।

(श्री० पं० भीमसेन शर्मा शास्त्री)

जो महा पुरुष, अपने उच्च गुणों के कारण स्वपक्ष में अनन्य साधारण गौरव स्थापित करते चले आए हैं, उन महा पुरुषों में ऋषि दयानन्द की गणना करना सर्वथा समुचित है।

स्वामी जी की जीवन लीला हमें शिक्षा देती है कि बिना किसी भेद भाव के देशोद्धार और धर्म प्रचार को अपना लक्ष्य बनाओ।

सच पूछो तो इन दो बातों में वे बहुत से पूर्वकालीन आचार्यों से बढ़ गये हैं, यह अत्युक्ति नहीं किन्तु यथार्थ है। अथवा यों कहना चाहिये कि इन दोनों बातों में वैसी बहुत से पूर्वाचार्यों की मति गति हुई ही नहीं। इस बात को सामयिक व्यवस्था स्पष्ट बतला रही है।

अपनी सद्युक्ति और विचित्र बुद्धिमत्ता से जो परिष्कृत मार्ग उ-

न्होंने प्राणिमात्र को बताया है वैसा शायद् किसी ने ही बताया हो। हिन्दू जाति (आर्य जाति) से उनका घनिष्ट संबन्ध रहा है । इस लिये आर्य जाति यदि विचार दृष्टि से काम लेगी तो उसे मानना पड़ेगा कि यह सनातन धर्मियोंमें यत् किंचित् ज्योति और जागृति जो कुछ दिखाई देती है उसकी तह मे ऋषि दयानन्द का तपो बल भी काम कर रहा है।

संगठन शक्ति के भी वे परमाचार्य्य थे परन्तु उनका सिद्धान्त था कि "धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः,, अर्थात् चाहे व्यक्ति हो या समिष्टि यदि उनमे धर्म है तो वही धर्म भाव उसका रक्षक होगा । यदि धर्म का अनादर किया गया तो वही नाशक होगा ।

दीपावली के दिवस उनके अन्तरात्मा ने स्वर्ग की राह बड़ी प्रसन्नता पूर्वक ली है इसका कोई दुःख नहीं परन्तु उनकी संस्थापित आर्य्यसमाज के कुछेक लोग प्रायः विवेक से काम नहीं लेते यही दुःख है। ऐसी मेरी बुद्धि है—मैं समझता हूं वह अमात्मिका नहीं है। आचार्य के गौरव की—आचार्य के सिद्धान्तों की रक्षा का भार उनके परवर्त्ती योग्य व्यक्तियों पर हुआ करता है वैसी योग्य व्यक्तियाँ स्वतः भी उत्पन्न होती हैं और बनाई भी जा सकती है ।

हमें आशा रखनी चाहिये कि जैसे२ आर्यसमाज मे विद्वत्ता बढ़ती जायगी वैसे २ ऋषि दयानन्द का गौरव प्रकटित हो जायगा ।

———:o:———

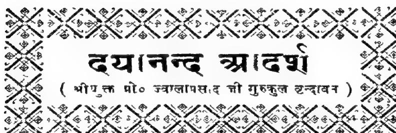
महर्षेः प्रशस्तिः

(श्रीयुक्त ब्रह्मचारी द्विजेन्द्र जी गुरुकुल—वृन्दावन)

श्रीमन् यशो महर्षे र्भवता सदैव गेयम् ।
मुनिनोपदिष्टममृतं—सुहृदा मुदैव पेयम् ॥१॥
नितरां मुदां विधानं, कमलासना निधानं,
दमि सद्गिरां प्रधानं, शुभशिक्षणं न हेयम् ॥२॥
याऽभदमुष्यरीतिः क्रियता हि सैवनीतिः ।
नंदात्ययेऽपि भीति—स्फुरणं न तत्र धेयम् ॥३॥
द्ययातुलं तिमिस्रं, दलितं दिशाम जस्रं ।

महसाप्यलं सहस्रं किमु भास्वतां प्रमेयम् ॥४॥
रम्यायदीय शक्ति-र्निगमागमानु रक्तिः ।
स्वच्छन्द देश भक्ति-र्विमलश्च भागधेयम् ॥५॥
तीरेस वेद सिन्धो. परमेश्वरैक बन्धुः ।
सं थाय सत्य सन्धः कृतवान् न किं विधेयम् ॥६॥
सारस्वतं तपस्वी—श्रुति विन्महामनस्वी ।
रसयन् रसं यशस्वी—विततार योऽप्रमेयम् ॥७॥
प्रभुरस्तु कोविशालं—गातु सुकीर्तिजालं—
ब.धोऽस्तिमेतुना.ं—किकिमदात्रगेयम् ॥८॥
धर्म्ममती निधाय—प्रभुमग्रगं विधाय ।
कर्म्माखिलं विहाय— श्रौतं सदाविधेयम् ॥९॥

———:०:———



यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्त देवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥ (भगवद्गीता)

अर्थात् जिस २ प्रकार श्रेष्ठ पुरुष आचरण करते हैं उस ही प्रकार अन्य लोग भी उनका अनुकरण करते हैं कि कतिपय शान्तिमय तथा प्रकाशयुक्त रश्मियों से तृप्त होकर अपने को कृत कृत्य माने ।

मानसिक जागृति ।

शिवरात्रि का पर्व है, शैव कुलोत्पन्न बालक मूल श ंर अपने पिता की आज्ञानुसार व्रती बना शिव के मन्दिर में अन्य उपवासियों के व्रत विरुद्ध सो जाने पर भी जाग रहा है । वह देखता है कि वही शिव की प्रतिमा जिसको लोग ईश्वर माने हुवे थे एक क्षुद्र जन्तु (मूषिका) से तिरस्कृत की जा रही है । मन मूर्ति के प्रति शङ्कित होता है, पिता को बालक जगाता है शङ्का को प्रस्तुत करता है, समाधान नहीं होता, अब दयानन्द शङ्कित होकर प्रतिमा

दुजन और बन एक क्षण भी नहीं कर सकता घर जाकर कुछ भोजन करके सो जाता हैं और इसके आगे पठन पाठन में लग जाता है।

वस्तुतः जागने वाले ही और उन में भी वह जिनमें मानसिक जागृति हो, वस्तु का यथार्थ बोध कर सकते हैं, असंख्य मनुष्य नित्य प्रति वस्तुओं को ऊपर से गिरते देखते है. प्रत्येक भोजनपाकी भोजन पकाते समय बटलोई के ढकन को भाप से उठता हुआ देखता है और कितने मन्दिरों में जाने वाले कभी न कभी यह दृश्य नहीं देखते कि चूहा कुत्ता आदि क्षुद्र जन्तु मूर्तियों का तिरस्कार करते हैं परन्तु अपनी मानसिक जागृति के प्रताप से केवल न्यूटन (Neuton) प्रथमवार एक सेव के गिरने से भूमि आकर्षण नियम (Law of Gravitation) को विचार निकालता है। केवल जोन वाट्स (John Watts) बटलोई के ढकन को भाप से उठाता हुआ देख वाष्पयान (Steam-engine) का आविष्कार करता है, और केवल हमारा बालक मूलशंकर शिव-प्रतिमा को एक मूषिका से तिरस्कृत देख मूर्ति पूजा में शंकित होता है और सच्चे महादेव की खोज में तत्पर होकर अपने और संसार के भावी जीवन की आधार शिला का स्थापन करता है।

पाठको ! आइये हम इन महानुभाव से मानसिक जागृति का पाठ सीखें। प्रयत्न करें तब ही हमारा और हमारे देश का कल्याण हो सकता है।

दृढ़ संकल्प।

उपरोक्त घटना के दो वर्ष पश्चात् हमारे शंकर की छोटी बहन की मृत्यु का समय आता है, परिवार के लोग शोकातुर होकर रोते हैं परन्तु हमारे शंकर अपने स्वभावानुकूल मृत्यु के विचित्र दृश्य को देख कर विचार सागर में मग्न हो स्तब्ध हो जाते है। कुछ काल पश्चात् चाचा की मृत्यु हमारे शंकर को और भी विरक्त कर देती है, और अब वह मृत्यु पर विजय पाने का दृढ संकल्प करते हैं। एतदर्थ और विद्या की प्राप्ति के लिये वह घर छोड़ना चाहते हैं। किन्तु माता पिता उन्हें विवाह पाश में बांध कर घर ही रखना चाहते हैं। परन्तु दृढ़ संकल्प के सामने कौन से बन्धन ठहर सकते है। हमारे ब्रह्मचारी घर को छोड ही देते हैं। और शुद्ध चेतन ब्रह्मचारी बनते हैं और एक बार पिता के हाथ आजाने पर भी फिर वह आगे हुये सोतों के अधिकार से निकल जाते हैं। क्यो न हो (Where there is a will there is the way) अर्थात् दृढ़ संकल्प होना चाहिये बडी से बडी कठिनाइयां होते हुये भी मार्ग साफ हो जाता है। जिस प्रकार महात्मा बुद्ध को उन का राज्य और महात्मा शंकर को उनकी प्रिय माता वन के दृढ संकल्प से विचलित न कर सकी उस ही प्रकार हमारे मूल शंकर को भी दृढ़ संकल्पी होते हुये कौन डिगा सकता था ? कोई नहीं। कुछ काल कोई अपने दृढ़ संकल्प के प्रताप से शुद्ध चेतन ब्रह्मचारी जिन को गृहस्थी बनना था दीक्षित होकर स्वामी दयानन्द सरस्वती बन जाते हैं और तृप्त योग की जिज्ञासा से नाना प्रकार के कष्ट सहते हुये भ्रमण करते फिरते हैं। अहा ! ब्रह्म जिज्ञासा और दृढ संकल्प !

हम में से कितने केवल व्यर्थ लज्जा शंका भय और मोह के कारण छोटे २ कामों के करने में भी असमर्थ रहते हैं। क्या हम अपने नव युवक मूल शंकर से कुछ शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते ? ।

आज्ञा पालन और धैर्य्य ।

आज्ञाहि गुरुणाम विचारणीया (उत्तर चरित)

अर्थात् गुरु की आज्ञा पालन करने में किसी प्रकार का सकोच न होना चाहिये।

हमारे स्वामी दयानन्द विद्या अध्ययन और योगाभ्यास करते स्थान २ पर घूमते फिरते हैं। उन्होंने अपने भ्रमण में सुना कि मथुरा में एक प्रज्ञाचक्षु सन्यासी स्वामी विरजानन्द जी व्याकरण के अद्वितीय पण्डित हैं। वहां जाते है और उनसे सर्व प्रकार शिष्य भाव से विद्याध्ययन करते हैं। अध्ययन समाप्त होता है और गुरुदक्षिणा में गुरु जी शिष्य स्वामी जी को इस प्रकार आदेश देते हैं कि "वेद और वैदिक धर्म को लोग भूल कर भ्रम और अन्धकार में डूब दुःख उठा रहे हैं जाओ तुम समर्थ हो, वेदों का प्रचार करो वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करो और लोगों को भ्रमान्धकार से निकाल कर प्रकाश में लाओ दुःख से मुक्त कर के सुख के अधिकारी बनाओ"—अहो गुरु की आज्ञा और अहो ! शिष्य और शिष्य की भक्ति ! हमारे दयानन्द गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य्य मानते हैं, और अपने योगानन्द को जो कि एक मर्त्य के लिये परमानन्द हो सकता है, छोड कर संसार के क्षुब्ध सागर में डूबते हुओं को बचाने के लिये अपना बलिदान देना स्वीकार करते हैं। और एकान्त और समाधि को छोड कर स्वामी जीवन संग्राम में प्रविष्ट हो एक सैनिक के कठोर जीवन को व्यतीत करते हैं। यदि प्रतिज्ञापालन में लोग उनके सामने तलवार तक खींच कर प्राण हरण का भय देते अथवा उनको बडे ऐश्वर्य्य का प्रलोभन देते हैं तो वे सब निरर्थक होते हैं। न भय और नही लोभ उनको अपनी प्रतिज्ञा से तनिक भी विचलित करने के लिये समर्थ है,—ठीक है "लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम, अद्यैव वा मरणमस्तु वा युगान्तरे वा, न्याय्यात् पथ प्रविचलन्ति पद न धीरा " धीर और वीर पुरुष ऐसे ही हुआ करते हैं। हमारे दयानन्द, नहीं अब महर्षि दयानन्द को विरोधियों से ईंटें और गालियां, और कभी २ विष मिलता है, परन्तु यह व्रती अपने व्रत में मस्त हैं, दृढ़ हैं प्रसन्न हैं यह होगा लोगों को छुडाने आये हैं न कि कैद कराने अन्तत समय आता है कि जोधपुर में इन हृदयवत्स सच्चे संशोधक को अन्तिम विष का प्याला मिलता है जो कि केवल इन के ज्योतिर्मय जीवन को अधिक ही प्रकाशयुक्त बनाता है।

ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।

उपरोक्त विष प्रयोग शरीर में कष्ट बढ़ता हुआ आता ऋषि के अवशिष्ट तप को पूरा करा रहा है। उनके धैर्य्य और आत्मिक बल का पूर्ण परिचय दिखाने के लिये कसौटी का काम दे रहा है। जोधपुर से स्वामी जी आबू और आबू से अजमेर पहुंचते हैं। रोग बढ़ता ही जाता है परन्तु स्वामी जी की शान्ति और उनके साहस का तनिक भी ह्रास देखने में नहीं आता। डाक्टर उनके धैर्य्य को देखकर चकित हैं।

सन्ध्या के छ बजे हैं दिवाली का दिन और १९४० विक्रमी है लोकोपकारी ऋषि दयानन्द मृत्यु शैय्या पर विराजमान हैं। दूर २ से आये हुये आर्य्य पुरुष स्वामी जी के पीछे खडे हैं। स्वामी जी सब द्वार और खिडकियां खोलने की आज्ञा देते हैं। इनके खुल जाने पर वह प्रथम कुछ वेद मन्त्रों का पाठ करते हैं, तत्पश्चात् ईश्वरोपासना और फिर गायत्री मंत्र का पाठ करने लगते हैं, तत्पश्चात् कुछ देर समाधि युक्त होकर नयन खोल यों कहते हैं "हे द-

चाहत्य ! हे सर्व शक्तिमान् ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है ! तेरी यही इच्छा है ! तेरी इच्छा पूर्ण हो ! अहा ! तेने अच्छी लीला की,,—यह कह हमारे यती करवट लेते हैं और एक प्रकार श्वास को रोक एक बार ही निकाल देते हैं। अहो योगी दयानन्द और तेरी मृत्यु अद्भुत ! क्यों न हो, जिसका जीवन ज्योतिमय हो उसकी मृत्यु ज्योतिमय क्यों न हो। ईश्वर ! सामर्थ्य दीजिये कि हम भी इस प्रकाशमय जीवन-स्तम्भ से कान्तमय रश्मियों को अपने शरीर और आत्मा में धारण कर सकें, हम भी अपने जीवन को किञ्चित् प्रकाशयुक्त बना सकें !

भक्त की भावना।

(लेखक—एक भक्त)

क्यों मन ऐसो होत अधीर—
परमपिता जो जग प्रतिपालक उन कों तेरी पीर
कर्म वीर बन अरे बावरे ! या जीवन रन माहि—
अपने आप बँध्यो बन्धन में ज्यों पिञ्जर में कीर।
जगत जगत तेरे सोवन को अब यह अवसर नाहि—
हंस-बुद्धि सों विलग करहु मिल छिन अन हित पयनीर।
है उद्देश आत्मशासन तब देखि हृदय के बीच—
जग के जाने तू गरीब है वैसें सांचो मीर।
कि कर्तव्य विमूढ़ चेत हत फस्यो मोह की कीच—
करि विश्वास सत्य करुणामय अवसि हरहि तब भीर।

नक्षत्र।

(श्री० पं० ठाकुर प्रसाद शर्म्मा)

निशा हुई थी; पथिक पंथ भूले थे बन में।
शत्रु खड़े थे उन्हें अकेला देख विजन में॥
उदित हुआ उस समय एक नक्षत्र गगन में।
धूम्रकेतु कुछ पथिक उसे समझे निज मन में॥
पर मार्ग-प्रदर्शक वह बना, हुआ चकित यह जग सभी।
वह अस्त हुआ तो भी प्रभा, न्यून नहीं होगी कभी॥

———:o———

ऋषि दयानन्द और संगठन

(लेखक श्री बा० [illegible]थमल जी अभिलाषा आर्यमित्र)

ऋषि ने जहां अन्य बातों की शिक्षा दी वहां संगठन की ओर भी लोगों के ध्यान आकर्षित किये। समाजों की स्थापना संगठन के सिद्धान्तों पर ही हुई है। स्वामी जी स्वयं भी संगठन का बड़ा आदर करते रहे। वे सन्यासी थे परन्तु संगठन के विरुद्ध कार्य्य करने के कदापि पक्ष में न थे। सन् १८८१ में लाहोर में स्वामी जी महाराज से वहां के समाज की अन्तरंग सभा मे सम्मिलित होने के लिये प्रार्थना की गई परन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नही किया और कहा कि मैं आपके समाज का नियमानुसार सभासद् नही अतः संगठन की दृष्टि से उस मे सम्मिलित नहीं हो सकता परन्तु आज दुःख से देखा जाता है कि कतिपय आर्य्यसज्जन ऋषि की आज्ञाओं को उल्लंघन कर संगठन के विरोधी बने हुये है। ये लोग अपनी ढाई चावल की खिचड़ी पकाने में ही सब कुछ समझते है। संगठन के विरोध का नाम उन्होने "स्वतन्त्रता,, रख छोड़ा है। जब हम किसी उपदेशक या भजनीक को अपने लिये 'स्वतन्त्र, कहते सुनते हैं तो हमें बड़ी हंसी आती है और साथ ही दुःख भी होता है कि देखो ये लोग संगठन का निरादर करने में कितनी स्वेच्छाचारिता और उच्छृंखलता दिखा रहे हैं। यदि मुंह मांगी फ़ीस फटकार कर मनमानी माया रचनेका नाम ही "स्वतन्त्रता, या संगठन शक्ति का समादर करना है तब तो फिर समस्त सुसंगठित संस्थायें बन्द कर देनी चाहियें। उनकी कोई आवश्यकता नही। यही बात स्वतन्त्र संस्थाओं के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। इन के द्वारा भी सर्वसाधारण का धन नष्ट करने में कमी नहीं की जा रही।

लम्बे चौड़े लेख निकलने और घोर आन्दोलन होने पर भी स्वतन्त्र उपदेशक भजनीक और संस्थाओं की सृष्टि नित नई रची जा रही है। इसका क्या कारण है ? केवल व्यक्तिगत लाभ। यदि आर्य्यपुरुष इस बात को पसन्द करते है कि वह अपनी

गाढ़ी कमाई के धनको बिना सोचे समझे "स्वतन्त्र,, महाशय और संस्थाओं के हवाले कर उसका दुरुपयोग करें तो उनकी इच्छा। और यदि इस स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध हैं तो क्य नहीं ऐसी संस्था और प्रचारकों से अपना सम्बन्ध दूर कर लेते जिससे जहां उनके द्रव्य और शक्ति का अन्य उपयोगी कार्यों में सदुपयोग हो वहां वे संगठन का महत्व भी समझें और इस प्रकार ऋषि की आज्ञा पालन करने मे समर्थ हों।

आर्यमित्र सभा आगरा के उत्सव की खुशी में ३० नौम्बर सन् १९ तक मूल्य घटा दिया

१ उपनिषत्सारम्

-इस पुस्तक में सम्पूर्ण उपनिषदों के मुख्य २ विषयों की विशद व्याख्या की गई है। साथ ही मूल मन्त्र भी दे दिये गये हैं। वास्तव में इस पुस्तक को उपनिषदों की कुंजी कहना चाहिये मूल्य १ रियायती ॥)

२ भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास

इस पुस्तक में ईसाई, मूसाई, मुहम्मदी, पारसी, जैन, बौद्ध बाम इत्यादि मतों पर चर्चा करते हुए वैदिक धर्म का ऐतिहासिक निरीक्षण किया गया है। इसके पढ़ने से हम आर्य भारत का ऐतिहासिक महत्व म त्रों के सम्मुख झूलने लगता है। मूल्य ॥) रियायती ।≈)

३ आर्यमत-मार्तंड नाटक

यह नाटक दो भागों में समाप्त हुआ है यह मनोरञ्जक और हास्यरस से पूर्ण है। इस में अवैदिक मतों की पोल बड़ी खूबी से खोली गई है। साथ ही आर्य धर्म का प्रकाश संसार को दिखलाया गया है। नाटक एक बार पढ़ते ही बनता है। मूल्य दोनों भागों का ॥≈) रियायती ।≈)

४ कलावती उपन्यास

यह उपन्यास पढ़ने में बहुत ही रोचक तथा साथ ही उपदेशप्रद भी है इसे स्त्री पुरुष दोनों बड़े आनन्द से पढ़ सकते हैं। अनेक प्रकार के व्यावहारिक उपदेश इसमें सहज ही होते हैं जरूर देखिये। मू० ।~) रियायती ≈)

५ यवन-मतसमीक्षा

विषय नाम ही से प्रकट है। मुहम्मदी मत की पोल बुद्धि पूर्वक खोली गई है तर्क और प्रमाण से पूरा २ काम लिया गया है। देखने लायक किताब है मू० ≈) रियायती ≠)

६ काव्य-प्रदीपिका

क्या आप कविता करने के नियम जानना चाहते हैं? अच्छा तो इस पुस्तक को जरूर देखिये। आप को काव्यविज्ञान का पूरा २ ज्ञान हो जायगा। मू० ≠) रियायती ≠)

७ पंचयज्ञविधि

इसमें आर्यों के नित्यकर्म पञ्चयज्ञ विधि की व्याख्या सहित दी है। पाखण्ड महायज्ञों का वैज्ञानिक स्वरूप प्रकट किया है। मू० ≈) रियायती ~)॥

८ प्रायश्चित्तादर्श

वेद शास्त्रों के प्रमाणों से प्रायश्चित का निर्णय किया गया है। इस पुस्तक की आजकल बड़ी आवश्यकता है। मू० ।) यि० ≈)

६ यथार्थबोधक

वेदोपनिषद इत्यादिक आधार पर परमात्मा और जीवआत्मा का वर्णन आवागमन का सिद्धान्त, सनातन-धर्म तीर्थयात्रा और ब्राह्मणों के गुणों दोषों का वर्णन है। सब विषयों का यथार्थ बोध कराने वाला है। मू० ≈) रियायती –)॥

१० नीतिशतक

महाराज भर्तृहरि का नीतिशतक सरल अर्थ सहित बहुतही उपदेशप्रद मूल्य सिर्फ ≈) रियायती)॥।

११ संस्कृत पुस्तकम्

पहला और तीसरा भाग प०जीवाराम जी की रची हुई बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई हैं मूल्य दोनों भागों का ।)॥ रियायती ≈)

१२ नरनशियाला

मद द्रव्यों का निषेध प्रमाणपूर्वक किया है। और भी अनेक धर्म की बातें बतलाई हैं। मूल्य ।) रियायती ≈)

१३ नानककी जीवननी

निश्चय से पूज्य गुरू की यह जीवनी अवश्य एक बार आपको पढ़जाना चाहिये मूल्य)॥ रियायती)।

१४ जैनमत के उत्पत्तिकाल का निर्णय

ऐतिहासिक दृष्टि से ध्यान करने योग्य है। मूल्य)।

१५ वर्ण-शिक्षावली और देवनागरी वर्ण परिचय

ये दोनों पुस्तकें बच्चों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई हैं। मू०)॥ रियायती)।

१६ शब्दार्थावली

इस से बच्चे अनेक कठिन शब्दों के अर्थ सहज हो जान लेंगे। मू० एक पैसा, १)सैकड़ा

१७ हिन्दी..... ग्रामर

अंगरेजी और उर्दू में, अंगरेजी पढनेवालेबच्चों के काम की चीज है। मू० ≈) रिया० –)

१८ पंचयज्ञपद्धति छोटी एक पैसा

धनियों को चाहिये कि इसकी सैकड़ों कापियां खरीदकर धर्मार्थ बांट दें। १) रु० सैकड़ा।

१९ आर्यसमाज के नियम

चार आना सैकड़ा। धर्मार्थ बाँटने के लिये उपयोगी। सभासदों के फार्म ।≈) सैकड़ा

स्वामी दर्शनानन्द जी की अमूल्य पुस्तकें

१ वेदों का महत्व

युक्ति तर्क और प्रमाणों से सिद्ध किया गया है। कीमत ≈)॥ रियायती –)

२ महा अन्धेररात्रि

गत शताब्दी के भारत के अज्ञानान्धकार का वर्णन आर्य्यसमाज के द्वाराउद्धार मूल्य)॥ रियायती)।

३ सृष्टिप्रवाह से अनादि है

स्वा० दर्शनानन्द जी की चमत्कारिणी लेखनी का चातुर्य। मूल्य)॥

४ ऋग्वेद के पहले मंत्र की

५ व्याख्या

वैज्ञानिक और आध्यात्मिक की दृश्य देखने योग्य है। मूल्य)॥ रियायती)।

६ ईसाई विद्वानों से प्रश्न

अब अ देखिये मूल्य)।

७ अविद्या के तीन अंग

अविद्या से बचने और विद्या प्राप्त करने के उपाय स्वामी जी ने युक्ति से बतलाये हैं। मूल्य -) रियायती)॥

८ तत्ववेत्ता ऋषि की कथा

षट्दर्शनों का क्या बड़ा विद्वत्ता और मनोरञ्जक से सिद्ध किया है। मूल्य =) रिया० -)

९ सांख्यदर्शन

यह स्वामी दर्शनानन्द की साख्यदर्शन भाष्य अन्य सब भाष्यों से बढ़कर है स्वामी जी ने प्रत्येक सूत्र के अन्दर पैठकर उसका रहस्य समझाया है। मू० ।॥) रिया० ॥)

१० मीमांसा दर्शन

उक्त स्वामी जी का सम्पादित किया हुआ बहुत बढ़िया है मू० ॥) रियायती ।)

११ सुश्रुत

यह आयुर्वेद का ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से सम्पादित किया है। अवश्य ग्रन्थ है। मू० २) रियायती १)

१२ जगद् पुरुषार्थ

विधवाओं की हृदय व्यथ की दुर्दशा का दर्शक और उनके उद्धार का उपाय मूल्य -)॥ रियायती -)

अन्य पुस्तकें।

१३ रामगीता

परमात्मा का गुण गान मू०)॥

१४ रामायण

आरण्यकाण्ड और सुन्दरकाण्ड गो० तु० कृ०

पांच पैर की गौ

स्वा० मंगलदेव का प्रसिद्ध ट्रैक्ट धूर्तों की माया का उद्घाटन। मू०)।

१५ विवाह नाटक

शादी में फिजूल खर्चों की बुराइयों का फोटो अवश्य अवलोकन कीजिये दृश्य काव्य है। मू० -) रिया० -) आने।

रूस के मशहूर फिरके हिलिस्टका एक दिलचस्प दूकाना

१६

इस पुस्तक का महत्व नाम ही से प्रकट है नवीन जानकारी। मू० ॥)रियायती ।-)

स्वामी दर्शनानन्द जी के लिखे हुये तथा सम्पादित किये हुये पुस्तक उर्दू में।

१ भगवद्गीता।

भाषा में श्लोक दिये हैं और उर्दू में उनके नीचे तरजुमा दिया है। उर्दू जानने वालों के लिए अध्ययन में बड़ा सुभीता है। मूल्य ।=) रियायती =) आने।

२ न्याय दर्शन।

प्रत्येक मंत्र के नीचे उर्दू में विस्तृत भाष्य। स्वामी जी के भाष्यों की तारीफ चारों ओर हो रही है। मू० ॥=) रियायती ।=)

३ केनोपनिषद्।

संस्कृत में मन्त्र और नीचे उर्दू में भाष्य स्वामी जी ने बड़ी खूबी से मंत्रों के अन्दर की बात निकाल कर समझाई है। मू० ॥=) रियायती ।=) आना।

४ मनोहरलता ।

यह एक बहुत ही शिक्षाप्रद और मनोरंजक उपन्यास पण्डित भगवानप्रसाद जैन का लिखा हुआ और पं० कृपाराम शर्म्मा (स्वा० द० सा०) का संशोधित किया हुआ है। अवश्य पढ़िये। मू० ।॥) रियायती ॥ आने।

५ ईशोपनिषद् ।

स्वामी दर्शनानन्द का भाष्य मनन योग्य है। मू० ।)

६ सांख्यदर्शन ।

न्यायदर्शन का तरह स्वामी जी के इस भाष्य की भी बड़ी तारीफ है। मू० ॥) रियायती ।) आना।

७ ट्रैक्ट उर्दू में ।

महर्षि का प्रकाश मू० तीन पैसे, तहरीक अर्थ की कथा मू० तीन आने, जाति फलसफा निजात मू० ।) शङ्कराचार्य्य और स्वामी दयानन्द मू० एक पैसा, सत्यार्थ का निर्णय, मसला तनासुख मू० एक धर्म और इस्लाम पर नकली नजर एक आर्य्य गुरुकुल १ पैसा श्राद्ध निर्णय स्वा० दयानन्द का उद्देश्य मू० एक पैसा सब आधे दाम पर दी जावेंगी।

समाजों के रोजाना काम में के रजिस्टर आदि।

रसीद बही सजिल्द मू० रजिष्टर रोकड़ १०० पृष्ठ जिल्द मू० १)

रजिष्टर चन्दा सजिल्द पृष्ठ मू० १।)

मैनेजर आर्यभास्कर प्रेस
आगरा,

मिरचून बटी— ज्वर, शीतज्वर, हैजा, बच्चों के दस्त, अतीसार, संग्रहणी, सब उदर रोग, दन्तपीड़ा, निमोनिया, कै, दस्त, खांसी, सर्दी के सब दर्दों और रोगों के लिये रामबाण है। बच्चों की धर्म रक्षा है मूल्य फी शीशी ॥) आना।

नेत्रसञ्जीवनअञ्जन—धुन्ध, जाला, फुल्ली, रतौंध, सुर्खी, दुखती आंख एक चीज का दो दीखना दूर करता है। ज्योति बढ़ाता है। सभी उमरों को परमोपयोगी है। सुरमा सुपेद १॥) तोला सुरमा काला १ तोला ॥) तोला।

सच्चिदानन्द मैनेजिंग प्रोप्राइटर
डी० पी० अग्रवाल ऐण्ड सन्स-लोहामण्डी, आगरा

हमारी दवाइयों की बिक्री को देख लोगो ने नकल करना शुरू कर दिया है। खरीदने से पहिले हमारा नीचे लिखा पता शीशी पर देख कर लीजिये।
बच्चों के प्रसिद्ध डाक्टर मक्खनलाल गुप्त गवर्नमेंट पेंशनर आई० ऐस० ऐम० डी० अलीगढ़ की बनाई हुई।

॥ जन्म घुट्टी ॥



यह घुट्टी १० वर्षों से लाखों बच्चो पर आजमाई हुई है। बच्चों के लिये बड़ी लाभदायक औषधि है। इसके सेवन करने से बदहजमी ऐंठा, दस्त पेट का दर्द कब्ज बुखार, खांसी इत्यादि रोग दूर होते है। बच्चों के दांत भी आसानी से आते हैं। बच्चों के लिये एक ही मात्र दवा है। इस पर भी खास बात यह है कि औटाने छानने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। इस घुट्टी की थोड़ी सी बूंदें माता के दूध या गर्म पानी मे डालने से दो ही मिनट मे घुट्टी तैयार होजाती है।

हमारे पास बहुत से पत्र इसकी प्रशंसा मे उन महाशयो से आते रहते है जिन्होने अपने प्यारे बच्चों के लिये इसे मंगाकर आजमाया और लाभदायक पाया है। एक दफा आप भी आजमाइये। नोटिस की सचाई और दवाई की भलाई आप पर विदित हो जायगी।

कीमत

१ शीशी ॥) एक दर्जन ५।) ६ शीशी २॥।) दो दर्जन १०)

पसली क्योर—(सफूफ)—जिस की परीक्षा हजारों बच्चो पर पसली चलने मर्ज में की गई है और जिसने इस प्राण घातक रोग से हजारों बच्चो को बचाया है कीमत की मात्रा १) पहिले से मंगा कर रख लीजिये जिस से समय पड़े पर काम आवे।

मैनेजर—जन्मघुट्टी कार्य्यालय नं० ३ अलीगढ़ सिटी।

वार्षिक मू० ३॥)

इस अंक का मूल्य ।=)

ओ३म्

आर्यमित्र

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे । यजुः०

तमसो मा ज्योतिर्गमय

ऋष्यंक

कार्तिक १९९८ वि०

संपादक—भगवान्प्रसाद बी० ए० ।

सह० सपादक—आर्येन्द्र शर्मा शास्त्री वेदशिरोमणि।

इस अङ्क के विशेष संपादक—आचार्य श्री पं० बृहस्पति शास्त्री वेदशिरोमणि।

विषय-सूची



आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द



आर्यमित्र

ऋष्यंक

वर्ष ४४ | दीपावली दयानन्दाब्द ११७ | अङ्क ३९, ४०

* कल्याणी देव-सुमति *

ओ३म् देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां,
देवाना ᳬ रातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवाना ᳬ सख्यमुपसेदिमा वयं,
देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥

देवों की कल्याणी सुमति ऋजुता के साथ अग्रसर हो। देवों की समृद्धि हमको प्राप्त हो। देवों के साथ हम सख्यभाव प्राप्त करें। देव महान्-जीवन के लिए हमारी आयु की वृद्धि करें।

वंदनीय वेद

[कवि-सम्राट् श्री पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय]



सकल ज्ञान विज्ञान विलोचन के हैं तारे।
हैं विभूति अनुभूति आदि के दिव्य सहारे।
भूतल के सब पंथ मतों के हैं अवलम्बन।
हैं तम पुंज दिनेश ताप उपताप निकन्दन।
विज्ञात उसे विधि के सहित भव के सारे भेद हैं।
सब सार्वभौम सिद्धान्त के आदि प्रवर्त्तक वेद हैं। १।
मानवता का मूल सदा शयता का मन्दर।
सदाचार कमनीय स्वर्ग का पूज्य पुरन्दर।
भव सभ्यता विभाव दिव्यता का कल केतन।
लोक शान्ति का संतुभव्य भावना निकेतन।
नायक है सकल सुनीति का नैतिक बल का है जनक।
है वह पारस जिसको परस लोहा बनता है कनक। २।
सर्व भूत हित महामंत्र का सकल प्रचारक।
सद्भाव से एक एक जन का उपकारक।
सत्य—मूर्त्ति बन विश्व बंधुता का अनुरागी।
सकल सिद्धि सर्वस्व सर्वगत कटुता त्यागी।
उसकी विचार धारा धरा के धर्मों मे है वही।
बंदित विवेक बहु विमल मति के धाता हैं वेद ही। ३।
है उसमे वह भूति जो असुर को सुर करदे।
है उसमे वह शान्ति श्रेय जो भव में भर दे।
है उसमे वह शक्ति पतित को भूत बनाये।
है उसमे वह कान्ति रजकणों को चमकाये।
जिससे अमनुजता असमता सब दिन रहती है डरी।
वैदिक उदार तम वृत्ति मे वह उदारता है भरी। ४।
संजीवन रस को पिला समझा जीवन भेद।
करे सर्वदा सुधामय वसुधातल को वेद॥ ५॥

* अथर्ववेद में वर्णित स्वर्ग *

[ले०—श्री नारायण स्वामी जी महाराज]



[इस लेख में श्री स्वामी जी महाराज ने अथर्ववेद में वर्णित स्वर्ग का स्वरूप अति सुन्दरता से दर्शाया है। —सम्पादक]



अथर्व वेद के चौथे काण्ड के ३४ वें सूक्त में स्वर्ग का वर्णन बतलाया जाता है। जिन मन्त्रों से स्वर्ग की बात कही जाती है वे ये हैं —

अनस्थाः पूता पवनेन शुद्धा शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्। नैषा शिश्नं प्रदहति जातवेदा स्वर्गे लोके बहुस्त्रैणमेषाम्॥

एष यज्ञानां विततो बहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमाविवेश। आण्डीकं कुमुदं संतनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उपत्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणी समन्ता॥ घृतह्रदा मधुकूला सुरोदका क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना। एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वा स्वर्गे मधुमत् पिन्वमाना उपत्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥ (मंत्र २, ५, ६)

(१) पहले मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है कि (अनस्थाः) विकार रहित (पवनेन शुद्ध शुचयः) पवन=प्राणायाम से शुद्ध पवित्र (शुचं लोकम् अपि, यन्ति) निर्मल बने हुये शुद्ध लोक को प्राप्त होते हैं (जात वेदा.) अग्नि-ईश्वर (एषां, शिश्नं, न, प्रदहति) इनके कर्मेन्द्रियों को नष्ट नहीं करता है (स्वर्गे लोके, एषाम्, बहु स्त्रैणम्) स्वर्ग लोक में इनको बहुत सुख साधन (प्राप्त होता है)।

(२) दूसरे मन्त्र में विवादास्पदांश शब्दों के अर्थ ये हैं—(एषः यज्ञानाम्, वितत.) यह यज्ञों में फैला हुआ (बहिष्ठ) बहु—इष्ठन् बहुत श्रेष्ठ पुरुष (विष्टारिणम्, पक्त्वा, दिवम्, आविवेश) बड़े विस्तार वाले परमात्मा के (हृदय में) पक्का दृढ़ करके प्रकाश स्वरूप परमात्मा में प्रविष्ट हुआ है।

नोट—पं० सातवलेकर जी ने 'विष्टारिणम्' शब्द को विष्टारी यज्ञ परक लगाया है।

(३) तीसरे मन्त्र के अन्त में वर्णित है कि (एताः, सर्वाः, धाराः,) ये सब धारें या धारण शक्तियाँ (स्वर्गे लोके) स्वर्ग लोक में (मधुमत्) मधुमय (त्वा, पिन्वमाना.) तुझ को सींचती हुई (उपयन्तु) आदर से मिलें और (समन्ताः) सम्पूर्ण (पुष्करिणीः) पोषण वती शक्तियाँ (त्वा तिष्ठन्तु) तुझ में ठहरें। मन्त्र के प्रारम्भ में जिस के लिये वे सब शब्द अन्त में प्रयुक्त हुये हैं, उनका विवरण इस प्रकार है —

(घृत ह्रदाः) प्रकाश की ध्वनि वाली (मधुकूलः) मधुज्ञान रक्षणी (सुरोदकाः) जल सिंचन करनेवाली (क्षीरेण) भोजन साधन से (उद्रकेन) सेचन साधन से (दध्ना) धारणा पोषण सामर्थ्य से (पूर्णा) पूर्ण। इन मन्त्रों के इसी प्रकार के या इनसे मिलते जुलते अर्थ प्रायः किये जाया करते हैं परन्तु कुछ एक पश्चिमी लेखकों और उनका अनुकरण करने वाले कतिपय देशी विद्वानों ने भी इनके अर्थ इस प्रकार किये हैं कि स्वर्ग मे, घृत, मधु, सुरा, क्षीर दूध, जल और दही से पूर्ण धारायें बहती हैं और

मनुष्य वहां जाकर अपनी इन्द्रियों से बहुत सी स्त्रियों का सुख भोग करता है। और यह भी कहा जाता है कि मुसलमानों और पुराण—कारों ने इन्हीं मन्त्रों के आधार पर अपने अपने वहिश्त और स्वर्ग की कल्पना की है और यह भी कि वेद मन्त्र मे आये वहिष्ठ ' शब्द ही से फारसी का बहिश्त शब्द बनाया गया है—ऐसा अर्थ करने वाले एक मौलिक नियम को, जो प्राचीन भाषाओं के अर्थ करने के लिये प्रयुक्त हुआ करता है, भूल जाते हैं, और यह नियम यह है कि प्राचीन ग्रन्थों का अर्थ तत्कालीन साहित्य और उसमें प्रचलित अर्थों के आधार ही पर किया जाया करता है—इसी नियम के आधार पर वेदों का अर्थ वैदिक साहित्य निरुक्त निघंटु और ब्राह्मणादि ग्रन्थों की सहायता ही से करना चाहिए न कि प्रचलित शब्दार्थ के आधार पर। यदि क्लिष्ट कल्पना के तौर पर जो अर्थ आधुनिक विद्वान् करते हैं यदि उसी को स्वीकार कर लिया जावे तब भी कुछ हानि नहीं है—वेद मे स्वर्ग शब्द पितृ लोक के लिए प्रयुक्त हुआ करता है। पितृ लोक वा स्वर्ग मे जाना, यह मृत्यु के बाद प्राणियों की दूसरी जाति है। इस गति को प्राप्त प्राणी आवागमन से बाहर नहीं होते, किन्तु उसी चक्र मे रहते हैं अन्तर केवल यह है कि मनुष्य योनि मे उत्पन्न तो होते हैं परन्तु वे मनुष्य होते हैं जिन्हें देव कहते हैं और जिन्हें लेश मात्र भी दुख नहीं भोगना पडता इसलिये मनुष्य योनि मे उत्पन्न होकर यदि कोई स्वर्गाधिकार मधु घृत दुग्धादि का बहुतायत से इस्तेमाल करता आया। गृहस्थ के सुख का भी उपभोग करता तो इसमें आश्चर्य या अपवाद की कौन सी बात है ? इस पर दो आक्षेप हो सकते हैं (१) सुरापान—मंत्र मे आया सुरा शब्द शराब के लिये नहीं हो सकता इसलिये कि वेद नशों के पीने का



श्री महात्मा नारायण स्वामीजी

असंदिग्ध शब्दों में, अनेक जगह, प्रतिवाद करते हैं। आज कल के कोषों मे भी सुरा शब्द के अर्थ जल या पान पात्र के भी किये गये हैं फिर सुरा शब्द के अर्थ यहां मद्य नहीं हो सकते (२) दूसरे मंत्र में स्वर्ग गामियों के लिये "अनस्थाः" शब्द प्रयुक्त हुआ है जिसके अर्थ अस्थि (हड्डी) रहित के हैं फिर उन्हें मामूली मनुष्य योनि मे उत्पन्न किस प्रकार कहा जा सकता है। इसका उत्तर यह है कि अनस्थाः शब्द का अर्थ "विकार रहित है। अनस्थाः के स्थान पर इसीलिये कई विद्वान् विदेह या विदेहां लिखा करते हैं। विदेह का अर्थ यह नहीं है कि शरीर नही किन्तु शरीर के सबंध से जो विकार उत्पन्न होते हैं उससे रहित होना अभिप्रेत हुआ करता है। जनक को विदेह कहने का भी यही भाव है। इसके सिवा अस्थि या अस्थ शब्द के अर्थ फल की गुठली (The kernal or stone of a fruit) के भी हैं। इसका भी तात्पर्य, जहां तक फलों के भाज्य होने का संबंध है, निकम्मी और त्याज्य वस्तु ही के हैं। इसीलिये दोनो आक्षेप, इस प्रकार, निवारण हो जाते हैं।

दूसरे मत्र मे आया शिश्न शब्द कर्मेन्द्रियो के लिये उपलक्षण के तौर पर प्रयुक्त हुआ है। कर्मेन्द्रियो का सबंध केवल स्थूल शरीर से होता है। अत मत्र का भाव स्पष्ट है कि इस दूसरी गति को प्राप्त प्राणी, कर्मेन्द्रिय या स्थूल शरीर सहित होते हैं। मंत्र में आये घृत, दूध, दही शब्द आदि शब्द भी, यही प्रकट करते हैं कि इनके उपभोग के लिये स्थूल शरीर का होना अनिवार्य्य है। इसके सिवा शतपथ ब्राह्मण में एक जगह यही बात स्पष्ट शब्दों मे लिख भी दी गई है —

सहे सर्वतनूरेव यजमानोऽमुष्मिल्लोके सम्भवति ॥
श० ४।६।१।१

अर्थात् यह यजमान समस्त शरीर के साथ उस अगले (स्वर्ग) लोक मे उत्पन्न होता है।

यहां साफ तौर से कह दिया गया है कि दूसरे (स्वर्ग) लोक मे "सर्वतनूरेव" सम्पूर्ण शरीर के साथ यजमान उत्पन्न होता है। इससे साफ जाहिर है कि स्वर्ग लोक में भी प्राणी इसी प्रकार उत्पन्न होते है जैसे इस (पृथिवी) लोकमे। यदि यह ठीक है कि पुराणों और कुरानियों ने अपने अपने कल्पित स्वर्गो का विचार अथर्व वेद मे वर्णित स्वर्ग के उपर्युक्त विवरण ही से लिया है तो उन्होंने नकल करने मे एक गलती की और वह गलती यह हुई कि उन्होंने अपने अपने स्वर्गों को मोक्ष स्थान ठहराया जबकि वेद में वह आवागमन के अन्तर्गत ही एक विशेष (मनुष्य) योनी मे उत्पन्न होने की अवस्था है और उससे मोक्ष प्राप्ति का कोई सबध नही है; मुक्ति उससे सर्वथा भिन्न वस्तु है।

वेद की मान्यता

वेद अर्थात् जो२ वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है, उस २ का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं। जिस लिये वेद हमको मान्य हैं इसलिये हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष आर्यों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिये।

[स० प्र० समु० ३]

ऋषि दयानन्द और वर्तमान आर्यसमाज

[लेखक—श्री स्वामी केवलानन्द जी सरस्वती]

[प्रस्तुत लेख में मर्मज्ञ लेखक ने वर्तमान आर्यसमाज की परिस्थिति का अवलोकन कराते हुये महर्षि के ध्येय के अनुसार प्रचार—कार्य कराने का सकेत किया है।—सम्पादक]



प्रात. स्मरणीय ऋषि दयानन्द की मनोभावना, तथा उसे कार्य रूप में परिणत करने के उपायों का ठीक पता लगाना हो तो उनकी ग्रन्थावली एव चरित्र-घटनाओं से भली भांति लगा सकते हैं। यहा पर इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि ऋषि दयानन्द, संसार में प्रचलित नाना मत मतान्तरों को वैदिक मार्ग मे लाकर, मानव-मण्डल को, धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रूपी फल-चतुष्टय की प्राप्ति कराना चाहते थे। जिससे परस्पर के राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि दुर्गण दूर करके नर नारी परम शान्ति का अनुभव करने लगें तथा वैदिक सभ्यता से सम्पन्न हो जांय, जिससे फिर एक वार सामाजिक संगठन का कमनीय रूप संसार में स्थापित हो सके।

वर्तमान आर्यसमाज की प्रचार-पद्धति में प्रदर्शन बहुत बढ़ गया है, जिसके कारण विद्वानों का समय तथा जनता का धन भी अधिकांश मे व्यर्थ व्यय हो रहा है। हमारा आधुनिक प्रचार का प्रकार एक व्यसन की सीमा तक पहुँच चुका है। अतएव इस ओर विशेष ध्यान देना विचारशील विद्वानों का काम है। जिस वर्ष जो मन्त्री और प्रधान बन जाते हैं, वे अधिक से अधिक उत्सव की शोभा बढ़ाने की लालसा मे लग जाते हैं। धुआँधार व्याख्यान और भजन होते हैं। तीन चार दिन की चहल पहल में सारा बल खर्च हो जाता है फिर एक साल तक निश्चिन्त होकर सो जाते हैं। उपदेशक, सन्यासी तथा भजनीक केवल जनता को खरी खरी बातें सुनाने के लिये बुलाये जाते हैं अपने लिये नहीं। इस प्रकार की बहिर्मुखी वृत्ति को बदले बिना आर्यसमाज का कल्याण नहीं हो सकता। क्योंकि जबतक विश्वास व्यवहार के रूप में तथा विचार आचार के रूप मे एवं भावना कर्त्तव्य के रूप में परिणत होकर एक दूसरे में चरितार्थ नहीं होते तबतक कोई भी समाज अपनी स्थिति को कायम नहीं रख सकता। वर्त्तमान समाज मन्दिरों में कुछ एक को छोड़कर बहुतों की ऐसी हालत है कि कुछ कहते नहीं बनता। यदि कन्या पाठशाला हो तो ठहरने तक को जगह नहीं और यदि पाठशाला न हो तो ताला भी कभी कभी खुलता है। मैं एक दिन एक समाज में प्रचारार्थ गया। स्टेशन से कुली साथ लिया। समाज का ताला बन्द था। पासके एक दुकानदार ने कहा कि मुंशी जी के घर जाइये। कुली तग होने लगा। मैंने कुछ और पैसे देने को कहा। प्रधान जी ने कहा कि बाजार में एक डाक्टर रहते हैं, वहां चावी मिलेगी आप चले जॉय। वहॉ गये, उन्होंने कहा—समाज की चावी एक पण्डित जी के पास रहती है। फिर हम उनके घर गये। उन्होंने आकर ताला खोल दिया, देखा तो समाज मन्दिर में धूल और जालों का ठिकाना कुछ नहीं। मुझे करीब एक घण्टा सफाई करने मे लगा। रात्रि को कथा हुई दिन में भोजन की बात भी नहीं पूछी। क्या इसी-

लिये समाज—मन्दिर बनाये गये थे? यदि प्रातः सायं आर्य सज्जन समाज मन्दिर मे आते जाते रहें तो ऐसी हालत नहीं हो सकती।

प्रचारार्थ भ्रमण करने वाले व्यक्तियों के साथ न मालूम इस प्रकार की कितनी घटना घटती रहती हैं। यह सब हमारी उदासीनता तथा कर्त्तव्य हीनता की द्योतक नहीं तो और क्या है? वर्त्तमान आर्यसमाज में अश्रद्धावृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इसका कारण स्वाध्याय की कमी तथा अनुष्ठेयांश की ओर ध्यान न देना ही है। मेरी इन पंक्तियों का अन्यथा-भाव निकालना एक प्रकार का अन्याय होगा। मेरा भाव यह नहीं कि आर्य समाज में सभी इस प्रकार के नर-नारी हैं अपितु मैं यह चाहता हूं कि इस समाज में कोई भी व्यक्ति कर्त्तव्य हीन न हो। जिन समाजों में कुछ कर्त्तव्य-परायण श्रद्धालु सज्जन हैं वहां का कार्य भी अच्छा है, परन्तु अधिकांश में सुधार की परम आवश्यकता है। जो बातें हम दूसरों के लिये कहते हैं उन्हें अपने अन्दर भी उतारने का प्रयत्न होना चाहिए तभी आर्य नाम सार्थक हो सकता है। किसी विद्वान् ने कहा है—

कर्त्तव्यमाचरन् नित्य मकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे यः सआर्य इति स्मृतः॥

वास्तव में देखा जाय तो आर्यसमाज संसार की आंख है और आंख मे पड़ी हुई छोटी सी कंकरी सह्य नहीं होती। कहां तक कहे। यदि दिन का भूला भटका सायंकाल घर आजाय तो ठीक है। अभी समय है। आर्यसमाज को अपनी कमी को दूर करने में उद्योगशील होना चाहिये। यही इस लघु-काय लेख का सारांश है। यदि वर्त्तमान प्रगति में परिवर्त्तन न किया गया तो हानि की सम्भावना है। अन्त में यही कहना है—

बाल ब्रह्मचारी के विशाल भाल मन्दिर में,
भावना जगी थी भव्य आर्यसमाज की।
तन, मन धन, तप, तेज सब वार दिये,
कामना करी न कभी जग-सुख-साज की॥
विश्व—उपकार की विराट—योजना बनाय,
आर्यों के हाथ बाग सौंप गये काज की।
"केवल" ऋषी की भव्य भावना को भूल गये,
पद-लालसा में फंसे देखे। दशा आज की॥

आर्यसमाज के वर्त्तमान अधिकारी वर्ग को निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है—

(१) उत्सव साधारण व्यय-साध्य सादगी से होना चाहिये।

(२) प्रत्येक जिले में एक उपदेशक तथा एक योग्य भजनीक रहे।

(३) वर्ष में एक बार स्थान परिवर्त्तन के साथ जिला-आर्य-सम्मेलन अवश्य होना चाहिये। उसमे उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा अपने सिद्धांत की पुष्टि में विचार पूर्ण व्याख्यान कराने चाहिये।

(४) समाज के अधिकारी वे ही सज्जन बनाये जायें, जो कर्मकाण्डी तथा स्वाध्यायशील हो। चन्दे की चकाचौंध से बचना चाहिये।

(५) जहां तक हो सके कथाओं द्वारा वर्ष में दो तीन बार प्रचार अत्युत्तम है।

(६) उपदेशक तथा भजनीक वे ही रक्खे जायें जो व्यसन-विमुक्त तथा सुयोग्य हो। प्रचार का ढंग उनकी इच्छा पर निर्भर होना चाहिये।

(७) शहरों की अपेक्षा ग्रामों में प्रचार अधिक हो। प्यासे को पानी मिलना चाहिए, अन्य को नहीं।

(८) सन्यासियों को केवल वेदिका की शोभा के लिये हो न बुलाकर उनके सत्संग से प्रत्येक आर्य को लाभ उठाना चाहिये।

(९) जो समाजें प्रतिनिधि-सभा का आदेश न न मानें, उन्हे पृथक् कर देना उचित है।

किमधिकं मतिमत्सु

मोक्ष के साधन

[लेखक—श्रीस्वामी स्वतन्त्रदानन्द जी]

[समुपस्थित लेख में विद्वान् लेखक ने मोक्षोपयोगी साधनों के विषय में अच्छा प्रकाश डाला है। लेख पठनीय एवं मननीय है। —सम्पादक]



मोक्ष के साधन तीन माने जाते हैं, कर्म, ज्ञान, कर्म ज्ञान उभय। उभयवाद भी क्रम-समुच्चय और सम-समुच्चय भेद से दो प्रकार का है।

कर्मवादी कहते हैं—कर्म करने से उसका फल मिलता है। उस फल में ज्ञान की आवश्यकता नहीं। यदि कोई पुरुष बिना जाने अग्नि में हाथ डाले तो उसका हाथ जल जाता है, जान कर डाले तो भी जल जाता है। ज्ञान, अज्ञान से जलने में अंतर नहीं आता है। इसी प्रकार मोक्ष प्राप्ति के लिए विहित कर्म करने चाहिए, ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। वेद भी यही उपदेश देता है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
यजु ०॥

इस मन्त्र में बताया गया है कि कर्म करते हुए सौ साल जीने की अभिलाषा का यही मार्ग है और दूसरा कोई नहीं है। इससे कर्म पुरुष में न लगेंगे। मोक्ष का यही मार्ग है, दूसरा नहीं है। अत कर्तव्य-कर्म करने से ही मोक्ष होगा।

दूसरा पक्ष है ज्ञान से ही मोक्ष होता है, कर्म से नहीं। कर्म अन्तःकरण की शुद्धि के हेतु हो सकता है मोक्ष-हेतु नहीं। रज्जु-आरोपित सर्प किसी कर्म से दूर नहीं होता है, वह रज्जु ज्ञान से ही दूर होगा। वेद भी ऐसा ही आदेश देता है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पंथाः विद्यते अय-नाय॥ यजुः०॥

उस महान पुरुष को, जो ज्ञान स्वरूप, अज्ञान रहित है, जानकर ही मृत्यु से छूट सकता है। मोक्ष के लिए अन्य मार्ग नहीं है और सांख्यदर्शन में 'ज्ञानान्मुक्तिः' का उल्लेख है।

इससे सिद्ध है कि मोक्ष के लिए ज्ञान संपादन करना चाहिये। इसीलिए उपनिषद् में लिखा है—

'नास्त्यकृत कृतेन' मुण्डक।

अकृत, परमात्मा कृतेन कर्म करने से नहीं मिलता, मोक्ष ज्ञान से ही होता है।

कर्म ज्ञान समुच्चय वादियों में जो क्रम-समुच्चय वादी हैं उनका कथन है कि निषिद्ध कर्म सर्वथा छोड़ दे, नित्य कर्म नित्य करता रहे। निमित्त आने पर नैमित्तिक कर्म भी कर ले। यदि कोई निषिद्ध कर्म किसी समय हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त उसी समय करले और इस सम्भावना से कि संभव है पिछले जन्मों के कोई संचित निषिद्ध कर्म हों, उनके लिए साधारण प्रायश्चित्त करता रहे। यदि निषिद्ध होंगे तो उनका प्रायश्चित्त हो जायगा, यदि न होंगे तो विहित-कर्म होने से पुण्य रूप हो जायंगे।

ये कर्म उस समय तक करता रहे जब तक ज्ञान न हो जाय। इन कर्मों से अन्तःकरण की शुद्धि होकर गुरुसंग से ज्ञान हो जायगा। जब ज्ञान हो जाय तब कर्म छोड़ दे। जिस प्रकार वनस्पति में पुष्प

फल के लिए है। फल आते ही पुष्प का अभाव हो जाता है। इसी प्रकार ज्ञान होने से कर्म त्याज्य है और वेद भी अकेले कर्म और अकेले ज्ञान का निषेध करता है। यथा —

अँध-तम प्रविशति ये अविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते, तमो, य उविद्यायां, रता ॥
यजु० ४० ॥

वह पुरुष जो अविद्या अर्थात् कर्म उपासना में रत है अधतम को प्राप्त होता है और जो केवल विद्या अर्थात् ज्ञान में रत है वह उससे भी अधिक अंधकार को प्राप्त होता है। इसलिए ज्ञान कर्म उभय करने चाहिए परन्तु क्रम से अर्थात् प्रथम ज्ञान प्राप्ति तक कर्म करना चाहिये और ज्ञान प्राप्ति होने पर कर्म छोड़ देना चाहिये क्योंकि कर्म ज्ञान के लिए है और ज्ञान मोक्ष के लिए है। महर्षि दयानन्द जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास के आरंभ में यह मंत्र लिख कर विद्या अविद्या शब्द का ज्ञान और कर्म उपासना ही अर्थ किया है। आर्य समाज सम समुच्चयवादी है। यह कर्म में भी ज्ञान की आवश्यकता मानता है और ज्ञान बिना कर्म कुछ नहीं है।



[श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी]

प्रत्येक कर्म, प्रत्येक समय में, प्रत्येक व्यक्ति के लिए धर्म नहीं हो सकता। अतः यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि किस समय क्या करना चाहिये। इसीलिए गीता में लिखा है कि किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः। महाभारत में इस विषय पर अनेक कथायें लिखी हैं और ज्ञानी को कर्म किये बिना कुछ नहीं मिलता छान्दोग्य उपनिषद् के सप्तम प्रपाठक में सनत्कुमार जी ने नारद को कहा है।

बलंवाद विज्ञानाद् भूयोऽपि ह शतविज्ञानवतामेको बलवाना कम्पयते।

बल विज्ञान से बड़ा है। सौ ज्ञानियों को एक बलवान कंपाता है।

इस प्रकार दोनों की आवश्यकता है। वह भी समकाल में होने चाहिये। भिन्न २ काल में नहीं पुस्तकों में तथा वेद में ऐसे ही लिखा मिलता है यथा—

मौक्षोहित्रिविधानिष्ठा दृष्टन्यैर्मोक्ष वित्तमैं वद तेके ज्ञान लाकोत्तर रच सव त्यागश्च कर्मणाम् ज्ञाननिष्ठा वदत्येके मोक्ष शास्त्रविदोजनाः। कर्मनिष्ठा तथैवा ये यतय सूक्ष्म दार्शन ॥ प्रहायोभयमप्येव ज्ञान कर्मंच कवलम्। तृतीयेय समाख्याता निष्ठा तेनमहात्मना ॥

महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ३२० में मोक्ष के साधन में तीन प्रकार की निष्ठा कही गई है। कई एक ज्ञान

को ही साधन मानते हैं और कई एक कर्म को ही साधन बतलाते हैं परंतु मुझे तो केवल ज्ञान, केवल कर्म को छोड़कर तीसरी निष्ठा ही महात्मा ने बतलाई है अर्थात् सम—समुच्चयवादः—

यथाश्वा रथहीनाश्च रथाश्च श्वैर्विना यथा।
एवं तपश्च विद्या च उभावपि तपस्विन॥
यथाऽन्नं मधुसंयुक्तं मधु चान्नेन संयुतम्।
एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं महत्॥
द्वाभ्यामेव हि पक्षाभ्यां यथावै पक्षिणो गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्॥
हारीत स्मृति ७, ६, ११.

जैसे अश्व रथ रहित और रथ अश्व बिना ठीक नहीं इसी प्रकार तप (कर्म) ज्ञान पृथक् ठीक नहीं है। जैसे अन्न मिष्ट युक्त और मिष्ट अन्न में मिला अच्छा होता है उसी प्रकार तप और ज्ञान मिले हुए ही भेषज हैं। जैसे पक्षी यदि दोनों पक्ष हों तो उड़ सकता है वैसे ही ज्ञान कर्म दोनों से ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

वेदांतसूत्र भी इसमें सहमत हैं:—

विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि। वेदांत ३ ४ ३२

इस का विषय वाक्य 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन, तपसाऽनाशकेन।
बृ० ४. ४. २२

आश्रमविहित कर्म करने चाहियें।

सहकारित्वेन च। ३ ४. ३३।

अग्नि होत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ।४ १.१६

आश्रम कर्म, अग्नि होत्रादि सहकारी कर्म कर्तव्य हैं। ज्ञानी को भी करने चाहियें। वेद बांचने से ब्राह्मण यज्ञ, दान, तपस्या से ज्ञानकी इच्छा करते हैं। इन वचनों से यही सिद्ध होता है, कि ज्ञान कर्म का सम-समुच्चयवाद है। यही आदेश वेद का है—

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ यजु:०॥

जो विद्या (ज्ञान) अविद्या (कर्मोपासना) दोनों को साथ २ करता है वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमृत को प्राप्त करता है।

इस वेद मंत्र में 'उभय सह' पाठ है जिसके अर्थ सम- समुच्चय से भिन्न कुछ हो ही नहीं सकते हैं।

यही मोक्ष का स्वरूप है। दुःख की निवृत्ति और आनन्द की प्राप्ति यही वेद ने मृत्यु और अमृत शब्द से प्रकट किया है।

अतः महर्षि दयानन्द का सिद्धान्त सम समुच्चयवाद वेद तथा शास्त्रानुकूल है। केवल कर्म अथवा, केवल ज्ञान और कर्म समुच्चयवाद त्याज्य हैं।

[वेद का निर्वाचन]

विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्या यैर्येषु वा तथाविदितश्च भवन्ति ते वेदाः

ऋ० भा० भू० पृ० १०।

* तैय्यारी *

[ले०—श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० प्रधान आ० प्र० सभा यू० पी०]



[प्रस्तुत लेख मे विद्वान् लेखक ने सिद्ध किया है कि अन्य राष्ट्रों की उन्नति एवं उद्योग शीलता को देखकर आर्यसमाज को सम्यक् प्रकोरण कार्य क्षेत्र में प्रगति का संचार करने के लिये पूर्ण तैय्यारी करनी चाहिये। —सम्पादक]



पिछले महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी प्रायः नष्ट ही हो चुका था। परन्तु हिटलर ने तैयारी आरंभ की और इस विचित्र चातुर्य से काम लिया कि थोड़े ही दिनों में जर्मनी में लाखों यंत्र तैयार हो गये। जर्मनी इस समय कोई बन्द देश नहीं था जहाँ यूरोप के अन्य देशों के लोग जा न सकते हों। परन्तु अंग्रेजों को भी बहुत दिनो तक यह पता नहीं चला कि जर्मनी इतना प्रबल हो गया है। "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।" जब सब स्वप्न की नींद सो रहे थे उस समय जर्मन कारखाने गुप्त रीति का अवलम्बन करते हुये चुपचाप यंत्र बनाने मे संलग्न थे। हिटलर ने कितनी तैयारी की और किस प्रकार की इसका विस्तृत वृत्तान्त चर्चिल महोदय से पूछिये। युद्ध का परिणाम कुछ भी हो, हिटलर की तैयारी संसार के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगी और प्रत्येक सजग व्यक्ति या समाज को इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

तैयारी के तीन अंग हैं:—पहला उद्देश्य का निश्चित निर्धारण, दूसरा उचितरीति का बुद्धि पूर्वक अवलम्बन, तीसरा समय पड़ने तक सम्पादन का अभिगोपन, चौथा शक्ति का नियंत्रण और मितव्यय।

ऋष्यङ्क में इस बात का उल्लेख करने का एक मात्र प्रयोजन यह है कि आर्यसमाज के कार्य को इसी कसौटी से देखा जाय।

यों तो मैं मानता हूं कि आर्यसमाज दिन प्रति दिन उन्नति कर रहा है परन्तु मुझे कोई नियत या नियमित तैयारी दिखाई नहीं पड़ती। सच तो यह है कि ऊपर दी हुई चारों बातों में से एक भी ठीक नहीं उतरती। हमारी हजारों संस्थायें चल रही हैं। परन्तु उद्देश्य निर्दिष्ट नहीं, न रीति निर्दिष्ट है। हमारे समस्त कार्य उत्तेजना पर चल रहे हैं। उत्तेजना अभिगुप्त रह ही नहीं सकती। हमको प्रत्येक कार्य के लिये एक वाह्यरूप देना पड़ता है। हम चुपचाप कार्य कर ही नहीं सकते। हम को शक्ति बढ़ाना आता ही नहीं। इसमें संदेह नहीं कि हैदराबाद सत्याग्रह में हमने अपनी शक्ति का चमत्कार दिखा दिया, परन्तु उसके पश्चात् हमारी ओर से कोई ऐसा कार्य नहीं किया जारहा कि जिस को तैय्यारी कह सकें।

मेरी समझ में आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् मुसलमानों ने बहुत तैयारियाँ की हैं। उनकी कई अच्छी संस्थायें हैं, जिनके विषय में लोगों को कुछ नहीं मालूम। वे सैकड़ों कुरान के विद्वान् उत्पन्न कर चुके हैं जो अन्य धर्मों के विषय में भी अच्छा ज्ञान रखते हैं। खाकसार संस्था कितनी चुपचाप

आरम्भ हुई । और कितने चुपचाप वह जोर पकड़ गई। क्या आर्यसमाज के व्यक्ति भी कहीं कोई तैयारी कर रहे हैं ? चाहे वह आत्मिक हो, चाहे शारीरिक, चाहे आर्थिक और चाहे सामाजिक। प्रत्येक कार्य व्याख्यान देकर या ढोल बजाकर तो नहीं होता। स्वामी दयानन्द भी उस समय तक संसार के सामने नहीं आये जब तक उन्होने आर्यसमाज निर्जीव होगया। बात यह है कि आर्य सामाजिको ने तैयारी के महत्त्व को समझा ही नहीं। हमको याद रखना चाहिये कि गंगोत्री से निकलने के पूर्व गगा सैकड़ों मील भूमि के नीचे बह चुकती है। तभी इस योग्य होती है कि सैकड़ो मील लम्बे मैदान को सींच सके। हमारी सब संस्थाये उत्तेजना के बल पर चल रही हैं। उनमे नैरन्तर्य नही। उनको



आप का नाम इस वर्ष हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रधान पद के लिए प्रस्तावित हुआ है।

विशेष तैयारी न करली। उनके ५८ वर्ष के जीवन मे केवल दस बारह वर्ष ही सर्व ज्ञात जीवन के है। शेष मे तो उनको चुप ही तैयारी करनी पड़ी। परन्तु मैं देखता हूँ कि आर्यों को जगाने के लिए ढोल बजाने की आवश्यकता है। अन्यथा यह सोने लगते है और कहना आरंभ कर देते हैं कि अब जीवित रखने के लिये कोई जोश दिलाने वाली चीज चाहिये, जिसे अंग्रेजी मे 'थ्रिल' कहते है। हम इजेक्शन के बल पर जी रहे हैं। मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। क्या यह परिस्थिति विचार करने योग्य है ?

राष्ट्रोद्धारक दयानन्द

[ले०—राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री न्यायभूषण प्रधान, भा० आ० कु० परिषद्]



[उपस्थित लेख मे लेखक महोदय ने स्वामी दयानन्द राष्ट्रोद्धारक थे इस बात का प्रतिपादन किया है। एवं बताया है कि महर्षि के ग्रन्थो में राष्ट्रीयता के भाव प्रचुरतया भरे पडे है। —सम्पादक]



नर्बदा नदी के निकट नन्दननगर मे मन्दमति और विमल विचार नामक दो मित्र रहते थे। प्रतिदिन सायं समय भ्रमण करने के लिए एक साथ ही जाया करते थे। एक दिन अपने अपने निकेतन से निकल जब चतुष्पथ पर पहुँचे तो देखा कि नगर निवासी अनेक नर नारी नर्बदा नदी के तट की ओर जा रहे हैं। मन्दमति ने मन मे सोचा कि इधर न थियेटर है, न सिनेमा है, न कोई मेला है और न आज कोई पुण्य पर्व है पुन इधर क्यों ये जन जा रहे हैं। जब इस प्रकार के ऊहापोह में अधिक समय समाप्त हो गया और स्वीय स्वान्त में सत्-समाधान समुपलब्ध न हुआ तो विमल विचार से पूछा। उसने उत्तर मे कहा कि नर्वदा नदी के निकट एक साधु-स्वभाव पुरातन पुरुष रहते हैं। सामान्यतया प्रतिदिन और विशेषतया पूर्णमासी को अनेक नर नारी उनके समीप समुपस्थित हो सदुपदेश श्रवणकर क्लान्त ग्लान मन का सर्वत शान्त करने में समर्थ होते हैं। अभी कुछ अधिक कहना ही चाहता था कि मन्दमति बीच मे ही कहने लगा कि मुझे आर्यसमाज स बहुत घृणा हो गई है। ये लोग भी पौराणिकों के समान ही धर्म धुरीण है, ऐसा प्रतीत होता है कि इनको इनके नेता ने राष्ट्रोद्धार का पाठ ही नहीं पढ़ाया है।

विमल विचार—नहीं नहीं, ऐसा न कहो क्योंकि सब से प्रथम भारतीय जन मन मे राष्ट्रोद्धार की भावना भरने वाले इन्हीं के नेता महर्षि दयानन्द जी महाराज ही है।

मन्दमति नहीं नहीं, तुम्हारा परिज्ञान प्रचुर परिमित प्रतीत होता है क्योंकि राष्ट्रोद्धार की भावना भरने का कार्य तो जातीय महासभा "कॉग्रेस" ने किया है।

विमल विचार—मेरा परिज्ञान प्रचुर परिमित है अथवा आपका है, इसका निर्णय किसी अन्यपुरुष से कराना चाहिए। चलो, चलकर पुरातन पुरुष से पूछ।

मन्दमति—यदि आपने कुछ परिचय प्राप्त किया हो तो आप ही सुनादे।

विमल विचार—भारत के भाग्य भानु भगवान् देव दयानन्द ज महाराज ने भारतीय जन जीवन मे राष्ट्रोद्धार, राष्ट्रीय एकता राजनीति की आकांक्षा, और स्वराज्य सकल्प की प्रचुर प्रशस्त भावना भरने का उस समय प्रयत्न किया था जब कि महासभा कांग्रेस का जात कर्म संस्कार भी सपन्न नहीं हुआ था, शासन सुधारकों ने स्वराज्य स्वप्न भी नहीं देखा था, स्वाराज्य और स्वायत्तशासन सार को समझने का अल्पमपि प्रयत्न नहीं किया था, उस समय भारत का राष्ट्र—नव शिशु समान था, अपने आप को राज, नीत में निपुण समझने वाले सज्जन उसको संभालने में समर्थ हीं थे।

मन्दमति—मैं आपके उन व्याख्यान बवन्डर को श्रवण करने के लिए प्रस्तुत नहीं हूँ। यदि आपके कथन की पुष्टि में कोई प्रशस्त प्रमाण हो तो उसको प्रस्तुत करने का प्रयास करें।

विमल विचार—चलो, पुरातन पुरुष के पास चलें, वे ही सबके लिए प्रशस्त प्रमाण हैं।

पुरातन पुरुष के पास पहुँच, चरण स्पर्श कर और नमस्ते कहकर समीप में बैठ गये। विमल ने अपना पूर्व कथित अविकल सकल वृत्त उनके समक्ष व्यक्त कर पूछा कि महाराज! मेरे कथन में कुछ भी सत्यांश है या नहीं?

पुरातन पुरुष-विमल! आपके कथन में सत्य का अंश ही नहीं अपितु आपका कथन अविकल सकल सत्य का सार है।

मन्दमति-महाराज! आपका केवल, कथन मात्र ही प्रचुर प्रशस्त प्रमाण है अथवा प्रमाणान्तर भी प्रस्तुत कर सकते हैं?

पुरातन पुरुष—आपको कैसा प्रमाण प्रभूत पसन्द होगा?

मन्दमति—आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानंद जी महाराज का भी इस सम्बन्ध में सम्मति समुपस्थित कर सकते हैं? उन्होंने कहीं कुछ लिखा भी है?

पुरातन पुरुष—जी हां, लिखा है और अल्प नहीं अपितु अत्यधिक लिखा है।

मन्दमति—कहाँ क्या लिखा है?

पुरातन पुरुष ने सजिल्द सुन्दर पुस्तक लेकर पढना प्रारम्भ—यह कहते हुए—कर दिया कि सन् १९०६ में दादा भाई नौरोजी ने "स्वराज्य" का उच्चारण किया था और सन् १९१६ की लखनऊ कांग्रेस में "स्वराज्य जन्मसिद्ध अधिकार है" यह घोषणा की थी। सन् १९२८ में लाहौर कांग्रेस ने 'पूर्ण स्वराज्य' की घोषणा की किन्तु इन घोषणाओं से प्रभूत पूर्व ही महर्षि महाराज ने अपने विमलविचार इस प्रकार व्यक्त कर दिये थे। 'जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है, मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने पराये का पक्षपात शून्य - प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा-न्याय एवं दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।



श्री सुरेन्द्र शास्त्री

देश और देशी नरेशों की दयनीय दशा से दुखित होकर सत्यार्थ प्रकाश में माननीय महाराज ने लिखा है कि "अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों में राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी है, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वा-

धीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है वह विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दैव जब आता है, तब देश वासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी पंच बन बैठता है।

"आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो ही गया परन्तु अबतक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी पीछा छोड़ेगा अथवा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख सागर में डुबो मारेगा, उसी दुष्ट गोत्र हत्यारे स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्ट मार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं"। राष्ट्रपतन के कारण को बताकर ऋषि ने राष्ट्रोद्धार का कारण यह लिखा है "जब तक एक मत, एक हानि-लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है"। 'क्या विना देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में राज्य व व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है'? 'यह आर्यावर्त देश ऐसा है कि जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है इसलिए इस भूमि का नाम स्वर्णभूमि है। क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं। पारसमणि पत्थर सुना जाता है यह बात तो झूठी है परन्तु आर्यावर्त ही सच्चा पारसमणि है कि जिस को लोह रूप दरिद्र विदेशी छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।"

महर्षि के मन में कितनी भारतीय भव्य भावना भरी थी इन पंक्तियों के पढ़ने से प्रकट होता है। पराधीनता पिशाचिनी को पराजित करने के लिए महाराज ने यजुर्वेद अध्याय अड़तीस के चौदहवें मन्त्र के व्याख्यान में कितना स्पष्ट लिखा है—"हे महाराजाधिराज ! परब्रह्म परमात्मन् ! चक्रवर्ति-अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिए नीति, धैर्य, शौर्य, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुण युक्त कृपा से हम लोग यथावत् पुष्ट होवें। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों, तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।"

दीनता-दुर्ग को तोड़ने वाली भावना से भरा हुआ मन्त्र दिन में दो बार स्मृति पथ में आवे इस लिए सन्ध्या में "अदीनाः स्याम शरदः शतम्॥ विनियुक्त कर अर्थ कर दिया कि हम सौ वर्ष की आयु में कभी भी पराधीन न हों और स्वाधीन ही रहें। मन्त्रान्तर के व्याख्यान में भी प्रार्थना रूप में लिखा है कि "आपकी कृपा "स्वराज्य" हम उत्तम सुख को प्राप्त हों, जब तक जीवें तब तक सदा चक्रवर्ती राज्य आदि भोग से सुखी रहें।

भारत भवन को स्वातन्त्र्य सुभूषण से विभूषित करने के लिए महाराज अपना प्रवचन प्रारम्भ करते थे उस समय प्रकृति नटीके प्रेम पाश में पड़े पुरुष, मानवीय मुख्य मन्तव्य के मनन करने में म्लान मन मनुष्य और निराश निद्रा में निमग्न नरों का हृदय-उछलने, उत्साह उमड़ने, साहस बढ़ने, अंग फड़कने और जातीय जीवन का खून खौलने लग जाता था। पुरातन पुरुष का प्रवचन प्रचलित ही था कि घड़ी की टन टन ने दस बजादिये। पुरातन पुरुष ने कहा कि अब शयन-समय समुपस्थित हो गया है अतएव आप सब स्व स्व सदन को जायें। एक बार सब मिलकर बोले "राष्ट्रोद्धारक देव दयानन्द की जय।"

मन्दमति ने मन में प्रभूत पश्चात्ताप कर विमल विचार से पूछा कि मित्र ! स्वामी जी के सद्ग्रन्थों में बहुत ही राष्ट्रीय भव्य भावना भरे भाव विद्यमान हैं। इस सुमन संचय का साहस अब तक किसी ने क्यों नहीं किया ?

विमल विचार—आपने कभी प्रकाशित पुस्तकों के पढ़ने का प्रयत्न भी किया है श्री पं० सत्य देव जी विद्यालंकार सम्पादक हिन्दुस्तान ने "राष्ट्रवादी दयानन्द" नाम की पुस्तक में सुमन संचित कर दिये हैं। इस प्रकार मार्ग में विचार विनिमय करते हुए अपने अपने कमरे में जा विराजे।

शिल्पकारों का वैदिक वर्णव्यवस्था में स्थान

(ले०—रा० ब० श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० रि० चीफ जज टेहरी)

[इस लेख में सुविख्यात लेखक महोदय ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि शिल्पकारों की प्रशंसा में अनेक वेद मन्त्र हैं। हमे शिल्पकारों की अछूतों में गणना नहीं करनी चाहिये। उनकी गणना वैश्य वर्ण में होनी चाहिये।

—सम्पादक]



पर्वतीय प्रदेशों में लुहार, सुनार, कुम्हार, चर्मकार राज, बढ़ई, दर्जी, कोली, जुलाहे आदि सभी शिल्पकारों को नीच समझते हैं और डोम नाम से पुकारते हैं। डोम शब्द वास्तव में ऐसी नीच जातियों के लिए आता है, जो जरायम पेशा (Criminal tribes) वाले हों अर्थात् चोरी आदि का व्यवसाय करते हों, इसलिए बहुत घृणित है। स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी ने सन् १६११ ई० में, जब कि वे कुमाऊँ प्रदेश को गये थे और इन जातियों में सुधार का कार्य किया, इनका नाम शिल्पकार रक्खा। तभी से पर्वतीय जिलों में ये लोग शिल्पकार कहलाते और लिखे जाते हैं। हालमें जिला गढ़वाल और नैनीताल के बहुत से शिल्पकार अपने आपको आर्य कहते और लिखाते हैं।

भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों में भी उपर्युक्त जातियों की गणना शूद्रों में होती है, और उनमें से कुछ अछूत भी समझे जाते हैं।

वास्तव में इन सब जातियों की गणना वैश्यों मे होनी चाहिए। वैश्य शब्द विश् शब्द से बना है जिसका अर्थ प्रजा (Peoples) है। इसके विस्तृत अर्थ के अनुसार चारों वर्ण अर्थात् सारी प्रजा विश् कहलाती है और राजा को वेदों में "विशामपति" कहा है। विश् शब्द के दूसरे अर्थ शूद्रों को छोडकर अन्य तीन वर्णों के हैं। इस शब्द का संकुचित अर्थ ब्राह्मण, क्षत्री और शूद्र को छोडकर केवल वैश्यवर्ण हैं।

ब्राह्मणों की संख्या थोड़ी हो सकती है क्यों कि उनमे केवल अध्यापक, उपदेशक और नेता आदि ही हो सकते हैं। क्षत्रियों की संख्या भी अल्प ही होगी क्यों कि उनमें केवल सिपाही Soldir आदि होंगे। शूद्रों की संख्या भी बहुत अधिक नही होनी चाहिए, उनमें मुख्यतया मजदूर व घरके नौकर आदि Menials होंगे। और सब मनुष्य जिनमें किसान, जिमींदार लेन देन करने वाले, व्यापारी और सब प्रकार के शिल्पी सुनार, लुहार, कुम्हार, तमोटे, चमार कोली जुलाहे, दर्जी, और इसी प्रकार अन्य व्यवसाय करने वाले, शामिल हैं, वैदिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार वैश्य हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् वाहू राजन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यद् वैश्य पद्भ्यामशूद्रो ऽ जायत.॥

इस सुप्रसिद्ध वेदमन्त्र मे मनुष्य समाज का वर्णन विराट् रूपसे एक पुरुष के समान किया गया है इसमें ब्राह्मण शिर स्थानी कहे गये हैं। क्षत्रिय वाहुरूप, शूद्र पादरूप, और की तुलना

(शेष पृष्ठ ७३ पर देखिये)

कारातीर्थ से वेदतीर्थ जी का सन्देश

[ले०—श्री नरदेव शास्त्री, वेद तीर्थ]

[प्रस्तुत लेख के लेखक सम्प्रति जेल में हैं, उन्होंने वहीं से इस लेख को भेजा है; लेख में आपने इस बात को सिद्ध किया है कि पाश्चात्य समाजवाद आध्यात्मिकवाद से शून्य विज्ञानवाद के आश्रित होने के कारण जनता के लिये घातक है। अध्यात्मवाद ही हमारी उन्नति का कारण है। —सम्पादक]



पाश्चात्य समाजवाद अस्वाभाविक समाजवाद हैं। उनके वर्गवाद, साम्यवाद, समाजवाद, राष्ट्रीय समाजवाद, वैज्ञानिक समाजवाद, फैसिस्टवाद सबके सब आध्यात्मिकवाद से शून्य होने के कारण अस्वाभाविक हैं। इसीलिए वे ऋत अर्थात् पारमार्थिक सत्य (Ethic of right and good action) स्वभावानुरूप स्वाधिकार तथा स्वधर्म के तत्व को नहीं जानते। इसलिए पाश्चात्य देशों मे स्वजीवननिर्वाह के लिए इतनी घोर अशान्ति रहती है। पाश्चात्यों के बाद धर्म शून्य विज्ञानवाद के आश्रयीभूत होने के कारण संसार को क्लेश पहुँचा रहे हैं। भारतीय समाजवाद अध्यात्मसूत्र से ओत-प्रोत था इसीलिए इतनी दासता, इतनी पराधीनता इतने परचक्र, इतनी अनर्थ-परम्परा के होते हुए भी श्वास प्रश्वास लेने में समर्थ होरहा है। अब भी इसी अध्यात्मवाद से प्रभावित स्वसंस्कृति के कारण संसार को यथार्थ मार्ग बतलाने की शक्ति रखता है इसका धर्म इसकी संस्कृति, इसका अध्यात्मवाद अब भी इसको "संसार का गुरु" कहला रहा है—

श्री डा० भगवानदास जी ने Science of Self नामक अपनी पुस्तक मे क्या ही अच्छा कहा है।

It is the ancient socialism, which some are convinced, is truly scientific because based on Science of Psychology the most important of all the sciences as is being widly recognised in the West also, now, while modern socialism or communism, which calls itself scientific, fails to be so, because it ignores and even goes positively against some fundamental facts and laws of human nature & therefore will fail to realise its objective and fail exactly in the degree in and to the extent, which it violates those facts and laws

All this world of objects which is named by the word " this " is made of and by the ideation Hence none who knows not the Science of Self can carry action to the fruitful issues. He who knows the inner purpose of the laws of process and its orders, ideated by the self-existent, he alone can rightly ascertain and enjoin the right and duties of the different classes of human beings of their social (Varnas) occupations and vocations and of their Ashrams=stages in life "

इसका अर्थ यह है कि अनेकों का विश्वास है कि प्राचीन समाजवाद ही सच्चे अर्थों में वैज्ञानिक समाजवाद है क्योंकि वह अध्यात्मवाद पर निर्भर है। अध्यात्मवाद सब विज्ञानों मे श्रेष्ठ विज्ञान है पाश्चात्य देशों के विद्वान् भी अब इस बात को

मानने लग गये हैं। पाश्चात्य देशों के वर्तमान समाजवाद मौलिक प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध हैं, मनुष्य स्वभाव से विरुद्ध हैं, इसीलिए असफल हो रहे हैं।

यह भौतिक जगत् जिसको हम "इदम्" (यह) इस नाम से पुकारते हैं या कहते हैं किसी विशिष्ट कल्पना अथवा व्यवस्था पर निर्भर है। इसीलिए जो लोग इसके भीतर ओत-प्रोत अध्यात्मसूत्र को नहीं जानते वे कभी सफल नहीं हो सकते। वे भिन्न भिन्न वर्णों अथवा आश्रमों के यथार्थ कर्तव्यों को भी नहीं जान सकते। भगवान् मनु ने ठीक ही कहा है कि —

"न ह्यनध्यात्मवित् कश्चित् क्रियाफलमपश्नुते"

जो अध्यात्म तत्व नहीं जानता उसकी क्रियाएँ कभी भी सफल नहीं हो सकतीं। यद्यपि आर्यधर्म का, आर्यसंस्कृति का पोषक, धारक, आर्यराज्य अथवा आर्यसाम्राज्य एक सहस्र वर्ष से नहीं रहा तथापि अध्यात्मवाद के आधार पर स्थित वर्णाश्रम धर्म के जो भग्नावशेष अब भी दिखलायी दे रहे हैं उनसे भारत की स्वाभाविक समाजवाद की महत्ता संसार भर को विदित होगई है। इस मानव धर्म को न समझने के कारण ही सब देशों के राष्ट्रों के समाज विस्त-



श्री नरदेव जी शास्त्री, वेद तीर्थ

लित होरहे हैं। उनकी आसुरी-वृत्ति बढ़ रही है। हमारे प्राचीन-तम पूर्वज अपनी परम्परा द्वारा जिस ऋत नामक सत्य का प्रचार तथा प्रसार करते थे उसी का बल पूर्वक प्रचार करना आर्यसमाज का परम कर्तव्य है। स्वामी दयानन्द का अवतर ही इसी ऋत के उद्धार के लिये था। इसी ऋत के प्रचार में उन्होंने अपने प्राण अर्पण किये।

महर्षि-संदेश—



लेखक—
श्री पं० अनूप शर्मा एम्० ए० एल०टी०



(१)

आर्य करो सकल अनार्य जगती तल के,
सब मनुजों को पाठ वैदिक पढ़ाओ क्यों न।
मेट दो कुरीतियाँ सकल पोप-पंथियों की,
अपनी सुमति धर्म-ध्यान मे दृढ़ाओ क्यों न।
भारतीय केन्द्र से 'अनूप' चारों ओर आप,
वृत्त आर्य-माँ का अति विस्तृत बढ़ाओ क्यों न।
करदो नवीन विश्व-क्षेत्र शुद्ध भावना से,
रुड कर्म पै औ' मुंड धर्म पै चढ़ाओ क्यों न।

(२)

जब लौं हिमालय प्रपूत करे योगियों को,
जब लौं प्रशस्त जाह्नवी की लहरी रहे।
तब लौं प्रचार मानवों में वेद-धर्म का हो,
तब लौं सुवृत्ति भावना में गहरी रहे।
और, भवदीय बुद्धि समय-प्रवाह-मध्य,
पुंडरीक - नाल-सी सदैव ठहरी रहे।
छाई रहे चाँदनी तुम्हारे कीर्ति-चंद्रमा की,
आर्य-धर्म प्रेम की पताका फहरी रहे।

(३)

प्रीति हो निगम में, प्रतीति रहे आगम में,
भीति रहे पाप से सुनीति पुण्य-काज हो।
पावे नहीं विजय विधर्म धर्म-भावना पै,
दस्युओं पै सर्वदा तुम्हारा जय-साज हो।
एक ज्ञान-दीपक को तरस रहे हैं लोग,
दीप मालिका में आर्य-साधना का राज हो।
जगमग ज्वलित अमा के गगन स्थल-सा,
आर्य-भाव-योजना से वलित समाज हो।



ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित्र को पढ़ो।

(ले०—श्री प० दीवानचन्द शर्मा एम० ए० प्रधान मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर)



[इस लेख मे विद्वान् लेखक ने बताया है कि मह पुरुषो के जीवन चरित्र का अध्ययन हमारे जीवन मे अद्भुत चमत्कार एवं परिवर्तन कर सकता है। वर्तमान समय मे महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र के अध्ययन से अपरिमेय लाभ हो सकता है। —सम्पादक]



जो लोग ससार के इतिहास को पढ़ते हैं उनको ज्ञात होगा कि अमरीका मे काल रग के बहुत से हबशी आबाद है जिनके साथ आजकल भी वैसा बर्ताव स्कूलो, कालेजो, कचहरियो और पबलिक स्थानों मे नहीं किया जाता है जैसा कि वहा के गोरे रग के लोगो के साथ किया जाता है। कुछ वर्ष गुजरे जबकि अमरीका मे एक बडी भारी खाना गी हुई। जिसका कारण यह था कि आया हबशियों को स्वतत्रता दी जाये या नहीं। इस युद्ध के मौका पर अमरीका की रियासत दो हिस्सों मे बट गई एक हिस्सा वह था जो हबशियों को स्वतत्रता देने के हक मे था और दूसरा वह था जो चाहता था कि इन को हमेशा के लिये गुलाम रखा जाये। हबशियों को आजाद कराने वाले पक्ष का नेता इब्राहीम लिंकन था जो उस समय का प्रधान भी था। उसने बड़ी बुद्धिमता हिम्मत और गम्भीरता से उस प्रश्न को निपटाया और न ही केवल हबशियों को आजादी दिलवाई, अपितु, अमरीका को भी दो हिस्सों में होने से बचा लिया इन दो बातों के कारण इबराहीम लिंकन का नाम अमरीका के इतिहास में एक खास स्थान रखता है। केवल अमरीका के इतिहास मे नही अपितु उसकी गणना ससार भरके बड़े आदमियों मे है। जिस समय यह हबशी लोग आजाद हुए तो इन आजाद हबशियों मे एक बच्चा भी था जिसकी आयु उस समय शायद १३ वर्ष की थी यह बच्चा बढता गया और नौजवान हुआ। इसने अपने आप को तालीम दी परन्तु विद्या ग्रहण करके इसने केवल अपनी ही उन्नति नही की बल्कि इस बात की बडी कोशिश की कि हबशी कौम तरक्की करे। चुनाचे उसने इनके लिये एक बड़ा विद्यालय खोला उस विद्यालय को श्रीमान् ला० लाजपतराय जी ने जबकि वह अमरीका मे थे देखा और इसकी बड़ी प्रशसा की। कुछ समय के पश्चात् उस वीर पुरुष ने अपनी एक जीवनी लिखी। मैंने इस जीवन चरित्र का दो बार अध्ययन के बाद मैंने सोचा कि वह कौन सी बात थी जिसने बुकर टी वाशिंगटन को इस बात के लिये तय्यार किया कि वह अपना जीवन जातीय सेवा मे लगाये। इस पर विचार करने के बाद मै इस नतीजे पर पहुचा कि बुकर टी वाशिंगटन के जीवन मे क्रान्ति लाने वाली दो बातें थीं एक सत् पुरुषों का सत्सग और दूसरा महापुरुषो के जीवनों का अध्ययन। उसने अपनी जीवनी में

एक स्थान पर स्पष्ट लिखा है कि जो कुछ उसने सीखा वह केवल किताबों से ही नही सीखा अपितु महापुरुषों के सत्संग से सीखा है। और इसके साथ ही उसने ऐसे महापुरुषों के जीवनों को पढ़ा जिन्होंने संसार के उपकार के लिये अपनी अपनी जिन्दगियों को न्यौछावर किया। मेरा इस घटना को लिखने का यह तात्पर्य्य है कि हम समझें कि सत्संग और महपुरुषों के जीवन चरित्र को पढ़ने से हमारे अन्दर कैसे २ परिवर्तन आ सकते है।

मैं आम तौर पर देखता हू कि लोगो में स्वाध्याय करने की रुचि है और कई भाई ऐसे भी है जो धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना अपना कर्तव्य समझते है। मैं कई लोगों को देखता हू कि जो अपने महापुरुषों के जीवनो का स्वाध्याय भी करते है परन्तु साधारण रूपसे मुझे यह जान पड़ता है कि हमारे भाई अन्य देशों के महापुरुषों की जीवनियो का पढ़ना ही अपना कर्त्तव्य समझते है जैसे कि हमारे अग्रेज़ी पढ़े लिखे भाई आजकल हिटलर मुसोलिनी लैनिन तथा अन्य विदेशी राजनीतिक नेताओं के जीवन चरित्रों को पढ़ने मे बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। मै यह नहीं कहता कि इन लोगों के जीवनो मे कोई बड़ाई न थी। उनके जीवनों मे बड़ाई अवश्य थी अन्यथा न वे लोग इतने प्रसिद्ध हो होते और नही अपनी जाति तथा देश के रक्षक बनते। परन्तु जहा तक मैंने उनके जीवनों को पढ़ा है मै इस परिणाम पर पहुंचा हूँ कि उन लोगो के मनमे अहंकार तथा क्रोध की मात्रा बहुत अधिक है। हिटलर को ही देखिये। उसके स्वयं लिखित जीवन को जर्मनी में एक धार्मिक पुस्तक का पद दिया जाता है। उसकी पुस्तक को पढ़ने से ही ज्ञात होता है कि संसार में जो कुछ भी है वह हिटलर ही है और जो कुछ वह लिखता है, वह सोलह आने सत्य है, जो मनुष्य उसकी बातों को नही मानते वह निकम्मे और मूर्ख हैं। इसी प्रकार मुसोलिनी के जीवन चरित्र को पढ़कर भी प्राय ऐसे ही विचार मनमे आते हैं। परन्तु मेरे मनमे यदि कोई चरित्र ऐसा है जिसके पाठसे मनुष्य के मनमें सचाई की तड़प चरित्र सगठन की इच्छा जाति तथा देश सेवा की लगन तथा ईश्वर से प्रेम उत्पन्न होता है तो वह ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र है। खेद है कि ऋषि जीवन को वह लोग जो आर्यसमाजी नहीं उस शोक से नही पढ़ते जैसे कि उन्हें पढ़ना चाहिये परन्तु जब कभी मै ऋषि के जीवन वृत्तान्त को पढता हू तो मेरे मन मे सब से पहली भावना यह उत्पन्न होती है कि ऋषि का जीवन ऐसे सांचे मे ढला हुआ था जो वैदिक आदर्श और आर्य सभ्यता का साँचा था। सबसे पहिली शिक्षा जो वैदिक धर्म हमें देता है वह यह है कि हम अपने आपको सर्वांग पूर्ण बनायें। हम अपने आपको शारीरिक मानसिक आत्मिक तथा आध्यात्मिक उन्नति का नमूना बनाये। हमारे शास्त्रों में यह कहीं नहीं लिखा कि हम अपनी शारीरिक उन्नति का ध्यान न रक्खें। न हमारे धर्म मे ही कहीं मानसिक उन्नति पर कुल्हाड़ा चलाया गया। आजकल के देशों को देखिये कि वहाँ शारीरिक उन्नति की परवाह की जाती है परन्तु मानसिक उन्नति पर इतना विचार नही किया जाता आत्मिक तथा अध्यात्मिक उन्नति की तो उनके प्रोग्राम मे गुञ्जायश ही नहीं। परन्तु ऋषि दयानन्द इन चारों प्रकार की उन्नतियों के आदर्श रूप थे। उनकी शारीरिक उन्नति का अनुमान तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि वह जीवन भर ब्रह्मचारी रहे और उन्होंने अपने ब्रह्मचर्य बल को एक बार नहीं कई बार प्रमाणित किया। यह उनके शारीरिक बल का ही तो प्रभाव था कि उन्हें

कई बार विष दिया गया परन्तु वह भी उन पर इतना प्रभाव न कर सका जितना साधारण पुरुषों पर करता है। उनके मानसिक बल का यह हाल था। कि वह केवल शास्त्रों के पेचीदा से पेचीदा सिद्धान्तों को न समझ सकते थे वरन् उनपर लोगों के लिए भी प्रकाश डाल सकते थे। उनका वेद भाष्य उनकी मानसिक शक्ति, योग बल तथा प्रतिभा का ही तो एक अमूल्य उदाहरण था। इस वेद भाष्य की श्लाघा जहाँ श्री अरविन्द घोस जैसे योग्य भारत-वासी ने की है। वहाँ बड़े बड़े विद्वानों ने भी की है। आज कल के जो भी विद्वान् उनके वेद भाष्य को द्वेष की पट्टी उतारकर पढ़ते हैं वह यह मान जाते हैं कि ऋषि दयानन्द की मानसिक शक्ति कितनी प्रबल थी और उनकी बुद्धि कितनी तीव्र तथा दूर-दर्शी थी। इसके साथ ही:—

उनमें आत्मिक बल का चमत्कार था। साधारण तया यह कहा जाता है कि यम तथा नियमों का पालन करने से ही मनुष्य का आत्मिक बल बढ़ता है। ऋषि ने इन यमों तथा नियमों का भली भांति पालन किया था। इसी लिये उनमें नियमता सत्य-प्रेम-सहानुभूति तथा शान्ति थी। सारांश यह है कि उनकी आत्मा का विकास भी बड़ी उच्च कोटि का था। और ऐसा था कि जैसा इस संसार में कम आदमियों को नसीब होता है।

परन्तु सबसे बढ़कर बात उनमें यह थी कि वह अपने आप को सदैव ईश्वर का सेवक समझते थे। सार यह कि उनके जीवन में वह अहकार नहीं था। जो आज कलके राजनैतिक नेताओं में पाया जाता है। इसी लिये ऋषि-जीवन को पढ़ने से मैं यह समझता हूँ कि मनुष्यके मनमें उनके समस्त गुणों को अपने अन्दर धारण करने की इच्छा पैदा होती है अतएव मैं समझता हूँ

कि ऋषिदयानन्द का जीवन हमारे जीवन को उच्च बनाने के लिये एक बहुमूल्य साधन है। यदि कोई मनुष्य ऋषिजीवन का बार २ स्वाध्याय करे, तो मुझे विश्वास है कि उसके मनमें यह इच्छा अवश्य पैदा होगी कि वह अपने शरीर को सुदृढ़ बनाये। वह अपनी मानसिक शक्तियों की उन्नति करे और आत्मिक शक्तियों को चमकाए। उसमे ईश्वर परायणता का अंश बढ़े, और उसमे सेवा की इच्छा अधिक हो। सारॉश यह है कि ऋषि-जीवन को पढ़ने से हमारे मनमें उन सभी गुणों को धारण करने की इच्छा पैदा होगी, जिन गुणों के प्रभाव से हम अपने आपको वास्तव में एक श्रेष्ट पुरुष कह सकते हैं। अतः मैं अपने आर्यभाइयों से प्रार्थना करूंगा कि वह न केवल स्वयम् ही ऋषि-जीवन को पढ़कर उसके अनुकूल आचरण करें, वरन् उन भाइयों तथा मित्रों को भी जो आर्यसमाजी नहीं, हैं यह प्रेरणा करें कि वह भी ऋषिजीवन के स्वाध्याय से लाभ उठावें। मै समझता हू कि ऋषि के पद चिन्हों पर चलने से ही हम अपनी उन्नति, अपने देश तथा जाति की उन्नति और संसार की उन्नति कर सकते हैं।

प्रणव ही मुख्य नाम है।

सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम ओ३म् को कहा है अन्य सब गौण नाम हैं।

स॰ प्र॰ समु॰ १

ऋषि की समन्वय दृष्टि।

[ले —श्री आचार्य बृहस्पति शास्त्री, वेदशिरोमणि]



[उपस्थित लेख में लेखक महोदय ने यह प्रदर्शित किया है कि महर्षि दयानन्द सम्पूर्ण जगत को समन्वय दृष्टि से देखते थे। संसार में प्रचलित द्वेष-पूर्ण नाना मतमतान्तरों का खण्डन-सबमें साम्यभावना भरने के लिये ही किया एवं वेदविहित धर्म को ही समन्वित एवं व्यावहारिक बताया। —सम्पादक]



महर्षि के लेखों और उनके जीवन की अनेक घटनाओं और कार्यों से यह बात भली भांति स्पष्ट होती है कि वे संसार के नाना मत मतान्तरों को पारस्परिक द्वेष और अशान्ति का मूल कारण समझते थे, इसीलिये उन्होंने समस्त मनुष्य जाति के कल्याण के लिये एक ऐसे धर्म का प्रकाश और प्रचार किया जो किसी मत विशेष अथवा देश जाति विशेष के आग्रह से रहित हो और जिसमें उन समस्त बुद्धि संगत मौलिक सत्य-तत्त्वों का समावेश हो जिन पर मानव जाति का कल्याण प्राकाशित है। इसी उद्देश्य से उन्होंने महारानी विक्टोरिया के देहली दरबार के अवसर पर देश के नानामतो के प्रमुख व्यक्तियों की सभा बुलाकर एक मत होने का प्रबल प्रयत्न किया का किन्तु ऋषि उसमे सफल नहीं हो सके। उसका कारण ..था ऋषि का वेद और ईश्वर में दृढ़ विश्वास। प्रचार कार्य के प्रारम्भ करने से पूर्व अपने जीवन के लगभग चालीस वर्षों उन्होंने निरन्तर स्वाध्याय, तप, समाधि, दीक्षा और एकान्त गम्भीर मनन मे व्यतीत किये थे। उनका यह समस्त जीवन एक जिज्ञासु की सत्य की खोज और सत्य के परीक्षणों से पूर्ण है। उक्त विश्वास उसी खोज का एक सुनिश्चित परिणाम था। अत वेद के विषय में वे ईसाई, मुसलमान आदि से और ईश्वर के विषय में देव समाजी और थियोसोफिस्टों आदि के साथ सुलह नहीं कर सकते थे वे अनुभव करते थे कि जिस मनुष्य के हृदय में ईश्वर-विश्वास का बल, और मस्तिष्क में ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश नहीं वह एक असहाय एकाकी अंधे के समान, ससार के इस भीषण दुर्गम मार्ग में भटकना ही रहेगा।

किन्तु ऋषि ने देखा कि ईश्वरीय ज्ञान वैदिक स्रोत से निकले हुए होने पर भी नानामतों ने वैदिक धर्म के सर्वाङ्गीण स्वरूप को भुलाकर धर्म के केवल एक एक ही अंग विपेश को धर्म समझ लिया है। और धर्म के शुद्ध एवं सर्वाङ्ग स्वरूप का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण ये नानामत अपनी२ एक एक बात को ही आग्रह पूर्वक लिये हुए बैठे हैं। तथा अपने इस आग्रह के कारण धर्म के अन्य अगों को अनावश्यक और अधर्म समझे हुऐ हैं। जैन बौद्ध, मुस्लिम और ईसाई मतो मे तो यह एकांत आग्रह था ही भारतीय आर्य धर्म में भी इसके कारण . अनेक मतमतान्तरों की सृष्टि हो गई।

उदाहरणार्थ —(१) वेद मे अग्नि, इन्द्र, रुद्र, विष्णु आदि अनेक नामों से उसी एक ब्रह्म की शक्ति और गुणादि का वर्णन एवं उसी की स्तुति प्रार्थनोपासना का विधान है। किन्तु पौराणिक साम्प्र-

दायियों और वैदिक साहित्य के पश्चिमी विद्वानों ने वेद के इस आशय को और वेदार्थ की यथार्थ शैली को न समझ कर अनेक देवी देवताओं की कल्पनाएं कर लीं, पश्चिमी विद्वान् भी प्रारम्भ मे (Poly- heism, Mono-theism) अनेक देव वाद आदि के व्यामोह मे पड़ गए। किन्तु जब ऋषि दयानन्द ने वेदों के समन्वित अर्थ करते हुए व्यापकेश्वर वाद का प्रतिपादन किया, तब प्रो० मैक्समूलर जैसे विदेशी विद्वान को भी अपने जीवन के अन्तिम काल मे वेद मे (Heno-theism) शब्द की सृष्टि करनी पड़ी।

(२) इसी प्रकार षड् दर्शनों द्वारा प्रति पादित दार्शनिक तत्त्वों के विषय में भी अधिकांश मध्य कालीन भाष्यकारों और आधुनिक पण्डितों मे यह भ्रम रहा कि वे दर्शन परस्पर विरोधी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। किन्तु ऋषि दयानन्द ने उन सबका समन्वय करते हुए यह सिद्ध किया कि वैदिक षड्दर्शन परस्पर विरोधी नहीं अपितु एक दूसरे के पूरक हैं।

(३) ऋषि से पूर्व मोक्ष प्राप्ति के साधन मार्ग के सम्बन्ध में भी हिन्दू धर्म तथा अन्य मतमतांतरों में अनेकानेक विरोधी मार्गों का प्रचार था। कोई, केवल ज्ञान द्वारा ही मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे। उनके मत से शुभाशुभ कर्म सब मिथ्या प्रपञ्च है अथवा केवल बन्धन-पाश-के कारण हैं। ज्ञानी पुरुष के लिए तो उनकी आवश्यकता ही नहीं। उसे उनसे विरक्त हो जाना चाहिये। दूसरे केवल भक्ति को ही मुक्ति का साधन माने हुए थे। भक्ति के भी दास्य, सख्य और माधुर्य आदि अनेक भेद करके माधुर्य भाविका भक्ति को ही इन्होंने सर्वोपरि माना था। भक्ति मार्गी वैष्णवों की व्याख्या के अनुसार व्रजगोपाएं इसी भक्ति भाव से श्रीकृष्ण भगवान् की उपासना करती थी। आज भी कीर्त्तन मण्डलियों में कीर्त्तन करनेवाले न केवल स्त्री भक्तों मे अपितु पुरुष-भक्तों में भी इसी बात की होड़ रहती है कि कौन अपने को अधिक से अधिक गोपिका के रूप मे भक्त उपस्थित कर सकता है। भगवत्प्राप्ति के लिये ज्ञान और कर्म की भी आवश्यकता है—इस वैदिक सत्य की इन्होंने सर्वथा उपेक्षा ही कर दी। ऋषि दयानन्द ने अनुभव किया कि हम उस समन्वय दृष्टि, समतुलनशक्ति और व्यवहार बुद्धि को भूल गए हैं जिनके द्वारा सत्यधर्म का विवेचन एवं निरूपण किया जाता है। अतएव उन्होंने वैदिक ज्ञान कर्म उपासना के त्रिकाण्ड को समन्वित रूप से हमारे सन्मुख उपस्थित किया।

इसी प्रकार वैदिक धर्म के अन्य सिद्धान्तों को भी उन्होंने समन्वय पूर्वक, संसार के सन्मुख उपस्थित किया।

वस्तुतः, सत्य एवं पूर्ण धर्म वही कहा जा सकता है जिसके द्वारा मानव के व्यष्टि तथा समष्टि जीवन का कल्याणकारी एवं सौ दर्यमय सर्वांगीण विकास हो सके। मानव का सर्वांगीण विकास उसके शरीर हृदय, बुद्धि और आत्मा के पूर्ण विकास में निहित है क्रियात्मक विज्ञान (applied Science) विज्ञान (Natural Science) दर्शन (Philosophy) और धर्म (Religion) मानव जाति के उक्त सर्वांगीण विकास का ही कार्य और कारण हैं। अतएव वह धर्म जो दर्शन-विज्ञान-धर्म-क्रियात्मक विज्ञान के चतुष्टय से समन्वित नहीं है और इस चतुष्टय का समन्वय करना नहीं सिखाता ऐसा धर्म कोरा सम्प्रदाय है और उसके द्वारा न तो मनुष्य जाति का कल्याण ही हो सकता है और न संसार मतैक्य होकर परस्पर दृढ़ प्रीति एवं सुख शान्ति ज्ञान दर्शक कर्म (विज्ञान), उपासना (धर्म) एवं क्रियात्मक विज्ञान का प्रकाश करने वाले ऋग्यजु सामाथर्वरूप वेद चतुष्टय द्वारा प्रतिपादित वेदोक्त धर्म ही ऐसा समन्वित (Harmonised), समतुलित (Balanced) एवं व्यवहारोपयोगी (Practical) धर्म है। इसी धर्म का पुनः प्रचारित करने के लिए ऋषि दयानन्द का महान् आयोजन था।

* आर्यसमाज तथा देवयज्ञ *

[ले०—श्री कवि विनोद वैद्य भूषण पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य "अमृतधारा" लाहौर]

[आपको आयुर्वेद वेत्ता और सफल चिकित्सक के सम्बन्ध में सभी जानते हैं। आपने अपने गम्भीर विचारों से आर्य जगत् का बहुत उपकार किया आपकी वाणी में एवं लेखनशैली में प्रभाव उत्पन्न करने की पूर्ण क्षमता है। —सम्पादक]

वर्तमान लेख में विद्वान् लेखक ने प्राचीनकाल के में देवयज्ञ पर प्रकाश डाला है और देव यज्ञ की महत्ता का प्रतिपादन करते हुये मनुष्य जीवन से उसका कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस बात को प्रदर्शित किया है।



वैदिक-काल मे यज्ञों का किस भांति प्रचार था इस का अनुमान पीछे के ग्रन्थों को देखने से भी हो सकता है। विदेशी यात्रियों की जो पुस्तके मिली है उनमे उन्होंने भारत के नगरों की यह विशेषता लिखी है कि हर घर से प्रातः सायं वेदों की ध्वनि और हवन का धुआँ सुनाई और दिखाई देता था।

वाल्मीकि रामायण को भी पढ़ने से यही सिद्ध होता है। रामचन्द्रजी जहाँ भी मुनियों के स्थानों मे जाते हैं वहाँ यज्ञ की अग्नि विद्यमान थी। इनके अपने घर मे प्रत्येक देव यज्ञ करता था। माता के पास गए वह भी हवन कर रही थी, और तो और हनुमानजी जब लंका में गए तो उस राक्षस देश मे भी देव-यज्ञ करते लोग पाए गए। काल ने जहाँ कई और परिवर्तन किए, यज्ञों की प्रथा भी कम होती गई, और नित्य देव-यज्ञ का करना तो भारत से उठ ही गया। कहीं कोई याज्ञिक करते हों तो हों। ऋषि दयानन्द ने अवतार लेकर भारत का उद्धार किया। उन्होंने पुरानी भूली हुई बातों को हमें याद कराया। उनके उपकारों में से यह भी एक महान उपकार है, कि द्विजों के वास्ते तीन आश्रमों मे हर एक नर नारी के लिए दोनों काल या दोनों समयों का एक ही समय हवन करना नित्य कर्म ठहराया। हर पुरुष-स्त्री के के लिए यह कितना आवश्यक है—यह इस बात से जाना जा सकता है कि महाराज ने लिखा है यदि पति-स्त्री एकत्र न हों तो जो उपस्थित हो वह दूसरे के भाग की भी आहुतियाँ डाले। संस्कार-विधि मे ऐसे मनुष्य को जो नित्य हवन नहीं कर सकता, अभागा लिखा है। और उसके लिए आदेश है कि पर्व के दिनों अर्थात् अमावस्या, पूर्णिमा को तो अवश्य कर लिया करे।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती की शिक्षा का यह फल हुआ कि अब सैकड़ो हजारों ऐसे आर्यसमाजी मिलेगे जो नित्य हवन करते हैं, परन्तु शोक से कहना पडता है कि अभी तक सबने इसको अपनाया नहीं, पांच प्रतिशत कठिनता से ऐसे आर्यसमाजी होगे, जो नित्य हवन करते हैं।

चालीस लाख आर्यसमाजी भारतवर्ष मे हैं, यदि चार लाख गृह भी समझे जावे तो चार लाख घरों में नित्य देव यज्ञ होता देख कर अन्य आर्य अर्थात्

हिन्दू भी शनैः शनैः उसको करने लगेंगे। आर्य समाजों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। धार्मिक महापुरुषों में ऋषि दयानन्द ही एक ऐसे ऋषि हुए हैं, जिन्होंने तर्क को ऊँचा स्थान दिया। वह हर एक धार्मिक कर्म को भी युक्ति से सिद्ध करते हैं, उसमें से देव-माला को निकाल देते हैं। परन्तु हमारे देश के लोगों में देव-माला और रहस्य-वाद इतना बढ़ा हुआ है कि इनको इन बातों के बिना श्रद्धा ही पैदा नहीं होती। यदि कहदो कि देव-यज्ञ करने से देव लोक के देवता प्रसन्न होते हैं, इससे स्वर्ग मिलता है, कुल सीधा देव लोक को जाता है, तब तो श्रद्धा से उसको करते हैं। स्वामीजी तो इन बन्धनों से आजाद करने आए थे उन्होंने कहा कि प्रत्येक मनुष्य कई प्रकार के मल त्यागता है जो सर्व साधारण के लिए हानि कारक है। इस पाप से छूटने के लिए उसको हवन करना चाहिए ताकि उसका प्रतिकार हो। हवन से प्रत्यक्ष देवता अग्नि, वायु, जल, पृथवी आदि शुद्ध आरोग्यता देने वाले होते हैं, जिससे अन्न पौष्टिक और उत्तम बन कर सब जगत का उपकार करता है तो ऐसी बातों से कुछ विशेष श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती। यही कारण है कि हवन इस श्रद्धा से, प्रेम व भक्ति से आर्य लोग भी नहीं करते जिससे कि मन पर अच्छे प्रभाव पड़ें। एक योरुपियन गुरुकुल मे कई दिन ठहरने के पश्चात् विदा होने लगा तो उसने गुरुकुल की प्रशंसा की। परन्तु कहा कि यह आपका हवन कोई धार्मिक कर्तव्य प्रतीत नहीं होता। इसके देखने से दूसरे में कोई श्रद्धा नहीं होती है। यह समझने और समझाने की आवश्यकता है कि कर्तव्य पालन ही बड़ा धर्म है। देव-माला की इसमें क्या आवश्यकता है।

मैंने दो समय हवन करने वाले ऐसे भी आर्य देखे, जिनके एक मंत्र का भी शुद्ध उच्चारण नहीं होता। एक बेगार काटने के वास्ते मन्त्र गलत सलत याद कर लिए फिर वर्षों या आयु भर यह यत्न नहीं किया जाता कि ईश्वर की वाणी का शुद्ध उच्चारण तो करें।

वेद-मन्त्रों का स्वर जितना आर्यसमाज ने बिगाड़ा है वह शोचनीय है। बड़े बड़े विद्वान भी वेद का वेद की भांति उच्चारण नहीं करते। ठीक स्वर चलाया जावे, इसकी भी आवश्यकता है। परन्तु शब्द के शुद्ध उच्चारण की ओर तो विशेष ध्यान देना चाहिए। देव-यज्ञ में वेद मन्त्रों का पढ़ना वेद की रक्षा के वास्ते श्री स्वामी जी ने लिखा है। हम शब्दों और स्वर को बिगाड़ कर रक्षा करते हैं या निरादर ! जरा सोचना चाहिए।

देव-यज्ञ में बहुत थोड़ी श्रद्धा है इसके कई उदाहरण हैं। सत्संगों और उत्सवों मे जब हवन का समय होता है उस समय उपस्थिति बहुत थोड़ी होती है। संस्कारों मे हवन जब होता हो, कोई ध्यान पूर्वक बैठकर देखता सुनता नहीं है। सब अपनी अपनी बातों में लगे रहते हैं। देव-यज्ञ तो महायज्ञ है जिसे ब्रह्मचारी और वानप्रस्थी तक को करना पड़ता है। गृहस्थी की तो बात ही क्या है। ऐसे आवश्यक कर्म मे हमारी प्रीति पैदा होनी ही चाहिए। स्वामीजी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का भी यही उद्देश्य है।



उस अमर ज्योति की छाया









लेखक—

हर्षदेव राय आर्य "हर्ष"

नभ के शुभ अन्तस्तल मे
थी निर्जन रजनी आई
उर्वी के जलते दीपक
चुपके से लेने आई ।

था ज्ञात नहीं उसको क्या ?
दीपक - अवली का जलना
फिर भी कितना दुस्साहस
ले नीरवता में बहना ।

ले थाल भरी मणियों को
किसने नभ में छितराया
थे खड़े मौन लखने को
इस निठुर निशा की माया ।

गहरे तप से आच्छादित
निश्वास वेदना छोड़ी
थी छाई पाखण्डों से
वसुमति जीवन की थोड़ी ।

यौवन की तीखी किरणो
का वैभव क्या है पावक
रक्षा के हित माता की
ललकार उठा हरि-शावक ।

कितनी तामस बेला मे
है प्रभा ज्योति छिटकाई
पथगामी हो जननी का
मधुज्ञान सुधा बरसाई ।

आनन्द प्रचय पल्वल मे
था दया कञ्ज विकसाया
दीपक - अवली में झलकी
उस अमर-ज्योति की छाया ।



—: हमारा भावी प्रोग्राम :—

[ले०—श्री प्रिंसीपल कालिकाप्रसाद जी भटनागर एम० ए०, डी० ए० वी० कालेज कानपुर]

[आर्य सामाजिक शिक्षा जगत् में आपका एक विशेष स्थान है। आपके लेख बड़े गम्भीर और विचार पूर्ण होते है। लेखनशैली मंजी हुई एवं सरस होती है। —सम्पादक]

इस लेख में लेखक महोदय ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि हमारी पुरातन संस्कृति ही हमारे भविष्य का मार्ग दिखलाएगी और उसी पर चलकर हमारी शिक्षा संस्थाएं उन्नति पथ पर आरूढ़ हो सकेंगी।



दि हम थोड़ी देर के लिये अपने पिछले कार्य पर नजर डालें तो हमें मालूम होगा कि हम अब तक जो कुछ कर चुके हैं उसके कई गुना काम अभी करने को बाकी है। महर्षिदयानन्द और आर्यसमाज के के अनुयायियों ने हिन्दू जाति को जगाने मे बहुत बड़ा कार्य किया है। मातृ भूमि और मातृ-भाषा का प्रेम भी आर्य समाजियों में किसी से कम नहीं पाया जाता। देश के लिये त्याग करने वालों में आर्यसमाजियों की संख्या शायद औसतन सबसे ज्यादा निकलेगी। संस्कृत और हिन्दी के लिये भी हमने गुरुकुल और डी. ए वी. कालेजों द्वारा वह ठोस कामकिया है जिसकी मिसाल किसी दूसरी जगह मुश्किल से मिलेगी। विधवा विवाह और अछूतोद्धार के मामलों मे तो आर्यसमाज सबका अग्रणी कहा जा सकता है। अकाल, भूचाल आदि दैवी प्रकोपों के समय आर्यसमाज ने धन जन से सहायता देकर सामाजिक सेवा का उदाहरण देशवासियों के सामने रक्खा है। एक प्रकार से मरे हुए हिन्दुत्व को फिर से जिलाने में प्राचीन विचार धारा से नवीन विचारों का सम्मिश्रण कर आर्य जाति को युग के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलाने में जर्जर रूढ़ियों का विध्वंस, और प्राचीन संस्कृति के संरक्षण द्वारा अपना विशुद्ध रूप विश्व के सामने उपस्थित करने में आर्यसमाज का कार्य आगे आनेवाली पीढ़ियों द्वारा आदर, श्रद्धा सम्मान के साथ याद किया जावेगा।

इसमें सन्देह नहीं कि आर्य जाति के जागरण का प्रारंभिक कार्य समाप्त हो चुका है। हमारी बेहोशी की हालत में ईसाई और मुसलमान हमारे धर्म और सभ्यता पर जो चोटें करते थे अब खुद उनको ही लेने के देने पड़ रहे हैं। विधर्मियों द्वारा हिन्दू जाति की स्त्रियों और बच्चों का भगाना भी अब बहुत कुछ थम गया है। इन बातों के होते हुए भी अभी हमें बहुत कुछ करना है। इसलिये अपने आगामी प्रोग्राम के सम्बन्ध मे मैं यहां कुछ बातें लिख देना आवश्यक समझता हूँ।

सबसे पहली बात हमारे संगठन की है। मुसलमान जितनी जल्दी इसलाम के नाम पर इकट्ठे हो

जाते हैं उतनी जल्दी हम नहीं हो पाते। इसका मुख्य कारण हमारे स्वार्थ (Interest) का अलग अलग होना है। हम इतने ज्यादा बढ़े हुए हैं और हमारे एक दूसरे के स्वार्थों में इतना अधिक अन्तर आ गया है कि हम एकता (Common Cause) को लेकर खड़े नहीं हो सकते। हमारी सबकी आवाज एक नहीं हो पाती। और जब तक हमारी आवाज एक नहीं होगी तब तक हमारा उत्थान असम्भव है।

इसलिये सबसे पहिले हमे एक होना होगा। आर्य जाति प्रारम्भ मे एक थी, उसके अन्दर आजकल जैसे भेद और उपभेद नहीं पाये जाते थे। फाहियान और हुएनचांग के यात्राविवरणों से भी हमें उसमें इतने नहीं मिलते जितने आजकल पाये जाते हैं। अकेले ब्राह्मणों मे ही इस समय ४०० से अधिक भेद पाये जाते हैं। यही हालत दूसरे वर्णों की है। शूद्रों मे भी एक तरह से काम करनेवाले उसी काम को दूसरी तरह से करनेवालों को अपने मे नहीं मिला सकते। रोटी बेटी का सम्बन्ध तो दूर की बात है, हम एक दूसरे का पानी तक पीने मे परहेज करते हैं।

मुसलमानों के यहाँ आने से कुछ पहले तक अन्तर्जातीय विवाहों का हमारे अन्दर प्रचार था आज उनका नाम लेने से भी हम नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। यह ठीक है कि जातियाँ जरूरत के मुताबिक अनेक भागों में बट जाती है, पर फिर जरूरत के मुताबिक एक रूप भी हो जाती है। आज हमे अनेकता से एकता की ओर जाने की जरूरत है—अपने भेदों को भुलाकर एक आर्य जाति के नाम पर एक

झंडे के नीचे खड़े होने की आवश्यकता है। यदि हम इस युग धर्म को सुनते हैं और एकता की ओर आगे बढ़ते हैं तो नितान्त हमारे कल्याण की घड़ियां बिलकुल नजदीक हैं। और यदि हम इस युग धर्म को नहीं सुनते—विश्लेषण से सश्लेषण की ओर नही बढ़ते तो विनाश के विकराल मुंह मे जाने से हमें कोई बचा भी नहीं सकता।

दूसरी बात हमारे साहित्य की है। हमारे पूर्वजों ने प्रचुर ग्रंथ राशि हमारे लिये छोड़ी है। इन ग्रंथों मे लोक और परलोक सम्बन्धी सभी प्रकार के विषयो पर विचार पूर्वक लिखा गया है। अनेक तो ऐसे विषय हैं जिनपर लिखने के लिये आज तक अन्य देशीय विद्वानों ने लेखनी तक नहीं उठाई। अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं जिसके कई कई अनुवाद अंगरेजी, फ्रेञ्च, जर्मन आदि भाषाओं मे हो चुके हैं। अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं जो हमारे घरो मे से निकल कर विदेशीय पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। अनेक ऐसे हस्त-लिखित ग्रन्थ है जिनका प्रकाशन अभी तक नहीं हो सका। अनेक ऐसे भी ग्रन्थ हैं जो अभी तक हमारे घरों मे कहीं-कहीं पड़े सड़ रहे हैं और दीमकों का आहार बने हुए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम इन ग्रंथों की रक्षा का प्रबन्ध करें। कोई भी जीवित जाति अपने साहित्य से, अपने पूर्वजों की धरोहर से वंचित नहीं होना चाहती। उसे धरोहर की प्राण देकर भी रक्षा करनी पड़ती है। क्या हमारे लिये यह शर्म की बात नहीं कि जर्मनी के रहनेवाले तो हमारे ग्रथों की रक्षा करने के लिये जी जान से कोशिश करें और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें। जर्मनी की एक प्रकाशन सस्था से प्रकाशित संस्कृत पुस्तकों की सूची का ही मूल्य लगभग ४० रुपये है। एक हम हैं जो आर्य-समाजी होने का दम भरते हैं पर वेद, दर्शन, उपनिषद् या केवल सत्यार्थ प्रकाश की एक कापी तक अपने घर मे रखने के लिये पैसा खर्च नहीं करते। अंग्रेज, फ्रान्सीसी और जर्मन तो हमारे ग्रन्थों को प्राप्त करने के लिये एड़ी से चोटी तक का पसीना एक कर दें पर हम अपने ही घरों मे रक्खे हुए ग्रन्थों को सभाल कर नहीं रख सकते। विदेशों में सहस्रों की सख्या मे हमारे पूर्वजों की लिखी हुई पुस्तकें पहुंच गई और उनपर अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ लिख डाले गये पर हम इस ओर अभी तक प्रवृत्त भी नहीं हुए। कितने शोक और लज्जा की बात है!

डी. ए. वी. कालिज लाहौर, पूना भाण्डार कर इन्स्टीट्यूट, मैसूर राज्य आदि कुछ संस्थाओं की ओर से इस दिशा मे काम हुआ है पर वह दाल मे नमक के बराबर भी नहीं है। जरूरत इस बात की है कि हमारा एक भाग एकाग्र चित्त होकर केवल इसी काम मे जुट जाय। अतीत काल के आदर्श हमारे भविष्य का निर्माण करनेवाले होते हैं। यह आदर्श इन्हीं ग्रन्थों में छिपे पड़े हैं क्या हमारा ध्यान इस ओर जावेगा ?

तीसरी बात संस्थाओं के संचालन की है। आर्यसमाज ने अपने जीवन काल के प्रारम्भ से ही शिक्षा के क्षेत्र मे आगे कदम रक्खा है। भारतवर्ष का कदाचित् ही कोई ऐसा प्रान्त होगा जहा महर्षि दयानन्द के नाम पर कोई शिक्षा संस्था न बनी हो। पजाब और युक्त प्रान्त मे तो डी० ए० वी० हाई स्कूलों का जाल सा बिछा हुआ है। गुरुकुलों की संख्या यद्यपि थोड़ी हैं पर वे भी अपना कार्य अच्छी तरह कर रहे हैं। यद्यपि अभी तक यह माना जाता रहा है कि यह दोनों प्रकार की शिक्षा संस्थाये पृथक्-पृथक् आदर्शों पर स्थित हैं। गुरुकुल प्राचीन शिक्षा प्रणाली के पोषक माने जाते है, और कालेज नवीन प्रकार के ढाँचे मे ढले हुए। गुरुकुलो मे शिक्षा का माध्यम हिन्दी रही है, और कालेजो मे अंग्रेजी। पर यह दोनों भेद अब बहुत कुछ मिल से गये हैं। गुरुकुलो मे भी पाश्चात्य शिक्षा का समावेश कर लिया गया है और कालेज भी प्रारम्भ काल से ही हिन्दी और संस्कृत शिक्षा पर बल देते रहे हैं। कालेज के नाम में 'दयानन्द और वैदिक' दो शब्द अपनी प्राचीन प्रणाली, संस्कृति और शिक्षा के ही द्योतक है, एग्लो शब्द पाश्चात्य शिक्षा की ओर संकेत करता है। इस प्रकार गुरुकुल और कालेज दोनो के आदर्शों मे एक प्रकार की समता आ गई है। शिक्षा के माध्यम के सम्बन्ध मे इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि इन्टरमीडियेट बोर्ड ने एफ० ए० तक की शिक्षा के लिये हिन्दी भाषा को भी विकल्प से माध्यम मान लिया है, और विश्वविद्यालयों मे भी यह विचार का विषय हो रही है। थोड़े दिनों बाद इस सम्बन्ध मे भी दोनों संस्थाओं में शायद कोई अन्तर दिखाई न देगा। आज कम से कम हम ऐसे स्थान पर अवश्य आगये हैं जहाँ बैठकर स्थिर चित्त से हम अपनी शिक्षा संस्थाओं के संचालन पर सामञ्जस्य-भावना से दृष्टि डाल सकें। यदि हमने अपनी बिखरी हुई ताकत को इकट्ठा कर लिया तो आर्यसमाज की शक्ति अपने लिये और हिन्दू जाति के लिये एक अजेय शक्ति सिद्ध होगी।

"महर्षि दयानन्द और स्वाध्याय प्रवचन"

[ले:— श्री प्रो० रामेश्वर शास्त्री, सिद्धान्त शिरोमणि, गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन]



[आप गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के एक सुयोग्य स्नातक हैं। आपकी लेखनी और वाणी मे एक प्रकार का अद्भुत चमत्कार है, जिसका सहृदय पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं। —सम्पादक]

उपस्थित लेख में लेखक महोदय ने स्वाध्याय एव प्रवचन का दिनचर्या मे क्या महत्व है इस पर प्रकाश डालते हुये महर्षि प्रदर्शित सुगम वेद मार्ग का भलीभांति दिग्दर्शन कराया है।

"असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमयेति"



समस्त प्राणियों मे मनुष्य सर्वोच्च प्राणी है। इसको परम पिता परमात्मा ने अपनी सृष्टि का सर्वोत्तम रत्न बनाया है और इसे उन्नति करने के लिए प्रत्येक प्रकार के साधन दिये हैं जिससे कि यह अपने जीवनोद्देश्य को पूरा कर सके। महर्षि दयानद सरस्वती ने मनुष्य की परिभाषा करतेहुए लिखा है क "जो विना विचारे किसी काम को न करे वह मनुष्य कहाता है"। जितना ही यह अपनी विचार शक्ति को विशुद्ध करके कार्य क्षेत्र मे अवतीर्ण होता है उतना ही उन्नति की ओर बढता जाता है, और अन्त मे अपने ध्येय मे सफल होता है। विचार शक्ति को विशुद्ध बनाने के लिए स्वाध्याय एव प्रवचन की बड़ी आवश्यकता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश मे तैत्तिरीयोपनिषद् के शिक्षा प्रकरण के उन वचनों को उद्धृत किया है जिनमे स्वाध्याय एवं प्रवचन की विशेष महत्ता प्रकट की गई है और शिक्षार्थियों को निर्देश किया है कि वह अपने जीवन में स्वाध्याय एवं प्रवचन का कभी भी त्याग न करे। आचार्य, अपने स्नातकों का समावर्त्तन संस्कार करते हुए अपने अन्तिम उपदेश मे "स्वाध्यायप्रवचनाभ्या न प्रमदितव्यम्" अर्थात् स्वाध्याय एवं प्रवचन मे कभी भी प्रमाद मत करो, की आज्ञा देते हैं। मनु महाराज ने "स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यात्" कहकर स्वाध्याय मे सर्वदैव अपने आपको युक्त रखने की आज्ञा दी है। अस्तु।

जो मनुष्य स्वाध्याय एवं प्रवचन की महत्ता का अनुभव करता हुआ उन्हें अपनी दिन चर्या का प्रधान अग बनाता है, निस्सन्देह वह अपने जीवन को उन्नति के मार्ग पर लाता हुआ अपने मनुष्य जन्म को ज्ञान के विकाश से सफल बनाता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आजीवन वैदिक साहित्यसागर का परिमन्थन किया और निरन्तर ही वह अपने प्रवचनों द्वारा उन अमूल्य वैदिक रत्नों को मनुष्यमात्र के कल्याणार्थ प्रकाशित करते रहे जिनसे कि प्रत्येक मनुष्य अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति कर अपने को सुभूषित कर सके।

पूर्व काल में जिन वैदिक सिद्धान्त रत्नों के लिए ऋषि मुनियों ने अपने जीवन को तपस्या की भट्टी

मे तपाया और अन्त में जिन्हें समाधि द्वारा प्राप्त करके जगत् के कल्याणार्थ अपने ग्रन्थों या उपदेशों मे प्रकाशित किया उन्हीं को महर्षि दयानन्द सरस्वती ने योगबल से पहिचान कर एकत्रित किया और अन्त में उन्हीं अमूल्य वैदिक सिद्धान्त रत्नों से, सुगम सत्यार्थ-प्रकाश रूपी हार का निर्माण किया, जिसे देखकर सुगमतया मनुष्य वेद रूपी रत्नाकर की ओर आकृष्ट हो, और ऋषि-मुनियों की आदर्श संस्कृति को पहिचान कर उससे अपने जीवन को अलकृत करते हुए सच्चे आर्य बन सके। परन्तु आज कल स्वाध्याय की ओर प्रवृत्ति न होने से मनुष्यों का ज्ञान उत्तरोत्तर वृद्धि को न प्राप्त होकर उनकी आन्तरिक अशान्ति का कारण बन रहा है।

स्वाध्याय एवं प्रवचन से तात्पर्य, वेद या अन्य सच्छास्त्रों के अध्ययन व अध्ययन के अन्तर उनको अन्यों के लिये कथन करने के हैं। स्वाध्याय करने में इस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि वह जिन ग्रन्थों या पुस्तकों का स्वाध्याय कर रहा है क्या उनसे उसकी पूर्वोक्त शारीरिक, मानसिक, या आध्यात्मिक उन्नति हो भी रही है या नहीं। प्रतिदिन समाचार पत्रों को पढ़ना या उपन्यास अथवा अन्य मनोविनोदकारी पुस्तकों का पढ़ना स्वाध्याय नहीं कहाता और न इससे मनुष्य की कोई वास्तविक उन्नति ही होती है। ऋषि दयानन्द ने प्रत्येक आर्य के लिए स्वाध्याय करना अनिवार्य बतलाया है। परन्तु हम आर्यबन्धुओं मे इस बात की कमी पाते हैं जिसका परिणाम यह हो रहा है कि हमारे अन्दर से आर्यत्व की भावना दूर होकर अशान्ति का पर्दा पड रहा है। महर्षि ने आर्य समाज के तीसरे नियम मे वेदों का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना,, सब आर्यों का परम धर्म कथन करते हुए वेद के स्वाध्याय की ओर विशेषरूप से ध्यान आकृष्ट किया है। यदि प्रत्येक आर्य इस दिशा की ओर नहीं बढ़ रहा है तो निस्सन्देह उसे समझना चाहिये कि वह अपने आचार्य द्वारा समुपदिष्ट आर्यत्व की भावना को न अपनाता हुआ केवल नामधारी ही आर्य बना हुआ है।

वेदों के स्वाध्याय के लिए सस्कृत भाषा का पठन पाठन अनिवार्य है। अन्यथा वेदों के शब्दों की गुत्थी को सुलझाकर वेदार्थ को भली भाँति समझना अतिकठिन हो जाता है अत हमे इस भाषा के अध्ययन की ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिए और यदि हमारी अवस्था अब संस्कृत भाषा के अध्ययन की नहीं है तो कम से कम हमे अपने बालकों को अनिवार्य रूप से संस्कृत भाषा का अध्ययन कराना चाहिये जिससे कि उनकी अभिरुचि, धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय की ओर बढ़े और वे अपने जीवन को आदर्श बना सके। योग शास्त्र मे मनुष्य की वैयक्तिक उन्नति के लिए "शौचसन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमा" शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान इन पांच नियमों के परिपालन की आज्ञा है तथा स्वाध्याय एव ईश्वरप्रणिधान इन दोनों को ही महर्षि ने ब्रह्म-यज्ञ बतलाते हुये हमे, प्रतिदिन इनके अनुष्ठान की आज्ञा दी है। अतः हमे स्वाध्याय एव प्रवचन में कभी भी प्रमाद न करना चाहिये।

जो मनुष्य स्वाध्याय एवं प्रवचन करने में कभी भी प्रमाद न करेंगे वे उत्तरोत्तर ज्ञानोपार्जन करते हुये सद्, असद् को भली भाँति पहिचान कर शास्त्रा-नुसार आचरण करके सच्ची सुख शान्ति के धाम परम ब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करने में समर्थ होंगे और प्राणी मात्र के कल्याण की भावना उनके हृदय मे होगी, और सर्वदैव उनकी हृद्वीणा का यही एक मधुर राग होगा.—

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥





आर्यसमाज सम्प्रदाय नहीं है

[ले०—श्री बाबू पूर्णचन्द्रजी एडवोकेट]

[आप आर्य जगत् के एक कर्मठ कार्यकर्त्ता तथा प्रभावशाली वक्ता एवं सिद्धहस्त लेखक है । आशा है आपकी रचना पाठकों को रुचिपूर्ण होगी । —सम्पादक]

प्रस्तुत लेख मे इस बात को सुचारु रूप से सिद्ध किया है कि—महर्षि ने नाना वेद विरुद्ध मतों का खण्डन करके पुरातन वैदिक प्रणाली का जीर्णोद्धार किया, न कि किसी अन्य मत को जन्म दिया।



ऋषि दयानन्द ने वैदिक धर्म को पुन प्रचलित करना अपने जीवन का उद्देश्य बनाया और इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये देशाटन किया, शास्त्रार्थ किये, व भाषण दिये पुस्तके रची। ऋषि दयानन्द किसी नवीन मत या सम्प्रदाय की स्थापना के महान विरोधी थे, आर्यसमाज की स्थापना से उनका अभिप्राय केवल अपने चलाये हुये कार्य को स्थायी रूप देना था । ऋषिदयानन्द का उद्देश्य निम्न घटनाओं से भली भांति विदित हो सकता है। किसी ने ऋषि दयानन्द से प्रश्न किया कि भारतवर्ष मे ९९९ मत पहले ही फैले हुये हैं, आप एक नवीन मत चलाकर संख्या मे व्यर्थ की वृद्धि करते है ? ऋषि ने उत्तर दिया कि मै जिस धर्म का प्रचार करता हूँ, वह ९९९ मे शामिल होकर उसको १००० बना देगा। केवल एक वैदिक धर्म बाकी रहेगा, बाकी सब मत शून्य होकर मिट जायगे। ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज मे अपने लिये कोई विशेष स्थान नहीं रक्खा और न आर्यसमाज मे किसी जाति विशेष या समुदाय विशेष का कोई विशेष स्थान है। वैदिक धर्म का द्वार सबके लिये समान रूप से खुला हुआ है। ससार का कोई देश ऐसा नहीं जहा आर्यसमाज की शिक्षा के अनुसार वैदिक धर्म का प्रचार और विस्तार न हो सकता हो। ऋषि दयानन्द ने रूढ़िवाद का नाश किया और धर्म में तर्क का स्थान दिया और धर्म को विश्व व्यापी रूप देकर मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये उसका प्रचार किया।

ईसाई मुसलमानों को आर्यसमाज का विरोध नहीं करना चाहिये ।

ऋषि दयानन्द की दृष्टि मे प्राचीन वैदिक धर्म की दृष्टि से जहॉ२ त्रुटि थी, सबका ऋषि दयानन्द ने प्रबल खन्डन किया। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश मे ४ समुल्लास खण्डनात्मक लिखे हैं। उनमें से सबसे पहला अर्थात् ११वां समुल्लास प्रचलित हिन्दू सम्प्रदायों के खण्डन के लिये है। महर्षि की दृष्टि मे हिन्दू और मुसलमान समान थे, उनको न किसी से विशेष मोह और अनुराग था और न किसी से द्वेष। उनका प्रेम तो भारतवर्ष की सीमा से भी बाहर संसार भर के लिये अपना लक्ष्य रखता था। ऋषि दयानन्द ने अपने प्रचार के सम्बन्ध मे डाक्टर

रहीम खां की कोठी लाहौर में निवास किया और वहां स्वतन्त्रता से वैदिक धर्म का प्रचार किया। वे सबके साथ एक सा और मनुष्योचित व्यवहार रखना चाहते थे। हमारे मुसलमान भाई इस बात पर ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से रुष्ट रहते हैं कि ऋषि दयानन्द ने शुद्धि की प्रथा चलाई। यह उनके दृष्टि कोण की त्रुटि है। यदि वे इस बात को ध्यान में रक्खें कि संकुचित हिन्दू धर्म के द्वार को ऋषि ने उदारता से संसार के लिये खोल दिया तो ऋषि की सहनशीलता और उदारता सहज मे उनकी समझ में आ जायगी। ऋषि की चलाई हुई शुद्धि की प्रथा मे न जबर्दस्ती है और न धोखेबाजी। यह तो धार्मिक विचारों की स्वतन्त्रता से परिवर्तन का विषय है। मुसलमान और ईसाई भाइयो का महर्षि का कृतज्ञ होना चाहिये कि उनकी कृपा से उनको अपने प्राचीन वैदिक धर्म मे पुन प्रवेश का अवसर प्राप्त हुआ है। यदि उनकी आत्मा वैदिक धर्म की सचाई को अभी नहीं समझ सकी है और यदि उसको ग्रहण करने योग्य नहीं समझते हों वे उसमें प्रवेश न करें। परन्तु उसमें प्रवेश का अधिकार मिल जाना क्या कुछ कम प्रसन्नता एवं उपकार की बात है? आज भारतवर्ष धार्मिक साम्प्रदायों की दृष्टि से एक भूल-भुलैया और अजायब घर बना हुआ है। केवल ऋषि का मिशन ही इसको ठीक मर्यादा और व्यवस्था के अन्दर ला सकता है। यदि ईसाई और मुसलमान इस बात से अप्रसन्न हों कि ऋषि ने उनके मत के सिद्धान्तों का खन्डन किया तो उनको यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि ऋषि दयानन्द ने शैव मत का भी प्रबल खन्डन किया जो उनके पिता का मत था सत्यार्थ प्रकाश मे सब अवैदिक बातों का प्रबल खण्डन है और उनका लक्ष्य न किसी विषय के विरुद्ध है और न किसी के पक्ष में।

आर्यसमाज और कांग्रेस

हमें दुख है कि अखिल भारत वर्षीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी आर्यसमाज के स्वरूप को ठीक २ नहीं समझा। ऋषि दयानन्द स्वतन्त्रता के पुजारी थे और वे न केवल भारतवर्ष में अपितु संसार के सब देशों मे स्वतन्त्रता की स्थापना चाहते थे। उनका अन्तर्राष्ट्रीय सगठन का विधान एक अनोखा और निराला विधान था। वह संसार के सब देशों को इस प्रकार से एक सूत्र मे बाधना चाहते थे कि स्वतन्त्रता किसी की नष्ट न हो और सब एक दूसरे के सहायक रहें। अभी तो सब संसार उनकी स्कीम को समझ भी नही पाया। उसके अनुसार क्रियात्मक कार्य होना तो बहुत दूर है। ऋषि दयानन्द ने सबसे पहले सत्यार्थ प्रकाश मे 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया है। जो बाते कांग्रेस के कार्यक्रम के अन्दर हैं वे सब आर्यसमाज मे इससे पूर्व प्रचलित एव प्रतिपादित हो चुकी है। स्वदेशी वस्त्रों का प्रयोग और मातृ भाषा से प्रेम, मादक द्रव्यों का निषेध, हरिजनोद्धार और अन्तर्जातीय विवाह इत्यादि यह सब आर्यसमाज के कार्य हैं। कांग्रेस को तो आर्य समाज की उन्नति को अपनी उन्नति समझना चाहिये और उसकी क्षति को अपनी क्षति। काग्रेसवाले यदि आर्यसमाज को एक सम्प्रदाय समझकर उसकी सहायता मे संकोच करते है तो यह उनकी भूल है। पिछले काग्रेस के आन्दोलन मे जेल जाने और धन जन से सहायता करने मे आर्यसमाजियों का नम्बर अन्य हिन्दुओं से बढा चढा था। हमें याद है कि आगरे की डिस्ट्रिक्ट जेल मे राजनैतिक कैदियों के समूह को देखकर यह प्रतीत होता था कि किसी आर्यसमाज का साप्ताहिक अधिवेशन है। इस पर भी हैदराबाद में जो अहिंसात्मक सत्याग्रह आर्यसमाज ने प्रारम्भ किया था वह तो स्पष्ट रूप से धार्मिक एवं नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिये था। आर्यसमाज केवल प्रचार की स्वतन्त्रता चाहता था, और वह चाहता था कि वह लिखित

और मौखिक प्रचार विना किसी हस्तक्षेप के कर सके।

कांग्रेस अपने करांची के प्रसिद्ध प्रस्ताव में यह निश्चय कर चुकी है कि 'कांग्रेस के आधीन जब राष्ट्र का प्रबन्ध होगा तो उस राष्ट्र के अन्तर्गत जितने समुदाय होंगे चाहे वे बहुसंख्या में हों या अल्प सख्या में, सबको अपने धर्म प्रचार मातृ भाषा और अपनी रीति नीति की रक्षा का पूर्ण अवसर प्राप्त होगा।' फिर न मालूम कांग्रेस हैदराबाद आन्दोलन के साथ सहानुभूति के स्थान मे—विरोध नहीं तो—उदासीनता का परिचय क्यों दे रही थी! हैदराबाद मे वह ८८ फीसदी हिन्दुओं की सहायता, आरम्भिक नागरिक व धार्मिक अधिकारों की प्राप्ति के लिये केवल इस भयसे नहीं कर सकती कि वहा के निजाम साहब अप्रसन्न हो जायगे। और भारतवर्ष के मुसलमान विक्षुब्ध होंगे तो हिन्दू कांग्रेस से स्वराज्य मिल जाने के बाद भी न्याय की क्या आशा रख सकते हैं? कांग्रेस का लक्ष्य तो यह होना चाहिये कि जहा अत्याचार हो वहां वह उसका विरोध करे और पीड़ितों की सहायता करे।

सम्प्रति कांग्रेस के नेता लोग मुसलमानों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये, उनके साथ उचित और अनुचित सब प्रकार की रियायत करने के लिये उद्यत हैं। उनको मुसलिम जन-सम्पर्क (Mus im mass Cantact) की फिक्र हो परन्तु उनको यह ध्यान नहीं कि हिन्दू जनता भी उनके विरुद्ध होती जा रही है।

जरा कांग्रेस के इससे पहले के इतिहास पर भी दृष्टि डालनी चाहिये गुरुके बाग मे अकालियों ने अपने धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिये सत्याग्रह किया और कांग्रेस ने धन जन से खुली सहायता की, स्वामी श्रद्धानन्द जेल गये और कांग्रेस ने जाच कमेटी भी नियत की। जब कि नाभा मे सिक्खों ने सत्याग्रह किया तो उस समय भी कांग्रेस ने साथ दिया। पूजनीय प० जवाहरलाल जी नेहरू इस आन्दोलन मे जेल गये। उस समय क्या विशेष बात थी जो कांग्रेस ने धार्मिक आन्दोलन मे सहायता की? क्या केवल इसीलिये कि कांग्रेस सिक्खों को अप्रसन्न करना नहीं चाहती थी?

हमे कांग्रेस का खण्डन करना अभीष्ट नहीं है। कांग्रेसका गौरव सारे राष्ट्र का गौरव है। हमें तो केवल उसका ध्यान आर्यसमाज की ओर आकर्षित करना है, और इसके ठीक ठीक स्वरूप को उसके सामने प्रदर्शित करना है।

जला गया

[स्व० कविवर ओङ्कार मिश्र "प्रणव" शास्त्री, विद्याभूषण, उपाध्याय गुरुकुल जेहलम]






जकड़े जड़ा के जाल झूठे मन जगड्वाल
झाड़ियाँ जंजाल यज्ञ ज्वाला मे जला गया।

वैदिक धरम सर किरण पसारी रवि
अमल कमल शुभ्र संध्या का खिलागया।

धवल धरा पै धारा वैदिक बहाई बोध
शोध शोध ज्ञानियों को ताने नहला गया।

पाके पदमोक्ष औ बुझाके निज दिव्य दीप
"प्रणव" प्रदीप कोटि ज्ञान के जला गया। १।

ज्ञान की कमान तर्क तीरो को चढ़ाय चला
पोंगा पंडितों के कोट काशी को हिला गया

दीने उपदेश देश हर लीने अघ क्लेश
मंत्र सविशेष यों स्वतंत्र सिखला गया

"प्रणव" प्रचार हेतु पीके कालकूट धन्य
विश्व को विमल वेद अमृत पिला गया

अगम अँधेरी रात मावस हटाई तात
निज देह दीप दीप-मालिका जला गया। २।





* महर्षि के कुछ राजनैतिक विचार *

[ले०—श्री भारतेन्दुजी वेदालकार]





संसार महर्षि दयानन्द को एक धार्मिक और सामाजिक सुधार के रूप मे ही अधिक पहिचानता है। इसी लिए कई लोग उन्हें 'भारत का लूथर' भी कहते हैं। यद्यपि उनको यह विशेषण देना कदाचित उनकी महिमा को कम करना है। ठीक है, क्योंकि भारत की तात्कालिक परिस्थिति ऐसी ही थी। अनेक धार्मिक और सामाजिक कुरीतिया एव मतमतान्तर इस देश में प्रचलित थे। जिन्होंने उनका इस दिशा मे आने के लिए बाधित किया। परिस्थिति या समय ही तो महापुरुषों का निर्माण करता है, इसलिए उनको ऐसा बनना उचित ही था। परन्तु अगर हम इतना ही कहे कि वे 'धार्मिक या सामाजिक सुधारक' ही थे, तो हम उनके साथ भयङ्कर अन्याय करते हैं। उन्होंने अंग्रेजों का प्रभुत्व कायम होते और बढ़ते हुये देखा था। वे खूब अच्छी तरह देख रहे थे कि ये विदेशी लोग अवश्य ही हमे एक न एक दिन अपने मोहक इन्द्रजाल मे फँसा देंगे। भारत की वह दिव्य प्राचीन सस्कृति और धर्म लुप्तप्राय होने जा रहे थे। एक तरफ धार्मिक और सामाजिक कुरीतियो का क्रूर केतु और दूसरी तरफ अंग्रेजों की कुटिल राजनैतिक चालबाजी का राहु वैदिक सस्कृति के सूर्य को ग्रसने लगा था। उस अंधकार समय मे महर्षि ही ऐसा व्यक्ति था जिसने सांस्कृतिक उन्नति की अनिवार्यता को अनुभव किया था। बिना सस्कृति या धर्म के कोई भी जाति या राष्ट्र सुख पूर्वक जी नहीं सकता। संस्कृति ही एक ऐसी वस्तु है जो जाति और राष्ट्र के जीवन में प्राण एव एकता का सचार कर सकती है। यद्यपि आज कल के कई राजनीतिज्ञ और विचारक बड़े गर्व से कहते हैं कि 'सस्कृति या धर्म कोई वस्तु नहीं है, यह तो एक ढकोसला है' क्या वे नहीं देख रहे हैं कि बिना धर्म या सस्कृति के आज का उन्मत्त, भौतिकवादी पश्चिम किस वेग से महान प्रलयङ्कारी नरसंहार पाप की पराकाष्ठा की ओर जा रहा है। क्या उसका यह दारुण मानव सहार हमे पुकार पुकार कर नहीं कह रहा है कि 'सावधान ! यह रास्ता खतरनाक है' हम इस चेतावनी को सुनें या न सुनें परन्तु आज का युग-पुरुष सेवाग्राम का सन्त तो इस रणभेरी को कभी का सुन रहा है, और हमे बारबार इसके बीभत्स दृश्य की ओर इशारा कर रहा है। वह कहता है कि 'ससार की भलाई तो सत्य और अहिसा की उस उच्च सस्कृति के द्वारा ही सभव है, वह रामराज्य की बातें करता है तो इसका यही मतलब है कि रामायण कालीन आर्य सस्कृति का प्रभुत्व, खादी, ग्रामोद्धार, अस्पृश्यता निवारण आदि उसी सनातन वैदिक सस्कृति के प्रतीक हैं— स्तम्भ हैं। राष्ट्र की स्वाधीनता की इमारत तो इसी पर बनाई जा सकती है।

इसी सत्य को आज से १ शताब्दी पूर्व उसी सौराष्ट्र की प्रथम महान् विभूति, युग प्रवर्तक, दयानन्द ने अनुभव किया था। महात्मा गांधी के यही कार्य क्रम जो कि आज समय के फेर से राजनैतिक रूप को धारण किए हुए हैं, उस समय सामाजिक या धार्मिक चोगा पहिने हुये थे। हिंदू समाज और धर्म मे अनेक प्रकार की बुराइया बुरी तरह से घर किए हुए थी, अतएव उन्होंने इसी को सुधारने में अपना अधिक समय और शक्ति लगाई। साथ ही साथ जब

उन्होने अपनी दृष्टि राजनैतिक क्षितिज पर डाली तो देखा कि पराधीनता की—विदेशी प्रभुता की—घनघोर घटा उमड़ रही है। धीमे २ भारत के समस्त आकाश को वेग से घेर रही है। वे इसे चुपचाप बैठे हुए देख नहीं सकते थे। उस समय अंग्रेजों की नीति देशी राज्यों को शक्तिहीन एवं निष्क्रिय बनाने की थी। अलग करो और राज्य करो (Divide and rule) के प्राणघातक जाल में इन रजवाड़ों के नरेशों को भी फसाने का प्रयत्न होने लगा। इसलिये स्वामी दयानन्द ने इन आर्य नरेशों को इससे सावधान किया, उन्हें उपदेश और सलाहों के द्वारा प्रजा की भलाई करने मे प्रेरित किया। इन सबका वर्णन हमें स्वामी जी के पत्र व्यवहार' से पता चलता है, कि किस उत्साह से इस समस्या को हल करने मे उन्होंने अपना अमूल्य समय अर्पण किया था। फिर जबकि देश की सब सांस्कृतिक प्रगतियो पर कड़े २ प्रतिबन्ध लग रहे थे, राष्ट्रीय विचार धारा को कलम या मुख से प्रगट करने की हिम्मत करना भी राजद्रोह समझा जाता था, ऐसे घोर अन्धकार और निराशा के जमाने मे भी उन्होंने ये शब्द कहे कि अच्छे से अच्छा विदेशी शासन भी बुरे से बुरे स्वदेशी शासन से बुरा है'। उन्होंने देख लिया था कि एक अच्छे, सुन्दर बाह्य शासन के होते हुये यद्यपि हमे कुछ भौतिक सुख या आराम भले ही मालूम हो, लेकिन उससे हमारी दिव्य आध्यात्मिक संस्कृति तो कदापि सुरक्षित नहीं रह सकती। विदेशी जाति अपना प्रभुत्व इसीलिये चाहती है कि वह शासित जाति को अपनी उग्र कूटनीति से शोषित करती रहे, और अपने आप खूब सुखी और समृद्ध बन सके। और यह बात तभी हो सकती है जब कि वे उसकी श्रेष्ठमूल्यवान् वस्तु 'संस्कृति' को समूल नष्ट कर दें। यही आज हमारे शासकों ने किया, यह सूर्य के समान स्पष्ट दीख रहा है। इसी तरह सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठों के पृष्ठ ऐसे राजनैतिक सूत्रों से भरे हैं जिन्हें आज १८८-१८५ साल के बाद कॉग्रेस ने अपनाया है। वे उस युग में प्राचीन आर्य राजाओं के चक्रवर्ती राज्य के सपने देखा करते थे। रामायण और महाभारत के अश्वमेध और राजसूय यज्ञों में देश देशान्तर से पधारे हुए राजाओं एवं कुन्ती, अर्जुन, गान्धारी के विवाह के प्रसगों को उद्धृत करके वे इसी सुनहले सपने की पूर्त्ति करते थे। दो सौ तीन सौ साल के मुसलमानों के धार्मिक एवं राजनैतिक शासन से हुई भारतीय संस्कृति का विनाश उनके सामने चित्रित था, और साथ मे तत्कालीन अंग्रेजों की करामात को तो वे देख ही रहे थे। इस समस्त काल मे भारत की बहुमूल्य सम्पत्ति - गायों का ह्रास ऐसी ही एक करुण कहानी है। गो जाति के हृदय-विदारक रोमाञ्चकारी क्रन्दन सुनते २ उनके कान बहिरे हो चुके थे, जिस की मूक वेदना उनकी 'गो करुणा निधि' मे स्पष्टतया आभासित होती है। 'जब से आर्यावर्त्त को विदेशियों ने पादाक्रान्त कर रक्खा है, तब से इसकी संस्कृति का नाश हो रहा है' ये मार्मिक शब्द इस ओर ऐसे ही अन्य करुणान्त नाटक (Tragedy) की ओर संकेत कर रहे हैं। 'आर्य', 'आर्यावर्त' और 'आर्यजाति' के वास्तविक गाम्भीर्य को वे ही समझते थे। फल स्वरूप 'आर्यसमाज' की स्थापना करके उन्होंने अपने विशाल हृदय का परिचय दिया है। भारतवर्ष और संसार से दानवता, असुरता और बुराई को मिटाने के लिए यह महान संगठन उस महर्षि ने रचा था। भारत की राजनैतिक पराधीनता को दूर करने मे इस संस्था ने अपने खून की बलि चढ़ाई है। इस के बड़े २ स्तम्भ और छोटे २ ईंट, ककड़ों ने राष्ट्र के 'स्वराज्य' भवन के निर्माण मे अपना अमूल्य हिस्सा अदा किया है। इसी का परिणाम था कि उस समय (और अब भी) विदेशी सरकार इसे एक 'राजद्रोही संस्था' के रूप मे गिनती थी। उस देशभक्त, 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के मंत्र को जपनेवाले महर्षि का बोया हुआ यह अमृतवृक्ष हमारे विरोधियों को विषवत् मालूम होता हो, तो यह उनकी बदकिस्मती के सिवाय और क्या हो सकता है?

स्वामी दयानन्द वैद्य के रूप में।

[ले०—श्री मेहता जैमिनी बी० ए०, वैदिक मिश्नरी]



हिन्दू जाति जिसका वास्तविक नाम आर्य जाति है जो पाच प्रकार के रोगों मे ग्रस्त है (१) शारीरिकरोग. (२) मानसिक-रोग (३) आर्थिकरोग (४) सामाजिक रोग और धार्मिक रोग इन पाच रोगों की पांच पाच शाखायें हैं अर्थात शारीरिकरोग पाच प्रकार के हैं—(क) निर्बलता, (ख) कायरता, (ग) अलस (घ) प्रमाद (ड) शारीरिकरोग ऐसे ही मानसिकरोग भी पांच प्रकार के हिन्दूजाति से चिपट गए थे अर्थात (क) चिन्ता (ख) स्वार्थ (ग) मानसिक दासत्व अपने भीतर इस प्रकार का दासत्व घर कर गया है कि हम अपने आपको दूसरों का दास कहलाने और कहने मे अभिमान समझते थे यहां तक कि पहाड़ों नदियों और नगरों के दास बन गए। अपना नाम अभिमान से तुलसीदास गुवर्धन दास, गंगादास, मथुरादास रखाने लगे। (घ) दूसरों पर कटाक्ष का रोग (ड) जाति अभिमान का रोग।

आर्थिक रोग पांच प्रकार के यह हैं (क) बेकारी (ख) बेरोजगारी, (ग) अप्रतिष्ठा, (घ) भिखारी, (ड) पुजारी। भला जिस देश मे ६० लाख भिखारी हों, जिसका वर्ष भर का व्यय ४० करोड़ रु० हो उस देश मे अप्रतिष्ठा और बेकारी न हो तो क्या हो? जिस देश में २ लाख से अधिक मन्दिरों मे ६ लाख पुजारी हों और उन मन्दिरों की आय ५६ करोड रु० वर्ष भर की उन पुजारियों के हाथ आ जावे, उस देश को आर्थिक रोगी न कहा जावे तो क्या कहा जावे। चौथी प्रकार के पांच रोग सामाजिक रोग कहलाते हैं वह यह हैं—(क) संस्कारों पर धन नष्ट करना, (ख) संगठन का न होना अर्थात् परस्पर विरोध (ग) जातीय अभिमान (घ) अस्पृशता कई भाइयों को अछूत कह कर उनसे बुरा व्यवहार करना (ड, हम को क्या। अपने देश की चीजों को न लेकर दूसरे देशों की चीजों को खरीद लेना—इसका फल यह है कि साठ करोड रु० वार्षिक का कपड़ा हम अन्य देशों से खरीदते हैं। वर्ष भर मे २६ करोड रु० का लोहे का सामान मोटर, लारियाँ, साईकिल और छत्तों के गार्डर खरीदते है, कुल २४० करोड रु० अन्य देशों को उनकी बनी हुई चीजों के खरीदने के लिए भेट कर रहे हैं यह पांच प्रकार के आर्थिक रोग हमको सर्व प्रकार से चूस गए हैं। अब पाँच प्रकार के धार्मिक रोग हैं (क) व्यभिचार(गत जनगणना के अनुसार ६ लाख २४ हजार रंडियाँ हमारे देश में हैं जिनकी वर्ष भर की आय ६२ करोड़ है। (ख) नशे पीना। इस पर हमारा वार्षिक १ अर्ब १ करोड रु० नष्ट हो रहा है। इसमे शराब, गांजा, चर्स भंग, अफयून, पोस्ता, चण्डू, चाय और सिगरेट तम्बाकू सब शामिल हैं (ग) प्रेम न होना (घ) अन्ध विश्वासी (ड) ईश्वर भक्ति और जातीय भक्ति से विमुख होना। अस्तु, इस प्रकार २५ प्रकार के भयानक रोग खून चूसने वाली जोंक के समान स्वामी दयानन्द के आने से पूर्व आर्य जाति को चिपटे हुए थे। स्वामी जी ने आर्य जाति को इस प्रकार के रोगों से ग्रस्त देख कर इसका इलाज आरम्भ किया। जिस प्रकार डाक्टर का कार्य है कि रोगी के भीतर से गली सड़ी पीप और खून को निकालना, Operation करना, इन्जक्शन करना, रोग के कारण अनुभव करना, और फिर उसका इलाज करना और औषध बताना। यदि डाक्टर से रोगी लाभ न उठावें तो

उसमें डाक्टर का कोई दोष नहीं है। यह रोगी का दोष है कि औषधि न ले या लेकर अलमारी में रख दे और उपयोग न करे, या सामग्री के पर्चों देखकर परे फेंक दे या दवा लेना ही स्वीकार न करे, या डाक्टर को Operation करते समय गालियाँ दे, परन्तु डाक्टर का कर्तव्य है कि रोगी का रोग दूर करे और उसको लाभ दे। स्वामी दयानन्द ने शारीरिक रोगों का इलाज ब्रह्मचर्य, व्यायाम, सात्विक भोजन प्राणायाम, इन्द्रिय निग्रह इत्यादि को बताया। यदि हिन्दू जाति उन पांच बातों को कार्य रूप में ले आवे तो पहली प्रकार के पांचों रोग कुछ ही दिनों मे दूर हो जावें। मानसिक रोगों के इलाज के लिए स्वामीजी ने वैदिक सिद्धान्तों पर चलना, उनका स्वाध्याय करना, और उन पर विचार करना बताया। बुरी प्रथाओं को दूर करना बताया। धार्मिक रोगों का इलाज धर्म के मार्ग पर चलना, नित्य स्वाध्याय, प्राणायाम, संध्या और योग साधनों से बुरे विचारों को दूर करना और सत्य मार्ग पर चलना बताया। आर्थिक रोगों के इलाज के लिए कला कौशल और चित्रकारी की ओर ध्यान दिलाया। स्वामी दयानन्द जी महाराज वर्त्तमान समय की शिक्षा प्रणाली का समर्थन करने वाले न थे। वह तो देश भर में कला कौशल को फैला कर देश की दरिद्रता को दूर करना चाहते थे। १८४० ई० में स्वामीजी ने जर्मन के नगर विजबेडन के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर बीज से इस विषय मे पत्र व्यवहार किया। उस समय जापान उन्नति की चोटी पर नहीं पहुंचा था। कला कौशल में जर्मनी की तूती बोल रही थी। उनके पत्र व्यवहार का साराश यह था कि, हम कुछ विद्यार्थियों को जर्मनी में शिल्पकला और विज्ञान के चमत्कार सीखने के लिए भेजना चाहते हैं क्या आप उन्हें सिखाने में संकोच तो न करेंगे? डाक्टर बीज ने जो उत्तर स्वामीजी को विशेषकर २१ मार्च १८४० के पत्र मे दिया उसमे उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि हम आपके भेजे हुए लड़कों का स्वागत करेंगे और शिल्पकारी और विज्ञान के चमत्कार सिखाने में कोई कसर उठा न रखेंगे। हम आप से कोई राग द्वेष करने वाले नहीं हैं। हमारी भारतवर्ष के साथ हार्दिक सहानुभूति है क्योंकि हमारे पूर्वजों का भारत मे ही पालन पोषण हुआ और शिक्षा दिक्षा मिली थी।

महर्षि दयानन्द ने डाक्टर का सा बर्ताव हिन्दू जाति के साथ किया। हिंदू जाति की रगों में पुराणों के मनगढ़न्त किस्से कहानियों और अफसानों और भ्रमजाल, अविद्या भूत प्रेत और जड़ पूजा का गन्दा मादा भरा पडा था। इस लिए स्वामीजी ने युक्ति और बुद्धि के शस्त्र से फोड़े और फुन्सियों का Operation किया और हिन्दू जाति के शरीर के भीतर वेद मन्त्रों के सत्य अर्थों का इन्जकशन देकर ऋषियो के सत्य ज्ञान का शुद्ध रक्त उनके भीतर डाल कर हिन्दू जाति को ऋषि सतान बनाने का घोर प्रयत्न किया।

जिस प्रकार रोगी Operation के समय डाक्टर को गालियाँ देता है और अपना शत्रु समझता है, और डाक्टर उसकी गालियों की परवाह न करके चीरा दे ही देता है परन्तु जब रोगी का रोग दूर हो जाता है तो डाक्टर का धन्यवाद देता है। यही अवस्था हिन्दू जाति की है। रोगी हिन्दू तो स्वामीजी को गालियाँ देते हैं उन पर दोष लगाते हैं परन्तु जब उनका अज्ञान रूपी रोग दूर हो कर उनका रक्त शुद्ध पवित्र हो जायगा तो स्वामीजी को हृदय से धन्यवाद देवेंगे और उनको अपना गुरू और नेता मानने लग जायेंगे।

इस प्रकार स्वामी जी सचमुच एक आध्यात्मिक डाक्टर थे जो न केवल हिन्दू जाति के असाध्य रोगों को दूर करने आए थे वह ईसाई और मुसलमानो के रोगों को (अन्ध विश्वासी इत्यादि का) भी हटाने आए थे। सचमुच डाक्टर का कर्तव्य पालन कर गये। अब मुसलमान और ईसाइ भी अपनी धर्म पुस्तकों को बुद्धि और युक्ति की कसौटी पर परखने लगे हैं और यही कारण है कि वह नई व्याख्या करने लगे है जो वर्त्तमान विज्ञान और तत्व ज्ञान के अनुसार है। —इति

 **"अमर-ज्योति"** 

[ले०—श्री हर्षदेवजी आर्य 'हर्ष']



> प्रस्तुत लेख मे लेखक महोदय ने स्वामीजी के जीवन की महत्ता को दिखाते हुये ब्रह्मचर्य की शक्ति पर प्रकाश डाला है। तथा ज्ञानोपार्जन एवं समाज की भलाई के लिये एक सच्चे गुरु की कितनी आवश्यकता है, इस बात को दिखाया है।

[आप एक अच्छे साहित्यिक व्यक्ति हैं आपकी वर्णनशैली हृदयंगम् होती है लेखनशैली मे प्रचुर चमत्कार है।

— सम्पादक]



उड़ते हुए नीरद एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व को निकल जाते। शीतल समीर के झोंके स्वच्छन्दता से अर्बुद की शृङ्खलाओं को आलिंगन करते हुए चले जाते। हिमालय की उत्तुङ्ग चोटियां अनन्त की ओर टकटकी लगाये हुए हैं। वहां केवल धवलता का साम्राज्य है। ऊपर अनन्त व्योम, और सन्मुख अन्तराल अन्तरिक्ष है। उसके नीचे वही संसार है जिसको त्यागने के लिये, स्वामी दयानन्द जी, ऊपर खड़े हैं।

ऋषि ने, अपने गृह की सुख सम्पदा त्याग दी। जो सम्पति, ऐश्वर्य और वैभव को भी ठुकरा कर निराश नहीं हुआ, वही आज क्यों हिमालय की चोटी पर निराशा और वेदना लिये हुए आत्म-परित्याग के लिये खड़ा है? अब वह शायद दो ही एक पल मे अपनी जीवन लीला को समाप्त कर देगा। जिसके लिये वह इस संसार मे आया था वह अभी तक पूर्ण नहीं हुआ। उसका अन्तराल मानस अशान्त है।

पुनः उसको वही विश्वपति का गुप्त संदेश हिय के चट्टानों से टकराता हुआ मिला। जो कि पहले उसे शिव मंदिर के कंगूरों से टकरा कर मिला था। "यदि तुम शान्ति चाहते हो तो ज्ञान प्राप्त करो। तुमने अभी कहां ज्ञान पाया। अन्धकार को ज्ञान के प्रकाश से नष्ट कर दो"। यह थी गुप्त वाणी। ऋषि के ज्ञान चक्षु खुले। वह पुनः वहीं को लौटा जिसको वह त्यागने की अभिलाषा कर रहा था।

उस समय स्वामी जी के मस्तिष्क मे ज्ञान का प्रादुर्भाव हो जाना एक विशेषता दिखलाता है। उन्होंने जीवन भर उस ज्ञान की खोज की, जिससे अन्त मे उन्हें शान्ति प्राप्त हुई। संसार को भी उन्होंने शान्ति का मार्ग दिखलाया ज्ञान ही सृष्टि का सचालन करने वाला है। इसमे आनन्द और शान्ति का वह भण्डार भरा पड़ा है जो कभी समाप्त नहीं हो सकता। इसके अन्तर्गत एक अलौकिक संसार है जिसमे न शोक है न विषाद। ज्ञान वह ज्योति है जो विचलित मार्ग से सीधे मार्ग पर कर देती है।

उनके जीवन के साथ यह घटना इस प्रकार जुड़ी हुई है जिस प्रकार की महाबोधि वृक्ष की घटना। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि स्वामी जी का कार्य-क्रम यहीं से प्रारम्भ हुआ। उन्होंने ज्ञान की वह ज्योति प्रज्वलित की जो सृष्टि के प्रलय काल तक जगमगाती रहेगी।

जीर्ण शीर्ण झोपड़ों से लेकर भव्य भवनों तक मरुभूमि से लेकर लहलहाते हुये मैदानों तक, पग डंडी से लेकर वृहत् राज पथ तक, पल्वल से लेकर अथाह समुद्र तक, और सृष्टि के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक मे वही ध्वनि जो (आज से अर्द्ध शताब्दि पहले उसने निकाली थी, "कृणवन्तो विश्व-मार्यम्।" पाखण्ड को संसार से सदा के लिए मिटा दो प्रतिध्वनित हो रही है। उसका परम लक्ष्य यही था, "प्राचीन काल की ओर अग्रसर हो जाओ"। इतने ही थोड़े शब्दों में स्वामी जी ने प्राचीन काल का दिग्दर्शन करा दिया। वह सन्यासी उसी युग का पक्षपाती था। जिस युग के लोग ज्ञान प्राप्त करने के लिए अरण्यों और कन्दराओं में जाते थे। उस ज्ञान से ससार का कल्याण करते थे।

स्वामी विरजानन्द जी की कुटिया मथुरा में जमुना नदी के किनारे थी। वह जन्मान्ध आचार्य भी प्रथम ही ईश्वर का सन्देश लेकर इस भूतल पर आया था। वह एक आत्म त्यागी की खोज मे था, "जो संसार की जीवन ज्योति को जगा दे। अविद्या के अन्धकार को रवि की किरणों की भाँति अपने ज्ञान से छिन्न भिन्न कर दे।" अन्त में उन्हें स्वामी दयानन्द जी मिले। उनके जीवन की चिर अभि-लाषा पूर्ण हुई।

स्वामी जी ने प्राचीन शिष्यों के कर्तव्यों को निभाया नित्य घड़ों नीर भरना, गुरू को नित्य स्नान आदि करना, आदर्श शिष्यता की एक मर्यादा प्रकट करता है। गुरू जी कभी कभी उन्हें मार भी दिया करते थे परन्तु उसमें भी वे गुरू की कृपा समझते थे। उल्टे उनके हाथ पैर दबाने लगते कि कहीं उनको चोट तो नहीं आ गई या कष्ट तो नहीं हुआ यह प्राचीन ऋषि का एक आदर्श था। इसमें भक्ति का कितना सरस और अथाह सिन्धु भरा हुआ है; जिसमे गोते लगा कर परमानन्द को प्राप्त हो सकते हैं। गुरू और शिष्य का एक अमिट व्यवहार था जो ध्येय की उत्तुङ्ग चोटी पर पहुँचा देता है। गुरू और शिष्य का वह सम्बन्ध था जो एक मे त्याग उत्पन्न करता है और दूसरे मे भक्ति। त्याग और भक्ति ही इस ससार से छुटकारा पाने के लिये मार्ग हैं।

एक बार गुरूजी ने स्वामी जी को ऐसा मारा कि उनके हाथ में एक व्रण हो गया था। उसका चिन्ह जब तक वे जीवित रहे तब तक बना रहा। स्वामीजी उसको कभी २ देख कर गुरू की कृपा का स्मरण करते थे। नेत्रो से कृतज्ञता के आँसू छलछला पड़ते और प्रेम का एक सरस स्रोत उमड़ पड़ता था।

गुरू से अन्तिम विच्छेद भी अद्भुत था। गुरु दक्षिणा भी केवल एक अँजुली लौंग थोड़े ही है। गुरू ने कहा, "इससे क्या हो सकता है? मुझे कुछ और ही वस्तु चाहिये।" स्वामी विरजानन्द जी ने उनसे अपने जीवन का उत्सर्ग कराकर ही दम लिया।

नये उत्साह और नवीन उमङ्गों को लिए हुए उन्होंने हरिद्वार के कुम्भ के मेले मे सिंह की भाँति गरज कर पाखण्ड खण्डिनी पताका आकाश में फहरा दी। बड़े २ विद्वानों, साधु, महात्माओं से स्वामी जी की टक्कर हुई। परन्तु वे चपेट को न सह सके। खुले आम उन्होंने धार्मिक ढोंगों का खण्डन किया। लोगों ने दाँतों तले उँगलियाँ दाबीं।

लाखों की भीड़ के सन्मुख उसने दहाड़ा। पाखण्डियों का रक्त खौल उठा। परन्तु वह सत्य विद्या के प्रचार करने में एक बार काल से भी द्वन्द

कर सकता था। उसने अपने साहस और निर्भीकता से अज्ञान के विरुद्ध वह ज्वाला धधकाई जो कभी भी शान्त न होगी।

स्वामी ने अपनी आत्मा का उत्सर्ग केवल विशेष जन समुदाय के लिए ही नहीं किया बल्कि सारे ससार के लिए किया। उसकी वाणी सब स्थानों मे व्याप्त हो गई। "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।" यही उसकी चिर अभिलाषा रही।

उसका आराध्य देवता ईश्वर के सिवा दूसरा कोई न था। वही सब सुखो का मूल वेत्ता है। उसी एक के साधने से सब सध सकता है। मूर्तिपूजा और प्रेत पूजा उसके लिये ढोंग था। विधवा विवाह पर प्रतिरोध, बाल विवाह, देवी देवता, मुसलमान, ईसाई आदि को वह ससार का विष समझता था। निरीह और अबोध जनता अन्धकार मे लिपटी हुई उसी के अन्दर फँसी हुई थी। उसने अन्धकार का पट हटा कर लोक समुदाय को उस प्रभा मे कर दिया जिसमे सारी सृष्टि जगमगा रही है।

उसने केवल कल्पनाओ की ही सृष्टि नही की बल्कि उसमे ज्ञान का वह तथ्य भर दिया जिसके सहारे लोक और परलोक दोनो बने। नैसर्गिकता का उद्गार उसके हृदय से निकला और अवनी को आवेष्टित कर लिया। एक अमर प्रकाश निकला और लोक समुदाय को दीप्त कर दिया। उसने ईश्वर और जीव के मध्य मे एक स्वर्ण सोपान लगा दिया जिसके सहारे स्वर्ग के दरवाजे तक पहुँच सकते हैं।

काशी राज के सन्मुख, काशी मे उसके ऊपर पाषाण और ढेले बरसाये गये। वह अचल होकर सब सहता रहा। उसने सोचा आज ये ढेले बरसा रहे हैं, कल यही फूल भी बरसायेंगे। आर्य धर्म का केन्द्र यह नगरी प्राचीन काल से रही है। एक समय फिर आवेगा जब यहाँ पर विद्या की ज्योति प्रसारित होगी। हजारों वर्ष पूर्व श्री शकराचार्यजी जिस नगरी मे मण्डन मिश्र की बालाओ से हार मान गये थे वहीं स्वामी दयानन्द जी ने इतनी ऊँची पताका फहराई की वह दूर से भी देखी गई।

उसने आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध जोड़ा। भाति भाति के सम्प्रदाय फैले हुये थे। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लोक धर्म का दिग्दर्शन राम चरित मानस मे किया। परन्तु स्वामीजी उनसे भी बढ गये। उसने आनन्द और सुख का मार्ग खोल कर, जनता को दिखलाया वह लहलहाता हुआ कुञ्ज जिसमे कल्पतरु था, ब्रह्म चर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम उसकी शाखाये थीं और उनका निष्कर्ष उसका फल था। विधवा विवाह स्त्रियों मे शिक्षा बाल विवाह निषेध आदि को वेग से चलाया।

वह ऋषि बाल ब्रह्मचारी था। वह—

स्मरण, कीर्तन केलि प्रेक्षणं गुह्य भाषणम्।

संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया" " "। आदि से अत्यन्त व्यवधान पर था। एक बाल ब्रह्मचारिणी जो उन्हीं की तरह ब्रह्मचारिणी थी, स्वामी जी से कहती है, 'हे ब्रह्मचारी तुम मेरा पाणिग्रहण करलो"। "क्यो" ऋषि ने कहा।

'इसलिए कि हम दोनो बाल ब्रह्मचारिणी तथा ब्रह्मचारी हैं। हम लोगों से जो सन्तान उत्पन्न होगी वह हृष्ट पुष्ट और सुसंस्कृत होगी। वह ससार के लिए आदर्श बन जायगी।"

"हे माता! मुझे ही अपना पुत्र समझ। मैं तुम्हे अपनी माता समझूगा।"

इतने पर भी स्वामी जी नहीं डिगते हैं। ब्रह्मचर्य का आदर्श कितना ऊँचा उठा हुआ है। यह भावना सम्मुख खड़ी है.—"मातृवत् परदारेषु।"

वह भगवान के सिवा किसी से डरता ही नहीं था, किसान के डण्डा देने पर भी वह निहत्थे भीषण भयंकर जंगलों को पार कर गया। यह थी उसकी निर्भीकता और उसका साहस। ब्रह्मचर्य का वह अद्भुत बल था, जिसके बल पर उसने राजा की चलती हुई बग्घी रोक दी। जिस कीचड़ मे फँसी गाड़ी को अठारह मनुष्य भी बाहर न कर सके उसी को खींच कर बाहर कर दिया तेज और शौर्य का जमघट उसके शरीर मे था। भयकर विषैले साँप को घुमाकर फेंक दिया। मथुरा के चौबों ने जब उसे जमुना मे फेंक दिया, कितने घण्टे वह पानी मे रहा? अलौकिक बल और पौरुष की वह मूर्ति था। उसके सन्मुख ससार की कोई भी शक्ति उससे नहीं भिड़ सकती थी। उसमें धीरता, वीरता, बल ओज, शक्ति सब कूट २ कर भरी हुई थी। ब्रह्मचर्य ही जीवन की नीव है। बिना इसके पुष्ट हुये जीवन व्यर्थ और नीरस है। उसमे वह चमत्कार है जो असम्भव को भी सम्भव कर देता है।

एक अंग्रेज के पूछने पर स्वामी जी कहते हैं "भारत तभी स्वतन्त्र होगा जब स्वदेशी वस्तुओं को बहिष्कृत कर देगा और विदेशियों को निकाल देगा। यह स्वतन्त्रता की उस काल की झनकार थी जिस समय कि दादा भाई नौरोजी और ह्यूम आदि का कहीं पता न था।

जगन्नाथ रसोइये को रुपया देकर नैपाल भाग जाने की सलाह देते हैं, जो कि उनके जीवन का काल था। क्षमा और दया का उठा हुआ कितना ऊँचा है? शीशा पी लेने से सम्पूर्ण शरीर में भयंकर गर्मी उत्पन्न हुई और सारे शरीर में व्रण भी हो गये। पर वह शान्त था। उसके जीवन का उद्देश्य भी शान्त था। जहाँ शान्ति नहीं वहां जीवन ही नहीं कहा जा सकता। वियोग और सयोग में शान्ति, घर बाहर शान्ति अन्तराल मे शान्ति, आन्तरिक्ष में शान्ति, व्योम मे शान्ति, बल्कि वह सारी सृष्टि मे शान्ति चाहने वाला शान्ति का पक्का पुजारी था।

अरावली पर्वत पर पड़ा हुआ है। तार पर तार आरहे हैं। वह वेदना से पूर्ण है पर शान्त है। केवल ईश्वर के प्रति भावना ही, उसकी चंचल है। इतने मे ईश्वर का संवाद उसे चले आने का हुआ। वह 'ईश्वरेच्छा" कहते ही अनिल अनन्त मे अन्तर्हित होगया।

× × × ×

स्वामी दयानन्द जी ने गृह की सम्पत्ति त्यागी, पिता के क्रोध के भाजन बने, अपनी जननी को त्यागा भीषण-भयंकर जंगलों की झाड़ियों से अपना तन छिदवाया, भयंकर प्रलय कारिणी माघ की रजनी, निदाघ के तप्त दिवस के कष्टों को सहा, ईंटे पत्थर खाये अपने लिए? नहीं! संसार के लिए। उसने उनको पुष्प समझकर अपनाया। विशेषकर उसने हिन्दू जनता का बहुत उपकार किया। जिसको हम फिर "आर्य" कहने लग गये।

आज हम उसी महात्मा के मोक्षदिवस को मनाने के लिए अज्ञात देश को चले जा रहे हैं। दीपावली के इतने जगमगाते हुए प्रकाश में भी हमें वह आत्मा दिखलाई नहीं पड़ रही है। क्यों?





दीप-मालिके



[रचयिता—रामसिंघा "रमेश" साहित्य रत्न, हिंगोली निजाम स्टेट]



जग-मग, जग मग दीप मालिका जग मे उजियाली छाई,
चारो ओर एक अनुपम सी छटा बिलक्षण है छाइ॥
घार तमिस्रा के नीरव में नहीं सूझता है कुछ पार,
दुर्गम पथ पग थक हुए हैं, कठिन लाघना मार्ग अपार।
भ्रमित बटाही टर रहा है कैसे हूगा पार सखे?
निपट भ्रान्त सा भटक रहा हूँ, दुर्गम यह ससार सखे!
कर उज्ज्वल प्रकाश जगती पर, पथ निर्देशन को आई।
जग मग जग मग दीप मालिका, जग मे उजियाली छाइ॥ १॥
यहा द्वष है वहाँ द्रोह कटुता का नित व्यापार यहाँ।
यहाँ पाप, व्यभिचार यहाँ, छल छन्दो का व्यवहार यहाँ॥
मानव! क्या इस पाप पक से, है तेरा उद्धार नहीं।
प्रेम सलिल की लोल लहरियाँ, करतीं तुझे दुलार नहीं॥
कपट, अनय का पाश तोड़, मानवता सिखलाने आई
जग-मग जग मग, दीप मालिका, जग में उजियाली छाई॥२॥
बन अनुराग बसी लोचन मे पीर बनी बसती मन मे।
आतुरता बन बसी हृदय म, उन्मीलन बन चितवन में॥
दृढ़ता बन मानस मन्दिर की, ओज शौय की बन रानी।
दीप मलिके! हमे सिखा दो, देश भक्ति वह दीवानी॥
जीवन का सर्वस्व भेट दू, पारतन्त्र्य हरने आई।
जग मग, जग-मग, दीपमालिका जग मे उजियाली छाई॥३॥
जीवन क्या है? क्षणिक एक मादक मदिरा का प्याला है।
जिसमे मस्ती से मद माती अरुण छलकती हाला है॥
अरे! वासना के पुतले! मदहोश न हो जाना इसमें।
अधरों से मत लगा, कहीं मद मत्त न हो जाना इसमें॥
दीप मालिके! आज दीप ले सुषमा बरसाने आई।
जग मग, जग-मग, दीप मालिका जग में उजियाली छाई॥४॥



-: श्री स्वामी जी की यात्रा :—

[ले०—श्री महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फाजिल हिन्दू यूनीवर्सिटी काशी]





[आप आर्य जगत् के प्रसिद्ध लेखक एवं वक्ता हैं। अरबी फारसी मे आपकी असाधारण योग्यता है आपके लेख ज्ञा पूर्ण होते हैं। —सम्पादक]

प्रस्तुत लेख में लेखक महोदय ने स्वामी जी की यात्रा के लक्ष्य को सुनिपुण रीति से दर्शाया है। उनकी यात्रा हमारे लिये कितनी लाभदायक थी उन्होंने कैसे कैसे यात्रा की इन सब बातों का स्पष्टी करण किया गया है।



स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने लगभग २२ वर्ष की आयु स० १६०३ विक्रमीय (सन् १८४६ ई०) मे सदैव के लिए घर त्याग दिया। स० १६४० वि० (सन् १८८३ ई०) मे स्वर्ग लोक सिधारे। इस काल के बीच म ढाई-तीन वर्ष तक मथुरा मे रहे। फलत लगभग ३५ वर्ष तक का जीवन ऐसा रहा जिसमे उन्होंने प्राय यात्रा ही की।

उनकी यात्रा सुगमता के साथ दो भागों मे विभक्त की जा सकती है। एक पूर्वार्द्ध अर्थात् उस समय तक की यात्रा जबकि वे शिक्षा प्राप्ति के निमित्त मथुरा मे पहुँचे थे। दूसरी यात्रा उत्तरार्द्ध जबकि उन्होंने शिक्षा समाप्ति के पश्चात् मथुरा त्याग किया और वैदिक धर्म के निमित्त कार्य करना आरम्भ किया।

पूर्वार्द्ध—यात्रा में लगभग ५० स्थानों के नाम मिलते हैं, जिन्हें उन्होंने गौरवान्वित किया और उत्तरार्द्ध में लगभग १२५ (एक सौ पचीस) पदारोपित स्थानों के उल्लेख मिलते हैं। इस प्रकार से कुल स्थानों की संख्या २०० (दो सौ) से कुछ कम ही ठहरती है। इनमे से अनेक स्थान ऐसे हैं जहाँ पर वे एक ही बार पधारे थे और बहुत ही कम ठहरे थ परन्तु अनेक स्थान एसे भी हैं जहाँ पर वे अनेक बार पधारे थे और अधिक समय तक ठहरे भी थे।

वास्तविक बात यह है कि जहा २ उन्होंने पदार्पण किया उनमे से अनेक स्थानों की बाबत कुछ पता ही नहीं। उदाहरणार्थ पूर्वार्द्ध यात्रा के सम्बन्ध मे जानना चाहिये कि स० १६११ वि० (सन् १८५५ ई०) मे वह आबू से हरिद्वार पहुँचे। दोनों स्थानों के बीच में सीधे मार्ग से यदि हिसाब किया जाय तो ४५० मील से कम की दूरी नहीं। उस समय दोनों स्थानों के बीच में रेल नहीं थी। निदान अनेक स्थानों पर विराजते हुये, महाराज जी हरिद्वार पधारे होंगे, किन्तु इस यात्रा से सम्बन्ध रखने वाले किसी स्थान का पता नहीं।

काशी में महाराज जी स० १६१३ वि० (सन् १८५६ ई०) मे पधारे थे। यहीं से नर्वदा नदी के स्रोत तक गये और फिर वहा से मथुरा मे श्री स्वामी

विरजानंद जी महाराज की सेवा में पहुँचे थे। यह यात्रा लगभग ६०० मील बिना रेल के हुई और काफी समय इसमें लगा। किन्तु दो चार स्थानों के सिवा अन्य स्थानो के नाम तक हम नहीं जानते।

स्पष्ट रहे कि पूर्वार्द्ध यात्रा के विषय में जो कुछ श्री महाराज जी ने स्वय लिखाया या बतलाया उस पर ही सन्तोष किया गया। उस बाबत और खोज बहुत ही कम हुई है अथवा यह कहना चाहिये कि नही हुई है। उत्तरार्द्ध के सम्बन्ध मे काफी खोज हुई है। स्वर्गीय श्री पण्डित लेखराम जी आर्य पथिक, श्री बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय जी व श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के नाम इस विषय में सदैव अमिट रहेंगे। परन्तु मैं समझता हूँ कि उत्तरार्द्ध यात्रा (जो कि विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है) में अनेक पदारोपित स्थान ऐसे प्रतीत होते है जिनके बाबत हमें कुछ पता नहीं।

सितम्बर १८७५ ई० (आश्विन सं० १९३२ वि०) की किसी तारीख को श्री स्वामी जी महाराज पूना से सतारा गये थे। यह यात्रा निस्संदेह रेल द्वारा नहीं हुई थी क्योकि एम०, एस०, एम०, (मद्रास सदर्न मरहठा) रेलवे कोरे गाव नामी स्टेशन से घोर पुरी (पूना के निकट दक्षिण ओर) तक १८-११-१८८६ ई० को खुली थी। घोर पुरी से पूना तक ४—१०—१८ ६ ई० को खुली थी और कोरे गांव तथा सतारा राड नामी स्टेशनों से ही सतारा नगर पहुँचना सुगम है। पूना व सतारा के बीच मे लगभग ६६ मील की दूरी है। लारी व मोटर का चिन्ह उस समय कहां था? महाराज जी सम्भवत. घोडा गाड़ी या बैल गाड़ी से गये होगे और शिरवल नामी स्थान में ठहरे होंगे जो कि पूना से दक्षिण ओर ३२ मील की दूरी पर है।

यदि तीन बातों को सन्मुख रखा जाय —

१ किस तारीख को एक स्थान छोड़ा और किस तारीख को दूसरे स्थान पर पहुँचे।

२. उक्त प्रकार के दोनों स्थानों के बीच में दूरी कितने मीलों की है।

(३) उक्त प्रकार के दोनों स्थानों में बीच में यात्रा का साधन क्या था; तो भली भांति स्पष्ट हो जायेगा कि उत्तरार्द्ध यात्रा के अनेक पदारोपित स्थान से हम सर्वथा अपरिचित हैं।

देखिये, कार्तिक कृष्ण २ सं० १९२९ वि० (१८ अक्तूबर सन् १८७२ ई०) को महाराज ने मुंगेर से भागलपूर के लिये प्रस्थान किया। दोनों के बीच में ४० मील से अधिक की दूरी नहीं। स्थानों के बीच मे उस समय रेल का मार्ग न था। परन्तु भागलपूर मे श्री स्वामी जी महाराज का पधारना कार्तिक कृष्ण ४ को होता है। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण मुझे पड़ताल करने पर मिले हैं।

भारतवर्ष मे सबसे पहिले १८-४-१८५३ ई० में बम्बई से थाना नामी स्थान तक अर्थात् केवल २१ मीलों की रेलवे लाइन खुली थी। श्री स्वामी जी महाराज की पूर्वार्द्ध यात्रा का कोई अंश रेल द्वारा न हुआ था और उत्तरार्द्ध यात्रा की भी एक अच्छी यात्रा पैदल ही हुई थी। अस्तु, इस प्रकार की बातों को सम्मुख रखकर उनकी यात्रा तथा पदारोपित स्थानों के बाबत बहुत कुछ लिखा जा सकता है। परन्तु यहा स्थान कहां? हां, अन्त में यह जतला देना आवश्यक है कि उनकी उत्तरार्द्ध यात्रा हमारे धर्म, जाति और देश के निमित्त विशेष रूप से हितकर सिद्ध हुई। परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उनकी उत्तरार्द्ध यात्रा द्वारा जो कुछ हितकर बाते हुई है उनमे पूर्वार्द्ध यात्रा का अच्छा योग था। बद्रीनारायण आदि में जो कुछ उन्होंने देखा था उसी का फल है कि सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवे समुल्लास मे वहां के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिख सके हैं। निस्सन्देह ऐसा क्यों न होता? सच है—यात्रा किसी भी उद्देश से की जाय वह लाभ-शून्य नहीं हुआ करती है।

–()—()◌ ◌()—()–



ब्रह्म-विचार



[ले०—साहित्यरत्न श्री पं० निरंजनदेवजी एम०एम० सिद्धांत विशारद, वैदिक मिशरी अजमेर]



दिक साहित्य में ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनों को त्रैतवाद नाम से वर्णन किया गया है। हमारा प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म है, संसार मे आस्तिक और नास्तिक भेद से दो प्रकार के विचार पाये जाते है। इन शब्दों के अर्थ आवश्यकता नहीं क्योंकि ये शब्द जन साधारण हुँच गये हैं। जो ईश्वर की सत्ता नही मानते है यथा जैन बौद्ध चारवाक आदि ये सब नास्तिकों की श्रेणी मे हैं। आर्य, हिन्दू, ईसाई, मुसल्मान आदि ईश्वर को मानते हैं इसलिये ये आस्तिक कहाते हैं। सम्प्रति वैदिक ईश्वर के स्वरूप का विचार करना है।

यदि हम साधारण मनुष्य की तरह इस संसार पर दृष्टि पात करे तो दो प्रकार का संसार मिलता है। एक जड़ दूसरा चेतन इन दोनों प्रकार के जगत् में हम प्रथम चेतन जगत् की मीमांसा आरम्भ करते हैं। इस चेतन संसार में हमें सर्वत्र असमानता दिखाई देती है। कोई राजा सम्पत्तिशाली भव्य-भवनों में विलास पूर्ण जीवन यापन करता है कोई नानाविध संकटों से परिपूर्ण जीवन पथ को विशुद्ध करने का प्रयास करता है। कहीं पर दारिद्र्य-देव का ताण्डवनृत्य हो रहा है। किसी श्रेणी में स्वास्थ्य सुधाधारा प्रसुवित होती दीख रही है तो दूसरी ओर नरकंकल ही अवशिष्ट दिखाई दे रहे हैं। प्रतीत ऐसा होता है कि वर्षों से इनमें जीवन रस नहीं सेचन किया गया। प्रश्न होता है कि इस असमानता का उदय कहां से हुआ ? उत्तर मे यही कहा जाता है मनुष्य स्वतन्त्र प्राणी है वह अपनी स्वतन्त्रता से कार्य सम्पादन करता है। उसकी अपनी इच्छाओं को रोकना ही दुःख है। यही वैज्ञानिकों का मत है "बाधनालक्षण दुःखम्" यदि इच्छा में बाधा की गई तो नैराश्य का जीवन यापन करना पड़ेगा। सुख सम्पत्ति नष्ट हो जायगी। दुःख से जब सब प्राणिवर्ग भय मानता है तो मनुष्यों की तो कथा ही क्या कहनी। किस की इच्छा है कि क्लेश का सामना करना पडे। सब सुख की कामना से प्रयत्नशील हैं। "दुःखादुद्विजते सर्व. सर्वस्य सुखमीप्सितम्" किन्तु दुःख जीवन मे मिश्रित अवश्य है। यह एक घटना किसी अदृष्ट के हाथ में है। वही अदृष्ट परमेश्वर है जो मनुष्य की अपनी इच्छा रहने पर भी सद-सत् फल-लाभ करता है। विकासवादी समस्त प्राणियों में समानता मानते हैं। हमारा भी कथन है कि यह सब समानता शरीरों में है क्योंकि शरीरों का निर्माता एक ईश्वर है और साथ ही इन सब शरीरों मे कहीं२ असमानता दृष्टि गोचर होती है। उसके लिये इतना ही कहा जा सकता है कि वह आवश्यकतानुसार परिवर्त्तन रूप है जैसे एक इंजीनियर मकान बनवाते समय जल वायु प्रकाश (तेज) का ध्यान रखता है और मलादि निष्कासन का भी ध्यान रखता है। मकानों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करना उसका अपना कर्त्तव्य है ऐसे ही शरीरों मे होता है। चेतन संसार की सुख दुःख की अवस्था देखकर सहसा प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस सुखेतरक्लेश की अवस्था से क्या प्रयोजन है ? नास्तिक लोग इसी असमानता को देखकर जो दुःख की द्योतक है किसी ऐसी शक्ति को स्वीकार नहीं करते

है। ये यहां पर जीवन मरण, हर्ष, भय, शोक, कलह आदि बातों का अवलोकन कर यह सिद्ध करते हैं कि यहां पर कितना वैपरीत्य है, क्या आवश्यकता है किसी अधिष्ठ‌ता या संचालक के मानने की शक्ति का स्वीकार करना अज्ञानता है ? विकास क्रम का अध्ययन करने स ज्ञात होता है कि प्रतिकूल परिस्थिति विकास का मूल कारण हाती है। एक वैज्ञानिक का कथन है कि इस ससार मे भंग की असमानता ही सुखसौन्दर्य का आधार है, यदि अवस्था भेद न माना जाय तो जीवन में किसी को अभिरुचि न होवे। जीवन का मूल्य मृत्यु से ही मालूम होता है। यदि मृत्यु को दूर कर दिया जाये या उसकी सत्ता ही न रहने पाये तो जीवन अपना कुछ भी महत्व नहीं रखता। नेत्रों की आवश्यकता उसी समय मालूम होती है जब किसी को हम नेत्रविहीन देखते हैं जो चलना फिरना आदि कार्यों से तंग अवस्था मे है। यह सब असमानता भोगवाद पर आश्रित है यही उन्नति का मूल कारण है। इसी आधार पर यह कार्य होते हुए देखकर आस्तिक संसार में एक शक्ति की कल्पना की जाती है। हमने उपर की पंक्तियों में इच्छा स्वातन्त्र्य का उल्लेख किया है वह स्वतन्त्रता जीव को ही प्राप्त है। मनुष्य कर्म करता है उस कर्मका फल भी दिखाई देता है इसीलिये ईश्वर की सत्ता मननी पड़ती है। कुछ यह मानते हैं कि मनुष्य के अपने कर्मो से कुछ नहीं होता, यह सब ईश्वर की ओर से उपलब्ध होता है। इस विषय को इस प्रकार वर्णन किया गया है कि पुरुष के कर्मके अभाव मे फल की निष्पत्ति नहीं होती यह उक्त कथन कि जीव को सुख दुःख ईश्वर से प्राप्य है संगत प्रतीत नहीं होता. क्यों कि ईश्वर कर्मफल का दाता है इसी हेतु से उक्त हेतु संगत चरितार्थ नही है।

न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्तेः तत्कारित्वादहेतु ।

भाव स्पष्ट है। मनुष्य कर्म किया करता है और फल ईश्वर दिया करता है। सांख्य में कर्म तीन प्रकार का वर्णन किया गया है । "शुक्लाशुक्ल, शुक्ल- कृष्णा भेदात्"। यही गीता में भी वर्णन किया गया है। कुछ एक का मन्तव्य है, जब जीव का कर्म अपना है तो फल भी स्वयं ग्रहण कर लेगा। ईश्वर की क्या आवश्यकता है। कर्म विज्ञान की गहराई मे न जाते हुए हम यह लिखेगे कि यह बात एक पल के लिए भी नही मानी जा सकती जव सब कर्म सुख के लिए ही करता है। परन्तु उसम ही दु.ख के कारण बन जाया करते हैं। ऐसी सूरत में क्या वह जीव स्वयं कई फल भोगने का अभिलाषी है जिसका फल दुःख है ? एक ओर चोरी करके क्या स्वयं कारावास की कड़ी यन्त्रणाओं को सहन करने के लिये कटिबद्ध होगा ? कदापि नहीं इसलिए न कर्म स्वय फल उत्पन्न कर सकता है और न कर्ता (जीव) स्वय स्वकृत कर्मों का फल प्राप्त किया करता है। उसे फल प्राप्ति ईश्वर द्वारा हुआ करती है। अत. चेतन जगत के देखने से एक ईश्वर की सत्ता माननी पड़ती है।

जड़ जगत्

के विषय में अब प्रकाश डालने की आवश्यकता है। विज्ञान यह सिद्ध करता है कि प्रत्येक प्रकृति का परमाणु गति करता हुआ नाना रूप धारण करता है। सब मे परिवर्तन हो रहे हैं इस परिवर्त्तन को देख कर हमे तीन बातों का ज्ञान होता है। उत्पत्ति वृद्धि और विनाश।... ... ...
कोई उत्पन्न होरहा है, किसी की वृद्धि हो रही है और कही कोई विनाश की ओर जारहे हैं विनाश से तात्पर्य यह है कि जो वस्तु जैसी अवस्था मे उत्पन्न के पूर्व थी उसी अवस्था मे पुन पहुंचने का नाम विनाश है। कार्य और कारण का परस्पर सम्बन्ध है जहां जहां कार्य है वहां वहां कारण होता ही है। बिना कारण के कार्य नहीं होता। वृक्ष की इस वर्त्त-

मान परिस्थिति को देखकर हम अनुमान करते हैं कि इस अवस्था में आने के लिए कोई कारण अवश्य था और वह है वीज रूप में, वही वीज जो मिट्टी में पड़कर धूप पानी आदि सब साधन प्राप्त कर अंकुर बना था, अंकुर बनने की अवस्था से अब यह विशाल वृक्ष बना। घड़े को देखकर उसके कारण मिट्टी का ज्ञान स्वयं हो जाता है। प्रत्येक पदार्थ जब कारण से कार्य की अवस्था तक आते हैं तो उसी ""सूद से उनमें परिवर्त्तन आने लगते हैं। यही परिवर्तन उन्हें अब इस अवस्था तक पहुँचा देता है पूर्व में थी यही परिवर्त्तन क्रम है। हम इस परिवर्त्तन को देखकर इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि इस संसार का इस प्रकार संचालन करने वाली कोई अलौकिक वस्तु है। विकास वादी हमारे मन्तव्य से दूर ई वे तो यह कहते हैं कि जिस प्रकार अब परिवर्त्तन दिखाई दे रहा है पूर्व में भी इसी प्रकार परिवर्त्तन हो रहे थे इन्हीं के कारण सृष्टि की वर्त्तमान परिस्थिति दिखाई देती है। यह जो वर्णन किया गया है यह विज्ञान के आधार पर है, तो निसंकोच मानना पडेगा कि उसके अन्दर अद्भुत शक्ति अन्तर्हित है। यदि समस्त जगत परिवर्त्तन का रूप है और सारा जगत परिवर्त्तन के सहारे पूर्व से चल रहा है आगे भी चलता रहेगा तो अन्त में यह परिवर्त्तन एक समय अवश्य ही बन्द हो जायेगा। परिवर्त्तन होना प्रकृति का स्वाभाविक गुण नहीं, स्वभाव का अर्थ सदा एक रस रहने वाला अपरिवर्त्तनशील होता है, तो यह परिवर्त्तन स्वभाव कैसा ? इस परिवर्त्तन क्रिया को देखकर ज्ञात होता है कि यह परिवर्त्तन किसी बाहर की वस्तु से आया है। उदाहरण है, एक घड़ी की सुई चक्कर करती है, तो यह चक्र पर चलती हुई किसी दूसरे से सम्बन्ध रखती है वह है घड़ी के निर्माता का। चक्र पर गति का गुण घड़ी बनाने वाले का दिया हुआ है यदि वह गति को बंद करदे तो सुई भी बन्द हो जाती है। धनुष के बाण मे अपनी गति नहीं वह आगे दौड़ता है, इसका कारण है कि धनुर्धर ने उसे वेग से फेंका है। जहां पर बाण में दिये वेग की न्यूनता होगी, बाण की गति बन्द हो जायगी। जैसे घड़ी की सुई या बाण या मिट्टी का ढेला स्वयं समय पाकर बन्द हो जायेंगे एवमेव ही सारे पदार्थ परिवर्त्तन को बन्द कर देंगे। बाण मे चलने के पूर्व स्थिरता थी वह गतिमान् नहीं था किन्तु गति आने पर गति वाला हुआ। इसी प्रकार ससार के पदार्थों की भी अवस्था है इसमे गति देने वाला कौन है ? कहना पड़ेगा कि वही परमात्मा है। डारविन की विचार धारा में ईश्वर को अवकाश नहीं था परन्तु बाद मे वैज्ञानिकों ने ईश्वर और जीव की भी खोज की, आज का वैज्ञानिक पक्ष अपनी समस्त चर्चा ईश्वर का सहारा लिए बिना प्रस्फुटित होते नहीं देखता। विज्ञान के स्वाध्याय से हमें इस प्राकृतिक जगत में श्रेणी विन्यास, याजना, धारण और विचार दिखाई देते हैं। सब बातें हमें एक चैतन्य की ओर से संकेत करती हैं। जिसका वेदोपनिषद् में वर्णन किया गया है वेद की इस गाथा पर दृष्टिपात कीजिये "स्कम्भं ब्रूहि" अर्थात् संसार के स्कम्भका वर्णन करो, इसका वर्णन करते हुए कहागया है कि "कतमस्विदेवसि" इसी आनन्दस्वरूप सत्य अविनाशी ईश्वर को ब्रह्म नाम से वर्णन किया गया है। चेतन और जड़ जगत पर विचार करने से ईश्वर की सत्ता का ज्ञान हुआ। अब हम उस ब्रह्म के स्वरूप पर विचार करेंगे। उल्लिखित पंक्तियों से जब यह सिद्ध हो गया कि ब्रह्म है, तो उसका क्या स्वरूप है यह प्रतिपादन करना भी आवश्यक हो जाता है।

ब्रह्मस्वरूप

ब्रह्म को जानने के साथ ही सर्व प्रथम उसके गुणों का ज्ञान करना आवश्यक है। बिना गुणों के ज्ञान के गुणी का ज्ञान नही होता है। ब्रह्म का स्वरूप जान लेना विज्ञान कहाता है और

उसे जानकर नियम निर्धारित करना दर्शन कहाता है। उन विषयो को जीवन में घटाने का नाम ही धर्म है। गत शताब्दि मे ईश्वर के स्वरूप को वैज्ञानिक रीत्या नहीं जाना गया है और ईश्वर की सत्तासे भी किनारा करने लगे थे। आजके विज्ञान ने ईश्वर के सम्बन्ध मे अनुसन्धान किया उसे इस पर गर्व है कि उसकी समस्त सिद्धान्त चर्चा ईश्वर को साथ लेकर चलती है। इसी ब्रह्म द्वारा संसार का कार्य चलता है। जिस ब्रह्म का व्याख्यान उपनिषदों मे किया गया है मनमे जिसका विकास है, वाणी जिसके आश्रय से बोलती है जिससे समस्त ससार के नेत्र प्रकाशित होते है, जो समस्त श्रोत्रो का श्रोत्र है, जो समस्त प्राणियो का प्राण है उसे अवश्य ही जानना चाहिये। सारा ससार आज जिसकी पूजा करता है, वह तो ब्रह्म नही है, उस ब्रह्म का स्वरूप वैदिक शास्त्रों में इस प्रकार वर्णन किया गया है। वह ईश्वर सर्वव्यापक है, निराकार है। निराकार होने से उसको शरीर की आवश्यकता नही है। जब शरीरी ईश्वर नही तो सुखदु ख जन्ममरण जरा भय के बन्धन मे वह कैसे आवेगा। अथात् नही। इसी भाव को प्रत्यक्षदर्शी विद्वानो ने प्रस्फुटित करते हुए वर्णन किया है कि—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरप्रामृष्ट पुरुष विशेषः ईश्वर॥ वेद में इसका सूत्रमिला "सपर्यगात् यजु ४०॥" ईश्वर सर्वत्र व्यापक है कोई भी परमाणु उससे रहित नही है। सर्वव्यापक ईश्वर के स्वरूप में हम सर्वप्रथम अनेक ईश्वरवाद पर विचार करना चाहते है। यह अनेकेश्वर की मान्यता कबसे प्रचलित हुई? जब वैदिककाल का पतन हुआ तभी से इसका प्रारम्भ हो गया है। विकास के आधार पर इसका उद्भव क्रम यह रखा जाता है कि जबतक मनुष्य में ज्ञान नही था, जीव और गति को पृथक् २ नहीं जानता था न इनमे स्वरूप भेद का ज्ञान था तभी जहाँ उसने गति देखी वहीं चैयन्य की कल्पना की। यही चैतन्य वस्तु देवताओं के रूप मे प्रकट हुई और उसी देवता की पूजा होने लगी। इसी क्रम से नदी, पर्वत, जल, आदि की पूजा हुई। एक वैज्ञानिक हर्बर्ट- स्पेन्सर का कथन है कि मृतक पूजा से बहू देवतावाद प्रचलित हुआ है। लोगो ने यह माना कि हमारे पूर्वज मृतावस्था मे नदी, पर्व तारागण, सूर्यादि मे रहते हैं। इसी आधार इनका पूजन चला था। इस सिद्धान्त को दैविक शक्ति का रूपदेना कहते है। इसी अनेक देवतावाद के सम्बन्ध मे मोक्षमूलर के विचार ये है—"यह वाद हमारे रूढ़िवाद से प्रचलित हुआ है" अज्ञानवश पर्वत नदी आदि को आदरणीय मान, उनका पूजनादि ही इस बात का द्योतक है। इसवाद के दो भेद होने है? जड़वाद और आत्मवाद। जड़वाद के अनुसार समस्त पदार्थों मे एक रूपता होती है वहा जड़ तथा चेतन का भेद नही "जहा जीवन वहा गति" यह सत्यसिद्धान्त माना गया। जड़वादी इस निर्णय पर पहुँचे है कि जहां गति है वहां पर प्राण भी होगा। यह एक कुतर्क है यदि इनके सामने वह वैदिक सिद्धान्त होता तो यह भ्रम नही फैलता। इस प्रकार इसको देखे, जड़ जगत् मे चेतन ईश्वर द्वारा निमित्तकारणरूप हो गति पहुंचाई जा रही है, यह समझता तो इस जड़वाद से उसका पीछा कबसे ही छूट गया होता......।

दूसरा वाद आत्मवाद या चेतनवाद कहाता है। जड़वाद को मानकर हमें यह भ्रम रहा कि संसार की जड़ शक्तिया ही चेतन का रूप हैं किन्तु यह भ्रम यहां और परिपक्व हो गया कि एक २ दैविक शक्तियों के पृथक् २ देवता निर्धारित

किये गये । जहां पहले 'मोशन' या गति को ही जीवन माना गया था वहां वही अब आत्मा का रूप धारण कर गया है, अर्थात् उस 'मोशन' को ही आत्मा मान लिया गया है। इस अवस्था में अनेक आत्मा खड़े किये गये और एक ईश्वर के स्थान में अनेक ईश्वर माने गये यह है अनेकेश्वरवाद का विशुद्ध रूप।

यदि सुजन-तोष-न्याय से यह मान भी लिया जाय कि ईश्वर अनेक हैं तो संसार की गतिविधि में हानि होनी सम्भव है। कोई भी कार्य सम्पन्न होता दिखाई नहीं देता। अनेक ईश्वर की कल्पना में क्या सब ईश्वर समानशक्ति सम्पन्न होंगे? यदि सब की समान शक्ति हो तो सबके कार्य समान ही होंगे, विशेषता कुछ भी नहीं रही। यदि न्यूनाधिक सामर्थ्य माना जाये तो एक दूसरे के कार्यों मे न्यूनाधिक गुण होना आवश्यक है। वे ही गुण उनके उत्कर्ष और अपकर्ष के चिन्ह होंगे। जिसमे गुणोत्कर्ष की प्राधानता होगी, उस ईश्वर में श्रद्धा, भक्ति, विश्वास का होना अनिवार्य हो जायगा। जहां पर न्यूनगुण संबन्धित हैं वहां पर अश्रद्धा उत्पन्न होगी फिर किस ईश्वर पर विश्वास और किस पर अविश्वास किया जायेगा। अतः इस भ्रम को दूर करने के लिये एक सिद्धान्त स्वीकार करना चाहिये और वह है एकेश्वर वाद का मन्तव्य। अनेकेश्वरवाद का निराकरण वेद ने स्वयं किया है:—

"न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते" अथर्व

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निंयमं मातरिश्वानमाहु। ऋग्०

उनिषदों मे इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। पाश्चात्य दार्शनिकों का विचार भी देखिये। मि० कोलब्रुक ने लिखा है "प्राचीन आर्य हिन्दू धर्म एकेश्वरवाद का प्रतिपादक था।" अनरेस्टेडवुड ने भी उक्त विचार ईश्वर के सम्बन्ध मे लिखे हैं। जर्मन के प्रसिद्ध दार्शनिक श्लीगल ने लिखा है — "इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता है कि भारतीयों को ईश्वर का सच्चा ज्ञान था।"

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मो वेद नेतर."

देव दयानन्द का अनुपम आदेश

"सर्व सत्य का प्रचार कर सबको ऐक्यमत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़प्रीति युक्त कराकर सबसे सबको सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धांत सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे जिससे सब लोग सहज से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

दीपक



ले

ख

क

शिवकुमार त्रिपाठी



मेरे दीपक! तुम जल जाते।
अनायास उपहास विश्वका
कर सुख से इठलाने
छाया पथ के वासी हो क्यों
खिल - खिल कर मुस्काते?
प्रेम पाठशाला के भोले
बटु ढिग तेरे आते
तिल - तिल उन्हें जलाकर निष्ठुर
तुम बलिदान सिखाते!
जैसी हवा मिली दो पल को
ढुल अविरल बह जाते
यद्यपि उत्तर मिलने पर हो
तुम पीछे पछताते!
अन्धकार के विधुर हास तुम
हो विश्वास सताते
किरणों की डोरी लेकर के
मोहन - जाल बिछाते!
कितने बाधी - बोध हीन औ,
कितने सफल फँसाते
अरे अगाध विरह - बारिध के
तम में अमित धँसाते!



वेद के सम्बन्ध में आर्यसमाजियों पर दो आरोप

[ले०—श्री पं० बिहारीलालजी शास्त्री काव्यतीर्थ]



[आप आर्य जगत के एक सुप्रसिद्ध व्याख्याता और सिद्धहस्त लेखक हैं। आपकी लेखनी और वाणी समान रूप से प्रवाहित होती है। —सम्पादक]

विद्वान् लेखक ने इस लेख मे यह सिद्ध किया है कि विरोधियों द्वारा जो आक्षेप वेदों के सम्बन्ध मे होरहे हैं वे नितान्त निर्मूल एवं भ्रांति-पूर्ण हैं।



हमारे अन्यतम वैदिक भाई पौराणिकों की ओर से हम पर दो आक्षेप किया करते हैं। इन आक्षेपों मे साधारण पेशावर उपदेश कही नहीं, बड़े २ विद्वान् भी सम्मिलित है। इन आक्षेपों के करने में हम उनको दोषी नहीं ठहरा सकते। असल मे सैकड़ो वर्षों के विश्वास के कारण उन भाइयो के ये आक्षेप होते हैं।

वे आक्षेप दो हैं। प्रथम—आर्य लोग वेद पाठ अशुद्ध करते हैं। द्वतीय-वेदों में वर्तमान वैज्ञानिक आविष्कारो का अस्तित्व मानते हैं।

इसी सम्बन्ध में काशी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री पं० बलदेव जी उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्य महोदय श्री सायणाचार्य लिखित वेद भाष्य भूमिका संग्रह के सपादन करते समय प्रस्तावना मे लिखते हैं —

'कैरपि समाजविशेषानुरागमादधानैर्वेदानां विधीयतेऽध्ययनं सह परिश्रमेण ···· परन्तु नितान्तं तान्तम स्माकं चेतो यद् मेऽन्यमतावलम्बिभिः साक धार्मिकविवादेष्वेवोपयोगायकतिपयानां मन्त्राणामेवार्थावबारणपरावहुधाः ? (१) साक्षात् कियन्ते । तानपि च प्रायशोऽवि चरिताच्चारणविधिना मन्त्रोच्चारण कुर्वन्त सन्तं कदर्थयन्ति । अतोनिखिलमपि तत्समाजकार्यजातं वेदायत्तमेवेति वदन्तोऽप्येते न खलु वेदाना समुचितरक्षणाय मन्त्राणाच पारम्पर्यविधया परिशुद्धोच्चारणे बद्धपरिकरा अवलोक्यन्ते। ······

अपरञ्चामी वेदेषु नवीनानामप्याधुनिकैः पाश्चात्यविज्ञानवेदिभिः प्रकाश्य नीताना माविष्काराणा धूम्रयानवायुयानतडिच्छकटरवनग्राहादीनां नैव कल्पिता सभावना, अपितु, वास्तविकीं सत्ता वेदे मन्यन्ते सर्वेपामाविष्कृतानां आविष्करिष्यमाणानांच विज्ञानतत्वानांमाकरो वेद एवेति तेषामभिमतं मतमिवावलोक्यते" (पृष्ठ१६-२०)

इसका आशय यह है कि आर्यसमाजी वेद पढ़ने में परिश्रम तो करते हैं मगर उनका उच्चारण अशुद्ध होता है, अपने समाज का सब काम वेदाधीन मानते हुए भी वे वेद रक्षार्थ विधिवत् वेदोच्चारण में तत्पर नहीं है और वैज्ञानिक आविष्कार रेल हवाई जहाज बिजली गाड़ी (मोटर) रेडियो इत्यादि का होना वेद में मानते हैं। जो आविष्कार हो चुके और होंगे उन सबका वर्णन वेदों में मानते हैं।

उपाध्याय जी का यह आक्षेप कि

आर्यसमाजी वेदमंत्रों का शुद्ध उच्चारण नहीं करते हैं, केवल अंशतः सत्य कहा जा सकता है। क्योकि जिन्होंने नियम नुसार वेद मन्त्रो का पारायण नहीं सीखा है वे चाहे आर्य समाजी हों या अन्य वेदानुयायी, समानरूप से परम्परागत पाठ करने में त्रुटियां कर सकते हैं और इस प्रकार के पाठदोष आर्य समाजियों से भी कहीं अधिक वे लोग करते हैं कि जिनका पक्ष पोषण उपाध्याय जी करने का साहस करते हैं। इसके अतिरिक्त उपाध्याय जी आर्य समाजियो को शुद्ध मन्त्रोच्चारण न करने किन्तु अर्थ-ज्ञान में विशेष प्रयत्न करने के लिए, परम्परागत वेद पाठियों को केवल पाठमात्र करने और अर्थ न जानने के कारण तथा पाश्चात्य स्कालरों और उनके भारतीय अनुयायियो को उभयभ्रष्ट होने के कारण अपने कोप का भाजन बनाते हैं तो शेष कौन बचता है कि जिसकी वे हिमायत करना चाहते हैं। क्या काशी में परम्परागत शैली से नव्यव्याकरण और नव्यन्याय आदि केवल वेदों की एक मात्र रक्षा के लिए प्रवृत्त संस्कृत के बड़े २ विद्वानों के सहारे आप वेदविद्या का समीचीन वितरण तीन काल में भी सम्भव समझते हैं? खेद है कि काशी में वर्षो रहते हुये भी वैदिकपाण्डित्य के तल से आप क्यों इस प्रकार अलिप्त रहे! वेद के व्यापक प्रचार न होने से, पाश्चात्य शिक्षा के बाहुल्य से, गुरुशिष्य प्रणाली के अनादर से, वेद के प्रति अक्षम्य उदासीनता से और अवैदिक शिक्षाप्रणाली की वृद्धि से आप के हृदय मे मर्मन्तुद वेदना होती है। इस विषय में हम सदा आपके साथ हैं और प्रत्येक वेदाभिमानी का भी यही औचित्य है। साथ ही हमको यह देखकर कि आर्यसमाज अपनी सामर्थ्यानुसार वैदिकसंस्कृत और वैदिक धर्म का सन्देश देश विदेशों मे गत ६० वर्ष से भेजरहा है और अपनी विशुद्ध राष्ट्रीय ब्रह्मचर्य आश्रम प्रधान गुरुकुलसंस्थाओं मे साक्षात् शिक्षा दीक्षा का भी आयोजन कर रहा है किन्तु काशी जैसे प्राचीन वेद विद्या केन्द्र में ही वैदिक संस्कृति के उत्तराधिकारियों के हाथ से ही परम्परागत वेद विद्या को समूल मिटाने के लिए जो विराट् विश्वविद्यालय करोड़ों रुपया लगाकर स्थापित किया गया है क्या उसका परिणाम यह नहीं हुआ है कि सहस्रों वर्ष से परम्परागत गुरुशिष्य प्रणाली के अनुसार वेद वेदाङ्ग की शिक्षा ग्रहण करनेवाले ब्राह्मण बालक



इस लेख के लेखक

नहीं २ प्रसिद्ध पंडितो के कुशाग्र बुद्धि बालकों को बी० ए० और एम० ए० के पीछे दौड़ते हुये देख कर प्रत्येक वेदानुयायी का शिर आत्मग्लानि से नीचा नहीं हो जाता है? विश्वविद्यालय मे कितना धन वेदाध्ययन की व्यवस्था में व्यय किया जाता है। और कितना वेदेतर आडम्बरपूर्ण

प्रदर्शनात्मक पाश्चात्य शिक्षा प्रचार में, इसका अनुभव तो निकट होने के कारण आपको अधिक होना चाहिये। अथवा क्या आप सदृश वेदज्ञों को स्वयं कांच के प्रासाद में बैठकर और अपने सदन को वज्र की भांति सुदृढ़ मानकर व्यर्थ ही औरों पर कंकड़ी फेंकने का साहस करना उचित है? वेदज्ञान के सम्बन्ध मे यास्काचार्य का अनुयायी होने के कारण आप सायणाचार्य को परम प्रमाण मानते हैं। आर्य समाज के वेदज्ञ भी इसी प्रकार ऋषि-दयानन्द को यास्क प्रचलित निरुक्त शैली को पूर्णरूप से स्वीकार करने और तदनुसार वेदार्थ करने के कारण परम प्रमाण मानते हैं।

सायणाचार्य और ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में इस प्रसंग में हम केवल योगी अरविन्द महोदय की सम्मति देकर इस आरोपनिरसन को समाप्त करते हैं। योगी अरविन्द आर्यसमाजी नहीं हैं और वे वेदतत्व के समझनेवालों मे भी नगण्य नहीं कहे जा सकते हैं, उनकी सम्मति है कि :—

"Sayana minimises because his theory of Vedic discipline was not ethical righteousness with a moral and spiritual result but mechanical performance of ritual with a material reward. But inspite of these efforts of suppression the lofty ideas of the Veda still reveal themselves in strange contrast to its alleged burden of fantastic naturalism or dull ritualism

Immediately the whole character of the Veda is fixed in the sense Dayananda gave to it the merely ritual, mythological, polytheistic interpretation of Sayana collapses, the merely meteorological and naturalistic European interpretation collapses We have instead a real scripture, one of the world's sacred books and the divine word of a lofty and noble religion.

To start with the negation of his work by his critics, in whose mouth dose it lie to accuse Dayananda's dealings with the Veda of a fantastic or arbitrary ingenuity? Not in the mouth of those who accept, Sayana's traditional interpretation For if ever there was a monument of arbitrarily erudite ingenuity, of great learning divorced as great learning too often is, from sound judgment & sure taste and a faithful critical and comparative observation, from direct seeing & often even from plainest common sense or of a constant fitting to the text into the Procrushean bed of preconceived theory, it is surely this commentry, otherwise so imposing, so useful as first crude material, so erudite and laborious, left to us by the Acharya Sayana

In the matter of Vedic Interpretation I am convinced that whatever may be the final complete interpretation, Dayananda will be honoured as the first discoverer of the right clues Amidst the chaos and obscurity of old ignorance and age long misunderstanding his was the eye of direct vision that pierced to the truth and fastened on that which was essential. He has found the keys of the doors that time had closed and rent asunder the seals of the inprisoned fountains

दूसरे आक्षेप के विषय में निवेदन है कि जो हो चुके और जो होंगे उन सब आविष्कारों का भंडार वेद है, ऐसा हम आर्यसमाजियों का मत स्वकल्पित नहीं है किन्तु हमारे पक्ष में यह स्मृति सडिंडिम घोषकर कह रही है :—

भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति—

भूत वर्त्तमान और भविष्य सब कुछ वेद से प्रकट होता है। वैदिक ऋषि साक्षात् कृत धर्मा थे। त्रिकालज्ञ थे।

वेदों में यदि वायु यान आदि नहीं थे तो रामायण में भी यह शायद कविकल्पना ही हो, राजा भोज के राज्य में जो एक घड़ी मे १० कोस अर्थात् १ घंटे मे पच्चीस कोस या ३२॥ मील जाता था, ऐसा एक घोड़ा भी किसी कारीगर ने बनाया था। इसी प्रकार वायुवेग से चलनेवाला पंखा भी। रामायण में बहुत से दिव्य अस्त्रों का वर्णन आता है। क्या यह कोरे छू मन्तर ही थे? ऋषि दयानन्द के अर्थों का जयजयकार है कि अब पौराणिक पण्डित तभी ठिकाने आ रहे हैं। वेद में वायुयान अब उन्हें भी स्वीकार है।

जयपुर के राजपंडित श्री पं० मधुसूदन झा जी "इन्द्र विजय" पृ० ११४ पर ऋग्वेद ४. १६. १ का यह मंत्र देते हुए वेदों मे विमान सिद्ध कर रहे हैं—

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः। महत्तद्वो देवस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ।

अर्थ.—बिना घोड़ों और रस्सियों के तीन पहियों का प्रशंसित रथ अन्तरिक्ष मे चलता है। हे ऋभुओ (ज्ञानियों) यह बड़ी प्रशंसा की वस्तु है जो कि पृथिवी और द्युलोक को शक्ति देते हो।

यही प्रशंसित पंडित जी लिखते हैं कि सिंधु प्रांत में वैदिक काल में एक वैज्ञानिक सूर्य चक्र था। पृ० १२१ पर बिजली से चलनेवाले अस्त्रों का भी यह वर्णन करते हैं। महाभारत मे वर्णन है कि राजा शाल्व ने "सौभ" नामक विमान लेकर द्वारिका पर आक्रमण किया था। इन विमानों मे पारे का प्रयोग होता था, यह भी पंडितजी ने लिखा है। समरांगण सूत्र-धार, शुक्र नीति कौटिल्य के अर्थ शास्त्र में भी वैज्ञानिक (रसायनिक) अस्त्र, और विषवाष्प का वर्णन है। विद्वानों द्वारा विद्या के मर्म छिपाये रहने से यह सब रहस्य लुप्त होगये। साधारण जनता इन बातों को देवी देवता और मन्त्र जन्त्र की करामात समझती थी और अब भी समझती मगर बुद्धि कहती है वह विज्ञान के चमत्कार थे। मोहनजादरो और हरप्पा को खुदाई से पहले क्या कोई यूरोपियन यह मान सकता था कि प्राचीन समय में भारतीय वास्तु कला इतनी समुन्नत थी। वैदिक काल के लोग सूर्य, तारा, चन्द्र, वायु, विद्युत मेघ आदि तथा भूम्याकर्षण विज्ञान से परिचित थे यह तो वैदिक साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक श्री पं० सामश्रमीजी ने भी लिखा है। देखो ऐतरेयालोचन।

भावी आविष्कार भी वेद में संभव हैं। न्यूटन के आविष्कार से पहले भी गुरुत्वाकर्षण तो विश्व में था ही। नित्य सब देखते भी थे। परन्तु न्यूटन की बुद्धि में यह विज्ञान स्फुरित होगया। जड़ सृष्टि के सब रहस्य वेद में बीज रूप से निहित हैं। सृष्टि रूपी नकशे का वेद विवरण पुस्तक भूगोल है। वैदिक शब्दों में अपार ज्ञान है। स्थूल सृष्टि का शब्दमयरूप वेद भगवान् हैं। वैदिक देवता सृष्टि के तत्व ही हैं। प्राकृतिक शक्तियाँ ही हैं। अत. वेद के शब्दों का पूर्ण प्रत्यक्ष होने पर सृष्टि का कोई भी रहस्य गुप्त नहीं रह सकता।

इसके सम्बन्ध में श्री अरविन्द घोष की निम्न सम्मति है.—

There is then nothing fantastic in Dayananda's idea that Veda contains truth of science as well as truth of religion. I will even add my own conviction that Veda contains the other truths of a Science the modern world does not at all possess, and in that case Dayananda has rather understood

than overstated the depth and range of the Vedic wisdom. *Arbind Ghosh.*

ऋषि दयानन्द ने श्रद्धा से वेद पढ़ा। और उसके रहस्य को समझा। हमारे ऋषि का दृष्टिकोण न पाश्चात्य था न पौराणिक। उसने वेद को इन चश्मों की सहायता से न देखकर अपनी दृष्टि से देखा अतः वेद भगवान् के भण्डार में सर्व विभूतियाँ उसे दिखायी दीं। पौराणिक संस्कारों और पश्चिमीय विचारों से अभिभूत दृष्टि वालों को वेद भगवान की वह छवि दिखायी नहीं दे सकती जो कि आर्ष दृष्टि से देखी जा सकती है। वेद भगवान् का स्वयं उपदेश है—

उतत्वः पश्यन्नददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ऋ० १०।७१।४।

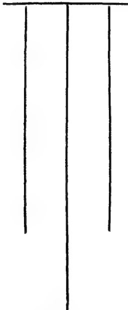
वेद वाणी को देखता हुआ भी (अश्रद्धालु तथा प्रतिभाहीन) नहीं देख सकता। सुनता हुआ भी नहीं सुन सकता। तपस्वी, श्रद्धालु, प्रतिभावान् पर वेद के सब रहस्य प्रकाशित होते हैं। ईश्वर न करे यदि यूरोपियन समर अधिकाधिक भयंकर होगया तो क्या यूरोपियन कला कौशल जीवित रह सकता है? यदि वर्तमान वैज्ञानिक यांत्रिक सभ्यता नष्ट हो जाय तो क्या फिर यह कथा की ही वस्तु न रह जायगी? क्या इस इतनी पुरानी सृष्टि में ऐसे परिवर्तन बार बार न हुए होंगे? यदि हाँ, तो बस भारतीय पत्र-कला और विज्ञान के चमत्कार भी इन परिवर्त्तनों में नष्ट होगये। हाँ तपस्वी ब्राह्मणों ने येनकेनप्रकारेण वेद को सुरक्षित रक्खा अतः वे नमस्य हैं। "नम. परमऋषिभ्यो नम परमऋषिभ्यः"

—()—()○·०·○()—()—

दीपावली



ले ख क



श्री शातिनदन एम० ए०



विश्व के काले पटल पर
आज है दीपावली।
झिल मिलातीं तारिकाएँ
मौन है सारा गगन।
रूठ कर निशि ने छिपाया
चाँद सा अपना बदन।
हांपता, भागा कहीं को
जा रहा आकुल पवन।
मुँह छिपाए कोटरों मे
नभ चरों की मंडली।
विश्व के काले पटल पर
आज है दीपावली॥

काँपता कुछ कह रही है
कान मे तरु के लता।
सिर झुकाए है दिखाते
सुमन निज असमर्थता।
स्वच्छ सर का व्योम के
तारे रहे है कुछ बता।
ध्यान से सुनती निकट ही
रात्रि गन्धा की कली।
विश्व के काले पटल पर
आज है दीपावली॥

व्यथित आज सरस्वती है
देख चिन्ता की घटा।
शोक पूर्ण समाज सारा
कान्ति क्रीडा से हटा।
जान यह लक्ष्मी वदन पर
छा गई नूतन छटा।
गुप्त भावों का प्रदर्शन
रात में करने चली।
विश्व के काले पटल पर
आज है दीपावली॥



आर्यसमाज और पाकिस्तान

[ले०—श्री प० सूर्यदेवजी शर्मा साहित्यालङ्कार सिद्धान्तशास्त्री एम० ए० एल० टी० अजमेर]

[आप आर्य जगत् के एक प्रतिभाशाली विद्वान्, सुविख्यात कवि एवं मार्मिक लेखक हैं। आपकी भाषा सुपरिष्कृत तथा हृदयग्राहिणी होती है। —सम्पादक]

प्रस्तुत लेख मे विद्वान् लेखक ने पाकिस्तान योजना को निराधार एवं अव्यवहार्य सिद्ध करते हुये भारतवर्षकी अखण्डता का सम्यक् तया प्रतिपादन किया है।



गत दो वर्षों से संसार के लगभग सभी उन्नति शाली देश युद्ध की भीषण ज्वाला मे प्रज्वलित हो रहे है। इधर हमारा भारतवर्ष यद्यपि अभी तक ईश्वर की कृपा से युद्ध की भीषण ज्वाला से तो बचा हुआ है लेकिन दुर्भाग्य से उसमे एक ऐसी विपत्ति उठ खडी हुई है जो उसको छिन्न-भिन्न करके कई भागो म विभाजित कर देना चाहती है। जहाँ दूसरे देश अपने ऊपर आई हुई आपत्ति का सामना करने के लिए सब प्रकार से सगठित होकर अपने राष्ट्र की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो रहे हैं, वहाँ हमारा देश अपने ही सपूतो (?) की बुद्धिमत्ता और करनी से टुकडों मे बटने जा रहा है। इस देश विभाजन के लिए जो योजना तैयार की गई है वह पाकिस्तान के नाम से प्रसिद्ध है और वह हमारे विरादने वतन कुछ मुसलमान भाइयों के दिमाग की उपज है।



अब से लगभग दो वर्ष पूर्व अक्टूबर सन् १६३६ ई० मे मैंने "खतरे का बिगुल" नाम की एक पुस्तक प्रकाशित कराई थी। उसके द्वारा हिन्दू जाति को इन सब विपत्तियों से सचेत किया गया था जो निकट भविष्य में उस पर आने वाली थीं। उनमे सबसे अधिक प्रकाश पाकिस्तान की योजना पर डाला गया

था और भारत का नकशा खीचकर यह दिखलाया गया था कि उस समय तक गुप्त रहने वाली उस योजना के अनुसार भारतवर्ष के किस प्रकार विभाग किए जाने वाले है उस समय तक यह योजना एक प्रकार से गुप्त ही रक्खी जा रही थी। तब तक न तो मुसलिम लीग ने उसे अपनाया था और न मि० जिन्ना ने उसको अपना तथा मुसलिम लीग का ध्येय उद्घोषित किया था और न अपने देश-वासियों को उसका विशेष पता ही था।

वैसे पाकिस्तान की योजना का जन्म तो सन १६३० के लगभग ही हो चुका था। पाकिस्तान योजना क्या है? पहले पहल पाकिस्तान की रूप रेखा कैम्ब्रिज विश्व विद्यालय में पढ़ने वाले एक भारतीय मुसलमान युवक ने खींची थी। उसका पाकिस्तान पंजाब, अफगानिस्तान, काश्मीर और सिन्ध के प्रथम अक्षरों को लेकर और बिलोचिस्तान के आखिरी "तान" को जोड़कर बना था अर्थात् Pumjab से P' Afganistan से A Kashmir 'K Sindh से 'S और Bilochistan से tan लिया, इस तरह 'पाकिस्तान" शब्द बन गया। उसके पाकिस्तान की तह मे यह भाव था कि भारत के मुसलमान भारत के पाकिस्तान से लेकर योरूप से तुर्किस्तान तक एक मुस्लिम साम्राज्य कायम करे।

हैदराबाद की मुस्लिम कल्चर सोसाइटी के मंत्री सैय्यद अब्दुल लतीफ ने पाकिस्तान की जो योजना तैय्यार की थी उसके अनुसार उन्होंने मुसलमानों के रहने के लिए चार बड़े२ मंडल बनाये थे:—

(१) उत्तरी पश्चिमी मुस्लिम मंडल जिसमे पंजा, सीमाप्रांत, काश्मीर, सिन्ध, बिलोचिस्तान आदि सम्मिलित है।

२—देहली लखनऊ मुस्लिम मण्डल जिसमें देहली प्रान्त तथा लखनऊ तक पश्चिमी संयुक्त प्रांत सम्मिलित है।

३—उत्तरी पूर्वी मुस्लिम मंडल जिसमें आसाम और बंगाल सम्मिलित हैं।

४—दक्षिणी मुस्लिम मण्डल जिसमें हैदराबाद राज्य तथा मद्रास प्रान्त सम्मिलित हैं।

इन समस्त मण्डलों और प्रान्तों से हिदुओं को अलग होना पड़ेगा और शेष प्रान्तों में जाकर उन्हें शरण लेनी पड़ेगी। ये सारे मण्डल मुसलमानों के निवासार्थ उन्हीं के अधिकार मे रहेगे और सब मिलकर पाकिस्तान कहलायेंगे। शेष बचे हुये प्रान्त हिदुओं के लिए होंगे और वे हिन्दुस्तान कहे जायंगे। पाकिस्तान की मि० अब्दुल लतीफ द्वारा बनाई हुई मोटे तौर पर यह रूप रेखा है। यद्यपि यह अन्तिम नहीं है और मुस्लिम लीग ने या जिन्ना साहब ने अभी तक पाकिस्तान की कोई निश्चित परिभाषा भी नहीं की है फिर भी हिंदुस्तान को पाकिस्तान बनाने का स्वप्न लगभग सभी मुसलमान नेता देख रहे हैं। हिन्दुस्तान के टुकड़े करने पर लगभग वे सभी तुले हुये हैं और अब मुस्लिम लीग ने तो पाकिस्तान को अपना अन्तिम ध्येय ही बन लिया है।

अभी हाल में बम्बई के भूतपूर्व कॉंग्रेसी मिनिस्टर श्री कन्हैयाला मुन्शी ने समस्त भारत में भ्रमण करके पाकिस्तान योजना के विरोध में "अखण्ड भारत आन्दोलन" खड़ा किया है। आर्यसमाज का इस विषय में क्या मंतव्य और कर्तव्य है?

यह तो निश्चित है कि हमारा धर्म कभी हमें इस बात की आज्ञा नहीं सकता कि जिस मातृ भूमि मे हम उत्पन्न हुए और पालित पोषित होकर बड़े हुए उसके टुकड़े होते हुये अथवा उसका पराभव हम देख सकें।

अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के पृथ्वी सूक्त में में मातृभूमि की प्रशंसा करते हुए बार बार यह प्रार्थना की गई है कि हमारी मातृभूमि असंबाध,

सुख संपति शालिनी और अखंड रहे। उपरोक्त सूक्त के दूसरे ही मन्त्र में "असंबाधम् मध्यतो मानवानाम्" इत्यादि कहकर हमारे इस कथन की पुष्टि की गई है। इस प्रकार आर्यसमाज जो वेदों को ही अपना सबसे बड़ा प्रमाण ग्रन्थ मानता है इस बात को कभी सहन नहीं कर सकता कि जिस भूमि मे उनका जन्म हुआ उसी भारत भूमि के टुकड़े २ कर दिए जायें और यह उसको चुपचाप देखता रहे। इसीलिए समस्त आर्य समाजियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे पाकिस्तान जैसी देशहित विघातिनी योजना का तन मन धन से पूर्ण रूप से विरोध करें।

आर्य समाज का रुख इस संबन्ध में क्या रहे? गत हैदराबाद सत्याग्रह के सम्बन्ध में "अजमेर से देवेन्द्र स्पेशल ट्रेन" भेजने के लिए धन और जन समग्रह करते हुए मैं भी पंडित देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री के साथ युक्त प्रान्त में भ्रमण कर रहा था तो मेरठ से देहली जाते हुये ट्रेन मे एक मुसलमान सज्जन से भेंट हुई जो मेरठ मुस्लिम लीग के मन्त्री थे और बात चीत के पश्चात् उन्होंने हम लोगों से प्रश्न किया कि पाकिस्तान के सम्बन्ध में आपका और आर्यसमाज का क्या विचार है? इसका उत्तर हमारे पूज्य शास्त्री जी ने बड़ा ही समुचित दिया और मैं समझता हूँ कि इस संबन्ध मे प्रत्येक आर्यसमाजी का यही उत्तर और विचार होना चाहिए। शास्त्री जी ने कहा कि यदि मुसलमान भाई अंग्रेजों से भारत को स्वतन्त्र करा सकें तो बड़ा अच्छा है, लेकिन एक तो भारत वैसे ही परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ा हुआ है, दूसरे उसके अंगों को काट कर टुकड़े कर दिये जॉय, इससे बढ़ कर पाप अपनी मातृभूमि के प्रति और क्या हो सकता है?

आर्यसमाज इसका घोर विरोध करेगा।

ऊपर वर्णित वेद की आज्ञा तथा मातृभूमि के प्रति श्रद्धा और स्वदेश भक्ति की भावना के अतिरिक्त आर्यसमाज इसलिए भी भारत के टुकड़े होना सहन नहीं कर सकता क्योंकि भारत भूमि ही आर्यावर्त रहा है। यहा वैदिक सभ्यता, भाषा तथा धर्म, का आदि स्रोत और भंडार है और भारत के टुकड़े होने का अर्थ है भारतीय सभ्यता, धर्म और भाषा पर कठोर कुराघात। इसलिए—

अखण्ड भारत रहे सर्वदा,
यही हमारा ध्येय रहे।
धर्म, सभ्यता, भेष भावना,
गौरव शाली गेय रहे॥

अग्रवाल विधवा की आवश्यकता

एक ऐसी विधवा (अग्रवाल) स्त्री जिसकी आयु २० वर्ष से कम व २५ वर्ष से अधिक न हो, गृह कार्य में दक्ष हो, पढ़ना लिखना जानती हो, की आवश्यकता है। वर महोदय आर्यसमाज के पदाधिकारी हैं। वर की मासिक आय १००) माह वार है निज का पक्का मकान है कपड़े की दुकान है। भाई आदि अन्य कुटम्बी धनी व योग्य व्यक्ति हैं। आयु २७ वर्ष के लगभग है। जो महाशय घर से विवाह करना चाहें उन्हे विशेषता दी जावेगी पत्र व्यवहार करें। —मन्त्री

आर्यसमाज खैर (अलीगढ़)

आवश्यकता है

एक स्वस्थ सुन्दर कन्या की जिसकी आयु १५ साल की हो कायस्थ श्रीवास्तव दूसरे यू० पी० के हों कन्यागृह कार्य में होशियार पढ़ी लिखी हो—

वर के पिता अच्छी हैसियत के जमीदार हैं वरकी आयु १६ साल की है जो कि स्वस्थ सुन्दर अंग्रेजी हिन्दी तालीम पा चुका है। पत्र व्यवहार का पता —

"मालगुजार" धानोरा
इस्टेशन व पोष्ट बामोर सी० पी०
"जी०, आई, पी० रेलवे"

उर्दू का दूषित प्रचार

[ले०—श्री चन्द्रमणिजी उपमन्त्री—आर्यकुमार महासभा, बड़ोदा]

[इस लेख में विद्वान लेखक ने उर्दू के दूषित प्रचार को दिखलाते हुये यह सिद्ध किया है कि यदि भारतवर्ष की कोई राष्ट्र भाषा हो सकती है तो वह हिंदी ही है। —सम्पादक]



वर्तमान मे हमारे देशमे उर्दू के सबध में बहुत कुछ भ्रम फैला हुआ है। अनेक कांग्रेसी और मुसलमान भी कहते रहते है कि उर्दू ६ करोड मुसलमानो की भाषा है।

जब राष्ट्रभाषा का प्रश्न उठता है तब उसके साथ उर्दू को भी सम्मिलित किया जाता है। परन्तु राष्ट्र भाषा हिन्दी के इतिहास को यदि हम जान लें तो हमारा भ्रम शीघ्र ही हट जाता है। महात्मा गाधी जी द्वारा स्थापित वर्धा शिक्षण समिति ने भी इस विषय मे जो गभीर भूल की है उसे हममे से बहुत नही जानते है। जाकिरहुसैन समिति की बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा के सबध मे प्रकाशित विवरण एव विस्तृत पाठ्यक्रम को देख लेना चाहिये उसी पुस्तक के पृष्ठ ३७ पर लिखा है—

"हिन्दुस्तानी—

जहा हिन्दुस्तानी ही बोली जाती है, वहा की यह मातृभाषा होगी। पर वहा के शिक्षकों और बच्चों दोनों के लिये नागरी और फारसी दोनो लिपियों (खतों) का सीखना लाजिमी होगा ताकि वे हिन्दी और उर्दू मे लिखी किताबो को पढ सकें। दूसरे प्रान्तो में जहा की मातृ भाषा प्रान्तीय भाषा होगी, हिन्दुस्तानी पाचवे और छठे दरजे मे लाजिमी रक्खी जायगी। और बच्चों को किसी एक लिपि को चुनकर सीखने की स्वाधीनता होगी। पर शिक्षकों को तो दोनो तरह के बच्चो से काम पडेगा, इस लिये अच्छा है कि वे दोनों लिपिया सीख लें। कम से कम हर स्कूल में दोनों लिपियों के सिखाने का प्रबन्ध होना चाहिये।"

प्रत्येक स्कूल मे उर्दू और नागरी सीखने का काम भार रूप हो जायगा। उत्तरी भारत के लोग उर्दू जानते हैं और बोलते हैं इसलिये प्रत्येक सार्वजनिक पाठशाला मे, देश भरमे दोनो लिपियों के शिक्षण का प्रबन्ध करना मुस्लिमों को खुश करने के बिना दूसरा कुछ नहीं है। समस्त देश के स्कूलों में, अल्पसख्यक मनुष्यों मे बोले जाने वाली उर्दू को प्रचलित करने मे कोई बुद्धिमत्ता नही है।

सन १६३१ की जनगणना मे भिन्न भिन्न भाषाओं का बोलने वाले लोगों की सख्या निम्न प्रकार है—

पश्चिमी हिन्दी	७१५४७०००
बगाली	५३४६६०००
तेलुगु	२०८६००००
तामिल	२०८१२०००
पजाबी	१५८३६०००
राजस्थानी	१३८६८०००
कनाडी	११२०६०००
उडिया	१११९४०००
गुजराती	१०८५००००
बर्मी	८८५४०००
मलयालम	६१३८०००
पश्चिमी पंजाबी	८४६६०००

देश में पढ़े लिखों का प्रमाण प्रति सहस्र में ६५ है।

धर्मानुसार पढ़े लिखों का प्रमाण प्रति सहस्र मे निम्न है:—

सर्व धर्म	६५
हिन्दू	८४
सिख	६१
जैन	३५३
बौद्ध	९०
पारसी	७६१
मुसलमान	६४
ईसाई	२७६
यहूदी	४१६
अस्थिर जातियाँ	७
अन्य	१६

शिक्षित मुसलमानों का प्रमाण केवल ६४ ही है। उर्दू मुस्लिमों को प्रिय है तो उर्दू की व्यवस्था अलग स्कूल में क्यों न की जाय? प्रत्येक स्कूल मे लिपि सिखाने की व्यवस्था और प्रत्येक शिक्षक को उर्दू सीखने की अनिवार्य आवश्यकता क्यों करनी चाहिये? इसलिये न कि अल्प संख्यक पुरुषों में प्रचलित उर्दू को हम प्रसिद्ध करना चाहते हैं?

क्या इसी का नाम राष्ट्रीयता है?

देश के नगरों में तो उत्तरीय भारत के शहरों के कुछ शिक्षित मुस्लिमों को छोड़कर उर्दू तो केवल किताब की भाषा रह गई है।

उर्दू ६ करोड़ मुसलमानों की भाषा नहीं है।

प्राय: लोग ऐसा मानते हैं कि ६ करोड़ मुसलमान उर्दू लिखते हैं और पढ़ते हैं। पर यह बात असत्य है। जब देश में पढ़े लिखों का प्रमाण ही प्रति शतदश के लगभग है तो उर्दू के पढ़े लिखों की संख्या क्या होगी? उर्दू मुसलमानों की धार्मिक अथवा सस्कृतिक भाषा नहीं है।

मुस्लिमों की बड़ी संख्या बंगला में है। परन्तु वहा के मुसलमान तो उर्दू नहीं बोलते। केवल बंगला ही बोलते हैं। इसी प्रकार सिंध के मुसलमान सिंधी, गुजरात के गुजराती, महाराष्ट्र के मराठी, कर्नाटक के कनाडी, मद्रास के तामिल और तेलुगु बोलते है। पजाब की भाषा उर्दू नही परन्तु पजाबी है। पंजाब मे पढे लिखे उर्दू बोलते हैं किन्तु घरों में पजाबी ही बोलते हैं। इस प्रकार उर्दू नव करोड़ मुस्लिमों की भाषा नहीं है। सब प्रान्तों में प्रान्तीय भाषा ही बोली जाती है। इसलिये यह समझ मे नहीं आता कि जो भाषा किसी समस्त प्रान्त की भाषा नहीं है, किसी भी संपूर्ण जन समुदाय के बोल चाल की भाषा नही है उसे इतना महत्व क्यों दिया जाता है? उर्दू का जन्म स्थान हिंदी है। उसने कभी भी अपने मूल स्रोत के प्रति जाने का प्रयत्न नहीं किया। अरबी और फारसी लिपि मे लिखे जाने के कारण वह कुंठित हो गई है। सस्कृत, हिन्दी और तज्जन्य भाषाओं के ध्वनियों का वर्गीकरण जितना पूर्ण एवं वैज्ञानिक है वैसा ससार भर की दूसरी किसी भाषा का नहीं है। उर्दू में शुद्ध संयुक्ताक्षरों को बोलने की और लिखने की शक्ति नही है।

किसी भी दिन आप रेडियो को सुन लीजिये। हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू साहित्य, मुस्लिम संस्कृति एवं उर्दू भाषा का ही प्रचार किया जा रहा है। ऐसाही आपको प्रतीत होगा। कोई भी संस्कृत शब्द का शुद्ध उच्चारण आपको सुनने को मिलेगा ही नहीं। कभी रेडियो के सचालकों को शुद्ध हिदी बोलने वाले नहीं मिलते? अनेक उर्दू और फारसी शब्दों के अर्थ रेडियो में समझ में ही नहीं आते। बम्बई प्रान्त के वर्तमान पत्रों में इस संबन्ध में अच्छी चर्चा चल रही है।

निजाम के हैदराबाद स्टेट मे जहाँ हिन्दू ९० प्रतिशत हैं वहाँ भी वर्तमान में शिक्षण के माध्यम

की भाषा उर्दू करने की आज्ञा निकली है। जहाँ धार्मिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के लिए सत्याग्रह हुआ था वहाँ की वर्तमान परिस्थिति यही है और वहां की उस्मानिया युनिवर्सिटी ही तो मानों इस्लामी संस्कृति के प्रचार का केन्द्र बन गई है।

इसी संदर्भ में भारत के भूतपूर्व वाइसराय महोदय लार्ड इरविन के शब्द निम्न हैं:—

It will be the task of mature statesmanship so to shape the policy of the University that it may have as strong an appeal to the Hindus as to the Mohamedans subjects of your Exalted Highness,"

अर्थात्—हिंदू और मुस्लिम दोनों प्रजाजनों के हृदयों को आकर्षित करने वाली नीति यूनिवर्सिटी के संबन्ध में रखने में ही आप श्रीमान् की पक्की राजनीति होगी। किन्तु इस सलाह को निजाम सरकार ने न मानकर अपनी मुस्लिम परस्त नीति को ही चालू रखा है।

इसी प्रकार भारतीय एवं प्रांतीय सरकारों की विज्ञप्तियां, सूचनाएं एवं समाचारों में भी अरबी फारसी मय उर्दू का ही प्रयोग होता रहता है जिसको सामान्य भारतीय जनता कभी भी समझ नहीं सकती। इसका कारण केवल यही है कि इसके चावी रूप स्थानों पर मुस्लिम अधिकारियों का प्रभुत्व है।

अतः यह आवश्यक है कि इस अखंड भारत को छिन्न भिन्न करने वाली और भारतीय संस्कृति को हानि पहुँचाने वाली भाषा-विषयक प्रवृत्तियों को रोकने के लिए प्रत्येक भारतवासी को कटिबद्ध होना अनिवार्य है। इसमें विलंब करने से ये प्रवृत्तियां अपनी जड़ें मजबूत बना लेंगी तो इसका विरोध करना मुश्किल हो जायगा और सदा के लिए हमको घाटा उठाना पड़ेगा।



विजय-यात्रा



[कविराज श्री रत्नाकर शास्त्री आयुर्वेद शिरोमणि 'गुरुदेव']



जीवन करूंगा आज सफल वहां मै मातु,
देश के जहां पै बलिदान वीर होते हैं।
खोई हुई ढूंढनी स्वतन्त्रता मुझे है, जहां,
लाखों लाल जाति के सहर्ष प्राण खोते हैं॥

शान्ति को लगाना है गले से 'गुरुदेव' आज,
गोले जहां तोप के धमाके भरे होते हैं।
मेरे मरने की तुम्हें सूचना मिलै तौ मातु,
जानना विराम हेतु लाल कहीं सोते हैं। १।

जीवन मे सारता बताओ और है ही कौन
अगर न जन्म भूमि जननी की पीर है ?
उसकी मनुष्यता मे शक है हमें तो सदा,
दु ख देख दीनों के न दृग मे जो नीर है ॥
व्यर्थ ही बिगाड़ी कोख उसने किसी की यदि
मेट ही न पाया दास पन की लकीर है ।
मर के भी अमर रहेगा वही बीर जो कि,
जननी तुम्हारे हेतु सतत अधीर है । २ ।

जग जान लेवे आज युवक अधीर हमें,
होने की शपथ ही स्वतन्त्र आज खा ली है ।
हम न रुकेंगे विश्व रोकता भले ही रहे,
सर्व शक्तिमान सी सुशक्ति आज पा ली है ॥
सुख और दु ख का विभेद 'गुरुदेव' मेटा,
देखा मातु जब से तुम्हारा भाल खाली है ।
चमक उठा है उर अन्तर हमारा देवि,
भभक उठी है एक ज्वाला ही निराली है । ३ ।

करने चलूं ग जिस काम को कभी मैं मातु,
साधन वे बिन ही जुटाये जुट जायेंगे ।
बाधक बन आयेंगे हमारे बीच भूधर भी,
सच मान मेरी फूक से ही हट जायेंगे ॥
गर्जना करूंगा जो कराल समराङ्गण मे,
जड भी ह सुभट समक्ष डट जायेंगे ।
ते ी सुवि ा विधान को रचेंगे हमीं,
रुद्र भी हों विधि के विधान मिट जायेंगे ।४।

जिसकी ही रज से बनी है यह भव्य देह,
मेरे सुख उसके पदों पै छुट जायेंगे ।
तेरी धूल चाट के पले हैं हम लालित हो,
लाल ये तुम्हारे तुम पै ही लुट जायेंगे ॥
अरि दलने को जब सदल चलेंगे मातु,
झंझा झुकि बादर से वैरी फट जायेंगे ।
मेटने चल हैं हमे, विश्व देख लेगा आज—
हम मिट जायेगे कि वे ही मिट जायेंगे । ५ ।



* लक्ष्मी-पूजन *

[ले०—श्री बाबू एस० आर० गुप्ता, "उम्मीद"]



"कि धर निकले ?'

'क्यूँ भला? खूब लक्ष्मी दूर घूमने।"

'घूमने और इस समय ?"

'हाँ, फिर इसमें हुआ क्या ?'

'आज लक्ष्मी पूजन है न! संध्या का समय हो रहा है और आपका लक्ष्मी पूजन करना छोड़ ऐसे समय घूमने जाना! भला इसे कहा भी क्या जाय?"

"ऊँ, वह तूही करता बैठ। मुझे तो उस लक्ष्मी पूजा मे कुछ भी महत्व नहीं जान पड़ता। फिर ऐसी चचल अविचारी एवं अंधी लक्ष्मी का पूजन भी भला कौन करने चला? जिन स्वार्थी, कृपण, झूठे लोगों पर यह प्रसन्न होती है वे ही उसकी हाँजी, हाँजी किया करे। वेही करें उसका पूजन और फिर अपने घरमे ऐसा है भी क्या जिसके द्वारा लक्ष्मी को प्रसन्न किया जाय आशक्त किया जाय? न दीपों की सजधज न स्वर्णिम अलकार। हमारे जेब मैं ताबे के चार टुकडे भी न मिलेगे। फिर भला ऐसी भिक्षुक-पूजाकी उन्हे क्यो कर पर्वाह होगी ?"

"धनी इनके दीपक जलावें, हीरे मोतियो की चकाचौंध से लक्ष्मी की पगडंडी को प्रकाशित करें तब कहीं धनी-मानी भक्तो की चौकी पर लक्ष्मीजी थोड़ी देर खड़ी रहती हैं।"

"इस समय उसके भक्त मनोवाछित वर मागले। ऐसे ही धूर्तो को लक्ष्मी जी अपनी करोंजुली भर भर सम्पत्ति लुटाती हैं।"

ऐसा कहकर मैं शीघ्र ही घर से बाहर चल दिया और अल्प काल ही में शहर के बाहर पहुँच गया।

काफी अधकार हो चुका था।

वह अमावस्या की रात्री थी। तो भी हमेशा काले वस्त्र धारण करने का शौक रखने वाली रजनी देवीने आज भूरे रंग के वस्त्र परधान किये थे।

शहर के बाहर सड़क के दोनों किनारो पर नीमवृक्षावली थी उन वृक्षों के नीचे दुर्भागी भिक्षुकों की झोपड़ियाँ थी।

झोपड़ी भी क्या? अनेको टुकडे मे जोडे हुए मैले कुचैले वस्त्र व किसी प्रकार चार काठ की लकड़ियों की सहायता से की हुई आड़ ही इनको झोपडा।

उन झोपडियों मे मनुष्यो को ठीक तरह बैठते भी न बनता होगा फिर खड़ा रहना तो भला दूर रहा। बहुधा सर्प सदृश हा सरपट भिखारियों को उनमें प्रवश करना पड़ता होगा।

दीपावली का दिन था। परन्तु एक भी झोपड़ी में दीपक न था। सभी लोग अपनी अपनी झोपड़ी के बाहर बैठकर तारो के क्षीण प्रकाश मे अपने नित्य कर्म से निवृत हो रहे थे। निसर्गका दीप पुंज लाखो कोसों के अन्तर पर रहने वाले दीन दुखिया को प्रकाश पहुँचाने के लिए ही मानो सतत जल रहा हो।

झोपड़ी के बाहर खुले मैदान मे उनका सारा संसार था। एक मटका, एक फटी सी गुदड़ी और चार लकड़ियाँ बस इतनी थी उनकी सम्पत्ति।

कोई कोई भिखारिणी अपनी गोदी से बच्चे को बांधे वस्त्रहीन सिर पर, टूटी हुई टोकनी लिए शहर से अपने डेरे की ओर आ रही थी।

उनका शरीर आधा ढका हुआ था, परन्तु उनके लड़के तो नंगे ही थे।

थोड़ी देर मैं वहाँ खड़ा रहा।

एक पांच छः वर्षीय लड़का शहर की ओर अँगुली दिखा पूछने लगा—"आज इतनी रोशनी क्यों है, माँ?"

"अरे आज दिवाली है इसीलिए तो जिधर देखो उधर लोगों ने दिये ही दिये जलाये हैं। आज दिये जलाने से उनके उजाले मे लक्ष्मी घर में आती है।"

"फिर अपने दिये क्यों नहीं जलाये? हम भी भी जलायेंगे न?"

"अरे दिये जलाये के लिए प्रथम तो घर में लक्ष्मी चाहिये। लक्ष्मी नहीं तो दिया नहीं और दिया नहीं तो लक्ष्मी नहीं बेटा?"

माँ बेटे का यह संवाद सुन मेरे हृदय में व्याकुलता जल उठी।

मैंने शहर की ओर नजर फेंकी। आकाश गंगा के अगणित तारे पृथ्वी पर आ बसे थे। गगनचुम्बी प्रासाद दीप-माला के तेज से प्रकाशित दिखाई दे रहे थे। चारों ओर दीपक ही दीपक। सतत तीव्रप्रकाश देने वाले विद्युत् दीपक और मंद मंद प्रकाश प्रसारक दीप। दोनों ही रात्री का दिन करने में एक दूसरे की स्पर्धा कर रहे थे।

मैं इसी विचार तंद्रा में था कि निकट से एक दीव्य-ज्योति निकल गई। परन्तु वह दिव्य ज्योति न होकर लक्ष्मी देवी का रत्न खचित रथ था।

उस पर आरुढ़ हो देवी शहर में प्रविष्ट हो रही थी।

रथ मंद गति से चल रहा था इसी कारण मैं भी रथ के पीछे पीछे जा सका।

प्रथम लक्ष्मी जी एक लक्ष्मीपति की दुकान में प्रविष्ट हुईं। दुकान का प्रवेश द्वार विविध रंगों के विद्युत् दीपको से ऐसा प्रकाशित था मानों लक्ष्मी जी को मार्ग शोधने में कोई दिक्कत न हो।

बैठक में स्वच्छ चादराच्छादित गद्दियाँ थीं। उन पर थे कालीन बिछे हुये।

एक चौरंग के इर्द गिर्द समइयाँ जल रही थी। उस पर लक्ष्मी जी का चित्र विराजमान था। चित्र के समीप बहुत से सोने, चाँदी, हीरे और रुपयों के सिक्के जगमगा रहे थे। वही खाते की काली स्याही की रेखाएँ मानों लक्ष्मी जी के आने का मार्ग प्रदर्शित कर रही हों।

लक्ष्मी जी वहां पहुँचकर अपने भक्त के वही खातों पर कुछ लिखकर चली गईं। मैं मनमें सोचने लगा: —

'बेचारी भोली लक्ष्मी ने तो दान करने का बीड़ा ही उठाया है।

पश्चात् एक दो छोटी छोटी दुकाने छोड़ कर उन्होंने एक दूसरी दुकान में प्रवेश किया। वह दुकानदार तीन बार दिवाला निकाल चुका था। और इस अल्पावधि में ही लक्षाधीश बन बैठा था। वहां भी लक्ष्मी जी ने पूर्ववत् कार्य किया। परन्तु आश्चर्य कि, दुकान मे प्रवेश कर वही खातों पर कुछ लिखते ही इर्द गिर्द की कितनीही दुकानों व घरों के दीपक अचानक कम्पित हो ज्योति हीन होगये।

मैं लक्ष्मी के पीछे ही पड़ा रहा। अब वह एक आफीसरों के मुहल्ले के एक बंगले में

घुसी। बगले का स्वामी एक बड़ा अधिकारी था। उसने वेतन के अतिरिक्त और भी मार्गों से काफी सम्पत्ति एकत्रित की थी।

वह उसके अधीन लोगों का काम बिना छल कपट किये करता ही न था। प्रत्येक काम मे उसकी दलाली बनी रहती थी। यहां भी लक्ष्मी जी ने अपने भक्त के सिर पर अपना वरद हस्त रखा।

देवी का यह कार्यक्रम दीर्घकाल तक चलता रहा। वह जिस घरमें प्रवेश करती उस घरके आस पासके कितने ही घरो के दीपक कम्पित हो बुझ जाते और ऐसे प्रकाश पराङ्मुखी घरों को छोड़ लक्ष्मीजी आगे बढ़ जाती थीं।

कुछ कालान्तर में देवी मेरे घरकी ओर बढ़ीं। मैं जल्दी जल्दी और किसी आशा से अपने घर के सामने जाकर खड़ा हुआ। बाहर से ही मुझे मेरी पत्नी द्वारा किया हुआ लक्ष्मी-पूजन दिखाई दिया। पूजा की जगह एक और देहरी पर दो दीपक टिम-टिमा रहे थे।

मेरे खड़े होते न होते लक्ष्मी का रथ सम्मुख से वापिस हो गया और अचानक तीनों दीपक बुझ गये।

देखा तो लक्ष्मी जी निकट के एक सुख सम्पन्न धनी के घरमे प्रवेश कर रही थीं। वह गृहस्थ सात गॉव का मालगुजार था। इसके सिवाय साहूकारी भी अच्छी चलती थी। कर्जमें उसने पास ही के तीन चार घर ले लिये थे। कर्ज देने के पूर्व जो उसके मित्र थे वे ही पड़ोसी अब उसके कट्टर शत्रु बन गये।

हिसाब करने में वह बहुत घोटाला करता था। परन्तु वह कृपण-व्यक्ति लक्ष्मी पूजन के उत्सव मे हीनता कदापि न आने देता था।

उस घर मे देवी का प्रवेश करते देख मैंने उद्वेग से घरमे पैर दिए। वैसे ही मुझे मेरी पत्नी कहने लगी 'क्यो' मेरा किया हुआ लक्ष्मीपूजन तुम्हें भला न लगा। जो आते ही सब दीपक गुल कर दिये।" मैंने उत्तर दिया। "अजी लक्ष्मी जी को तुम्हारी यह भिक्षुक पूजा भली न लगी। उन्होंने ही दिए बुझा दिये हैं।"

मेरी पत्नी मुझपर और भी क्रुद्ध हुई। उसने मेरे इन वाक्यों को मजाक समझा।

चूँकि मेरे कहने का आशय उसकी समझ मे आना कठिन था।

सत्यार्थप्रकाश का अन्तिम वाक्य।

विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेक विध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने—जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है—सब मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है। [सत्यार्थ प्रकाश-भूमिका]

-: आर्यसमाज और हिन्दी भाषा :—

[ले०—श्री सुमन शेखूपुरी 'साहित्यरत्न' प्र० स० 'शिक्षा-सुधा']





धारवादी ऋषि दयानन्द सरस्वती के जीवन काल मे ही आर्य समाज का जन्म हो गया था। मानव समाज और समूचे राष्ट्र को एक सूत्र मे बाँध कर सत्य मार्ग पर लाना ही उस बुद्धिवाद के पुजारी का सर्वोच्च दृष्टिकोण था। 'कृण्वन्तो विश्व आर्यम्, वाला वेद का सन्देश उस दिव्य महर्षि का जीवन लक्ष्य था। इसी की पूर्ति मे उस महात्मा ने भारत के कोने कोने मे अपनी भावनाओं का मन्त्र फूंका था।

जिस समय जाति पाँति, छुआ छूत और ऊंच नीच का भेद भाव भारत में भीषण काण्ड मचा रहा था, जिस समय देवी देवताओं के पुजारी धर्म के ठेकेदार बनकर भारतीय जनता को अवनति के गर्त में ढकेल रहे थे और जिस समय मूर्ति पूजा की आड़ मे बाह्याडम्बरमयी तथा चकाचौंध पैदा करने वाली वासना भी समाज को पापाचार एवं व्यभिचार का गर्हित पाठ पढ़ा रही थी तभी उस दिव्य विभूति ने गुजरात प्रान्त मे जन्म लेकर संवत् १८८१ को तथा भारतवर्ष का भाग्यशाली बनाया था। उस महात्मा ने हिंदुओं की डूबती हुई नौका को बचाया और उसका ऐसा अध्यवसायी कर्णधार बनाकि ससार सागर में इस समय भी भारतीय नौका अपना मार्ग सुन्दर और सत्य के साथ साथ शिव भी बनाती चली जा रही है।

महर्षि दयानन्द वैदिक संस्कृति को फिरसे भारत में फैलाने के लिए आये थे। वे समस्त भारत को एक राष्ट्र बनाना चाहते थे और साथ ही साथ यह भी चाहते थे कि वह राष्ट्र स्वतन्त्र और स्वावलबी बने। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर उन्होंने आर्य समाज को जन्म देकर आर्यों का सगठन करना आरम्भ कर दिया था। महर्षि इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि आर्य समाज को एक सूत्र में बाँधने के लिए और उसका विशाल विस्तार करने के लिए विचार साम्य की परमावश्यकता है। विचारो का साकार रूप (शरीर) भाषा है। भाषा ही विचारों के व्यक्तीकरण का साधन है। इसलिए जब तक भारत में एक भाषा का आधार लेकर प्रचार न किया जायगा तब तक हमारा समाज एक सूत्र में नहीं बंध सकता। इसमे कोई सन्देह नहीं कि भाषा के स्वरूप मे किसी देश अथवा जाति की सच्ची संस्कृति और सभ्यता अन्तर्हित रहती है। वैदिक सस्कृति और सभ्यता का प्रचार करने के लिए संस्कृत और हिंदी भाषाओं का सहारा लेना ही अनिवार्य था। इसी कारण महर्षि ने अपनी मातृ भाषा गुजराती का त्याग करके हिन्दी भाषा में उपदेश दिये और ग्रन्थ लिखे। वे जानते थे कि हिंदी सस्कृत के अधिक निकट है, और बहुत सरल भी है। हिंदू जनता का बहुमत इसको समझने और लिखने में सुगमता मानता है। इसी कारण उन्होने 'सत्यार्थ प्रकाश' हिंदी भाषा में ही लिखा था। केवल सत्यार्थ प्रकाश' ही नहीं वरन् वेदों के भाष्य भी हिन्दी भाषा में किये। 'संस्कार विधि' आदि पुस्तकें

भी हिन्दी भाषा में लिखी थीं। अपनी समाज (आर्य समाज) की सारी कार्यवाही और प्रचार प्रणाली हिन्दी भाषा में ही होने लगी थी और अब भी निरन्तर होती जा रही है। गत फरवरी मास सन् ४१ की भारतीय जनगणना में आर्य प्रतिनिधि सभा के द्वारा हिन्दुओं की भाषा 'हिन्दी' लिखाये जाने पर जोर दिया गया था जो कि किन्हीं अंशों में सफल रहा। ऐसे भावोद्रेक का श्रेय श्री श्रद्धेय दयानंद सरस्वती और उनकी संस्थापित आर्य समाज को ही है।

वर्तमान समय में आर्यसमाज के उपदेशकों और भजनीकों से जो हिन्दी का प्रचार हो रहा है वह किसी से छिपा नहीं है। पंजाब आदि प्रांतों में हिंदी का प्रचार करना आर्य समाज की ही महती तपस्या है। आर्यसमाज ने जगह-जगह गुरुकुल और डी० ए० वी० पाठशालाएं स्थापित करके हिंदी भाषा का प्रबल प्रचार किया। गुरुकुलों और डी० ए० वी० पाठशालाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को 'हिन्दी' अनिवार्य रूप से पढ़नी पड़ती है।

महर्षि दयानन्द के अनुयायियों में पं० श्रद्धाराम, आर्यपथिक लेखराम और स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

पं० श्रद्धाराम जी पंजाब प्रान्त के निवासी थे। उन्होंने हिन्दी भाषा में कई ग्रंथ लिखे हैं। एक प्रकार से तो पं० श्रद्धाराम जी ने ही हिन्दी में उपन्यास और जीवन चरित्र लिखने की नींव डाली थी। हिन्दी गद्य लेखकों में उनका नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इनके ग्रन्थों में आत्मचिकित्सा, धर्मरक्षा, सदुपदेश आदि प्रसिद्ध हैं। 'भाग्यवती' नाम का उपन्यास हिन्दू समाज में पर्याप्त रूपेण लोक प्रिय रह चुका है। अपना जीवन चरित्र भी इन्होंने सुन्दर हिन्दी भाषा में लिखा था।

श्री पं० लेखराम और स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दी के अच्छे लेखक और आर्यसमाज के प्रमुख प्रचारक थे। इनके ही परिश्रम के कारण पंजाब प्रान्त में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और पूर्णसिंह जैसे हिन्दी के कहानीकार और लेखक पैदा हुए। श्री गुलेरी जी और श्री पूर्णसिंहजी ने हिन्दी भाषा और साहित्य में प्राण डाल दिये हैं। गुलेरी जी के निबन्ध और कहानियाँ भाषा और भाव की दृष्टि से अद्भुत और ठोस हैं। श्री पूर्णसिंह के निबन्धों की भाषा बहुत परिमार्जित और साहित्यिक है। उसमें प्रगति और प्राण हैं। विषय में सामग्री और भाव गाम्भीर्य कूट कूटकर भरा रहता है।

हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में आर्यसमाजी विद्वानों में महात्मा हंसराज, महामहोपाध्याय आर्यमुनि, लाला लाजपतराय और स्वामी सत्यदेव परिव्राजक आदि का नाम बड़े आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है। आर्यमुनि जी की कविताएँ भी बहुत सुन्दर हैं। स्वामी सत्यदेव जी ने यात्रा सम्बन्धी साहित्य (भूगोल) लिखकर हिन्दी भाषा का प्रचार किया है। आपने कविताएँ भी लिखी हैं जिनका संकलन 'अनुभव' नाम से प्रकाशित हुआ है।

बाबू नवीनचन्द्रराय भी अच्छे विद्वानों में हैं। आर्यसमाज में रहकर आपने शिक्षा-प्रसार की ओर विशेष ध्यान दिया है। श्री सुदर्शन जी भी आर्यसमाजी ही हैं। गल्प लेखकों में आपका नाम प्रसिद्ध और मान्य है।

उक्त महापुरुषों के अतिरिक्त अन्य सज्जन भी हैं जो कि आर्यसमाज के प्रचार के साथ साथ हिन्दी प्रचार भी करते रहते हैं। पंजाब प्रान्त में आर्यसमाज के दो एक स्वामी ऐसे हैं जो कि आश्चर्यजनक रूप से हिन्दी का प्रचार करते हैं। उनका भिक्षा माँगने का नियम यह है कि—जब वे किसी

हिन्दू के द्वार पर 'ओ३म्' शब्द की पुकार लगाते हैं तो जो स्त्री भिक्षा लेकर बाहर आती है उससे पूछते हैं कि—माई ! तू हिन्दी लिख पढ़ लेती है या नहीं। यदि 'हाँ' उत्तर मिल गया तब तो भिक्षा ले लेते हैं नहीं तो आगे बढ़ जाते हैं और उस स्त्री से कह जाते हैं कि जिस दिन से तू हिन्दी पढ़ना आरंभ कर देगी उसी दिन से ही तेरे हाथ की भिक्षा लेने लगूँगा। साधुओं की आज्ञा या कथन हिन्दू स्त्रियों में वेदवाक्य या परमेश्वर की आज्ञा के समान है। साधु को अपने द्वार से भिक्षा रहित न भेजने के फल स्वरूप प्रायः वे सभी हिन्दू नारियाँ पढ़ने लगती हैं। अब तक लगभग ५० प्रतिशत हिन्दू नारियों को उन साधुओं ने हिन्दी भाषा का पढ़ना लिखना सिखा दिया है।

आर्यसमाज अथवा वैदिक धर्म के अनुसार यज्ञ हवन आदि गृह-कार्यों मे पति पत्नी दोनों को ही सम्मिलित होना अनिवार्य है। इसलिए स्त्री-शिक्षा का प्रचार भी आर्यसमाज के द्वारा बहुत हुआ है। आर्य-कन्या पाठशालाएँ भी कन्याओं की शिक्षा के लिए पर्याप्त सख्या मे है।

पंजाब और यू० पी० में आर्यसमाज की पत्रिकाएँ भी निकल रही है। साप्ताहिक और मासिक पत्रों के द्वारा भी हिन्दी भाषा का प्रचार दिनानुदिन बढ़ रहा है। साप्ताहिक पत्रों में 'आर्यमित्र' और मासिक पत्रों में 'दयानन्द संदेश' पर्याप्त रूपेण लोक प्रिय हुए हैं। इन पत्रों के प्रचार के साथ साथ हिन्दी साहित्य में बुद्धिवाद, तर्कवाद, निबन्ध, सामाजिक कहानी आदि का भंडार विशेष रूप से भर गया है। यदि ऐसी ही प्रगति रही तो आर्यसमाज के द्वारा और भी हिन्दी भाषा तथा साहित्य का कलेवर दिनानुदिन वृद्धिंगत अवस्था को प्राप्त करता रहेगा।

['स्वामी जी की वेद-भाष्य-प्रतिज्ञा']

अत्र-वेद-भाष्य कर्मकाण्डस्य वर्णनं शब्दार्थतः करिष्यते।

अथ प्रतिज्ञा विषयः संक्षेपतः।

यत्र अग्निहोत्राद्यश्वमेधान्ते यद्यत् कर्त्तव्यं तत्तदत्र विस्तरतो न वर्णयिष्यते। कुतः कर्मकाण्डानुष्ठानस्यैतरेयशतपथब्राह्मणपूर्वमीमांसाश्रौतसूत्रादिषु यथार्थविनियोजितत्वात्। पुनस्तत्कथनेनानृपिकृतग्रन्थवत् पुनरुक्तपिष्टपेषणदोषापत्तेश्च।

ऋ० भा० भूमिका पृ० २२५।

(शेष पृष्ठ १६ का)

ऊरू अर्थात् मध्यभाग से की गई है। इस मध्य भाग में मेदा, जिगर, आंतें, दिल, फेफड़े गुर्दो आदि अनेक अवयव हैं जो एक व्यक्ति के जीवन के लिए ऐसे ही महत्वपूर्ण या उपयोगी हैं जैसे कि समष्टि रूपसे समाज के जीवन के लिए वे अनेक शिल्प, व्यवसाय आदि हैं जिनका ऊपर उल्लेख किया गया।

कोई लोग ऊरू का अर्थ जंघा करते हैं जो ठीक नहीं। यदि ऐसा माना जावे तो ब्राह्मण शिरस्थानीय, क्षत्रिय बाहुरूप, वैश्य जंघारूप और शूद्र पादरूप होते हुए शरीर के मध्यभाग का जो सबसे बड़ा भाग है स्थान कहीं नहीं रहता।

यह भारतवर्ष का दुर्भाग्य है कि ऊपर लिखे सब शिल्पकार पौराणिक काल में और उस समय की स्मृतियों में शूद्र माने गये, जिससे उनका समाज में वह उच्च स्थान नहीं रहा जो ऐसे महत्त्व पूर्ण शिल्प और व्यवसाय वालों का होना चाहिए। इससे उक्त शिल्प-कारों को अपने २ व्यवसाय में उन्नति करने के लिए वह उत्साह नहीं रहा जो अन्य देशों में ऐसे लोगों को होता है, और इसीलिए इन व्यवसाय और शिल्प कलाओं ने भारत में पौराणिक काल में वैसी उन्नति नहीं की जैसी उनकी यूरोप आदि देशों में हुई। इस प्रकार केवल इन लोगों पर यह अन्याय नहीं हुआ कि वे वैदिक काल के वैश्यवर्ण से गिराये जाकर शूद्रों में सम्मिलित किये गये किन्तु इन व्यवसायों और उद्यमों को अवनति से भी देश की भारी हानि हुई।

वेदों में ऐसे सब व्यवसाय और शिल्प आदि को और उनके करने वालों को उच्च स्थान दिया गया है। पं० शिवशंकरजी काव्यतीर्थ ने अपने "जाति-निर्णय" ग्रन्थ में वेद के ऐसे बहुत से मंत्र दिये हैं जिनमें इन व्यवसायों की प्रशंसा है।

कृषि की प्रशंसा में वेदों में अनेक सूक्त हैं यद्यपि मध्य काल की कुछ स्मृतियों में इसको भी शूद्र का कार्य कहा गया है। मनुस्मृति में खेती का स्पष्ट तया वैश्यके कार्यों में बतलाया है—"वैश्यस्य कृषिमेव च।"

ऋग्वेद १० । २६ मंत्र ५ व ६ में ऋग् १०। ५३ मंत्र ६ मे, ऋग् २। ३८ मंत्र ४ मे कताई व बुनाई की प्रशंसा है। ऋ० १०। २६। मन्त्र ५-६ मे वह ऋषियों का कार्य बतलाया गया है।

वेदों में सुनार, लुहार, कुम्हार, चमार, रथकार के लिये तक्षा व ऋभव शब्द आये हैं, और बहुत से मन्त्रों में उनकी प्रशंसा है। ऋग् ४। ३६ का मन्त्र ७ यह है—

"श्रेष्ठं वः पेशो अधिधायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन। धीरासः हिष्ठा कवयो विपश्चितः स्तान् व एना ब्रह्मणा वेदयामसि।"

(अर्थ) हे तक्षाओ ! आपका श्रेष्ठ दर्शनीय उद्यम सर्वत्र प्रसिद्ध है। हमारी इस स्तुति को स्वीकार कीजिये। आप धीर, कवि, और विद्वान् हैं। उन आप लोगों को इस मन्त्र से आवेदन करते हैं। ऋग्वेद १०। ५३। ६ में लुहार और वर्तन बनाने वालों की, ऋग् १ २० २ में खिलौने बनानेवाले की प्रशंसा है।

इसी प्रकार अथर्व ५। ६। ४ में लुहार और भस्त्रा यन्त्र (धौंकनी) बनानेवाले की अथर्व ८। २ १६ मे नाई की, अथर्व ८। ४७। १५ में सुनार की प्रशंसा की गई है।

ऊपर लिखे मन्त्रों से जो उदाहरण रूप से दिये गये यह स्पष्ट है कि वे सब उद्यम और व्यवसाय जिनके करने वाले वर्त्तमान समय में शूद्र और अछूत माने जाते हैं वेदों मे प्रशंसनीय कहे गये हैं, और ऐसे लोगों की गणना वैश्य वर्ण में होना चाहिये।



* वेद में आयुर्विज्ञान *

[लेखक—श्री पं० द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री वेद-संस्था आनन्दपुरी मेरठ]

लेखक आर्यसमाज के प्रमुख संस्कृतज्ञ विद्वानों में से एक हैं। वेद संस्थान गुरुकुल वृन्दावन से प्रकाशित यजुर्वेदानुवाद के आप प्रधान सम्पादक थे। वैदिक विज्ञानों पर आप के लेखों में पर्याप्त संग्राह्य सामग्री रहती है। —सम्पादक

प्रस्तुत लेख में सिद्ध किया गया है कि आयुर्विज्ञान और संसार में प्रचलित तथा अप्रचलित अनेक चिकित्सा प्रणालियों का मूल वेदों में ही समुपलब्ध होता है और यह विज्ञान वैदिक-स्रोत से ही समस्त विश्व मे प्रवाहित हुआ है।



द ज्ञान, विज्ञान का आदि स्रोत है, वेदों के विषय में यह धारणा अति प्राचीन काल से चली आ रही है। प्राय संस्कृत का सभी—धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक, साहित्य अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये वेदों की ओर ही संकेत करता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने भी जिनका वैदिक विद्वानों में अत्युच्च पद है उक्त तत्त्व को मुक्त कन्ठ से घोषणा की और अपने लेखों में वेद मंत्रों के आधार पर सक्षेप से सप्रमाण सिद्ध किया कि वेदों में अनेक प्रकार के विज्ञान भरे पड़े हैं निस्सन्देह वेदों के परिशीलन करने वाले विद्वानों से यह बात तिरोहित नहीं कि वेद में भौतिक विज्ञान, अध्यात्मिक विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, आदि विविध विज्ञानों का बीजरूप से उपदेश किया गया है। अब वेद के विशेषज्ञों का यह काम रह जाता है कि वे उन वेद के रहस्यों को जो मध्यकालीन भाष्यकारों के भ्रम से अन्धकार में पड़ गये हैं प्रकाश मे लायें और वेदों की यथार्थता को सिद्धकर उनके महत्त्व को पुनः ससार के हृदय पटल पर अंकित करें। अस्तु इस लेख में संक्षेप से यह दर्शाने का यत्न किया जायगा कि अन्य विविध विज्ञानों की भांति आयुर्वेद विज्ञान के भी गूढ़तम सिद्धातों का वेद मे वर्णन किया गया है।

आज कल भूमण्डल मे जितनी भी चिकित्सा पद्धति चल रही हैं उन सबका आदि स्रोत भारतीय आयुर्वेद ही है यह इतिहास के विद्यार्थियों से छिपा हुआ नहीं है इसकी पुष्टि में हम केवल सर विल्यम हन्टर का ही कथन उद्धृत करना पर्याप्त समझते हैं:—

"The Hindu medicine is an independent development. Arab medicine was found on the translation from the Sanskrit treatise made by command of the Khalifa of Baghdad (950-960 A D) European medicine down to the 7th. Century

was based upon the Arabic & the name of Indian physician 'Charak repeatedly occur in Latin translations of Avicerma ..
(Sir william Hun er)

अर्थात् भारतीय औषध शास्त्र स्वतन्त्र तथा सुसम्पन्न हुआ है। अरब के औषध विज्ञान का संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद पर निर्माण किया गया है। क्राइष्ट से पूर्व (६५०-६७०) मे यह कार्य बगदाद के खलीफा की आज्ञा से हुआ था। और योरोप का औषध-शास्त्र सातवी सदी तक अरब के ग्रन्थों पर ही अवलम्बित था। लेटिन के अनुवादित ग्रन्थों मे भारतीय चिकित्साचार्य चरक का नाम अनेक वार अंकित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि संसार का चिकित्सा विज्ञान भारतीय आयुर्वेद का ही ऋणी है और भारतीय आयुर्वेद का उद्गम वेदों से हुआ है यह बात सभी मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं। स्वयं ऋषिवर सुश्रुत ही लिखते है — 'इहखलु आयुर्वेदानाम यदुपागमथर्व्वेदस्वेति' अर्थात् आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग है। यद्यपि प्रधान तथा अथर्ववेद में आयुर्वेद का उपदेश किया गया है तथापि साधारणतः अन्य वेदों मे भी आयुर्वेद-विज्ञान की रश्मियां चमकती हुई दृष्टि गोचर हो रही हैं।



श्री पं० द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री

इस लेख में संक्षेप से यह दर्शाने का प्रयत्न करेंगे कि जितने चिकित्सा-पथों का आविष्कार अब तक हुआ है उनका मौलिक सूत्र हमे वेदों में मिलता है—जल चिकित्सा के विषय में तो प्रायः प्रसिद्ध साक्षी है:—'अप्स्वन्तरममृतमप्सुभेषजम् । आपो आचामि भेषजम्' ॥
"अप्सु मे सोमोऽब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।" अथर्व

अर्थात् जलों के अन्दर अमृत भरा हुआ है जलों में समस्त ओषधितत्व भरा हुआ है। जल का आचमन क्या मानों ओषधियों का ही आचमन कर रहा हूँ।

'जल के अन्दर समस्त ओषधियों का क्षार विद्यमान है। ऐसा जल-विज्ञान के विशेषज्ञ बतलाते हैं। क्या इसका यह स्पष्ट तात्पर्य नहीं है? कि जल के द्वारा समस्त रोगों का शमन किया जा सकता है।

सूयरश्मियों का महत्त्वः—सूर्य किरणों में शारीरिक स्वास्थ्य के लिये अनेक अनुपम तत्त्व हैं। सूर्य अपने किरण समूह को पृथिवी पर फैला रहा है नभो मण्डल के नक्षत्रों को अपनी रश्मियों से प्रकाशित कर रहा है। सूर्य की तीव्र प्रखर किरण इन फ्रारेड, तथा मृदु रश्मियाँ 'अल्ट्रावॉयोलेट' विविध प्रकार से इस जड़ चेतन ससार का सञ्चालन कर रही हैं। इनमें से अल्ट्रावायोलेट प्राणियों के लिये अत्यन्त हितकारी है, जब इनका त्वचा के साथ सम्पर्क होता है तब त्वचान्तगत ज्ञान तन्तुओं को एक प्रकार का उत्तम उत्तेजन मिलता है।

यह रक्त वाहिनियो मे होने वाले रक्त सञ्चार को प्रवाहित करती है। स्नायु मण्डल को अपनी भव्य शक्ति से अनुप्राणित करती है और पुष्ट करती है। डाक्टर रोलियर ने यहां तक लिखा है अल्ट्रावॉयोलेट किरणों मे जितनी जन्तुनाशक शक्ति है उतनी अन्य किसी भी पदार्थ मे नहीं है।

सूर्य प्रकाश मनमे प्रफुल्लता देता है। सूर्य प्रकाश के द्वारा विटेमिन तत्व शरीर में प्रचुरता

से बढ़ता है अल्ट्रावायोलेट किरणों से फलों में वनस्पतियों में विटेमिन 'डी' का सञ्चार होता है। इत्यादि, उपयुक्त बातों से निम्नाङ्कित सार निकलता है:—

१—सूर्य अपने दो प्रकार की किरणों से विविध जड़ जङ्गम जगत् का सञ्चालन करता है।

२—सूर्य की अल्ट्रावायोलेट किरणें प्राणिमात्र के लिये हितकारी हैं उनके द्वारा शरीर के ज्ञानतन्तुओं एवं स्नायुमण्डल को उत्तेजना मिलती है।

३—विषाक्त जन्तुओं के नष्ट करने में सूर्य किरणें अपनी समता नहीं रखतीं।

४—सूर्य किरणों के द्वारा मन का विकाश होता है और बुद्धि को प्रेरणा मिलती है।

५—सूर्य किरणों से वनस्पति तथा फलों में पोषकतत्त्व (विटेमिन) पहुंचता है।

इन सब बातों के वर्णन निम्न मन्त्रों में स्पष्ट रूप से मिलता है—

"अस्य संस्थेन वृणवते हरी समत्स्व शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत" ऋ० १।५।४।

इस मन्त्र में सूर्य की दो विशेष किरणों का वर्णन है जो 'हरी' इस पदसे बोधित हैं। जिसमें से एक लालकिरण दूसरी नीली। इन दोनों के विशेष सम्मिश्रण से अवश्य कोई ऐसी दाहक शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि जिसको शत्रु सहन नहीं कर सकते। छान्दोग्य उपनिषद् में इन दो प्रकार की किरणों का वर्णन आता है।

'अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भा सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम'। छान्दो० १।६।५।

अर्थात् सूर्य की जो शुक्लवर्ण वाली किरण है वह ऋक् अर्थात् प्रेरणा एवं उत्तेजना देने वाली; और जो काले अथवा नीले रंग की किरण है वह साम अर्थात् शमन तथा पोषण देने वाली है। क्या इन मन्त्रों में स्पष्ट अल्ट्रावायोलेट एवं इन्फ्रारेड् किरणों का स्पष्ट वर्णन नहीं है? अथर्व वेद में सूर्य को जन्तुनाशक बतलाया गया है—

'उद्यन्नादित्यः क्रमीन् हन्तु निम्रोचन रश्मिभिः' अथर्व० २।३।१।

अर्थात् उदय होता हुआ तथा अस्त होता हुआ सूर्य अपनी किरणों से रोगोत्पादक क्रमियों को नष्ट करता है।

'प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः'। इसमें तो सूर्य को जीवनधारियों का प्राण ही बतलाया गया है। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि सूर्य के विषय में जो आधुनिक नव्यतम वैज्ञानिकों के उद्गार निकल रहे हैं वे केवल वेद प्रतिपादित सूर्य रश्मि विज्ञान की प्रतिध्वनि मात्र नहीं है? इस प्रकार सूर्य-विज्ञान के विषय में अन्य अनेक मन्त्र हैं जिनका उल्लेख इस संक्षिप्त लेख में नहीं किया जा सकता।

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान का नवीन तम आविष्कार इन्जक्शन द्वारा रोगों का उपाय करना है। इस की उपयोगिता, अनुपयोगिता, हानि या लाभ के विषय में विशेष चर्चा न करते हुए, इतना मात्र कह देना पर्याप्त समझते हैं कि आयुर्वेद में समय पड़ने पर अमुक विशेष स्थितियों में इन्जक्शन का विधान भी पाया जाता है और उसका भी आदि उपदेष्टा वेद ही है। देखिये आयुर्वेद—'सूचिकाभरण' इसनाम के कई प्रयोग हैं। जिनका विशेष सन्निपात अवस्था में प्रयोग किया जाता है। रसायन ग्रन्थों में लिखा है—

"सूचिकाग्रेण दातव्यः सन्निपातनिबर्हणः।
सूचिकाभरणो नाम रसः गुप्ततमो मतः॥

इस में स्पष्ट लिखा है कि सूचिका के अग्र भाग से इसका प्रयोग करना चाहिये। सूचिका द्वारा यह शरीर में भरा जाता है इसीलिये इसका नाम सूचिका भरण है, वेद में इसी आशय के सूचक-आभरण, विभरण आदि प्रयोग आते हैं-अथर्ववेद में मन्त्र आताहै—

अग्ने जातं परियद्धिरण्यममृत दध्रे अधि मर्त्येषु..........यो विभर्त्ति।

अर्थात् अग्नि तत्व से उत्पन्न हुआ स्वर्ण मरणशील मनुष्यों मे अमृत रूप से धारण किया गया है। जो सोने का आभरण (इन्जेकशन) करता है उसकी जरावस्था मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। आज समस्त वैज्ञानिक इस मन्त्र की सचाई को सुवर्ण (Gold chloride) के इन्जेकशन देकर मुक्तकण्ठ से स्वीकार कर रहे हैं। वेद श्रद्धालुओ ! विज्ञानराशि वेद में मज्जन कर अमूल्य रत्नों को ढूंढ निकालो जिससे लोकका कल्याण हो।



दीप



[—साहित्याचार्य पं० जितेन्द्र भारतीय शास्त्री]

आकर जगती तल पर ऋषि ने, फैलाया था दिव्य प्रकाश,
ज्ञान ज्योति की प्रवल प्रभा से, दूर किया भ्रम माया पाश ॥
सत्य और मिथ्या को निशिदिन, मापा तर्क कसौटी पर।
सच्चे शिव के अन्वेषण को, त्याग दिया निज प्यारा घर ॥
भटका भीषण गहन बनों मे, पड़ी न वैभव की छाया।
त्याग और तप की भट्टी मे, झुलसा दी अपनी काया ॥
विकल साधना की झंझा मे, झूम रहा था अन्तस्तल।
अवनी को आच्छादि करने, झाक रहा था यश उज्वल ॥
ज्ञान सुधा की सरित बहादी, किये अनेकों परिवर्तन।
टूटा यवनि का, दूर हुआ अज्ञान, किया जगने नर्तन ॥
सूत्र धार बन रग मंच पर आया अभिनय किया प्रचण्ड।
खण्ड खण्ड 'पाखण्ड खण्डनी' रोपी वैदिक ध्वजा अखण्ड ॥
होने लगा नद वेदो का, पथ भूलो को राह मिली।
आर्य जाति की विमल सुलोनी, लतिका लोल, ललाम खिली ॥
किन्तु कलङ्की क्रूर काल ने, वक्र दृष्टि अपनी डाली।
दयानन्द का "दीप" बुझा कर, स्वय मनाई दीवाली ॥





दिव्य-दीपक दयानन्द

[ले०—श्री पं० आर्येन्द्र शर्मा शास्त्री, वेदशिरोमणि, श्री पं० राजेन्द्र शर्मा शास्त्री]



[प्रस्तुत लेख मे ओजपूर्ण भाषा में यह दर्शाया गया है कि अज्ञानांधकार-ग्रस्त भारतीयो के लिए किस प्रकार ऋषि दयानंद ने दीपक की भांति अवतरित होकर अपनी ज्ञानज्योति से समस्त मानवलोक को आलोकित किया।]

—सम्पादक

आर्ष साहित्य का सुविकाश संस्कृतभाषा के द्वारा ही हुआ है। संस्कृत भाषा को ही देववाणी कहा गया है। प्राचीनतम होने से इस भाषा को विश्ववर्ती शेष भाषाओं की जननी भाषा विज्ञान-विदों ने कहा है। इसी देवगिरा की उत्कृष्ट विभूति को धारण करने वाला एक शब्द दीपक भी है। इस शब्द का अर्थ प्रकाशित होने वाला अथवा प्रकाशित करनेवाला है। दीपक के द्विविध कार्यों को सुस्पष्ट रीति से प्रकट करनेवाला द्युलोकस्थ सूर्य सर्वश्रेष्ठ प्रदीप है। अपनी नैसर्गिक ज्योति से स्वयं प्रकाशित होते हुए जिस प्रकार दिवाकर समस्त सौरमण्डल को ज्यातिष्मान् बना देता है, उसी प्रकार एक कृत्रिम मानव-मन्दिर मे प्रदीप्त-प्रदीप अंधकार-जनित तमिस्रा को दूर कर घर को प्रकाशित कर देता है।

द्युलोकस्थ प्रदीप प्रभाकर को प्रदीप्त करने वाली सोम और श्रद्धा के अत्यन्त विरल स्वरूप का साक्षात्कार तो विरले ही सिद्ध योगिजन करते हैं, किन्तु मृण्मय दीपक को प्रज्वलित करनेवाली तैल और वर्ती को तो सभी प्रत्यक्ष देखते हैं। द्युलोक के श्रद्धा और सोम कब, किससे, किसने बनाये, इन बातों का ज्ञान साक्षात्कृत-धर्मा महर्षियों को ही होना सम्भव है किंतु दीप, तैल और वर्ती के सम्बन्ध की समस्त ज्ञातव्य बातें सर्वविदित हैं। सर्वत्र सुलभ-साधारण मृत्तिका सरसों और कपास को जैसे तैसे मिला देने मात्र से प्रदीप्त दीपक का प्रकाश नहीं उत्पन्न किया जा सकता है, यह बात सब लोगों को सुविदित है और यह भी ज्ञात है कि दीप-ज्योति प्राप्त होने के पूर्व विशिष्ट मृत्तिका सरसों और कपास का यथोचित संस्कार होना परमावश्यक कार्य है। संस्कार विज्ञान के इस महत्वपूर्ण रहस्य को जो विवेकी पुरुष हृदयंगम कर सकते हैं, वे ही मानव संस्कार अथवा संस्कृति विज्ञान को समझने में समर्थ हैं।

संस्कार-विज्ञान के अनुसार मनुष्य भी जब कभी और जहाँ कहीं स्वयं प्रकाशित होता है, अथवा मानव समाज को प्रकाशित करता है, तो उसके लिए भी मिट्टी, सरसों और कपास की भांति तप, त्याग, एवं सर्वमेध की दीक्षा लेना अनिवार्य होता है। इस कठोर व्रतदीक्षा से दीक्षित हुये बिना मर्त्य-मनुष्य का स्वयं ज्योति बनकर औरों को भी ज्योतिष्मान् बना देना सम्भव नहीं है।

सर्व साधन-सम्पन्न कुल में उत्पन्न होने मात्र से ही यदि कोई व्यक्ति स्वयं ज्योति बन सकता तो कदाचित् आज संसार का स्वरूप ही नितान्त भिन्न प्रतीत होता और न पोथी पढ़ने मात्र से ही स्वयं ज्योति बन सकता है, अन्यथा काशी जैसे विद्या केन्द्र आज सिद्धजनाकीर्ण आश्रम होते सांख्यवाद के स्थान पर

संख्यावाद के वोट-बाहुल्य से भी मनुष्य स्वयं ज्योति नहीं बन सकता है।

इन समस्त निषेधात्मक विधियों के स्वरूप को भली भांति समझने वाले संस्कारबलोपेत लोकोत्तर पुरुष इतर प्रकृत जनों की अपेक्षा दैवीसंस्कारों में सम्यक् विभूषित होने के कारण अविलम्ब ही देव-प्रसाद और गुरु कृपा से अपेक्षित दैवी दीप्ति से प्रथम स्वयं ज्योति बनते हैं और तदन्तर अपने सम्पर्क में आने वाले अन्यजनों को भी प्रकाशित कर देते हैं। ऐसे महापुरुषों के उत्तम गुणों को केवल वे ही मनुष्य अपने जीवन में धारण कर पाते हैं कि जो तत्सम संस्कार संपन्न होते हैं। शेष सर्वसाधारण लोग तो तैलवर्ती रहित केवल बुझे हुये मिट्टी के नाम मात्र दीपक के समान होते हैं। न तो स्वयं प्रकाशित होते हैं और न अन्य बुझे हुए दीपकों को प्रकाशित कर सकते हैं। क्योंकि एक प्रदीप्त-प्रदीप ही अन्यान्य स्नेहवर्ती युक्त दीप को प्रदीप्त करने में समर्थ होता है।

उपर्युक्त सैद्धान्तिक दृष्टि से सूक्ष्म विवेचना करने पर ऋषिदयानन्द के जीवन-निर्मापक-घटना-क्रम और देशकालिक परिस्थिति का पर्यालोचन यही सिद्ध करता है कि वे वस्तुत. एक असाधारण लोकोत्तर महापुरुष थे। क्योंकि मानवजीवन सम्बन्धी अन्यान्य आवश्यक सुविधाओं के प्रायः अभाव मे भी जिस विलक्षणता के साथ उन्होंने अपने देवदुर्लभ प्रज्ञाबल से केवल वेदविज्ञान के आधार परयुगपरिवर्त्ती ज्ञान प्रकाश से चिराच्छादित अज्ञानान्धकार को दूर करने का सफल प्रयत्न किया। उनके व्यक्तित्व की वास्तविक कसौटी तो ऋषि के ही निम्न लिखित ओज पूर्ण शब्द हैं। "मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दु.ख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किंतु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं को चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महा बलवान और गुणवान् भी हो तथा उसका नाश अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियो के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दु.ख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भलेही जावें, पर इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।" इस उद्धरण से ऋषि दयानन्द के मानव जीवन का आदर्श सुस्पष्ट हो जाता है और ऋषि का समस्त जीवन इसी सांचे में ढाला गया प्रतीत होता है। बाल्यकाल, शिक्षाकाल, विशेष तप साधना काल, उग्र प्रचारकाल और ग्रन्थ निर्माण काल, आदि जीवन के समस्त भाग इसी आदर्श के अनुरूप हैं।

द्युलोकस्थ आदित्य की भांति आदित्य ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द ने स्वयं अप्रतिहत ज्ञान ज्योति बन कर नाना मत, पन्थ और रूढ़ियों को अपने वैदिक ज्ञान रश्मियों से छिन्न भिन्न करते हुए वैदिक धर्म के विशाल राजमार्ग पर साधारणतया संसार के समस्त मनुष्यों को और विशेषतया भारतीय नर नारियों को दृढ़ता के साथ चलने का उपदेश दिया। स्वयं वैदिक रहस्य ज्ञान को समाधिस्थ होकर प्रज्ञान नेत्र से यथावत् देख कर अन्य जनों को सच्ची वेदार्थ-प्रक्रिया का संक्षेप मे परिचय कराया। अन्यान्य ग्रन्थाभ्यासी पंडितों से भिन्न किन्तु आर्ष प्रज्ञान के अनुसार ऋषि दयानन्द ने वेदप्रदर्शित ज्ञानज्योति की प्रतिष्ठा सर्व साधारण जनता के हितार्थ यावज्जीवन करते रहने का अजस्र व्रत धारण किया। इस प्रकार अपने जीवन को स्नेहवर्त्ती-युक्त प्रदीप की भांति प्रज्वलित करते हुए अज्ञानान्धकार को मिटा कर ज्ञान के प्रकाश को सर्वत्र प्रसारित किया। ऋषि दयानन्द के समय में वैयक्तिक

तथा सामाजिक गुणों का प्रायः अभाव सा हो रहा था, और लोग नाना प्रकार के दुरितों और दोषों से परिपूर्ण हो रहे थे। विदेशी शासन, परधर्मावलम्बियों के कुचक्रपूर्ण आघात, हिंदू जाति में पारस्परिक फूट फैलाने वाली सैकड़ों कुरीतियां, मिथ्या रीति व्यवहार और कुसंस्कार से भारतीय मानव समाज अज्ञानान्धकार की चरमसीमा तक पहुँच गया था।

स्वयं ज्योति बन कर ऋषि ने द्युलोकस्थ दिवाकर अथवा मन्दिरस्थ प्रदीप की भांति ऐसे समय में में सूचीभेद्य अज्ञानान्धकार के समय भूलोक को वेदालोक से आलोकित किया जिस समय इतर कोई प्रकाश सुलभ न था।

शरद ऋतु की घोर अन्धकारमयी अमावास्या प्रति वर्ष कार्तिक मे आती है और भारतीय संस्कृति का प्रत्येक उपासक नर और नारी अपने २ घरों को दीपावली से आलोकित करता है। दिवाली के पुनीत पर्व को उत्साह के साथ मनाने में हिन्दूमात्र को अलौकिक आनन्द अनुभव होता है। वस्तुत दीपमालिका आर्यजाति का एक महापर्व दिवस है। इसी पवित्र अमावास्या की रात्रि को ऋषिदयानन्द ने अपनी जाज्वल्यमान जीवन ज्योति का निर्वाण किया था।

महर्षि दयानन्दसरस्वती यथार्थ में दीप स्नेह और वर्त्ती इन त्रिविधि तत्वों से समन्वित थे। अतः वह दिव्य-दीपक दयानन्द चिरकाल से बुझे हुये आर्य अन्त करण रूपी प्रकाश हीन प्रदीपों को अपने ज्ञानज्योतिर्मय सर्वमेधोत्सर्ग के द्वारा प्रदीप्त करगये। "ईश्वर तेरी इच्छापूर्ण हो"। ऋषि के इन अन्तिम शब्दों का भी यही अभिप्राय हो सकता है कि एक मानव जीवन रूपी प्रदीप प्रथम स्वय ज्योति बने और अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिये औरों को भी ज्योतिष्मान् बनाए। इस दृष्टि से आंकनेपर ऋषिदयानन्द का लोकोत्तर जीवन द्युलोकस्थ आदित्य की भांति प्रत्येक विकासोन्मुख मानवसमाज के लिये सर्वदा और सर्वथा अनुकरणीय रहेगा।

इस दीपावली के पर्वदिवस को श्रद्धा और आर्योचित आस्तिकता के साथ मनाते हुये क्या ऋषि दयानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी आर्य नर-नारी अपने २ वैयक्तिक जीवनों को ऋषि निर्दिष्ट विधि विधान के अनुसार वेदज्ञान ज्योति से सर्वथा स्वयंज्योतिर्मय बनाकर औरों को भी ज्योतिष्मान बनाने का सकल्प करेंगे? "तमसो मा ज्योतिर्गमय"।



Veda, the product of highest spiritual Intuition.

By Dr. S Radhakrishnan.

The Hindus look back to the Vedic period as the epoch of their founders. The Veda, the wisdom, is the accepted name for the highest spiritual truth of which the human mind is capable. It is the work of the Rishis or the seers The truths of the Rishis are not evolved as the result of logical reasoning or systematic philosophy, but they are the products of spiritual intuition, dristi or vision The Rishis are not so much the authors of the truths recorded in the Vedas as the seers who were able to discern the eternal truths by raising their life-spirit to the plane of universal spirit. They are the pioneer researchers in the realm of spirit who saw more in the world than their fellows Their utterances are heard not on transitory vision but on a continuous experience of resident life and power When the Vedas are regarded as the highest authority, all that is meant is that the most exacting of all authorities is the authority of facts

If experience is the soul of religion expression is the body through which it fulfils its destiny We have the spiritual facts and their interpretations by which they are communicated to others, Sruti or what is heard and Smriti or what is remembered Shankar equates them with Pratyaksha or Intuiton and Anumana or Inference. It is the distinction between the immediacy and thought. Intuitions abide while interpretations change. Sruti and Smriti differ as the authority of fact and the authority of interpretation, Theory, speculation, dogma change from time to time as the facts become understood Their value is acquired from their adequacy to experience. When forms dissolve and the interpretations are doubted it is a call to get back to the experience itself and reformulate its contents in more suitable terms (An Idealist view of Life, pp 89—90)

वेद विश्व का सर्वोच्च प्रातिभ ज्ञान है।

[अनु०—श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, एम. ए.]
[श्री रामदत्त शुक्ल एम. ए. एल,-एल, बी. एडवोकेट]

हिन्दू लोग वैदिक युग को अपने पथिकृत पूर्वजों का युग मानते हैं। वेद-ज्ञान—उस सर्वोच्च आध्यात्मिक सत्य का पर्यायवाची शब्द है जिसका मानवी मन चिन्तनकर सकता है। यह द्रष्टा ऋषियों का अनुभव था। ऋषियों के सत्य तार्किक ऊहा पोह से अस्तित्व मे नहीं आया करते। वे आध्यात्मिक प्रज्ञा के द्वारा जाने जाते है। वेदों में जिस सत्यात्मक ज्ञान का सन्निवेश हैं ऋषियों को उसका रचयिता कहना इतना ठीक नहीं जितना कि यह कहना कि उन्होने अपने अन्तरात्मा या जीवन सूत्र को विश्वात्मा के ऊँचे धरातल तक उठाकर सनातन सत्यों का साक्षात्कार किया। ऋषि लोग आत्म जगत् के आदि जिज्ञासु थे; जिन्होने अपने प्रज्ञामय चक्षुओं से उस आन्तरिक जगत् के सत्यों को दूसरे सामान्य जनों

की अपेक्षा दूर तक गहराई में पैठकर देखा। ऋषियों ने जिस श्रुति ज्ञान का अनुभव किया वह सत्य की झलक या प्रकाश नहीं था, अपितु उनके नित्यप्रति के आचार मय जीवनों की संकल्प मय शक्ति का जीता जागता अनुभव था। जब हम यह कहते हैं कि वेद सर्वोच्च और सर्वातिशायी प्रमाण हैं, उसका आशय यह होता है कि सब प्रमाणों के बीच में जो अधृष्य प्रमाण है जिसे कभी दबाया नहीं जा सकता, वह सत्यात्मक अनुभव का प्रमाण है।

यदि अनुभव धर्म की आत्मा है तो उसका शब्द में प्रकाशन वह शरीर है जिसके द्वारा वह अपने महान् उद्देश्य में फलीभूत होता है। एक ओर आध्यात्मिक जगत् के सत्य हैं और दूसरी ओर वे व्याख्यान हैं जिनके द्वारा वे अनुभव दूसरों तक पहुँचे हैं। पहली की संज्ञा श्रुति और दूसरी की स्मृति है। आचार्य शंकर के शब्दों में श्रुति या प्रज्ञाजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष का गौरव प्राप्त है और स्मृति अनुमान है। स्वयं साक्षात्कार और केवल विचार में जो अन्तर है वही श्रुति और स्मृति का अन्तर है। प्रज्ञा जन्य ज्ञान लोक में अमर है पर उसके व्याख्यान परिवर्तन शील हैं। श्रुति और स्मृति का अन्तर ठीक ऐसा ही है जैसा कि किसी स्वयसिद्ध घटना और उसके पराश्रित वर्णन में होता है। घटना या अनुभव को ठीक ठीक समझने में जैसे जैसे हमारी प्रगति बढ़ती है उनके आश्रय से कल्पित मत, वाद और विश्वास वैसे ही समय समय पर बदलते जाते हैं। हमारे मतों का मूल्य इस बात से होता है कि वे अनुभव जो कि स्वयं सिद्ध हैं व्याख्या भली प्रकार कर सकें। जब मतवादों का बाह्य रूप जर्जर होने लगता है और सत्य की व्याख्याओं के विषय में भी सन्देह उत्पन्न हो जाता है तब मानों इस बात की शङ्खध्वनि होती है कि हम पुनः अनुभव की शरण में जांय और उन सत्यों को नूतन उपयुक्त शब्दों में पिरोकर प्रस्तुत करें।

'जीवन का आदर्श प्रधान दृष्टिकोण'

* ऋषि का निर्भय नाद *

[कविरत्न श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा]

परे क्रूर कर्ण, तू डराता है, क्या खड्ग ले के,
प्राण-भय से क्या कभी सत्य छोड़ दूंगा मैं।
याद रख दम्भ का गिराऊँगा गपोड़ गढ़,
भौंड़ी भावना का भीरु, भॉंड़ा फोड़ दूंगा मैं॥
अधम अधर्म्म जय पाएगा न धर्म्म पर,
मिथ्या मत वादियों का मुंह मोड़ दूंगा मैं।
ताकता है, क्या तू कुल-कायर प्रहार कर,
तानते ही तेरी तलवार तोड़ दूंगा मैं॥

सिंह के समान दयानन्द की दहाड़ सुन,
छागयी निराशा-निशा वैरियों के गण में।
बाल ब्रह्मचारी का विशाल तप तेज देख,
वीरता बदल गयी भीरुता से क्षण मे॥
आतमिक बल के विजय की पताका उड़ी,
कर्णसिंह कायर पछाड़ दिया रण मे।
काँप उठा गात, बनी एक भी न बात, किया—
शीघ्र प्रणिपात ऋषिराज के चरण में॥



—: एक प्रेक्षक की भावना :—

(ले०—श्री के० ए० सुब्रह्मण्य अय्यर एम० ए० अध्यक्ष प्राच्य विभाग विश्वविद्यालय लखनऊ]

इस लेख के लेखक पौरस्त्य एवं पाश्चात्य संस्कृति, साहित्य तथा भाषाओं के समन्वित पारदर्शी विद्वान् हैं। एक मद्रास प्रान्तीय मननशील विद्वान् होते हुये भी आपने यूरोप में वर्षों निवास करके प्राय समस्त मुख्य २ भाषाओं के प्रमुख साहित्य का सानिध्य प्राप्त किया है। दाक्षिणात्य सांस्कृतिक वैशिष्ट्य के साथ ही साथ २० वर्ष पर्यन्त लखनऊ विश्वविद्यालय मे संस्कृत, पाली प्राकृत विभाग के अध्ययन और फ्रेंच भाषा के महोपाध्याय रूप में साक्षात् अनुभव एवं मर्मज्ञता प्राचीन भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध मे प्राय की है।

[प्रस्तुत लेख में मर्मज्ञ विद्वान् लेखक ने तुलनात्मक दृष्टि से पौरस्त्य एवं पाश्चात्य सांस्कृतिक विवेचन करते हुये यह दर्शाने की सफल चेष्टा की है कि अपने समय मे प्रचलित अनेक अन्धपरामय रूढियों से हानेवाली हानियो का दूर करने के लिये ऋषि दयानन्द ने भारतवासियो के सम्मुख अपने ग्रन्थों और उपदेशों द्वारा प्राचीन आर्ष वैदिक संस्कृति और धर्म के स्वच्छ सार्वजनीन आदर्शों को प्रस्तुत किया कि जो निरपेक्ष भाव से मनुष्यमात्र के कल्याण साधनार्थ विहित हैं। ऋषि दयानन्द की सेवाओं अथवा उपकार का इस लेख से प्रतिपादन अत्यन्त सजीव भाषा में किया गया है।—सम्पादक]



आर्यसमाजी नहीं हूँ। मेरी जन्म भूमि मद्रासप्रांत में होने के कारण हिंदी भी अच्छी तरह लिख नहीं सकता। तथापि मित्रों की प्रार्थना के अनुसार और ऋषि दयानन्द जी के ऊपर अपनी भक्ति को प्रकट करने के लिए कुछ लिखने का साहस कर रहा हूँ। ऋषि दयानन्दजी का नाम मैंने बचपन ही में मद्रास में सुना था। आगे चलकर संस्कृत के अध्ययन में प्रविष्ट हुआ, विशेषकर वेदों के अध्ययन में तब श्री स्वामी जी की कृतियों से परिचित होने की मेरी इच्छा हुई। सत्यार्थ-प्रकाश को मैंने पढ़ा। ऋग्वेद-भाष्य भूमिका भी मैंने देखी, ऋग्वेद के कुछ चुने हुए मन्त्रों पर उनका भाष्य भी मैंने पढ़ा। बस, इसके बाद अनेक कारणवश आगे मैं नहीं जा सका। परन्तु इतना पढकर स्वामी जी के मूलसिद्धांतों से कुछ परिचय हुआ। उनकी व्याख्यान शैली और उनका ओजस्वी व्यक्तित्व का भी कुछ ज्ञान हुआ।

मैं उन लोगों में हू जो आर्यसमाजी न होकर भी मानते हैं कि ऋषि दयानन्द जी ने भारत की बड़ी सेवा की है। अगर कोई मुझसे पूछे कि क्या सेवा की है तो मैं इस प्रकार उत्तर दूंगा—

स्वामी जी के समय में भारत की दशा करीब २ वही थी जो इस समय भी है। मैं यह नहीं कहता कि इस समय कोई भी भेद नहीं है। स्वल्प भेद तो अवश्य है परंतु बहुत कम जैसे उस समय में वैसे ही आज भी यह देखा जा रहा है कि पुरानी बातों पर, चाहे वे अच्छी हो या बुरी, छोटी हों या बड़ी जनता का अन्धविश्वास है। जनता का यह विश्वास है कि जो जो आचार अपनी अपनी जाति

में, या उपजाति में, या अपने अपने कुल मे इस समय चल रहे हैं वे ही हमेशा से रहे हैं। वेदों में और शास्त्रों में उन्हीं का वर्णन और विधि है। उनमें किसी भी आचार का त्याग करना ऋषियों की आज्ञा का उलंघन करना है। भारत में जिस देश में जिस जाति में जो आचार इस समय प्रचलित हैं, चाहे वे आचार परस्पर विरुद्ध भी हों, उस देश और उस जाति के लिए सदा से वे ही आचार रहे हैं। और प्रत्येक का यही धर्म है कि उन आचारों का सर्वात्मना पालन करता रहे। जैसे उत्तर भारत की जनता का पूरा विश्वास है कि मातुल सुता से विवाह वेदों में और शास्त्रों में निषिद्ध है, वैसे ही दक्षिण भारत की जनता का पूरा विश्वास है कि यह प्रथा शास्त्रों में निषिद्ध नहीं है। विवाह की बात तो बड़ी है छोटी सी छोटी बातों में भी जनता का यही विचार था। इसका फल यह निकला कि भारत में भिन्न भिन्न प्रान्तों में जो बालविवाह, अस्पृश्यता आदि हानिकारक आचार प्रचलित थे उनका नाश करना, उनके स्थान पर नये और अच्छे आचारों को स्थापित करना एक बहुत कठिन काम हो गया, जिस के करने और कराने में जनता का द्वेष पैदा हो जाता है।

स्वामी दयानन्द जी ने वेदों को और शास्त्रों को पढ़कर अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से यह निश्चित किया कि मौलिक वैदिक धर्म, मौलिक आर्य सभ्यता और आर्य संस्कृति का क्या स्वरूप था और इस रूप का कैसे क्रमशः परिवर्तन हुआ, यहां तक कि इस मौलिक स्वरूप को लोग बिलकुल भूल बैठे थे। सत्यार्थप्रकाश में इसी मौलिक वैदिक धर्म का प्रतिपादन है।

फिर यह प्रश्न उठा कि यह धर्म किसके लिए है। धर्म दो प्रकार का है। साधारण धर्म और विशेष धर्म। धर्म का यह विभाग भारत में बहुत दिन से चला आ रहा है। साधारण धर्म मनुष्य मात्र के लिए है और विशेष धर्म प्रत्येक वर्ण और जाति के लिए। परिस्थिति के अनुसार कभी विशेष धर्म का प्राधान्य रहता है, कभी साधारण धर्म का। भारत में इन दोनो मे स्पर्धा हमेशा से रही। साधारण धर्मों में सबसे बड़ा बौद्ध धर्म था। हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म में स्पर्द्धा हजारों वर्ष चलती रही। अन्त में हिंदू धर्म की विजय हुई और बौद्ध धर्म हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया गया। परन्तु हिन्दुस्तान से बाहर बौद्ध धर्म ने बड़ी विजय प्राप्त की। तिब्बत, चीन, जापान, ब्रह्मा, स्याम, लंका, इत्यादि अनेक देशो में अब भी बौद्ध धर्म का बड़ा प्रभाव है। परन्तु हिन्दुस्तान में, जो उस धर्म का जन्म स्थान था उसका कुछ भी प्रभाव नहीं रहा। यहा सैकड़ों वर्षों से विशेष धर्मों का पूरा साम्राज्य रहा है।

विशेष धर्म वर्ण और जाति के अनुसार भिन्न २ रहता है। विशेष धर्म का लक्षण ही यही है। किसी जाति में जन्म और विशेष धर्म से सम्बन्ध हमेशा घनिष्ठ रहता है। जिस देश में विशेष धर्मों का राज्य रहता है उस देश मे एक बात पैदा हो जाती है जो उस देश के लिए अच्छी नहीं है। वह यह है कि लोग जो कुछ करते हैं, जिस पदार्थ या आचार या संस्कृति या सभ्यता को उत्पन्न करते हैं, मानव जाति के लिए नहीं उत्पन्न करते हैं परन्तु अपने वर्ण या जाति के लिए। सारे हिन्दुस्तान में एक दृष्टि दौड़ाने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। प्रत्येक प्रान्त में यही देखा जाता है कि प्रत्येक जाति के लोग अपने सभी आचारों को, सभी धर्मों को वेष भूषा तक को अपनी ही जाति के लिए बना हुआ समझते, हैं मनुष्य मात्र के लिए नहीं। जब कोई हिंदुस्तानी विलायत जाता है और वहां के अन्य लोगों की तरह विलायती वेषभूषा पहनता है तो उधर के

लोगों को उसमें कोई आश्चर्य नहीं मालूम होता है। उसको देख कर कोई नहीं हँसता है। हिन्दुस्तानी का यह काम उधर के लोगों का स्वाभाविक प्रतीत होता है। क्यों ? इसलिए कि वहां के लोग समझते हैं कि पाश्चात्य सभ्यता मनुष्य मात्र के लिए अच्छी है। उनके लिए पाश्चात्य सभ्यता, अर्थात् किस्तु धर्म, पाश्चात्य विज्ञान, पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली पाश्चात्य वेषभूषा, और भी जो कुछ पाश्चात्य सभ्यता में अन्तर्गत है वह सब सिर्फ पाश्चात्य जनता के लिए ही नहीं परन्तु मनुष्यमात्र के लिए अच्छा है। इसके विपरीत कोई पाश्चात्य महिला हिन्दुस्तान में आकार साड़ियों की सुन्दरता को देख कर अगर खुद साड़ी पहनना प्रारम्भ कर तो पहले पहिले हम हिन्दुस्तानियों को ही आश्चर्य होता है। आश्चर्य क्या, बहुत लोग हँस उठते हैं। उनका गूढ़ विचार यही है कि यह सब हम लोगों के लिए बनाया गया। विदेशी लोग हमारे आचारों को जब अपनाते हैं तब अनुचित काम करते हैं। विदेशी लोग क्या ? दक्षिण में जाकर किसी ब्राह्मणी से कहिये कि कोई अब्राह्मण जाति की स्त्री अपनी साड़ी को ब्राह्मणियों की तरह पहनती है ? और तब देखिये वह क्या कहती है। यह बात उसको कभी नहीं पसन्द आयगी। वह उसको अत्याचार समझेगी। उनकी दृष्टि में साड़ी पहिनने की वह रीति खास ब्राह्मणियों के लिये है। यह एक छोटा सा उदाहरण है परन्तु यह तत्त्व सारे जीवन में फैला हुआ है। यही विशेष धर्म का साम्राज्य कहलाता है।

इस का बुरा परिणाम यह हुआ कि दुनिया को देने के लिये भारत के हाथ में कुछ नहीं था। एक तरफ यह हाल और दूसरी तरफ दुनिया के लोग अपनी २ चीज लेकर यहाँ आये भारत वासियों को देने के लिये वे उन चीजों का विशेष धर्म नहीं समझते थे। इस्लाम का जन्म हुआ अरब में परन्तु अरबियों ने इस्लाम को अरबियों का धर्म कभी नहीं समझा। उन्होंने उसको मनुष्यमात्र का धर्म समझा। किन्तु मतावलम्बियों ने भी यही किया। नतीजा यह हुआ कि ऋषि दयानन्द जी के समय भारत की एक विचित्र दशा हो रही थी। विदेशी धर्म और सभ्यता का भारत में खूब प्रचार हो रहा था और इसके बदले भारतवासी विदेशियों को कुछ भी नहीं दे रहे थे। स्वामी जी ने देखा कि इस से भारत के लिये अपमान और हानि के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता।

इसी लिये उन्होंने अपने गम्भीर स्वर से सुमुद्घोषित किया कि वह मौलिक वैदिक धर्म जिसको उन्होंने वेदों के श्रवण, मनन, और निदिध्यासनसे खोज निकाला था, वह मनुष्यमात्र के लिये है।

दुनिया में जो कोई उसको आत्मसात् करना चाह कर सकता है। पूरी श्रद्धा से जो उसको आत्मसात् करे वही आर्य है, चाहे उसका जन्म किसी भी जाति में या वर्ण में या देश में या काल में हुआ हो।

ऋषि दयानन्द जी ने मौलिक वैदिक आर्य धर्म को बाद को आये मतों से संशोधित किया और उस को मनुष्य जाति के लिये भारत की तरफ से प्रदान किया। यही भारत की सेवा उन्होंने की। यह बहुत बड़ी सेवा है।



शाकरी व्रत

[ले०—श्री वासुदेव शरण जी अग्रवाल एम० ए०,]



[आप पुरा तत्त्व और प्राचीन भारतीय इतिहासके यशस्वी लेखक हैं। वैदिक साहित्य के विषयों पर आपके लेख गवेषणा पूर्ण एवं मनन य ग्य होते हैं।] —सम्पादक

प्रस्तुत लेख में विचारशील लेखक ने वैदिक 'शाकरी व्रत' की बड़ी मनोहारिणी एवं सामयिक सप्रमाण मौलिक व्याख्या की है। हम चाहते हैं कि आर्य माताए इसके भाव को भली-भांति ग्रहण करें।



गोभिल गृह्यसूत्र (३ । २ । ७-६) मे एक उल्लेख है कि प्राचीन काल में माताएं अपने बच्चों को दूध पिलाते समय उस अमृत क्षीर के साथ इस मंगलात्मक आशीर्वाद का पान कराती थीं कि हे पुत्रो ! तुम इस जीवन में शाक्वरी व्रत के पारगामी बनो—

अथाहि रौरुकि ब्राह्मणं भवति। कुमारान् ह स्म वै मातर पाययमाना आहु.—'शाक्वरीणां पुत्रका व्रतं पारयिष्णवो भवतेति।'

यह किसी प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थ का वचन है जो इस समय अप्राप्य है और जिसका नाम रौरुकि ब्राह्मण था। रोरुक नगर प्राचीन सौवीर देश की, जिसे आजकल सिन्ध कहते हैं, राजधानी थी। रोरुक का वर्तमान नाम रोड़ी है जो सक्खर के पास सिन्ध के तट पर है। सम्भवत इसी सीमान्त देश के एक ऋषि प्रवर ने इस शाक्वरी व्रत के माहात्म्य को भली प्रकार समझ कर राष्ट्रीय कुमारों के जीवन के साथ उसके विशिष्ट सम्बन्ध का उपदेश दिया था। जिस राष्ट्र में माताएं कुमारों के जीवन सूत्र का प्रारम्भ शाकरी मंत्रों से करें, जहां स्तन्यपान के साथही शाकरी भावना ओत प्रोत हो, वहां की उदयात्मक शक्ति का केवल अनुमान किया जा सकता है। जीवन मूल मगल-मंत्र का रहस्य शाकरी व्रत है।

यदि यह पूछा जाय कि मानवी जीवन क्या है ? तो इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर यह कह कर दिया जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य का जीवन 'डुकृञ् करणे' धातु के अनन्त रूपों का विकास है। मनुष्य जो कर्म करता है उसी के अनुरूप अपने जीवन को ढालने में समर्थ होता है। कर्म करने की क्षमता जीवन का अक्षय्य धन है। इस अनन्त भंडार में से प्रत्येक मनुष्य जो चाहे प्राप्त कर सकता है।

'डुकृञ् करणे' या 'करना' धातु का मेरुदण्ड 'शक्लृ' या 'सकना' धातु है। मनुष्य की शक्ति उसके कर्म की सनातनी रीढ है। शक्ति की नींव पर जीवन का प्रासाद खड़ा किया जाता है। हम

जितना कर 'सकते' हैं वही हमारे अधिकार की कसौटी है। शक्लृ धातु के जिन लकारों का हमारे जीवन में पारायण हो पाता है वेही हमारी गति के ध्रुव मापदण्ड बनते हैं। जीवन के शान्त मुहूर्तों में जब हम सोचते हैं—

क्रतो स्मर, कृतंस्मर, अर्थात् अपने संकल्प का स्मरण करो और अपने कर्म से उसका मिलान करो, तो यही निष्कर्ष निकलता है कि 'सकना' ही 'करना' है। हमारे दृढ़ संकल्प की शक्ति बाहु में अवतीर्ण होकर हमें कर्म की ओर प्रेरित करती है। शक्ति विहीन संकल्प कोरे कागज की तरह है। कर्म शक्ति या शाकरी के अंकों से लिखा हुआ कागज जीवन में दर्शनी हुँडी की तरह काम देता है।

वह जीवन—लक्ष्य को वीर के अमोघ बाण की तरह बेध देता है। इस विश्व में जहां भी देखो शाक्वरी व्रत का प्रकाश है। प्रजापति अपने अनन्त ईक्षण तप और श्रम से सृष्टि बनाने में समर्थ हुए यही उनका शाक्वरी व्रत था—

यदिइमांल्लोकान्प्रजापति. सृष्ट्वेदं सर्वमशक्नो-द्यदिदं किंच तच्छक्वर्योऽ भवंस्तच्छक्वरीणां शक्व-रीत्वम्। (ऐतरेय ब्रा० ५। ७)

अर्थात् प्रजापति ने इन लोकों को बनाकर यहां जो कुछ भी है उस सबको शक्ति समन्वित किया, यही शक्ति शकरी हुई। प्रजा पति के 'सकने' सजन (सामर्थ्य) में ही शकरी का शकरीपन है।

कौशीतकी ब्राह्मण ने कहा है कि इन्द्र ने जिस शक्ति से वृत्रासुर का बध किया उसका नाम शक्वरी है—

एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमशकद्धन्तुं तद्यदाभिर्वृत्रम-शकद्धन्तुं तस्माच्छक्वर्यः ॥ कौ० २३। २॥

(एक ओर आसुरी शक्ति का प्रतीक वृत्र है और दूसरी ओरदैवी शक्ति के प्रतिनिधि इन्द्र हैं।) देवों और असुरों के शाश्वत संग्रम में जो विशाल संचित शक्ति से देवता असुरों पर विजय पाते रहे हैं उस शक्ति का नाम शकरी है। (जब तक विश्व-नियन्ता के सर्वोऽभिभावी नियमों के अनुकूल सृष्टि के कार्यों का संचालन होता रहेगा तब तक आधि-दैविक आध्यात्मिक और आधिभौतिक क्षेत्रों में अव-श्य ही असुरों को शकरी शक्ति के अनुशासन में रहना पड़ेगा। ताण्डय ब्राह्मण में स्पष्ट कहा है कि इन्द्र के द्वारा वृत्रासुर की पराजय पाप की पराजय है। जितना शीघ्र हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शक्ति के अवलम्बन से पाप को पराजित कर देते हैं उतने ही वेग से हम जीवन के श्रेष्ठ कल्याणों को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं—)

एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमहन् क्षिप्रं वा एताभि. पाप्मानं हन्ति क्षिप्रं वसीयान् भवति।
(ताण्ड्य० १२। १३। २३)

इन्द्र का वज्र शकरी शक्ति से बना हुआ है इसलिए उसे प्राचीन परिभाषा में शाकर कहा गया है।

शाकरो वज्र। (तै० २। १। ५। ११) राष्ट्र की रक्षण शक्ति शकरी का ही सुन्दर रूप है। ब्राह्मणों का ब्रह्मवर्चस तेज भी शकरी शक्ति पर निर्भर है। वैश्यों की श्री और शूद्रों की पशु समृद्धि तभी तक सुरक्षित हैं जबतक राष्ट्र में शकरी मन्त्रों का महानाद जीवित रहता है। इस दृष्टि से ब्राह्मण कारोंने निम्न लिखित परिभाषाओं का उल्लेख किया है—

ब्रह्म शकर्य (ताण्ड्य० १६। ५। १८।)
वज्र शकर्य (ताण्ड्या १२। १३। १४॥)
श्री. शकर्य (ताण्ड्य १३। २। २।)
पशव शकर्य (ताण्ड्य १३। १। ३।)

गोभिल गृह्य सूत्र में यह भी कहा गया है कि प्राचीन काल में ब्रह्मचारी वेदाध्ययन समाप्त करने के बाद कुछ काल पर्यन्त विशेष रूपसे शाक्वरी व्रत की आराधना के लिए आचार्य के पास ठहर जाते थे। विद्याध्ययन के द्वारा जो कुछ उन्हें उपलब्ध हुआ था उसे इस समय में अपनी सङ्कल्प शक्ति के बल से जीवन के लिए उपयोगी बनाते थे।

ऋषि दयानन्द ने भी दण्डी विरजानन्द से दीक्षा लेने के पश्चात् और प्रचार कार्य से पूर्व, वर्षों तक गंगातट पर भ्रमण करते हुए इसी शक्ति को जागृत एवं समृद्ध किया था। ऐतरेय आरण्यक में भी इनका पाठ है।

इस शाकरी व्रत की अवधि मे विशेष रूप से महानाम्नी ऋचाओं का अध्ययन और पारायण करना पड़ता था। ये दस ऋचाएं सामवेद के अन्तर्गत पूर्वार्चिक के बाद और उत्तरार्चिक के पहले दी गई हैं। इनका गान महानाम्नी सम कहलाता था और शक्करी छन्द में होने के कारण इन्हीं को शक्करी भी कहते थे। किसी समय इन मन्त्रों की महिमा गायत्री मन्त्र के समान मानी जाती थी। गौतम और बौधायन के धर्म सूत्रों मे इनको परम पावन कहा गया है। जिस समय राष्ट्र मे वैदिक शिक्षादर्श जीवित थे उस समय माताए अपने बच्चों को स्तन्यपान कराते समय ये आशीर्वाद देती थीं कि हे पुत्रो! तुम यथाविधि ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करके विद्याध्ययन करते हुए अन्त मे महानाम्नी साम पर्यन्त उच्च शिक्षा में पारङ्गत बनो। ऐतरेय ब्राह्मण मे स्पष्ट कहा है कि अपने आत्मा को महान् बनाने का प्रयोग महानाम्नी ऋचाएं हैं।

इन्द्रो वा एताभिर्महानात्मान निरमिमीत तस्मा न्महानाम्न्य। (ऐत० ५।७।)

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ के माध्यन्दिन सवन में महानाम्नी ऋचाओं का गान किया जाना चाहिए। इसका अभिप्राय यही है कि मनुष्य का यौवन काल शक्ति सञ्चय और उसकी अभिव्यक्ति का सर्वोत्तमसमय है। महानाम्नी ऋचाओं मे जिस शक्ति शाली इन्द्र का आवाहन किया जाता है उस वज्रधारी देव की वीर्य शाली महिमा का जीवन में साक्षात्कार करनेवाले नवयुवक जिस राष्ट्र और समाज में जन्म लेते हैं वह समाज कृतकृत्य हो जाता है। जहा आलस्य और मूर्च्छा रूपी घोर पापों को पैरों तले रौंद कर प्रजाए सोते से उठ खड़ी होती हैं वह राष्ट्र इन्द्र की तरह ही महान् बन जाता है। उस समय और श्रेष्ठ युवक इन्द्र का आवाहन करते हुये कहते हैं— देवों में बलिष्ठ और महिष्ठ इन्द्र! तुम पूर्वजों की शक्तियों के अधिपति हो। हम अपने नव जागरण मे उनका पुनर्दर्शन चाहते है।

अतएव हे वज्रिन्! तुम्हारे अपराजित तेज को श्रद्धा के साथ आह्वान है। तुम्हारी अबाधित गति हमारे रथ चक्रों मे निनादित हो। हे शूर! अपनी समस्त रक्षण शक्ति से हमारी रक्षा करो। अभ्युदय और रक्षा के लिए तुम्हारा सान्निध्य हमें प्राप्त हो। हे वसुपति! हमको सब प्रकार से पूर्ण करो, क्योंकि जो भरे पूरे हैं उन्हीं की ससार मे प्रशसा है। हे अद्वितीय सखा! तुम्हारी विजय चिरजीवी हो" जिस समय महानाम्नी ऋचाओं के उत्कर्ष-शाली स्वर गूजने लगते हैं उस समय सब प्रजाए उसका अनुमोदन करती हुई पुकार उठती हैं—

एवाह्येव। एवाह्येव। एवा ह्यग्ने। एवाहीन्द्र। एवाहिपूषन्। एवाहि देवा॥

अर्थात् हे इन्द्र, अग्नि पूषा और हे देव गण! ऐसा ही होगा, अवश्यमेव ऐसा होगा।

हमारे कर्म की शक्ति से राष्ट्र के जीवन की परिधि उत्तरोत्तर विस्तार को प्राप्त होगी और हमारे दृढ सकल्पो से सिंचित यह महावृक्ष युग-युगान्त तक जीवन लाभ करेगा।

ऋषि ऋण का हिसाब करो

(ले०—श्री रामगोपालजी आर्य प्रधान मङ्गनाथ भजन)





भारत वर्ष का सबसे बड़ा पर्व दीपावली आ गया। इस त्योहार पर गुजरात, काठियावाड़, महाराष्ट्र, बम्बई का सम्वत् परिवर्तन होता है गुजरात का सम्वत् १९९७ समाप्त होकर १९९८ आरम्भ हो जायगा श्री दयानन्दाब्द ११७ समाप्त होकर ११८ लग जायगा। भारतवर्ष के ९५ फीसदी व्यापारी अपने लेन देन का हिसाब साफ करेंगे जो श्रेष्ठ और धनी पुरुष हैं वह लेने की पीछे, देने की चिन्ता पहले करते हैं इसी से श्रेष्ठ धनी और मानी कहलाते हैं। बाजार मे उनकी धाक जमी रहती है। बैंक सरकार और बड़े बड़े राज घरानों से कम सूद पर जितना ऋण उनको जब चाहें मिल जाता है कारण वह देने के बड़े मोतबर हैं और अपने ऊपर चढ़े हुए ऋण को दिन और रात्रि अपने सिर पर एक बोझ समझने और दृष्टि के लक्ष्य मे रखते हैं।

हम आर्यसमाजी वैदिकधर्मी जिन्होंने परम गुरु दयालु दयानन्द का ऋण देना है इस दीपावली पर हिसाब करलें और (कुल तो कोई न दे नहीं सकता किन्तु) अंशाश जितना अधिक से अधिक हो सके दे दें शेष के लिये क्षमा माँगनी चाहिये और देने का उद्यत रहना चाहिये।

क्या हमने ऋषि के लिए कुछ त्याग किया है? क्या हमने अपने जीवन के उत्थान के लिए कुछ तप किया है? क्या हमने अपनी गाढी कमाई कमाकर वैदिक धर्म के लिए शुद्ध भाव और धर्मनिष्ठा से कुछ दान किया है? क्या हमने ठीक प्रतिज्ञाके अनुसार शतांश मासिक आर्यसमाज को दिया है? दीपावली आई ईमान्दारी से हिसाब करलो।

हमने व्यापक ब्रह्म के अनेक गीत गाये न्याय के स्वाध्याय के अनेक सूत्र पढ़े पढाये अनेक मूर्ति पूजा पुराण कुरान के खण्डन मे बहुत दिन गँवाये क्या कभी हृदय से हरिगुण गाये? महर्षि जगद्गुरू को कितना अपनाया, परस्पर कितना प्रेम बढ़ाया दीपावली आई हिसाब करलो।

क्या प्रथम नियम से ब्रह्म विद्या को हम समझे? द्वितीय नियम से बन्दनीय जगद् बन्धु परमात्मा का लक्षण स्वरूप समझे? क्या तृतीय नियम से वेद की महिमा उसके पठन पाठन ज्ञान भण्डार को हमने स्मरण मनन किया? क्या चतुर्थ नियम से सत्य और असत्य के ग्रहण तथा त्याग के लिए उद्यत हुये? क्या पचम नियम से धर्म अर्थात् सत्य और असत्य के विचार से जीवन को पवित्र किया? क्या षष्ट नियम को पवित्र भावना से प्रभावित होकर ससार के उपकार में अपनी भावनाओं को लगाया? क्या सप्तम नियम का मनुष्य के प्रति या जीव मात्र के प्रति अपने जीवन को लगाकर प्रेम से बाँधा? क्या अष्टम नियम के अनुसार मूर्खता निरक्षरता को भगाकर विद्या की वृद्धि करी कराई? क्या नवम नियम के अनुसार जीवमात्र की या मनुष्य मात्र की उन्नति और साम्यवाद का उपदेश ग्रहण किया? क्या दसवें नियम के अनुसार अपने आपको समाज के बन्धन से बाँध कर स्वतन्त्रता का सच्चा पाठ हमने पढ़ा? दीपावली आई हिसाब करलो।

—: दीपावली का सन्देश :—

[ले०—श्री देशभक्त कुंवर चांदकरण जी शारदा प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान मालवा]



श्री शारदा जी आर्यजगत् और राजस्थान के तेजस्वी कार्यकर्त्ता हैं। आपकी वाणी और लेखनी दोनों में ही समान रूप से ओजस्विता का पर्याप्त पुट रहता है।—सम्पादक]

इस लेख में लेखक महोदय ने इस बात को दर्शाया है कि हमें राष्ट्र रक्षा के लिए बल संचित करना चाहिए।



आज दीपावली का शुभ दिवस है। आज हमारे हृदय में स्मृतियों की दीपावली जल रही है॥ इस पवित्र त्योहार को हम अतीत युग से मनाते आ रहे हैं। इस त्योहार को हमने उस समय भी मनाया था, जबकि हमारी पवित्र भारत भूमिमें स्थान स्थान पर ऋषियों और मुनियों के आश्रम थे। जब सुकुमार बालकों को ब्रह्मचर्य की कठोर भट्टी में तपाकर विमल निर्दोष कुन्दन की भांति देदीप्यमान करके दीक्षित किया जाता था। जब प्रात सायकाल यज्ञ हवन के साथ आत्मा परमात्मादि गहन तत्त्वों का विवेचन होता था। उस पुनीत समय मे हमारे आश्रमों में शिल्प कला और व्यापार भी सिखाया जाता था। परन्तु वह व्यापार आज कलके कलिकाल का व्यापार नहीं था। उस समय वह व्यापार नहीं था। उस समय वेद व्यापार सिखाया जाता था जिसे जागृति और प्रेम कहते हैं हमे सवा का भाव बतलाया जाता था, ज्ञान का मूल बताया जाता था धर्म की तोल बताई जाती थी। और जीवन भर आध्यत्मिक व्यापार सिखलाया जाता था हम इतिहास और समय का खाता खोलते थे और अपना तिजोरी मे आज के दिन देखत थे कि हम क्या खो चुके हैं और कितना प्राप्त कर चुके हैं! अपने व्यापार की नीति को शुद्धकर के संकुचितता के बांट बदल देते थे तथा हमारा धर्म कंगालों और निर्धनों के लिए उमड़ता था। हम अमरता का संदेश लोगों को सुनाते थे और निराशा की अन्धकार मय रात्रि को दूर करके अपनी चाँदनी की शुभ्र शीतल ज्योति की वर्षा संसार पर करते थे। दीपावली की अमावस्या की घनघोर अन्धकारमय रजनी में सारे ससार को अलौकिक ब्राह्म तेज के दर्शन कराने के लिए हम आज के पवित्र पर्व को दीपकों से देदीप्यमान करते थे।

किन्तु आज दीपावली के दिन मैं ऋषि दयानन्द के आगमन से पूर्वकाल की स्मृतियों में, विधवाओं की आहें, दलितों की पुकार, आततायियों के अत्याचार, धर्म के नाम पर पापाचार, अन्धविश्वासों का संसार, सत्य का तिरस्कार, स्वार्थ का भण्डार और विश्वव्यापी नर संहार को देख रहा हूँ। आज दीप शिखा के दिव्यालोक में भारतीय नवयुवक मुझसे पूछते हैं कि उक्त समस्त अनाचार का आप क्या प्रतीकार बताते हैं? खून से लथपथ संसार में युवकों के जीवन मार्ग को आप किस क्रान्ति की ओर ले जाना चाहते हैं? हिटलर, चार्चिल और रूजवेल्ट की

एक एक दिन मे राष्ट्रों का कायापलट कर देने वाली शक्ति के समक्ष किस प्रकार आर्यसमाज द्वारा ससार की बाह्य और आन्तरिक शत्रुओ से रक्षा हो सकती है ?

हमारा इन आर्यवीरों को यही उत्तर है कि आप आर्यवीर दल द्वारा इस शक्ति युग मे शक्ति सचय करो और लोगों को समझाओ कि हमारी शक्ति जर्मनों के समान पराधीन बनाने के लिए नहीं है बल्कि हमारी शक्ति वैदिक सिद्धान्तानुसार दु खियों के दु ख मिटाने, संसार मे शक्ति स्थापन करने और दुष्टों का दलन करने के लिये सचित की जारही है।

इन्हीं सिद्धान्तो के आधार पर महर्षि दयानन्द ने हमें चक्रवर्ती साम्राज्य प्राप्त करने के लिये उत्साहित किया था। उन्होने अकमण्य लोगो पर कर्म योग की और अन्धपरम्परा वालो पर तक की और पाखण्ड पर सत्य की विजय वैजयन्ती फहराई थी। आज भी वह महान् आत्मा युवकों क हृदय मे बलिदान की पुण्य भावना जगा रहा है। और क्रान्तिकारियों के लिये आदर्श बना हुआ है।

हिन्दुओ एवं मुसलमानो के साम्राज्य विलासता के कारण नाश को प्राप्त हुए।

महर्षि दयानन्द ब्रह्मचर्य और सदाचार का प्रचार करके इस विलासता को जड़मूल से उखाड़ना चाहते थे। अत दीपावली का मेरा यही शुभ सन्देश है कि आज के पवित्र दिवस से क्षात्रधर्म जागृत करो और ब्रह्मचर्य युक्त त्याग और तप का जीवन बिताने का व्रत लो। सर्व साधारण भारतीय जनता मे आवश्यक शस्त्रास्त्रकी शिक्षा देना और आवश्यकता होने पर अपने देश की रक्षा के लिये तैय्यार रहने का भाव उत्पन्न करो। अन्य देश वासियों के समान हमको अपना राज्य पुन प्राप्त करने की भावना और तत्परता को लाने की अत्यन्त आवश्यकता है। इस समय सारे ससार को अपने झण्डे के नीचे लाने के लिये आर्यों के सम्मुख विस्तृत कार्य क्षेत्र पडा है। परमात्मा करे कि ऋषि दयानन्द के उद्देश्य तथा उनकी आन्तरिक कामना को पूर्ण करने के लिये भारतीय नवयुवकों के हृदय में आर्यों के चक्रवर्ती साम्राज्य पुन स्थापित करने की उत्तेजना उत्पन्न हो जिससे वीर प्रसविनी भारत माता का आशीर्वाद लेकर हम समग्र ससार मे सुख शान्ति फैला सकें। महर्षि दयानन्द ही इस युग मे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने न केवल हमे भारत मे आर्य राज्य स्थापित करने का नूतन दिव्य सदेश दिया बल्कि सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करने का आदेश दिया। अत ऋषि उत्सव मनाने का महत्व इसी में है कि हम सार्वभौम चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य स्थापित करने का व्रत ले। हमें आज उस आदित्य स्वरूप, महर्षि के जीवन से अपने हृदयों को फिर से प्रभावित करना चाहिये। हमारा कार्य क्षेत्र और ध्येय हमारे सामने है। ओ३म् का झण्डा हाथ मे लेकर साहस, श्रद्धा और दृढ सकल्प क साथ आगे बढ़े और ससारको पुन वैदिक निनाद से झकृत करदें।



आर्यसदाचार का मानदंड

(ले०—श्री पं० रामदत्तजी शुक्ल एम० ए० ऐडवोकेट)





ऋषि दयानन्द की भारतीयो के लिए एक श्रेष्ठ देन आर्य शब्द है। सहस्त्रवर्षात्मक दासता के कारण भारतीय अपना निजी नाम आय भूल चुके थे और हिदू कहलाने म ही आत्मगौरव अनुभव करते थे। नामकी विस्मृति के कारण आर्यजातायता आर्यधर्म, आर्यसंस्कृति, आर्यसभ्यता, एवं आर्य आचारविचार भी प्राय भूल रहे थे। इस प्रकार अपना सबकुछ त्यागने और विदेशियों का अन्धानुकरण करनेवाले भारतीयों को पुन आर्यनाम देकर उनकी दृष्टि आर्यसदाचार की ओर आकृष्ट करने का ऋषिने प्रयास किया। भगवान् मनु के द्वारा प्रतिपादित श्रुति, स्मृति, सदाचार और आत्मप्रियता को ऋषि दयानन्द ने भी धर्म का मानदड प्रतिपादित किया। तदनुसार उन्होंने वेद को स्वत प्रमाण माना, स्मृतियों को वेदानुकूल होने से प्रमाण और इन तीनों के अनुकूल होने से आत्मप्रियता को स्वीकरणीय समझा।

धर्मज्ञान के स्पष्ट चार मापक जानते हुये भी सर्वसाधारण सदा अपने कर्त्तव्याकत्तव्य विवेचन मे सदाचार को ही सबसे अधिक महत्व देते रहे हैं। इस तत्व को वैदिक सस्कृति प्रतिष्ठापक ऋषियों ने भलीभांति हृदयगम किया था। इसीलिये आचार्य आपस्तम्भ ने अपने धर्मसूत्र के अवसान मे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सूत्र देतेहुये इस विषय का प्रतिपादन किया है। सूत्र इस प्रकार है।

सर्वजनपदेष्वेकान्तसमाहितमार्याणा वृत्त सम्यग्विनीताना वृद्धानामात्मवतामलोलुपानामदाम्भिकानां वृत्तसादृश्य भजेत, एवमुभौ लोकाव भिजयति। ११। २९। १४।

अर्थात् समस्त देशो मे सम्यक् विनीत, अनुभवी वृद्ध, आत्मज्ञ, अलोलुप अदाम्भिक आर्यो के असन्दिग्ध आचरण के अनुसार व्यवहार करना चाहिये। ऐसा करने से दोनों लोकों को जीतता है। अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों प्रकार की सिद्धि प्राप्त करने मे समर्थ होता है।

उपर्युक्त सदाचार के मानदड को दृष्टि में रखते हुये आवश्यक गुणों से युक्त व्यक्तियों से

जो मानवसमाज या राष्ट्र जनता है उसमें तेज और ओज का स्वभावत आधान हो जाता है। क्या अपने समष्टि जीवन निर्माण काल में हम इस उत्कृष्ट सदाचार के आदर्श का अनुसरण करना स्वीकार सकेंगे? जिस मात्रा में हम सदाचार के आर्ष मानदण्डानुरूप अपना स्वरूप बनाने में सफल होंगे, उसी मात्रा में हमारा समाज आर्यत्व के विशुद्ध तेज से तेजस्वी और वर्चस्वी बनकर वर्तमान जिघांसाग्रस्त अज्ञानान्धकार में परिभ्रष्ट मानवजाति के लिये दीपमालिका के प्रदीप की भांति जिस प्रकार स्वयं ज्योतिष्मान् बनकर ऋषि ने मनुष्यजाति का कल्याण साधन किया, उसी प्रकार हम भी स्वयं दीपक बनकर वेदज्ञानज्योति से एक बार फिर पथच्युत और दुरवस्थाग्रस्त संसार को आर्यपथ पर दृढ़ता के साथ अग्रसर करने में सफल हो सकेंगे। एवमस्तु





श्री पं० विशम्भरनाथ जी तिवारी कानपुर

आप आर्यसमाज के उत्साही कार्यकर्ता एवं आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० के सहायक कोषाध्यक्ष हैं। इम्पीरियल बैंक की सर्विस समाप्ति के पश्चात् आपने आजीवन आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० की सेवा द्वारा सेवा का सङ्कल्प किया है।

मनुस्मृति के सम्बन्ध में जर्मनी के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता नीत्से के उद्गार।

यदि मनुष्य में सच्ची मानवता लानी हो तो उसे मनु के पथ पर चलना होगा। जब मैं मनुस्मृति पढ़ता हूँ तब मेरी विचारधारा बदल जाती है। सारे ग्रंथ में सूर्य जैसा प्रकाश है। उसमें मनुष्य के प्रति वैज्ञानिक तत्वों पर विश्लेषण किया गया है। इस ग्रंथ में स्त्रियों के प्रति जो विवेचन किया गया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। मानव व्यवस्था की यही विश्व भर में एकमात्र सर्वोत्तम पुस्तक है। इसी के द्वारा सच्चा जीवन लाभ हो सकता है।

सम्पादकीयः—

कृतज्ञता-प्रकाशन



आर्यमित्र के समस्त कृपालु लेखकों को यह बात सुविदित है कि प्रतिवर्ष उनकी अकारण अनुकम्पा से आर्यमित्र का ऋष्यक दीपमालिका के पावन पर्व पर उपादेय एवं सुपाठ्य विषयों के साथ प्रकाशित होता रहा है। अपनी आयु के गत ४४ वर्षों से आर्यमित्र ने सर्वसाधारण जनता और विशेषतया आर्य संसार की जिस प्रकार सेवा की है, उसका श्रेय बहुत करके उन विद्वान् लेखकों को है कि जो अपने अमूल्य समय में से कुछ आर्यमित्र की श्रीवृद्धि के लिये निष्कामभाव से लगातार देते रहे हैं। मुख्यत धार्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक साप्ताहिक पत्र होने के कारण यदि आर्यमित्र दैनिक, अर्द्ध साप्ताहिक और मासिक पत्र पत्रिकाओं के वैशिष्ट्य को अपने कलेवर में न प्रदर्शित कर सका हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

अनेक कारणों से इस वर्ष सर्वांगपूर्ण विशेषांक प्रकाशित करना कितना दुरुह कार्य है, इसको तो वे ही जानते हैं कि जिनका पत्रकला या मुद्रण कार्य का स्वल्प भी परिचय है। तथापि इस वर्ष सविशेष साहस करके प्रस्तुत ऋष्यक प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई। प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी ऋष्यक में प्रकाशित होने के लिये इतने अधिक लेख तथा कवितायें आई हैं कि यदि उन सबको प्रकाशित किया जा सकता तो प्रस्तुत अंक जैसे पूरे दो विशेषांक हो जाते। ऐसी दशा में सार्वत्रिक महगी के कारण विवश होकर हम केवल कतिपय लेख और कविताओं को ही इस अंक में स्थान दे सके हैं। इसका यह अर्थ कदापि न समझा जाय कि जो लेख स्थानाभाव के कारण नही प्रकाशित हो सके हैं उनका महत्व किसी प्रकार हमारी दृष्टि में न्यून है। वस्तुत हम तो अपने सभी सहृदय लेखकों के उनकी कृपा के लिये चिर आभारी हैं, और जो उपादेय लेख शेष रह गये हैं, उनको भी प्रकाशित करने का भविष्य में प्रबन्ध किया जायगा। खेद है कि इच्छा रहते हुये भी विलम्ब से आने के कारण हम इस अंक में अनेक महत्वपूर्ण रचनाओं और लेखों को स्थान न दे सके।

आर्यमित्र के ग्राहक, अनुग्राहकों और सहायकों से भी केवल इतना ही निवेदन करना है कि यह पत्र सर्वथा आपका ही है, इसलिये इसको मित्र की दृष्टि से देखने का आप महानुभाव अनुग्रह करते रहें। हम जानते हैं कि पत्र-सम्पादन कार्य इतना जटिल और उत्तरदायित्व पूर्ण है कि इस दुर्वह धुरा को वहन करनेवाले को न जाने किन२ को क्या२ बातें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष में सुननी पड़ती हैं। तथापि यदि कोई पत्रकार अपने मस्तिष्क को सर्वथा प्रकृतिस्थ रखता हुआ लोकापवाद को सहता हुआ अपने पाठकों तक परिष्कृत और सर्वथा उपादेय पाठ्य सामग्री पहुँचाता रहे तो उसको साधारणतया अपने कार्य से असन्तुष्ट रहने का कोई कारण नहीं होता है।

आर्यमित्र किस प्रकार आपके लिये हितकारी सिद्ध हो रहा है, इसका निर्णय अपने२ स्थानों पर आप स्वयं करें। हमारा औचित्य तो इतना ही है कि यथाशक्य प्रयत्न करके धार्मिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक विषयों को ग्राह्यरूप से आपके समक्ष प्रस्तुत करते रहें इस कार्य में सफलता लाभ करने के लिये आपका सहयोग और सहायता सर्वदा आवश्यक हैं।

उत्सवों की सफलता कैसे हो ?

क्या आपने कभी सोचा है कि वर्षों से धूम धाम के उत्सव करते हुये भी आप के समाज की उन्नति क्यों नहीं होती ?

आप वार्षिक उत्सव व्याख्यानों द्वारा जनता का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं। परन्तु उस आकर्षण को बिना साहित्य वितरण के परिपक्व नहीं कर सकते। हृदय पर पूरा प्रभाव डालना तथा शंकाओं को दूर करना पुस्तकों द्वारा ही होगा। इसलिए आप जितना धन उत्सवों पर व्यय करते हैं उसके अंशांश से ट्रैक्ट छपवाइये और अन्य पुस्तकों की बिक्री का प्रबन्ध कीजिये।

श्री प० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के ट्रैक्ट २६ लाख से भी अधिक छप चुके हैं। इनकी तीन मालायें हैं—

ट्रैक्ट प्रथम माला

मूल्य ।॥ प्रति कापी, २) प्रति सैकड़ा १५) प्रति हजार।

१ ईश्वर और उसकी पूजा। २ हमारे बच्चों की शिक्षा। ३ प्राचीन आर्यावर्त। ४ हमारे धर्मशास्त्र ५ हमारा धर्म। ६ वर की वेदी। ७ राजा और प्रजा। हमारी देश सेवा। ९ हमारे बिछुड़े भाई। १० सच्ची बात। ११ हमारा संगठन। १२ मुसलमानी मत की आलोचना। १३ राम भक्ति का रहस्य। १४ हमारे स्वामी। १५ ईसाई मत की आलोचना। १६ कुम्भ माहात्म्य १७ देवी देवता १८ धार्मिक भूल भुलैयां। १९ जिंदा लाश २० हमारा भोजन। २१ दलितोद्धार। २२ वैदिक संध्या २३ हवन विधि। २४ प्रार्थना भजन। २५ वैदिक प्रार्थना। २६ उपदेश। २७ मूर्तिपूजा। २८ [illegible] २९ आर्य समाज क्या है? ३० [illegible] नशा। ३२ अछूतों का प्रश्न। ३३ ब्रह्मचर्य। ३४ हमारा बनाने वाला। ३५ संस्कार ३६ आनन्द का स्रोत ३७ हिंदुओं के साथ विश्वासघात। ३८ स्वामी दयानन्द की दो भारी भूलें। ३९ हिन्दू जाति का भयंकर भ्रम। ४० मुसलमान भाइयों के सोचने योग्य बातें। ४१ कलियुग। ४२ ग्रहण। ४३ साधु सन्यासी। ४४ जीव क्या है। ४५ गुरु माहात्म्य। ४६ पुनर्जन्म। ४७ अद्भुत चमत्कार। ४८ पितृयज्ञ। ४९ लोग क्या कहते हैं। ५० स्वामी दयानन्द की सूक्तियां। ५१ ईश्वर और जीव का सम्बन्ध। ५२ पचयज्ञ महिमा। ५३ वेदों में ईश्वर का स्वरूप। ५४ यज्ञोपवीत और जनेऊ। ५५ दलित जातियां और नया प्रश्न। ५६ धर्म से होनेवाली कल्पित हानियां। ५७ मेडियाधसान। ५८ आर्य समाज की सार्वजनिकता। ५९ यज्ञ के सामान्य मन्त्र। ६० वैदिक त्रैतवाद। ६१ ईसाई मत समीक्षा—या खुदा का बेटा। (नं० १) ६२ तुम कौन हो? ६३ तुम्हारी भाषा क्या है? ६४ तुम्हारा धर्म क्या है। ६५ मुर्दा जलाना चाहिये ६६ शुद्धि [illegible]

नोट —श्री उपाध्याय जी की अन्य पुस्तकों तथा कला प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित ग्रंथों के लिए पिछला अंक देखिये।

ट्रैक्ट विभाग आर्यसमाज चौक इलाहाबाद (यू० पी०)

प्रकाशक व मुद्रक—सोमेश्वरदयाली श्रीवास्तव, मसनदनशीन आर्य भास्कर प्रेस, नं० ५ हिवेट रोड इलाहाबाद।

रजिस्टर्ड नं० ए० २४

आर्यमित्र-(परिशिष्टाङ्क)

३१ अक्टूबर १९३५



ॐ

नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ॥

सम्पादक—
बाबूराम एम० ए०

दयानन्दाब्द १११

{ इस अङ्क का मूल्य ~)

* ओ३म् *



का



वर्ष ३८ { कार्त्तिक शुक्ल ४ सं० १९९२ वि० ३१ अक्टूबर १९३५ } अङ्क ४२

❁ ईश-वन्दना ❁

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मेराध्यताम् इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ।

प्रभु है कर्माधीश आप व्रतपति कहलाते ।
सदा कर्म की रीति नीति दे ज्ञान सिखाते ॥
कर्माधीन जहान वेद ने घोष जनाया ।
कर्म निरत सब काल रहे यह मन मे आया ॥
अब कृपा दृष्टि से शक्ति दें जो वैदिक मत को गहे ।
यह "श्याम" अनृत को त्याग कर, सदा सत्यपथ पर रहे ॥

—'श्याम'

ब्रह्म-वादी दयानन्द

(ले०-श्री पं० वासुदेव शरण जी एम० ए०)

तत्तु समन्वयात्।

अर्थात्—तदेव ब्रह्म सर्वत्र वेदवाक्येषु समन्वितं प्रतिपादितमस्ति। कचित्साक्षात् कचित्परम्परया च। अतः परमोऽर्थो वेदानां ब्रह्मैवास्ति।

ऋग्वेद भाष्य-भूमिका के वेदविद्या-विचार प्रकरण में इस घोषणा का डिंडिमघोष करते हुए स्वामी दयानन्द ने अपने ब्रह्मवाद सिद्धान्त का उपक्रम किया है। शंकर ब्रह्मवादी थे। दयानन्द भी ब्रह्मवादी थे। परन्तु 'तत्तु समन्वयात्' इस व्यास सूत्र का शंकराचार्य ने जो उपनिषदों के लिए अर्थ किया है उसे ही स्वामी दयानन्द ने वेदों पर घटित किया है। शंकराचार्य ने लिखा था:—

तद्ब्रह्म सर्वज्ञं सर्वशक्ति जगदुत्पत्तिस्थितिलयकारणं वेदान्तशास्त्रादेवावगम्यते। कथम्, समन्वयात्। सर्वेषु हि वेदान्तेषु वाक्यानि तात्पर्येणैतस्यार्थस्य प्रतिपाद कत्वेन समनुगतानि। सदेव सोम्येदमग्रआसीत'''' इत्यादि।

अर्थात् सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के कारण ब्रह्म का ज्ञान वेदान्त शास्त्र से होता है। क्योंकि सभी वेदान्त वाक्यों का तात्पर्य ब्रह्म के प्रतिपादन में ही संगत है। इस प्रकार के श्रुतियों के ज्ञानकाण्ड के परमनिधान उपनिषदों के ब्रह्मवाद पक्ष का मण्डन विस्तार से शंकर ने किया। स्वामी दयानन्द ने इसी व्यास सूत्र को अपनी प्रतिभा के द्वारा स्वयं वेदों के ही समन्वय के प्रतिपादन के काम में लिया। अर्थात् 'वही ब्रह्म सर्वत्र वेद वाक्यों में समन्वय के साथ प्रतिपादित हुआ है।' कहीं यह प्रतिपादित साक्षात् शब्दों में है, कहीं ज्ञानकर्म उपासना विज्ञान की परम्परा से मिलता है। इसलिए वेदों का परम निष्कर्ष ब्रह्म ही है।

इस प्रतिज्ञा को पहले उपनिषदों और गीतादिक ग्रंथों में भी दुहराया गया था, यथा—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति,
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति,
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि।
ओ३म् इत्येतत्।

अर्थात् समस्त वेद उसी परम पद या प्राप्तव्य स्थान ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं, संक्षेप में वही ओंकार है।

स्वामी दयानन्द ने उपरोक्त सूत्र की नई व्याख्या के अनन्तर उसके उपबृंहण रूप से चारों वेदों के प्रमाण देते हुए वही कार्य किया है जो 'समन्वयात्' पद से अधिगत समन्वय दिखलाने के लिए शंकर ने उपनिषद् वाक्यों को उद्धृत करके किया था। उन्होंने प्रारम्भ में माण्डूक्य उपनिषद् का एक महत्वपूर्ण अवतरण दिया है।

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम् अर्थात् ओमित्येतस्य नामास्ति तदक्षरम्। यन्न क्षीयते कदाचित्, यच्चराचरम् जगत् अश्नुते व्याप्नोति तद् ब्रह्मैवास्ति इति विज्ञेयम्। अस्यैव सर्वैर्वेदादिभिः शास्त्रैः सकलेन जगता चोपगत व्याख्यानं मुख्यतया क्रियतेऽतोऽयं प्रधानविषयोऽस्तीत्यवधार्यम्।

अर्थात् ओ३म जिसकी संज्ञा या नाम है, वह अक्षर ब्रह्म है। अक्षर इसलिए कि कभी उसका क्षय नहीं होता। अथवा वह समस्त जगत् को व्याप्त कर रहा है। सब वेदादि शास्त्र और समस्त जगत् के द्वारा उसी अक्षर का व्याख्यान होता है। भारतीय अध्यात्म शास्त्र के तत्त्व तथा उसके समन्वय के सिद्धान्त का परिचय रखनेवाला कोई भी विद्वान् स्वामीजी की उपरोक्त प्रतिज्ञा से असहमत न होगा, क्योंकि सब जगत् और वेदमन्त्रों का प्रयोजन मुख्यतया उसी ब्रह्म का व्याख्यान है। ऐसा दृष्टिकोण आर्ष शैली से निर्मित ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद् आदिक ग्रन्थों का सदा से रहा है।

उपरोक्त ब्रह्मवाद पक्ष की प्रतिज्ञा ही स्वामी दयानन्द का वेद विषयक दृष्टिकोण है। इस सूर्य के सामने सदियों से घनीभूत अन्धकार क्षण मात्र में ध्वस्त हो गया। वेदों का आलोक अपने वास्तविक रूप में स्फुरित हो गया। बीच के कई सहस्र वर्षों को एक ही डग में पार करके स्वामी दयानन्द ने तुरन्त अपना सम्बन्ध संहिता के साथ स्थापित कर लिया।

दयानन्द का स्कन्दत्व

शंकर रामानुज वल्लभ मध्वादि अनेक आचार्यों ने अपने आपको उपनिषदों की श्रुति तक ही सीमित रक्खा था। स्वामी दयानन्द ने उपनिषद् और वेदों के बीच की इस गहरी खाई को एक ही कुदान मे पार कर लिया। उनके इस प्रतिभा सम्पन्न कार्य का उपनिषदों के शब्दों में हम महान् 'स्कन्द' कार्य कह सकते हैं। छान्दोग्य उपनिषद के नारद सनत्कुमार संवाद के अन्त में लिखा है —

सर्वग्रंथीनां विप्रमोक्षः। तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमार। तं स्कन्द इत्याचक्षते

अर्थात्—सच्ची आत्मस्मृति आने पर सब गांठें छूट जाती है। इसप्रकार जिसके पाप धुल जाते हैं वह तमकी गहरी खाई के पार ज्योति मे चला जाता है। उसके इस कुदान कार्य के उपलक्ष्य मे उसे स्कन्द कहते हैं। सभी प्रतिभाशील महान् आत्माओं में यह स्कन्दत्व गुण विद्यमान रहता है। वे 'उरुक्रम' होते हैं। दयानन्द में भी यह विशेषता कई सहस्राब्दियों के बाद देखी गई कि संहिता ग्रन्थ और तदितर समस्त साहित्य के बीच के विपुल अन्तराल को अपनी पैनी दृष्टि से क्षण मात्र में भेद करके वे मध्यवर्ती सागर के पार चले गये और आगे आनेवाली संतति के लिए एक सेतु का निर्माण कर गए। उसी के कारण आज हम संहिताओं के साथ अपना सान्निध्य अनुभव कर पाते हैं।

इस प्रकार वेदमन्त्रों के साथ साक्षात् परिचय करने के बाद स्वामी दयानन्द ने निरुक्त, व्याकरण, ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद् आदि सभी प्राचीन आर्ष ग्रन्थो की सामग्री को वेदो के ब्रह्मवाद के मण्डन में प्रयुक्त किया। देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा इस प्रसिद्ध निरुक्त वाक्य मे दिये हुए देव लक्षणों का ब्रह्म में समन्वय दिखाते हुए उन्होने यही निष्कर्ष निकाला।

अतो मुख्यो देव एकः परमेश्वर एव उपास्यो ऽस्तीति मन्यध्वम्। [ऋ० भू०]

अर्थात् प्रधान देव एक ईश्वर ही उपासना करने योग्य है।

इसी प्रसंग में उन्होने निरुक्त का दूसरे स्थल का अवतरण भी दिया है:—

माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते, एकस्यात्मनो ऽन्ये देवाः प्रत्यंगानि भवन्ति। और इसके भाष्य में स्पष्ट किया है कि एक ब्रह्म की ही शक्ति से अन्य सब दिव्य शक्तियाँ प्रकाशित है।

इस समन्वय से उप बृंहण में जिस प्रकार शंकराचार्य ने लगभग बीस पृष्ठों मे वेदान्त वाक्यो का विस्तार किया है उसी प्रकार स्वामी दयानन्द ने चारों वेदों के मन्त्रों का उपन्यास किया है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित मन्त्र ध्यान देने योग्य हैं।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥ ऋ० १। १६४। ४६

तदेवाग्निस्तदादित्य स्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥
यजु० ३२। १

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ऋग्वेद

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥ य० ३१। १८

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥ य० १७। १९

इन मन्त्रो के अतिरिक्त ब्राह्मण उपनिषद् भाग से भी ब्रह्मैकत्व प्रतिपादनपरक अनेक वाक्य प्रमाण

रूप से इस प्रकरण में रक्खे गये हैं। वस्तुतः मन्त्रो का अर्थ करते हुये भी स्वामी जी ने इस प्रतिज्ञा की किस प्रकार रक्षा की उसके उदाहरण में दो मंत्र देकर इस लेख को समाप्त करेंगे।

१ अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
२ स देवाँ एह वक्षति।

यहां स्वामी जी ने ऐ० ब्राह्मण का प्रमाण देकर लिखा है प्राणा वा ऋषयो दैव्यास। पूर्वेभिः पूर्वकालावस्थैः कारणस्थैः प्राणैः कार्यद्रव्यस्थैः नूतनैश्च ऋषिभि: सहैव समाधियोगेन सर्वैर्विद्वद्भिरग्नि परमेश्वर एव ईड्योऽस्ति।

अर्थात् प्राण ही दिव्य ऋषि हैं। कारणस्थप्राण पूर्व ऋषि हैं और कार्यस्थ प्राण नूतन ऋषि हैं। ये साथ साथ समाधि के द्वारा उसी अग्नि नामक परमेश्वर की उपासना करते हैं। इस अर्थ में इतिहासापेक्षित पौर्वापर्य की गन्ध भी नहीं है, वरन् ब्राह्मण ग्रन्थ की साक्षी के आधार से यह मन्त्र वैदिक तत्वज्ञान का ही प्रतिपादक होता है।

दूसरा मन्त्र—

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥
य० ३। ६२

इस मन्त्र के व्याख्यान में शतपथ का निम्नलिखित परिभाषा काम मे लाई गई है — चक्षुर्वै जमदग्नि ऋषिर्यदनेन जगत् पश्यत्यथा मनुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्ऋषि॑ (श० ८। १। २। ३)। कश्यपो वै कूर्म प्राणो वै कूर्म (श० ७। ५। १।७)। अनेन *प्राणस्य कूर्मः कश्यपश्च संज्ञास्ति। शरीरस्य नाभौ तस्य* कूर्माकारावस्थितेः।

हे जगदीश्वर, आपकी कृपा से हमारे जमदग्नि संज्ञक चक्षुरिन्द्रिय, और कश्यप संज्ञक प्राण की तिगुनी अर्थात् तीन सौ वर्षो को आयु हो। तथा विद्वांसो हि देवा (शतपथ) इस के अनुसार विद्वानो में जो त्रिगुण आयु सम्भव है वह हमें प्राप्त हो।

उपरोक्त कारणो से प्रतीत होता है कि जमदग्नि आदिक शब्दों से इतिहासपरक नामो की प्रतीति न होकर अर्थो का ज्ञान ही मन्त्रो में अभिप्रेत होता है। अतो नात्र मन्त्रभागे इतिहासलेशोऽप्यस्तीति, अवगन्तव्यम्॥

स्मृतिपञ्चकम्

(लेखक — श्री पं दिलीपदत्त शर्मोपाध्यायः)

(१)

सदाचार-रक्षा-समुद्युक्तचेता
वदान्यो भवोद्धारकः साधु नेता।
दुराचार विध्वंस शस्त्र प्रयोगी
केषां न मान्यो दयानन्द योगी॥

(२)

प्रयत्नः सता येन भूयोऽपि भूमा
विहाऽकारारि हारी यदीयोऽतिभूमा।
दयानन्द योगी महेच्छो विरक्तः
स केषां न मान्यो महादेव भक्तः॥

(३)

सदाम्नायसंप्रोक्तधर्मप्रचारे
रुचिर्यस्य दुर्दान्तवादीन्द्र हारे।
अनाथैक रक्षी तथा स्वार्थि खण्डी
स केषां न मान्यो दयानन्द दण्डी॥

(४)

स्वदेशोन्नतौ तीव्रबुद्धिर्महात्मा
प्रशस्तानुपायाननेकानपास्मा ।
ततानाशु यः संस्तुतौ भूरिधामा
स केषां न मान्यो दयानन्दनामा॥

(५)

कुलीनस्तपस्याविशुद्धान्तरङ्गः
समुत्पादिताम्तारिपुव्रातभङ्गः ।
कयातोऽद्य हा लोककल्याणकारी
दयानन्दसंज्ञो महाब्रह्मचारी॥

हिन्दू जाति पर आर्यसमाज के उपकार

(ले०—श्री डा० बालकृष्ण एम० ए० पी० एच० डी०)



आर्य समाज सनातन वैदिक-धर्म को मानने वाला है। इस समय के सब प्रचलित धर्मों की अच्छी बातो को यदि ले लिया जाय तो उन सब का समावेश वैदिक-धर्म मे हो जायगा। आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षिदयानन्द सरस्वती स्वयं लिखते है कि "वेदोक्त सब बाते विद्या से अविरुद्ध है।" आर्य समाजा का तीसरा नियम भी इसी बात की पुष्टि करता है कि "वेद सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है।" परन्तु आज हमे उसके अधिक विश्वव्यापी रूप को नही विचारना है। आर्य समाज ने हिन्दू जाति के लिये क्या किया है, और क्या करना चाहता है? इसका दिग्दर्शनमात्र इस लेख मे करना चाहते है।

आर्यसमाज से पूर्व हिन्दू जातिकी दशा

महर्षि के आगमन से पूर्व हिन्दूजाति जिस दुर्दशा मे पड़ी हुई थी, वह किसी से छिपी नही है। वह काल हिन्दू जाति के ह्रास का था। उसे मुसलमान और ईसाई रूपी दो मगर क्रमश निगल रहे थे। हिन्दुओ की संख्या उत्तरोत्तर कम होती हुई चली जा रही थी। हिन्दू लोग स्वयं अज्ञानान्धकार मे पड़े हुये थे। अपनी जाति का गौरव, आत्माभिमान सब कुछ नष्ट हो चुका था। विधर्मी लोग हमारे पूर्वजो की हँसी और मजाक किया करते थे, और हम लोग भी मानसिक दासता के कारण उनकी हां मे हां भरने लग गये थे। यह अवस्था कितनी शोचनीय और खतरनाक थी इसकी कल्पना करते ही दिल कांप उठता है। ऐसी अवस्था मे महर्षि रूपी सूर्य उदय हुआ। जिसने अपने आर्य समाज रूपी प्रखर तेज से हिन्दूजाति के मानसिक दासता रूपी अन्धकार को दूर करके आत्म-गौरव तथा आत्मभिमान रूपी प्रकाश दिया और सोते हुओ को जगाया। आत्मरक्षा के साधन ज्ञान रूपी शस्त्र को उनके हाथ मे दिया। हिन्दू जाति के प्रति महर्षि का यह महान् दान है, जिससे वह कभी उऋण नहीं हो सकती। महर्षि के बाद आर्य समाज ने इस काम को लिया और विधर्मियो की बाढ़ को अपने तर्क रूपी बाध से रोक दिया। इससे हिन्दु जाति का वह गौरवमय विशाल प्रासाद जिसने किसी समय आधे भू मण्डल को अपने मे आश्रय दिया था, गिरते गिरते बच गया। यद्यपि इसकी नीव अन्दर के दोषो से खोखली हो चुकी थी, लेकिन उसके सुधारने वाला कारीगर समय पर आगया और इसकी रक्षा की।

वैदिक सत्य धर्म

आर्यसमाज ने यह सिद्ध करके दिखला दिया कि वेदो के प्रति लोगो की प्रवृत्ति के न रहने के कारण ही लोक मे अन्धकार छागया। इससे मनुष्यो की बुद्धि भ्रमयुक्त हो गयी, और मनमाने मत चलने लगे। ये सब वेद विरुद्ध धर्म अमान्य है। लोगो के मनो पर आर्यसमाज ने बिठा दिया कि वैदिकधर्म ही सर्वश्रेष्ठ और सनातन है। यदि कोई व्यक्ति धन के लोभ मे आकर मुसलमान व ईसाई होना चाहे तो उसका कोई इलाज नहीं। सत्यधर्म का प्रेमी और श्रद्धालु वैदिक धर्म को छोड़ कर और कहीं नही जा सकता। आर्यसमाज ने इस हिन्दू जाति की रक्षा के इस कार्य को भारतवर्ष तक ही सीमित नही रखा अपितु उसने देश विदेश मे हिन्दुओ को विधर्मियो के फन्दे मे फँसने से बचाया। उसने अफ्रीका फिजी, ब्रिटिश-गायना के हिन्दुओ को बचाने के लिये भी यत्न किया है। आर्यसमाज अभी तक यह कार्य कर रहा है। वह पुण्य दिन परम सौभाग्य का होगा जब सर्वत्र वैदिकधर्म की अमृत वर्षा से भूलोकवासी स्नान कर रहे होगे।

धर्म का अशुद्ध अर्थ

आर्यसमाज के स्थापन से पूर्व हिन्दू जाति वास्त-

विक धर्मको भूलकर वाह्य रीतिरिवाज और व्यवहारको ही धर्म समझ रही थी। धर्म के मूल सिद्धान्त और विश्वास को उसने ताक मे रख दिया था। अवस्था यहां तक बढ़ गयी कि यदि किसी मुसलमान व ईसाई ने अपने हाथ का पानी रोटी व मांसका टुकड़ा कूऐं में डाल दिया तो वह कूआ अपवित्र समझा जाने लगा। यदि कोई अनजान व्यक्ति उसका पानी व्यवहार में लाता था तो वह धर्म तथा जातिभ्रष्टि कर दिया जाता था। यदि कोई मुसलमान किसी का यज्ञोपवीत व चोटी काट देता था तो इसके फलस्वरूप इच्छा न रहते हुये भी उसे अपनी जाति से वहिष्कृत कर दिया जाता था। उसके साथ मेल जोल और व्यवहार करने वाले को भी वही दण्ड दिया जाने लगा। साराश यह कि धर्म की मूल बातो, सदाचरण विश्वास श्रद्धा आदि को छोड़ बाहर के ढकोसलो को महत्व दिया जाने लगा। भूल से मुसलमान के हाथ का पानी पीने वाले सदाचारी व्यक्ति की अपेक्षा धर्म का ढोंगी नीच दुराचारी व्यक्ति, श्रेष्ठ और सच्चा हिन्दू समझा गया। हिन्दू समाज को यह एक प्रकार का अपचन का रोग हो गया। वे लोग अपने ही सजातियो का विधर्मी कह कर बाहर निकालने लगे। इससे विधर्मी लाभ उठाने लगे। वे जान बूझ कर इस प्रकार की कुचेष्टा करके अपनी जाति की संख्या बढ़ाने लगे। न जाने कितने हिन्दू भाई और बहने जाति से च्युति को जाकर दूसरे धर्मों मे चली गई। आर्यसमाज ने हिन्दुओ के इस ह्रासक्रम को रोका। धर्म के इन थोथे और सारहीन सिद्धान्तो को दूर हटा कर धर्म का वास्तविक स्वरूप जनता के सम्मुख उपस्थित किया जनेऊ और चोटी के कट जाने से कोई धर्म भ्रष्ट नही होता। ये तो धर्मके केवल वाह्य चिन्ह हैं। धर्म मनुष्य के जीवन और आत्मा पर असर डालने वाला है। आज कल हजारो शिक्षित नवयुवक युवावस्था की उमंग मे आकर जनेऊ और चोटी कटवा देते हैं। परन्तु इतने से भी वे विधर्मी नहीं समझे जा सकते। ये हिन्दू धर्म के कट्टर पक्षपाती होते हैं।

धर्म पुस्तक का अभाव

वैदिक धर्म के पुनरुद्धार से पूर्व हिन्दू-धर्म डावांडोल हो रहा था। बिना स्तम्भ के खड़ा था। विरोधियो का मुकाबिला करने के लिये उसके पास कोई उपयुक्त साधन न थे। हिन्दुओ की अपनी कोई धर्म पुस्तक न थीं। हिन्दू लोग अपनी मूल पुस्तक वेद को भूल चुके थे। अवस्था यहां तक पहुंच चुकी थी कि वेदो का भारतवर्ष मे मिलना असंभव हो गया। मैक्समूलर ने जर्मनी से वेदो को लेकर छापा। महर्षि को भी स्वयं वेदो को प्राप्त करने में बहुत दिक्कतें हुई। हिन्दू लोग वेदो के नाम तक न जानते थे। वे पुराण और गीता को ही अपनी धर्म पुस्तक मानते थे। वेदो के विषय में साधारण लोगो की यह धारणा थी कि वेद कोई उस पुस्तक है, जो कि सतयुग के लिए थी, कलियुग के लिए नहीं। परन्तु महर्षि ने इस भ्रममूलक धारणा को मिटाया। उन्होने कहा कि जिस प्रकार ईश्वर का बनाया हुआ सूर्य सब युगो मे और त्रिकाल मे समान रूप से चमकता हुआ प्रकाश देता है उसी प्रकार वेद भी सब युगों और सब कालो के लिए एकही हैं। वेद अपौरुषेय और आदि पुस्तक हैं यह सब धर्मों का मूल स्रोत और ज्ञान का भण्डार है। मनुष्य मात्र का कल्याण वेद विद्या के प्रचार से ही हो सकता है। यही कारण है कि आर्यसमाज अपने प्रत्येक कार्य मे वेदो को आगे रखता है।

महर्षि की वेदभाष्य शैली

महर्षि की अपार दया से वेद तो मिले परन्तु उनके नाम कथन व दर्शन मात्र से ही काम न चल सकता था। उनका अनुवाद और भाष्य करना आवश्यक था। इस लिए स्वामी जी ने वेद भाष्य की ओर ध्यान दिया। वेद भाष्य की जो शैली उन्होने प्रदर्शित की वह विद्वानों के लिए विचारणीय तथा अनुकरणीय है। उनकी शैली प्राचीन ऋषियों की विचारसरणि पर चलती है। स्वामी जी की इस नवीन वेद भाष्य की पद्धति को अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया। श्री अरविन्द घोष, सत्यव्रत, सामाश्रमी, मि० पावगी और बंगाल के कई विद्वानों ने इसका स्वागत किया है।

विश्व को आर्य बनाओ

हिन्दू जाति ने अपने आपको कूप मण्डूक बनाया हुआ था। उस समय हिन्दुओं का यह आम विश्वास था कि सिन्ध के पार जाने व समुद्र यात्रा करने से मनुष्य अपने धर्म से च्युत हो जाता है। स्वामी जी ने इसके विरुद्ध भी आवाज़ उठायी और लोगों को बताया कि प्राचीन आर्य सिन्ध नदी ही नहीं अपितु समुद्र के पार जाकर व्यापार करते थे। उन लोगो ने विदेशो मे जाकर आर्य धर्म का प्रचार किया और भारतीय संस्कृत तथा सभ्यता का पाठ पढ़ाया। उन्होने विदेश मे जाकर अपने उपनिवेश स्थापित किये और विदेशीयो से विवाह सम्बन्ध भी जोड़ा। इस लिये अब भी लोगो को व्यापार और धर्म प्रचार के लिये देश विदेश मे जाना चाहिए। महर्षि ने हिन्दू जाति के सम्मुख ऊंचा ध्येय रक्खा और "कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्" का सन्देश दिया।

७—वर्णव्यवस्था

हिन्दू जाति निरक्षर भट्टाचार्यों के जाल मे फंसी हुई थी। स्वामी दयानन्द ने ब्राह्मणों की कल्पित जन्म मूलक वर्णव्यवस्था को हटा कर युक्ति युक्त गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था को स्थापित किया। ब्राह्मण विद्याभ्यास, विद्या दान, तपश्चर्या और भिक्षा वृत्ति करता हुआ ही अपना ब्राह्मणत्व कायम रख सकता है न कि केवल ब्राह्मण के घर मे जन्म लेने से। इस प्रकार समता और भ्रातृभाव के उच्च सिद्धान्तो को हिन्दू जाति के सम्मुख रखा।

गुरुडम पर प्रहार

महर्षि दयानन्द के आगमन से पूर्व गुरुडम बहुत जोरो पर था। स्वामी जी ने इस अभेद्य किले पर आक्रमण करके उसे तोड़ गिराया। यह साधु, महन्त और मठाधीश अन्ध विश्वासी भक्त जनता को लूट रहे थे। स्वामी जी ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठा कर भोली भाली जनता को उनके जाल से छुड़ाया। उन्होने सच्चे वानप्रस्थी और सन्यासी का आदर्श बताया। स्वामी जी ने स्वयं भी किसी स्थान पर मठ स्थापित नहीं किया, और न वे किसी समाज के प्रधान ही बने। वे सच्ची भिक्षावृत्ति जाति की सेवा करते रहे।

एकेश्वरवाद का उपदेश

हिन्दू जनता एकेश्वर की पूजा को छोड़ कर करोड़ो देवी देवताओ, की पूजा में लगी हुई थी। स्वामी जी ने इसका खण्डन करके एकेश्वर की पूजा का आदेश दिया। स्थान स्थान पर शास्त्रार्थ करके लोगो को मूर्त्तियों को त्याग करने के लिए उद्यत किया। इसी प्रकार मृत श्राद्ध की प्रथा पर आघात करके सच्चे युक्ति युक्त धर्म का उपदेश दिया।

अछूतोद्धार

आज कल महात्मा जी अछूतोद्धार करने में जी जान से लगे हुए है। उनके इस आन्दोलन से हिन्दु समाज मे जागृति उत्पन्न हुई है। परन्तु अस्पृश्यता निवारण और दलितोद्धार विषयक कार्य प्रारम्भ से ही आर्य्य समाज के प्रचार कार्य का आवश्यक अंग रहा है। इस कथन मे कोई अत्युक्ति नही कि ऋषि दयानन्द ही इस आन्दोलन के वर्तमान युग मे प्रथम प्रवर्तक थे। उन्होने बतलाया कि केवल चारही वर्ण है इनमे शूद्र भी अछूत नही। वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार अस्पृश्य कोई भी नहीं है। इस प्रकार आर्यसमाज ने आरम्भ से ही अछूतोद्धार का प्रशसनीय कार्य किया है।

स्त्री जाति का उद्धार

(१) कोई समय था जब भारत मे विदुषी स्त्रियां भी पुरुषो के समान आदर पाती थीं। परन्तु हिन्दु जाति के पतन काल मे स्त्रियो को शिक्षा देना पाप समझा गया। (२) बाल विवाह ने हिन्दु सन्तानो को बल और शक्तिहीन बना डाला था। (३) हिन्दुओ मे विधवाओ का विवाह कुल के नाश का कारण समझा जाता था इससे समाज का वातावरण दूषित होने लगा। इस दुरवस्था को देख कर महर्षि को अत्यन्त दु ख हुआ। उन्होने स्त्रियो को शिक्षा देने तथा बाल विवाह को रोकने के लिए बलपूर्वक यत्न किया। (४) महर्षि ने पर्दे की विनाशकारी कुप्रथा पर आघात करते हुये स्त्रियो के साथ किये जा रहे अन्याय को रोका। पश्चिम की जो लहर स्त्रियों को

स्वतन्त्रता और समानता देने के लिए चली है, उस के भारतवर्ष मे आरम्भ होने से पूर्व ही दयानन्द ने वेदो के आधार पर स्त्रियो को उच्च शिक्षा देने और पर्दे को हटाने का आदेश दिया । स्त्री जाति के उद्धार के लिए वैदिक विवाह पद्धति का प्रतिपादन किया और बताया कि युवावस्था मे स्वयंवर की रीति से विवाह होना चाहिए । इस ओर स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज द्वारा किया हुआ कार्य प्रशंशनीय है ।

पश्चिम से पूर्व की ओर

१८८० के लगभग भारतवासी पाश्चात्य सभ्यता के बहुत दिल—दादा होगये थे। स्कूलों और कालेजो के नवयुवक विद्यार्थी उनकी साइंस और फिलोसाफी को पढ़कर उनके हामी होगये थे, वे अपने देश की सभ्यता और सस्कृति को घृणा की दृष्टि से देखने लगे थे । इस आत्म घातक मानसिक दासता से आर्य समाज ने उनका उद्धार किया है। और बताया कि भारतवर्ष समस्त आर्य ससार का धर्मगुरू है। इसीने बहुत से देशो को संस्कृति और सभ्यता का पाठ पढ़ाया है। आज पराधीनता के कारण हमारी यह दुर्गति हुई है। योरोप विज्ञान और कला मे प्रगति कर रहा है लेकिन यह अभी कल का बच्चा है उसने वृद्ध पितामह भारत से ही तो मूलतत्व सीखा है। इसलिये हमे लज्जित होने की कोई जरूरत नहीं । हमे अपना सिर गौरव से ऊंचा उठाये रखना चाहिये। हमे अपने प्राचीनसाहित्य और कला आदि को पुनरुज्जीवित करना चाहिये यह आत्माभिमान, और आत्मविश्वास का पाठ सर्व प्रथम आर्य समाज ने ही हिन्दू सन्तानो को पढ़ाया है।

ऋषिने जातीयता राष्ट्रीयता, और स्वराज्य की इच्छा का भाव हमारे दिलो मे जाग्रत किया है ।

सारांश यह कि मानसिक, शारीरिक, और सामाजिक रोग हिन्दुसमाज मे सैंकडो वर्षों से घर करचुके थे। उन्हे दूर करने का यत्न आर्यसमाजने किया। लोगो का ध्यान सत्यधर्म की तरफ खींचा,। मानसिक दासतासे पीड़ित नवयुवको का ध्यान पश्चिम से हटाकर पूर्व की ओर और वर्तमान से हटाकर भूत की ओर किया। उनमे आत्म विश्वास, देश प्रेम और प्राचीन आर्यसंस्कृति के गौरव के भाव भरे। पराजित होने के स्थान पर विजेता होने का मूलमंत्र पढ़ाया। दूसरो से निगले जाने की बजाय उन्हे अपने अन्दर निगलने का सूत्र बतलाया। यह अनुपम कार्य महर्षिदयानन्द और आर्यसमाज ने ही किया है कोई भी हिन्दू ऋषि के इस कार्य की उपेक्षा नहीं कर सकता, और न आर्यसमाज को निरादर की दृष्टि से देख सकता है। हम आशा करते है कि प्रत्येक हिन्दू ऐसे प्रगतिशील समाज का अङ्ग बनकर उसकी रक्षा करेगा और आत्मिक उन्नति का मूलमंत्र सीखे गा ।

हमारा वैदिक धर्म

तर्कयुक्त, विज्ञानसिद्ध, वर वैदिक धर्म हमारा है ।
है सबसे प्राचीन विश्वका पावन परमसहारा है ॥
उसका ही तनमन धन से हम सब प्रकार सुप्रचार करें ।
उसके हित ही जिये जगत् मे और उसी के हेतु मरें ॥
तन मन जीवन धन साधन सब वेद धर्म पर वारेंगे ।
प्राणो की अन्तिम आहुत से भी हम उसे उबारेंगे ॥
तर्कहीन तूफान तमोमय दुष्ट अविद्या टारेंगे ।
वरवैदिक विज्ञान विश्व मे "सूर्य" समान प्रसारेंगे ॥
भूमंडल मे शीघ्र एक ऐसा शुभ अवसर आयेगा ।
सारा जग जब वेद धर्म को प्रिय कह कर अपनायेगा ॥

—"सूर्य"

वेदों की ओर

(ले०—श्री पं० सूर्यदेव शर्मा सिद्धान्त शास्त्री, साहित्यालंकार, एम० ए० एल० टी०)

जैसा अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक ऐमरसन ने लिखा है, "संसार में विचार ही राज्य किया करते हैं" अर्थात् किसी राष्ट्र के उत्तम मस्तिष्क जिस विचार धारा का प्रादुर्भाव करते है उसीमे वह राष्ट्र और समस्त मानव जाति प्रवाहित होने लगती है। आधुनिक जगत् मे विद्वन्मण्डल की विचारधारा का प्रवाह किधर को प्रवाहित हो रहा है इसका थोड़ा सा भी विचार करने से पता चलेगा कि जहां एक ओर पाश्चात्य विज्ञान के चमत्कारपूर्ण आविष्कारो ने संसार के भौतिक विचारवादी मस्तिष्को को आकृष्ट किया है वहाँ आध्यात्मिक जगत् की क्रीड़ा स्थली मे वे खिलाड़ी भी सम्मुख आये हैं जो उस वैज्ञानिक जगत् से उपरत होकर आध्यात्मिक शांति की खोज मे वर्षों इतस्ततः परिभ्रमण कर चुके है, और जिन्होने वैज्ञानिक जगत् पर भी आध्यात्मिकता की छाप लगादी है। शिकागो विश्वविद्यालय के ख्यातनामा प्रोफेसर फौस्ट ने अपने ६५ वर्ष के अनुभव के पश्चात् यही लिखा है —"There is a purposeful operation of Nature, when you accept this, it seems to be inconsistant with the physical sciences not to believe in a mind"

अर्थात् प्रकृति मे किसी चेतनशक्ति का कार्य अवश्य हो रहा है। उसको न मानना भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तो की अवहेलना करना है। केवल पश्चिम के भौतिक विज्ञान से अब काम चलने का नहीं, जब तक कि उसके साथ में सच्चा धर्म सम्मिलित न हो। इंग्लैंड के प्रसिद्ध विज्ञान-वेत्ता सर ओलीवर लौज और प्रो० हक्सले के भी यही विचार हैं:—"The true Science and the true religion are the twin sisters, and their separation is sure to prove the death of either"

अर्थात् सच्चा विज्ञान और सच्चा धर्म जुड़वाँ बहने हैं, उनका एक दूसरे से पृथक् करना दोनो के नाश का कारण होगा।

वह विज्ञानमय सच्चा धर्म हमको कहाँ प्राप्त होगा इसका विवेचन पाठक आगे के लेख से स्वयं ही कर सकेंगे।

अगस्त सन् १६१४ में इंगलैंड मे एक विज्ञान सप्ताह मनाया गया था जिसमे सात बड़े बड़े वैज्ञानिको के व्याख्यान केवल धर्म और विज्ञान के ऊपर रक्खे गये थे। इनमे Sir Oliver Lodge, Dr Fleeming, Prof Hull & Prof Thomson इत्यादि सब ने विज्ञान की उद्देश्य सिद्धि के लिये ईश्वर सत्ता को माना। प्रो० थौमसन ने अन्त मे जो परिणाम निकाला, वह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। वह कहता है कि धर्म और विज्ञान दोनो के पारस्परिक संयोग से ही विश्व का काम चल सकता है। क्योकि वर्तमान समय मे प्रचलित लगभग सभी मतों मे यह तीन बाते मुख्य हैं—(१) ईश्वर की सत्ता (२) जीव की अमरता (३) मनुष्यो मे दया आदि गुणो की महत्ता। इसी प्रकार अब तक विज्ञान के निश्चित नियम यह है (१) प्रकृति का अविनाशित्व (Immortality) (२) रासायनिक तत्वो की नित्यता (३) शक्ति की नित्यता, इत्यादि। इस प्रकार धर्म और विज्ञान की इन सचाइयो मे परस्पर विरोध कहाँ है। दोनो के यह सिद्धान्त मिल कर ही मनुष्य जाति का कल्याण कर सकते है। अहा! प्रो० थौमसन के कथनानुसार मनुष्य जाति का कल्याण करने वाला वही धर्म होगा, जिसमे उपरोक्त सब सिद्धान्त पाये जाते हो। पाठको! आपने देखा वह कौनसा धर्म है जिसमे (१) ईश्वर की सत्ता (२) जीव की अमरता (३) प्रकृति का अविनाशित्व

(४) शक्ति की नित्यता (५) मनुष्य मे दया आदि गुण पाये जाते हो। यह तो हमारा वैदिक धर्म ही है जिसका समर्थन आज योरोपके बड़े बड़े वैज्ञानिक कर रहे है। यही नहीं, किन्तु सन् १६२७ ई० मे होने वाली अमेरिका की एक सर्व धर्म परिषद् मे भी इसी विषय पर विचार किया गया। उसमे प्राचीन और नवीन संसार के लगभग सभी मतो के प्रतिनिधि विद्वान् विचारक और वैज्ञानिको ने उपस्थित होकर संसार मे होने वाली धर्म और विज्ञान की कलह को किस प्रकार मिटाया जाय और संसार का सार्वभौम भावी धर्म क्या हो—इसी पर विचार किया था। कई दिनों के विवाद के पश्चात् वे इस निर्णय पर पहुंचे थे कि संसार का भावी धर्म वही हो सकता है और उसी को सब मनुष्य-समाज मानेगा जिसमें निम्न लिखित चार बातें पाई जायगी (१) Equality (समानता का भाव) (२) Universal Brotherhood (विश्वव्यापी भ्रातृ भाव (३) Harmonious development (सर्वांगीण उन्नति के साधन) (४) Scientific basis (वैज्ञानिक आधार)।

इन उपरोक्त बातों को लेकर यदि हम वर्तमान प्रचलित बड़े बड़े मतों को देखें और ज्ञान करना चाहे कि इनमे से कौन सा मत संसार का भावी धर्म होगा—तो हमे पता चलेगा कि इनमे से पहली तीन बाते तो कई मतों मे पाई जाती हैं। इस्लाम और ईसाई मत भी पारस्परिक समानता और भ्रातृभाव का दावा करते हैं। वे भी सामाजिक समभाव का उपदेश देते ही हैं--यद्यपि इस्लाम में स्त्रियो का स्थान पुरुषो से कितना ही नीचा क्यो न हो, यद्यपि आदम की एक पसली से ही हव्वा की उत्पत्ति क्यो न बतलाई हो, यद्यपि अपने से भिन्न मत वालो को "वाजिबुल्क़त्ल" ही क्यो न कहा गया हो। यद्यपि सन् १८७० तक सेटपीटर्स वर्ग मे ईसाइयों की सभा होने से पूर्व ईसाई संसार स्त्रियो मे जीवात्मा का मानने से इन्कार ही क्यो न करता रहा हो। तथापि दुर्जनतोषन्याय से थोडी देर के लिये हम इन बातों की उपेक्षा करके समान भ्रातृभाव का सिद्धान्त इन मतो मे मानकर चौथी बात पर ही विचार करेंगे और देखेंगे कि यह मत कहां तक विज्ञान का आधार लिये हुये हैं? उनमे कहाँ तक बुद्धि, तर्क और विज्ञान के अनुकूल बातें पाई जाती हैं?

सब से पूर्व सृष्टि उत्पत्ति को ही लीजिये। इस्लाम और ईसाई धर्म के अनुसार सृष्टि रचना हुये लगभग ८ हजार वर्ष हुये हैं। आरमोग के आर्क विशप जेम्स उशर के मत से बाइबिल मे लिखी हुई सृष्टि की उत्पत्ति ईसा के जन्म से ४००४ वर्ष पूर्व हुई, और ईसा से २००० वर्ष पूर्व वह प्रलयकाल हुआ जिसमे केवल आदम या मनु रह गये थे। लेकिन वर्तमान विज्ञान के अनुसंधानों और खोजो से पता चलता है कि यह बात कितनी निराधार है। "Science and Invention" नाम के अमेरिका के एक पत्र के फरवरी के अंक मे Prof Kneen ने 'Age of Earth" नामक लेख लिखकर सिद्ध किया है कि पृथ्वी को बने कम से कम ७२ लाख वर्ष हुये। पृथ्वी के अन्दर मिट्टी का तेल और कोयले का प्राप्त होना इसका पुष्ट प्रमाण है। भूगर्भ विद्याविशारदो का समुद्र और पहाड़ो का धीरे धीरे बनने का क्रम ही हमे बतलाता है कि इस पृथ्वी को बने हुये लाखो वर्ष व्यतीत हुये है। शायद इसी लिये ईसाई पादरियो ने प्रो० लाइल को भी भला बुरा कहा था क्योकि उन्होने पृथ्वी के ऊपर पहाड़ आदि के बनने मे लाखों वर्ष का समय बीतना सबसे पहिले बताया था। समुद्र में सोडियम को देखकर ही भूगर्भ शास्त्री प्रो० जौली ने पृथ्वी पर प्राणियो का समय कम से कम १० करोड़ वर्ष माना है। बीस जुलाई सन् १६३१ के प्रयाग के "लीडर" पत्र मे मिस्टर वाटसन डेविस ने लिखा है कि "National Research council" ने वैज्ञानिको की जो कमेटी पृथ्वी की आयु जानने के लिये नियुक्त की थी उसने अपनी कई वर्ष की खोज के पश्चात् Canellia (रूस) मे पूरे नियम के कुछ अंश की परीक्षा करके यह निश्चय किया है कि वह धातु १,८५,२०,००,००० वर्षों की बनी हुई है और जिस चट्टान मे वह पाई जाती है वह भी लगभग १५ करोड़ वर्ष पूर्व की होनी चाहिये। इस प्रकार पृथ्वी की आयु लगभग २ अरब

वर्ष की सिद्ध होतो है। इंगलैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक और तत्ववेत्ता डाक्टर James Jeans ने भी अपनी पुस्तक 'Universe Around us" मे एक पूरे नियम का इतिहास देकर यही सिद्ध किया है कि वर्तमान विज्ञान के अनुसार सृष्टि रचना हुये लगभग २ अरब वर्ष बीत है।

अहा! जिस सिद्धान्त को वैदिकधर्मी आर्य लोग बहुत पहले से मान रहे है, अर्थात् हमारे अनुसार भी सृष्टि सम्वत् १६७२६४६०३५ है वही सृष्टिकाल अर्थात् २ अरब वर्ष के लगभग आज पश्चिम के सारे विज्ञान, भूगर्भ शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, भौतिक शास्त्र और प्राणी शास्त्र आदि मानने और सिद्ध करने को बाध्य हुये है। यह है वैदिकधर्म के सिद्धांतो की अपूर्व विजय। विज्ञान के इन पुष्ट प्रमाणो के होते हुये भला ऐसा कौनसा पुरुष होगा जो आर्क विशप उशर की बात को मानकर केवल ७ हजार वर्ष से सृष्टि उत्पत्ति मानेगा।

यही नही, रचना का जरा क्रम भी देखिये। कितना बुद्धि-विरुद्ध और विज्ञान प्रतिकूल है। बाई बिल के सृष्टि उत्पत्ति के वर्णन को पढ़ने से पता चलता है कि ईश्वर की आत्मा पानी पर डोलती थी। वह पानी किस पर था इसका पता नही। फिर ईश्वर ने पहले दिन ज़मीन बनाई और एक एक दिन अन्य चीजो को बनाकर चौथे दिन सूरज बनाया। भला इन अक़्मन्दो से पूँछा जाय कि सूरज को तो चौथे दिन बनाया और सूरज से दिन रात होते है, तो जब सूरज नही था तो पहले के तीन दिन का पता कैसे चला? ऐसी विवेकहीन बातो को इस प्रकाशयुग में कौन मान सकता है?

फिर भला कु़रान मे तो खुदा ने केवल "कुन" कहने से दुनियाँ बना डाली, और बाइबिल मे भी किसी चीज के न होने पर भी ईश्वर ने मिट्टी के पुतले से आदम के शरीर को बनाया। इस प्रकार दोनों ही ने अभाव से भाव की उत्पत्ति (Something of nothing) सिद्धान्त को माना है, जिसको वर्तमान विज्ञान और भौतिक शास्त्र का साधारण विद्यार्थी भी स्वीकार नहीं कर सकता। इसी प्रकार इस पृथ्वी को सम्पूर्ण विश्व का केन्द्र मानना, सूर्य आदि का पृथ्वी के चारो ओर घूमना, आसमान का खम्भो पर सधा होना, चौथे और सातवें आसमान पर खुदा और फ़रिश्तो का रहना तथा हज़रत मुहम्मद के उँगली उठा देने से चाँद के दो टुकड़े हो जाना-ऐसी अनेक असम्भव और विज्ञानविरुद्ध बातो पर जिन पर पाठकों को हँसी आये बिना नही रह सकती, कौन विश्वास करेगा? इन असम्भव बातो पर पर्दा डालने के लिये ही उन ग्रन्थो के नये नये अनुवाद और टीकाये की जा रही है, जैसे मौ० मुहम्मदअली एम० ए० का कु़रान का अंग्रेजी अनुवाद, जो सन् १६२१ मे लन्दन मे टिप्पणियो सहित छापा गया है। यह है वैदिकधर्म की विजय, जिसको आज पाश्चात्य जगत् भी नतमस्तक होकर स्वीकार करता जा रहा है। उदाहरण के लिये, फ्रांस का विद्वान् जैकालियट अपनी पुस्तक "The Bible in India" मे लिखता है—"An astonishing fact' The Hindu revelation the Veda is of all the revelations, the only one whose ideas are in perfect harmony with modern science. अर्थात् यह एक आश्चर्य की बात है कि संसार की ईश्वरीय ज्ञान कही जाने वाली समस्त पुस्तको मे केवल वेद ही ऐसे हैं जिनके विचार आधुनिक विज्ञान के साथ पूर्णतया मिलते है। इसी प्रकार Sir Arthur Carpenter ने अपनी पुस्तक Art of Creation में कहा है।

प्रिय पाठको! आप इस लेख को पढ़ कर समझ गये होगे कि संसार मे केवल वैदिकधर्म ही है जिसमे आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्त पूर्ण रूपेण संघटित हो सकते है। अन्य मजहब या सम्प्रदाय लोगो के मस्तिष्को को आजकल के इस प्रकाश और विज्ञान के युग मे सन्तुष्ट नही कर सकते। इसलिये आपका हमारा सब का कर्त्तव्य है कि तर्कसिद्ध, बुद्धिग्राह्य, विज्ञानानुकूल इस वैदिकधर्म का ही प्रचार सारे संसार मे करें। इसी लिये आचार्य का आदेश है:—

'वेद सत्य विद्याओ का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

अमैथुनी सृष्टि वेदानुकूल और यौक्तिक है

(ले०—श्री स्वामी शान्तानन्दजी महाराज)

—:०※०:—

माता पिता द्वारा सन्तानोत्पत्ति का होना मैथुनी सृष्टि कहाती है जिस प्रकार कि आजकल मनुष्य, पशु, पक्ष्यादि की सृष्टि हो रही है। और बिना मा बाप के गर्भाधान किये प्राणियो के शरीर का बनना (पैदा होना) अमैथुनी (ईश्वरीय=साङ्कल्पिक) सृष्टि कहाती है, जिस प्रकार कि आजकल ढींगर, गिजाई, गिडोये, मच्छर आदि होते है। पूर्वज तत्ववेत्ता दार्शनिक विद्वानो ने इस सृष्टि को छ प्रकार की कहा है और फिर यह भी कहा है कि इतना ही नियम नही है। परमात्मा की सृष्टि में निम्न छ के अतिरिक्त भी न जाने कितने प्रकार के देह है।

(१) ऊष्मज भाप वा पसीने या सीलन से उत्पन्न हुये जूँ, मच्छर आदि —

(२) अण्डज-अंडे से उत्पन्न पक्षी, आदिः—

(३) जरायुज-जेर से उत्पन्न मनुष्य पश्वादि —

(४) उद्भिद् पृथिवी को फोड़कर उत्पन्न होने वाले ओषधि बनस्पति, वृक्ष आदिः—

(५) साङ्कल्पिक-संकल्प से ईश्वर ने जिस अमैथुनी सृष्टि को सृजा—

(६) सांसिद्धिक-खनिज पदार्थ जैसे सोना, चांदी जवाहरात इत्यादि; कोई कोई विद्वान् सांसिद्धिक का अर्थ ऐसा भी लगाते हैं कि-योगी लोग सिद्धियो के बल से जिन जिन देहों को धारण कर लेते हैं वह सांसिद्धिक है।

इनमें से जरायुज और अण्डज को छोड़ कर प्रत्येक प्रकार की सृष्टि आदि से लेकर आज पर्यन्त अमैथुनी ही होती आई और हो रही है तथा प्रलय पर्यन्त इसी प्रकार होती रहेगी। परन्तु जरायुज और अंडज यह दो प्रकार की सृष्टि न तो आज कल अमैथुनी होती है और न प्रलय-पर्यन्त अमैथुनी होने की सम्भावना है, जिससे कुछ ऐसे लोगो का (जो सृष्टि को सकर्त्तृक नही मानते) ऐसा विचार है कि बिना मा बाप के गर्भाधान किये अमैथुनी सृष्टि द्वारा मनुष्यादि प्राणियो के शरीर की उत्पत्ति का होना असम्भव तथा बुद्धिविरुद्ध है।

यह तो निर्विवाद है कि समस्त प्रकृतिजन्य सृष्टि प्रकृति का कार्य होने के कारण जड़ है, चेतन्य नहीं। चेतन्य तो केवल दो पदार्थ ईश्वर और जीव हैं जो सृष्टि नहीं किन्तु सृष्टि का कारण तथा नित्य अज, अनादि और अविनाशी हैं। और इस विषय को कि सृष्टि सकर्त्तृक है। हम इस से पहले 'आर्यमित्र' मे 'विरोध परिहार' लेख द्वारा भली भांति सिद्ध कर चुके है कि मैथुनी तथा अमैथुनी हर प्रकार की सृष्टि का कर्त्ता सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक परमात्मा है। अब यह विचारना है कि आदि सृष्टि में बिना माता पिता के मनुष्यादि प्राणियो के शरीर का उत्पन्न होना असम्भव और बुद्धि विरुद्ध है अथवा सम्भव और बुद्धि के अनुकूल।

हम ऊष्मज और उद्भिजादि की सृष्टि को बिना माता पिता के (अमैथुनी) होते हुये प्रत्यक्ष देखते हैं जिससे आदि सृष्टि में भी मनुष्यादि प्राणियो के शरीर का बिना माता पिता के उत्पन्न होना सम्भव है। क्योकि जिस साध्य की सिद्धि के लिए संसार में उदाहरण मौजूद हैं उसका होना असम्भव नहीं किन्तु सम्भव है। असम्भव वह पदार्थ वा मन्तव्य होता है जिसकी सिद्धि के लिए दृष्टान्ताभाव हो। अतः यो कह ही नहा सकते कि आदि सृष्टि में मनुष्यादि के शरीरो का अमैथुनी सृष्टि द्वारा होना असम्भव है। मैथुनी सृष्टि में प्राणियो के शरीर के बनने की जगह माता का गर्भाशय होता है, परन्तु अमैथुनी सृष्टि में प्राणियो के शरीर बनने की जगह माता का गर्भाशय नहीं होता। तब फिर यह अमैथुनी सृष्टि किस प्रकार रची जाती है और किस तरह बुद्धि के अनुकूल है ? इसके समझने के लिए पहले मैथुनी

सृष्टि पर ध्यानपूर्वक विचार कीजिये कि इस समय मैथुनी सृष्टि किस प्रकार होती है।

मैथुनी सृष्टि में माता पिता सन्तानोत्पत्ति मे केवल इतना ही तो करते हैं कि गर्भाधान संस्कार द्वारा रज और वीर्य को गर्भाशय में प्रवेश कर दें। वे इससे अधिक गर्भस्थ पिण्ड की रचना विषय में न तो कुछ जानते हैं और न कुछ करते ही हैं। रज और वीर्य के संयुक्त होने के पश्चात् गर्भाशय में शरीर रचना सम्बन्धी कार्य होता है, जैसा कि कहा है कि 'अन्नाद्रेत.। रेतसः पुरुष' अर्थात् अन्न से रेत (रज और वीर्य) बनता है (क्योंकि वे विशेष परमाणु जिनसे रज वीर्य बनते हैं परमात्मा ने अन्न के भीतर अन्य परमाणुओं के साथ साथ संयुक्त कर दिये है) और रज वीर्य से जीव का शरीर बनता है (यहां पुरुष का अर्थ जीव का शरीर है न कि जीवात्मा)। यह रज वीर्य जिनको गर्भाधान संस्कार द्वारा गर्भाशय मे स्त्री, पुरुष संयुक्त करते हैं, मनुष्यादि के शरीर मे भोज्य पदार्थ (अन्न) से उत्पन्न होता है। परन्तु नपुंसक पुरुष बन्ध्या स्त्रियां भी अन्नादि भोज्य पदार्थ खाते हैं उनके शरीर में रज वीर्य की उत्पत्ति क्यो नहीं होती इसका कारण यह है कि वह विशेष यन्त्र जो अन्न से रज वीर्य को बनाया करता है, नपुंसक और बन्ध्या के शरीर में नहीं होता, जिस के कारण उनके शरीर में वैसे रज, वीर्य नहीं बनते जो सन्तानोत्पत्ति का साधन हो। यह तो हम कह चुके हैं कि मैथुनी तथा अमैथुनी हर प्रकार की सृष्टि का कर्ता, रचयिता परम पिता परमात्मा है। माता या पिता गर्भस्थ पिण्ड के रचयिता या निर्माता नहीं होते। जिस माता के गर्भ में बच्चे के शरीर की रचना हो रही है, उसको तो इतना भी मालूम नहीं कि गर्भ में नपुंसक बच्चा बन रहा है या वीर्यवान पुरुष। यदि माता और पिता गर्भस्थ बच्चे के शरीर के निर्माता होते तो जिन परमाणुओं से उन्होंने गर्भस्थ पिंड में आंख बनाई थी ठीक उन्हीं। परमाणुओं से बच्चे की आंख फूट जाने पर एक ऐसी आंख फिर बना कर लगा देते जिससे पूर्ववत् देखने का काम लिया जाता जैसे कि घड़ीसाज ने घड़ी बनाई है तो उस घड़ी साज़ को घड़ी के प्रत्येक पुरज़े का हाल मालूम तथा बनाने की विधि का ज्ञान है। यदि उस घड़ी में से कोई पुरजा खो जावे या टूट फूट जावे तो वह घड़ीसाज उस घड़ी में फिर वैसा ही दूसरा नया पुरजा बनाकर डाल सकता है। परन्तु माता पिता ऐसा ही कर सकते हैं, अत स्पष्ट है कि माता पिता सन्तान की उत्पत्ति में साधन मात्र हैं और जननी तथा जनक शब्दो का प्रयोग भी उपचार मात्र हैं। वास्तव में गर्भस्थ बच्चे के शरीर की रचना प्रकृति के परमाणुओं से सर्वज्ञ परमात्मा स्वामी करते हैं। जब यह सिद्ध हो गया कि प्रत्येक अवस्था में प्राणियो के शरीर का रचयिता परमात्मा है, तो उसको आदि सृष्टि में अमैथुनी सृष्टि द्वारा प्रत्येक प्रकार के शरीर की रचना (आगे को जीवो के कर्मफल भोगार्थ तथा जीवो के कल्याणार्थ) सांचो के समान करना क्या दुस्तर है। जिन प्रकृति के परमाणुओ और अपने ज्ञान से रज, वीर्य के संयुक्त होने पश्चात् परमात्मा स्वामी आजकल गर्भ मे शरीर रचना करते हैं उन्हीं परमाणुओं तथा अपने शुद्ध ज्ञान से आदि सृष्टि में (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र समुद्र, पर्वत, वृक्ष, वनस्पति औषधि आदि की सृष्टि के पश्चात्) प्रथम रज और वीर्य के परमाणुओं को अपनी सर्वव्यापकता और सर्व शक्तिमत्ता से संयुक्त करके माता के गर्भ के बिना पृथिवी स्थल पर जरायुज अण्डज आदि की सृष्टिको जेरी और अण्डो के अन्दर करते हैं। उस समय ऐसा कोई शरीरधारी प्राणी तो होता ही नहीं जो उन पृथिवी-स्थ जेरी और अण्डों को खराब करदे या तोड़ फोड़ डाले। इन जेरी और अण्डो मे परमात्मा स्वामी जीवो को (जो इस समय तक सुषुप्ति अवस्था की सी दशा में थे) उन उन के कर्मानुसार प्रवेश करते है। यह जेरी और अण्डे विशेष समय पर फटते हैं और इन में से बहुत से मनुष्य, पशु' पक्षी आदि शरीरधारी प्राणी उत्पन्न होते हैं' जिनमें स्त्री, पुरुष नर मादा सभी होते हैं। यह सृष्टि की पहली नसल होती है। इसके पश्चात् इन्हीं स्त्री पुरुषों द्वारा आगे मैथुनी सृष्टि का क्रम चलता है। इस अमैथुनी सृष्टि

की सिद्धि मे अथर्ववेद में बहुत से मन्त्र आये हैं, जिनको विस्तार भय से अब नही लिखते फिर लिखेंगे। इस अमैथुनी सृष्टि विषय मे ऐसी कौनसी बात है कि जिससे यह मान लिया जावे कि आदि सृष्टि में अमैथुनी सृष्टि का होना अयौक्तिक है। जो परमात्मा वर्तमान काल में माता के गर्भ मे सृष्टि रचना करता है वह आदि सृष्टि मे माता के गर्भ के बाहर (बिना) अदिति प्रकृति में सृष्टि रचना क्यो नही कर सकता। और जिस अमैथुनी सृष्टि के उदाहरण ससार में प्रत्यक्ष देखने मे आते है वह अयौक्तिक तथा असम्भव कैसे मानी जा सकती है? जीवो के शरीर का उपादान कारण अदिति प्रकृति और निमित्त कारण अनन्त विक्रम विष्णु भगवान् होने से इन दोनो को जीवों के माता पिता जननी जनक) नाम से भी बोला गया है। वास्तव मे तो जीवात्मा स्वय अज और नित्य है। तथा प्रकृति (अदिति) को उस परमात्मा की पत्नी नाम से भी कहा गया है, जैसा कि—'बहुरदित्य विष्णपत्न्यौ'

एक सत्य, सनातन वैदिक धर्म के अतिरिक्त ससार में जितने मत मतान्तर प्रचिलित है उन सब मतो के आचार्यों ने इस वेदानुकूल अमैथुनी सृष्टि के मन्तव्य को स्वीकार करके अपने धर्म पुस्तको मे इसका उल्लेख किया है। जो मतवादी सृष्टि को सकर्तृक मानते हैं जैसे पौराणिक,ईसाई' मुसल्मानादि वे तो आदि सृष्टि में अमैथुनी सृष्टि मानते ही हैं, जैसे पौराणिको का चतुर्मुखी ब्रह्मा, तथा नील कण्ठ शिव और देवी आदि और ईसाई मुसलमानो का आदि सृष्टि में हजरत आदम, तथा बहुत से फरिश्तो की उत्पत्ति मानना परन्तु जो मत सृष्टि की उत्पत्ति से इनकारी हैं, जैसे बौद्ध जैनादि उन को पहले यह सिद्ध करना चाहिये कि कोई विकारी पदार्थ किस प्रकार नित्य हो सकता है। और लिखने को तो इनके ग्रन्थो में भी लिखा है कि यहां मनुष्य दो प्रकार के हैं, एक गर्भज, दूसरे जो गर्भ के बिना उत्पन्न हुए देखो प्रकरण रत्नाकर २४१। जैसाकि-'गब्भरति पलियाऊ। तिगाउ उक्कोसने जहन्नेणं। मुच्छिम दुहावि अन्तमुहु। अगुल असखभागतणु।' और भी लिखा है कि 'चक्रवर्ती एक ही समय में बिना माता पिता के (युवा अवस्था वाले) अनेक शरीर धारणकर लेता है'। तथा ऐसा भी लिखा है कि जो धर्मात्मा सदाचारी मनुष्य मरने के पश्चात् स्वर्ग में जाता है वहां पर वह बिना माता पिता के एक से एक देदीप्यमान् शरीर को धारण करता है। क्या अपने धर्म ग्रन्थो के ऐसे ऐसे लेखो के होते हुए वैदिक अमैथुनी सृष्टि से इनकारी होना इनका निरा दुराग्रह और अन्याय नहीं है? अवश्य है। यह लोग कहा करते हैं कि इस प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करने से ईश्वर के नियमों मे फरक आता है कि उसने पहिले बिना माबापके आदमी पैदा किये और अब बिना मा बापके पैदा नहीं करता। इस का उत्तर यह है कि हम ससार में देखते हैं कि'टाइप' पहले हाथ से बनाया जाता है और फिर उस साचे से टाइप बनते हैं। अत यह अमैथुनी सृष्टि का मन्तव्य ईश्वर के विरुद्ध नहीं। तथा यह भी नियम है कि जिस प्रकार की सृष्टि की प्रलय हो जाती है फिर उसकी पहिले अमैथुनी सृष्टि हुआ करती है जैसे कि संसार मे भी देखा जाता है कि जिन गिजाई' जूं' आदि की प्रलय हो जाता है तब उनकी पुन अमैथुनी सृष्टि होती है। क्यो कि मनुष्यादि के शरीरो की सृष्टि की अभी प्रलय नही हुई है इस लिए उनकी मैथुनी सृष्टि का क्रम जारी है। प्रलय होने पश्चात् पुन आदि सृष्टि में इनकी प्रथम मैथुनी सृष्टि का क्रम चल पड़ेगा। यह कोई अयौक्तिक या असम्भव विषय या मन्तव्य नहीं।

आत्म-परीक्षण आवश्यक है ?

बहुत मनुष्य ऐसे हैं कि जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते, किन्तु दूसरों के दोष देखने मे अत्युद्युक्त रहते है। यह न्याय की बात नहीं, क्योंकि प्रथम अपने दोष देख भाल कर दूसरे के दोषों में दृष्टि देके निकालें।

आदिम जगद्गुरु कौन—
आर्यावर्त्त अथवा मिश्र ?

(ले०—राज्यरत्न मा० आत्मारामजी अमृतसरी)



स भी जानते हैं कि संसार के इतिहास में दो देशों के ऐसे नाम हैं जिनके नामो मे शुद्ध वा अशुद्ध संस्कृत शब्द पाये जाते हैं। एक ईरान दूसरा आर्यावर्त्त। सब विद्वानो का मत है कि ईरान आर्यस्थान का अपभ्रंश है।

प्राचीन काल में ईरान की आदिम भाषा शुद्ध संस्कृत थी वा इसका अपभ्रंश ? इसके उत्तर मे हम कहेगे कि वह शुद्ध संस्कृत का प्रथम अपभ्रंश थी। इसकी साक्षी में आप हिन्दी भाषा के नामी इतिहास तिमिर नाशक को जो स्वर्गवासी श्री राजा शिवप्रसाद जी सी० आई० ई० का रचा हुआ है देख सकते हैं। इसमे "अदम दारावुश क्षातिया "बौमिया" "आर्य आर्य पुत्र"।" लिखा हुआ है जो प्राचीन ईरानी भाषा का दर्शक है। हम तो क्या स्वयं ग्रन्थकर्त्ता राजाजी साहब का मत है कि उक्त वचन भारतीय शुद्ध संस्कृत का प्रथम अपभ्रंश है। शुद्ध संस्कृत का इदम् वहाँ पर अदम, और क्षत्रिय का वहाँ पर क्षातीया तथा भूमिया का बौमिया हुआ इत्यादि जो विदेशी पूर्व पक्षी कहा करते थे कि भारतीय आर्य Persia (ईरान) से आकर यहाँ बसे, उनके मत का खण्डन उक्त लेख से होगया।

बम्बई साप्ताहिक अंग्रेजी पत्र 'टाइम्स आव इण्डिया मे आज तक एक पूर्व पक्षी स्वदेशी महाशय विद्वान् के अनेक लेख ५ मालाओ के रूप मे अंग्रेजी में निकल चुके हैं जिनका उद्देश्य एक शब्द में ईजिप्ट (मिश्र) देश की प्राचीन भाषा को भारतीय संस्कृत भाषा के स्थान में आदिम जगत् गुरू सिद्ध करने के लिये चेष्टा है। १८-८-३२ के चौथे अङ्क में उक्त लेखक महोदय ने ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १०६ के ७ वें मन्त्र मे विद्यमान 'ऋभू' शब्द की तुलना मिसरी भाषा के पुराने शब्द 'लेपस' से करते हुए दर्शाया है कि लेपस दूसरे वर्ग पर वैदिक ऋभू का अपभ्रंश है। प्रथम वर्ग पर इसका अपभ्रंश इनकी कल्पना में Ribhus (रिभस) हुआ होगा और यह अन्तिम अपभ्रंश लेपस Lapus है।

समीक्षा—जो बात प्रत्यक्ष प्रमाण मे नही आसकती वह शब्द प्रमाण अथवा शब्द प्रमाण के अन्तर्गत इतिहास मे भी नहीं मानी जा सकती। हम कुछ दृष्टान्त जा प्रत्यक्ष प्रमाण के अन्तर्गत है देकर उक्त तत्व पर विचार करते है।

(१) इगलैण्ड में एक माता (मेम साहबा) अपने बालक को प्रथम वार मदर (mother) शब्द पूर्ण शुद्ध बोलना सिखाना चाहती है। वह बच्चा पहिले कुछ दिन तो इसका अपूर्ण उच्चारण मामा जरूर करेगा। फिर इसका अपभ्रंश उच्चारण मड्डर mudder करेगा। अन्त को मदर mother शुद्ध रूप मे कहने लग जायेगा। क्या इस प्रत्यक्ष प्रमाण का कोई भी विद्वान् खण्डन करके यह कह सकेगा कि बालक, जो अपूर्ण वा अपभ्रंश भाषा भाषी है, अपनी माता का शिक्षक वा विद्यागुरु है ? नही कदापि नही। हा टाइम्स आफ इण्डिया पत्र के उक्त लेखक महोदय ही यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध मान सकते होगे। तभी तो उन्होने एक असभ्य देश की अपूर्ण वा अपभ्रंश भाषा तथा रूढ़ि भाषा को जिसका नाम मिसरी भाषा है, आर्यावर्त्त की विशेष धातुजन्य अति उत्कृष्ट अपूर्व भाषा संस्कृत वा देववाणी को अपभ्रंश भाषा की चेली सिद्ध करने का साहस किया है। परन्तु यह स्मरण रहे कि वेद संस्कृत मे हैं और संस्कृत का एक अपूर्व गुण यह है कि इसके सब

शब्द धातु प्रत्ययजन्य होने से सार्थक हैं। अतः इसको हम यौगिक भाषा भी कह सकते हैं। मिसरी भाषा नि.संदेह इस की अपभ्रंश है। यही नहीं, परन्तु वह रूढ़ि थी। अतः एक दर्जन शब्द जो मिसरी भाषा में वहाँ के राजाओं के नाम आप पाते हैं वह सब के सब रूढ़ि है और वैदिक तथा लौकिक संस्कृत भाषा का अवतार वा अपभ्रंश है।

इनसे बढ़कर अनेक विद्वान् इनके मत पोषक नहीं। बंगभूषण श्रीयुत डाक्टर अविनाशचन्द्रदासजी एम० ए० पी० एच० डी ने एक सुप्रसिद्ध अनुसधान पूर्ण अति उत्तम ग्रंथ ऋग्वेदिक कलचर Rigvedic culture मे वह आर्यावर्त्त को मिसर के स्थान मे आदिमजगत् गुरू सिद्ध किया है। पाठक उनके शब्द ध्यान पूर्वक देखें।

" It is therefore extremely misleading to compare the rate of progress made by some modern nations, with that made by an ancient people, like the Indo-Aryans, who having been completely cut off from the outer world, had through unaided exertions to develope a civilisation of their own "

" Only those Indo Aryan tribes who emigrated to foreign countries took with them a portion of their culture But this process also helped to uplift the ancient world and to spread civilisation over Westetn Asia, Egypt, and Europe "

इसके अतिरिक्त श्री विभूति भूषणदत्त द्वारा लिखित और कलकत्ता यूनिवर्सिटी द्वारा प्रकाशित पुस्तक सुल्व सूत्रो की सायंस The Science of the Sulba के पृष्ठ ०पर लिखा है—

" It seems to be an instance of Hindu influence on Greek—Geometry For the idea that Greek term is neither of the greeks, nor of their acknowledged teachers in the Science of Geometry, the Egyptians, but it is characteristically of Hindu origin "

अर्थात् यूनानियों के रेखागणित पर हिन्दू रेखा गणित की छाप है। इसके अतिरिक्त श्री प० भगवद्दत्त बी० ए० रिसर्चस्कालर लाहोरने अपने वैदिक वाङ्मय का इतिहास ग्रंथ मे स्पष्ट लिख दिया है—"भारतीय आर्य लोग सदासे अपने मृतको को जिलाते रहे हैं। यदि आर्यलोग कहीं बाहर से आकर भारत मे बसे होते, तो वे अपने मृतको को दबाते हो रहते।" ......"आलिगी, विलिगी उस उरुग्रल,और तावुव,शब्द चालडियन भाषाके हैं।

पर यह सब शब्द भाषा विज्ञान की दृष्टि से पीछे के हैं। उनका पहिले कोई और रूप था।

—

जूठा न खाय?

न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे। न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुंख धोये बिना कहीं इधर उधर जाय।

—

साम्यवाद का वास्तविक स्वरूप

[लेखक—श्री बा० पूर्णचन्द्रजी एडवोकेट]

—:o:—

सामाजिक संगठन एक आवश्यक विषय है। इसका प्राचीन वैदिक स्वरूप वर्ण व्यवस्था है। जिस समय वैदिक वर्ण-व्यवस्था का प्रचलित स्वरूप लोप हो गया उस समय उसके स्थान में अनेक सामाजिक संगठन के उपाय काम में लाए जाने लगे। आज पश्चिम में सब से बड़ा प्रबल प्रचार साम्यवाद का है और भारतवर्ष में भी इसका प्रचार आरम्भ हो गया है। राष्ट्रीय महासभा का एक अंग इसी बात के प्रचार के लिए है। साम्यवाद एक बहुत प्रचलित शब्द है, परन्तु इसके असली अर्थ को बहुत कम लोग समझते हैं। इस बात के निर्णय करने लिए कि साम्यवाद मनुष्य समाज को वास्तविक रूप में सुख और शान्ति दिला सकेगा या नहीं, यह जानना आवश्यक है कि साम्य वाद के अन्तर्गत कौन कौन से सिद्धान्त आते हैं। यहाँ यह बात भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि संसार में इस समय बड़ी संख्या भूखे, दलित और दुखियो की है। जहाँ कोई वाद मनुष्य मात्र को यह आशा दिलाता है कि उसके अनुयायी होने से उनके दुःखों का अन्त हो जायगा वहा जनता उस ओर झुक जाती है और उस 'वाद' के प्रचार में सहायता मिल जाती है, मनुष्य जब अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं—'जब धनी लोग अपने धन के सहारे निर्धनों पर अत्याचार करते हैं, जब पूंजीपति मजदूरों पर अन्याय करते हैं तो यही जी चाहता है कि अधिकारों का दुरुपयोग करने वालों से अधिकारों का, अत्याचार करने वालों से धन का और अन्याय करने वाले पूंजीपतियो से पूंजी का अपहरण कर लिया जावे। सब मनुष्य बराबर हैं। सब को एक से अधिकार हैं और न कोई छोटा है और न कोई बड़ा, न कोई राजा है और न कोई प्रजा—यह बाते बड़ी मीठी हैं। इन्हीं को लक्ष्य में रखकर साम्यवाद के निम्नलिखित छ: सिद्धान्त निर्धारित किए गये हैं।

(१) व्यक्ति के मुकाबिले पर समाज और समुदाय को विशेषता देनी चाहिए। किसी समुदाय में कोई व्यक्ति कुछ मूल्य नहीं रखता। उसके व्यक्तित्व को मिटा देना ही सामाजिक उन्नति का केन्द्र है और सामाजिक हित है। जब व्यक्तियो को अपने व्यक्तित्व का ध्यान रहेगा। उनमें स्वार्थ रहेगा और संसार में दुःख बना रहेगा। व्यक्तियों को सामाजिक संगठन के इतना आधीन हो जाना चाहिए कि उनका व्यक्तित्व शेष न रहे। इस सिद्धान्त को अंग्रेजी में Exaltation of the community above the individual कह सकते हैं।

(२) Equalisation of human condition अर्थात् मनुष्यो की दशा को समान बना देना।

(३) Elimination of the captalist अर्थात् पूंजीपतियों को समाज से मिटा देना।

(४) Expropriation af the land-lord अर्थात् जमींदारों को अथवा जमीन के मालिकों के अधिकारो को नष्ट कर देना। कोई व्यक्ति किसी इंच जमीन को अपनी न कह सके। यह इसका अभिप्राय है।

(५) Extinction of private enterprise अर्थात् व्यक्तिगत उद्योग की जड़ काटना।

(६) Eradication of competition अर्थात् आपस की जद्दो जहद को दूर कर देना।

साम्यवाद के उपर्युक्त ६ अंग ऐसे हैं कि जिन पर अलग लेख लिखे जा सकते हैं। परन्तु इनके सम्बन्ध में यहाँ यह कहना पर्याप्त है कि मनुष्य अपना व्यक्तिगत स्वतन्त्रता चाहता है और सामाजिक संगठन भी। सामाजिक संगठन की आवश्यकता

प्रत्येक व्यक्ति को सुखी बनाने की है यदि सुख भोगने की बिल्कुल स्वतंत्रता न रहेगी तो ऐसे संगठन से क्या लाभ ? मनुष्यो की समाज और पशुओ के झुण्ड में कोई भेद न रहेगा। दूसरा सिद्धांत भी भ्रम मूलक है। मनुष्यो की राय एकसी नहीं की जा सकती उन में स्वाभाविक भेद है। सामाजिक बल शारीरिक बल, मानसिक बल और आत्मिक बल सब के भिन्न भिन्न हैं। मनुष्यो में सबको एकसा योग्य मानना पूर्व जन्म के सिद्धांतो में बट्टा लगाना है। सामाजिक संगठन की सुन्दरता इसमें है कि प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति का एक सा अवसर दिया जावे। परन्तु परिणाम एक सा नहीं होता अर्थात् Opportunity can be equalised but not the results— यदि एकसा अवसर न दिया जायगा तो भी अन्याय है, परन्तु यदि अधिक योग्य को उसकी योग्यता का उचित फल न मिला तो यह उस से भी अधिक अन्याय है। किसी परीक्षा में सब विद्यार्थियो को ३३ फीसदी अंक यदि आँख मीच कर दे दिये जावें तो वह परीक्षा, परीक्षा न रहेगी।

तीसरे और चौथे भी बड़े भयंकर सिद्धान्त हैं। पूंजीपतियो से पूंजी का छीनना और जमीदारो से जमीदारी छीनना अत्यन्त अन्याय है। जिसने परिश्रम से धन पैदा किया है या जमीदारी कमाई है वह उनके भोगने का अधिकारी है। पाँचवें और छटवें पहिले चारो का परिणाम है। जब किसी को उसकी महनत का फल न मिलेगा तो वह मिहनत करना छोड़ देगा उस समाज के सब व्यक्ति एक से आलसी हो जावें और जो किसी की विशेष योग्यता से जो कोई राष्ट्र या समाज लाभ उठा सकता है तो वह उससे वंचित रह जावेगा। पाँचवें और छटवे को अर्थ शास्त्र की दृष्टि से हम मूर्खता कह सकते हैं कि जो पागलो के लिये रोचक है। तीसरा और चौथा सदाचार की दृष्टि से बहुत गिरा हुई बाते हैं जो जुर्म करने वालों को आकर्षित करती हैं। पहिलो दो देखने में रोचक हैं परन्तु भ्रम मूलक। साम्यवाद के प्रचार से जो हानियाँ पश्चिम में हुई हैं वह इस प्रकार बर्णन की जा सकती हैं।

(१) मानसिक हानियाँ--

(अ) Distortion of objective Facts साम्यवादी अपनी सफलता के लिये भूतकाल को वर्त्तमान की अपेक्षा बहुत बुरा बतलाते हैं। मजदूरी का आवश्यकता से अधिक मूल्य रखने वाला चित्र खींचते हैं। पूंजीपतियों के अत्याचारो को प्रगट करने के लिये मन गढ़ंत संख्याऐं बना लेते हैं।

(ब) Misinterpretation of human nature मनुष्य स्वभावको ग़लत समझता है। समाजको व्यक्ति के ऊपर विशेषता देने से मनुष्य के अन्दर से स्वाभिमान और पारवारिक प्रेम जाता रहता है।

(२) Economic fallacy अर्थ शास्त्र की दृष्टि से गलतसिद्धांत प्रचलित करता है। उदाहरण के लिये यह दैविक शक्तियो के मूल्य को बहुत कम स्थान अपने सिद्धांत में देते हैं। ईश्वर के प्रदान किए हुए आग, हवा, पानी का कोई मूल्य ही नहीं समझते। दूसरे किसी चीज़ के उत्पन्न करने में हाथ की मिहनत का इतना अधिक मूल्य समझते हैं जो अनुचित है और धन का मूल्य बहुत घटा देते हैं। कोई भी चीज़ जो राष्ट्र के लिए उपयोगी है बिना महनत और धन के उपयोग के पैदा नहीं हो सकती। दोनो ही अपना अपना स्थान रखते हैं।

(३) Industrial defect तिजारत की दृष्टि से हानियाँ—

(अ) साम्यवाद से धन के उपार्जन का उत्साह जाता रहता है।

(ब) धन को विभाजित करने के लिए कोई सिद्धांत निश्चत नहीं रहते। जैसे नीचे लिखे तीन आधार धन के विभाग के लिए कहे जाते हैं—।

(क) To each as much has to any one else अर्थात् सबको एकसा मिल।

(ख) To each according to his merit हर एक को उसकी जरूरत के मुताबिक मिले।

(ग) to each acording to his need तीनो ही आधार पृथक् पृथक् रूप में भ्रम मूलक हैं सबके उचित समावेश से ही एक ठीक सिद्धांत निधारित हो सकता है।

(५) साम्यवाद से वह लाभ नहीं हो सकता जो धन के परिवर्तन से होता है। यदि एक राष्ट्र का

धन दूसरे राष्ट्र में जायगा तो दोनो का लाभ होगा।

(४) Social defects अर्थात् सामाजिक बुराइयाँ

(अ) स्वतन्त्रता मे हानि, आजादी के प्रबल प्रचारक स्वतन्त्रताको पैरो तले कुचल देते हैं। साम्यवाद की गुलामी का दुःख वही अनुभव कर सकते हैं जिन्होने रूस आदि पश्चिमी देशो का दशाको स्वय देखा है या प्रमाणित पुस्तको में उसके इतिहास को पढ़ा है ।

(ब) पारिवारिक संगठनका छिन्नभिन्न कर देता है। यह विवाह का विरोधी और free love (उच्छृखल प्रेम) का पोषक है

(स) धर्म का शत्रु है। धर्म को उन्नति मे बाधक समझता है और घोर नास्तिकता इस का आवश्यक अंग है । Karl—marx का कहना है Religion and communism are in competable Religion is the opium of the people अर्थात् धर्म और साम्यवाद का स्वाभाविक विरोध है । धर्म मनुष्यों के लिये अफीम है ।

(५) Moral and political defects—सदाचार और राष्ट्रीय उन्नति की दृष्टि से महा हानिकारक है इसके आधार पर कोई राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता और न आज तक ही की। थोड़े दिनो तक भूखे और दलितो के सहारे— शोर मचाता है और फिर बैठ जाता है। विस्तार भय से इस विस्तृत विषय का इस छोटे से लेख मे अधिक विवेचना नहीं की जा सकती। ऊपर लिखी हुई कुछ पंक्तियों से यह पता चल सकता है कि साम्यवादका वर्त्तमान प्रचलित स्वरूप अनैदिक है और यह सारा भ्रम ऋषि दयानन्द के बनाये हुये आर्य समाज के दश नियमो मे से दशवें नियम को न समझकर मन गढ़त सिद्धात प्रचलित करना है।

नियम दशवाँ— सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालन करने में सब को परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम मे सब स्वतत्र रहे।

ब्रह्मचर्य के उपासक

(ले०—विद्यावाचस्पति श्री हरिनाथजी शास्त्री)



ब्र" शब्द का अर्थ परमात्मा अमृत ज्ञान तथा वृद्धि आदि है। "चर्य" का अर्थ आचरण करना, योग्य व्यवहार करना, पुरुषार्थ करना आदि है। अर्थात् ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ परमात्मा की प्राप्ति के योग्य व्यवहार करना ज्ञान की वृद्धि क लिये पुरुषार्थ तथा अभिवृद्धि के लिये प्रयत्न करना। उपर्युक्त बातो की सिद्धि शारीरिक, आत्मिक व मानसिक शक्ति सम्पादन से ही हो सकती है। अर्थात् मानव शरीर जो कि बहुविध शक्तियो का अटूट भण्डार है उन शक्तियो का व्यर्थ न होने देकर उनका केन्द्रस्थान में एकत्रीकरण होना। अपनी किसी भी प्रकार की शक्ति को किसी भी अवस्था मे व्यर्थ न जाने देना चाहिये, अपितु अपने शरीर के रोम रोम पर पूर्ण अधिकार करने अर्थात् उनको अपने वशमें रखने से ही यह सम्भव हो सकता है। अत किसी भी इन्द्रिय द्वारा ऐसा कार्य करना जिससे शक्तिका ह्रास हो अपने पैरो आप कुल्हाड़ी मारना है। क्यो कि ब्रह्मचर्य ही शारीरिक आत्मिक व मानसिक विकास का सच्चा हेतु है, वही सम्पूर्ण उन्नति का मूल है। इसकेआचरण से ही पुनरपि हम खोई हुई शक्तियो को प्राप्त कर सकते है।

ब्रह्मचारी चार प्रकार के होते है। उत्तम (आदित्य संज्ञक ४८ वर्ष तक) मध्यम (रुद्रसंज्ञक ४४ वर्ष तक) निकृष्ट (वसुसंज्ञक २४ वर्ष) इन के अतिरिक्त ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी वे कहाते है जो आजन्म अविवाहित रहते हुए अपने वीर्य को आध्यात्मिक शक्ति के जाग्रत करने में लगाते हुए संसार का उपकार करते हैं इन्ही को नैष्ठिक ब्रह्मचारी भी कहते हैं। तात्पर्य यह है कि वीर्य अलम्बरूप होने के कारण पतला होता है अत इसका निम्नस्खलन बाही होना अनिवार्य है, परन्तु जिस प्रकार जल प्रवाह को जल प्रपात (water fall) के रूप में परिवर्तित करके उसके द्वारा विद्युत शक्ति को प्राप्त किया जाता है, तद्वत् ही प्रबल मानसिक सकल्प शक्ति द्वारा वीर्य प्रवाह को नीचा न होने देकर अपने पृष्ठवश द्वारा यागाभ्यासादि से ऊर्ध्वगति कर मस्तिष्क तक पहुँचाना जिससे मस्तिष्क भी शक्तिमान् हो तथा मुख की दीप्ति में भी अपूर्व वृद्धि हो। जिस प्रकार दीपक का तेल बत्ती द्वारा ऊपर चढ़कर ज्योति रूप मे परिवर्तित हो जाता है उसी प्रकार मस्तिष्क की ओर प्रगति करता हुआ वीर्य भी तेजो रूप होकर मुख की कान्ति मे वृद्धि करता है। बस, उपरोक्त गुण सम्पन्न ब्रह्मचारी भी अपनी सम्पूर्ण शक्तियो को प्रबल करता हुआ, वीर्य का सर्व श्रेष्ठ लाभ प्राप्त करता हुआ, दिव्य तेज से परिपूर्ण होकर भूमण्डल पर अलौकिक चमत्कार प्रदर्शित करता है। "मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्" इस सूक्ति के निगूढ रहस्य को हृदयङ्गम करता हुआ मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। जिस प्रकार भारतीय इतिहास मे भीष्म पितामह व स्वामीदयानन्द का उदाहरण हमारे सामने है। चूँकि वीर्य मे एक ऐसे नवीन प्राणो का उत्पन्न करने की शक्ति है जो कि अपने दिव्य तेज से ससार को चकित कर सकता है यदि उस शक्ति को उत्पादन पर व्यय न करके अपने ही शरीर में सचरित किया जावे तो उससे शारीरिक वृद्धि के साथ साथ मानसिक शक्ति मे भी चमत्कारिक परवर्तन होगा।

प्राचीन कालीन ऋषि मुनियो में ऐसी सिद्धि थी कि वे शुक्राशय के भर जाने पर (जब कि वहाँ से वीर्य बाहर निकलने लगता है) उस शुक्र को पुनरपि रक्त मे प्रगति कर जहाँ क्षीण होती हुई अपनी वीर्यसम्पदा की रक्षा करते थे वहाँ साथ ही योग क्षेमपूर्वक इससे अन्य लाभ भी उठाते थे।

क्योंकि उनका सारा जीवन ही ब्रह्मशक्ति की उपासना में व्यतीत होता था, तथा प्रतिक्षण आध्यात्मिकता से परिपूर्ण रहता था। क्योंकि देहस्थ वीर्य का स्वाभाविक धर्म है कि इसे अपनी जिस शक्ति की वृद्धि मे लगाओगे वहीं यह चमत्कार कर देगा। यदि हम दृढ़ संकल्पशक्ति द्वारा स्नायुओ की पुष्टि की ओर इसको लगाना चाहेगे तो हमारे स्नायु शक्तिमान् होगे। इसीप्रकार यदि स्मृति शक्ति के जाग्रत करने में इसे लगायेंगे तो हमारी यह शक्ति ही वृद्धि प्राप्त करेगी। यदि कुवासनाओ मे वीर्य की प्रगति करेंगे तो फिर हमारा रोम रोम वासनामय हो जायगा, हम प्रतिक्षण कुवासनाओ में सने हुए इसका शिकार बन जायगे क्योकि मानवीय शरीर की उन्नति या अवनति का एक मात्र आधार वीर्य ही है। हमे स्वामी दयानन्द के ऊपर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि उन्होने अपने इस अमूल्य धन की प्रगति ऊर्ध्वमार्ग द्वारा मस्तिष्क में करके भौतिक जगत् से आध्यात्मिक जगत् मे प्रवेश किया था तथा इस वासना प्रधान युग में भी एक चमत्कार कर ससार को चकित कर दिया था।

मानव-जाति के इतिहास का ध्यानपूर्वक अवलोकन करने से हमे यह मालूम होता है कि अब तक ब्रह्मचर्य का उच्चादर्श मालूम करनेवाले गिने चुने ही हुए हैं। इसके साथ ही यह भी प्रकट होरहा है कि इस कसौटी पर खरा उतरना सामान्य नहीं है। बाल ब्रह्मचारी भीष्मपितामह आदर्श ब्रह्मचारी शंकराचार्य तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे नर रत्नो और महात्माओ की यह सामर्थ्य थी कि वे अपने को इस अग्नि परीक्षा में खरा प्रकट कर सकें, क्योकि वर्षो कठिन तपस्या करनेवाले तथा कन्दमूलादि आहार करनेवाले विश्वामित्रादि ऋषिगण भी काम वेग के मौके पर शिकार बन गये और उससे परास्त होगये। आदर्श ब्रह्मचारियो ने ही ब्रह्मचर्य शक्ति द्वारा समुपार्जित लोकोत्तर चरित्र से संसार को चमत्कृत कर दिया। जिस परशुराम ने २१ बार अपने आश्चर्योत्पादक बाहुबल से शक्तिशाली क्षत्रिय नरेशो से पृथ्वी को शून्य कर दिया था, उसी को बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह की अद्वितीय ब्रह्मचर्य शक्ति के सामने मुंह की खानी पड़ी। पाण्डव पक्ष का गौरव स्थान अर्जुन जिसने कि विविध अवसरो पर अपनी शक्ति द्वारा साथियो को अनेको बार नीचा दिखाया था, जिसे अपनी शक्ति का अपूर्व गर्व था, महाभारत युद्ध मे वृद्ध भीष्मपितामह की ब्रह्मचर्य शक्ति के समक्ष किंकर्त्तव्य विमूढ़ और हतप्रभ हो गया। डेढ़सौ वर्ष की अवस्था होने पर भी वृद्ध भीष्म मे १० सहस्र सैनिको को अकेले मारने की सामर्थ्य केवल ब्रह्मचर्य के कारण थी। इसी प्रकार स्वामी शंकराचार्य की शक्ति के आगे विरोधियो के दल के दल हारते गये। स्वामी दयानन्द का सिंह व्याघ्रादि से भरे हुए जंगलो मे एकाकी विचरण करने का रहस्य भी इसी दिव्य ब्रह्मचर्य शक्ति मे निहित है। इसी के आधार पर उन्होने काशीस्थ विद्वन्मण्डल को कुछ ही क्षणो मे परास्त कर दिया था। इसी के विश्वास पर उन्होने थोड़े से ही वर्षों मे ग्रन्थ लेखन तथा भाषण द्वारा जो अद्भुत कार्य कर ससार को चकित किया था उतना उससे दुगुने समय में भी उनका उत्तराधिकारी आर्य समाज न कर सका। कहां तक बताया जावे इस दिव्य शक्ति के उपासको ने ससार को चकित कर दिया।

ब्रह्मचर्य के विषय के जो नियम हमारे शास्त्रो मे मिलते है वे केवल सिद्धान्तवाद के ही नहीं हैं। अपितु विविध स्थानो मे पर्ण कुटीरो के रूप में विद्यमान परीक्षण शालाओ मे उनकी भलीभांति परीक्षा हो चुकी है तभी तो हम देखते हैं कि ब्रह्मचर्य का जो उच्च आदर्श उन्होने हमारे सामने रक्खा था केवल मात्र वही मानव जाति के सर्वांगीण विकास में सच्चा सहायक व मित्र हो सकता है। आज हम उनके बताये हुए उच्चादर्श (ऊर्ध्वरेतस्त्व) को तो बिलकुल ही भुला चुके हैं। २५ वर्ष का जो निकृष्ट ब्रह्मचर्य था, आज के दिन उससे भी कोसो दूर पड़े हुए अपनी मौत की घड़ियाँ गिन रहे हैं। 'ऋतु-

कालाभिगामीस्यात् स्वदार निरत सदा। पर्ववर्ज व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रति काम्यया' यह जो नियम उन्होंने बनाया था उसकी भी किञ्चिन्मात्र परवाह न करते हुए, आत्म प्रवचना में प्रवृत्त होरहे हैं, और उनकी आत्माओं को तड़पा रहे है। तभी तो आज हमारी अस्थिककालावशिष्ट, रागग्रस्त देहमात्र रह गई है। जो संतानोत्पत्ति ईश्वराय सृष्टि का पवित्र तम कार्य है, वहाँ पर ही हम कामुकता व लालुपता वश ईश्वरप्रदत्त अधिकार का दुरुपयोग करते हुए, भावी सन्तान के प्रति बहुत बड़ा अन्याय कर रहे हैं तथा भारत के सौभाग्य वृक्ष की मूल में छाछ डाल रहे हैं। 'नतपत्तरप इत्याहुर्ब्रह्मचर्य तपोत्तमम्। ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवा न तु मानुष ॥' तप कोई दूसरी चीज नहीं है, ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम तप है, क्योंकि जो उच्च साधना द्वारा ऊर्ध्वरेता की पदवी को प्राप्त कर लेता है वह मनुष्य नहीं अपितु देवता है। ब्रह्मचर्य की शक्ति ही भली प्रकार विवेकपूर्ण रीति से कार्यान्वित किये जाने पर मनुष्य को देवता कोटि में पहुँचा देती है। असाध्य कार्य भी इसी के द्वारा सुसाध्य बन सकता है। मानवीय विकास के लिये इससे बढ़ कर दूसरा मार्ग नहीं है। महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा पुनरु जीवित गुरुकुल आश्रम प्रणाली का भी मुख्य उद्देश्य शिष्यवृन्द को ब्रह्मचर्य शक्ति का सच्चा उपासक व अनुगामी बनाना ही है। यह परिपाटी हमारे यहाँ अति प्राचीनकाल से चली आरही है। गुरुजन विद्यार्थियों की प्रत्येक प्रगति का सूक्ष्मरीत्या निरीक्षण किया करते थे तथा जहाँ कहीं भी स्खलित होता, तत्काल सावधान कर देते थे। उनका सिद्धान्त था कि विद्यार्थी को प्रारम्भ से ही वह शिक्षा देनी चाहिये जो उस की सर्वाङ्गीण उन्नति में सहायक हो तथा उसको प्रत्येक प्रकार की जिम्मेवारी अपने ऊपर समझते थे। आचारं 'ग्राहयत्याविनोत्यर्थानिति आचार्य।' आचार्य शब्द की व्युत्पत्ति ही इस बात को प्रकाशित कररही हैं कि विद्यार्थी के आचार निर्माण में आचार्य का मुख्य स्थान है। वही इसके सदाचरण का सस्थापक तथा पोषक होता था। साथ ही स्वय भी सदाचारी ब्रह्मचारी बनता है क्योंकि वेद की आज्ञा है कि 'आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमि च्छति" यह बात नही कि विद्यार्थी ही ब्रह्मचर्य का आचरण करे अपितु आचार्य भी स्वयमुपार्जित ब्रह्मचर्यशक्ति द्वारा ही उत्तम ब्रह्मचारी शिष्य को प्राप्त कर सकता है। यदि आचार्य स्वय ब्रह्मचारी नहीं तो कोई विद्यार्थी उसके पास आने की इच्छा नहीं करेगा। विद्याभ्यास के साथ ही सदाचार का भी पूरा ध्यान रखना, यही प्राचीन विद्याशालाओं की विशेषता थी। सम्प्रति इस की गन्ध कहाँ।

अथर्ववेद के ब्रह्मचर्यसूक्त के अन्तर्गत अनेक मन्त्र इस विषय की महिमा प्रदर्शित कर रहे हैं विस्तार-भय से हम एक की थोड़ी सी व्याख्या यहां करते है – आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भ-मन्त। त रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति त जात द्रष्टुमभि सयन्ति देवा ॥ अर्थात् उपनयन के लिये जब ब्रह्म-चारी आचार्य के पास आता है तो वह तीन रात्रि तक उसको अपने पास गर्भगत शिशु की भांति रखता है— उसको अपना लेता है उसके प्रति पितृवत् स्नेह प्रदर्शित करता है जिससे कि वह पितृवियोग को भुला देता है अर्थात् त्रिविध अज्ञानरूप अन्धकार (रात्रि जब दूर हो जाता है तभी अपने से अलग करता है फिर जब वह अज्ञानअन्धकार को दूर कर उत्पन्न होने की स्थिति में आता है तब देवगण उसको देखने आते हैं। उसको देखकर पितृजन प्रसन्न होते हैं दिव्य शक्तिया प्रत्येक काय मे उसकी सहायक होती है। वह आचार्य के पास उपार्जित अपने ज्ञान से उन्हें प्रसन्न करता है क्यों कि आचार्य अध्ययनमात्र मे ही उसका सहायक नहीं होता अपितु सब तरह से उसका सरक्षक बनकर रहता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही सुख समृद्धि और आरोग्य का मूल है। उसको वे सब साधनायें बताई जाती हैं कि जिनके द्वारा वह सम्पूर्ण शक्तियां के आधार भूत वीर्य की रक्षा करता हुआ, चिरकाल तक इस दिव्य शक्ति का उपभोग करता रहे। यह अपने अद्-भुत दिव्य तेज से स्वयमेव प्रकाशित होता है जैसा कि इसी सूत्र के एक मन्त्र से प्रकट हो रहा है। 'स स्नातो बभ्रु पिङ्गल पृथव्यां बहु रोचते"।

मानव धर्म

(लेखक—श्री हरदयालजी नाग)

—:o:—

वेद मानव धर्म की आधार शिला हैं। आर्य संस्कृति का जन्म उन्हीं से हुआ है। सारी मनुष्य जाति के लिये एक धर्म और एक ईश्वर की घोषणा वेद ही करते हैं। सब मनुष्यो को एक मनुष्य जाति मे संगठित करने और एक मानव धर्म के सूत्र मे बांधने के लिए वेद मन्त्र सबसे अधिक उपयुक्त हैं। समय के हेर फेर से वेदो की बहुत सी शाखाये या तो दुष्प्राप्य हो गई अथवा नष्ट हो गई। साथ ही इसके मानवीय विचारों का इतना ह्रास हो गया और मानव समाज नाना मत पन्थों मे विभाजित हो गया। एक पन्थ के अनुयायियों ने दूसरे पन्थ के अनुयायियो पर अपना अधिकार जमाया और धर्म के नाम पर अनुचित लाभ उठाया। परिणामतः जन्म जाति का आधिपत्य हुआ और उसके समर्थन मे अनेक कल्पित शास्त्र रचे गये, जिसके प्रभाव स्वरूप ब्राह्मणों मे उच्चता का अभिमान और अन्य जातियों मे अपने को तुच्छ समझने के भाव उत्पन्न हो गये। ब्राह्मणत्त्व जन्म से समझा जाने लगा और ब्राह्मण अदण्डय हो गया। राजा को ब्राह्मणो के आधीन कर दिया गया, और कानून भी ब्राह्मणो के हाथ मे आगया। ऐसे नियमों की रचना की गई कि जिनके अनुसार नीच जाति के लोग वेद न पढ़ सके। उनके साथ दासो का सा व्यवहार किया जाने लगा। उनको सर्वथा दास बनाये रखने के लिए मूर्ख ही रक्खा जाता था और उनमें से कुछ को अछूत तक बना दिया गया। लगभग सभी धर्म शास्त्रो के स्थान में ब्राह्मणो के स्वार्थ हित बनाये कल्पित नियम व्यवहार में आ गये। संक्षेप में ब्राह्मणों ने अपने को सब तरह से हिन्दू समाज का अधिपति और स्वर्ग का द्वारपाल बना लिया। नीची श्रेणियों को वेद से वञ्चित रक्खे जाने के कारण उनकी अवस्था नारकीय हो गई। ब्राह्मणों का अधिकार बनाये रखने के लिये हिन्दुओं को भिन्न भिन्न जातियों और उपजातियो मे विभक्त कर दिया गया और उन मे से कुछ का तो नागरिक अधिकारों से भी वंचित रक्खा। वेदो के अभाव में ऊंच नीच के प्रवर्तक कल्पित शास्त्रो का बाहुल्य होता गया। कल्पित शास्त्रो ने मनुष्यों के हृदय मे धार्मिक गुलामी उत्पन्न करदी जो सभी प्रकार की गुलामियों से अधिक हानिकारक है। वे ब्राह्मण के द्वारा ही और उसको कुछ टके देकर ही ईश्वर पूजा कर सकते थे। मनुष्य के चरित्र की उन्नति के लिए धार्मिक स्वतन्त्रता अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना उसे आध्यात्मिक जीवन की प्राप्ति नही हो सकती। प्राणि धर्म मनुष्य तथा अन्य जीवधारियों में समान ही है, आध्यात्मिकता के कारण ही मनुष्य को अन्य जीवधारियों से पृथक् किया जाता है। पाशविक वृत्तियों और भोगों में लगा हुआ मनुष्य पशु से अधिक नहीं है। उसका मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है और वह मानव धर्म से बहिष्कृत हो जाता है। ईश्वर की

यह है प्राचीन ब्रह्मचर्य के आदर्श की एक झांकी जो कि हमारा गंतव्य स्थान व लक्ष्य है। परन्तु चूंकि हम इस लक्ष्य से हो दूर होते जा रहे है इसलिये सुख और शांति सम्पदाये भी हमारा साथ छोड़ती जा रही हैं। हमारा कल्याण तो उपरि निर्दिष्ट मार्ग का अवलम्बन करने से ही हो सकता है। स्वामी दयानन्द की सम्पूर्ण जीवन की साधना का भाव भी इसी में निहित है। उनका विश्वास था कि भारतीय संतानो में इस संजीवनी शक्ति के सचार से ही देश का यथार्थ कल्याण हो सकता है। यदि हम अब भी आदरणीय महर्षि द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर प्रगति आरम्भ कर देंगे तो अवश्य उद्धार होगा, अन्यथा खाई तो हमारे लिये तैयार ही है

भूलने के समान अन्य कोई पाप नहीं है और ईश्वर के समक्ष आत्मसमर्पण करने के अतिरिक्त धार्मिकता कुछ भी नहीं है। धार्मिक परिपक्वता त्याग और आध्यात्मिक ज्ञान पर निर्भर है। मनुष्य जब मानव धर्म से नीचे गिर जाता है तभी वह अधार्मिक कहलाता है।

जब मानव धर्म की मर्यादा लुप्तप्राय हो गई थी, उस समय ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ। आध्यात्मिकता धार्मिक क्षेत्र को छोड़ चुकी थी और प्रकृतिवाद का बोलवाला था। सांसारिक लाभों की प्राप्ति के लिए देवी देवताओं की पूजा होती थी, आत्मा को मुक्ति के लिये तो विरले ही ईश्वर की पूजा करते थे। प्रार्थना केवल भौतिक पदार्थों के लिए ही की जाती थी। परिणाम यह हुआ कि मनुष्य समाज सब तरह से पतित हो गया था। एक प्रकार से ईश्वर के राज्य से मनुष्य वञ्चित हो गया था। ऋषि दयानन्द जन्म से ही त्यागी थे। वह ईश्वरीय झण्डा हाथ में लेकर आये और उनके उपदेशों से सच्चे ईश्वरीय धर्म का झण्डा फिर से फहराने लगा। वह अपना ईश्वरीय काम पूर्ण भी न कर पाये थे कि उनकी मृत्यु हागई। उनके शेष काम को पूरा करने का भार आर्यसमाज पर पड़ा। धार्मिक और सामाजिक सुधार का कार्य जिसको ऋषि दयानन्द ने आरम्भ किया था, सरल नहीं है। संसार में वैमनस्य फैला हुआ है। युद्ध की भावना लेकर शान्ति की बातें की जाती हैं। सभ्यता के नाम पर नर-संहार जारी है। छुआछूत का धर्म अभी तक प्रचलित है। ईश्वर के मन्दिर के द्वार अब भी बहुतों के लिए बन्द हैं। धर्म के नाम पर देवी देवताओं के आगे पशुओं की हिंसा की जाती है। अधिक क्या, मानवधर्म के टुकड़े टुकड़े करके उसको ऐसा विकृत किया गया है कि पहचाना नही जाता। आर्यसमाज के सामने छिन्नभिन्न मनुष्य समाज को एक ईश्वर के झण्डे के नीचे लाने का कठिन कार्य है। तभी ईश्वर का राज्य स्थापित होगा और मानवधर्म संसार का एक मात्र धर्म होगा। विश्व व्यापी भ्रातृत्व तथा शान्ति की उसके द्वारा स्वयं स्थापना हो जायगी।

———

आर्यपथिक ग्रन्थावली

(प० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ)

धर्मवीर प० लेखरामजी आर्य पथिक के नामको और उनके ग्रन्थो को शायद ही कोई न जानता हो। पण्डितजी का बलिदान हुए आज ३२ वर्ष के लगभग होते हैं। वे जैसे ओजस्वी वक्ता और आदर्श प्रचारक थे, वैसे ही सुलेखक और अन्वेषकभी। उन्होने स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन-चरित्र के लिए मसाला संग्रह करने की खोज में पथिक बनकर जो श्लाघनीय परिश्रम किया, वह उन्हीं का काम था। उनकी विविध विषयो पर लिखी हुई खोज पूर्ण पुस्तकें उर्दू में 'कुल्लियात ए० आर्यमुसाफिर' नाम से कई बार प्रकाशित हो चुकी हैं परन्तु हिन्दी जाननेवाले उनसे लाभ नहीं उठा सकते थे अब श्री प्रेमशरणजी ने बड़े परि म से इस ग्रन्थ का अनुवाद किया है और 'आर्यपथिक ग्रंथावली' का यह प्रथम पुष्प है। श्री प्रेमशरणजी ने इस पुष्प को निकाल कर अत्यन्त उपयुक्त कार्य किया है। वस्तुत: ऐसे ग्रन्थ प्रत्येक हिन्दू गृह और सभी सार्वजनिक पुस्तकालयो में रहने चाहिये। यह ग्रन्थ विस्तृत है। इसमें ८४८ पृष्ठ हैं। अनुवाद की भाषा परिमार्जित है। परिश्रम और ग्रंथ की उपयोगिता को देखते इसका मूल्य ४) और सजिल्द ४॥) उचित ही है। आरम्भ में स्वामी श्रद्धानन्द लिखित 'आर्यपथिक' का साक्षात और संक्षिप्त जीवन चरित्र भी दिया गया है। पश्चात् सृष्टि के इतिहास पर बड़ी सुगमता से प्रकाश डाला गया है। आज कल हमारे स्कूल और कालेजो के लड़के सात समुद्र पार बैठे हुए भारतवर्ष की सभ्यता से नितान्त अनभिज्ञ इतिहासकारो के इतिहासो को पढ़ने में कितना समय व्यर्थ खोते हैं। यदि वे पथिक निर्मित इस इतिहास को पढ़ें तो उनकी आँखें खुल जांय, और अपने अत्यन्त प्राचीन पूर्वजो की श्रेष्ठ सभ्यता को जान सकें इस ग्रन्थ में प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वानो का मत देकर यह सिद्ध किया गया है कि आर्यों की सभ्यता अति प्राचीन और उनका धर्म सर्व श्रेष्ठ है। इसमें शास्त्रीय युक्ति,प्रमाणों और ऐतिहासिक ग्रन्थो से सहायता ली गई है। किसी प्रकार की साम्प्रदायक क्रूरता अथवा अनुचित कटाक्षों का ग्रन्थ में सर्वथा अभाव है। ग्रन्थ के अन्त में हिन्दुओं के मुख्य सिद्धाँत पुनर्जन्म पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है, जिसको पढ़ कर नास्तिको की भी आँखे खुल सकती हैं। बीसियो दृढ़ युक्तियो द्वारा आत्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध सिद्ध करके ईसाई मुसलमानों के आक्षेपो के उत्तर विद्या और बुद्धि के आधार पर ही नहीं प्रत्युत उन्हीं की मान्य पुस्तको के आधार पर दिये गये हैं। बाइबिल के वाक्यो और हदीसो के हवालों से पुनर्जन्म की पुष्टि की गई है और तद्विषयक शङ्काओ का समूलोन्मूलन किया गया है। वेद शास्त्र के प्रमाणों, के उद्धरणो, इतिहास ग्रन्थो कवियो और जीवित पुरुषो की साक्षियो और कृमिकीटो के देह परिवर्तन आदि दृश्यों को आवागमन की सार्थकता का साक्षात्कार किया गया है। पारसी मत और बुद्धमत के विचार बतलाकर यूनान के दार्शनिक पिथौगौरस सुकरात, अरस्तू तालीम, श्री साइडूज आदि अनेक योरोपीय विद्वानो के पुनर्जन्मपोषक पचासो प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं इस्लाम के विद्वान और कवियों के वचन—जो बड़े रोचक हैं—पुनर्जन्म की पुष्टि किस प्रकार कर सकते हैं इसका एक उदाहरण हम इस ग्रन्थ से यहाँ उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते। शेख फरीदुद्दीन का कथन है—

हफ्तसद हफ्ताद क़ालिब दीदाअम्।
हमचु सब्ज़ा बारहा रोईदअम् ॥

(पृ० ७५०)

अर्थात् घासपात की तरह मैं हजारो बार पैदा हुआ हूं और ७७० बार मनुष्य-यानि प्राप्त की है।

ऐसे ऐसे अनेक वचन पुस्तक में संग्रहीत हैं, जो उपदेशको के लिये अत्यन्त उपादेय हैं, और पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ाने वाले हैं। हम सर्वसाधारण से इस पुस्तक के अध्ययन की सिफारिस करते हैं।

—:o:—

मृत्युञ्जय दयानन्द

(ले०—श्री बाबूलालजी प्रेम)

—:०—



अब से लगभग ६५ वर्ष की बात है, एक अबोध बालक घर के एक कोने मे खडा हुआ अनिमेष दृष्टि से अपनी मृतभगिनी का देख रहा था। कोमार हृदय संकल्प और विकल्प के पक्ष बांध कर अनन्त की गहरी नीलिमा मे उड़ान भर रहा था। आंखे सूखी हुई थी और विस्फारित सी हो रही थीं। वाणी मूकीभूत थी। माता पिता तथा कुटुम्बी रो रहे थे किन्तु बालक मूलशकर किसी गहरे महार्णव की थाह लगा रहा था। माता पिता ने तो उसे ऐसा नीरस और निष्ठुर देख कर पाषाण हृदय तक कह डाला किन्तु वहा नेत्रो मे जल कहा! वहां तो प्रतप्त झंझानिल बह रहा था जो बडे बडे समुद्रो को सुखा देता है फिर बिचारे नेत्र क्या चीज़ है।

"अरे यह है क्या! जो सुन्दर खिलौना अभी अपनी मजु वाणी से गृह के कोने कोने को मुखरित कर रहा था वह अकस्मात् निस्तब्ध क्यो हो गया? कौनसा यन्त्र बिगड गया? वहा अग प्रत्यंग, पर क्रियाहीन? वही मंजु मुसकान किन्तु चित्रवत् अपरिवर्तनीय! ज्ञात होता है कि कोई वस्तु इस ढांचे मे बन्द थी वही कहीं चालू चली गई। वही श्रोत्रो की श्रोत्र चक्षुओ की चक्षु प्राणो की प्राण और हृदय की हृदय थी। तो फिर चली क्यो गई और गई भी तो कहां? उसने अपने चिरसंघातियो से अपना मुख सहसा कैसे मोड़ लिया? जड़ भरत को तो एक मृगशावक से अल्पकाल मे इतना मोह पैदा हो गया था कि मरते समय तक क्या पुनर्जन्म मे भी उसके मोह जाल में जकड़े रहे। पराई धरोहर से भी कुछ इतना स्नेह हो जाता है कि वापस करते समय मर्मान्तक पीडा होती है। किराये के घर के भी छोड़ने मे एक विचित्र ठेस सी हृदय मे लगती है। ऐसी कौनसी वस्तु है जो मानव-ससर्ग मे आकर ममत्व-पाश से बच सके तो फिर यह कैसी नीरस और हृदयहीन वस्तु थी जो माता के उदर से लेकर आज ११ वर्ष तक इस शरीर के रोम रोम मे रम कर जरा सी मशीन के बिगडने पर इस तरह छोड़ कर चली गई जैसे पक्षी पिंजरा और पथिक मार्ग के वृक्षो को मानो शरीर से यह प्रतिज्ञापत्र (इकरारनामा) लिखा लिया था कि मै इस शर्त पर आने को तैयार हूँ कि प्रकृति में विकृति न होने पावे। प्रकृति मेरी चिरसंगिनी है लेकिन तभी तक जब तक वह विकार शून्य है।"

बालक मूलशंकर के हृदय मे एक क्रान्ति सी मची हुई थी आंखे पथरा सी गई थी वह एक खंभे के सहारे किंकर्तव्य विमूढ खड़ा हुआ था। एक पहर बीता दो पहर बीते कुटुम्बी शव को उठा कर ले गये अन्त्येष्टि करके लौट भी आये किन्तु वह बालक समाधिस्थ योगी की भांति उसी पहेली के सुलझाने मे तल्लीन था। "अच्छा यदि प्रतिज्ञापत्र लिखा भी लिया सही लेकिन लेख्य के प्रतिकूल जाने पर लेख्यकर्त्ता को मालिक एक बार सावधान तो कर ही देता कि "तुम प्रतिज्ञा के बाहर जा रहे हो अब हम अधिक नहीं ठहर सकते"। अस्तु हमें इससे क्या, यह तो स्वामी की कृपा पर निर्भर है कि वह इतनी अनुकम्पा करे या न करे, यदि कहता है तो विशेष अनुग्रह करता है और यदि नहीं करता है तो कोई पाप नही करता है क्योकि वह लेख्यानुगत (हस्व दस्तावेज) कार्यवाही करता है। लेख्यकर्त्ता स्वयं क्यो न सावधान रहे। किन्तु एक बात और भी तो है यदि भगवान यही मरीचिमाली अपना प्रकाश समान रूप से सब पर न डालें तो लोग क्या कहें और उसका स्वरूप भी कैसा हो जाय। ऐ मन! तू कहता है। रिआयत करनी चाहिये। यदि यही सूर्य अपनी किरणें बच्चे पर मधर और स्निग्ध डाले और

इतर वस्तुओ पर प्रचड, यह क्या कभी सम्भव हो सकता है, दो विरोधी गुण एक समान पर कैसे रह सकते है और फिर आज जो सभ्य संसार मे नियम निर्धारित किये गये है तथा किये जाते है वे सब इन्ही विश्व के नियमो पर आधारीभूत होते हैं अनिल अनल सूर्य्य वरुण इत्यादि यही तो इस जाग्रत या स्थूल जगत के Law giver नियम विधायक है यदि इन्हीं मे रिआयत की बू आ जाय तो फिर सृष्टि की क्या दशा होगी"।

यह आन्दोलन कई मास तक अजस्र गति से उस बाल हृदय को मंथन करता रहा। घडा भर चुका था एक ठेस की जरूरत थी, वह प्रतप्त झंझानिल विश्व की समस्त आर्द्रता चूस चुका था आर्द्रा नक्षत्र भी लग चुका था पूर्वी वायु के रूप में पूज्य चाचा जी बीमार पड़े, उपचार हुये किन्तु सब व्यर्थ अन्त मे उनका भी जीवन दीप बुझ ही गया। फिर क्या था वह सूखी आखें जो भगिनी की मृत्यु पर प्रज्वलित अगार वत् हो रही थी, आज प्रावृट को सरिता हो उठीं। चीत्कार मार मार कर खूब रोये कदाचित इनके समान घर मे कोई नहीं रोया। इस घटना ने ऐसी ठेस दी कि सारे बन्धन ढीले पड़ गये। सब लोग रो पीट कर शान्त हो चले किन्तु मूलशंकर अब की बार और भी गहरे वात्याचक्र में पड़कर सोचने लगा। "हाँ, अब मैंने जाना, यह प्रकृति बडी ही नहीं है क्षण क्षण मे अनेक रूप बदलती है इसके मायावी चरित्रो को जीवात्मा ने खूब जाना है तभी यह बात है कि शरीर मे लेश मात्र भी विकार आते ही या प्रकृति मे विकृति की गन्धि आते ही इससे तल्ला तोड़ देता है। जब यह स्वय अपनी प्रतिज्ञा पर नही अटल है तो यह जीवात्मा चेतनस्वरूप जीवात्मा भगवान का सनातन अंश जीवात्मा अपने व्रत से कैसे डिग जाय। यह सदैव अपने माया पाश मे फंसा कर जीवों को दुःख में डालने का प्रयत्न करती ही रहती है और प्रत्येक स्थान पर अपने भिन्न भिन्न रूप बदलती है देखोः—

इसी भ्रान्ति ने विपुल रूप धरि,
किया विश्व को है हैरान।
जल मे भंवर, ववंडर यम मे,
और उदधि में बन तूफान॥
कभी राज्य में क्रान्ति रूप धरि,
विचलित किये लोक नर पाल।
अरी भ्रान्ति नर रक्त पियासी!
तेरा बना नहीं क्या काल?

अरी भोली! तुझे क्या होगया है? भला कहीं अग्नि स्फुल्लिंग रूई मे छिप सकते हैं, सहस्रार्चि कहीं श्यामल मेघ में विलीन हो सकता है और अन्धकार कहीं प्रकाश को उदरस्थ कर सकता है? तेरे बड़े लड़के वृत्रासुर ने एक बार इन्द्र को हड़प कर लिया था इससे तूने समझ लिया कि अब क्या है जब देवराज ही उदरस्थ होगये तो दो देवो को तो चुटकी बजाते ही चुन लूंगी किन्तु यह लीला तो तुझ मायाविनी के लुभाने के लिये मघवा के सप्तरंगी धनुष की छाया मात्र थी। वज्र की एक चोट ने उसके फुचड़े उड़ा दिये। फिर भी तुझे अभिमान है?। तो इस परिवर्तन का नाम ही तो जीवन और मृत्यु है और इस परिवर्तन को सानुकूल करने के लिये इन्द्र (जीवात्मा) के पास वज्र की अमोघ शक्ति है। तू क्या कर सकती है तेरी शक्तियाँ क्या कर सकती हैं?

स्थित प्रज्ञ को दसो इन्द्रियों की क्या पीड़ा। अच्छा तो ले मै व्रत करता हूं "ऐ सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र मरुद्गण [मै० गु०] सुन लो मैं "मृत्युञ्जय" प्राप्त करूंगा इस विसासिनि प्रकृति के कोपट्य मय रहस्यों का भंडाफोड़ करूंगा।"

बालक मूलशंकर को अब घर में रहना कठिन था भला युद्ध छिड़ जाय और सेनानी घर में सुख की नींद सोवे। उस व्रती ने यह सोचा कि भौतिक सामग्री तो सब जुट जायगी, लेकिन युद्ध भयंकर है किसी बड़ी शक्ति का सहारा लेना पड़ेगा। पार्थ के पास देखो न, क्या कमी थी सेना नहीं थी कि शस्त्रास्त्र नहीं थे या सव्यसाची करों में बल नहीं था लेकिन फिर भी मैदान मे आते ही हाय हाय करने लगा 'गांडीव हाथ से छूटा जा रहा है त्वचा जली जा रही है मुख सूख रहा है रोमाञ्च हो रहा है; अरे मोहन! मुझे थामो मैं गिरा मेरा माथा घूम रहा है फिर न

जाने क्या क्या बकने लगा कभी योग कभी सांख्य। उस समय श्रीकृष्ण ही ऐसे थे जो ऐसी भीषणावस्था Critical Time में उसे उबारा और 'क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप' का पाठ पढ़ा कर समर के लिये उद्यत किया। देखा न सब अस्त्र शस्त्र धरे रह गये। भौतिकवाद की अधिष्ठात्री या आदि जननी से तो युद्ध, फिर भौतिक शस्त्रो से उपकरणो की सहायता द्वारा, कहां तक न पसीजेंगे और माँ का पक्ष न लेंगे। यह सब ऐन मौक़े पर धोखा दे जायगे। तो कहां चलना चाहिये ? पिता जी ने एक बार बतलाया था कि देवाधिदेव भगवान त्रिलोचन ही ऐसे कार्य्यों मे सदैव सहायता देते है। उनके एक नेत्र मे सृष्टि दूसरे में पालन और तीसरे मे प्रलयकरी शक्ति है। दो समय समय पर सूर्य चन्द्रवत् खुलते मुंदते रहते हैं एक साथ नही तीसरा नेत्र भक्तों के लिये या कल्याण के लिये या 'शम्' के लिये सुरक्षित Reserved रहता है तो फिर उसी की आराधना करना चाहिये फिर देखूं कौन भला अम्बक की आंखो मे धूल भौंकता है।"

ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो मुंक्षी माऽमृतात्॥
यजु० ३। ६०

× × × ×

मेरे एक विद्यार्थी ने प्रश्न किया 'क्या महर्षि दयानन्द ने सचमुच मृत्यु को जीत लिया था। मैंने तो चिर कौमार व्रती भीष्म और महात्मा बुद्ध तथा अन्यों के लिये भी यही सुना लेकिन मैं तो किसी को अब इस पृथ्वी पर उपस्थित नहीं देखता हूँ मैं तो यही समझता हूँ कि सब काल की कराल डाढ़ो में विला गये।" प्रश्न बिलकुल ठीक है ऐसे प्रश्न कुछ सिद्ध तत्ववेत्ताओ को छोड़ कर प्राय. सभी के मुंह से सुनने में आते हैं। इसके उत्तर के लिये सबसे पहले 'मृत्यु' शब्द पर विचार करना चाहिये। यह पूर्व ही बतलाया जा चुका है कि प्रकृति के परिवर्तन का ही नाम जीवन या मरण है। यहपरिवर्तनत्व प्रकृति का नैसर्गिक गुण है नैसर्गिक गुण कभी नष्ट नहीं हो सकता है यह बात निर्विवाद है। अब प्रश्न यह है इस स्वाभाविक गुण के अन्दर जीवन और मृत्यु का रहस्य भरा है और यह अकाट्य और अखण्ड्य तथा अनाशमान है तो फिर मृत्युञ्जय केवल कवि कल्पना है। यह वस्तुत है कुछ नहीं, मन बहलाव है या केवल ढोंग है। लेकिन ऐसा नहीं है। यह मृत्यु या परिवर्तन वास्तव में दुखद नहीं है जैसा हम समझते हैं। दुखदाई कोई और ही वस्तु है। यदि हमारे परिवर्तन Transf के साथ साथ जीवन की समस्त वस्तुयें भी चाहे वह मानसिक सृष्टि ही में क्यों न हो वे Transferred परिवर्तित होजायं, Transfer परिवर्तित वस्तु या प्राणी को यह कहने का अवसर न मिले हाय अमुक वस्तु हमसे अलग हो गई, इसके साथ ही साथ यह सब कुछ तो हो किन्तु परिवर्तन नाम के साथ न हो एक बारगी कोई तिलस्म सा हो जाय; ऐसी अवस्था में दुख न होगा। प्राणी यह सब क्यो चाहता है। इसीलिये न, कि वह उन समस्त वस्तुओ के ममत्वपाश में जकड़ा हुआ है। यह पाश दूर हो सकता है। डाक्टर लोग तक इस पाश को शल्य चिकित्सा के समय सम्मोहनद्वारा द्वारा कुछ समय के लिये ढीला कर ही देते हैं। किन्तु यह उपाय अस्वाभाविक तथा हानिप्रद है। सारांश यह कि मृत्यु या परिवर्तन से प्राणी को दुःख नहीं होता है। दुःख की जड़ यही मोह ममत्व है और इसका निराकरण हो सकता है। उक्त लिखित मृत्युञ्जय महामन्त्र इस ममत्वपाश या मोह बन्धन और देहाभिमान से छूटने का बड़ा सुन्दर साधन बतला रहा है। 'यजामहे' देवपूजा संगतीकरण दान में यज धातु प्रयुक्त होता है। त्र्यम्बकं अर्थात् तीन नेत्रों का समाहार या तीन नेत्र हों जिसके अर्थात् भगवान शंकर या ज्ञानी। दूसरा अर्थ यह भी है, अम्बा अम्बालिका अम्बिका यह तीन हवनीय ओषधियाँ हैं यह प्राय. एक ही स्थान पर उगती हैं इनके समाहार को भी त्र्यम्बक कहते हैं इसमें प्राणदा शक्ति है यथा:—

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा।
अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके नामानयति कश्चन॥

यजु०

अर्थात् हे अम्बे, अम्बिके, अम्बालिके! हम प्राण अपान व्यान के लिये तुमको होम करते हैं। यदि उक्त मृत्युञ्जय मन्त्र की देव पूजा, संगति करण, दान और अम्बक के इन दोनों अर्थों से संगति लगाकर अर्थ भावना की जाय और तदनु सार जीवन पायन किया जाय तो निःसंदेह मनुष्य मृत्यु के बन्धन से पके खरबूजे की भाँति छूट जायगा। जब हम 'देव पूजा' से यजामहे का अर्थ लगाते हैं तो यह होता है कि हम तीनो हवनीय औषधियों अर्थात् अम्बा अम्बिका अम्बालिका का जो कि सुगन्धित और पुष्टिकारिणी हैं, हवन करते हैं जिसके प्रभाव से हमारे प्राणापान व्यान शक्ति सम्पन्न होकर हमें आयु प्रदान करें। और यह वायु हमारे अधिकार में होकर इच्छा मृत्यु के देने हारे हों। अग्नि शिखायें किस प्रकार यजमान को ऊपर से आइये आइये! कहती हुई स्वर्ग लोक को ले जाती है। मुण्डकोपनिषद् के एक सुन्दर मन्त्र से ज्ञात होता है:—

"एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभि र्यजमानं वहन्ति" अग्निहोत्र से शरीर और प्राण पर स्वतः प्रभाव पड़ता है और इसकी उपयोगिता देखते हुए हमारे ऋषियों ने इसको दैनिक आचर्यों Daily routine में क्यों रख दिया यह सब लिखना विषय बाह्य है। देव यज्ञ में पितरों की पूजा भी है। सक्षेप में पितृपूजा का महात्म्य यह है:

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोऽपि सेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्॥

अर्थात् पितरों की पूजा से चार चीजें बढ़ती हैं। आयु, विद्या, यश और बल। इसमें भी आयु और बल मृत्यु बन्धन छुड़ाने वाला है व्रती भीष्म इसके उदाहरण है। अब संक्षेप में संगतिकरण की संगति लगाकर यह भाव निकलता है —

त्र्यम्बक

अ	उ	म
सत्	चित्	आनन्द
भूः	भुवः	स्वः
ऋक्	यजुः	साम
ज्ञान	कर्म	उपासना
जानना	पुरुषार्थ करना	प्राप्त करना

उक्त स्वरूपवाले त्र्यम्बक की उपासना करता हूं जो कि सुगन्धित (कीर्ति) और बल देने वाला है जो मुझे मृत्यु बन्धन से पके खरबूजे की भाँति छुड़ा दे। यह भाव ब्रह्मयज्ञ का द्योतक है। जो भूर्भुवः स्वः रूपी भगवान का ध्यान करता है उसका माहात्म्य अथर्ववेद के एक मन्त्र में इस प्रकार है—

ओ स्तुतामया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं, बलं, कीर्तिं, पशुं, द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।

अर्थ सीधा है। यह समस्त वस्तुयें मिलकर ब्रह्मलोक की गति मिलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन की श्वास प्रश्वास में प्रत्येक क्रिया कलाप के साथ तीनो दशाओं मे त्र्यम्बक का जाप करते है वही बन्धन से छूट जाते है। तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीराः तेषाᳫ सुखशाश्वतं नेतरेषाम्।

एक संग खाने में दोष

एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्टी आर्य के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड जाताहै वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है सुधार नही

हमारे कारखाने के विषय में

सिविल सर्जन महोदय की राय मैंने सुख संचारक कम्पनी के कार्यालयका निरीक्षण किया और पंडित जी कृपा करके मुझे भिन्न २ विभागों को कार्य करते हुये दिखलाया कार्यालय का सब कार्य प्रसशा योग्य तथा सुव्यवस्थित है—पंडितजी के भिन्न २ विभागों के कार्य के ज्ञान तथा कार्य की उत्तमता, स्वच्छता, एव सुव्यवस्था ने मुझेवरा प्रभावित किया—इस कम्पनीने कई विशेष औषधियों का निर्माण किया है और मुझे उनके निर्माण की स्वच्छ विधि एवं विशुद्धता से बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई उस दिलचस्प मुलाकात के लिये मैं पंडित जी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ एफ डब्यू होम्स मेजर-आर-एम-डी सिविल सर्जन

आर्यमित्र पाठकों की भेंट

अपने जीवन की प्रेमवटी

महाशक्ति प्रदाता फकीरी प्रयोग

प्यारे आर्यमित्र के पाठको आज में आपको सेवा में एक ऐसी भेंट अर्पण करना चाहता हूं जिससे निराश व्यक्तियों की आत्मा में भी एक नया जीवन पैदा हो जायगा। इस से पहिले कि मैं वह भेंट अर्पण करू कुछ अपने जीवन की घटनाएं और उस भेंट के गुण आपके सन्मुख रखना चाहता हूं।

यदि आप निर्बल और कमजोर हैं तो एक बार इसको बना कर जरूर सेवन करें इसके सेवन से सात दिन के अन्दर बदन मे खून दौड़ता हुआ नजर आयगा और बीस रोज में चेहरा कुन्दन की भांति चमकने लगेगा और पूरे चालीस रोज मे प्रमेह के सभी रोग यानी जिरियान एतलाम और जियाबतीसा जैसे बुरे रोग भी दूर होकर मुर्दा आत्माओ मे भी एक नया जीवन आजाता है और अपूर्व बल प्राप्त होता है जिसके सबूत मे बड़े बड़े डाक्टरो हकीमो और वैद्यो के प्रशंसा पत्र मौजूद हैं। इसलिये हम आर्यमित्र के प्रेमियो से अनुरोध करते हैं कि वे एक बार इस प्रयोग को बनाकर जरूर सेवन करे और हमारे परिश्रम को सफल बनावे। यह प्रयोग हर मौसम मे हर व्यक्ति के स्वभाव के लिये एकसा लाभ दायक है। अब मैं अपने जीवन की चन्द घटनाये आपके सामने रखना चाहता हूं ताकि आर्यमित्र प्रेमियो को पता चल जाय कि मेरी दुखित आत्मा को किस प्रकार शांती प्राप्त हुई और मैंने लाभ उठाया। मैं एक जिमींदार का लाड़ला बेटा था कुसगत के कारण मुझे जिरियान और प्रमेह रोग हो गया पहिले तो एक दो साल मैंने लोकलाज के कारण अपना भेद छिपाये रक्खा परन्तु रोग ने भयानक सूरत अख्तयार करली अब घबड़ा उठा संसार चारों ओर अंधेरा मालूम होने लगा तब मेरी आंखें खुली।

रुपया पैसा की मेरे यहाँ कमी न थी इलाज शुरू किया गया बड़े बड़े डाक्टरो वैद्यो हकीमो से दवाऐं मगाई। और खाई मगर रोग बढ़ता गया ज्यो ज्यो दवा की आखिर मामला यहाँ तक आ पहूंचा कि मैं आत्महत्या की सोचने लगा और इस दुखमय जीवन से मर जाना बेहतर समझने लगा।

हमारे गांव के पास ही एक मील की दूरी पर ईंटो का एक भारी खेड़ा है उस खेड़े पर कभी कभी कोई साधू महात्मा आ जाते हैं कारण वश उसी खेड़े पर काठियावाड़ के एक प्रसिद्ध त्यागी योगीराज आ बैठे और एक झाड़ी में आसन लगाकर ईश्वर चिन्तन में मग्न हो गये। गांव के बालक और युवको ने जब इन्हें देखा तो उन की प्रशंसा गांव में फैला दी कि खेड़े पर एक महात्मा आये हुये हैं जो बड़े तेजस्वी प्रतीत होते हैं यह सुन कर लोगो के समूह के समूह उनकी सेवा मे जाने लगे मैंने सुना तो मैं भी निराशा और आशा को साथ लिये उनके चरणों मे जा उपस्थित हुआ उस तेजस्वी आत्मा के दर्शन करते ही मेरा चित्त गद गद् और प्रसन्न हो गया और नमस्कार कर एक ओर बैठ गया। इतने में मेरी आत्मा विचारो ने घेर लिया। मैं विचारो के अथाह सागर मे गोते खाने लगा परन्तु यह दशा बहुतदेर तक न रह सकी महात्मा जी मेरी शकल और माथे की यह दशा देखकर फौरन ताड़

गये और मेरी ओर इस प्रकार आकर्षित हुये बेटा — तुम बड़े दुखी और निराश मालूम होते हो, यों तबियत कैसी है और तुम्हारे दुखी होने का कारण क्या है।

बस फिर क्या था। जैसे मेरे दिल के घावों को किसी ने छेड़ दिया हो मैं फूट फूट कर रोने लगा। महात्मा ने बहुतेरा समझाया मुझे दिलासा दिया और प्यार किया मगर मेरा दिल न मानता था और जी यही चाहता था कि दिल खोलकर रोऊं किन्तु महात्मा यह दशा देखकर बेचैन हो उठे और मेरे पास आकर मुझे धीरज देने लगे। जब उन्होंने मुझे दोबारा पूछा तो मैंने अपनी बीमारी का सारा हाल उनके सम्मुख रख दिया।

इस पर उन्होंने मुझे आशा दिलाई और कहा बेटा साथ तुम्हारे लिये जो कुछ कर सकता है उससे फर्क न करेगा निश्चय जानो तब मुझे कुछ हौसला हुआ और दिल कड़ा करके मैंने रोना बन्द कर दिया इसके पश्चात् उन्होने एक प्रयोग मुझे बतलाया जिसको बनाकर मैंने सेवन किया और मैं बिलकुल आरोग्य हूं। प्रयोगः—

असली त्रिफला चूर्ण ५ तोला, असली सूर्यतापी शिलाजीत २॥ तोला, असली बंगभस्म ६ माशा, असली सूर्यछाप केसर ६ माशा, असली अकरकरा ६ माशा, असली नैपाली कस्तूरी १ रत्ती, इन सब औषधियों को कूट-छान कर खरल में डालकर ऊपर से शीतलचीनी का तेल २० बूंद, बैरोजा का तेल २० बूंद चन्दन का तेल २० बूंद मिलावें इसके बाद ताजा ब्राह्मीबूटी के अर्क में बारह घण्टे तक घोटकर सब दवाइयों को एक करलें और फिर साया में सुखाकर झरबेरी के बेर की बराबर गोलियां बनालो, बस औषधि तैयार है।

सेवन विधि—एक गोली प्रातः और एक गोली सायंकाल पाव भर गाय के दूध में १ तोला शक्कर मिला कर खायें इसी औषधि के सेवन से २० रोज में आरोग्य हो गया था और अब एक समय व्यतीत हो गया है कि फिर कभी कोई शिकायत नहीं हुई और अब उस परमपिता परमात्मा की कृपा से मेरे तीन बच्चे हैं जो बिलकुल आरोग्य हैं उस वक्त से अब तक मैं यही औषधि बना कर लोगों को दाम के दाम पर दे रहा हूँ जिससे सैकड़ो व्यक्तिओं ने फायदा उठाया है और उनकी आशाओं की पूर्ति हुई है।

यह देख कर उन लोगों ने जिनको अति लाभ हुआ है उस कर्त्तव्य की ओर मेरा ध्यान खिंचा है कि जो महात्माजी ने यह प्रयोग बताते हुए कर्त्तव्य मेरे जिम्मे लगाया था कि जब मैं तन्दुरुस्त हो जाऊं तो इस प्रयोग को संसार की भलाई के लिए समाचार पत्रों में प्रकाशित करदूं, ताकि सांसारिक दुःखी आत्मायें इससे लाभ उठा सकें। इस लिए अब मैंने फैसला किया है कि इस प्रयोग को समाचार पत्रों में प्रकाशित करादूं ताकि संसार की दुखी आत्मायें इससे लाभ उठा सकें।

प्रयोग ऊपर भली प्रकार समझा दिया गया है इसको बना कर लाभ उठावें किन्तु अगर आप इस के बनाने में असमर्थ हों या कारोबार के कारण आपको फुरसत कम मिलती हो या असली चीजें न मिलती हों तो हमसे बनी तैयार औषधि मंगालें, और बनाई उसके आश्चर्यजनक गुण देखें।

यह औषधि वीर्य के पतलापन बीसियों किस्म के प्रमेह पेशाब के साथ चूने की तरह वीर्य का जाना पाखाना के समय धातु का जाना स्वप्नदोष व सूजाक सुस्ती, कमजोरी और नामर्दी जवानी में बुढ़ापे की हालत असली ताकत की कमी सोचने की ताकत का कम हो जाना वगैरह दूर करके अत्यन्त ताकत देती हैं और नस नस में नई जिन्दगी का संचार करती है इस लिए जो भाई इसके आश्चर्यजनक गुण की परीक्षा करना चाहें वह हमसे मंगा कर देखें। कीमत फी शीशी ४० गोली २) और ८० गोली ४)। दवा मिलने का पता—बाबू श्यामलाल जी रईस प्रेम बटी आफिस नम्बर १४२ कंचौसी बाजार, जिला इटावा यू० पी०।

आर्यजगत्

सभा की सूचनाएं

महर्षि दयानन्द और आर्य-पुरुषों का कर्त्तव्य

धर्मवीर पं० लेखरामजी के बनाये महर्षि दयानन्दजी के जीवन चरित्र मे अनेकों बातें संदिग्ध अवस्था मे थीं; जिनके सम्बन्ध मे पूरी खोज न होने के कारण बहुत सी बातें प्रकाश में नहीं आई थीं। श्री देवेन्द्र बाबू ने अपने जीवन के २० वर्ष ऋषि दयानन्द की जीवनी की खोज मे व्यतीत किये और अनेको संदिग्ध घटनाओं को प्रकाश मे लाये। उनकी जीवन भर की सञ्चित सामिग्री को सुप्रसिद्ध स्वर्गीय आर्य्य विद्वान् श्री पं० घासीरामजी एम० ए० एल० एल० बी० ने संकलित किया और इस विशाल जीवनचरित्र को आर्य साहित्य मण्डल अजमेर ने प्रकाशित कर आर्य जनता पर बहुत उपकार किया—चाहिए तो यह था कि यह जीवन चरित्र प्रकाशित होते ही हाथों-हाथ निकल जाता और अब तक उसके २-३ संस्करण प्रकाशित हो जाते परन्तु यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि अभी तक प्रथम संस्करण की ही केवल २॥-३ सौ प्रतियां निकल पाई हैं—ऐसे अमूल्य रत्न के प्रति आर्य जनता की यह उदासीनता शोचनीय है। जीवन चरित्र के महत्व को देखते हुए इतने विशाल ग्रंथ का दाम भी कुछ नहीं है। फिर भी आर्यसमाजों और आर्य्य पुरुषों का ध्यान इस ओर अभी तक नहीं गया। यह बड़े दुःख की बात है। अब मैं प्रत्येक आर्यसमाज व आर्य्य पुरुष से सानुरोध निवेदन करता हूँ कि यदि अभी तक उन्होंने इधर ध्यान नहीं दिया तो अब अपना कर्त्तव्य समझें कि महर्षि दयानन्द के इस प्रामाणिक जीवन चरित्र को लेकर नित्यप्रति स्वाध्याय करें और अपने गृह परिवार में बालक, बालिकाओं और बन्धुओं को सुनावे जिससे उनके भावों मे सुधार हो। मैं पुनः अनुरोध करता हूँ कि इस ग्रन्थ-रत्न की उपेक्षा न करें और शीघ्र इसे मंगाकर स्वाध्याय आरम्भ करदे।

—मदनमोहन सेठ, प्रधान

श्री प्रधान जी सभा का प्रयत्न

वेदप्रचारार्थ हापुड़ तथा देहली से १२५) का संग्रह!

दशहरे की छुट्टियो मे ४ और ५ अक्टूबर १९३५ ई० को श्रीमती आर्यप्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त की अन्तरंग सभा का अधिवेशन मेरठ में हुआ। श्रीयुत रा० सा० बाबू मदनमोहनजी सेठ प्रधान-सभा ने इन दशहरे की छुट्टियो से लाभ उठाकर वेदप्रचारार्थ हापुड़ तथा देहली से धन-संग्रह करने का यत्न किया। इसलिए ६ अक्टूबर को श्री बा० ब्रजनाथजी मित्थल भूतपूर्व मन्त्री आ० प्र० सभा संयुक्त प्रान्त, श्री बा० गदाधरप्रसादजी गवर्नमेन्ट सीनीयर आडीटर और म० विश्वम्भरसहायजी प्रेमी आदि का एक डेपूटेशन हापुड़ पहुंचा—हापुड़ से २२७) का धन नगद प्राप्त हुआ जिसकी सूची नीचे अंकित की जायेगी। तत्पश्चात् श्री प्रधानजी सभा पं० धर्म्मपालजी उप-मन्त्री सभा के साथ ७ अक्टूबर को देहली पहुँचे और वहां के प्रसिद्ध आर्य्य ठेकेदार श्री ला० नारायणदत्तजी, ला० देशबन्धुजी गुप्त डाइरेक्टर "तेज", तथा श्री ला० ज्ञानचन्द्रजी आर्य्य ठेकेदार के प्रयत्न से देहली मे ५००) की प्रतिज्ञायें हुईं जिसमे से ५१) प्राप्त भी हो चुके हैं और शेष धन के शीघ्र प्राप्त हो जाने की पूर्ण आशा है। यह सभा दानदाताओं तथा धन-संग्रह मे सहायता देने वाले सभी महानुभावो की बड़ी कृतज्ञ व आभारी है। श्रीमती अन्तरंग सभा

सुगन्धागार

भारतवर्ष क्या सम्पूर्ण संसार में सुगन्ध का प्रयोग करने के लिए अतर से बढ़ कर कोई वस्तु नहीं है। अनुभव ने यह भी सिद्ध कर दिया कि जो वस्तुयें प्राचीनकाल में इत्र के बनाने के काम में लाई जाती थीं उनसे बढ़ कर और लाभदायक कोई विधि इस वर्तमान काल में नहीं निकली।

यद्यपि विलायत वालों ने बहुत से नवीन आविष्कार किए हैं, परन्तु सुगन्ध के प्रेमियों ने यह भली प्रकार समझ लिया है कि विदेशी सुगन्ध और सेन्ट चित्त और मस्तिष्क के लिये लाभदायक ही नहीं वरन् हानिकारक हैं। इसी लिये बड़े-बड़े विद्वानों और बुद्धिमानों ने इनका प्रयोग बिलकुल बन्द कर दिया है। प्रमाण के लिए केवल अतर की ज़मीन पर ही ध्यान दीजिए तो मलियागिर चन्दन के तेल के सिवाय इत्र की ज़मीन के लिए और कोई वस्तु अच्छी सिद्ध नहीं हुई। यह तेल चन्दन की लकड़ी से खींचा जाता है जिसमें एक मनोहर सुगन्ध होती है और उसमें यह गुण होता है कि दूसरी सुगन्ध को अपने में खींच कर अतर को देर तक सुगन्धित रखने में एक ही है यह उस आने के कारण कोई धब्बा आदि नहीं डालता वैद्यक के अनुसार भी चन्दन का तैल बहुत से रोगों के लिए बड़ा लाभदायक है।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि हम कार्यालय अतर में नाना प्रकार के अतर व सुगन्धित तैल इत्यादि शुद्धता और निपुणता के साथ बनाकर तैयार किए जाते हैं जो अतर के व्यापारियों व अन्य खरीदारों को भेजे जाते हैं।

हमारा कार्यालय २४ वर्षों से हिन्दुस्तान और गैर मुल्कों में उत्तमोत्तम अतर और सुगन्धित तेल इत्यादि भेज कर आप लोगों की सेवा कर रहा है।

अतर—गुलाब केवड़ा मोतिया, हिनामुश्की, मुश्क अम्बर और सुहाग प्रति तोला १०) ८) ४) ४) २) १) ॥) है।

अतर—चमेली (मालती) जुही, चम्पा, मौलसरी, केतकी मल्लिका पारिजातक, खस, आम, नरगिस, नारंगी, केवड़ा, मिट्टी, गुलहिना (मेंहदी) और मजमुआ इत्यादि प्रति तोला ८) ४) ४) २) १) और ॥) है।

रूहें—रूह गुलाब ८०) व ६० तोला, रूह, चमेली, केवड़ा २०) तोला, रूह खस और पानड़ी १०) ८) ४) ४) २) और १) तोला। अतर अगर पुराना (ग़ीं) २०) तोला नया ४) तोला, असली कस्तूरी ३२ भरी केसर उत्तम २) तोला, अम्बर ॥) तोला।

सुगन्धित तैल—चमेली, बेला, गुलाब, केवड़ा, चम्पा और मौलसरी प्रति सेर २०) १०) ८) ४) ४) २) और १॥) आम नारंगी, सन्तरा, मसाला आंवला, इत्यादि ४) ४) २) और १॥) सेर है। गुलाबजल व केवड़ा जल ४) ४) २) १) और ॥) सेर है।

तम्बाकू सुगन्धित खाने—पत्ती मुश्की लाल, का ी प्रति सेर २) १॥) और १) पीली पत्ती जाफरानी कस्तूरी, केसर, चांदी के वर्क इत्यादि युक्त १६) ८) ४) प्रति सेर यही सादा सुगन्ध २) और १॥) सेर तम्बाकू दाना मुश्की ८) १) और १॥) सेर।

नोट—हमारे कार्यालय का बना कुल माल बड़ी तोल यानी १२ माशा का तोला और ८२) भर के सेर से भेजा जाता है।

पता:-पं० बाबूलालशर्मा, शर्मा परफ्यूमरी शर्मा भवन कन्नोज यू०पी०।

के अवसर पर सभा के सुयोग्य उपप्रधान श्री प० रासबिहारीजी तिवारी ने भी १००) आ० स० लखनऊ (गणेशगंज) की ओर से वेदप्रचारार्थ प्रदान किये। सभा आ० स० लखनऊ तथा विशेषत: तिवारीजी को धन्यवाद देती है। सितम्बर के साथ सभा का वर्ष समाप्त होगया परन्तु अभी तक आर्य्य पुरुषो ने अपने कर्त्तव्य पालन की ओर यथोचित उद्योग नही किया—यदि सब आर्यसमाजो तथा अन्तरग सभासद महानुभाव सभा की वर्तमान शोचनीय आर्थिक अवस्था को दृष्टि मे रखकर थोडा थोडा भी प्रयत्न करें तो आर्थिक चिन्ता से मुक्ति लाभ करके सभा वेदप्रचार आदि का समुचित प्रबन्ध कर अपने कर्त्तव्य को भली प्रकार सम्पादन कर सकेगी इसमे सन्देह ही क्या है। आशा है कि आर्यसमाजे और आर्य पुरुष अपने कर्त्तव्य का शीघ्र ही पालन करेगे और सभा को आर्थिक चिन्ता से मुक्त करदेवेगे।

—धर्मपाल विद्यालकार।

मन्त्री तथा अधिष्ठाता उपदेशक विभाग

सूचनाएं

(१)

सयुक्तप्रात आगरा व अवध की आर्यसमाजो के मन्त्री महानुभावों तथा आर्य भाइयों की सेवा मे निवेदन है कि वे प० क्षेत्रपाल जी शर्मा अवैतनिक उपदेशक तथा म० मौहरसिह जी अवैतनिक उपदेशकों को सभा सम्बन्धी किसी मद्द का धन न दे। क्योंकि अब वे सभा के अवैतनिक उपदेशक नहीं रहे।

(२)

"चेलेन्ज का उत्तर,,

"दिवाकर" २३ सितम्बर १९३५ ई० पृष्ठ २ कालम ३ में आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० के नाम एक 'चेलेंज' शीर्षक लेख छपा है जो जनता में भ्रम फैला सकता है। अत: सर्व आर्य समाजों तथा आर्य जनता को सचेत किया जाता है कि वह भ्रम में न पड़े। सभा ने आर्य समाज शाहजहांपुर पर कोई मुकद्दमा दायर नहीं किया। भला सभा अपनी शाखा अर्थात् सम्बन्धित आर्य समाज पर जो सभा की आज्ञाओ का पालन करती है कैसे कोई मुकद्दमा अदालत में दायर कर सकती है और उसको ऐसा करने की आवश्यकता ही क्या होगी? हां, सभा के नियमो का उल्लघन करने वालो, सभा और समाज के प्रतिष्ठित, अनुभवी सज्जनों, साधुओ में भी अश्रद्धा रखने वालो का सभा ने आदर नहीं दिया और न देही सकती है। नियम पालन ससार का प्राण है और नियम उल्लघन अहित का कारण।

पीतमलाल मन्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा सयुक्त प्रात

आर्यसमाजों को आवश्यक सूचना

आर्यमित्र में मैंने एक विज्ञप्ति इस अभिप्राय से निकाली थी कि यदि आर्य समाजे धन सीधा कोष भेजें तो हिसाब का लेखा रखने मे सुगमता तथा सुभीता रहे— इसमें उपदेशकों पर अविश्वास का भाव बिलकुल न था। परन्तु अनुभव से यह प्रतीत हुआ कि न तो समाजो ने धन कोष को ही भेजा और मेरी विज्ञप्ति को कारण बनाकर न उपदेशको को ही दिया। इससे कार्य सचालन में बहुत असुविधा हो गई। अत सब समाजो से निवेदन है कि वे कोटिधन तथा दशाश तो केवल कोष म ही सीधा भेजे, परन्तु और सब धन वेद प्रचार सम्बन्धित सभा के उपदेशको को भेजे। उपदेशको को भी सूचित किया जाता है कि केवल दशाश को छोड़कर और सब सभा का प्राप्तव्य तथा वेद प्रचार सम्बन्धित धन अधिक से अधिक एकत्रित करने का प्रयत्न करें।

निवेदक— आनन्दस्वरूप

कोषाध्यक्ष, आर्य प्रतिनिधि सभा

यू० पी० मेरठ।

सार्वदेशिक सभा की घोषणा

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा का अधिवेशन ता० २९-६-१६३५ को दिन के २ बजे से श्री महात्मा नारायण स्वामीजी महाराज के प्रधानत्व में बलिदान भवन (देहली) मे हुआ अधिवेशन मे सर्व श्री महात्मा नारायणस्वामीजी, आचार्य रामदेव, स्वामी स्वतन्त्रानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, पं० धुरेन्द्र शास्त्री, प० चन्द्रशेखर, बा० श्रीराम, ला० नारायणदत्त, ला० ज्ञानचन्द, पं० चमूपति, प्रो० सुधाकर और ला० देशबन्धु ये १२ सज्जन उपस्थित थे । अधिवेशन मे अन्यान्य विषयो के अतिरिक्त श्री पं० बुद्धदेव जी का विषय महत्वपूर्ण था उस अधिवेशन मे पंडितजी स्वयं उपस्थित हुए। पंडित जी ने अपना वक्तव्य दिया। पंडित जी के सम्बन्ध में अंतरंग सभा के प्रस्ताव सं० १२ ता० ११। ८। ३५ के द्वारा निम्न निश्चय किया गया था:—

इस सभा की सम्मति मे हैदराबाद (दक्षिण) मे शास्त्रार्थ करते हुए पं० बुद्धदेव जी ने ऋषि दयानन्द के चित्र से जो तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया है वह धर्म, नीति, शिष्टाचार, राजनियम जिस किसी दृष्टि से देखा जाय सर्वथा अनुचित है और विशेष कर एक आर्य्य उपदेशक की ओर से उसका होना अत्यन्त निन्दनीय है। इस सभा की सम्मति मे पं०बुद्धदेव को पश्चात्ताप करना चाहिए।" उस पर विचार करने के बाद इस अंतरंग ने निश्चय किया:— " हैदराबाद में किए गए शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में पं० बुद्धदेव जी का वक्तव्य सुना गया। पण्डित जी ने अपनी सफाई में कहा:— (१) उनसे यह कार्य असाधारण अवस्थाओ में हुआ है । (२) सामान्यत. उन का यह व्यवहार नीति तथा शिष्टाचार के विरुद्ध है और जो उन्होंने अत्यन्त दुःखपूर्वक किया है और आगे को उसे कभी नहीं दुहरावेंगे। (३) सभा के उपर्युक्त नि० सं० १२ तिथि ११-८-३५ के प्रस्ताव मे प्रयुक्त हुए "धर्म" शब्द से उनके विचार मे भ्रान्ति पैदा हो रही है ।

निश्चय हुआ कि सभा पंडित जी के इस विनम्र वक्तव्य तथा विश्वास दिलाने को पर्य्याप्त समझती है और घोषणा करती है कि सभा के पूर्व स्वीकृत प्रस्ताव मे "धर्म" शब्द विस्तृत अर्थो मे ही प्रयुक्त हुआ है। सभा सब आर्य्य पत्रो तथा आर्य्य समाजों को आदेश करती है कि अब यह वाद विवाद सर्वथा बन्द कर दिया जावे। मन्त्री

--आ० स० चिचौली (बेतूल) के उत्सव में स्वामी सत्यदेवजी ने महत्वपूर्ण भाषण दिये। --शरशोदे।

—दयानन्द वेद विद्यालय देहली पञ्चकुइयां रोड से हटकर किंग्स् वे दिल्ली पर आगया है।

—आचार्य।

—दशहरे पर आ० स० बस्ती के प० तिनकूलाल ने आ० स० डुमरियागंज में प्रचार किया।

—भिणाय (अजमेर) निवासी श्रीयुत कन्हैयालालजी आर्य की सुपुत्री का नामकरण संस्कार भिषगाचार्य प० ईश्वरदत्तजी मेधार्थी विद्यालंकार ने कराया।

—आ०स० उमरी (गोरखपुर) द्वारा इन्दुपुर (गोरखपुर) के रामलीला के मेले में प्रचार तथा उत्सव धूम धाम से १० से १३ अक्टूबर तक मनाया गया। जनता पर वैदिक सिद्धान्तों का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। —मन्त्री

--दोहद में ७ अक्टूबर को १७ यादवों को प० रामदेव मिश्र आर्य पुरोहित ने यज्ञोपवीत दिये।—मन्त्री।

--आ० स० बहेड़ी की तरफ से स्थानीय रामलीला के मेला पर वैदिकधर्म का प्रचार बड़े उत्साह पूर्वक हुआ। —मन्त्री

--आर्यकुमार सभा हसनगंज (पार) लखनऊ का उत्सव डालीगंज में ३० सितम्बर से २ अक्टूबर तक मनाया गया। प० विद्यानन्द प० बिहारीलाल काव्यतीर्थ, स्वामी त्यागानन्दजी कु० सुखलाल के व्याख्यान हुए। मौलवियो की शंका का समाधान प० विद्यानन्दजी ने किया। --मन्त्री

—आ० स० खुदागंज (शाहजहांपुर) का ८ से ११ अक्टूबर तक उत्सव मनाया गया और प० प्रभुदयाल स्वामी ध्रुवानन्द कु० धर्मराजसिंहजी के प्रभावशाली भाषण और श्री जोरावरसिंह प० ठाकुरदत्त के प्रभावशाली भजन हुए। प्रभाव अच्छा पड़ा। —मन्त्री

--प० यशपालजी शास्त्री का वैदिक सभ्यता पर आ० स० कोपागंज (आजमगढ़) में प्रभावशाली व्याख्यान हुआ।

—आ० स० मसेवी (मुरादाबाद) की ओर से श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी "बेधड़क" की अध्यक्षता में प० शकुनचन्द्रजी मिस्त्री डींगरपुर के पुत्र का जातकर्म तथा नामकरण संस्कार उपमन्त्री के रावदेवजी ने कराया और ५) दान में प्राप्त हुए।

—बिहार सरकार के प्रचार विरोधी के सर्क्युलर का निम्न समाजो ने प्रस्तावो द्वारा तीव्र विरोध किया है— आ० स० चांद चौरा (गया), आ० स० फेरोहेडी (सहारनपुर)।

--महाविद्यालय सिकन्दराबाद ने प० काशीनाथजी काव्यतीर्थ की मृत्यु पर शोक प्रस्ताव भेजा है।

--शोक है कि प० वेदप्रकाश स्नातक फैजाबाद का १८ सितम्बर को देहान्त होगया। ईश्वर मृतात्मा को शान्ति और परिवार को धैर्य प्रदान करें।--मन्त्री

—विजयादशमी पर आ० स० इटावा द्वारा कविराज रत्नाकरजी शास्त्री की कथा सप्ताह भर बड़ी प्रभावशालिनी हुई। इसी प्रकार आर्यकुमार सभा मुट्ठीगंज प्रयाग, आ० स० फैजाबाद, आ० स० बल्हारपुर आ० स० मसेवी (मुरादाबाद) आ० स० खुर्रमपुर, अमिला (आजमगढ़) ने भी प्रचार आदि व्यवस्था की।

सार-सूचनाएं

अलीगढ़ जिला की सभाओ से सूचना।

अलीगढ़ प्रांत की समस्त समाजो के सभासदो की सूची तथा आर्य्यसमाज का व्यौरा मन्दिर पाठशालादि का जिला सभा के दफ्तर मे भेजने की कृपा करें और अपने यहां के नाम, पुत्र पुत्रियो आयु सहित की संख्या आयु और शिक्षा सहित तैयार करले और उसकी लिपि सभा को भेजदे। यदि कोई बालक शिक्षा नहीं पाता है तो उसका कारण तथा उसके प्रति स्थानीय समाज ने क्या किया, यह भी लिखा जाना चाहिये। श्री पं० गुरुदत्त जी आयुर्वेद शास्त्री के ११—६—३५ की अन्तरंग मे सर्व सम्मति से स्वीकृत हुये प्रस्तावो के अनुसार उपर्युक्त सूचना आवश्यक हैं। साधु आश्रम पुल काली नदी हरदुआगंज की रजतजयती के अवसर पर अलीगढ़ जिला सभा का साधारण अधिवेशन १० नवम्बर को दोपहर के बारह बजे से होगा। अलीगढ की समस्त समाजो को अपने प्रतिनिधि उत्सव मे भेजने चाहिये और उनकी सूचना मंत्री को दे देनी चाहिये ताकि कार्य्या नियमपूर्वक हो सके। इस अधिवेशन में हिसाब, आगामी वर्ष के लिये पदाधिकारियो का निर्वाचन तथा अन्यान्य विषय होगे। रामप्रसाद आर्य्य

—मेरे सहसवान (बदायूं) से हाथरस जाने के कारण उपदेश विभाग आर्य उपप्रतिनिधि सभा, जिला बदायूँ का कार्यालय वार्षिक निर्वाचन तक पं० रामस्वरूप जी शर्मा सहायक अधिष्ठाता उपदेश विभाग के पास आर्यसमाज दयानन्द सेवा आश्रम बदायूँ मे रहेगा। -अनन्तराम

आर्य्य सम्मेलन

साधु आश्रम हरदुआगंज की रजत जयन्ती पर ता० १० नवम्बर की रात्रि को रायसाहब श्रीमान मदनमोहन जी सेठ प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, यू० पो० के सभापतित्व मे आर्य सम्मेलन होगा। आर्य्य बन्धु इस महोत्सव मे सम्मिलित हों और आश्रम की रमणीक भूमि तथा सत्संग से लाभ उठावे। सम्मेलन के लिए प्रस्ताव पर भेजने की कृपा करे। रामप्रसाद आर्य्य संयोजक

—आ० स० फ्रीलैण्डगंज दोहद के मंत्री श्री पं० वेदमित्र शर्मा महर्षि की जीवनी, विधवा विवाह, अछूतोद्धार आदि पर मार्ग के समाजो में मैजिक लालटेन द्वारा प्रचार करते हुए लाहौर अर्द्ध शताब्दी में पहुंचेंगे। १५ नवम्बर तक पत्र भेजने वाले समाजों मे प्रचार किया जा सकेगा।

—दामोदर आचार्य प्रधान

कृपया पता लगाइये

मेरा लड़का श्रीनाथ उम्र १६ साल का दुबला पतला शरीर का रंग गेहुँआ माथे पर कुच्छदा बूर है। एक हाथ पर ओ३म् लिखा हुआ है कोटे से भाग कर कहीं चला गया मुझको शंका है कि गुड़गांव की अनाथ मंडली में शामिल होकर फिर रहा है। जो इस लड़के को लेकर कोटा मेरे सुपुर्द करेगा उसको आने जाने का किराया व ५) रुपये बतौर इनाम दूंगा। श्रीकृष्ण पटवारी

मारफत श्री गंगाविशन पटेल गूजररोड़

रामपुरा भाटापाड़ा कोटा

फतहपुर जिला उपप्रतिनिधि सभा

(१)

समस्त समाजें तथा अन्य सहायक व हितैषी सज्जनों को सूचना दी जाती है कि पं० राजपाल भजनोपदेशक जिला फतेहपुर की अन्तरंग सभा १३–१०–३५ के निश्चयानुसार उनका कार्य तथा हिसाब व आचार संतोषजनक न होने के कारण पृथक कर दिये गये हैं। अब उनको कोई सभा का हिसाब आदि न देवें।

(२)

एक योग्य भजनोपदेशक की आवश्यकता जिला आर्य उपप्रतिनिधि सभा फतेहपुर को है २०) मासिक तक वेतन दिया जावेगा। प्रार्थना पत्र १० नौम्बर तक लिए जावेंगे केवल आर्य सज्जन जिनका आचरण शुद्ध तथा सात्विक हो स्थानीय समाज के मंत्री के प्रमाण पत्र सहित प्रार्थना पत्र भेजें।

—शम्भूदयाल मन्त्री।

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा दिल्ली

श्री विरजानन्द साधु आश्रम पुलकाली नदी हरदुआगंज की रजत जयन्ती ६ से १२ नवम्बर तक समारोह के साथ मनाई जावेगी जिसमें हिन्दू-सम्मेलन, आर्य सम्मेलन, सर्व धर्म सम्मेलन, अछूत सम्मेलन भी होंगे। साथ ही शुद्धि सम्मेलन ता० ११ नवम्बर को श्री राजाबहादुर कुशलपालसिंहजी की अध्यक्षता में मनाया जावेगा और शुद्ध हुये भाई जिला अलीगढ़, मथुरा और आगरे से बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित होंगे तथा बड़े बड़े नेताओं तथा साधु महात्माओं के शुद्धि विषय पर मनोहर व्याख्यान तथा उपदेश होंगे।

—गौरीशंकर प्रधान मन्त्री।

स्त्री भगाने वाले का पता लगाइये

४–६–३५ ई० को महाबतगढ़ पो० सगड़ी, आजमगढ़ निवासी एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण की स्त्री को जीवनपुर बाजार पो० सगड़ी, आजमगढ़ का रहने वाला तुलसीलाल (कायस्थ) भगा ले गया है। तुलसीलाल का वारंट जारी है। वह कई औरतें इसके पहले भी भगा चुका है और इस मामले में सजा (जेल) भी काट चुका है। वह जहां तहां आर्यसमाज में अपने को आर्यसमाजी बता कर विश्वास पैदा कर लोगों को धोखा देता है। तुलसीलाल का रंग सांवला, मुख लम्बा और क़द औसद पतला, उम्र क़रीब ४० वर्ष है और वह सिलाई का काम करता था। कभी कभी दवा इत्यादि भी बतौर एजेण्ट के बेचा करता है। स्त्री का नाम चन्द्रावती, रंग गेहुंआ, मुख लम्बा और चेचक का कुछ दाग़ है। स्त्री की उम्र क़रीब ३० वर्ष है। उसके कई लड़के घर पर कलप रहे हैं। जिन्हें पता लगे वे पुलिस तथा मन्त्री आर्यसमाज, चौक, आजमगढ़ को सूचना देवें।

—रमाशंकर सेठ।

रजत जयन्ती समारोह

पधारिये! सत्संग का सुअवसर!

श्री विरजानन्द साधुआश्रम, कालीनदी, हरदुआगंज (अलीगढ़) की रजत जयन्ती कार्तिक शुक्ला १४, १५ तथा अगहन कृष्णा १, २ सं० १९९२, तदनुसार ९, १०, ११ और १२ नवम्बर सन् ३५ ई० शनिवार, रविवार, सोमवार तथा मंगलवार को आश्रम की पवित्र भूमि में बड़े समारोह के साथ मनायी जायगी। इस महोत्सव के अवसर पर,

(१) साधु-सम्मेलन, (२) आर्य-सम्मेलन, (३) शिक्षा-सम्मेलन, (४) कवि-सम्मेलन, (५) सरस्वती-सम्मेलन, (६) हरिजन सम्मेलन, (७) हिन्दू-सम्मेलन [भाई परमानन्दजी की आज्ञा से] और (८) सर्व धर्म-सम्मेलन किये जायँगे।

प्रतिदिन प्रात ७ वजे से ११ बजे तक यज्ञ के बाद श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज की उपनिषदों तथा वेदो की कथा होगी। दोपहर के पश्चात् १ बजे से ५ बजे तक सम्मेलन और रात्रि के ८ बजे से ११ बजे तक भजन तथा व्याख्यान हुआ करेंगे। सर्व साधारण की उपस्थिति प्रार्थनीय है।

सुवर्णसिंह मन्त्री।

—पं० द्वारकादत्त जी उपदेशक तथा मा० मननसिंह जी भजनोपदेशक प्रचार के लिये मेला ढाईघाट शाहजहांपुर में प्रचार के लिये जावें।

सत्यव्रत मण्डलाधीश

—आ स० हल्द्वानी का चुनाव २४-११-३५ को दिन के २ बजे आर्य समाज भवन में होगा जो सदस्य बाहर हों कृपया पधारे। उपमंत्री

—आ० स० ज्वालायण सहारनपुर का उत्सव ७, ८, ९, १० नवम्बर के स्थान पर १४, १५, १६, १७ नवम्बर १९३५ को होगा उपदेशक कृपया नोट करले। विशम्भरदयाल शर्मा

—आर्यसमाज अमला (आजमगढ़) पारसाल विजया के अवसर पर स्थापित हुई और धीरे धीरे उन्नति करती जा रही है। प्रतिनिधि सभा (यू० पी०) इधर ध्यान देकर उपदेशक भेजा करे।

—मातादीन मन्त्री।

—मेरठ के समाजो मे मै छैः मास तक तहसील मवाना (मेरठ) मे आर्यसमाज मवाना की अर्ध शताब्दी के उपलक्ष्य मे ग्राम प्रचार का कार्य करूगा, अत आर्य सन्यासियो से प्रार्थना है कि वे इस कार्य मे यहा पधार कर सहायता करे। तथा मेरठ कमिश्नरी का कोई समाज इस बीच मे मुझे न बुलावे।

—रघुवीरदत्त शर्मा, उपदेशक सभा।

—आर्यसमाज कन्नौज को स्थापित ५२ वर्ष हुये। अत जयन्ती उत्सव मे सब महाशयो को मिष्टान्न भोजन कराया गया जो न आ सके थे उनके घर मिठाई भेजी गई और समाज मन्दिर में पबलिक पुस्तकालय सन् १९०३ मे स्थापित हुआ था इसे ३२ वर्ष स्थापित हुये इसकी भी जयन्ती मनाई गई। यह भी दिन दिन उन्नत दशा में होता रहा।

—मन्त्री।

—आर्यसमाज सिकन्दरपुर (बलिया) के उत्सव में ठा० धर्मराजसिह उपदेशक तथा पं० मुकन्दराम प्रचारक के व्याख्यान व भजनों का अच्छा प्रभाव पडा।

—मन्त्री।

—आर्यसमाज पुरैनी (बिजनौर) मे बदरुद्दीन मुसलिम की शुद्धि होकर ज्ञानचन्द नाम रक्खा गया।

—मन्त्री।

—आर्यसमाज सलकिया हावड़ा के प्रधान श्री मिहिरचन्द्रजी धीमान की भगिनी की आकस्मिक मृत्यु पर १३ अक्टूबर को समाज मे शोक प्रकट किया गया।

—मन्त्री।

बहिनों को उपहार

भय्या दौज के उपलक्ष्य में

तुम कितना पढ़ना चाहतीहो और पढ़कर क्या करना चाहतीहो या क्या बनना चाहती हो अथवा क्या पद प्राप्त करना चाहती हो—इन प्रश्नों का उत्तर देनेपर श्रेष्ठ उत्तर देनेवाली बहिनो को पुरस्कार में वैदिक साहित्यमण्डल का पुस्तको का एक सैट पारितोषिक मे दिया जायगा अथवा जो बहिन आर्यमित्र का ग्राहक होना चाहेगी उसे आधेमूल्य मे आर्यमित्र १ वर्ष के लिए दिया जायगा तथा भय्यांक मुफ्त! इसलिए उत्तर १० नवम्बर तक आजाना चाहिए। प्रत्युत्तर चाहने के लिए –)। का टिकट साथ आना चाहिए।

बी० डी० पचौरी

C/o सम्पादक आर्यमित्र आगरा।

शास्त्रोक्त ऋषि प्रणीत औषधें

हमारे यहां बहुत दिनों से आयुर्वेदीय औषधो का बड़ा भारी संग्रह रहता है। सुयोग्य और परीक्षोतीर्ण वैद्यो द्वारा औषधें तयार कराई जाती हैं जोकि कठिन रोगो में अपना अपूर्व फल दिखाती हैं। यह वह शास्त्रीय औषधें हैं जिन्हे हमारे ऋषि, मुनियो ने सहस्रों वर्षों तक परीक्षा करके सिद्ध फलप्रद पाया है। जो अपना कार्य जादू की तरह शरीर पर करती हैं। हमारीऔषधे शास्त्र सम्मत हैं इस बात की हमारी जिम्मेदारी हैं।

चंद्रोदय रस
अथवा स्वर्ण मकरध्वज

वैद्यक शास्त्र में इससे बढ़कर दूसरी औषधि ही नहीं है कोई रोग ऐसा नहीं है जिसपर यह अपना प्रभाव जुदे-जुदे अनुपानो से न दिखाता हो, इसकी प्रशसा हम नहीं करेगे वैद्यो से पूछ लीजिये। मरते के मुँह मे एक रत्ती डाल देने से दो घंटे बाते करसकता है। शरीर को बलवान बनाने की तो यह एक ही दवा है। दाम ४) रु० तोले सिद्ध मकरध्वज दाम २४) रु० तोले षड्गुण बलजारित मकरध्वज दाम ८) रु० तोले

सुवर्ण बसन्त मालिनी

पुरानी खांसी युक्त ज्वर, ऊपर का श्वास चलना, क्षयी जिसमें मनुष्य प्रति दिन सूखता जाता है, उनके लिये यह दवा रामबाण है, यह औषधि सोना मोती आदि बहुमूल्य पदार्थो से बनाई गई है, हमने स्वयं अपनी आंखो से देखा है कि जब क्षीणज्वर (तपेदिक) मे डाक्टरों ने रोगियो को निराश कर दिया है तो इस औषधि ने रोगी को जीवदान दिया है। की १२) तोला।

मोती की भस्म कीमत १५) रु० तोले
स्वर्ण भस्म कीमत ४०) तोले

उक्त दोनो भस्म दिल को ताकत पहुँचाने, फेफड़े को मजबूत करने और नया खून बनाने में अद्वितीय हैं, क्षय की बीमारी फेफड़े के खराब होने और तिसकी कमजोरी से ही होती है अतः इस रोग में यह औषधें अपूर्व चमत्कार दिखाती हैं। क्षय रोग का वजन प्रति दिन घटता जाता है इन औषधों से वजन घटना बन्द होकर बढ़ने लगता है, १—२ सप्ताह में ही गुण दीख पड़ता है। सेवन विधि दोनो की समान है मात्रा १ रत्ती दवा ३ मासे सितोपलादि चूर्ण के साथ शहद अथवा मलाई में मिलाकर दोनो समय खानी चाहिये।

रूपरस (चांदी की भस्म)

यह असली चांदी की भस्म ठीक २ शास्त्रीय रीति से तयार की गयी है निर्बलता की सर्वोत्तम औषधि है। कीमत ४) रु० तोले

कांतिसार (लोह भस्म)

इसके बनाने के परिश्रम के आगे इसका मूल्य कुछ भी नहीं है। श्वास कास, राज रोग क्षयी को जड़ से खोकर शरीर को बलवान बनाता है। की० २) तोले।

अभ्रक भस्म—प्रसिद्ध औषध की प्रशंसा क्या करें कीमत १ न० १०) तोले नं० २ की ५) तोले ३ न० २) तोले।

शंख भस्म

खांसी और हृदय की पीड़ा को दूर करके भूख बढ़ाती है बदहजमी और दस्त की कब्जी को दूर करती है। कीमत ॥) तोले।

वंग भस्म

यह औषधी इतनी प्रसिद्ध हो गई है कि साधारण लोगो मे भी इसका गुण छिपा नहीं रहा, जिन मनुष्यो ने संसार के सुखो से हाथ धो लिये हैं उन्हें यह औषधि फिर कुछ योग्य बनाता है, नाताकती दूर कर शरीर को पुष्ट करती है, कीमत २) रु० तोला। नं० २ की १) रु० तोला।

मूंगा की भस्म

कैसा ही प्रमेह किसी कारण से क्यों न हो इसके सेवन से बिलकुल जाता रहता है, खून को साफ करती है, बदन मे सुर्खी लाती है। कीमत २) तोले।

स्वर्ण माक्षिक भस्म।

बवासीर, कोढ और पांडुरोग के लिये सर्वोपरि औषधि है दाम २) तोला।

निर्वाचन

निम्न आर्य्य समाजों के प्रधान तथा मन्त्री क्रमशः प्रकार हैं—

खुरमपुर— श्री मुन्शीलाल बा० पीताम्बर सिंह;

कटरा प्रयाग—म० सीताराम; म० नित्यानन्द वर्मा

पेण्ड्रा (सी० पी)— म० नारायनदास; म० काली प्रसाद

मदरसा (फैज़ाबाद)— म० वासुदेवलाल, म० जगतूपराम

गाजिया बाद— बा० रामचन्द्र जी; श्री० सांवरमल

बेवर (मैनपुरी)—ठा० कन्हैसिंह; श्री श्याम सुन्दर लाल

भूड़बरेली—डा० कुन्दनलाल; बा० यमुना सहाय मुख्तार

बिजनौर—बा० बाबूराम; डा० सत्येन्द्र

मुहम्मदी (खीरी)—मु० कालीचरण; श्री बाबूराम बजाज।

सीपरी बाजार (झाँसी)—डा० मथुराप्रसाद; श्री हरवंशलाल।

इटावा—बा० कालीप्रसाद; श्री सुधाकर पाण्डेय।

चौक लखनऊ—मा० विश्वनाथ; श्री भगवती प्रसाद

बलिया—बा० रायबहादुरलाल; बा जानकी प्रसाद।

बलरामपुर—बा० मन्नबहादुरलाल, पं सुन्दरलाल।

इस्लाम नगर (वदायूं)—ठा० हेतसिंह; बाबा रामनारायन।

एटा—बा० चन्द्रशेखर; बा० रामबहादुरलाल।

फैजाबाद—बा० मदनमोहन वर्मा; बा० महावीरसिंह।

धामपुर (विजनौर)—बा० रामानन्द; बा० रामनाथ।

पुरैनी (विजनौर)—म० कृष्णसिंह रागी; चौ०ओम्-प्रकाश जी।

बुलन्दशहर—म० गुमानीराम; ठा० बलवन्तसिंह।

बहेड़ी (बरेली)—म० छोटेलाल; म० भद्रसेन।

पंचरांव (मिरजापुर)—स्वामी अभयानन्द; पं चन्द्रदत्त त्रिपाठी।

मुरसान (अलीगढ़)—ठा० देवराजसिंह; पं० राधा वल्लभ जी।

सुदागंज (सहारनपुर)—बा० अयोध्याप्रसाद; म० राधेलाल।

तिलहर (शाहजहाँपुर)—म० देवदत्त; म० नारायणप्रसाद वैद्य।

हर्दोई—म० केदारनाथ; बा० राधेश्याम।

बस्ती—ठा० मूर्तिसिंह वकील; पं० रगनाथ मिश्र।

सम्भल—ला० भजनलाल; अजितप्रसाद।

श्रीनगर—बा० गोविन्द सहाय; बा० चिरंजीलाल।

कालाकाँकर—पं० गयाप्रसाद; बा० लाल कृष्ण सिंह

हमीरपुर—सेठ अयोध्याप्रसाद; श्रीहरिहरप्रसाद।

भवाली—बा० शम्भूनाथ म० कुशाराम।

गोरधनपुर (मिर्जापुर)—म० रामजीदास म० सुरजासिंह।

रामगढ़ (नैनीताल)—बा० प्यारेलाल लाल; म० रूपसिंह।

काँठ (मुरादाबाद)—डा० सीताराम; बा० शिरोमणि।

गोराकलाँ(फतहपुर)—श्री सत्यनारायणलाल; म० कुँवरबहादुर।

दुर्गापुर (मुंगेर)—पं० दीनानाथ सिद्धान्तालङ्कार पं० बद्रीनारायण शर्मा।

काशी—बा० गौरीशंकरप्रसाद; शक्तिसिंह।

पूरनपुर (पीलीभीत)—म० दिलेरामसिंह; म० राय बहादुर मुख्तार।

—:०:—

विदेशी राज्य का कारण

विदेशियो के आर्यवर्त मे राज्य होने का कारण आपस की फूट, मत्तभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन कारना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था मे अस्वम्वर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलत्तरण, वेदविद्याका अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस मे भाई भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है

———

स्त्री रोग की अव्यर्थ महौषधि

देखिये चमत्कारिक औषधि का शक्ति जिसके सेवन मात्र:–स्त्रियों की हर प्रकार की क्षीणता, मासिक धर्म का होने वाली समस्त पीड़ा, पेट वा कमर का दर्द थोड़ा वा कम, वा असमय में मासिक धर्म का हो जाना, ठीक या शुद्ध रक्त का न होना, दुर्बल सन्तति होकर मर जाना वो बांझपने का समस्त दोष इत्यादि समस्त स्त्री रोगों को शीघ्रता से हटा कर स्त्री हृष्ट, पुष्ट होकर तथा सदैव स्वस्थ रहकर दीर्घायु तथा स्वस्थ एव बलिष्ट संतान पैदा करने की शक्ति प्रदान करती है। लाखो रोगी पर व्यवहार इस औषधि का हो चुका है। यह सहस्त्रो ने प्रशंसा की है। परिक्षा प्रार्थनीय है। मिथ्या साबित करने वाले को १०००) इनाम।

सफेद कोढ़ या श्वेत कुष्ठ से क्यों दुखी

ये घृणितरोग जीवन को अत्यन्त दुःखमय एव हीन बना देते हैं। पर निराशा क्यों ? चिन्ता नहीं, वह कितना ही विषैला और अधिक दिन का पुराना हो, हमारी जगद्विख्यात औषध का प्रयोग कीजिये और आपपूर्ण स्वस्थ होते हैं। यह अत्यन्त प्रभावशाली है और तीन बार के प्रयोग से उत्तम फल देती है। फुन्सियाँ नहीं उठतीं। तीस वर्ष से अधिक से लाखों ने परीक्षा की है। शीघ्र आर्डर दीजिये और दुष्ट रोग से मुक्त हूजिये। गलत साबित होने पर ५००) इनाम। मूल्य केवल १॥)

पता–आर्यहितैषी औषधालय नं० २९ पो० कतरीसराय, जि० गया

* कुछ चुनी हुई उपयोगी पुस्तकें *

स्त्री का हृदय

कोई भी उपन्यास प्रेमी फ्रेंच उपन्यास लेखक मोपांसा के नाम से अपरिचित न होगा—उन्हीं की 'वोमेन्स लाइफ' का यह मर्मानुवाद है। पुस्तक इतनी रोचक है कि बिना पूरी किए छोड़ने को जी नहीं चाहता मू० १॥) किन्तु ३० सितम्बर तक १)

बालकोपयोगी सरस साहित्य

सचित्र बाल रामायण	मूल्य ॥।)
मनोरञ्जक कहानियां	" ।—)
नवेली कहानियां	" ।=)
फुलझड़ी	" ॥)
दोनो भाई	" ।)
झेंपू	" ॥)
चन्दा मामा	" ।=)
तपस्वी भरत	" ।—)
दिव्य दयानन्द मू०	१)
ब्रह्म विज्ञान मूल्य	१)

बिखरा फूल

यह एक सामाजिक उपन्यास है। मूल लेखिका है श्रीमती स्वर्णमयी देवी अनुवादक बा० कुञ्जविहारी सेठ। यह प्रत्येक बहिन के पढ़ने योग्य सरस उपन्यास है। इसमे स्त्री हृदय के कोमल भावों का बड़ा सुन्दर विवेचन है—जो पढ़ते ही बनता है। मूल्य १॥)

अन्य पुस्तकें

समुद्र गुप्त	॥=)
अवतार रहस्य	॥।)
हमारा स्वर मधुर कैसे हो	।—)
जीवन के चित्र	१)
मराठो का उत्कर्ष	१॥)
योरपीय सभ्यता का दिवाला	।=)
धर्म शिक्षा बड़ी	१)
मनुष्य शरीर की श्रेष्ठता	।=)

आर्यों के पढ़ने योग्य पुस्तकें

१ नरन शियाला	।)
२ उपनिषद् तत्वम्	१)
३ पञ्चयज्ञ विधिबड़ी	≡)
४ आर्य्यमत मार्तण्ड नाटक दो भाग	॥=)
५ जैनमत की उत्पत्ति और काल का निर्णय	)॥
६ काव्य प्रदीपिका	≡)
७ नानक जीवनी	)॥
८ प्रायश्चित्तादर्श	।)
९ अविद्या के तीन अंग	—)
१० संध्या छोटी	)॥
११ जैनमत की असम्भव बातें	)॥
१२ कलावती उपन्यास	।≡)
१३ सांख्य दर्शन	)॥
१४ कुरान	१)
१५ सृष्टि विज्ञान	२)
१६ पिण्डारी हिमप्रवाह	।)

चाणक्य नीति ।=) विदुर नीति ॥।) हमारे यहां सब प्रकार का छपाई का कार्य उत्तम रीति से किया जाता है। सब प्रकार का टाइप भी नया अभी हाल ही में आया है। एक बार अवश्य परीक्षा कीजिये।

शीघ्र आर्डर दीजिये—डाकव्यय अलग मेनेजर—आर्यमित्र आगरा।

महर्षि की आज्ञा

महर्षि ने नित्य पांच यज्ञ तथा स्वाध्याय करने का आदेश किया है, अतः मण्डल ने आर्यों के लाभार्थ अनेक आर्य वैद्यो के परामर्श से यह अत्यन्त सुग धित, सर्वरोग नाशक ऋतुओं के अनुसार वैदिक रीत्यानुसार **हवनसामग्री** तैयार की है। अव्वल नं० मूल्य १) सेर द्वितीय नं० ।।।) सेर।

आर्य तथा हिन्दुओं के लिये स्वाध्यायकी पुस्तकें

दिव्य दयानन्द १), वीर जवाहर नाटक १,) कुरान मजीद हिंदी१) विश्वासघात ।), कुरान मे परिव तन।।), खूनी इतिहास ।।), भयानक षड्यन्त्र =) स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या और इस्लाम की शिक्षा ।।) कुरान की छानबीन ।-), हिन्दुओ चेतो ॥=) आर्य जाति की पुकार ।=), मलकानों की पुकार ।-), खतरे का घटा =), लेखराम ग्रंथावली ।-), पतित पावन ।।।-), धर्मधुरीण प्रताप ।।), पंच महायज्ञ पीयूष ।=), भीष्म पितामह ।), सुदामा नाटक ।=) जबरदस्त जिमीदार ।), शहीद श्रद्धानन्द ।), भर्तृहरि शतक ।।)

भजनों की पुस्तकें

श्रद्धा सकीर्तन -), भजन सकीर्तन -)।।, कन्या गीत रत्न ।), आर्य भजन कीर्तन ≡)।।, प्रेम भजनावली ≡)।।, मंगलामुखी ।=), ईश प्रार्थना ≡)।, संगीत सागर ≡)॥, पराकौमुदी ।-), धर्मशिक्षा=), सखी देवियां ।।), पोस्टेज व पैकिङ्ग पृथक।

व्यवस्थापक

आर्योपकारक मण्डल कागारौल—आगरा।

प्रसिद्ध विद्वानो समाचारपत्रों द्वारा प्रशंसित

मासिक-पत्र

"संजय"

के महाभारत अंक का मूल्य १।) है जो स्थिर ग्राहको को ३≡) वार्षिक मूल्य भेजने पर या वी०पी० द्वारा मंगाने पर मुफ्त मिलता है। एजन्टो को भारी कमीशन। नमूना मुफ्त। विज्ञापन के रेट सस्ते।

मैनेजर 'संजय' कार्यालय नया बाजार देहली।

भगवान गौतम बुद्ध

(विशुद्ध, सपूर्ण और प्रामाणिक जीवनी तथा पावन उपदेश)

हिन्दू महासभा के सभापति रेवरेंड उत्तमा भिक्षु के इस अनमोल ग्रन्थ पर राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू लिखते हैं—"मैंने उसे बहुत ही चाव और प्रसन्नतापूर्वक पढ़ा। भगवान् बुद्ध के जीवन का इतिहास दुर्भाग्य-वश हम बिहारियों को, संक्षिप्त और पारमार्थिक रूप मे, मिलना कठिन था। आपने बहुत परिश्रम करके इस अभाव की पूर्ति की है, इसके लिये कोटिश धन्यवाद ! आशा है, आपके प्रयत्न से हमारी जनता मे बुद्धदेव सम्बन्धी ज्ञान का प्रसार होगा, और अपनी जन्मभूमि में बौद्धधर्म को लोग फिर से पहचानने लगेंगे।" प्रत्येक देशभक्त हिन्दू को पढ़ना चाहिये। पृष्ठ संख्या ४००, सचित्र, छपाई कागज, उत्तम, जिल्द दर्शनीय, मूल्य २।।)

पता मैनेजर हिन्दू समाज सुधार कार्यालय लखनऊ

हवन कर्ताओं को शुभ समाचार

सफरी हवन हैण्ड बक्स १२ चीजों का पूरा सैट सिर्फ २।।) रु० मे। आर्य राजा होने से शाहपुरा मे यज्ञ हवन का विशेष प्रचार है हमारे यहाँ की संस्थाओ व विद्वानों के आदेशानुसार हवन सामग्री तैयार की जाती है। हवन सामग्री थोक भाव २०) रु० मन और महाराजा धूपबत्ती १) रु० सेर मिलती है। मार्ग व्यय ग्राहकों को देना होगा। अजमेर अर्द्ध शताब्दी पर आने वाले यात्रियों ने हमारी सामग्री की लकर बड़ी प्रशंसा की थी। एक बार अवश्यमेव परीक्षा कीजिये। परिमाण से बने हुये ताँबे के हवन कुण्ड, छोटे बड़े ऊनी आसन, तपेदिक और प्लेग नाशक सामग्रियाँ भी हर समय तैयार मिलती है।

अजमेर मे एजेन्ट सूर्यनारायण एण्ड सन्स केशरगज, अजमेर। जेठमल आर्य सर्राफ कड़का चौक, अजमेर।

गोकुललाल आर्य एण्ड सन्स शाहपुरा स्टेट

(राजपूताना)

वैदिक पुस्तकालय मुरादाबाद

—: के :—

स्वाध्याय करने योग्य अमूल्य रत्न

आध्यात्मक पुस्तकें ।

सांख्यदर्शन भाषानुवाद

आस्तिक दर्शनों में महर्षि कपिल प्रणीत सांख्य-दर्शन का सब से प्रमस्थान है। मूल्य सजिल्द १॥)

न्याय दर्शन (भाषानुवाद) मूल्य १॥)

वैशेषिक दर्शन (भाषानुवाद) मूल्य१॥)

योगदर्शन, व्यास भाष्य

भोजवृत्ति सहित

पहिले मूत्र फिर उसका पदार्थ फिर भावार्थ पुनः उसी सूत्र पर व्यास कृत संस्कृत वृति फिर उसका भाषानुवाद दूसरी रीति पर सूत्र का आशय यथा सम्भव व्यक्त और सरल किया गया है। मूल्य अजिल्द ३) सजिल्द ३॥)

दशोपनिषद्

ईश केन, कठ प्रश्न, मुण्ड माण्डूक्य तैत्तरी, ऐतरेय और छान्दोग्य व बृहदारण्यक इन दश उपनिषदों पर पण्डित बद्रीदत्त जी जोशी का किया सरल अनुवाद है। इसमें प्रथम श्लोक पुनः उनका सरल पदार्थ तत्पश्चात् भावार्थ दिया गया है, जिससे मूल का आशय भली प्रकार हृदयगम्य हो जाता है। मू० ४)

छान्दोग्योपनिषद् भाष्याभाष्य १॥।

बृहदारण्योपनिषद् भाष्याभाष्य १॥)

ध्यानयोग प्रकाश

इसमें अष्टांगयोग और उसकी क्रिया का बड़ी ही उत्तम रीति से निरुपण किया गया है इसके ले०श्री स्वामी लक्ष्मणानन्दजी महाराज हैं, जो योगक्रिया में पूर्ण कुशल थे। योग का क्रियात्मक अध्ययन करने के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मू०१॥)

ध्यान की रीति मू० ≡)

मानव धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) मू० ॥)

गीता विमर्श

(लेखक श्री प० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ)

यदि आप महाभारत का मर्म और भगवद् गीता का सच्चा रहस्य जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को एक बार आद्योपान्त पढ जाइये, आपको सारी महाभारत की कथा हस्तामलकवत हो जाइगी। इस किस्म का भाष्य गीता पर आर्य जगत् में नहीं हुआ है। मू०१॥)

इतिहास और जीवन चरित्र

श्री कृष्ण का जीवन चरित्र

गीतोपदेष्टा श्री कृष्ण के नाम को भला कौन नहीं जानता, उनका यह प्रभावोत्पादक जीवनचरित्र श्रीमान् देशभक्त ला० लाजपतराय की ओजस्वनी से लेखनी से निकला है। मूल्य १।

छत्रपति शिवाजी

इस पुस्तक के लेखक भी भारत-भूषण श्री ला० लाजपतराय जी हैं मू० ॥≈)

दानवीर कर्ण मू० ।≈)

हकीकतराय धर्मी ।≡)

हजरत मुहम्मद साहब मू० ॥)

श्री स्वामी विरजानन्द मू०≈)॥

सिक्खों के दस गुरू मू० ।॥)

बालपयोगी पुस्कें

बालसत्यार्थ प्रकाश

सत्यार्थप्रकाश के गूढ़ सिद्धांतों को बालापयोगी सरल भाषा में ढाला गया है मू० ॥)

संतान शिक्षक मू० ॥)

बजमिन फ्रौक लिन

अमेरिका के राष्ट्रपति महात्मा बैंजनिन फ्रैंकलिन एक दरिद्र कुल में पैदा हुये थे। अपने पुरुषार्थ से किस प्रकार इन्होंने अमेरिका का सर्वोच्चपद प्राप्त किया था। इसके पढ़ने से ही ज्ञात होगा। मू०॥=)

विचित्र ब्रह्मचारी

आलोचनात्मक व ईसाई मुसलमान

धर्म की खण्डन पुस्तकें

विषलता-ले० गाज़ी धर्मपाल ।≡), तर्क इस्लाम ।), कुरान की छानबीन ।–), वैदिकधर्म इस्लाम १), खतरे का घण्टा ≡), अल्ला मियां की सुन्नत –), अल्ला मियां का हुलिया –) इस्लाम की गप्प –), मुसलमानी बुर्क़ा–), काठ का उल्लू –), कुरान भाषानुवाद १), ईसाई सिद्धांत दर्पण ।=), भोंदूजाट व पादरी साहब ≈), ईसाई मत परीक्षा)॥, ईसाई मत में मुक्ति असम्भव है)।, ईसाई विद्वानो से प्रश्न)।

अन्य उपयोगी पुस्तकें

देश दिवाकर।

इस पुस्तक मे अंगरेजी शासन में जो भारत की जो जो आर्थिक ह्रास और प्रजा की जैसी दरिद्रता और दुर्दशा हुई है, उसका दिग्दर्शन कराया गया है इसके ले० स्वामी भास्करतीर्थजी शारदा पीठ हैं। मू० १)

शुद्धनामावली

आज कल नाम रखने की परिपाटी बहुत बिगड़ गई है द्विजो में भी प्रायः कर्णकटु और निरर्थक नाम रक्खे जाते हैं। इस पुस्तक में ३५०० नाम ऐसे दिये गये हैं, जो श्रुति प्रिय होने के अतिरिक्त भाव बोधक भी हैं, पुस्तक अति उत्तम है मू०॥)

आर्य पर्वावली

आर्यसामाजिकों को कौन कौन से त्योहार और किस प्रकार मानने चाहिये। इसका विवरण देखना हो तो इस पुस्तक को मंगाइये। मूल्य ॥।) स्वर्ग में सबजैक्ट कमेटी ≈)॥, स्वर्ग में महासभा ।), कण्ठी जनेऊ का विवाह ≈), यह तीनों पुस्तकें स्वर्गीय पं० रुद्रदत्त शर्मा लिखित हैं। और हास्यरस पूर्ण हैं। सन्ध्या मंजूस)॥, नवयुवको उठो –), मुकद्दमेबाजी से बचो –), मुक्ति और पुनरावृति –)॥, ग्रहण क्या है)।॥, छात्रधर्म –), नशा निवारक)॥, शिवलिंग पूजा)॥, बकरा विनय)।, ईश्वर विचार ।॥)

स्त्री गीत संग्रह

यह पुस्तक बड़े परिश्रम से स्त्रियों के गाने के लिये तैयार की गई है। इस पुस्तक का पहला संस्करण हजारों की तादाद में छपा और हाथों हाथ बिक गया। अब दूसरा एडीशन बड़ी सजधज के साथ निकाला गया है। टाइटिल तिरंगे चित्र से चित्रित है, इस पर भी पुस्तक का मूल्य लागत मात्र ॥।) है।

स्त्री शिक्षा की अपूर्व पुस्तक बालाबोधिनी

(श्री सन्नूलाल जी कृत)

जिनकी लिखी हुई पुस्तक स्त्रीसुबोधिनी लाखों की तादाद में बिक रही है, वही इसके सुयोग लेखक है। पुस्तक के विषय में अधिक कहना व्यर्थ है। छोटी छोटी कन्याओं से लेकर युवको तक के लिये प्रथम से ही पढ़ने के लिये लिखी है, पुस्तक चार जिल्दों मे समाप्त हुई है। मू० ≈), ।), ।=), ॥)

बुकसेलरों को खास रियायत दी जाती है।

पताः- वैदिक पुस्तकालय मुरादाबाद यू० पी०

॥ ओ३म् ॥

विषयसूची

विनम्र निवेदन

ऋषि दयानन्द के निर्वाण की पुण्य स्मृति में 'आर्यमित्र' प्रायः अपना विशेषांक निकालता ही रहा है। इस वर्ष की श्रद्धाञ्जलि भी पाठको के सम्मुख उपस्थित की जाती है। 'ऋष्यङ्क' जैसा कुछ है पाठक स्वयं निर्णय कर लेंगे। इस सम्बन्ध में हम क्या निवेदन करें? हमे इस बात का सन्तोष है कि जैसा पिछले वर्ष हमने प्रतिज्ञा की थी, ऋष्यङ्क को पिछले वर्ष की अपेक्षा सभी प्रकार से अच्छा बनाने का प्रयत्न किया गया है। आर्यजगत् के उच्च कोटि के विद्वानों के लेखों को यथाशक्ति संग्रह किया गया है। हमारे कृपालु लेखको और कवियों ने हमे इस वर्ष विशेष रूप से सहायता दी है, इसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। हमारे पास इतने शब्द नहीं कि हम उन्हे अनुरूप शब्दों में धन्यवाद भी दे सकें। पर साथ ही इस बात का हमें खेद है, कि सभी उत्तम लेखो को हम इस अङ्क में स्थान नहीं दे सके। डा० बालकृष्णजी एम० ए० पी० एच० डी०, श्रीहरदयालजी नाग, कुं० चाँदकरणजी शारदा प्रो० सत्यव्रतजी, महता जैमिनजी, मास्टर आत्मारामजी अमृतसरी, प० सूर्यदेव शर्मा, तथा बा० पूर्णचन्दजी जैसे प्रसिद्ध सज्जनो के लेख भी नहीं जा सके। कारण समय और स्थानका अभाव ही है। अत. हमने यह निश्चय किया है कि आगामी ७ नवम्बर का अंक ऋष्यंक का परिशिष्टांक हो जो इसी आकार में प्रकाशित हो और उसमे उन सभी लेखों का सग्रह हो जो इस अंक मे शेष रह गये हैं।

आशा है कि पाठकगण हमारी इस योजना को पसन्द करेगे। भविष्य मे यदि सम्भव हुआ तो ऋष्यंक का कलेवर और भी बड़ा किया जायगा, जिससे हम सभी विद्वानो के लेखो को एक साथ प्रकाशित कर सकें। इस अंक मे हमारे अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी सम्भव है प्रूफ की कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों। कारण यह था कि अत्यन्त पाण्डित्यपूर्ण संस्कृत-गर्भित लेखो को अत्यन्त शीघ्रता में छापा गया। इसके लिये पाठकों तथा लेखकों से क्षमा मांगने के अतिरिक्त और हम कर ही क्या सकते हैं। बस अब अधिक न कह कर गुण दोषो का निर्णय पाठकों पर ही छोड़ते हैं। विनीत—बाबूराम सम्पा०।

आवश्यक निवेदन

सदैव की भाँति आर्यमित्र का ऋष्यंक पाठकों की सेवा में अर्पित है। इस वर्ष इस अंक के निकालने में बहुत सी कठिनाइयाँ थीं परन्तु परमात्मा को धन्यवाद है कि यह अङ्क हम इस रूप में निकाल सके। फार्मों के बढ़ जाने के भय से बहुत से लेख छपने से रह गये, इसके लिए हम लेखकों से क्षमा प्रार्थी हैं। वह सब लेख ७ नवम्बर के अङ्क में प्रकाशित होंगे। ३१ अक्टूबर का अंक सदैव की भाँति बन्द रहेगा। वर्तमान जगत में समाचारपत्र प्रचार का प्रमुख साधन है और हर एक अखबार का सम्बन्ध उसके सम्बिन्धित क्षेत्र से होता है, और विशेषकर उसी क्षेत्र के आदमी उसी समाचारपत्र को अपनाते हैं। बाहर के आदमी भी अपनी रुचि के अनुसार खरीद लेते हैं। आर्यमित्र श्रीमती आर्य प्र० सभा यू०पी० प्रमुख—पत्र है और आर्यसमाजें इसका क्षेत्र है। आर्यसमाजें और आर्यसमाजियो को तो इसको अपनाना ही चाहिये! आर्यसमाज के बाहर के आदमी अपनी रुचि के अनुसार ले सकते हैं? मुझे आश्चर्य और दुख होता है कि जब कभी कोई आर्यसमाजी किसी दूसरे अखबार मे ज्यादा सफे या अधिक चित्र देख कर आर्यमित्र के बजाय उसे खरीदने को उद्यत हो जाते हैं। यह तो ऐसी ही बात हुई कि ज्यादा रौनक देखकर कोई आर्यसमाजी आर्यसमाज के जलसे को छोड़ कर सनातन—धर्म के उत्सव मे चला जाय। एक बात और स्पष्ट करनी है! आर्यमित्र के लिए परीक्षण-काल नही है, न इसके पास किसी अन्य संस्थाओ का रुपया है। इसलिए यह न तो बहुत दिनो तक मुफ्त भेजा जा सकता है, और न दिखावे के लिए इसके बहुत पृष्ठ बढ़ाए जा सकते है। जैसा भी है आर्यमित्र आपका है इसकी त्रुटियों के लिए क्षमा करें, और सदैव की भाँति अपनावें।

—पूर्णचन्द्र एडवोकेट अधिष्ठाता,
आर्यमित्र आगरा।

सूचना—सदा की भाँति दीपावली के कारण अगला अङ्क ता० ३१-१०-३५ का बन्द रहेगा।

मैनेजर।

आवश्यकतायें

"आर्य वर की आवश्यकता"

एक आर्य मैढ़ क्षत्रिय कुलोत्पन्न भालिया गोत्र सुशिक्षित, सुन्दर, सुशील तथा गृहकार्य में निपुण आर्य कुमारी के लिये एक ऐसे बारोजगार शिक्षित तथा स्वस्थ और सुन्दर युवक वर की आवश्यकता है जो कम से कम १००) मासिक की आय रखता हो और दृढ़ आर्य हो निम्नलिखित गोत्रों में विवाह न हो सकेगा नरगस, बाडरो, डुकरे, तथा भालिया। कन्या विनोदनी हिन्दी उर्दू मिडिल परीक्षा, संस्कृत की प्रथमा परीक्षा पास तथा अंग्रेजी में आठवें क्लास तक की योगता रखती है पत्र व्यवहार तुरन्त फोटो सहित निम्नलिखित पतेपर करना चाहिये। २१-४०

मंत्री—आर्यसमाज झांसी शहर।

वैश्य कन्या की आवश्यकता

एक २६ वर्षीय 'माहेश्वरी वैश्य" युवक के लिये। कन्या सुशील का शिक्षित और कोमल भावापन्न होना आवश्यक है। जाती का कोई बन्धन नहीं। पूर्ण विवरण सहित विशेष बातों के लिये लिखें—

पो० बोक्स नं० ८

आर्य-मित्र" कार्यालय, आगरा

अध्यापक व प्रचारक की आवश्यकता

शास्त्री परीक्षा मे उत्तीर्ण पंडित की आवश्यकता है जो अध्यापक और प्रचारक का कार्य कर सके दृढ़ आर्यसमाजी हो निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें। कम से कम वेतन जो स्वीकार हो लिखें तथा प्रमाण पत्रो की नक़ल प्रार्थना पत्र के साथ भेज दे।

डाक्टर कुन्दनलाल M D

प्रधान संस्कृत पाठशाला

आर्यसमाज भूड़ बरेली।

२५) रु० इनाम

पता लगाइए

गौरीशंकर का जिसकी उम्र करीब २८ वर्ष की है। कद गैंठा रंग गंदुमी उसके एक हाथ पर गौरीशंकर नाम लिखा है और दूसरे हाथ पर औरत की तसवीर है। आगे के दांतों में सोने की दो चौप लगी हैं वह मुखके दाढ़ि का बहुत आदी है, उसकी तलाश मुखके बाजों या साधुओं में हो सकती है। जो कोई सज्जन उसका पता लगा कर मेरे पास लावेंगे, उन्हें अलावा खर्च के २५) इनाम दिया जावेगा। जम्हूरसिंह दूंदला (आगरा)

वर की आवश्यकता

१४ साल की माहौर वैश्य कन्या जो कि सुशील गृह कार्य में दक्ष हिन्दी के ५ वें दर्जे में शिक्षा पा रही है। वर की उम्र १८ से २२ साल तक की हो, वा रोजगार हो या कालेज में पढ़ता हो, विवाह वैदिक रीति से होगा। निम्न पते पर पत्रव्यवहार होना चाहिए।

लेखराम आर्य, दातागंज बदायूं

आवश्यकता है

सुधा और गंगा पुस्तक-माला के लिये २ क्लर्कों की, जिन्होंने किसी मासिक-पत्र या बुकडिपो में काम किया हो, और किताबें तथा सुधा का सेल बढ़ा सकें। वेतन योग्यतानुसार ५०) तक।

मैनेजर गंगा-ग्रंथागार ३० अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

सुगन्धागार

भारतवर्ष क्या सम्पूर्ण संसार में सुगन्ध का प्रयोग करने के लिए अतर से बढ़ कर कोई वस्तु नहीं है। अनुभव ने यह भी सिद्ध कर दिया कि जो वस्तुयें प्राचीनकाल में इत्र के बनाने के काम में आई जाती थी उनसे बढ़ कर और लाभदायक कोई विधि इस वर्तमान काल में नहीं निकली।

यद्यपि विलायत वालों ने बहुत से नवीन आविष्कार किए हैं, परन्तु सुगन्ध के प्रेमियों ने यह भली प्रकार समझ लिया है कि विदेशी खुशबू और एसेंट चित्त और मस्तिष्क के लिये लाभदायक ही नहीं वरन् हानिकारक हैं। इसी लिये बड़े बड़े विद्वानों और बुद्धिमानों ने इनका प्रयोग बिलकुल बन्द कर दिया है। प्रमाण के लिए केवल अतर की जमीन पर ही ध्यान दीजिए तो मलियागिर चन्दन के तेल के सिवाय इत्र की जमीन के लिए और कोई वस्तु अच्छी सिद्ध नहीं हुई। यह तेल चन्दन की लकड़ी से खींचा जाता है जिसमें एक मनोहर सुगन्ध होती है और उसमें यह गुण होता है कि दूसरी सुगन्ध को अपने में खींच कर अतर को देर तक सुगन्धित रखने में एक ही है यह उड़ जाने के कारण कोई धब्बा आदि नहीं डालता वैद्यक के अनुसार भी चन्दन का तैल बहुत से रोगों के लिए बड़ा लाभदायक है।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि इस कार्यालय अतर में नाना प्रकार के अतर व सुगन्धित तैल इत्यादि शुद्धता और निपुणता के साथ बनाकर तैयार किए जाते हैं जो अतर के व्यापारियों व अन्य खरीदारों को भेजे जाते हैं।

हमारा कार्यालय २४ वर्षों से हिन्दुस्तान और गैर मुल्कों में उत्तमोत्तम अतर और सुगन्धित तेल इत्यादि भेज कर आप लोगों की सेवा कर रहा है।

अतर—गुलाब केवड़ा मोतिया, हिनामुश्की, मुश्क अम्बर और सुहाग प्रति तोला १०) ८) ५) ४) २) १) ॥) है।

अतर—चमेली (मालती) जुही, चम्पा, मौलश्री, केतकी मल्लिका पारिजातक, दौना, आम, नरगिस, नारंगी, केवर, मिट्टी, गुलहिना (मेंहदी) और मजमुआ इत्यादि प्रति तोला ८) ५) ४) २) १) और ॥) है।

रूहें—रूह गुलाब ८०) व ६० तोला, रूह, चमेली, केवड़ा २०) तोला, रूह खस और पानड़ी १०) ८) ५) ४) २) और १) तोला। अतर अगर पुराना (गर्नी) २०) तोला नया ५) तोला, असली कस्तूरी ३२ भरी केसर उत्तम २) तोला, सन्दल ॥) तोला।

सुगन्धित तैल—चमेली, बेला, गुलाब, केवड़ा, चम्पा और मौलश्री प्रति सेर २०) १०) ८) ५) ४) २) और १॥) और नारंगी, सन्तरा, मसाला आंवला, इत्यादि ५) ४) २) और १॥) सेर है। गुलाबजल व केवड़ा जल ५) ४) २) १) और ॥) सेर है।

तम्बाकू सुगन्धित खानी—पत्ती मुश्की लाल, काली प्रति सेर २) १॥) और १) पीली पत्ती जाफरानी कस्तूरी, केसर, चांदी के वर्क इत्यादि युक्त १६) ८) ४) प्रति सेर बढ़ी सादा सुगन्धि २) और १॥) सेर तम्बाकू दाना मुश्की ८) १) और १॥) सेर।

नोट—हमारे कार्यालय का बना कुल माल बड़ी तोल वाली १३ माशा का तोला और ८२) भर के सेर से भेजा जाता है।

पता:- पं० बाबूलाल शर्मा,शर्मा परफ्यूमरी शर्मा भवन कन्नौज यू०पी०।

आर्यप्रतिनिधि सभा यू० पी० के पुस्तक भण्डार का

सूचीपत्र

पं० गंगाप्रसादजी एम० ए० लिखित पुस्तके

धर्म का आदि स्रोत १), मनुष्य समाज-), पञ्चकोष और सूक्ष्म जगत =) ज्योतिष चन्द्रका ≡), Fountain Heard Religion 1 8-0

Problem of Life 0-1-0

Problem of universe 0-1-0

Constitution of Human Society 0-1-0

Septonary Composition of Solar Light 0 1-0

पं० घासीरामजी एम० ए० द्वारा लिखित

वेद सुधा ।), विरजानन्द जीवन चरित्र ।-)॥

A Commentary on the Veads 2-0-0

A Commentary on the Jshohanisht 1 0-0

पूज्य नारायणस्वामी महाराजद्वाराकृत

योग रहस्य ।-),मृत्यु और परलोक ।-) वैदिकधर्म क्या ग्रहण करना चाहिये =), वैदिक सन्ध्या रहस्य -)॥

अन्य लेखको द्वारा लिखित पुस्तकें

आर्य पर्व परिचय =), आर्य पर्व पद्धति ।॥), आर्य ध्वज पद्धति)॥ शङ्कराचार्य पतित प्रमाण)। नियम समह ॥=),प्रमाण मझरी दोनों भाग १)

Agni Hotra 0-1-6

Hints on Vedic Diet 0-1-0

Papers on Education 0-3-0

मैनेजर आर्य पुस्तकालय, निकट तहसील मेरठ शहर

* ओ३म् *



का



वर्ष ३८ [दीपावली संवत् १९९२ वि०] अङ्क ४०-४१

❀ ईश-वन्दना ❀

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम ॥

यजु० ५-३६

अग्नि ज्ञानभण्डार ! ज्ञान विज्ञान सिखाओ ।
सुपथ द्वार से हम सबका ऐश्वर्य बढ़ाओ ॥
देव ! दिव्य गुण सकल दया कर प्राप्त कराओ ।
कुटिल पाप के पुंज दास से दूर हटाओ ॥
हे देव अग्निमय ! कर कृपा सकल भाँति अपनाइये ।
इस हेतु नमः प्रतिकाल है दयादृष्टि सरसाइये ॥



—श्याम

मङ्गलमयी भावना

(ले०—श्री प० मेधाव्रतजी आचार्य)

—x—

[१]

अनुभवतु नितान्तं ब्रह्मचर्येण सौख्यं
व्रतिवर ! वरविद्वान् ब्रह्मचारीन्द्रसत्र ।
विचरतु भुवनेऽयं वेद - विद्याप्रचारं
विदधदनिशमस्मिन् शान्तचित्त प्रसन्न ॥

[२]

भवतु वसुमतीयं मण्डिता पण्डितेन्द्रै:
प्रसरतु दिवि नित्यं ब्राह्मणब्रह्मनाद: ।
प्रतिगृहमिह कुर्युर्याज्ञिका यज्ञकार्यं
प्रवहतु पवनोऽय शुद्धसौगन्ध्यशाली ॥

[३]

अवतु वसुमतीन्द्र सस्यसंपत्सनाथां
बुधवर ! वरमन्त्री भूमिमेता वरेण्याम ।
वितरतु समदृष्टि स्वप्रजासु प्रजासु
पितृसमनृपवर्य: पालयॅल्लालयॅस्ता: ॥

[४]

विपुलफलयुते वा कानने पुष्पिते वा
गिरिवरशिखरे वा कूलकुञ्जे तटिन्या: ।
चरतु विधिविधिज्ञ पुण्यचेतास्तपस्वी
यतिमुनिवरवारो ब्रह्मचर्यं सदैव ॥

[५]

विदधतु विबुधानामातिथेया गृहस्था:
प्रतिदिनमतिथीनामर्घ्यपाद्यादिकञ्च ।
भवतु सततपूजा पूज्य विद्वद्वराणां
भुवि विलसतु कीर्त्ति र्ब्रह्मविद् ब्राह्मणानाम्॥

[६]

सर्वेषां सन ! सदयहृदये प्रेमधारा वहन्तु
प्राणिव्रात समदयदृशा देव ! पश्यन्तु दिव्यम ।
विश्व विश्वं स्वजनसदृशं मन्यतां विज्ञवर्गो
भर्ग शुद्धो विमलमनसा ध्यायतां ब्रह्मदेव ॥

[७]

आज्ञाकारी भवतु सकल सज्जनस्ते बुधेन्द्र
वेदान्नित्यं पठतु च मुदा साङ्गसार्थाभिरामान् ।
देशे देशे गुरुकुलयशो गीयता गीष्पतीन्द्रै-
र्ग्रामे ग्रामे वरगुरुकुल तन्यतामार्यवीरै ॥

[८]

दया दयानन्दविभो ! हि ते ययाऽ—
भवद् दयानन्दमुनीन्द्रसंभव: ।
यतो जगन्मण्डल आर्यमण्डली
विलोक्यते ते निगमान् वितन्वती ॥

———

तथ्यवार्ता

(ल०—पूज्यपाद श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज)



यह देखने मे आता है कि जिस मनुष्य या मनुष्य-समाज के पास निर्मल बुद्धि नही है उसका कोई भी कार्य्य सुधर नही सकता। उसका कारण यह है कि जिस दोष से मनुष्य की बुद्धि दूषित हो जाती है उसी दोष से उसके समस्त कार्य्य दूषित हो जाते हैं, यह सबको प्रत्यक्ष है।

निर्मल बुद्धि का यह सकेत है कि प्रत्येक कार्य को सफल बनाने और उससे लाभ उठाने के लिये प्रथम उस सामग्री को जिससे वह कार्य सिद्ध होता है, यत्न से एकत्रित करना होगा। कार्य्य छोटा हो या बड़ा, सूक्ष्म हो या महान्—अपने साधनो से सिद्ध होता है। जैसे विद्वान् बुद्धिमान् समझदार जिस मार्ग मे चलते है वह मार्ग साधारण पुरुषो को गमन करने के लिए सरल और सुगम हो जाता है। फिर सब उस मार्ग की ओर ही गति करने के लिये बढते हैं। ठीक इसी प्रकार निर्दोष साधनो के मिल जाने से कार्य सिद्धि मे कोई विलम्ब नही होता है। इसलिये सब से प्रथम कार्य्य योग्य और उदार पुरुषो के हाथ मे जाना चाहिये। वे ही बिगडी बात के बनाने और उन्नति मे ले जाने के अधिकारी होते है। पवित्र हाथो मे जाकर कार्य्य पवित्र और विचित्र हो जाता है, अधूरे हाथो से काम कभी भी पूरा नही होता। सफलता से जनता मे कार्य्य करने की शक्ति बढती जाती है, दिनो दिन उत्साह हर्ष की उमग दृष्टि मे आती है, नित्य नवीन मार्ग का विकास विचार मे अवकाश पाता जाता है। कामयाबी से मनमे निर्भीकता प्रेम और सहिष्णुता का उदय होने लगता है।

योग्य पुरुषो की पहचान यह है—जो अपने कर्त्तव्य पालन करने मे अनेक बाधाओ के आजाने पर नही घबराता है कष्ट के समय जो धैर्य से काम लेता और जो कार्य्य के बनाने मे सदैव दत्तचित है, जिस का किसी भी प्रकार का प्रलोभन अपने उद्देश से नही हट सकता है वह पुरुष योग्य है।

ऐसे महानुभाव ही ससार का भार उतारने सब को समान दृष्टि से निहारने आलस्य और प्रमादपंक मे डूबे हुये जगत को फिर से उभारने मे अपने आराम को छोड कर कुछ भी चिन्ता न करते हुये विकट मार्ग मे आगे बढ़ते हैं। बस इनके हाथो से सुधरा हुआ कार्य्य दृढ़बद्धमूल और स्थायी हो जाता है।

विद्या से मनुष्य में योग्यता आती है, हिताऽहित का ज्ञान होता है। योग्यता के साथ मनुष्य का गौरव होता है यह सत्य है। परन्तु प्रत्येक पुरुष जो पढ़ा लिखा है वह योग्य ही हो, यह नियम सर्वत्र लागू नहीं हो सकता है, इसमे कुछ सकोच है। योग्य पुरुष अपने कर्त्तव्य को सामने लाकर स्वार्थ को पीछे कर देता है, और अयोग्य पुरुप स्वार्थ को सामने लाकर अपने कर्त्तव्य को पीछे डाल देता है। यह दोनो में भेद है। अतएव अयोग्य पुरुषो के हाथ मे कार्य्य जाने से वह बिगड जाता है निष्फल हो जाता है। इतना ही नही प्रत्युत कर्त्ता अपयश का पात्र और दु ख भोग भागी बन जाता है, अतएव योग्य पुरुषो का कार्य्य सपादन मे तत्पर होना कार्य्यसिद्धि का प्रथम अङ्ग है। भारतवर्ष मे ऐसे पुरुषों की संख्या बहुत ही कम है, जो देश के सुधार और उद्धार जैसे महान् कार्य्य के लिये पर्य्याप्त नही। देश काल की परीक्षा करना महान पुरुषो के विचार का विषय होता है। सर्व साधारण इसके जानने मे असमर्थ ही पाये जाते है। सम्प्रति जो कार्य्य मे तत्पर हैं, उनमे से किसी को आलस्य ने दबाया हुआ है। दूसरे को लोकैषणा ने सताया हुआ है, और किसी का पुरुषार्थ लोभ की चोट खाकर मुरझाया हुआ है। और जो

न इल्लतों से पृथक है वह व्यर्थ लोगो के कटाक्ष और छिद्रान्वेषण से घबराया हुआ है। जो सचाई और हित से काम कर रहे हैं वे धन्यवाद के योग्य है।

नदियाँ पर्वतो से निकल कर सागर की ओर जाती हैं, उनका पहाड़ों की तरफ उलटा बहना सुगम जान पड़ता है। परन्तु विगड़ी हुई जाति का फिर से से बल मे आना सुधर जाना कठिन प्रतीत होता है। जब सब के संस्कार दुर्बल व दूषित हो जाते हैं तब उस रंग मे रंगे हुए मनुष्यो के विचार सुसस्कारो को ध्यानमें नहीं लाते हैं। इतनाही नही, किन्तु हितसे समझाने सन्मार्ग बताने वाले मित्र को अपना शत्रु बताते हैं पाठक बताएं जिस के पास शत्रु मित्र की पहचान ही न रही, विवेक बुद्धि ही जिससे छीन ली गई उसके सुधरने की आशा क्या हो सकती है। हाँ यह ठीक है कि जिस प्रकार उत्पथ गामी मनुष्य समाज को सत्य बात के सुनने और उसके मानने की आदत नहीं रहती है, उसी प्रकार भले पुरुषो की भी प्रकृति, हित की बात सुनाने और उनको सन्मार्ग पर लाने की बन जाती है। वे जीवन भर कार्य्य करते जाते हैं, निरुद्योगी रहना उनके स्वभाव से दूर होता है। ऐसा होना ही चाहिए जब कि बुरा मनुष्य अपनी बुराई को नहीं छोड़ता तो भला पुरुष भी अपनी भलाई से सम्बन्ध क्यों तोड़े ? जैसे बुरा पुरुष बुराई को त्याग देने से भला बन जाता है तो भला पुरुष भलाई से पृथक होकर बुरा कहलाता है। उभयत: यह नियम समान है। भलाई के अधिक हो जाने से जगत् सुखी और बुराई के बढ़ने से दु खी हो जाता है। यह कहानी सबकी ज़बानी है।

आर्य समाज मे जो निर्वाचन का प्रचार जारी है उससे अच्छे पुरुषो के हाथ मे जो कार्य्य संचालन में चतुर हो जो समय लगाकर कार्य्य को उन्नत करने मे तत्पर हो नहीं जाता है। कार्य्य परिणाम मे जाकर सफल न होना उक्त बात की सिद्धि करता है। परस्पर के मेल में सुख का खेल है, आपस के द्वेष में सदैव का क्लेश है, झगड़ो की वृद्धि मे सदा मानसिक ग्लानि, प्रताप कीर्ति गौरव की हानि है। सुख को चाहता हुआ जनसमाज भूल से इच्छा के विपरीत दु.ख में ही उलझता जाता है, वह स्फुट देखने मे आता है। अतएव दु ख से बचने का उपाय उसके कारण को हटा देना ही होता है न्याय शास्त्र मुख्यरूप से इस सकेत को ही दर्शाता है।

संप्रति निर्वाचन की रीति, आर्य्य समाज मे असफलो, दुःख प्रद और विफल सिद्ध हो रही है। या तो धर्म कार्य्य इस मार्ग का साथ नही देता है, उसको यह अखाड़ा जिसमे अनेक प्रकार की कुप्रवृति अपना बल दिखा रही हो पसन्द नहीं, अथवा निर्वाचन की योजना का आधार तो ठीक ही है निर्दोष है परन्तु वह ऐसे अनधिकारी पुरुषोके हाथमे जा पहुंचा है, अधिकार लालुपता के घेरे मे जाकर सताया हुआ स्वरूप से मलिन बन्धन मे आया हुआ हलन-चलन से हीन सा हो रहा है।

अन्ततः इस मार्ग का त्याग या संशोधन करना ही ठीक होगा, अन्यथा धन का अपव्यय समय का दुरुपयोग शक्ति का ह्रास परस्पर विपरीत व्यवहार से जगत् का उपहास प्रत्यक्ष होगा। समय इसकी खबर देगा। अभी खेल मे पड़ा हुआ इस बात पर ध्यान नहीं देता है कि दीर्घकाल तक यत्न करने पर भी प्राप्तव्य स्थान दूर ही होता गया, उसके निकट न पहुंचे। हा शोक ! ऐसे शब्द कहकर हतोत्साह होजाओगे, गति की शक्ति जाती रहेगी, पछताओगे। हम पूर्वजों की प्रशंसा का गाते हुए आर्यों के गुणो को सुनाते हुए किधर को जारहे हैं कुछ विचार नहीं किया जाता है, कैसी प्रत्यक्ष भूल है। जिस वाटिका का कोई निर्धारित मार्ग न रहे,अनेक मार्ग खुल जाँय, किसी को भी आने जाने मे रुकावट न हो वह चाहे कितनी ही फल पुष्प समन्वित सुन्दर और मनोरम हो मुरझा जायेगी, भयानक नजर आवेगी। बस इसी प्रकार समाज का लक्ष्य अनिश्चित मार्ग मे बदल रहा है, आने जाने का मार्ग हर तरफ से खुला हुआ है। यदि ऐसा नहीं, मैं भूल कर रहा हूं, तो आप बतायें कि निर्वाचन के समय ऐसे पुरुष— जिनको समाज से हित नहीं, सामाजिक नियमों से परिचित नहीं, समाज सत्संग में कभी आते नहीं, समाज के काम जिनको भाते नहीं, सम्मति ऐसे के कैसे अधिकारी बन जाते हैं। यह अधिकार उनको

कहाँ से प्राप्त हुआ ? आपने ही दिया है। इस व्यर्थ की खेंचतान से समाज का उद्योग बेचैन-चान हो रहा है। धर्म के साथ होती बेढङ्गी चाल चलने से कोई पुरुष अपने कार्य को नहीं संभाल सकता। इसका कारण यह है कि धर्म जिस ओर को संकेत करता है यह उसके विपरीत ताकता है। धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः। इससे यह सिद्ध होता है, कि साधु स्वभाव पुरुष धर्म की मर्यादा को उज्ज्वल बना सकता है, अन्य कोई नहीं।

अब पाठक दूसरी बात पर ध्यान दें। ऋषि के मन मे वदो का बडा ही सत्कार था। उन्होने वेदके यथार्थ स्वरूप को जाना था। हम उस मार्गसे दूर हो चुके है। इस कारण से ही तो कोई ठीक प्रयत्न नहीं किया जाता है। सबसे प्रथम यह उपाय होना चाहिए था कि ऐसे पुरुष जो शब्द, अर्थबोधक ज्ञान मे निपुण होते, तैयार किए जाते। उनके हाथो से यह कार्य्य सिद्ध हो सकता था। वे यदि लग्न से कार्य्य करते तो वेद का सूक्ष्मांश उनके विचार के सामने हो जाता,परन्तु अद्यावधि कोई ऐसा न हुआ जिसकी शुद्ध बुद्धि द्वारा यह कार्य ठीक हो जाता आर्यसमाज मे ऐसे प्रौढ पांडित्य की न्यूनता है। यदि कुछ है भी तो उसमे भूल है आप विचारें ? साहित्य मण्डल अजमेर ने वेदो का भाषार्थ कर दिया। जो हुआ सो ठीक है, इसमे अधिक कुछ नहीं कहना है। अब यू० पी० प्रतिनिधि ने वेदार्थ करने का उद्योग किया है। पंजाब प्रतिनिधि ने भी वेद भाषा करने की विज्ञप्ति निकाल दी है। सार्वदेशिक सभा का भी ऐसा ही विचार है। यह सुना जाता है। ठीक कहने मे कुछ संकोच है। आर्यसमाज के सभासदो का यह विचार पृथक-पृथक हो रहा है। इस बेसुरे गाने और बेतार बजाने का कारण लोक प्रशंसा के बिना और कुछ नहीं "यह मैने किया"—इस ममता ने भेद कर दिया। यह अदा कार्य के बिगाड़ने के लिए सदा से साथ लगी आती है, जिसने इसको छोड़ दिया उसने सुख से नाता जोड़ लिया और जिसने इसका साथ दिया इसने जग में उसको दुःखी किया। यदि आप सब मिल-जुल कर प्रेमपूर्वक सब सामग्री को एकत्रित कर लेते, और तीन पुरुषो के हाथ मे जो योग्य होते इस कार्य को देते तो परिणाम अच्छा निकलने की कुछ आशा होती, परन्तु ऐसी अवस्था मे जहाँ भेद काम कर रहा हो सफलता की आशा क्या हो सकती है। प्रथम तो साधन ही दुर्बल है, फिर वह अनेक भागो मे विभक्त हैं। यह कार्य तो सर्वथा एकत्रगत हो करके करना था। आर्यसमाज ने अभी तक भेद के बखेड़े को जाना ही नहीं कि वह मनुष्य समाज का कितना प्रबल शत्रु है और यदि द्रव्य का प्रलोभन है कि हम अपने अपने प्रान्तो के लोगो को उत्साह दिला कुछ धन जमा कर लेगे तो मेरे भाई जो इस कार्य्य से लाभ होगा यह सब मिलकर बाँट लेना, किन्तु वेदार्थ, जैसा बुद्धि मे आवे सब मिलकर करोगे तो अच्छा होगा। इस साधु मार्ग का त्याग मत करो। आगे ही ठीक हो रहे है उपहास का इतिहास सामने आ रहा है। बात बिगड़ती जा रही है मार्ग कठोर हो रहा है। पता नहीं चलता है कि आर्य्यसमाज निद्रालु है या तन्द्रा मे है। यह बे समय क्यो सो रहा है। कोई कार्य्य तो ढंग से करो। धन यदि किसी से उपलब्ध हो गया तो उसका यथार्थ उपयोग करने को आगे बढो (इद मेव कार्यं विदुषा विद्यापारगाना मार्गो निश्चेतव्य)

ऋषि ने जो बीज बोया मत इसको तुम बिगाड़ो।
इस रम्य वाटिका को का भूल मत उजाड़ो॥
शत्रु सभी हसेंगे मित्रो को खेद होगा।
गर रहनुमा तुम्हारा आपस का भेद होगा॥

पूज्य भाई परमानन्दजी का संदेश—

'छोटे से छोटे कीटाणु को भी जीवन संचार करने के लिए बलिदान की आवश्यकता होती है जिस जाति की संस्था मे बलिदान का यह भावजितना अधिक होगा, उतना ही वह चिरजीवी होगा।"

महर्षि दयानन्द के अनुयायी

(ले०—श्रीमान् राजाधिराज श्री उम्मेदसिहजी बहादुर शाहपुरा)



वन की सफलता के लिये मनुष्य को किसी न किसी महापुरुष के सिद्धान्तो का अनुयायी बनना पड़ता है और उनमे सफलता का भागी वही होता है जो स्वयं दृढ़ विश्वासी बनकर अपने इष्ट मित्र परिवार को भी उसी सन्मार्ग की ओर आकर्षित करता है।

महर्षि का कोई ऐसा सिद्धान्त नही जो उन्होने संसार के सामने बिलकुल नया रक्खा हो। अपितु उन्होने जो कुछ रक्खा वह प्राचीन, सार्वभौम, शुद्ध वैदिक आदेश है। हाँ, कुछ काल से वह विस्मृत सा हो गया था इसीलिये साधारण जगत् की दृष्टि मे अब कुछ नया सा प्रतीत होता हो।

महर्षि ने उन विस्मृतप्राय सिद्धान्तो का पुनः संस्मरण या सिंहावलोकन कराया है, अतः वे आचार्य, जगद्गुरु अथवा पथ-प्रदर्शक कहलाये और उनके संकेत पर चलने वाले महर्षि के अनुयायी।

संसार को उस महात्मा ने एक ईश्वर, एक पुस्तक, एक धर्म, एक जाति का बोध कराया और सत्य सदाचार सद्व्यवहार, सौजन्य का माहात्म्य बताया। वंश की वृद्धि, सन्तान की पवित्रता, स्वभाव की उज्वलता और स्वाभाविक सदाचरण के लिये षोडश सस्कारो को अत्यावश्यक बताया।

निर्बल निराश्रित विभ्रान्त प्राणियो के हितार्थ शुद्धि का पुरातन सिद्धान्त फिर से प्रचलित कर वैदिक धर्म की महानता, उदारता और उसके अनुयायियो में विश्वप्रेम को प्रकट किया।

दूसरे दूसरे आचार्यों की भाँति इन्होने अपने आप को अवतार, देवदूत दैवीशक्ति आदि कहकर संसार मे पूज्य बनने का कोई स्वाँग नही किया और न मठ, मन्दिर, महंताई के इच्छुक रहे। वे स्वयं वेदानुयायी थे और विश्व-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर संसार को इसी शुद्ध वैदिक मार्ग पर चलने का उपदेश दे गये।

महर्षि का अनुयायी किसी संस्था का पुजारी या किसी रजिस्टर नाम की पुस्तक का नामज़द अथवा किसी जाति-विशेष की मुहरछाप रखने वाला व्यक्ति नही हो सकता। किन्तु एक ईश्वर का अनन्य भक्त, वेदानुयायी, सदाचारी, संस्कार-संस्कृत, विश्वप्रेमी है।

स्वर्गीय सेठ रामगोपालजी, वेला (इटावा)



आ० प्र० सभा को आपने वेदप्रचारार्थ ३५ हज़ार का दान दिया था।

जीवन-ज्योति

(ले०—श्रीमान् श्री सुदर्शनदेवजी बहादुर, महाराज कुमार साहब, शाहपुरा)



शिव रात्रि का दिन इतिहास मे कैसा विचित्र है कि जिस दिन स्वामी दयानन्द जी को एक मामूली घटना से वास्तविक ज्ञान हुआ। घटना सब मालूम ही है उसे दुहराना व्यर्थ सा ही है।

दयान्द सरस्वती के पहिले इस देश की क्या दशा थी उस पर विचार करिये। लोग वेदो का गडरियोके गीत (Shepherd songs) कहते थे। उस समय स्त्रियो की क्या दशा थी। विधवाओ को यह मालूम न था कि उनका कोई देखभाल करने वाला है या नही। बेचारिया एक अधेरी कोठरी में पडी हुई अपनी जीवन यात्रा के दुर्दिन पूरा करती थी। वह प्रार्थना किया करती थी कि हे परमात्मन्! इस कलुषित कारागार से काल कवलित होना ही अच्छा। विधवाओ के साथ क्या क्या अत्याचार होते थे वे अकथनीय हैं।

स्त्रियों को लिखना पढना तथा वेद और गायत्री मत्र उच्चारण करने की आज्ञा न थी। उनको शूद्र के समान समझा जाता था उनके प्रति यहा तक लिख दिया गया कि अगर कोई वेद का शब्द उनके कान मे पड जाय तो कान मे सीसा गला कर डालना चाहिए।

परन्तु इस घटना ने ऋषि की आँखे ही नही खोलीं बल्कि ससार की आखो का पर्दा उतार दिया

धन्य है उस ऋषि को, जिसने इस देश को जाग्रत अवस्था मे ला दिया। अब उन्ही गडरियो के गीतो को हर एक मनुष्य ऊचे स्वर से गाने लगा।

स्त्रियों का उद्धार हुआ। सब मनुष्यो ने उनका आदर सत्कार करना शुरू किया। और यत्र तत्र "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" की ध्वनि होने लगी।

अनाथ बच्चे कटी पतग के समान इधर उधर भटकते थे। इनकी सुध बुध लेने वाला कोई भी दृष्टि पथ मे नहीं आता था।

महर्षि आपको धन्य है। आपने आवाज उठाई और समझदार मनुष्यो ने उसे कार्य मे परिणत कर अनाथालयो की स्थापना की जिनमे भारत माता के लाखो लाल लालित पालित हुए और योग्य बनते है।

भेद भावना के भयकर भूत को भगाने के लिए और अज्ञान रूपी अधकार का नाश करने के लिए स्वामी जी की जीवन ज्योति बडी ही सहायक सिद्ध हुई।

श्रीमती यशोदादेवीजी स्व० सेठ रामगोपालजी की धर्म०



आपने एक हजार रुपय अपनी ओर से भी दिये है। आप भ्रमण करके व्यायाम और खेलो का प्रचार भी करती हैं।

वेद के ३३ देवता

(ले०—श्री महात्मा नारायणस्वामीजी)



ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थो और उपदेशो द्वारा प्रकट किया कि वेद के ३३ देवता मनुष्यो के लिये पूजा या उपासना के लिये नही है। अपितु संसार मे जो कुछ ज्ञेय है जिसको हम जानते या जान सकते है उसी के प्रकट करने के लिये ये देवता हैं। उन ३३ देवताओ का विवरण शतपथादि ग्रन्थो के आधार पर उन्होने इस प्रकार दिया है —

१२ आदित्य (मास), ८ वसु (स्थान जिनमे प्राणी रह सकते हैं) १० रुद्र, १० प्राण, १ (११ वां) रुद्र-जीवात्मा, १ यज्ञ, १ इन्द्र (विद्युत्) कुल योग ३३

श्री प० गुरुदत्त ने इन देवताओ के छओ भेदो के वैज्ञानिक नाम इस प्रकार दिये है।

(१) Time=समय (२) Space स्थान (३) Force=शक्ति (४) Soul=जीव (५) Delibera e activities of mind=जीवात्मा के विचार पूर्वक कार्य (६) Vital activities of mind=अनिच्छित कार्य जो शरीर मे (रक्त संचार आदि के रूप मे) हुआ करते हैं।

यज्ञ नाम स्पष्ट रीति से शुभ कर्मों का है, जिन्हे मनुष्य इरादा करके किया करता है। इन्द्र अथवा विद्युत के द्वारा शरीर के अन्दर अनिच्छित कार्यों का होना स्पष्ट ही है। इस प्रकार देवताओ की सत्ता और उनके कार्यों पर विचार करने से यह बात किसी से छिपी नही रहती कि वेद मे संसार की कार्य प्रणाली को वर्णन करने के लिये एक पारिभाषिक शब्द देवता का प्रयोग हुआ है परन्तु जहाँ प्राचीन अनेक नियमो और प्रथाओ का विगाड़ हुआ है वहाँ ये ३३ देवता भी इन लाल बुझकड़ो के हाथ से बचने नहीं पाये। महाभारत के अनुशासन पर्व के अध्याय १५० मे इन ३३ देवताओं का विवरण इस प्रकार मिलता है।

(१) धरा, ध्रुव, सोम, सपितृ, अनित्र अनल, प्रयूत्ष (=सवेरा) तथा प्रभास ये ८ वसुओ के नाम हैं—

(२) अंश, भग, मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, जयन्त, भास्कर, त्वष्टा, ऊशन, इन्द्र, और विष्णु को १२ आदित्य कहा गया है।

(३) अत्र कवाद, अहिबुंध्य पिनाकी, अपराजित, ऋत, पितृरूप, त्र्यंबक, महेश्वर, वृषाकपि (विष्णु), शम्भुतथा हवन इन्हे ११ रुद्र बतलाया गया है।

(४) अश्वि द्वै अर्थात् नासत्य और दस्र यह नही समझना चाहिये कि वेदज्ञ व्यास की यह कृति है किन्तु महाभारत मे तो केवल ८८०० श्लोक ही व्यास के है, परन्तु इस समय जो महाभारत मिलते हैं उनकी श्लोक संख्या इस प्रकार है.—

(क) अनुक्रमणिकाध्याय अर्थात् आदि पर्व अध्याय के अनुसार ८४२४४ खिल १२००० योग ९६२४४

(ख) गोपालनारायण बम्बई की प्रति के अनुसार ८३५२५ खिल १५४८५ योग ९९०१०

(ग) गणपत कृष्ण बम्बई के प्रति के अनुसार ८३८२६ खिल १२००० योग ९५८२६

(घ) कुम्भ कौणम के संस्करण के अनुकूल ९८५४५ खिल १२००० योग ११०५४५

इस प्रकार जितने भी संस्करण मिलते हैं उनमे इसी प्रकार संख्याओं का भेद है परन्तु कुछ तो एक लाख से अधिक संख्या वाले हैं। बाकी प्राय: एक लाख के चपेटे ही मे हैं।

यह बढ़ा हुआ भाग सभी "इजादे वन्दा" है चाहे वह वैशम्पायन की कारगुजारी हो या सौति की अथवा अन्य किन्ही महानुभावो की कृपा जिस ग्रन्थ की श्लोक संख्या ८ हजार से एक लाख होगई हो उसमे निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता कि क्या व्यास का और कितना बढ़ा हुआ है। यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि ३३ देवता वाली बात व्यास की नहीं हो सकती, उत्कृष्ट विद्वान् और ऋषि वे वैदिक साहित्य के विरुद्ध ऐसा किस प्रकार कह सकते थे।



श्रीमान महाराजाधिराज श्री उम्मेदसिंहजी बहादुर (शाहपुराधीश)

क्या ऋग्वेद सुमेरियन डॉकुमेन्ट है ?

(ले०—श्री पं० राजेन्द्रनाथजी शास्त्री)



श्री डाक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार प्रो० हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस अपनी एक लेख माला 'इलस्ट्रेटेड वीकली आव इण्डिया' मे निकाल रहे हैं। उसमे उन्होने अनुचित् अत ्य शैली द्वारा यह सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया है कि ऋग् वेद में सुमेर के नगरो का विशद वर्णन है। ऋग्वेद की भाषा संस्कृत नहीं, अपितु सुमेर मिश्र और सीरिया की भाषाओ से मिश्रित संस्कृत है। इसके प्रमाण मे आपने ऋगवेद में से बहुत से शब्द और मन्त्र निकाले हैं, जिनके आधार पर आपको इस प्रकार की विचार धारा उपस्थित करने का साहस हुआ है।

इस दीवार के खड़ा करने मे आपको क्या क्या भूलें और उपेक्षायें करनी पड़ी है वह देखते ही बनता है। आपको लेखके लिये अंग्रेजी का आश्रय भी इसी लिये लेना पड़ा है कि हिन्दी में मन-मानी शब्दों की तोड़-मोड़ को रख ही नहीं सकते थे। अस्तु इससे पूर्व कि हम भारती के साथ किये गये अनर्थ और अत्याचारके बीभत्स काण्ड का उद्घाटन करें, डाक्टर साहब की एक अन्य प्रमाणरहित प्रतिज्ञा का भी नग्न रूप सामने रखदेना चाहते हैं, जिससे कि प्रमाणरहित विश्वास मात्र पर खड़ी की गई थोथी सिद्धान्त-भित्ति के गिराने में अधिक प्रयास न करना पड़े।

७ जुलाई वाले लेख के आरम्भ मे आप लिखते हैं कि यह सर्वसम्मत सिद्धान्त बन चुका है कि आर्यों की सभ्यता, लेख, भाषा तथा इतिहास ईसाके २००० वर्ष से पूर्व नहीं जा सकता। आधुनिक ओरियेन्टल स्कालर ईसा के २००० वर्ष से पूर्व की बात को प्रलाप मात्र समझते हैं वह आधुनिक स्कालर किस प्रकार के होंगे यह तो लेखकी समाप्ति परही अनुमान किया जा सकेगा। पर यहाँ संक्षेप से कुछ पौरस्त्य तथा पाश्चात्य विद्वानो की सम्मतियां अवश्य उद्धृत करना आवश्यक समझते है, जिससे भली भांति सिद्ध हो जायगा कि डाक्टर साहब की प्रतिज्ञा किस प्रकार निस्सार है।

(क) श्री पं० रघुनन्दन शर्मा ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वैदिक सम्पत्ति मे वेद काल-निर्णय पर एक लम्बा प्रकरण लिख कर पर्य्याप्त प्रकाश डाला है और वेद का समय वैवस्वत मनु के काल मे माना है (१२८ पृ०)। मनु का समय १२०५३३०३० (बारह करोड पांच लाख तेतीस हजार तीस) वर्ष पुराना है।

वैदिक सम्पत्ति पृ० ११२

(ख) बाबू उमेशचन्द्र विद्यारत्न लिखते हैं "साम वेदेर वयक्रम लक्षवत्सरेर न्यून हईबे ना" अर्थात् साम वेद की आयु एक लाख वर्ष से कम नही "

(मानवेर आदि जन्म भूमि पृ० ३८)

जब साम वेद ही इतना पुराना है तो उनके मत में उपजीवक ऋग्वेद कितना पुराना होगा, पाठक स्वय विचार ले।

(ग) श्री नाना पावगी महोदय अपने ग्रन्थ "आर्यावर्तांतील आर्चांची जन्मभूमि" मे लिखते हैं—

"इस विषय मे भूगर्भ शास्त्रियो का मत है कि मनुष्य प्राणी तृतीय युग में पैदा हुआ। हमारे ऋग्वेद के ऋषि तृतीय युग मे थे। तृतीय युग के पश्चात् ही हिम-पात हुआ। हिम-युग दो बार हुआ है। इन हिमयुगो के समय मे ही पाषाण-युग आरम्भ हुआ। पाश्चात्य विद्वानो का मत है कि पाषाण युग को शुरू हुए २,४०,००० दो लाख चालीस हजार वर्ष होगये।"

(पृष्ठ ७३)

अर्थात् ऋग्वेद के ऋषि (मन्त्रार्थ द्रष्टा, मन्त्र द्रष्टा नही) लगभग ढाई लाख वर्ष पूर्व हिमपात युग से भी पूर्व तृतीय युग मे हुए।

(घ) श्री अविनाश बाबू कहते हैं कि ऋग्वेद के प्राचीन सूक्त उस समय बने जिस समय राजपूताने

और युक्त प्रान्त मे समुद्र लहरा रहा था। वह तृतीय युग था। उस समय का अन्दाजा आज से तीन चार लाख वर्ष पूर्व का किया जा सकता है। भूगर्भ सम्बन्धी साक्षियों से सिद्ध है कि संसार और भारत-भूमि मे टर्शरी (तृतीय) युग के मायोसीन और प्लायोसीन विभाग में मनुष्य प्राणी उन्नत हुआ। प्राचीन वैदिक सभ्यता अत्यन्त भूतकालीन है, जो करोड़ो नहीं तो लाखो वर्ष की प्राचीन कही जा सकती है। .. ..मेरे सिद्धान्त भू-गर्भ शास्त्र अनुसार हैं। अतः उन्हीं के साथ या तो गिर जायंगे या स्वीकृत होंगे।"

(आर्यवैदिक इंडिया पृ० २२६-२७)

(ङ) भगवान् तिलक वेदो का काल "उत्तर ध्रुव निवास" में दस हजार वर्ष से भी पूर्व का स्वीकार कर गये हैं—

यह तो हुई वेद तथा वैदिक सभ्यता के विषय में भारतीय विद्वानो की सम्मतिया। अब कुछ पाश्चात्यो की सम्मतियों का भी अवलोकन कीजिये।

(च) 'थियोगोनी (Theogony) आव दे हिन्दूज' मे Count Bjorns jerna महोदय पृष्ठ ४५ पर लिखते हैं कि भारत के अन्तिम सम्राट् महाराज चन्द्रगुप्त के पुस्तकालय मे से यूनान के राजदूत मेगस्थनीज ने एक वंशावली प्राप्त की थी। जिसे उसने अपने ग्रन्थमे भी उद्धृत किया है (इसी प्रकार ओरायन ने भी उस वंशावली को लिखा था) इस वंशावली मे बकस से लेकर चन्द्रगुप्त के समय तक १५३ राजाओ की गणना की है। जिनके राजकाल की अवधि ६४५१ वर्ष तीन मास है।"

चन्द्रगुप्त को हुए २२५० वर्ष हो चुके। अर्थात् बकस को हुये ८७०१ (आठ हजार सात सौ एक) वर्ष होते हैं।

इस विषय में एक और साक्षी देकर इस प्रकरण को समाप्त करेंगे। कह नही सकते डाक्टर साहब इन महानुभावो को भी स्कालर मानते हैं या नही? अस्तु।

(छ) इतिहास के पढ़ने वाले लोग जानते हैं कि दबिस्तान नामक लेख जो काश्मीर मे मिले हैं, उनमे बैक्ट्रिया (Bactria) में राज करने वाले हिन्दू राजाओ की नामावली लिखी है। जिसके विषय में 'मिल' की पुस्तक History of India vol II P. P. 237—338 पर लिखा है—That these Bactrian kings were Hindus is now universally Admitted." अर्थात् यह बेक्टेरिया के राजा हिन्दू ही थे यह बात अब निर्विवाद तथा सर्व सम्मत हो चुकी है। यह नामावली सिकन्दर तक ५६०० वर्ष तक की प्राचीन सिद्ध होती है। इस विषय में निम्न वाक्य पढने योग्य हैं—

The Bactrine Document called Dabistan gives an entire register of Kings namely of the Mahabaderns, whose first link reigned in Bactria 5600 years before Alexander's expedition to India

अर्थात् "दबिस्तान नामक बेक्टेरियन लेख महाबदर्न राजाओं की समस्त नामावली उपस्थित करता है। जिनका पहिला राजवंश सिकन्दर के आक्रमण से ५६०० वर्ष पूर्व बैक्ट्रिया में राज्य करता था।" तात्पर्य यह निकला कि ये राजा ईसा से ६ हजार वर्ष पूर्व बेक्टेरिया में राज्य करते थे। क्योकि चन्द्रगुप्त कालीन सिकन्दर के आक्रमण को २२५० वर्ष हो गये। २२५० + ५६०० = ७८५० वर्ष पूर्व यह राजा राज्य करते थे। जिस समय भारतीय राजा विदेश में राज्य करते थे उस समय भारतीय आर्यों की सभ्यता किस उन्नति के शिखर पर पहुंच चुकी होगी, यह पाठक स्वयं विचार करें।

पाश्चात्य और पौरस्त्य कितने ही विद्वानों के इस प्रकारके स्पष्ट लेख मिलने परभी समझमें नहीं आता कि डाक्टर साहब ने यह प्रतिज्ञा किस प्रकार कर डाली कि आर्यों का इतिहास, सभ्यता और भाषा ईसा से दो हजार पूर्व कथन करना अनुचित है तथा कोई भी पौरस्त्य विद्वान् ऐसा करने को उद्यत न होगा।"

यदि डाक्टर साहब की यह धारणा इस बात पर आश्रित है कि उन्होंने अपने निराले ढंग से ऋग्वेद में बेबीलोनियां का ईसा से १०३२ पूर्व का इतिहास निकाला है, इसलिये वेद उससे पीछे के हैं, तब हम यह निवेदन करेंगे कि डाक्टर साहब की उक्त

निराली शैली से हमें उनके बताये सूक्त मे सन १९१९ वाली दिल्ली की गोली घटना का उल्लेख दिखाई पड़ता है। स्पष्ट रूप से उस मे पत्थर वाले कूए स्वामी श्रद्धानन्द, प्रो० इन्द्र उनके धनुर्धारी (अर्जुन) पत्र, पहाड़ी धीरज, तथा चांदनी चौक आदि का वर्णन मिलता है, अतः यह सूक्त १९२० ईस्वी मे या उसके पीछे का बना जान पड़ता है। (इस का विषद वर्णन आगे लेखमे आजायगा) अतः डाक्टर साहब की उक्त निराधार धारणा का साथ विज्ञ पण्डित किस प्रकार दे सकेंगे, यह हमारी समझमें नहीं आता। यदि डाक्टर साहबने इस विषय पर कुछ और लिखा तो अवश्य भली भाँति विचार हो सकेगा।

आगे डाक्टर साहब लिखते हैं कि वेद के विषय में इस सारी भ्रान्ति का मूल वह व्यक्ति वाचक संज्ञाये तथा विदेशी भाषाओं के शब्द है जिनको कि पण्डित मण्डली अब तक संस्कृत का समझ कर अर्थ का अनर्थ करती रही। डाक्टर साहब ने उनको छाँट निकाला है। इस छाँट मे उन्होने एक कौशल यह भी किया है कि जहां शब्द-साम्य न हुआ वहां वेद के शब्दों को विकृत समझ कर सुमेरियन भाषा का सहारा ले अनुवाद कर डाला। उस शब्द के खपाने के लिये किस किस शब्द का गला घोटना पड़ा, किस किस शब्द का नया अर्थ घड़ना पड़ा, और किस नियम की उपेक्षा करनी पड़ी है यह तो उनका अन्तरात्मा जानता होगा। हम तो केवल दिग्दर्शन मात्र करा सकेंगे और जहां वेद ने इतिहास का साथ न दे कुछ नई बात कही वहां डाक्टर साहब ने 'इतिहास पर न्यू लाइट' का नाम दे सन्तोष किया है।

७ जुलाई के लेख में आप ने कुछ शब्द और उनके उद्धरण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वेद में अन्य भाषाओं के शब्द हैं। पर आपने इस धारणा के लिये युक्ति नहीं दी। क्या भाषा विज्ञान की सारी थियोरियां निरर्थक हैं? जो यह सिद्ध करती हैं कि संस्कृत मातृ-भाषा है। अन्य भाषायें पीछे उसी से निकली हैं।

लेख-विस्तार भय से यहाँ केवल दो एक युक्तियां देते हैं आवश्यकता पड़ी तो पुनः विस्तार से लिखेंगे संसार मे जितनी भाषायें हैं उन सब से अधिक विस्तृत, पूर्ण तथा क्लिष्ट उच्चारण वेद-भाषा में हैं। वैदिक भाषा की आवाजें अन्य भाषाओं की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। संस्कृत मे ४७, रूसी मे ३५, फारसी में ३१, तुर्की और अरबी मे २८, स्पेनिश में २७, अङ्गरेजी मे २६, फ्रेंच मे २५, लैटिन और हिब्रू में २० और बाल्टिक मे १७ उच्चारण है। हां चीनी भाषा है जिसमे देखने को २०४ आवाजे है। पर वह थोड़ी सी ही आवाजो का विस्तार है। जिस प्रकार संस्कृत मे क् क का कइ के चार रूप हैं, इसी प्रकार चीनी भाषा मे भी हैं। उन्हीं भेदो की गणना से चीनी मे कुल २०४ ही भेद होतेहैं, पर संस्कृतमे यदि इस प्रकार गणना की जाय तो हजारो बैठेगी। जिस प्रकार एक ही वर्ण हल्, ह्रस्व दीर्घ, प्लुत, भेदसे चार प्रकार का का उदात्त अनुदात्त स्वरित भेद से १२ प्रकार का और सानुनासिक और निरनुनासिक भेद से २४ प्रकार का होता है। हमारे यहां स्वर और व्यञ्जन मिला कर ४७ प्रकार के हैं यदि स्वरो को हल् न होने के के कारण १८ से और व्यञ्जनो को २४ गुणा करें तो संख्या हजार के लगभग पहुँचेगी। अतः सिद्ध है इस से विस्तृत और पूर्ण वर्णमाला नहीं है। क्लिष्टता मे भी और भाषाये इस का मुकाबला नहीं कर सकतीं संस्कृत के ऋ, लृ, ष, त्त, ज्ञ, ध, छ, ढ, ब, भ, ङ, ञ, ण, ळ, और ळ्ह आदि का ऐसा उच्चारण है जो दूसरे देश वालो से करते ही नही बनता। दूसरे देश वालों की ही क्या, उदात्त आदि भेद से अ के १८ प्रकार के उच्चारण को तो हमारे देश वाले भी भूल गयेहै। अस्तु। और भाषाएं सरल उच्चारणो की ओर दौड़ रही हैं यह उस उस भाषा के अध्ययन तथा तुलना से ज्ञात हो सकता है। संस्कृत भाषा के समास तद्धित तथा कृत्य प्रत्ययो ने (जो और भाषाओं में नहीं मिलते) उसके मूल भाषा होने मे कोई सन्देह नही छोड़ा है। आधुनिक भाषा के पण्डितों के अनुसार भी वाक्यरूप संश्लेषात्मक परिवर्त्तन-रहित, विभक्ति युक्त, पूर्ण वर्णमाला वाली ही भाषा सब भाषाओं की मूल हो सकती है। यह सब बाते संस्कृत मे ही हैं अतः संस्कृतको छोड़कर और कोई भाषा मूल भाषा नही हो सकती। जब संस्कृत भाषाही मूलहै तो

उसमे यह अपभ्रंश किस मौलिक भाषा से आये ? क्या लिखित प्रमाणो से सिद्ध करोड़ो वर्ष पुरानी वैदिक भाषा से पुरानी सुमेर, मीरिया या मिश्र की कोई भाषा है ? यदि नहीं, तो फिर यह अपभ्रंश वेद में किस प्रकार आये ? क्या शब्दसामान्य मात्र से ? यदि शब्द-सामान्य मात्र को मान कर ही भाषाओ मे मिश्रण माना जाये तो बड़ा अनर्थ उपस्थित हो जायगा। फिर तो किसी भाषा का भी अर्थ ठीक ठीक न हो सकेगा। समस्त भाषाओ का मूल संस्कृत है। अन्य भाषाएं उसी से निकली है अत परस्पर ध्वनियो और शब्दो का साम्य अनिवार्य है। यदि अङ्गरेजी भाषा में कोई कहेगा आइ एम गोइङ्ग (मैं जा रहा हूँ) तो आप अर्थ करेगे, मै गो रहा हूँ। क्यो हिन्दी में गो शब्द है जिसका अर्थ घुसेड़ना है इसही प्रकार ही इज ए ग्रेट मैन (वह बड़ा आदमी है) आप अर्थ करेंगे He is agar (अगर) ate man (अरे आदमी अगर वह खा लिया गया। इस ही प्रकार हिन्दी का 'रे' सम्बोधन अङ्गरेजी का ray (किरण) हिन्दी में सन = घास, उर्दू मे संवत् अङ्गरेजी मे बेटा या सूर्य हिन्दी में गुड, अङ्गरेजी मे good = अच्छा, हिन्दी में रम या राम अङ्गरेजी मे Ram = मेढा पञ्जाबी मे किल = कील, अङ्गरेजी मे Kill = मारना, ऐसे ही बंगला मे बोई = पुस्तक हिन्दी मे बोर्ड भूमि आदि, हिन्दी बो अङ्गरेजी मे bow = कमान या गले में बाँधने की बो, अङ्गरेजी का seed = बीज, संस्कृत का सीद = दुःख पाना, संस्कृत का नीड = घोसला अङ्गरेजी का need = चाहना हिन्दी अङ्गरेजी और उर्दू मे तो परस्पर इतना ध्वनि साम्य है कि सैंकड़ो हजारो शब्द मिलते हैं। यहां तक कि अङ्गरेजी की वर्णमाला मे भी हिन्दी के बहुत शब्द है। जिन को मिलाने से अच्छे सुन्दर वाक्य वन जाते हैं यथा B B G, I. G, T P O, P K I G—अर्थात् बीबी जी ? "आई जी" ! टी (Tea) पीओ ? "पी के आई जी"। हिन्दी उर्दू अङ्गरेजी के कुछ शब्दो का मिलान देखिये—

अङ्गरेजी	हिन्दी	उर्दू
or = या	ओर	और
feel = अनुभव		फील = हाथी
lot = ढेर	लोट	लौट
how कैसे	हाऊ	हाऊबेर
they = वे	दे = देना	
tell = बताना	टल	
come = आना	कम	कमकाम (पञ्जाबी)
had = रखा	हड, हाड	× हद
more = अधिक	मोर, मोरी	मार = चूराकर
than = अपेक्षा	देन	
save = बचाना	सेव	सेव
foot = पैर	फुट	
hit = टकराना	हित	
ill = बीमार		इल = चील
put = रखना	पूत	
been = होना	बीन	बीन = देखना
money = धन	मणि	मनी = वीर्य
dust = धूल	दस्त = शौच	दस्त = हाथ
wrote = लिखा	रोट	
rode = चढा	रोड	
sent = भेजा	सन्त	
same = वैसा	सेम	
bad = बुरा	बद = रोग	बद = बुरा
kiss = चुम्बन	किस	
miss = लड़की	मिस	मिस = ताम्बा
see = देखना	सी = जैसी	सी–सी

ऐसे ही पञ्जाबी अङ्गरेजी मे बहुत साम्य है। It–वह, इट ईंट, Rub रगड़ना रब-परमात्मा, Come आना, कम-काम आदि यदि इस प्रकार शब्द-साम्य का सहारा लेकर अर्थ किया जाये तो किसी भी भाषा का अर्थ बिगाड़ा जा सकता है। परन्तु पाठक आगे देखेंगे कि डाक्टर साहब मन्त्रो का अर्थ करते हुये मन्त्रस्थ पदों को सुमेरियन बताने में शब्द साम्य को भी नहीं निभा सके हैं। उन्होने अत्यन्त ही मन मानी की है। जहां ध्वनि–साम्य या अपभ्रंश का सहारा नहीं ले सकेहैं वहां बड़ेही निराले ढंगपर शब्दों को तोड़ मोड़ कर सुमेरियन शब्द निकाला है। अपूर्ण

[यह लेखमाला आर्यमित्र में क्रमशः प्रकाशित होगी] —सम्पादक

शरीर-विज्ञान (Anatomy) पर वैदिक टिप्पणियां

(ले०—कविराज डॉ० वीरसेन आयुर्वेद शिरोमणि)



पाठकों की सेवा में हम इस लेख के द्वारा शरीरशास्त्र की भूमिका पर प्रकाश डालना चाहते हैं। वेदों में इस विषय का पूर्ण ज्ञान भरा हुआ है। अतः उसका कुछ प्रारम्भिक अंश उदाहरणार्थ उपस्थित करते हैं। भूमिका मन्त्र इस प्रकार है—

"सप्तास्यासन् परिधय, त्रिः सप्त समिधः कृता।
देवा यज्ञं वितन्वाना, अबध्नन्पुरुषं पशुम्॥"

अथर्व. का. १९ सू ६ म १५। यजु अ ३१ म १५

इसमें आख्यायिका रूप मे वेद एक महान् तत्व का मूल स्थापन करता है। किसी को समझाने का सबसे सरल और हृदयग्राही रूप हो सकता है तो आख्यायिका का। माता अपने बालक को आज्ञा पालन का उपदेश देती हुई बालक के हृदय मे उसे स्थायी रूप से अंकित करते समय राम का चरित्र उसके सामने रखती है। बालक के हृदय में वह बात जम जाती है। वह उसे कभी नही भूलता। उसका हृदय मिट्टी के कच्चे बरतन के समान है जिसमे कि हम विविध चित्रों का निर्माण कर सकते हैं। आज भी, जिस प्रकार मनुष्यों की बाल्यवास्था होती है उसी प्रकार से कभी किसी अपरिचित, अज्ञात काल मे इस मानव जाति का बाल्यकाल रहा होगा। उस समय उसे ज्ञान की आवश्यकता थी। अपने जीवन प्रभात मे, प्रथम उषा के उज्ज्वल आलोक में उसने जो ज्ञान प्राप्त किया उसके प्रकाश से उसका हृदय अनुपम एवं अपूर्व उल्लास से भर गया। उस समय उसे जो मूलधन ईश्वरीय देन के रूप में उपलब्ध हुआ वही उसकी भावी सम्पत्ति का मूल था। उसके उत्सुक, पवित्र हृदय पर परमात्म ज्ञान को स्पष्टरूप से खचित करने के लिये यदि आख्यायिका जैसे सरल एवं मनोरम उपाय का भी अवलम्बन किया गया हो तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? ईश्वरीय ज्ञान के सह अंश से भी अल्पज्ञान, शरीर शास्त्र का प्रारम्भ भी आख्यायिका रूप से ही हमारे पूर्वजों के सम्मुख उपस्थित हुआ। इसमे सन्देह नही कि उन्होने उससे उपयुक्त रीति से लाभ उठाया। शरीर विज्ञान की भूमिका भी आख्यायिका से ही प्रारम्भ होती है।

कभी किसी प्राचीन समय में—कोई नहीं जानता कि कब—देवताओं ने अपने धार्मिक स्वभाव के अनुसार यज्ञ करने की इच्छा प्रकट की। दीर्घकाल तक अपने अमररूप तथा अक्षय्य अनन्त*युवावस्था के सुन्दरतम जीवन में सुखोपभोग करते करते उन का मन उससे विरक्त हो गया। अब उन्होंने किसी महान् कार्य को अपने हस्त में लेकर अपना मनोरंजन करना चाहा और इसी तरंग मे एक महान् यज्ञ का विस्तृत आयोजन कर बैठे। उस यज्ञ की भूमि जिसमें कि वे यज्ञानुष्ठान के लिये उद्यत हुए एक नहीं, दो नही अपितु "[1] सात परिधियां (घेरे) थीं।" अपने परिश्रम और लगन से उन्होने "[2]तीन प्रकार की सात सात अनुपम समिधायें उस यज्ञ में चयन की' और "[3]उस यज्ञ के सम्पादनार्थ जीवात्मा रूपी पशु को उन्होने बाँधकर रखा।" यही पशु था जो कि उनके इस विचित्र आयोजन को सफल बना सकता था। अन्त मे उनका यज्ञ सफल हुआ और उसका परिणाम समस्त मानव संसार आज भी प्रकृति सुन्दरी के विस्तृत अंक में विविध क्रीड़ा में मग्न हो रहा है। उस महान् यज्ञ का अब कोई आदि अथवा अन्त नहीं प्रतीत होता। सम्प्रति वही एक समस्या है। उस का निर्माण सरल नहीं। आख्यायिका अवश्य आक-

* अग्नि, वायु आदि दिव्य गुण युक्त देवता सदा ही अपने कार्य करने में समर्थ तथा युवा रहते हैं।

१—"सप्तास्यासन् परिधय"

२—"त्रिः सप्त समिधः कृताः"

३—"देवा यज्ञं वितन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्"

क एवं विचित्र है। उसकी इस विचित्र आयोजना को सुनकर हम अपनी उत्सुकता का सवरण नहीं कर सकते और स्वत हमारी प्रकृति उसके तात्पर्य को जानने के लिये उल्लसित होने लगती है।

यदि स्पष्ट शब्दो में कहें तो "[1] इस विशाल एवं विचित्र यज्ञ का उपकरण यह शरीर ही है। इस शरीर में जीवन रूप यज्ञ का आयोजन करने के लिए ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश नामक देवताओं ने मिलकर अपनी उत्कट इच्छा का प्रकाश किया" और उसी के फल स्वरूप शरीररूपी यज्ञस्थल में सातत्वचा रूपी परिधियों का निर्माण किया। "[2] आयुर्वेद शास्त्र के मतानुसार हमारे शरीर के आवरण स्वरूप सात पत्र त्वचा के ही हैं और ये भिन्न भिन्न नामो से सम्बोधित किये जाते हैं"। इन सात परिधियों के भीतर "[3] सात धातु, सात कला तथा सात आशय रूपी २१ समिधाये हैं" जो कि दीप्त होकर जीवरूप पशु की सहायता से देवताओं के इस जीवन यज्ञ को सफल बना रही हैं। इन तीनो सप्तको के नाम क्रमशः निम्न हैं—

(१) "[4] रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र ये सात धातु हैं"।

(२) "[5] वातशय, पित्ताशय, श्लेष्माशय, रक्ताशय, आमाशय, पक्वाशय और मूत्राशय (गर्भाशय स्त्रियो के) ये सात आशय हैं।"

(३) "[6] माँसधरा, रक्तधरा, मेदोधरा, श्लेष्मधरा, पित्तधरा, पुरीषधरा, और शुक्रधरा ये सात कला हैं।,,

१—पुरुषो वाव यज्ञ"

२—"सप्तत्वचा भवन्ति" (सुश्रुत शारीर स्थान अ. ४)

३—"कला सप्त। आशयाः सप्त। धातवः सप्त। (सु. शा. स्था. अ ५,)'

४—"रसासृक्‌ माँस मेद स्थि मज्जा शुक्राणि धातवः (अष्टांगहृदय, सूत्रस्थान, अ. १, श्लो. १३)

५—"आशयास्तु वाताशयः, पित्ताशयः श्लेष्माशयो रक्ताशयः, आमाशयः, पक्वाशयो मूत्राशयः, स्त्रीणां गर्भाशयो ऽष्टम इति॥ (सुश्रुत. शारीर स्थान. अ. ५)

६—"सुश्रुतशारीरस्थ. अ० ४)

यदि हम उपयोगिता की दृष्टि से विचार करें तो हमे ज्ञात होगा कि ये ही २१ पदार्थ वास्तव मे इस शरीर को बनाये हुए हैं। ये जिस समय अपने नियमितसगठन को छोड़ दें, तो उसी समय यह बना बनाया यज्ञ, बना बनाया खेल क्षण भर में नष्ट हो जाय इन्हीं के ऊपर निर्भर होकर आयुर्वेद शास्त्र का विशाल भवन अपनी महत्ता का प्रकाश कर रहा है। अन्यथा क्षण भर मे वह धूलिसात् हो जाये। इस बड़े भारी ससार चक्र का एक मूल यन्त्र सदा के लिए नष्ट होकर विशाल ससारको एक बड़ी भारी अपूर्णता का कारण बन जाय।

अब यदि हम इन २१ समिधाओं की पृथक्-पृथक् व्याख्या करने लगे तो एक महान् पुस्तक बन सकती है अतः इस छोटे से लेख में यह बताने का प्रयत्न किया कि वेद कितने सुन्दर स्पष्टरूप से शरीर विज्ञान के सिद्धान्तो को प्रकट कर रहा है। केवल एक छोटे से मन्त्र के भीतर सम्पूर्ण शरीर विज्ञान छिपा है और इसको याद कर लेने पर उक्त विषय को भली भाँति स्मृति मे अङ्कित कर सकते हैं। इसी प्रकार से एक नहीं अनेकों मन्त्र इस विषय के वैदिक साहित्य मे छिपे हुए हैं जिनसे सम्पूर्ण शरीर के छोटे से छोटे अग पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला जा सकता है।

पुरुषार्थ और ईश—साहाय्य

मनुष्य को यह करना उचित है कि ईश्वर ने मनुष्यो मे जितना सामर्थ्य रक्खा है उतना पुरुषार्थ अवश्य करें। उसके उपरान्त ईश्वर के सहायकी इच्छा करनी चाहिये। क्योकि मनुष्य में सामर्थ्य रखने का ईश्वर का यही प्रयोजन है कि मनुष्यों को अपने पुरुपार्थ से ही सत्य का आचरण अवश्य करना चाहिये। जैसे कोई मनुष्य आंख वाले पुरुप को ही किसी चीज को दिखला सकता है अन्धे को नहीं, इसी रीति से जो मनुष्य सत्य भाव, पुरुषार्थ से धर्म को किया चाहता है उस पर ईश्वर भी कृपा करता है, अन्य पर नहीं। क्यो कि ईश्वर ने धर्म करने के लिए बुद्धि आदि बढ़ने के साधन जीव के साथ रखे हैं। जब जीव उनसे पूर्ण पुरुषार्थ करता है तब परमेश्वर भी अपने सामर्थ्य से उनपर कृपा करता है, अन्यपर नहीं।

सभ्यता का आदि केन्द्र

(ले० —श्री प० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ)





मानव समाज की सभ्यता का आदि मूल केन्द्र कौनसा भूभाग रहा होगा, इस विषय में पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वानो मे नाना विप्रतिपत्तियां चली आ रही हैं। पाश्चात्य विद्वान यही मानते चले आ रहे हैं कि वेद आर्यों की तात्कालिक सभ्यता का दिग्दर्शन कराने वाले उच्च कोटि के धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसी प्रकार पौरस्त्य विद्वानो मे चिरकाल से यह पक्ष चला आ रहा है कि वैदिक वाङ्मय आर्यों की ऐतिहासिक तथा धार्मिक घटनाओं से परिपूर्ण है। किन्तु, इनमे भी दो भेद हैं। एक वे ऐतिहासिक पक्ष वाले जो वेदो मे तथाकथित इतिहास को पुराकल्प का (पूर्वसृष्टि का) मानते हैं, अर्थात् पुराकल्प की पूर्वसृष्टि की कथाएं। दूसरे इस पक्ष को नहीं मानते। पौराणिक लोग पुराकल्प के आधार पर ही वेदो की उन तथा कथित गाथाओं अथवा कथाओं को मानते हैं।

वस्तुतः वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं और उनका प्रकाश ऋषियों के हृदयो मे हुआ, यही पक्ष सबसे प्रबल और सबसे प्राचीन है। मन्वादि महर्षि इसी पक्ष के है। निरुक्तकार भी "नद्येनाँस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते" इसी पक्ष को मानते है। मनु ने तो स्पष्ट कहा है —

अग्निवायुरविभ्यस्तु, त्रय ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्धयथ ऋग्यजुः सामलक्षणम्॥

अग्निवायु आदित्यादि द्वारा वेदो का प्रादुर्भाव हुआ। द्वादश अध्याय में स्पष्ट कहा है कि

'अशक्य चाप्रमेय च'

मनुष्य वेदो को बनाने में असमर्थ है, वह इस प्रकार की रचना रच नहीं सकता।

इस प्रकार उपनिषदो के शब्दो में भी "यस्य निश्वसितं वेदा' ईश्वर का निश्वास वेद है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है इस विषय में "तस्म यज्ञात्सर्वहुतः ऋच सामानि जज्ञिरे" इत्यादि अन्तःस्थ प्रमाण भी मिलते हैं। तो भी पाश्चात्य विद्वान् तथा पाश्चात्य ढग का अनुसरण करने वाले भारतीय विद्वान् वेदो को ऐतिहासिक ग्रन्थ मान कर इस बात की खोज में लगे रहे हैं कि मानव समाज की सभ्यता का आदि मूल केन्द्र कौनसा है। पाश्चात्य विद्वान् प्रायः एक मत हैं कि मानव समाज की सभ्यता का केन्द्र मध्य एशिया रहा है और वहीं से आदि आर्य सब देशो में फैले, कोई भारत की ओर आये, कोई युरुप (हरिवर्ष) देश की ओर गये। प्रथम प्रथम इस पक्ष का बड़ा जोर रहा किन्तु स्व० लोकमान्य तिलक ने अपने प्रगाढ पाण्डित्य से एक नवीन आविष्कार किया कि आर्यों की आदि वसति उत्तरध्रुव मे थी तब पाश्चात्य विद्वान् चकित हुए। स्व० प्रोफेसर मेक्समूलर ने लोकमान्य तिलक को लिखा था कि आपकी अद्वितीयकृति "उत्तरध्रुव में आर्यवसति" ने अन्वेषण तथा अनुसन्धान के लिए एक नया द्वार खोला है।

इस पक्ष को सिद्ध करने के लिए लोकमान्य तिलक ने समस्त पाश्चात्य पद्धति का प्रयोग किया था। इस नये आविष्कार से सर्वत्र एक हलचल मच गई और अन्य भारतीय विद्वान् भी इसकी खोज में डट गये। स्वर्गीय आचार्य पण्डित सामश्रमी फेलो 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल' ने लोकमान्य की इस उक्ति का प्रबल खण्डन किया कि आर्य उत्तरध्रुव के निवासी थे। आपने अर्वाचीन समय की भारतीय नदियो और प्रदेशो के मिलते जुलते नामों के आधार पर यही सिद्ध करने का भरसक उद्योग किया कि आर्य भारत के ही निवासी थे। महाराष्ट्र के विद्वान् श्री पावगी ने भी इसी प्रकार का प्रयत्न किया।

इन सब विद्वानो ने वेदो का गौरव बढ़ाया तो

सही किन्तु वेदो को उस स्थान पर लाकर न बिठा सके जहां मनु ने बैठाया था। इसका कारण यह है कि इनकी अनुसन्धान पद्धति केवल पाश्चात्य रंग ढंग की रही। ये यही मान कर चले कि वेद ऋषियो के बनाये हुए हैं वेद उनकी भिन्न प्रदेश की यात्रा और सभ्यता को वर्णन करने वाले पुस्तक हैं। कोई कोई इनको ऐतिहासिक ग्रन्थ मानते हुए भी पुराकल्प (पूर्व सृष्टि) का इतिहास मानते चले आये हैं। इनके मत में वेदो में व्यक्ति विशेषो के नाम आते हैं, प्रदेशो के नाम आते हैं, नदी आदि के नाम आते हैं वे पुराकल्प के हैं। यही इतिहास परम्परा से चला आया है। प्रमुख वेदभाष्यकार इसी प्रकार का इतिहास मानते थे। अस्तु। हम अर्वाचीन विद्वानो की बात कह रहे थे। इनके अनुसन्धान में एक बडी त्रुटि यह है कि वे विदेशी भाषाओ की धातुओ से वैदिक शब्दो का अनुसन्धान करके अनर्थ करते चले आये हैं। जैसे पाश्चात्य विद्वान् 'आर्य' शब्द की व्युत्पत्ति के लिए विदेशी धातु अर् अथवा इसी प्रकार की अन्य धातुओ से काम लेकर यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि आदि आर्य खेतिहर अर्थात् किसान थे और वर्त्तमान आर्यसन्तान खेतिहर आर्यों की सन्तान हैं। ये लोग यह बात भूलते हैं कि जब हमारी भाषा में हमारे धातु हैं तो अपनी भाषा की सिद्धि के लिए ग्रीक लैटिन तथा अन्य भाषाओ की सहायता लेने की क्या आवश्यकता है; और है भी ऐसा करना एक महान् अनर्थ की बात। अब प्राय समस्त भाषा-शास्त्र-कोविदो का एक मत हो चला है—नहीं, नहीं होगया है—कि संस्कृत समस्त ससार की भाषाओ की जननी है, और संस्कृत अर्थात् देववाणी वेदवाणी से ही उत्पन्न हुई है तब क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि लैटिन, ग्रीक भाषाओ की धातुओ के बल पर वैदिक वाङ्मय का अनुसंधान किया जा रहा है? श्रीयुत प्राणनाथ विद्यालङ्कार ने भी इसी प्रकार का हास्यास्पद प्रयत्न करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि आर्यों की सभ्यता का केन्द्र मिश्र देश है। इत्यादि। यदि हम भी संस्कृत धातुओ के आधार पर पाश्चात्य विद्वानो के साहित्य का अनुसंधान करें—और ऐसा करने का हमको पूर्ण अधिकार है जब कि पाश्चात्य विद्वान् भी संस्कृत भाषा को सर्व भाषा-जननी मानते हैं—तो पाश्चात्य विद्वान् को कैसा लगेगा जब कि हम अपने ढंग से उनके साहित्य को तोड़ें मरोड़ेंगे। पौरस्त्य वाङ्मय का अनुसंधान पौरस्त्य ढंग से ही होना चाहिये। वेदो में विपाट आदि नदियो का उल्लेख देखकर केवल नाम-सादृश्य से यह सिद्ध करने की चेष्टा करना कि आर्य पंजाब के ही आदि निवासी थे यह बात ऐतिहासिक पक्ष में भले ही ठीक जँचती हो किन्तु यह वैदिक साहित्य की निरुक्ति का प्रकार नहीं। इसी प्रकार नाम सादृश्य से अफगानिस्थान से पजाब तक इक्कीस नदियो के नाम गिना कर आर्यों को अफगानिस्तान से आये हुए बतलाने का प्रयत्न है। जब वेद ईश्वरीय ज्ञान है तो उसका देश विशेष, जाति विशेष, राष्ट्र विशेष, प्रदेशविशेष, नदी व पर्वत विशेष से क्या सम्बन्ध है? महा प्रलय के पश्चात् जो भी भूभाग जलमय सृष्टि के ऊपर सब से प्रथम प्रकट हुआ वही मनुष्य की सृष्टि हुई, यही मानना पड़ेगा और भूगर्भ विद्या-विशारद अब यह मानने लगे हैं कि महाप्रलय में से सबसे प्रथम हिमालय और त्रिविष्टप (तिब्बत) का भाग ऊपर आया और वहीं प्रथम प्रथम मनुष्य सृष्टि हुई होगी। अगत्या ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश ऋषियो द्वारा वहीं हुआ होगा। अतः मानव समाज का आदि मूल केन्द्र, सभ्यता का आदि मूल केन्द्र त्रिविष्टप देश है और वहीं से आर्य भिन्न भिन्न देशो में गये और वर्त्तमान संसार का मानव समाज उसी आर्य वंश की परम्परा है। इस दृष्टि से आर्य सभ्यता का आदि केन्द्र त्रिविष्टप देश है। ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं। पाश्चात्य अनुसधान पद्धति से नहीं, अपितु प्राकृतिक रीति से।

तीन प्रकार की वाणियाँ

मनुष्यों को अति उचित है कि जो इस संसार में तीन प्रकार की वाणी होती हैं अर्थात् एक शिक्षा विद्या से संस्कार की हुई दूसरी सत्य भाषण युक्त और तीसरी मधुर गुणसहित, उनका स्वीकार करें।

वेद में आयुर्वैदिक रसायन

(ले०—श्री पं० द्विजेन्द्रनाथ जी आचार्य)



प्राचीन काल से आज पर्यन्त जितने बडे बडे आचार्य हुए हैं प्राय सभी ने वेदो को अखिलविद्या-निधान बताया है। आर्यों की भी यही धारणा बहुत प्राचीन समय से चली आरही है। भगवान शंकराचार्य के शब्दो मे वेदो की महिमा निम्नप्रकार से है —

"महत ऋग्वेदादे शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत्सर्वविद्यावद्योतिन"

[शंकरभाष्य]

अर्थात् अनेक विद्या-ज्ञान विज्ञान से युक्त और दीपक के समान सकल पदार्थों को प्रकाशित करने वाले जो ऋग्वेदादि वेद-चतुष्ट है वह सर्वज्ञ परमेश्वर की ही कृति है। जैसे दीपक, अपने प्रकाश से सकल पदार्थों को प्रकाशित कर देता है, इसी प्रकार वेद सकल विज्ञानो को प्रकाशित करते है। अर्थात् वेद सर्व विद्याओ के द्योतक है। इसलिए भगवान मनु ने भी स्पष्ट कहा है —

"भूत भव्य भविष्यञ्च सर्व वेदा प्रसिध्यति।"

जो ज्ञान-विज्ञान फैल रहा है जा फैल चुका, तथा जो भविष्य मे फैलेगा उस सब का आदि स्रोत वेद ही है। वेदो के प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित सत्यव्रत सामश्रमी ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'त्रयीचतुष्टय' मे लिखा है —

The study of certain portion of the vedas leads even to the conclusion that certain scientific researches had been carried in the country to such perfection that even America and the advanced countries of Europe have not yet attained it.'

अर्थात् वेदो के कतिपय स्थलो के अवलोकन से तो यह प्रतीत होता है कि भारत में कई वैज्ञानिक गवेषणाएं तो उस कोटि तक पहुँच चुकी थीं जिसे अमेरिका जैसे देश जहाँ निरन्तर वैज्ञानिक खोज होती रहती है तथा योरोप के अन्य समुन्नत देश भी, अभीतक नही प्राप्त कर सके। परन्तु हम वेदो से इतने विमुख एव उदासीन होगये कि केवल वेद का नाम शेष रह गया अपितु उसके स्वरूप व लक्षणो तक का हमे ज्ञान नही रहा। वेदो के रहस्य तथा तत्वज्ञान की तो कौन कहे? वेद तो मुहर बन्द किताब (sealed book) हो गई। औरो के विषय मे क्या कहा जाय? स्वयं ब्राह्मण वर्ग भी प्राय आज वेद के ज्ञान से वंचित है। जिन भूसुरो के लिए महर्षि पतजलि ने लिखा है —

"ब्राह्मणेन निष्कारण षडगो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति"

अर्थात् ब्राह्मण को निष्कारण निस्वार्थ भाव से षडग वेद का अध्ययन करना ही चाहिये। परन्तु कहाँ है वे आज ब्राह्मण? वेदो की शिक्षा के प्रति उदासीनता धारण करने से ही हमारी यह दुरवस्था हुई है। इसीलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी वेदो की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया। परन्तु आर्यसमाज का ध्यान इस तरफ जितना होना चाहिये था, उतना नही है! आज हमे जितने वेद भाष्य प्राप्त है वे वेदार्थ रहस्य को खोलने के लिए अपर्याप्त ही नही, किन्तु कितने ही तो उनमें सायण महीधर आदि के जैसे असम्बद्ध और हेय है। इन भाषाकारो ने आधुनिक लोकभाषा के आधार पर वेदो के भाष्य किये। परिणाम यह हुआ कि वेदो के यथार्थ ज्ञान के प्रकाश से जनता वचित रह गई। सम्पूर्ण वेदो मे सायणादि को कर्मकाण्ड तथा विनियोग ही आभासित हुआ। वैदिक भाषा की व्याख्या आधुनिक लौकिक भाषा के आधार पर नही हो सकती, परन्तु सायणादिक ने यह न समझ कर वेद को प्रचलित कर्मकाण्ड के रंग में रंग दिया।

प्रो० मैक्समूलर ने एक बात बड़े महत्व की कही है। वे कहते हैं:—

'Nay, I believe it can be proved that more than half of the Difficulties in the history of religions thoughts owe their origin to the Constant misinterpritation of ancient language by modern language of ancient thought by modern thought"

जिसका भाव यह था कि प्राचीन धर्मतत्वों को यथार्थ रीति से समझने मे जो कठिनाइयाँ प्रतीत होती है उनमे अधिकतर का कारण तो प्राचीन भाषाओं की आधुनिक भाषा के द्वारा व्याख्या करना अथवा प्राचीन विचारो के आधुनिक (वर्तमान) विचारो के द्वारा समझने की धारणा ही है। प्राचीन भाषा तथा विचार आधुनिक भाषा तथा व्यवहार से कदापि नहीं समझे जा सकते। सायणादि धुरन्धर विद्वानो ने यही भूल खाई। उन्होने वेदो के रहस्यों को आधुनिक भाषा के द्वारा खोलने का प्रयत्न किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस रहस्य को समझा और सत्य वेदार्थ शैली का पथ-प्रदर्शन किया। स्वामीजी दुर्भाग्यवश चारो वेदो का भाष्य नही कर सके। जितनो का भाष्य किया है वह भी दिग्दर्शन मात्र ही है। अति संक्षेप से होने के कारण वह केवल मार्ग प्रदर्शक का कार्य कर सकता है परन्तु उसे एक विशद एवं सुसमुपवृ हितभाष्य नहीं कहा जा सकता।

श्री स्वामी जी महाराज ने भी जो वेदों के परम आचार्य थे यही बतलाया—

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।"

जब सभी ऋषि महर्षियो का यह दावा है तो अवश्य ही वेदों में समस्त विज्ञान होने ही चाहिये। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता। आज हम इस लेख के द्वारा पाठको को यह बताना चाहते हैं कि जिस प्रकार वेद में अन्य विज्ञान है, उसी प्रकार आयुर्वेद विज्ञान भी है। उसमें से विशेष कर आयुर्वैदिक रसायन के तत्त्वों को ही प्रदर्शन कराने का इस लेख का ध्येय है। यद्यपि अधिकतर आधुनिक आयुर्वेद के विद्वानो की यह धारणा है कि प्राचीन समय तथा प्राचीन आयुर्वेद के ग्रन्थों में, औषध विज्ञान—वनस्पति विद्या का ही विधान है। रसायन का आविष्कार बहुत पीछे के काल में हुआ है। परन्तु हमारे विचार में यह धारणा निराधार है। जब हम वेदों तक में सब धातु उपधातुओं के न केवल नाम अपितु उनके गुण धर्म वर्णन पाते हैं, तो यह किस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन काल मे रासायनिक चिकित्सा नहीं होती थी। वेद में यों तो पारद, लोह, रजत, सुवर्ण ताम्र आदि सभी धातुओ के नाम आते हैं। परन्तु इस संक्षिप्त लेख मे सब का वर्णन होना शक्य नहीं और न इस लेख का उद्देश्य ही यह है इस लिये स्थाली पुलाकन्याय से केवल सर्व धातु शिरोमणि स्वर्ण का ही वर्णन करेगे। आयुर्वेद में स्वर्ण की अत्यन्त प्रशंसा की गई है। जैसे स्वर्ण धातुओ का राजा समझा जाता है उसी प्रकार रसायन में भी शिरोमणि गिना गया है। किसी रसायनाचार्य ने स्वर्ण की प्रशंसा में क्या सुन्दर कहा है:—

"शीतं स्वर्णसमानकान्तिकरणं बल्यञ्च शुक्रप्रदम्।
निश्शेषामयनाशनं क्षयहरं वार्द्धक्यनिर्मूलनम्॥
चक्षुष्यं वमिमेहवासहरणं पित्तास्त्ररोगञ्जयेत्।
वृष्यं मेध्यमपस्मृतिक्षयकरं सौवर्णभस्मामृतम्॥"

अर्थात् सुवर्ण की भस्म अमृत के तुल्य है— शीतल है स्वर्ण के समान कान्ति देने वाली है बल्य शुक्रप्रद, क्षयहर चक्षुष्य, वृष्य, मेध्य है, कहाँ तक कहे सभी रोगो को नष्ट करने वाली है। यह तो हुई किसी रसायन शास्त्र के परमनिष्णात् आचार्य, की प्रशंसा। परन्तु अब हम आपके सम्मुख वेदमन्त्र रखते है। देखिये युक्त विषय मे वेद की क्या सम्मति है। यजुर्वेद में आया है:—

आयुष्यं, वर्च्चस्यं, रायस्पोषमौद्भिदम्।
इदं हिरण्यं वर्च्चस्वज्जैत्राया विशतादुमाम्॥

इस मन्त्र का देवता 'हिरण्यतेज है। अर्थात् हिरण्य के क्या क्या गुण है यह इस मन्त्र में बतलाया गया है। अर्थ स्पष्ट है। (इदं हिरण्यं) यह सोना (आयुष्यम्) आयु के लिये हितकारक है (वर्चस्यं) कान्ति का देने वाला। (रायःपोषं) शक्ति तथा पुष्टि का देने वाला है।

(औद्भिदं) सर्व रोगों का भेदन करने वाला और (वर्चस्वत्) वर्चस्वी बनाने वाला है। (जैत्राय) रोगों से विजय प्राप्त करने के लिये उक्त स्वर्ण (मा आविशतात्उ) मुझे सदा प्राप्त हो, मैं सदा उसका सेवन करूं। स्वर्ण का कितना सुन्दर वर्णन है। और भी देखिये अगले मन्त्र मे और भी अधिक वर्णन है :—

न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोज. प्रथमजं ह्येतत्। यो बिभर्ति दाक्षायण हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायु स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायु॰। यजु॰३४-५१

(तत्) उक्त गुण वाले स्वर्ण को कोई राक्षस (न राक्षसा) या पिचाश रूपी रोग (न पिशाचा) (तरन्ति) तरते है। अर्थात् सुवर्ण से कोई रोग नहीं बच सकता। (यो) जो (दाक्षायणं हिरण्यं) चतुर रसज्ञ से तैयार किये हुये सुवर्ण का (बिभर्ति) सेवन करता कराता है। वह देवो को ही नही अपितु मनुष्यो की भी (देवेषु मनुष्येषु) (आयु) आयु को (दीर्घ) दीर्घ (कृणुते) करता है (कृणुते) और फिर करता है। इससे बढ़ कर और क्या वर्णन हो सकता है? भारतीय रसायनाचार्यों ने ही नही किन्तु योरुप के साइण्टिस्टों ने भी स्वर्ण की ऐसी ही प्रशंसा की है। योरुप के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर डब्ल्यू टी॰ फरने एम॰ डी॰ ने अपनी पुस्तक "Precious-stones for curative wear में स्वर्ण के औषधीय गुणो (Remedial uses) के विषय में लिखा है कि—Gold is an admirable remedy for constitutions broken down by the combined influence of syphilis and mercury" अर्थात् चव पीडित रोगी के लिये सुवर्ण अति प्रशंसनीय महौषध है। यहाँ तक नहा आगे चलके वे लिखते हैं:—I have cured several cases of melancholy promptly and permanantly with this metal (gold).

अर्थात् मैने स्वर्ण से बहुत से उन्माद के रोगियो को अति शीघ्र और सर्वथा अच्छा किया है। आगे वे कहते हैं—Gold is reputed to increase the vitality अर्थात् सोना जीवनी शक्ति को बढ़ाने मे प्रसिद्ध है। संस्कृत मे जिसका साफ अर्थ वही है जो ऊपर लिखित "स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायु." वेद वाक्य का है। क्या यह वेदो का विजय नहीं। जिस सत्य का वेदो ने वर्णन किया संसार आज सहस्र मुख से उसका गान कर रहा है। और भी अनेक रासायनिक सिद्धान्तो का वेदो मे बड़ी सुन्दरता से वर्णन है। परन्तु यहाँ तो हमने निदर्शन मात्र के लिये कुछ दिग्दर्शन कराया है। वेद के प्रेमियो से निवेदन है कि वे वेद के पठन पाठन को उत्तेजन दे—वेद रत्नाकर का मन्थन करें ताकि अनेक ज्ञान विज्ञान रूपी रत्नो की प्राप्ति हो, जिससे संसार का कल्याण हो।



श्री द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री।

इस विषय पर अधिक हमारे 'वेदतत्त्वालोचन' ग्रन्थ में जो शीघ्र प्रकाशित होने वाला है मिलेगा।

आत्मप्रशंसा

किसी भद्रजन को अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये तथा और की कही हुई अपनी प्रशंसा सुन कर न आनन्दित होना चाहिये अर्थात् न हसना चाहिये। जैसे अपने से अपनी उन्नति चाही आवे वैसे औरो की उन्नति सदैव चाहनी चाहिए।

पूर्णचन्द्र से

(ले०—श्री कुँ० हरिश्चन्द्रदेवजी वर्मा 'चातक' कविरत्न)



(१)

पूर्णचन्द्र ! आज तुम उडुगण मण्डलो में
हो कर अधीश जेसे यश चमका रहे।
वैसे सब देशो में समुत्तम था भारत य-
कहो क्या इसी की याद तो न हो दिला रहे!
अथवा प्रकाश कर-निकर विदार तम-
स्वावलम्ब का हो पाठ हमको पढ़ा रहे!
मान क्यो हुये हो बोलो ! कुछ तो बताओ प्यारे !
बड़ी देर से हैं हम तुमको बुला रहे!

(२)

स्वर्ण युग देखा है हमारा क्यो मयक तूने !
तुझ से सुयश जन सौगुना हमारा था।
त्योरियो के साथ तलवार खिंचती थी अहा !
प्राण से अधिक जब मान हमें प्यारा था।
लोटती थी भूरि सुख सम्पदा चरण तले-
हाथ में हमारे जब सत्य का सहारा था।
प्रेम उर मे था क्षेम नेम मे विराज रहा-
चारो ओर फैला जब पुण्य का पसारा था।

(३)

राम की पवित्र पितृ-भक्ति को विलोक तूने !
होगा बरसाया प्यारे ! खूब सुधा धार को?
फूले न गगन मे समाये होगे चन्द्र तुम !
देख कर जानकी के विमल विचार को?
पार्थ का पराक्रम विलोक महाभारत में-
ज्योति मिस किया होगा प्रकट दुलार को!
बार बार मन मे प्रताप को सराहा होगा-
एक होके मारते थे जब वे हजार को?

(४)

बादलो में ढक लिया होगा मुख बिम्ब तूने !
देखा होगा देश-द्रोहियो के जब जाल को!
बाँधती थी जब परतन्त्रता स्वतन्त्रता को-
ठोका होगा हाय ! तब तूने निज भाल को
कायर कुचालियों पै दाँत पीसे होगे तूने।
सोच बीर वशजो के गौरव विशाल को!
मन को अवश्य शोक ज्वाला में जलाया होगा-
प्यारे चन्द्र ! देख देख भारत के हाल को!

(५)

शीघ्रही सुनादे हमें सकट कहानी पूरी-
भाग्य को हमारे इस भाँति कौन रोगया!
किसने चुराये हैं हमारे सुख साज सभी-
सुधा-क्षेत्र मे है कौन विष-बीज बोगया?
हर्ष हरियाली से यहाँ की धरा हँसती थी-
उसे दुख सागर में कौन है डुबोगया?
कुछ तो बतादे निशिनाथ ! बडी देर हुई-
गौरव का हीरक हमारा कहाँ खोगया?

वेदोद्धारक दयानन्द-श्रुति और स्मृति

[ले०—श्री प० धर्मदेवजी सिद्धान्तालंकार विद्यावाचस्पति]

ऋषि दयानन्द ने जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया उनके विषय मे किसी का मतभेद हो सकता है, किन्तु इस से कोई निष्पक्ष विद्वान् इनकार नही कर सकता कि इस युग में जो वैदिक धर्म के उद्धारक हुए है उन मे सबसे प्रथम स्थान ऋषि दयानन्द को ही दिया जाना चाहिए। श्री शङ्कराचार्य श्री मध्वाचार्य श्री रामानुजाचार्य आदि सभी सुप्रसिद्ध आचार्योंने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार धर्म के उद्धार का प्रयत्न किया और वेदो के महत्त्व को भी सब ने स्वीकार किया किन्तु यह साहस ऋषि दयानन्द का ही था कि उन्होने साफ तौर पर वेदो के विरुद्ध वचनो को चाहे वे कितने भी प्रसिद्ध और प्राचीन ग्रन्थो मे पाये जाते हो अप्रामाणिकता को घोषित कर दिया और वेदो (मन्त्रसंहिताओ) के ही आधार पर अपने सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया।

श्री शङ्कराचार्य जी ने अपने जीवन का उद्देश्य मण्डनमिश्र को जो बताया उसको शङ्कर दिग्विजय (८ । ३७ । ३८) में इस प्रकार बताया गया है—

मम न किञ्चिदपि ध्रुवमीप्सितं, श्रुतिशिरःपथविस्तृतिमन्तरा। अवहितेन मखेष्ववधीरितः, स भवता भवतापहिम श्रुतिः॥ जगति सम्प्रति त प्रथया न्यह, समभिभूय समस्त विवादितम् त्वमपि सश्रय मे, मतमुत्तमं विगद वा वद वास्मि जितस्त्विति॥

अर्थात् मुझे सिवाय इसके और कुछ इष्ट नही कि वेद मार्ग का मैं विस्तार या प्रचार करूँ। ससार के ताप को दूर करने वाले उस वैदिक धर्म को केवल कर्म काण्ड में लगे हुए तुमने उपेक्षा की है। मैं सब मतान्तरो को हरा कर जगत् मे अब उसी का प्रचार करता हूं। तुम भी या तो मेरे उत्तम मत को स्वीकार करो या कह दो कि मैं हार गया इत्यादि। इस प्रकार स्पष्ट घोषणा करते हुए श्री शङ्कराचार्य ने मूल वेदो अर्थात् मन्त्र संहिताओ को केवल कर्म-काण्ड-परक मान कर वेद वा श्रुति के नाम से उपनिषदो का ही आश्रय लिया और उन्ही के आधार पर अपने अद्वैतादि विषयक सिद्धान्तो के प्रतिपादन का यत्न किया। श्री रामानुजाचार्य वल्लभाचार्य आदि ने भी ऐसा ही किया। इन आचार्यों के ग्रन्थो में मूल वेदों के उद्धरण बहुत ही कम वा नाम मात्र पाये जाते हैं। इन लोगो ने उपनिषदो को मन्त्रसंहिताओ से भी अधिक महत्व दिया है और वेदो की बड़ी उपेक्षा की है। श्री मध्वाचार्य जी ने अन्य आचार्यों की अपेक्षा वेदो के आधार पर अपने सिद्धान्तो के प्रतिपादन का अधिक प्रयत्न किया और ऋग्वेद के कुछ भाग का भाष्य भी किया तथापि पुराणवचनो को उन्होंने बहुत अधिक उद्धृत किया और पौराणिक विचारों से वे बहुत प्रभावित प्रतीत होते हैं, अतः उन्हे भी आदर्श वेदोद्धारक नहीं कहा जा सकता। पाञ्चरात्रागम आदि वैष्णव आगमो को जिनमें शैवो की घोर निन्दा पाई जाती है उन्होने वेदो की तरहही प्रामाणिक माना प्रतीत होता है।

ऋषिदयानन्द का यह सिद्धान्त कि वेद (मन्त्र-संहिता भाग) स्वतः प्रमाण और अन्य सब ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं,कपोल कल्पित वा नवीन न था।

धर्मं जिज्ञासमानानां, प्रमाणं परमंश्रुतिः। (मनुस्मृति) विरोधे त्वनपेक्षं स्यात् (मीमांसा) श्रुतिस्मृत्योर्विरोधे तु, श्रुतिरेव गरीयसी ' (बृहस्पति)

इत्यादि अनेक वचनो में स्पष्टतया उसी का प्रतिपादन पाया जाता है, पर ऋषि दयानन्द ने जिस साहस और निर्भयता के साथ इस सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप दिया वह वस्तुतः आदर्श और अनुकरणीय है और उसी के अवलम्बन से वैदिकधर्म की यथार्थ रक्षा हो सकती है। श्रुति (वेद) और स्मृति के विरोध को प्रदर्शित करने के लिए यहाँ विवाह काल निर्णय में वेदो और अनेक स्मृति वचनो की

शिक्षाओं का स्पष्ट विरोध दिखाई देता है जिस के कारण ही बाल विवाह जैसी कुप्रथा के दूर होने में बाधा पड़ रही है। वेदों के इस विषयके मन्त्रों से यह सर्वथा स्पष्ट है कि युवावस्था में ही परस्पर इच्छा वा अनुमति से ही विवाह होना चाहिए। सायणाचार्यादि के भाष्यों से भी यही सिद्ध होता है।

सोमो बधूयुरभवदश्विनास्तामुभावरा।
सूर्या यत्पत्ये शसन्ती मनसा सवितादद्दात्॥
ऋ. १०। ८५। ९

इस मन्त्र में वर को सोम पद से जताते हुए उसके लिये 'बधूयु' विशेषण का प्रयोग किया है जिसका अर्थ वधू वा स्त्री की इच्छा करने वाला है और तेजस्विनी कन्या को सूर्या के नाम से पुकारते हुए उसका विशेषण 'मनसा पत्ये शंसन्तीम्' दिया है, जिसका अर्थ मन से पति की कामना करती हुई यह है। इसके भाष्य में श्री सायणाचार्य ने लिखा है

पत्ये शसन्तीम्—पति कामयमानां प्राप्तयौवना मित्यर्थः—

अर्थात् पति की कामना करने वाली युवती। ऐसी युवावस्था मे ही विवाह होना वेद सम्मत है न कि बाल्यावस्था में गुड्डे गुड्डियों का जोडा मिल या जाना।

ऋग्वेद १०। १८३। १-२ मन्त्र युवावस्था में विवाह के स्पष्ट द्योतक हैं जिन मे वर के लिए पुत्र काम अर्थात् पुत्र की इच्छा करने वाला और बधू के लिये पुत्रकामा अर्थात् पुत्र की कामना करने वाली 'मनसा दीध्यानाम्, स्वीयां तनू ऋत्व्येनाधमानाम्। 'युवतिः' इत्यादि विशेषण आये हैं जिन के अर्थ मन से पति का ध्यान करने वाली, पति के साथ समागम कर के गर्भ धारण की इच्छा करने वाली युवावस्था वाली हैं।

मन्त्र निम्नलिखित हैं —

अपश्य त्वा मनसा चेकितान, तपसो जातं तपसो विभूतम्। इह प्रजामिह रयि रराणः प्रजायस्व प्रजया पुत्रकामं॥ (बधू की उक्ति)

अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां, स्वीयां तनूं ऋत्व्ये नाधमानाम् उपमामुच्चा युवतिर्बभूमाः प्रजायस्वप्रजया पुत्र कामे॥ (वर का उक्ति)

हरदत्ताचार्य नामक सुप्रसिद्ध विद्वान् ने इन मन्त्रों का भाष्य करते हुये 'युवतिः' का अर्थ यौवनावस्थां प्राप्ता" और "स्वीयां नाधमानाम् "का अर्थ शरीरो मत्तो गर्भ प्रार्थयामानाम् ऐसा लिखा है। ये दोनों मन्त्र आपस्तम्ब गृह्यसूत्र आदि प्रायः सब गृह्यसूत्रों के अनुसार अब भी विवाह की चतुर्थ रात्रि मे पढ़े जाते हैं किन्तु खेद है कि इनके अभिप्राय के सर्वथा विरुद्ध आचरण किया जाता है।

विवाह संस्कार के समय पढ़े जाने वाले "तां पूषन शिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्त- प्रहराम शेप॥ इत्यादि मन्त्र जिन मे उशती-उशन्त इत्यादि का प्रयोग करते हुए समागम वा मैथुनादि का स्पष्ट निर्देश है। युवावस्था मे विवाह का ही साफतौर पर प्रकट करते है। एयमगन् पतिकामा जानिकामो ऽह-मागमम्।" ६ अथर्व २। ३०। ५ आदि भी उसी भाव के सूचक हैं जिनमें पति पत्नी को परस्पर कामना पूर्वक संयोग का प्रतिपादन है। "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्॥" अथर्व ११। ७। १० में कन्या के ब्रह्मचर्य समाप्त करके योग्य युवक पति के चुनने का स्पष्ट विधान है। इस प्रकार वेद स्पष्टतया युवावस्था मे विवाह के प्रतिपादक हैं, इस में जरा भी सन्देह नहीं हो सकता। गृह्यसूत्रों मे भी वेद मन्त्रों को उद्गृत करते हुए युवावस्था मे विवाह को सूचित किया गया है। किन्तु जो स्मृतियां इस समय उपलब्ध होती है उन मे से बहुतो में बाल्य विवाह का समर्थन पाया जाता है। यम संवर्तअंगिरा तथा पराशर स्मृति इन चार मे इस प्रकार के श्लोक पाये जाते हैं।

अष्ट वर्षाभवेद् गौरी, नव वर्षातुरोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या, अत ऊर्ध्वं रजस्वला॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
सर्वे ते नरकं यान्ति, दृष्ट्वाकन्यां रजस्वलाम्॥
यस्तां विवाहयेत्कन्यां, ब्राह्मणो मदमोहितः।
असभाष्यो ह्यपांक्तेयः,सविप्रो वृषलीपतिः।

अर्थात् ८ वर्ष की लड़की गौरी, ९ वर्ष की रोहिणी, १० वर्ष की कन्या, और इसके बाद रज-

स्वला कहलाती है। रजस्वला कन्या को देखकर उसके माता पिता तथा बड़ा भाई ये सब नरक में जाते हैं। जो ब्राह्मण ऐसी लड़की के साथ विवाह करता है उसके साथ न बोलना चाहिये,न उसे पंक्ति में बठाना चाहिये क्योंकि वह चाण्डाली का पति है। प्रजापति स्मृति मे लिखा है:—

पितुर्गृहेतु या कन्या रज पश्यत्यसंस्कृता।
सा कन्या वृषली ज्ञेया,तत्पतिर्वृषलीपतिः॥

अर्थात् जो कन्या पिता के घर मे रहते हुए ही बिना विवाह संस्कार के रजस्वला हो जाती है उसे चाण्डाली समझना चाहिये और उसका पति चाण्डाली का पति कहलाता है। अंगिरा स्मृति मे लिखा है —

पितुर्वेश्मनि या कन्या रजस्तु समुपस्पृशेत्।
भ्रूणहन्ता पितुस्तस्याः, सा कन्या वृषलीस्मृता॥
माता चैव पिता चैव ... ... ।
उद्वहेद यस्तुतां कन्याम् ...असमाष्या ह्यपाक्तेय॥

अर्थात् पिता के घर मे जो रजस्वला हो जाती है उसके पिता को गर्भहत्या का पाप लगता है और वह कन्या चाण्डाली कहलाती है। बृहद्यमस्मृति में ऊपर के ही श्लोको के अतिरिक्त लिखा है.—

प्राप्ते द्वादशे वर्षे, कन्यांयो न प्रयच्छति।
मासि मासि रजस्तस्या, पिता पिवति शोणितम्॥

अर्थात १२ वाँ वर्ष शुरू होने पर भी जो पिता कन्या का विवाह नही कराता वह उसके रज और रुधिर को प्रतिमास पीता है। लघ्वाश्वलायन स्मृति मे लिखा है.—

रजस्वला च या कन्या, यदि स्यादविवाहिता।
वृषली वार्षलेय स्यात् जातस्तस्यां स चैविहि॥

अर्थात् रजस्वला होने पर भी जो अविवाहित कन्या हो वह चाण्डाली कहलाती है और उसके पुत्र को चाण्डाली पुत्र कहते हैं।

इसीप्रकार के वचन अन्य अनेक स्मृतियों मे पाये जाते हैं। मनुस्मृति में भी जहाँ 'त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेत कुमार्युतुमती सती। ऊर्ध्वं तुकालादेतस्माद् विन्देत सदृशं पतिम्॥ इत्यादि युवावस्था में विवाहके सूचक श्लोक है वहाँ उनके विरुद्ध श्लोक भी वर्तमान मनुस्मृति में पाये जाते हैं। इस विषय के विस्तार में जाने की यहाँ आवश्यकता नहीं कि इनमें से कौनसे ग्राह्य और कौनसे अग्राह्य वा प्रक्षिप्त हैं। निस्सदेह वेदविरुद्ध बाल विवाह प्रतिपादक श्लोक अग्राह्य और प्रक्षिप्त हैं क्योंकि—"वेदार्थोपनिबंधत्वात् प्रामाण्यं हि मनोः स्मृतम्।' (बृहस्पति) अर्थात् वेदार्थ के अनुकूल होने के ही कारण मनु की प्रामाणिकता है।

स्व०प० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ।

सारांश यह है कि वेद और अनेक स्मृति वचनों का स्पष्ट विरोध इस विवाह जसे अत्यावश्यक विषयों में दृष्टिगोचर होता है। ऋषि दयानन्द ने वेदों की स्वतः प्रमाणता और अन्य सब ग्रन्थो की परत. प्रमाणता के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए ऐसे सब वचनो की अप्रामाणिकता और निस्सारता को घोषित कर दिया यह साहस अन्य अनेक सुप्रसिद्ध आचार्यों को नहीं हुआ। जाति-भेद अस्पृश्यता मूर्तिपूजा आदि सब विषयों के भी इसी तरह है। इसीलिए ऋषि दयानन्द को इस युग का सर्वोत्तम वेदोद्धारक मानना सर्वथा संगत है और इससे किसी को भी इन्कार नहीं हो सकता। ऐसे वेदोद्धारक ऋषि के अनुगामी हम आर्यों को अपना जीवन पूर्णतया वैदिक बनाना चाहिये, तथा संध्या स्वाध्यायादि नियमों के पालन में सर्वदा तत्पर रहना चाहिये।

क्रान्तिकारी दयानन्द।

[ले०—श्री रामइकबालसिंह 'राकेश']

क्यो आज आर्य्यगण ले प्रदीप, उर में व्याकुल—से लिए पीर,
नेत्रों में भर कर तरल नीर हैं ढूंढ रहे किसको अधीर ?
जिसका सहचर था साम्यवाद;
यति उदासीन अति निर्विकार, जीवन विप्लवमय क्रान्तिवाद।

卐 卐 卐

अति कटु कुरीतियों से अशान्त, तम—तोम पूर्ण था प्रान्त—प्रान्त,
ले कुम्भकरण की बेहोशी, सोया था भारत श्रान्त—क्लान्त।
हू! हू!! चिल्लाते अघ—उलूक,
धन लूट लिये बटमार, दस्यु, पर थे सब नीरव मस्त मूक।

卐 卐 卐

इतने में प्राची गगन मध्य, भेदता अखिल सदियों का तम,
मृदु मन्द्-मन्द् झलमल-झलमल, निकला रवि-सा चमचम-चमचम।
कर अन्यायी का रुधिर पान;
आलोक रूप बनकर विहान, सींचा मुरझाया विकल प्राण।

卐 卐 卐

तू था महेश! हे सर्वनाश!! तू ने उच्चारा अमर—मन्त्र,
हो गये एक पल में निरीह—निर्दोष—निबल—निर्भय—स्वतन्त्र।
तू था लेनिन बोना, फसाद,
जल—निधि में डूबी महाशान्ति, सुन तब प्रलयंकर सिंहनाद।

卐 卐 卐

था क्रूर केशरी अभय मत्त, तू क्रुद्ध रगा था रक्त रग,
दलितों की दारुण व्यथा देख, तू ने कर डाला नियम—भंग।
बन शिव—शकर कर गरल पान,
निज तृषा बुझा करके कराल, दे दिया जगत को अभय दान।

卐 卐 卐

ले क्षमा—ढाल, विकराल लाल, वैदिक—कृपाण को झार—झार,
पल में खल—दलको मार—मार, कर दिया भस्म—सा क्षार—क्षार।
मच गई सृष्टि में उथल—पुथल,
कर दिया विकम्पित अवनि व्योम, भागे सब शत्रु दहल—दहल।

卐 卐 卐

फिर कर्णसिंह का खड्ग छीन, कर खण्ड—खण्ड पल में पछाड़,
पापी का तू ने गर्व खर्व, कर दिया रणांगण में दहाड़।
था देव—दूत तू हे अगाध,
कंटकाकीर्ण हिम—शैल शृङ्ग में, विचरा करते थे अबाध।

तेरे विशाल उर—व्योम बीच, चमकी विद्युत सी ज्योति एक,
कम्पित विस्मित हो गये अमर,नर, नाग, दनुज, किन्नर अनेक।
मिट गई विश्व की सकल भ्रान्ति;
जल गये 'तत्वमसि, अहम्, दम्भ', ऐसी फैलाई लाल क्रान्ति।

卐 卐

मुक्ता—मण्डित - मन्दिर विशाल, या पर्णरचित जर्जर कुटीर,
तनु जीर्ण—शीर्ण दुर्बल फकीर, या भीमकाय सुन्दर अमीर।
सब थे समान थल क्या निकुंज।
क्या मञ्जुल-वञ्जुल-हरित-कुञ्ज, या स्रस्त-ध्वस्त जड़ शिला-पुञ्ज।

卐 卐 卐

फिर हे प्रचण्ड ! तू चिर प्रकाश !! उफ ! किधर जा छिपे कर निराश,
नक्षत्र जहाँ करते विलास ! रहते क्या उसके आस पास ?
है जहाँ सत्य—सौरभ—उड़ान,
कोमल—कवित्वमय—सामगान, क्या वहीं बैठ कर रहे ध्यान !

卐 卐 卐

हैं वहाँ झाड़ियां या मुकुलित, मंजरित लताओं का दुकूल ?
मरु-रजकण-मिश्रित-तप्त—पवन या मलयानिल के मृदुल धूल ?
अथवा कालिन्दी—कलित—कूल,
चढ़ तरु—कदम्ब—हिंडोले पर, अलि प्रेम-मत्त होरहे झूल ?

卐 卐 卐

या गिरि—गह्वर में गर्क बने, सुलझाते वैदिक—विषम—ज्ञान ?
अब ध्यान भङ्गकर जाग अरे, जागो कण-कण में भर उफान !
जागो जीवन के दिव्य-ज्ञान !!
जागो यतिवर ! जागो महान् !! जागो ! हे जागो !! सावधान !!!

卐 卐 卐

तू अनाद्यन्त-अघ-अनाचार, अम्बुधि—मर्दन—मन्दर—महान्,
था विषम-विषय विषधर विषाद, के लिए उरग-अरि-उग्रवान।
भीषण विमर्श ! भय ! क्रान्तिगान !!
हे अरिमर्दन, घन वज्रनाद ! हे महाकाल——दुर्गम——निशान !!

卐 卐 卐

तू था मृत्युञ्जय महाजटिल; द्रुत वहिन-बाढ़ था अज, अनन्त,
तेरा शम—दम—'डम' डमरुनाद, सुन थर्रा उठते दिगदिगन्त !
दुर्जेय मार को दिया मार;
हे महारौद्र शत नमस्कार ! कवि करता सौ सौ नमस्कार !

卐 卐 卐

ब्रह्मसूत्र का मोक्षप्रकरण

(लेखक—श्री प० मुक्तिरामजी उपाध्याय)





वेदान्त दर्शन में चतुर्थाध्याय के चतुर्थपाद में महर्षि व्यास ने मुक्ति के सम्बन्ध में कुछ विशेषताओं का बतलाना आरम्भ किया है। उन विशेषताओं के लिये जिन उपनिषद् वाक्यों को महर्षि व्यास ने आधार बनाया है उनका व्याख्यान श्री शङ्कराचार्य जी ने अपने भाष्य में किया है। हम इस लेख मे उन सूत्रों और वाक्यों का उल्लेख कर, उनमें, मुक्ति के सम्बन्ध में, महर्षि दयानन्द के प्रदर्शित विचारो की झलक, बिना किसी प्रकार की खींचातानी के, दिखलाने का यत्न करेंगे।

महर्षि व्यास की निर्दिष्ट विशेषताओं मे से एक यह है—

"मुक्ति नवीन वस्तु नहीं पुरानी है'

इस शीर्षक को सिद्ध करने की आवश्यकता का जन्म इस संशय के आधार पर हुआ है कि—जिस प्रकार उत्कृष्ट पुण्य कर्मों का फल मनुष्य को स्वर्ग अर्थात् अत्यन्त सुख मिलता है, और वह एक नवीन वस्तु है, जो कि उस मनुष्य को उस सुख की प्राप्ति से पहिले उपलब्ध न थी। क्या मुक्ति भी मनुष्य को इसी प्रकार की कोई नवीन वस्तु मिलती है अथवा किसी प्राप्त वस्तु की ही प्राप्ति का नाम मुक्ति है?

इस संशय का निर्णय व्यास जी ने छान्दोग्य उपनिषद् का यह उद्धरण देकर आरम्भ किया है—

एवमेवैष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते।

इस प्रकार यह निर्मल तत्त्व, इस शरीर से पृथक् होकर, सर्वोत्तम प्रकाश के अत्यन्त समीप पहुँच कर, अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है।

छा० ८—१२—३

व्यास जी का सूत्र है—

"सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्"

ब्र० सू० ४-४-१

ऊपर लिखे छान्दोग्य के वाक्य में अभिनिष्पद्यते पद आया है, इस पद का अर्थ उत्पत्ति भी किया जा सकता है, और उत्पन्न होने वाली वस्तु आत्मा के लिए नवीन ही होगी, इस लिए मुक्ति कोई अनित्य वस्तु ही सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त अन्य फलों की भांति मुक्ति भी एक फल है और अन्य फल सभी अपनी उत्पत्ति से पहिले आत्मा को अप्राप्त ही होते हैं। इस लिए इस दूसरी युक्ति से भी अप्राप्त की प्राप्ति को ही मुक्ति कह सकते हैं। व्यास जी ने अपने सूत्र में इन शङ्काओं का समाधान किया है उनका प्रथम वाक्य है "सम्पद्याविर्भाव" सम्पत्ति या अभिनिष्पत्ति का अर्थ यहां उत्पत्ति नहीं प्रत्युत, आविर्भाव (प्रकट होना) है। आत्मा का वास्तविक रूप जो पहिले मल विक्षेप आदि के कारण अप्रकट था, वह उन सबके निवृत्त हो जाने पर अब प्रकट हो जाता है। आत्मा की इसी अवस्था विशेष को ही मुक्ति कहते हैं अपने इस विचार की पुष्टि के लिए महर्षि व्यास ने हेतु दिया है "स्वेनशब्दात्" (स्वशब्द के कारण)। तात्पर्य यह है कि छान्दोग्य के प्रकृत प्रबन्ध में आए हुए "स्वेन रूपेण" वाक्य का अर्थ है "अपने स्वरूप से" सम्पन्न हो जाता है। और अपना स्वरूप आत्मा को सदा प्राप्त ही है फिर उसकी उत्पत्ति या प्राप्ति कैसी, इस लिये स्पष्ट सिद्ध है कि छान्दोग्य के 'अभिनिष्पद्यते" शब्द का अर्थ उत्पन्न होना नहीं प्रकट होना है।

इस सूत्र के भाष्य में आचार्य शंकर ने भी अपने ऐसे ही विचार प्रकट किये हैं। इस प्रकरण को आगे चलाने से पहिले हम पाठकों का ध्यान,

इसी प्रसंग से सम्बन्ध रखने वाली मुक्ति की पुनरावृत्ति की ओर आकर्षित करना चाहते हैं।

छान्दोग्य पनिषद्, महर्षि व्यास, और आचार्य शंकर यहां एक स्वर से मान रहे हैं कि मुक्ति में जीव अपने स्वरूप से सम्पन्न हो जाता है। यह जानना भी आवश्यक है, कि उसका वह अपना स्वरूप कौनसा है? यहां हम छान्दोग्य के शब्दों में ही आत्मा के स्वरूप का वर्णन करना चाहते हैं। इसी इन्द्र विरोचन आख्यान के आरम्भ में छान्दोग्य में आया है –

"य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्यु र्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्य सङ्कल्पः"

आत्मा पाप, बुढ़ापा मृत्यु, शोक, भूख, और प्यास से रहित है, उसकी कामनाए और सङ्कल्प सत्य होते हैं। छा० ८–७–१। यह है आत्मा का अपना रूप। किसी वस्तु के अपने स्वरूप का तात्पर्य होता है उसका अपना स्वभाव। वह स्वभाव किसी अन्य जाति की वस्तु के साथ मिलने से विकृत भी हो जाया करता है। और उस संसर्ग के दूर हो जाने पर फिर अपने वास्तविक रूप को भी प्राप्त कर लेता है। उदाहरण के लिये संसार में भौतिक प्रकाश के ही अनेक रूपोंको देख लेना पर्याप्त होगा। अग्नि जब लकड़ी के रूप मे है। उसका प्रकाश और गर्मी दोनों ही जल और पृथ्वी के सम्बन्ध से अब प्रकट नहीं है। परन्तु जब तक जल और पृथ्वी के साथ वह नहीं मिला था, तब तक उसमें वे गुण विद्यमान थे। और जब उसे किसी दूसरे अग्नि के सम्बन्ध से जल और पृथ्वी से पृथक् कर दिया जावेगा, वे गुण फिर उसके अन्दर प्रकट देखने को मिल सकेंगे। इस दृष्टान्त से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं, कि जो गुण जिस पदार्थ के स्वभाव के नाम से पुकारे जाते हैं, वह उन गुणों के विकृत होने से पहिले और पीछे भी उन गुणों से सम्पन्न देखा जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् में भी इस विषय को स्पष्ट करने के लिए ऐसे ही भौतिक दृष्टान्तों का उल्लेख किया है। इसी आख्यान में आया है—

"अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरुप-सम्पद्य स्वेनरूपेण अभिनिष्पद्यन्ते"।

वायु बादल, बिजली और मेघ यह सब शरीर से रहित है। ये इस आकाश से उठ कर और परम ज्योति का प्राप्त कर अपने अपने स्वरूप में परिणत हो जाते हैं। छा० ८–१२–२।

जिस रूप में अब हमारे सामने वायु, बिजली, मेघ आदि विद्यमान हैं वह ही इनका शरीर है। परन्तु वस्तुत इनका यह स्वाभाविक स्वरूप इनके इस स्थूल शरीर से रहित है, सूक्ष्म है। और इसी लिए उपनिषद् में इन्हे अशरीर कहा है। भगवान् जब सृष्टि का संहार करते हैं, तो वह सब, कई पदार्थों के मल से बने हुए अपने इस विकृत रूप को छोड़ देते है, और फिर उसी प्राचीन स्वाभाविक सूक्ष्म रूप में परिणत होकर उस व्यापक शक्ति परम ज्योति भगवान् की गोद में रहते हैं। इस प्रकार जीवात्मा का भी जो स्वरूप छान्दोग्य में कहा गया है वह मुक्ति के समय तो प्रकट होता है, परन्तु मुक्ति से प्रथम उस में वह रूप जो लोग मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं मानते, उनके मत में कभी भी न था। क्योंकि वे लोग जीव को अनादि काल से ही बन्धन मे मानते हैं, और बन्धन के समय उसका वास्तविक रूप प्रकट नहीं हो सकता।

अब पाठक गम्भीर दृष्टि से सोचे कि जो धर्म किसी धर्मी में कभी भी नहीं रहा, उसे उसका अपना रूप या स्वभाव किस प्रकार माना जा सकता है। प्रत्युत इस के विपरीत मानना यह पड़ेगा, कि जो धर्म आत्मा में अनादि काल से चला आता है वह ही उस का अपना रूप है स्वभाव है। और अब (मुक्ति के समय, जो दोषों से रहित रूप उस का कहा गया है उसका स्वाभाविक धर्म नहीं कृत्रिम होगा। वह उस का प्राचीन नहीं, नवीन रूप होगा। यह प्राप्त वस्तु की नहीं, अप्राप्त की हो प्राप्ति कही जावेगी। उसे प्रकट होने वाला न कह कर उत्पन्न होने वाला ही रूप कहना पड़ेगा। और जिसकी उत्पत्ति होती है नियमानुसार उस का नाश भी होना ही चाहिए। इस लिए जीव के इस नये रूप का नाश भी मानना

पड़ जावेगा। और इस रूप का नाश ही मुक्ति का नाश है। फलत बचने का उपाय करने पर भी मुक्ति की अनित्यता का भूत फिर भी पिण्ड छोड़ता ही। तब क्या छान्दोग्य का यह प्रकरण और व्यास जी का यह मूल सगत नही है ? सगत हैं, और दोनो ही संगत हैं। परन्तु उन के अभिप्राय को न समझ कर भ्रम से असंगति का भान हो रहा है। इस प्रकरण को संगत करने का एक मात्र उपाय मुक्ति से पुनरावृत्ति का स्वीकार है। संसार यात्रा में योनियों के अन्दर भ्रमण करता हुआ जीव अनेक प्राकृतिक दोषो से आक्रान्त हो जाता है। इस अवस्था में इस का वास्त विक रूप उन दोषो से आच्छादित होने के कारण स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता। परन्तु यह बात नही है कि इसका वह वास्तविक रूप इस के अन्दर कभी प्रकाश में आया ही न हो। सृष्टि चली आरही है। और इस अपरिमित काल मे जीवात्मा अनेक वार मुक्त और बद्ध हो चुका है। और जब जब यह मुक्त हुआ, प्रकृति से पृथक हुआ, इस का वह अपना स्वाभाविक रूप प्रकट होता रहा। इसलिए आत्मा में उसके ये धर्म इस संसारिक अवस्था से पहले प्रकट थे, और इस के पश्चात् जब मुक्ति होगी फिर भी प्रकट होंगे। बीच में जो दोष प्रतीत होते हैं, वे प्रकृति के सम्बन्ध से हैं इस के अपने नही प्रकृति के हैं। इसका अपना स्वरूप वही है जो पहली मुक्ति के समय था और इससे आगे की मुक्ति के समय होगा और यह अपना रूप इसे तब ही प्राप्त होगा, जब प्रकृति की गोद से निकल कर उस परम ज्योति भग वान् की गोद में पहुँचेगा। इस प्रकार छान्दोग्य का यह प्रकरण और व्यास जी का सूत्र दोनो ही स्वरस सगत हैं।

ऋषिदयानन्द भी जीव का मुक्ति से लौटना मानते हैं। इसलिए यह प्रकरण उनके विचारों का पोषक ही है, विरोधी नही। यहां पाठक प्रश्न कर सकते हैं कि व्यासजी का यह प्रकरण यदि मुक्ति से पुनरावृत्ति के अनुकूल है तो इस प्रकरण के अन्त में उन्होंने इस पुनरावृत्ति का निषेध क्यों किया ? उनमें का यह सूत्र है "अनावृत्ति शब्दादनावृत्ति शब्दात्' ब्रह्म. सू. ४। ४। २२

इसका तात्पर्य यह है कि शब्द प्रमाण के आधार पर मुक्ति से पुनरावृत्ति नहीं होती। वह शब्द प्रमाण जिस का कि व्यास जी अपने इस सूत्र में सकेत कर रहे हैं छान्दोग्य के इसी आख्यान के अन्त मे आता है, हम यहां सम्पूर्ण को ही उद्धृत किये देते हैं। पाठक इसे पढ कर अपना सम्मति स्थिर कर लें। "स खल्वेव वर्तयन् यावदायुष ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते"

इस प्रकार आत्म-चिन्तन मे लगा हुआ पुरुष, सृष्टि की आयुपर्यन्त ब्रह्मलोक में रहता है। फिर नहीं लौटता, फिर नही लौटता। छ. ८। १५ १

इस प्रकरण में पढ़ा गया "आयुपर्य्यन्त" शब्द सृष्टि की आयु का बोधक है, इस विषय का स्पष्टी-करण छान्दोग्य में अन्यत्र किया गया है। वहां लिखा है ' एतेन प्रतिपद्यमाना इम मानवमावर्त्त नाव-र्त्तन्ते ' अर्थात्

इस मार्ग से गये हुए इस मानव चक्र तक नहीं लौटते।

यहा मानव चक्र शब्द सृष्टि की आयु का बोधक स्पष्ट है। इसलिए ऋषि दयानन्द का यह सिद्धान्त कि "एक सृष्टि को आयुपर्यन्त मुक्ति का आनन्द भाग कर जीव फिर कर्म करने के लिए ससार में लौट आता है ', वेदान्त के इस प्रकरण से स्पष्ट सिद्ध है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि ब्रह्मलोक तृतीयदिव, तृतीय ज्योति, और तृतीय धाम ये सब शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं। और तृतीयधाम शब्द यजुर्वेद मे मोक्ष अर्थ में आया है, इस लिये उस के पर्य्यायवाचक इन सब शब्दों को भी मोक्ष अर्थ के प्रतिपादक ही मानना पड़ेगा। तृतीय धाम का अर्थ मोक्ष ही है, इस विषय को प्रमाणित करने के लिए यजुर्वेद के मन्त्र का भाग पढ़िए।

'यत्र देवामृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैर-यन्त"।

जिस तृतीयधाम मे अमृत (मोक्ष के आनन्द) का उपभोग करते हुए देवता लोग (मुक्त पुरुष) रहते हैं। इस मन्त्र में अमृत शब्द पढ़ा गया है और अमृत शब्द मुक्ति के आनन्द से भिन्न और किसी अर्थ में आता नहीं। इसलिए यह अर्थ सुतरां सिद्ध है कि

मन्त्रों के ऋषि

(लेखक—श्री प॰ प्रियरत्नजी आर्ष वैदिक रिसर्चस्कालर)



मन्त्रो के ऋषियो के सम्बन्ध मे अभी तक 'कर्त्तृवाद' और द्रष्टृवाद' नाम से दो ही प्रसिद्ध पक्ष है। ऐतिहासिक विद्वानो का कर्त्तृवाद पक्ष है और इसके लिये उनके निम्न दो प्रबल प्रमाण है—

१—वैदिक ग्रन्थो मे ऋषियो को 'मन्त्रकृत्' कहा है। इसलिये ऋषि मन्त्रो के कर्त्ता है।

२—मन्त्रो मे उन उन ऋषियो के कही कहीं नाम आ जाते हैं। इससे 'कर्त्तृवाद पक्ष ही ठीक सिद्ध होता है।

ऋषियो को 'मन्त्रकृत्' (मन्त्र बनाने वाले) प्रतिपादक विशेष वचन—

"कर्त्तृवाद पक्ष—यस्य वाक्य स ऋषि" (ऋग्वेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणी।१।२।४)

जिसका वाक्य होता है वही उसका ऋषि है।

विवेचन—"यस्य वाक्य स ऋषि" यह उनका वचन द्व्यर्थक होने से 'कर्त्तृवाद' पक्ष के सिद्ध करने मे सन्दिग्ध प्रमाण है। अत एव व्यभिचारी या अनैकान्तिक हेतु होने के कारण साधक नही हो सकता, क्यो कि साक्षात् तो इस वचन म यह बात प्रतिपादित है ही नही कि ऋषि 'मन्त्रकृत्' होता है। प्रत्युत 'जिसका वाक्य हो वही ऋषि है' ऐसा कहा है। यहा सन्देह होता है कि स्वामि-सम्बन्ध से या कर्त्तृ-सम्बन्ध से। स्वामि सम्बन्ध से तो द्रष्टृवाद का साधक होगा और कर्त्तृसम्बन्ध से कर्त्तृवाद का। एवं परस्पर विरुद्ध के उभयार्थ साधक प्रमाण प्रमाणिक नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त जब तक कर्त्तृवाद ही अन्य प्रमाणो से सिद्ध न हो जावे तब तक 'यस्य वाक्यं स ऋषि' इस वचन मे कर्त्त-सम्बन्ध दु साध्य या साध्यसम ही है। हां, स्वामि सम्बन्ध तो 'देवदत्तस्य गृहं यज्ञदत्तस्य गौरितिवत्' अनायास ही सिद्ध हो रहा है। तथा दर्शन ज्ञान द्वारा किसी वाक्य विद्या या शास्त्र पर अधिकार होना सम्भव है ही। एवं स्वामिसम्बन्ध के द्योतन मे शास्त्र-प्रमाण भी है—

"ऋषिभ्या ·····मन्त्रपतिभ्यो नम." (ऐ० आरण्यक।१।१।१)

इस लिये यस्य वाक्यं स ऋषि ' यह बचन कर्त्तृवाद को सिद्ध करने मे प्रमाण न रहा, कोई अन्य प्रमाण ही इसके सम्बन्ध मे होना चाहियें।

(क) "कारुरहमस्मि कर्ता स्तोमानाम्" (निरुक्त।६।५)

(ख) 'ऋषे मन्त्रकृता स्तोमै." (ऋ० ६।११४।२)

(ग) 'भूमिमुपस्पृषेदग्न इर्ळे नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो नमो वो अस्तु" (ऐ० आरण्यक १।१।१)

इन बचनो से भी ऋषियो का कर्त्तृवाद सिद्ध किया जाता है।

विवेचन—उपयुक्त (क, ख, ग) बचनो मे आए 'कृ' धातु के प्रयोगो के आधार पर ही ऐतिहासिक विद्वानो का कर्त्तृवाद पक्ष मान लेना उचित नहीं जंचता। कारण कि यह 'कृ' धातु अनेकार्थ है। देखिये इसके सम्बन्ध मे महाभाष्य व्याकरण के निम्न बचन

तृतीयधाम, मुक्ति का ही दूसरा नाम है। इसलिए ऊपर लिखे ये सब ही शब्द मुक्ति के बोधक हैं। और मुक्ति की अवधि है एक* सृष्टि की आयु का परिमाण। महर्षि व्यास ने भी इस सूत्र मे मुक्ति से न लौटन का निर्देश, एक सृष्टि की अवधि तक ही किया है। इसके बाद लौटने मे उन्हें भी कोई विप्रतिपत्ति नहीं है, और यह ही ऋषिदयानन्द का मत है।

* यहाँ लेखक का भ्रम प्रतीत होता है। मुक्तिकी अवधि एक सृष्टि की आयु नहीं अपितु ३६००० सृष्टि और प्रलय के बराबर है।—सम्पादक

"करोतिरभूतप्रादुर्भावे दृष्टो निर्मलीकरणे चापि वर्तते। पृष्ठं कुरु पादौ कुरु। उन्मृदानेति गम्यते। निक्षेपणे चापि वर्तते। कटे कुरु घटे कुरु अश्मानमभि कुरु स्थापयेति गम्यते।।"

महाभाष्य व्याकरण।१।३।१

इस प्रमाण मे 'कृ' धातु अनेकार्थक सिद्ध होजाने पर कर्तृवाद पक्ष को साधने के लिये "कारुरहमस्मि" आदि प्रयोगो मे 'कृ' धातु का 'करना' अर्थ ही है यह कथन साध्य कोटि मे आगया जो अन्य प्रमाणापेक्षित हो जाने से स्वयं प्रमाणिक न रहा। इसके अतिरिक्त उक्त वचनो को भी जब विचार से देखते है तब यह बात स्पष्ट ही होजाती है कि उक्त बचन कर्तृवाद के साधक नहीं है। देखिये—

(क) "कर्ता स्तोमानाम्" (निरुक्त ० ६। ५) का "स्तोमो मन्त्रो का बनाने वाला" अर्थ हो ऐसा नहीं हैं। निरुक्तकार ने 'कर्ता' शब्द कारु का सारूप्यानुवाद किया है प्रत्युत 'कर्ता स्तोमानाम्' का अर्थ 'प्रयोक्ता स्तुतीनाम्' स्तुतियो का प्रयोग करने वाला है। यह बात दुर्गाचार्य के भाष्य से भी स्पष्ट होजाती है।

"स्तोमानां कर्ता स्तोमकर्त्ता स्तुतीनां प्रयोक्ता यज्ञकर्मणि होतृत्वेनावस्थितो वहिर्वा यज्ञात् प्रियवक्ता लौकिकाभिर्वाचोयुक्तिभिर्जीविकापरतया" (निरुक्त ५। ६ दुर्गाचार्य)

(ख) 'ऋषे मन्त्र कृतां स्तोमै" (ऋ० ६। ११४। ६२) मे मन्त्रकृताम् शब्द का विशेष्य 'ऋषीणाम्' शब्द इस मन्त्र या सम्पूर्ण सूक्त मे कहीं नहीं है, फिर 'मन्त्र कृताम्' को ऋषियों का विशेषण बनाना उचित नहीं है। किन्तु यहां भी पूर्व की भांति 'मंत्रकृताम्' का अर्थ 'मन्त्रप्रयोक्तृणाम ऋत्विजाम्' मन्त्रो का प्रयोगकरने वाले ऋत्विजो के ही हैं।

(ग) "ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः" (ऐ० आरण्यक १। १। १) मे भी 'कृ' धातु बनाने अर्थ में नहीं है यह बात इसके सहयोगी 'मन्त्रपतिभ्य' शब्द से स्पष्ट होजाती है। मन्त्रबनाने वालो के साथ मन्त्रपति का विशेषण लगाना निरर्थक है। हां, 'मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्राध्येतृभ्यस्तथा मन्त्रपतिभ्यो मन्त्रद्रष्टृभ्यः' अर्थात मन्त्रों का अध्ययन करने वाले तथा तदर्थों के द्रष्टा ऋषियो के लिये नमस्कार हो ऐसा सुसगत है। एवं यहां 'कृ' धातु पढ़ने अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। इस बात को स्पष्ट समझने के लिये निम्न प्रमाण दे देते हैं—

"पश्चादग्नेश्चत्वार्यासनान्युप कल्पयति। तेषूपनिविशन्ति पुरस्तात्प्रत्य ङमुखो दाता पश्चात् प्राङमुख प्रतिग्रहीता दातुरुत्तरत प्रत्यङमुखी कन्या दक्षिणत उदङमुखो मन्त्रकार" (वाराह गृह्यसूत्र)

यहां विवाह संस्कार मे वेदि के दक्षिण भाग मे उत्तर को मुख करके मन्त्र पढने वाले को बैठने का आदेश है। 'मन्त्रकार' का अर्थ मन्त्र पढने वाला है यह बात सुस्पष्ट है। इससे 'मन्त्रकार' या 'मन्त्रकृत्' शब्द को कहीं प्रयुक्त देखकर मन्त्र बनाने वाला अर्थ समझ कर्तृवाद के संदेह मे पड़ जाना ठीक नहीं है, किन्तु मन्त्रकार' या 'मन्त्रकृत, का अर्थ 'मन्त्र पढ़ने वाले' का है। अस्तु,

कर्तृवादपक्ष के प्रधान वचनो पर विचार किया जा चुका और अन्त मे यह परिणाम निकला कि उपर्युक्त 'कर्ता स्तोमानाम्' आदि वचनो के आधार पर कर्तृवाद पक्ष स्थापित करना ठीक नहीं है। हां इसके प्रतिकूल 'द्रष्टृवाद' पक्ष का प्रतिपादन और स्वीकार तो वैदिक ग्रंथो मे शतश. स्थलों पर उपलब्ध होता है। दो चार स्थल यहा निदर्शन मात्र ही रख देते है। यथा—

"विश्वामित्र सतृतीयं मण्डलमपश्यत्।"
(ऋग्वेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणा। १६)
"इन्द्राय सोममिति तृचोऽथर्वाऽपश्यत"
(अथर्ववेदीया बृहत्सर्वानुक्रमणी। अथ ६ ११)
ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्शेत्यौपमन्यव।"
तद्यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्मस्वयम्भ्वभ्यानर्षत्।
त ऋषयोऽभवंस्तदृषीणामृषित्वमिति विज्ञायते।।"
(निरुक्त। २। ११)

"ऋषिर्दर्शनात् पश्यति ह्यसौ सूक्ष्मानप्यर्थान्। ब्रह्मयजु सामाख्यंस्वयम्भु-अकृतकमभ्यानर्षदभ्यागच्छत्।" (दुर्गाचार्य.)

उपर्युक्त वचनो मे द्रष्टृवादपक्ष का स्वीकार किया

है। निरुक्त के "स्वयम्भु ब्रह्म" इस वचन से तो वेद अपौरुषेय ही सिद्ध होता है। दुर्गाचार्य ने भी "ब्रह्म-ऋग्यजु सामाख्यं स्वयम्भु- अकृतकम्' से उक्त अभिप्राय सिद्ध किया है। इससे कर्तृवाद पक्ष निराकृत ही हो जाता है।

आचार्य देवपाल ने भी इसी विषय मे पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष द्वारा विचार किया है. † उन्होंने लौगाक्षि गृह्यसूत्र के भाष्य मे "ओ भूः। ओं भुव ओं स्व। ओं मह। ओ जन। ओ तपः। ओं सत्यम्।" इन सातो मन्त्रो के ऋषि कौन हैं यह विचार करने के लिये प्रथम शौनकाचार्य का वचन "ऋषिराद्य प्रजापति" दिया है। पुन: एक और आचार्य का निम्न वचन भी उद्धृत किया है—

विश्वामित्रो जमदग्नि र्भरद्वाजोऽथगौतम।
ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च कश्यपश्च यथा क्रमम्॥

इस वचन मे विश्वामित्र आदि ऋषि यथाक्रम बतलाये है। अब उक्त 'ओंभू' आदि के ऋषियो के सम्बन्ध मे आचार्य देवपाल के सम्मुख दो पक्षो की एक विचारणीय समस्या उपस्थित हो गई है. इसका निर्णय वे करते है कि "युज्यन्ते चैकत्रानेके द्रष्टारः कालभेदेन युगपच्च" काल भेद या एकही साथ भी एक मंत्र के द्रष्टा ऋषि हो सकते है। आचाय देवपाल के इस कथन से तो द्रष्टृवाद ही सिद्ध होता है। कर्तृवाद मे तो यह समाधान सगत ही नहीं हो सकता।

(२) कर्तृवादपक्ष—मन्त्रो के जो जो ऋषि है उनका कचित्-कचित् मन्त्रों मे नाम आ जाता है जो कि कर्तृवाद मे ही सम्भव होने से कर्तृवाद पक्ष का साधक है क्योकि कर्त्ता अपने नाम को अपने बनाये मन्त्र मे डाल सकता है अत: मन्त्रो के ऋषियो का कर्तृवाद पक्ष ही मानना ठीक है।

विवेचन—मन्त्रो मे कचित आये हुये नामो को देख कर यदि ऋषियो को मन्त्रो के कर्त्ता मान लिया जाये तो सैकडो भयंकर आपत्तियां खड़ी हो जाती हैं। यहां दो चार ही उदाहरण देते है—

† आचार्य देवपाल सम्बन्धी विचार श्री प० विश्वनाथजी ने वैदिक विज्ञान में दिखाये थे।

(१) कचित्-कचित् मन्त्रो के ऋषि नदी, पर्वत सूर्यचक्षु, कूर्म, मत्स्य, शङ्ख, कपोत, श्येन, ऋषभ, हैं। क्या ये भी कभी मन्त्रो के कर्त्ता हो सकते है!

(२) कही कही पर क्रियारूप ऋषि है। यथा—ऋ० १०। ११४११, ५-८)। का 'अग्निवरुण सोमानां निहव-अग्नि, वरुण, सोम का आमन्त्रण" यहा ऋषि है। साम० पू० ५। २। ४। ६ का "वाजिना स्तुति आदि क्रियाएं भी कभी मन्त्र बना सकती हैं?

(३) कचित्-कचित् मन्त्रों मे मनुष्यो की वाञ्छनीय भावनाओ के वाचक शब्द ऋषि है। यथा—
श्रद्धा ऋषि—'श्रद्धयाग्नि समिध्यते श्रद्धया हूयतेहवि श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥" (ऋ० १० १५१। १)
स्वस्ति ऋषि—"स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै ' (ऋ० ५ ५१। १२)

इस प्रकार श्रद्धा आदि मानवीय भावनाये ऋषि हैं। कर्तृवाद पक्ष मे इनका ऋषि होना किस प्रकार सम्भव है?

(४) "हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे "ऋ० १०। १२१। १) का हिरण्यगर्भ ऋषि है किन्तु यहाँ हिरण्यगर्भ को विश्व का निर्माता तथा धारक कहा है और सृष्टिके पहिले वर्तमान था ऐसा भी दर्शाया हैं। कर्तृवाद मे हिरण्यगर्भ नामक कोई ऐसा मनुष्य हो सकता है! और वह ऐसा असम्भव साहस कर सकता है?

(५) संहितान्तर मे ऋषि भेद मिलता है। कही कही ऋषियो का विकल्प भी है यह ऋषि है या वह ऋषि हैं। कचित-कचित् एक ही मन्त्र के अनेक ऋषि भी है ऐसे ही बहुत सी आपत्तिया आ पडती हैं उनका यहां उल्लेख करना कठिन है।

इस प्रकार आपत्तियो के कारण कर्तृवाद को मानने मे किसी विचारशील विद्वान को साहस नहीं हो सकता और नही कर्तृवाद पक्ष मे इनका कोई समाधान हो सकता है। द्रष्टृवाद में इनका सहज मे समाधान हो जाता है क्योकि तत्तद्विषय या तत्तद्विद्या के प्रतिपादक मन्त्रो के द्रष्टा उस उपाधिवाचक नाम के अधिकारी हो सकते हैं वे उन उन विषयों के ज्ञाता,

प्रचारक, शिक्षक होने से तथा उन उन भावो और परिणामों के अनुभवी होने से उपर्युक्त उपाधिरूप मे नाम हो सकते हैं। इस प्रकार मानने मे शास्त्र प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं। यथा—

ऋषीणांनामधेयानि याश्चवेदेषुदृष्टय.।
शार्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः॥

ऋषियो के जो नाम और वेदो मे उनकी जो जो दृष्टियां अर्थात् विद्याविषयक योग्यताऐं हैं अर्थात् अमुक विद्याविषयक ज्ञान से अमुक ऋषि कहला सके गे। यह प्रलयके अन्त मे अर्थात् आरम्भ सृष्टि मे ही अजन्मा ईश्वर देता है।

इस प्रकार ऋषियों के विश्वामित्र आदि उपाधिवाचक नाम जैसे पूर्वकाल में ऋषियो के थे भविष्य और वर्तनान मे भी होसकते हैं। छान्दोग्योपनिषद मे लिखा है—

"यदार्षं तमृषिं या देवतामभिष्टोष्यन स्यात्ता देवता मुप धावेत्
येन छन्दसा स्तोष्यन स्यात्तच्छन्द उपधावेत्॥" (१।३।६।१०)

वेद का विद्यार्थी मन्त्रो के ऋषि, देवता और छन्दो पर ध्यान रखता हुआ योग्यतासम्पादन करे।

देवता, और छन्द का तो मन्त्रों से नित्यसम्बन्ध है इसका ध्यान रखना तो ठीक है पर ऋषि का ध्यान में रखना तो उपाधिरूप में लाभप्रद है। आज कल भी जैसे विद्यार्थी शास्त्री आदि उपाधि को ध्यान मे रखते हुए योग्यता सम्पादन करते हैं। मन्त्र मे उपाधि तो ऋषि है विषय देवता हैं और पाठ्यांश (कोर्स) छन्द हैं।

आचार्य देवपाल ने गायत्री मन्त्र की व्याख्या करते हुए उसका ऋषि प्रजापति लिखा है परन्तु साथ मे द्वैपायन के श्लोक को भी उद्धत किया है जिसमे उक्त मन्त्र का ऋषि'विश्वामित्र' कहा गया है। श्लोक निम्न है—

"विश्वामित्र ऋषिश्छन्दो गायत्रं सविता तथा।
देवतोपनये जप्ये विनियोगे हुते तथा॥

उक्त विरोध के परिहार में वे लिखते हैं कि "सर्वमित्रो विश्वामित्रः प्रजापतिरेव विवक्षितः" द्वैपायन के कहे विश्वामित्र से अभिप्राय सर्वमित्र प्रजापति काही है। निरुक्तकार यास्क ने भी कहा है "विश्वामित्र सर्वमित्र" (निरुक्त २।२४) दोनो आचार्यों के वचनो से यही सिद्ध होता है कि मन्त्रो के ऋषि नाम उपाधिवाचक ही है रूढ नहीं। अस्तु।

ऋषियो के विषय मे हम तो इस से आगे जाना चाहते हैं उपाधिवाद भी गौण होजाता है कर्तृवाद की तो कथा ही क्या। हम इसको "आर्षवाद" के नाम से वर्णन करते है —

आर्षवाद

विद्वानो ने जितनी भी परिभाषाएं निर्धारित की है उन सभीका मूल संसार मे उपलब्ध होता है बिना मूल के परिभाषा बन नहीं सकती इसी तरह संस्कृत साहित्य मे परिभाषाओ का भी मूल अवश्य है। जैसे "तदेवार्थ मात्र निर्भास स्वरूप शून्यमिव समाधिः" (योग) समाधि किस को कहते हैं यह बात इस परिभाषा से खोली है परन्तु इस परिभाषा का मूल जो शब्दशास्त्र कृत 'सम्-आधा कि+का समाधान अर्थ रूप है वह नष्ट नहीं किया जासकता। योगशास्त्र से भिन्न अन्य शास्त्रोमे उसका मूलअर्थ लिया ही जावेगा।"जातेश्चपरेण प्रयुज्यमानायाः सुलभ समाधिः" (न्याय-वात्स्याय ने १।१) इसी तरह निरुक्त मे दी हुई 'ऋषिर्दर्शनात्" परिभाषा का मूल शब्दशास्त्र कृत 'ऋष+कि" का ज्ञान-गमन-प्राप्ति संयुक्त चेतन हो तो ज्ञाता, उपयोक्ता जड हो तो प्रेरक या कार्य में कारणता से प्राप्त उपादान अर्थ रूप नष्ट नहीं किया जा सकता। निरुक्त शास्त्र से भिन्न मन्त्रों मे परि पठित ऋषि शब्द या उसके विशेष वाचको में मूल अर्थ लिया ही जावेगा। नैगम पाठ मे परिभाषा को स्थान नहीं दिया सकता। वहाँ ऋषि परिभाषा से भिन्न है अतएव पारिभाषिक न होकर वहाँ ऋषियों का स्वतन्त्र स्वरूप है यही ऋषियो का "आर्षवाद" कहलाता है। इससे ऋषि विश्व के मौलिक पदार्थ सिद्ध होते हैं। वेद की भी इसमें स्पष्ट साक्षी है—

"त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूमा। असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि।"(ऋ० १०।८२।४) "यां त्वा पूर्वभूतकृत ऋषयःपरिवेधिरे" (अथ० ६।१३३।५)

उक्त मन्त्रो मे स्पष्ट ही "पूर्वे ऋषयः····ये भूतानि समकृण्वन्" तथा "भूतकृतः ऋषयः" ऋषियों को वस्तुमात्र के व्यक्तिभाव के कारण पदार्थ कहा है।

अतएव देवता इनके फलस्वरूप या परिणामरूप है ऐसा समझना चाहिये। चारो वेदो मे ऋषि और देवता के नामों से ८६२ पदार्थों का वर्णन है जिनमे ३८६ केवल ऋषि, ७० ऋषि देवता हैं और ४०५ केवल ऋषि हैं। ये तीन कोटिया है। जैसे गेहूँ आदि बीज सब खाद्य पदार्थों के परम कारण है और उनका पिष्ट भाग बीजो से बना हुआ होने से उनका कार्य है। पुन उस पिष्ट भाग से रोटी आदि बनी हुई खाद्य वस्तु केवल कार्य है। इसी प्रकार विश्व के पदार्थ जो मूल स्वरूप हैं वे केवल ऋषि है और उन ऋषियो के देवता जो अन्यो के ऋषि अर्थात् कारण हो जाते है वे मध्यम ऋषि तथा मध्यम देवता है। इन मध्यम ऋषियो के देवता केवल देवता है क्योकि फिर देवता नहीं हैं। एव विश्व के क्षेत्रभूत पदार्थों के तीन विभाग हुए जिनमे केवल ऋषि, मध्यम ऋषि या मध्यम देवता और केवल देवता।

विदित हो कि ऋषि भी देवता की न्याई विश्व के भौतिक आदि उपयोगी पदार्थ है, केवल भेद इतना ही है कि इनका परस्पर कार्य कारणादि सम्बन्ध है अन्य सब बाते समान है। वही बात विस्तारभय से दो चार प्रमाणो द्वारा दिखलाते है—

(१) पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ स्थानो के भेद जैसे देवताओ के तीन गण है एव ऋषियो के भी तीन गण है—

"ऋषि —त्रय ऋषिगणा"

"गोधि पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्द्रो भुव नेष्वर्पित ॥ (साम० उ० प्र० ३। २। १)

कर्तृवाद मे यह बात सगत नहीं होती। जब कि ऋषि लोग भिन्न भिन्न समय मे कई वर्षों तक मन्त्र बनाते रहे ऐसा कर्तृवाद पक्ष मे मानते है। तब क्या सारे मरे जीते इकट्ठे होकर ऋषियो ने यह मन्त्र बनाया? क्या कोई बुद्धिमान इस बात को मान सकता है।

(२) देवताओं के वर्णन मे जैसे कचित मन्त्र पर विकल्प का प्रयोग देखा जाता है वैसे ऋषियों के वर्णन में भी विकल्प पाया जाता है—

ऋषि —सुदितिपुरुमीळ्हौतयोर्वाऽन्यतर"

(ऋग्वेदीया वृहत्सर्वानुक्रमणी ४५ ऋ० ८। ७१)

"ऋषि —कृष्णो द्युम्नीको वा वसिष्ठः प्रियमेधोवा"

(ऋग्वेदीया वृहत्सर्वानुक्रमणी ४६ ऋ० ८। ८७)

(३) देवताओ के विज्ञान मे जैसे आचार्यों का पक्ष भेद है एव ऋषियो के विज्ञान में भी—

"ऋषि —मेधातिथि मेध्यातिथी विश्वामित्र इत्येके"

(साम प्र० १। ११३)

(४) देवताओ में जैसे दृष्टवालिङ्गा लिङ्गोक्ता वा' से वर्णन है एव ऋषियो का भी—

"त प्रत्नथा काश्यपोऽवत्सारोऽन्येच ऋषयोऽत्र दृष्टलिङ्गा द्विरिष्टुवन्तम्" (ऋग्वेदीया वृहत्सर्वानुक्रमणी २६ ऋ० ५। ४४)

अब उन ऋषि नामक कारण पदार्थों का मन्त्रो सहित पृथक पृथक परिगणन न देने पर विस्तारभय से दोष चार स्थल हा रख सकेंगे, प्रथम निरुक्त के प्रमाण से यह बतलादे कि ऋषि पृथिवी अन्तरिक्ष और द्यौ के भौतिक आदि पदार्थ है—

"पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै
य एष स्वप्ननशनोऽस्तमेषि यथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तर" (ऋ० १०। ८६। २१)

इस मन्त्र का ऋषि 'वृषाकपि' है और निरुक्तकार ने इस वृषाकपि को रश्मियों के द्वारा कम्पाने वाला कहा है, जो कोई व्यक्ति नहीं 'अथ यद्रश्मिभिरभिप्रकम्पयन्नेतितद वृषाकपिर्भवति वृषाकम्पन.। स्वप्ननशन स्वप्नान्नाशयत्यादित्य उदयन् सोऽस्तमेषि यथा पुन सर्वस्मादिन्द्र उत्तरस्तमेतद् ब्रूम आदित्यम्" (निरुक्त १२। २८) "धर्षिता चावश्यामाना कम्पनश्च भूतानाम्' (दुर्ग)

"वय सुपर्णा उपसेदुरिन्द्र प्रियमेधा ऋषयो नाधमाना । अपध्वान्तमूर्णुहि पूर्द्धिचक्षुर्मुमुग्ध्य स्मान्निधयेव बद्धान्।" (ऋ० १०। ७३। ११)

प्रियमेधा नाम के ऋषि वेग में सुन्दर पक्षियो के समान है। वे इन्द्र की सेवा मे उपस्थित हुए प्रार्थना करते है कि आप हमे पाशवद्ध हुए जैसो को छोडकर विश्व मे अपनी दर्शनरश्मि को फैलादें और ससार से अन्धेरे को दूर करदे।

उक्त मन्त्र मे प्रियमेधा' नाम के ऋषि सूर्य की किरणे है, निरुक्त मे भी इस मन्त्र की व्याख्या में यही बात स्पष्ट की है।

"वयो वेर्वेदु वचनम्। सुपर्णाः सुपतना आदित्य रश्मय उपसेदुरिन्द्रं याचमानाः। अपोर्णु ह्याध्वस्तं चक्षुः। चक्षु:ख्यातेर्वा चष्टेर्वा। पूर्द्धि पूरय देहीतिवा। मुञ्चात्मान् पाशैरिव वद्धान्" (निरुक्त ४। ३)

इस प्रकार समझ में आजाता है कि ऋषि विश्व के भौतिक आदि पदार्थ हैं और वे देवताओ के अभिव्यञ्जक उत्पत्ति के कारण आदि मूल पदार्थ है जो कि प्रवर्तक-प्रेरक, उपयोक्ता ज्ञाता, तत्प्रार्थी अधिकर्ता वर्णयिता, निवर्तक देवता वस्तु का विशेष धर्म, आधार, उपादान कारण निमित्त, साधक, क्रिया आदि हैं। हम यहां केवल दो तीन उदाहरण ही देते हैं।

उपयोक्ता ऋषि—

'या ओषधी' पूर्वा जाताः' (ऋ० १०।६७)

इस सूक्त का ऋषि 'भिषक् है देवता ओषधि स्तुति (औषधि का गुण-ज्ञान) है। औषधियो का उपयोक्ता भिषक् होता है यह बात सर्वविदित है।

निर्वर्तक ऋषि—

'नासदासीन्नो सदासीत्तदानी नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्। किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥ इयं विसृष्टिर्यत आवभूव .....' (ऋ० १०।१२६) 'नासत्सप्त प्रजापतिः परमेष्ठी भाववृत्तं तु' (ऋग्वेदीया वृ० सर्वानु० ६३)

इस सम्पूर्ण सूक्त मे सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई, यह बताया है। अतएव इसका देवता भाववृत्त अर्थात् वस्तुओ का निर्माण क्रम है और ऋषि प्रजापति अर्थात् निर्माता परमेश्वर है। निवर्तक रूप मे प्रजापति यहाँ आये हैं।

* (ईश्वरस्यच प्रजापति विष्णुरित्यादि पर्यायमात्रम्" आचार्य देवपाल लौगाक्षि गृह्यसूत्र २६)

साधक क्रिया ऋषि —

"उषा अप स्वसुस्तमः संवर्तयति वर्तनि सुजातता" (ऋ० १०।१७२।४) 'आयाहि संवर्त उषस्यं द्वैपदम्' (ऋग्वेदीया वृहत्सर्वानुक्रमणी ६४)

इस मन्त्र मे उषा रात्रि के अन्धकार की एक मार्ग में घुमा देती है यह वर्णन है। अतएव उषा देवता है और उषा के प्रादुर्भाव के निमित्त उसका संवर्त अर्थात्-सूर्य के साथ-साथ घूमना है। यह बात मन्त्र में आए हुए 'संवर्तयति' क्रिया पद से स्पष्ट है अतएव इसका ऋषि साधक क्रिया रूप मे 'संवर्त' है।

यद्यपि यह ठीक है कि मन्त्रो के ऋषि 'आर्षवाद' से विश्व के भिन्न भिन्न क्षेत्र के मूल पदार्थ हैं तथापि उस-उस विद्याक्षेत्र के अनूचान विद्वानो को भी उक्त ऋषिवाचक नाम उपाधि के रूप मे दिये जा सकते है क्योकि ज्ञाता विद्वानों का आत्मा तद्धर्म या तदाकारता को प्राप्त हो जाता है। महाभाष्य व्याकरण मे लिखा भी है—

'महान देवः शब्द'। महता देवेन नः साम्यं यथा स्यादित्यध्येयं व्याकरणम्" (महा० १।१।१)

शब्द अर्थात् शास्त्र के ज्ञान से साम्य, तद्धर्मता, तदाकारता हो जाती है। उसी प्रकरण मे हम एक उदाहरण देदेते हैं। वह यह कि अथर्व वेद के सभी सर्प-विष-चिकित्सा वाले सूक्तों और मन्त्रों का ऋषि गरुत्मान् है और देवता तक्षक सर्प है गरुत्मान् गरुड़ पक्षी को कहते हैं वह यहाँ आर्षपद मे ऋषि है, गरुड़पक्षी सर्प को पकड़ लेता है उसके विष को हरने वाला है।

'जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम्' (भागवत। उ० १६। ११) इस पक्षी के सदृश जो मनुष्य सर्प-विष का चिकित्सक हो वह भी 'उपाधिवाद" से गरुत्मान् कहला सकता है। लोक में सर्प विष का इलाज करनेवाले को गर्रुडिया भी कहते हैं। इसप्रकार उपाधि द्रष्टा को मिलती है अतः ऋषियों का कर्तृवाद सर्वथा † अमाननीय है।

आचार्य कौन है?

जो विद्यार्थियों को अत्यन्त प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षापूर्वक विद्या होने के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न करें उसको आचार्य कहते हैं।

---

† ऋषियों के सम्बन्ध मे अधिक विस्तार के साथ हमने "वेद मे इतिहास नहीं" ग्रन्थ में लिखा है जो अभी अप्रकाशित है, और जिसमे अन्य अनेक निबन्धों में निरुक्त के २५ ऐतिहासिक स्थलों पर भी विस्तार से समाधान किया है।

'पतित'

(रच०—श्री हरिप्रसाद मिश्र 'सेवक')

देखि तरु लता वितान तनोव सुखद मारुत अति शीत न घाम ।
भावना हुई बलवती यहीं यहीं रम जावें अपने राम ॥ १ ॥
हरित दूर्वान्वित शोभितमञ्जु धरणि प्यारी माता की गोद ।
फैल कर सुकृति सुयश सी सुरभि, दे रही थी स्वर्गीय प्रमोद ॥ २ ॥
गगन मे बिखरा मेघ समूह, क्षणिक छाया थी क्षण मे धूप ।
वदन त्यो खिलता कुम्हलाता, हृदय की छाया के अनुरूप ॥ ३ ॥
पवन प्रेरित हो पत्ती गिरी त्याग तरु प्रियतम अंक प्रदेश ।
पतित पत्नी हो जाती त्याज्य, प्रकृति का ऐसा है आदेश ॥ ४ ॥
वायु हिल्लोलित शाखा सदृश, बिचारा के झूले मे झूल ।
हृदय ने कर अतीत की याद, गीत गाया निज गति अनुकूल ॥ ५ ॥
अरे धिक हृदय शोक है व्यर्थ, चेत, ममता कृत है अज्ञान ।
जले जो उसे जलाओ और, विधाता का है यही विधान ॥ ६ ॥
कौन किसका, दो दिन का खेल भटकता क्यो प्यारे पथ भूल ।
शान्ति है मृग मरीचिका तुल्य विचारे क्यो न फूल के शूल ॥ ७ ॥
विश्व प्रांगण मे खेलो मुदित, साथियों का न करो उपहास ।
चूक उनसे यदि होवे नहीं, विजय श्री किमि आवे तव पास ॥ ८ ॥
खेल मानवता का हो शिशु, विश्व-शाला का नूतन छात्र ।
रूप जादू के वश जग-जीव, सभी हैं सदा दया के पात्र ॥ ९ ॥
पतन है मानवता सन्देश, पतन दिखलाता है उत्कर्ष ।
गिरे जो, धूल झाड कर उसे, लगाओ हिल मिल गले सहर्ष ॥ १० ॥
पतित उद्धारक ऋषि उपदेश, सुनो हे सुहृद कलेजा थाम ।
पतित अपनाने मे ही हुआ, पतित-पावन है हरि का नाम ॥ ११ ॥

('पतिता' नामक अप्रकाशित काव्य-नाटिका से)

पुरोहित

(ले०—श्री प० रामदत्तजी शुक्ल एडवोकेट लखनऊ)

आर्य संस्कृति का प्रशस्त प्रवाह गुरु-शिष्य परम्परानुसार अव्याहत गति से जब तक प्रवाहित रहा, उस श्रौत ज्ञानगङ्गा की विमल वारितरङ्ग के स्पर्श-मात्र से जब तक आर्य नर नारी अवगाहन करके अमलमति शुद्धान्त करण बन कर जीवन के परमोत्कृष्ट आदर्श की सिद्धि करते रहे, श्रुति सम्मत आर्जव के मूर्तिमान स्वरूप बनकर जबतक अमृतपुत्र वैदिक आर्य मन वचन एव कर्म इस विन्दुत्रयी का अपने व्यावहारिक जीवन में सदा साम्य दृष्टि से देखकर तद्वत आचरण करते रहे मनस्येक वचस्येकं कर्मण्येक महात्मनाम् के सच्चे अर्थ मे आचारवान जबतक सनातन सत्य धर्मावलम्बी बने रहे तब तक आर्य वैदिक संस्कृति सभ्यता, धर्म एवं साहित्य के शुद्ध स्वरूप को समझने मे किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हो सकती थी। उस अवस्था मे सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्व के अनुसन्धान मे सतत लीन रहने के कारण स्थूल पदार्थों, और उनमे होनेवाले क्षण भङ्गुर व्यवहारो की ओर ऋषियो की विशेष रुचि नही रहती थी। जिस प्रकार एक अत्यन्त मूल्यवान् रत्न को प्राप्त कर लेने के उपरान्त साधारण कौड़ी की ओर प्राकृत पुरुष की दृष्टि भी नही पड़ती उसकी प्राप्ति की अभिलाषा का तो कहना ही क्या है। ठीक इसी प्रकार जिसके प्राप्त हो जाने पर अन्य सब कुछ प्राप्त हो जाय तो किस लिये साधारण वस्तुओ की ओर ध्यान दिया जाय? भारतीय संस्कृति के परमोपासक महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपनी सती पत्नी मैत्रेयी के द्वारा हम को यह अमर आदेश दिया है कि आत्मज्ञान,आत्मसाक्षात्कार अथवा आत्मदर्शन से सब कुछ प्राप्त हो जाता है और इस से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है। यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति। यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम् (छन्दो० उप० अ० ७,२३-२४)

एक शब्द मे इस भूमा को ही अपने जीवन में व्यवहृत करने का विधान ही श्रुति प्रतिपादित वैदिक धर्म है। अनेक ऋषियों ने अपने विभिन्न ग्रन्थो मे इसी बीज का परिवर्धित रूप देने का आयोजन यथा शक्ति किया है। ऋषियों की वर्णन शैली में उनकी अपनी परिभाषाओ का बड़ा महत्व है। उस ऋषि शैली के पारिभाषिक शब्दो के मर्म को न समझ कर अथवा विपरीत अर्थों में समझ कर अनेक प्रकार के अनर्थ हुये, किये गये और आज भी इस आशीवचातुरी के अनेक उदाहरण सुलभ हैं।

देशकालकृत विभिन्न कारणो से वर्तमान समय मे वैदिक ऋषियो की शैली की जाग्रत अवस्था हमारे जीवनों मे कदाचित् नही दिखाई पड़ती है। इस के लिये कौन दोषी है, इस विषयका विचार करने का यह उपयुक्त अवसर नहीं है किन्तु इतना प्रत्यक्ष है कि प्राय अनार्य युग मे ही रहकर हम सब यथाशक्ति चेष्टाये कर रहे है। फिर चाहे उन चेष्टाओं का स्वरूप अघोर हो अथवा घोर, कल्याणकारी हो या अकल्याणकारी। अतः वैदिक परिभाषाओ को भली प्रकार जानने वाले गुरु शिष्य परम्परा मार्ग के प्रायः अभाव मे सूक्ष्म तत्वो के स्थान में स्थूलतम पदार्थों की ओर ही अनन्त दृष्टि रखने के कारण भूमा के स्थान पर अल्प की ही सदा भावना रखने से यदि हम वैदिक पारिभाषिक शब्दो को भी विपरीत अर्थ मे समझकर उनका दुरुपयोग करने में ही अपनी इति कर्तव्यता माने तो कोई आश्चर्य नहीं है।

विज्ञ पाठको के समक्ष अब हम उदाहरणार्थ एक वैदिक पारिभाषिक शब्द रख कर उपरोक्त प्राक कथन की सम्पुष्टि करने का प्रयत्न करेंगे। पुरोहित शब्द चारों वेदो मे उपलब्ध होता है। अग्नि मीड़े इत्यादि ऋग्वेद के प्रथम मंत्र मे ही "पुरोहितम्" शब्द आता है। इसका निर्वचन भास्कराचार्य अपने निरुक्त २-३-

१२ मे इस प्रकार करते हैं "पुर एनं दधति"। स्वामी जी ने पुरस्तात्सर्वं जगद्धाति छेदनधारण कर्षणादि गुणांश्चापि त। पुरोहित पुर एनं दधाति होत्रायवृतः कृपायमाणोऽन्वध्यायद् (नि० २-१२)"। इसी प्रकार उव्वट महीधर सायणादि प्राय समस्त भाष्यकारो ने यास्कीय व्युत्पत्ति को स्वीकार करते हुये मन्त्रार्थ किया है। साधारण भाषा में इसका अर्थ यह हुआ कि "आगे (पुर) जिसको(एनं) रक्खा जाय (दधति)। वह अर्थ अपने पूर्णमहत्व को प्रदर्शित करने के लिये किसी अन्य की अपेक्षा रखता है। उस अपेक्षित के लिये ऐतरेय ब्राह्मण ८-२७ मे 'पुरोधाता' शब्द आता है। इसप्रकार पुरोहित और पुरोधाता सापेक्षित शब्द हुये। पुरोहित और पुरोधाता के महत्व को सम्यक् रूप से प्रकाशित करने के लिये ऐतरेय ब्राह्मण मे 'यो-हवात्रीन् पुरोहितांस्त्रीन् पुरोधातृवेद स ब्राह्मण' पुरो-हित: स वदेत पुरोधाया। अग्निर्वाव पुरोहित पृथिवी पुरोधाता, वायुर्वाव पुरोहितो ऽन्तरिक्षं पुरो-धातादित्यो वाव पुरोहितो द्यौ पुरोधाता एष हवै पुरोहितो य एवं वेद,, (ऐ० बा० ८—२७) अर्थात् जो तीन पुरोहितों और तीन पुरोधाताओं को जानता है, वह ब्राह्मण पुरोहित है। वह पुरोधाता इत्यादिक हैं। अग्नि ही पुरोहित है, पृथिवी पुरो-धाता है; वायु ही पुरोहित है, अन्तरिक्ष पुरोधाता है; आदित्य ही पुरोहित है, द्यौः पुरोधाता है। जो इस प्रकार जानता है वह ही पुरोहित होता है। अन्यत्र (ऐ० बा० ७ २६) में,, अर्धात्मो हवाएष क्षत्रियस्य यत्पुरोहित' [पुरोहित क्षत्रिय का अर्ध आत्मा ही है]। न ह वा अपुरोहितस्य राज्ञो देवा अन्नमदन्ति तस्माद्राजा वक्ष्यमाणो ब्राह्मणं पुरोदधति (ऐ० ब्रा० ८—२४) पुरोहित रहित राजा का अन्न देवगण स्वीकार नहीं करते हैं। अत. यज्ञ करने वाला राजा ब्राह्मण को पुरोहित बनाता है। इसी ब्राह्मण में राजा इन्द्र और उनके पुरोहित बृहस्पति की प्रतिकृति रूप से राजा और उसके पुरोहित का राजसूय प्रकरण में विशद वर्णन किया गया है।

उपरोक्त कतिपय प्रमाणों से पुरोहित और उससे समन्वित पुरोधाता की आधिदैविक और आधिभौतिक क्षेत्रों मे सङ्गति लगाई गई है। इसी प्रकार से आध्यात्मिक क्षेत्र में भी हम बुद्धि को पुरोहित और मन को पुरोधाता मानकर उनके पारस्परिक नाना प्रकार के व्यापारो को समझ सकते है, एवं एक दूसरे के प्रभाव को भी जान सकते हैं। मानव जीवन को सुखमय बनाने के लिये अग्नि पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष, आदित्य पुरोहित राजा की भांति ही बुद्धि और मन के सम्बन्ध को भी पुरोहित पुरोधाता रूप से मानकर तद्वत् आचरण करे तो वस्तुत काया पलट होने मे देर न लगे, और तभी वैदिक शब्द पुरोहित के मर्म को भी हम हृदयङ्गम कर सकें।

बुद्धि की चेष्टाओ का परिणाम ज्ञान है और मन के व्यापारो के परिणाम को ही कर्म कह सकते है। निरपेक्षित रूप से मन अथवा बुद्धि के सहारे सफल जीवन नहीं बनाया जा सकता है। इसी तत्व को स्पष्ट करती हुई याजुषी श्रुति का आदेश है कि, "विद्यां चाविद्या, च यस्तद्वेदोभयंꣳ सह। अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते। (यजु० ४०)गीता के अन्तिम श्लोक मे योगेश्वर कृष्ण + धनुर्धरपार्थ के समन्वय में ही श्री, विजय, भूति का निश्चित रूप से प्राप्त होना ध्रुवनीति कहा गया है। 'ब्रह्मणा क्षत्रेण च श्रीः परिग्रहीता भवति' इस वचन से शत० ब्रा० ने भी उसी तत्व का प्रतिपादन किया है। ज्ञानपूर्वक कर्म या बुद्धिपूर्वक मनोव्यापार के आदर्श को सार्व-देशिक और सार्वकालिक कहने मे किसी प्रकार की अत्युक्ति नहीं कही जा सकती है। इस प्रकार पुरोहित और पुरोधाता की व्यापकता द्वारा ओत-प्रोत रूप से विश्व के समस्त अग्नि + सोमीय, ऋत + सत्य, मित्र + वरुण, प्राण + अपान, आदि-आदि पारि-भाषिक द्वन्द्वों के परमार्थों का उद्घाटन हो जाता है। निदान जिन-जिन क्षेत्रों में पुरोहित पुरोधाता का यह समन्वित क्रम यथा निर्दिष्ट रूप से व्यवहार मे आता रहता है, उन-उन क्षेत्रों मे साम्य, शान्ति और समु-न्नति देखने में आती है और इसके विपरीत जहाँ विपर्यय रूप हो जाता है तो परिणाम भी विपरीत हो जाना अनिवार्य है।

आधिदैविक क्षेत्र में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है कि यदि अग्नि और पृथिवी अपने-अपने स्वाभाविक

गुणधर्मों को त्याग दें तो इतना ही नहीं कि केवल पृथिवी या अग्नि का ही अपकार या हानि हो, किन्तु इस च्युति का भयंकर प्रभाव समस्त विश्व पर पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार पुरोहित और राजा के भी स्वाभाविक गुण-धर्म है कि जिनको त्याग कर राष्ट्र किसी भाँति शान्ति, सुख का भागी नहीं बन सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि अपने कल्याण की इच्छा रखने वालो की प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक कर्म करने मेंही होती है किन्तु अपने यत्न-साधनार्थ अनेक मनमानी बुद्धि रखते है।

कपिलाचार्य ने अपने सांख्य दर्शन मे आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक दुःखो की अत्यन्त न्यून वृत्ति को ही अत्यन्त पुरुषार्थ माना है। या यो कह सकते है कि इन तीनो प्रकार के सम्यक् ज्ञान को ही परम पुरुषार्थ माना गया है। इस आदर्श से अच्छा आदर्श अन्य किसो ने नहीं दर्शाया है।भूमा की साधना का सर्वोच्च शिखर इस आदर्श प्राप्ति को कहसक्ते हैं।

कर्मयोग, मनोयोग, पृथिवीयोग, अन्तरिक्षयोग तथाद्यौः,योग प्रधान वर्तमान (machine Age) मे ज्ञान योग, बुद्धियोग, अग्नियोग, वायुयोग. और आदित्ययोग के रहस्य को हृदयङ्गम करने के लिये किस को अवकाश है पुरोधाता (Elector) ही आज अपने और पुरोहित To be kept in front i.e elected Leader के स्थानो को आक्रान्त किये हुये है। न तो अब राजा को पुरोहित (प्रजा के सच्चे प्रतिनिधि-नेता) की आवश्यकता शेष रही और न अब वैयक्तिक जीवन में बुद्धि कोही कोई विशेष महत्व रहा है। जो जो जिस जिस के मन मे समाता है करने लगता है। परिणाम भी जो होना अनिवार्य है वही होता है नह वा अपुरोहितस्त राज्ञो देवा अन्नमदन्ति (ऐ० ब्रा०)।

स्वरूप विपर्यय से भावनाये विपरीत और भावनाओं के विपरीत होने के कारण विचार कलुषित हुए और उनका परिणाम कर्मों मे मिलनता हुआ। और अन्त में चरित्र बल का दयनीय ह्रास हुआ। आज यदि हमारे सामने पुरोहित शब्द का उच्चारण किया जाता है तो हम उसका यही अर्थ समझते हैं कि "पुरोहित वह प्राणी होगा जो अपढ़ होने पर भी स्वर्ग नरक की बातें सुना सुना कर अनेक प्रकार से भोले भाले साधारण विद्या हीन जनो को ठगने के लिये छल कपट से काम करके अपना स्वार्थ साधन करता है। इस प्रकार के जीव देश जाति के लिये कलङ्क मात्र भार रूप है। जितनी आसानी से इन का नाम शेष किया जासके उतना ही अच्छा है।,, पुरोहित के इस संस्करण को सर्वथा अग्राह्य, निन्द्नीय, बहिष्करणीय और अवाञ्छनीय मानलेने पर भी हमारी कठिनाइयाँ दूर होने के स्थान मे द्विगुणित हो जाती है।

प्रथम तो हम अब भी दृढ़ता के साथ यह कहने का साहस नही कर सकते कि जिस आदर्श का प्रतिपादन वैदिक ऋषियो के ब्राह्मण वाक्यो द्वारा किया है वह अब अनावश्यक हो गया है और दूसरे अब तक अन्य कोई विधि विधान भी किसी प्रकार का ऐसा नही बनाया जा सका कि जिस से उक्त आदर्श के स्थान की पूर्त्ति सफलता और सन्तोष के साथ की जासके। उदाहरणार्थ जिन लोगो ने पुरोहित पुरोधाता (यजमान) व्यवहार सर्वथा त्याग दिया है, उन्होंने उसकी पूर्ति के लिये जो कुछ भी प्रबन्ध किया है वह तो और भी बिकृत है। अपढ पुरोहित तो जैसे तैसे कुछ न कुछ निर्भीकता के साथ कह कर अपना काम कर लेता है किन्तु उसकी नूतन प्रतिमूर्तिउतनी भी जानकारी न रखने के कारण अपने अपने कार्य मे नितान्त असफल सिद्ध होती है।

इन सब बातोका अत्यन्त भयंकर परिणाम यह होता है कि आजयदि हमारे सामने 'राष्ट्रे वयथं जाग्रियाम पुरोहिता.'(यजु-६-२३)को उच्चारण किया जावे तो हम 'राष्ट्रमें हम पुरोहित जगे" इसका क्या भाव निकाले इस मत्र मे "पुरोहिता." शब्द मे न तो वेद का यह प्रयोजन है कि अनपढ़ या स्वल्पज्ञ पुरोहित जो जैसे तैसे स्वार्थरत है और न असंस्कृत नवीन प्रकार का पुरोहित जो उस से भी न्यून ज्ञान रखता है। तब

वैदिक संस्कृत के स्वरूप के खोजी के पूछने पर हम अंगुली उठाकर कहे कि अमुकव्यक्ति हमारा पुरोहित है और इसे वैदिक धर्मानुसार पुरोहित कहा जा सकता है तथा हम भी वैदिक पुरोधाता या यजमान हैं। अन्यथा "यजमान स्य पशून पाहि" (यजु -१-१) के "यजमानस्य" का वास्तविक अर्थ कर के किसी व्यक्ति का यजमान संज्ञा प्रदान करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य ही है।

अपने व्यष्टि और समष्टि जीवन से हमने वैदिक शब्दो को यहां तक गिराया कि अब उनका ठीक अर्थ जानना दुलभ सा होगया है। तभी ता गोस्वामी तुलसी दास ने भी पुरोहित कर्म को अत्यन्त निन्दनीय कहा है। आज कल भी ब्राह्मणो मे पुरोहित कर्म करने वालों का आदर नही किया जाता है। इसके विपरीत उनको कुछ तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है।

एक परिणाम इस प्रवृत्ति का यह भी हुआ कि मध्य कालीन बौद्ध युग मे तथा शङ्कर युग मे समान रूप से कर्म कण्ड की अवहेलना और निंदा होते रहने से सर्व साधारण की अभि रुचि कर्म काण्ड से हटाई गई किंतु उसके स्थान मे सूक्ष्म ज्ञान काण्ड की ओर भी वह दृढ़ता के साथ प्रवृत्त न होसके।

वैदिक कर्म काण्ड प्रधान मुख्य मुख्य कार्यो का सुचारु रूपसे करने वालोका शनैःशनैः स्वरूप परिवर्तित होता गया और अन्ततोगत्वा शुद्ध वैदिक यज्ञों का अबतो नाम शेष रहगया है। अनेक प्रकार के यज्ञो का क्या रहस्य है, उनमे कितन व्यापक अर्थ भरे है, उनको प्रतिकृति मानकर किस प्रकार विश्व क तथा आध्यात्मिक रहस्यों क समाधान करन की चेष्टा की गई है इत्यादि बातो को जानना तो दूर आज ऐसे व्यक्ति भी कठिनाई से मिल सकेंगे जा अनेक यज्ञो के नाम, ऋत्विक् सख्या तथा नामादि को भी जानते हे।

ऐसी अवस्था मे प्रत्येक वैदिक संस्कृति के उपासक का परम कर्त्तव्य है कि यथा शक्ति प्रयत्न करके शुद्ध वैदिक कर्मकाण्ड प्रचारार्थ सच्चे पुरोहितो और पुरोधाताओं (यजमानो) का पवित्र जीवन स्वीकार कर वैदिक आदर्शो को आचरण मे लाने का समुचित प्रयत्न करे।

स्वनाम धन्य ऋषिवर विरजानन्द जी तथा श्री स्वा० दयानन्द जी सरस्वती ने अपनी पूर्णशक्ति व्यय करके आर्य जाति को जाग्रत अवस्था मे लाने का प्रयत्न किया और दृढ विश्वास किया कि पुन वैदिक धर्म का आर्यवर्त देश मे और उसके द्वारा अन्यत्र वैदिक आर्ष संस्कृति का प्रकाश अज्ञानान्धकार को दूर करेगा। ऋषि-परम्परा और उस के द्वारा प्रवाहित पावनी ज्ञानगङ्गा मे अवगाहन करने के अभिलापी प्रत्येक नर नारी के प्रति दीपावलि के पुनीत दिवस पर यही साग्रह निवेदन है कि आय पथ के पथिक बनने के लिये सच्चे पुरोहित और वास्तविक यजमान बन कर ही हम ऋषि ऋण का परिशोध करने मे समर्थ हासकेंगे, इस बात को चरितार्थ करने का व्रत धारण करे सर्वनियामक परम पुरोहित हमको बुद्धिबलदे कि हम अपने अभिलपित आदर्शानुष्ठान मे सफल मनोरथ हो। राष्ट्रे वयं जाग्रियाम पुरोहिताः स्वाहा ॥

ऋषि श्रद्धाञ्जलि

मैंने स्वामी दयानन्द सरस्वतीके अनेक बार दर्शन किये और उपदेश सुने। मुझे उनके चरणों मे बड़ी श्रद्धा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती गत शताब्दी मे जन्मे हुये देश भक्तों और सुधारकों के गगन मण्डल में सबसे अधिक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। उन्होने देश के सामाजिक नैतिक और बौद्धिक उत्थान में अन्य समस्त सुधारकों के सम्मिलि। कार्यो से भी कहीं अधिक कार्य किया है।

—अवधवासी श्री लाला सीताराम एम० ए० एम० आर० ए० ऐस०



महाराजकुमार श्रीमान श्री सुदर्शनदेवजी बहादुर (शाहपुराराज)

चार सींग का बैल

(ले०—श्री प० धुरेन्द्रजी शास्त्री न्यायभूषण)



चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त-हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यां आ विवेश।

ऋग्वेद मण्डल ४, सूत्र ५८, मन्त्र ३।

यजुर्वेद अध्याय १७ मन्त्र ६१।

विलसन महोदय को वेद में अनिश्चितपना प्रतीत होता है। उन्होने लिखा है —

'A good specimen of Vedic Vagueness and Mystification and of the straits to which Commentators are put to extract an intelligible meaning from the text

अर्थात् उपर्युक्त मन्त्र वेद की अस्पष्टता और भ्रान्ति-जनकता का अच्छा नमूना है और वेद में से बोधगम्य अर्थ निकालने के लिए टीकाकारो को कितना संकुचित होना पड़ता है, इसको भली-भांति प्रकट करता है।

वैदिक रचनाशैली से अनभिज्ञ पुरुष ही ऐसे मन्त्रो को उदाहरण रूप मे प्रस्तुत कर यह कहने का साहस कर बैठते है कि वेद गडरियो के गीत हैं। साहित्य सेवी सत्पुरुष ही समझ सकता है कि लेखक, वक्ता अथवा कवि (लौकिक पुरुष) कई प्रकार से अपने प्रतिपाद्य विषय का प्रतिपादन किया करते हैं। कहीं भाषा की सुन्दर शब्द-शृंखला मे मनोगत भाव को भरने का भरसक प्रयत्न करते हैं, कही श्लेष आदि अलंकारो से अलंकृत करते हैं, और कभी प्रकारान्तर ही का अवलम्बन करते हैं। जब लौकिक पुरुषो की इस प्रकार की रचना गौरान्वित, श्रद्धास्पद हो सकती है और जनमन-मोहन कर सकती है, तो अलौकिक वैदिक शब्द शृंखला की तो बात ही क्या है।

लौकिक कवि अपने भावोंको सुन्दर शब्द साँचे में भरने का किस प्रकार प्रयत्न करते है। यह पाठक के समक्ष कुछ उदाहरणो द्वारा उपस्थित हैं। देखिये—

"आधरि पद्मेषु तदङ्घ्रिणा घृणा क तच्छय-च्छाय लवोऽपि पल्लवे। तदास्य दास्येऽपि गतोऽधि-कारतां न शारद पार्विकशर्वरीश्वर॥

नैषधचरित सर्ग १, श्लोक २०।

इस श्लोक मे राजा नल की सुन्दरता का वर्णन है। राजानल के पैर ने पद्मो में घृणा उत्पन्न करदी अर्थात् पद्म से पैर सुन्दर थे। जब पैर ही पद्म से अधिक सुन्दर थे तो हस्त-सौंदर्य की समता कोई क्या कर सकता है। शरद ऋतु की पूर्णिमा का चन्द्रमा बहुत ही सुन्दर होता है, किन्तु राजा नल का मुख इतना सुन्दर था कि शरद ऋतु का चन्द्रमा उसकी सेवा के योग्य भी नहीं था। इसी प्रकार राजा भोज और लोलम्बराज कवि का विचार विनियम देखें—

'भो लोलम्ब कवे! कुरु प्रणमनं किं स्थाणुवत् स्थीयते, कस्मै भोज नृपाल! बाल शशिने, नायं शशिः वर्त्तते। किं तद् व्योम्नि विभाति चारु समये चन्द्रद्युते-र्वाजिन पादत्राण मद जवाद्विगलितं खे राजत राजते'।

हे लोलम्ब कवि! क्या स्थाणु (ठूंठ) के सदृश खड़ा है, नमस्ते कर।

हे राजा भोज! मैं किसको नमस्ते करूं?

इस नवीन चन्द्रमा को।

कवि—यह चन्द्रमा नहीं है।

राजा सूर्य के अस्त समय आकाश में यह क्या चमक रहा है?

कवि—दौड़ते हुये सूर्य के घोड़े के पैर का नाल निकल गया है और वह ही आकाश में चमक रहा है।

किसी की दुराशा पूरी नहीं होती है, इस भाव का एक कवि किस प्रकार द्योतन करता है, वह निम्न पंक्तियो मे देखते ही बनती है।

"इन्दु प्रयास्यति विनङ्क्षति पंकजश्रीः स्थास्यन्ति लीढ़तिमिरा न मणिप्रदीपाः अन्धं समग्रमपि कीट मणे' भविष्यत्युन्मेषमेष्यति भवानपि दूरमेतत्"

जुगनू अंधेरी रात मे अपना प्रकाश करने के लिए कहता है कि चन्द्रमा छिप जायगा, पंकज की श्री समाप्त हो जायगी, अंधेरे को चाट जाने वाले मणि प्रदीप भी न रहेगे। जब सर्वत्र अंधेरा ही अंधेरा होगा तब मै अपने प्रकाश से संसार को प्रकाशित करूंगा। किन्तु यह दूर है।

दरिद्रता के साथ स्नेह सम्बन्ध भी कवि-कल्पना के चमत्कार रूप में किस प्रकार दिखाई गई है, यह पाठक देखें—

"दारिद्र्य शोचामि भवन्तमेव अस्मच्छरीरे सुहृदित्युषित्वा। विपन्न देहे मयि मन्द भाग्ये चिन्ता ममेति क गमिष्यसि त्वम्"

हे दरिद्रते ! तू मुझको अपना मित्र समझ कर मेरे पास आई है। मै अभागा जब मर जाऊँगा तब तू कहां रहेगी, मुझे इसी की बड़ी चिन्ता है। साहित्य रस शून्य व्यक्ति ही इस कवि कल्पना को कुत्सित कहेगा।

शब्द अनेकार्थ प्रतिपादक होते है यह व्यवस्था संस्कृत में ही नहीं अपितु सर्वत्र उपलब्ध होती है।

"शीश पै, तिहारे पद रज को चढाऊँगी"

एक स्त्री कृष्णचन्द्रजी के प्रति कहती है कि अपने शीश पै आपकी चरण रज को चढ़ाऊँगी। दूसरा यह अर्थ भी किया जा सकता है कि शीश पै तिहारे, पद रज को चढ़ाऊँगी। तुम्हारे शिर पर अपनी चरण रज चढ़ाऊँगी।

छोटे छोटे बच्चे भी शब्द का अर्थान्तर करने में अपनी पटुता दिखाने का प्रयत्न करते हैं। भरतपुर में शिवदत्तजी के गृह पर योगेन्द्र आदि कई बच्चे पढ़ रहे थे। मैंने उन बच्चो से कहा कि देखो एक यह नियम है कि कर्त्ता यदि पुंलिंग हो तो क्रिया भी पुंलिंग हो। यदि कर्त्ता पुंलिंग है और क्रिया स्त्रीलिंग लगादी जावे तो वाक्य अशुद्ध हो जावेगा। जैसे कोई कहे देवदत्त खाती है तो उसका यह वाक्य अशुद्ध होगा, क्योंकि देवदत्त पुंलिंग है और क्रिया स्त्री लिंग है। इसलिए देवदत्त खाता है वाक्य ही ठीक है। तब उन बच्चो मे से योगेन्द्र या विद्याभूषण ने उत्तर दिया कि 'देवदत्त खाती है' वाक्य ही शुद्ध है। मैंने पूछा—यह वाक्य कैसे शुद्ध है ? लड़के ने कहा—देवदत्त खाती है. इस वाक्य का यह अर्थ है कि देवदत्त खाती (बढ़ई) है। इस शब्दार्थ-समन्वय को सुनकर मैं अवाक् रह गया। सब बच्चो ने मिलकर करतल ध्वनि की और हँस कर कहने लगे कि आज शास्त्रीजी को हरा दिया। दूसरे दिन एक वाक्य बच्चों ने पुनः पूछा कि "जानकी तुझे परवाह नहीं है" इसका क्या अर्थ है ? मैंने कहा कि रावण कहता है—हे जानकी-सीता, तुझे (मेरी) चिन्ता नहीं है। लड़केबोले-नही नहीं, इसका यह अर्थ नहीं है, इसका अर्थ आपको नहीं आया है। इसका तो यह अर्थ है कि जानकी जीवन की तुझे चिन्ता नहीं है। यह कहते हुए बच्चो ने शोर मचा दिया कि आज भी हरा दिया। मैं उन बच्चों के बुद्धि वैशद्य पर बड़ा ही मुग्ध हुआ। ऐसे ही दो पद्यो द्वारा सूरदासजी ने बड़ा ही सुन्दर सन्देश दिया है—मन्दिर अरध अवधि पिब बदि गयो हरि अहार टरिजात। अजयाभक्ष अनुहार रत नाहीं तावे जिय अकुलात।

पति देव मन्दिर की आधी अवधि कह कर गये थे किन्तु हरि (शेर) का आहार (मांस) टला जाता है। अजया (बकरी) का भक्ष (खाना) पत्ता वह भी आया नहीं है, इसलिए चित्त घबराता है।

"मघ पञ्चम ले गयो सांवरो कैसे दिवस सिरात्। ग्रह, नक्षत्र अरु वेद अरध करि सोई बनत अब खात"

मघ पञ्चम प्यारा ले गया अब दिन कैसे कटे। ग्रह, नक्षत्र और वेद को आधा करि के खाजाना चाहिए। इस अर्थ मे कोई गौरव नहीं है अतएव गौरवान्वित अर्थान्तर करना चाहिए। मन्दिर, मकान का आधा भाग पाख, पक्ष १५ दिन का होता है। मांस के अनुस्वार (बिन्दी) को हटादें तो रह जायगा मास। मास महीना को कहते हैं। पत्ता को पत्र, पत्र को चिट्ठी खत कहते हैं। प्रथम दोहे का यह अर्थ हुआ कि पति देव १५ दिन की कहकर गए थे। अब महीना बीत रहा है न स्वयं आये और न पत्र ही आया है, इसलिये चित्त व्याकुल हो रहा है।

दूसरे दोहे का अर्थ—

मघा नक्षत्र से पञ्चम नक्षत्र चित्रा है चित्रा मे से रेफ निकाल दिया जावे तो चित्र रह जायगा, ग्रह ६, नक्षत्र २७, वेद ४ सब जोडने से हुए चालीस और चालीस का आधा बीस हुआ 'बीस" की "ई" को ह्रस्व (छोटी) करदी जावे तो विस हो जावेगा विस जहर को कहते है। सब का यह अर्थ हुआ कि यदि पति देव अपने चित्र को भी मेरे पास छोड जाते तो मैं उसके ही सहारे दिन काटती रहती किन्तु चित्र को भी ले गए अब दिन कैसे कटे। अब तो जहर खा के प्राणान्त कर देना चाहिए। यदि दोनो दोहो का पहला ही शब्दार्थ ठीक समझा जावे तो उन्मत्त वाक्यवत् उपेक्षणीय ही कहे जा सकते हैं।

प्रति दिन व्यवहार मे आनेवाले शब्दो के अर्थान्तर भी ध्यान देने योग्य हैं। मैने भात को खाया, मच्छरो और खटमलो ने मुझको खाया, जैसे मैने भात को खाया था। कदापि ऐसा अर्थ नहीं हो सकता है। "खाया" यह एक शब्द दोनो जगह अर्थान्तर को द्योतन करता है। वह मनुष्य हलुआ खाता है और रिश्वत भी खाता है जिस प्रकार हलुआ दाढ से दबोच गले से उतार कर पेट में पहुचाया जाता है, क्या उसी प्रकार रिश्वत का भी दाँत से खोच कर गले से उदर मे डाला जाता है ? कदापि नही।

कहीं कही किसी किसी विषय का आलकारिक प्रतिपादिन होता है। नेता कैसा होना चाहिए इसके लिए गणेशोपाख्यान अच्छा उदाहरण है। गणेश-गण-समुदाय का, ईश-स्वामी गणपति-गण का मालिक विनायक विशेषरूप से ले चलने वाला। यह तीनो शब्द समानार्थक हैं।

पुराण मे गणेशोत्पत्ति प्रकरण इस प्रकार है कि जया और विजया नाम की पार्वती की दो सहेली थी। एक दिन इन दोनो ने पार्वती को कहा कि शकर के पास नन्दी भृंगी आदि कई गण है जो उनकी आज्ञा को पालने के लिए सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं किन्तु आप के पास ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो आपकी आज्ञा पालन में प्रवृत्त रहे। पार्वती को यह बात जँच गई और निश्चय किया कि अब ऐसा ही व्यक्ति बनाना चाहिए, जो मेरी आज्ञा के पालन मे ही प्रस्तुत रहे। शरीर के मैल अथवा मिट्टी और पानी के मेल से गणेश बना डाला और दरवाजे पर खड़ा कर हुक्म दे दिया कि किसी को अन्दर न आने देना। जब शकर घर मे घुसने लगे तब गणेश ने उनको रोका। इस अपमान को देखकर शकर ने अपने नन्दी भृ गी आदि गणो को युद्ध के लिए अनुमति दी। युद्ध होने लगा किन्तु शकर के गण पराजित हो गए और विष्णु के पास जाकर पराजय का समाचार सुनाया। अब विष्णु और गणेश का युद्ध होने लगा। शकर ने अवसर पाकर पीछे से आकर गणेश का शिर छेदन कर दिया। शिव गणेश युद्ध तो समाप्त हुआ किन्तु अब मिया। बीबी (शकर पार्वती) मे युद्ध होने की तैयारी को देख समझौता कराया गया। जब तक पुत्र जीवित न हो तब तक सुलह नामा कैसा। तुरन्त एक हाथी के शिर का पेबन्द लगा दिया गया। हाथी का शिर भी ऐसा लगाया जिसमे एक ही दाँत था। और सवारी के लिए चूहा मिला।

यह एक अलकार है। नेता कैसा होना चाहिए, इसको यहां अलकार रूप से कहा गया है। चूहा एक छोटा जन्तु है, बिल और छिद्र करता है, उपयुक्त सामग्री को कुतर कुतर कर छिन्न भिन्न कर डालता है। नेता को चाहिए कि वह छोटे से छोटे व्यक्ति को भी अपने पास रक्खे जिससे विरोधि समुदाय के सकल सामग्री को कुतर कुतर कर छिन्न भिन्न करदे, कार्य को सछिद्र बनादे। एक दन्त अर्थात् द्वैत, द्विविधा, सन्देह नेता मे न हो, अपितु एक दन्त, अद्वैत द्विविधा रहित और सन्देह शून्य हो। कृष्णचन्द्रजी महाराज ने इसको प्रकारान्तर से इस प्रकार कहा है "दु खेषु अनुद्विग्नमना सुखेषु विगत स्पृहा"।

हाथी का सब से बडा शिर होता है। नेता का भी बहुमतरूपी शिर बड़ा ही होना चाहिए। जिसके मस्तिष्क मे जनता का बहुमत नहीं है वह नेता होने के योग्य नही है। यह ही बात यजुर्वेद के पुरुष सूक्त से भी सिद्ध होती है। जिसके मस्तिष्क की आज्ञा में सकड़ो मस्तिष्क, नेत्र, हस्त और पैर रहे वही (पुरुष) नेता है, दूसरा नहीं। हाथी के शिर कोरखने

मे एक यह भी आशय प्रतीत होता है कि अन्य मस्तिष्को में केवल ज्ञानेन्द्रिय और सूड कर्मेन्द्रिय भी रहती है। नेता ज्ञानी भी हो और कर्मी भी हो।

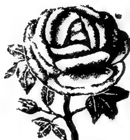
मैंने पाठको के समक्ष अब तक यह प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है कि कही कही सुन्दर शब्द-साँच मे भाव भरे जाते है, कही एक ही शब्द भिन्न भिन्न अर्थो मे व्यवहृत होता है और अन्यत्र आलकारिक वर्णन होता है। जिन मन्त्रो का स्पष्ट अर्थ अवगत न होता हो उन मन्त्रो को परोक्ष वृत्ति कहते है। जो मनुष्य वैदिक रचना शैली से अपरिचित होते हैं वे ही मन्त्रो को दृष्टान्तरूप मे प्रस्तुत किया करते हे उसम कैसा सुन्दर भाव भरा है—मै अपनी ओर स अल्पमति ननु नच न करूँगा, अपितु महर्षि स्वामी श्री दयानन्दजी महाराज ने जो अर्थ प्रतिपादन किया है उस ही को प्रस्तुत करता हू। इसका यज्ञ परक अर्थ इस कार है। यज्ञ रूपी बैलके चार वेद सीग,प्रात ,माध्यान्दिन और साय, तीन सवन, तीन पैर, उदय और अस्तकाल दो शिर तथा गायत्री आदि सात छन्द सात हाथ के सदृश हे। मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प इन प्रकारो से बँधा हुआ है ऐसा महानदेव सुखो की वर्षा करने वाला यज्ञ प्रात आदि सवन क्रम से शब्द करता हुआ मनुष्यो मे प्रवेश करता है।

द्वितीय अर्थ शब्द शास्त्र परक होता है जिस शब्द शास्त्र के भूत भव्य और वर्तमान काल तीन पर नाम, आख्यात, उपसर्ग, और नितान्त चार सीग, नित्य और कार्य को शिर के, प्रथमा आदि विभक्तियाँ सात हाथ के समान है। हृदय, कण्ठ और शिर इन तीन स्थानो मे बँधा है वह शब्द शास्त्र ऋग् यजु, साम और अथर्ववेद से शब्द करता हुआ मनुष्यो मे प्रवेश करता है।

ऋग्वेद मे इस मन्त्र का अर्थ स्वामीजी महाराज ने धम परक कियाहै—

चार वेद धर्म के सीग कर्म, उपासना और ज्ञान तीन पैर, अभ्युदय और निश्रेयस दो शिर, पाच ज्ञानेन्द्रिय, अन्त करण और आत्मा अथवा पञ्च कर्मेन्द्रिय, अन्त करण और आत्मा सात हाथ के सदृश है। यह धर्म श्रद्धा पुरुषार्थ और योगाभ्यास से बँधा हुआ हे।

ऋषि दयानन्दजी की वेद भाष्य शैली यह है। सौन्दर्यसमन्वित वैदिक शब्दार्थ सम्बन्ध क प्रस्तुत रहते हुए क्या कोई सुबुद्धि सम्पन्न सज्जन यह कहने का साहस कर सकता है कि वेदमे वेगनेस(अस्पष्टता) है, कदापि नही।



आचार्य स्कन्द स्वामी तथा महर्षि दयानन्द स्वामी

(लेखक—श्री आचार्य विश्वश्रवा)



ति प्राचीन शाखा ब्राह्मण आदि के अतिरिक्त वेदार्थ करने वालो की उपलब्ध सामग्री के अनुसार स्कन्द सबसे प्राचीन और ऋषि दयानन्द सब से अन्तिम हैं। स्कन्द के पिता का नाम भर्तृध्रुव निवास स्थान वलभी और काल सप्तम शताब्दी है। इसकी कृति निरुक्तभाष्य और ऋग्वेद भाष्य प्राप्त हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती औदीच्य ब्राह्मण कुल मे मौर्वीराज्य टङ्कारा के जीवापर मुहल्ले मे उत्पन्न हुए थे। पिता का नाम कर्शनजी लालजी त्रिपाठी था। जन्म तिथि अश्विन बदी सप्तमी संवत् १८८१ है इस सम्बन्ध में स्वामी जी के शिष्य पं० ज्वालादत्त का निम्न श्लोक है-

क्षोणीभाहीन्दुभिरभियुते वैक्रमे वत्सरे य,
प्रादुर्भूतो द्विजवरकुले दक्षिणे देशवर्ये ।
मूलेनासौ जननविषये शकरेणापरेण,
ख्याति प्रापत् प्रथमवयासि प्रीतिदः सज्जना नाम् ॥

इन दोनो स्वामियो के सिद्धान्तो की तुलना प्रस्तुत लेख में है। उद्धरण सकेत मात्र है, पूर्वापर संगति और पूर्व परिचय मूल ग्रन्थ देखने से होगा।

१—वेद का काल ।

स्कन्द—

तत्र सृष्ट्यादौ य ऋषयस्ते ऽतीतसृष्टावधीनं सुप्तप्रतिबुद्धन्यायेन मन्त्रब्राह्मण स्मरन्ति"।

निरुक्तभाष्य भाग १ पृष्ट ११४

दयानन्द—

वेदानामुत्पत्तौ कियन्ति वर्षाणि व्यतीतानि ? अत्रोच्यते एको वृन्दः षण्णवतिः कोटयोऽष्टौ लक्षाणि द्विपञ्चाशत्सहस्राणि ।

भूमिका शताब्दी संस्करण पृष्ट २८३

अर्थात् अन्य मत मेदो के होते हुए भी सृष्टि के आदि में ऋषियों को वेद प्राप्त हुए इसमे दोनो सहमत हैं।

२—वेद और इतिहास

स्कन्द –

औपचारिको ऽय मन्त्रेष्वाख्यानसमय परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्।

नि० भा० भाग २ पृष्ट ७८

दयानन्द—

स्वां सरस्वती दुहितरं मैथुनाय अगमहेति सा मिथ्यैवास्ति कुतः अस्याः कथाया अलंकार विषयत्वात्

भू० श० सं० पृष्ट ६०६

अर्थात् वेद में वस्तुत इतिहास है यह भी दोनो को सहमत नहीं।

३—वर्ण व्यवस्था

स्कन्द—

"स (देवापिः) गुर्वनुग्रहात् तेनैव शरीरेण वीतहव्यवत् विश्वामित्रवच्च ब्राह्मणो बभूव"।

नि० भा० भाग २ पृष्ट ७१

दयानन्द—

"यस्य वर्णस्य गुणैर्युक्तो यो वर्णः स तत्तदधिकारं प्राप्नोति"

अर्थात् दोनो इस बात में एक मत रखते हैं कि एकही जन्म मे वर्ण बदल सकता है।

४—नियोग ।

स्कन्द—

"काचिद् ब्राह्मणी पत्यौ प्रव्रजिते कामार्ता प्रव्रर्वाति"

नि० भा० भाग २ पृष्ट २६४

दयानन्द—

'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिम्"
अन्य पति की इच्छा कर

सत्या० श० सं० पृष्ट २१७

अर्थात् यम यमी सूक्त नियोग परक है तथा नियोग दोनों की दृष्टि में वैदिक है।

५—उपसर्ग और नाम।

स्कन्द—

"आकार उपसर्गश्छन्दसत्वादसमस्तोऽपि प्राति पदिकेनैव सबध्यते"

नि० भा० भाग २ पृष्ठ ४४५

दयानन्द—

"आ कृष्णेन आकर्षणगुणेन सह वर्तमानोऽस्ति"

भू० श० स० पृष्ठ ४३६

अर्थात् असमस्त भी उपसर्ग को क्रिया के साथ न जोड़ कर नाम के साथ सम्बन्ध कर व्याख्या करने की शैली है।

स्कन्द— ६—निरुक्तव्याख्या।

"एक सत् कारणमात्माख्य वस्तु"

दयानन्द— नि० भा० भाग ३ पृष्ठ ८१

"स चैकस्य सद्वस्तुनो ब्रह्मणो नामास्ति"

भू० श० स० पृष्ठ ६३०

अर्थात् निरुक्तकार ने 'इन्द्र मित्रम्' आदि ऋचा में यह बताया है कि परमात्मा के इन्द्र आदि नाम हैं। यह व्याख्या निरुक्त के स्थल की दोनों एक प्रकार समझते हैं।

अनार्ष ग्रन्थों के अभ्यासी या दो चार ग्रन्थ पढ़ कर ऋषि दयानन्द की अशुद्धिया निकालने वालों को यह स्थल विशेष रूप से देखने योग्य हैं कि मन्त्रार्थ–प्रकार मन्त्रार्थ नियोग या किसी सिद्धान्त के सम्बन्ध मे दयानन्द ने गप्प हाकी है या वस्तुत उन्हें कुछ तत्व का पता था। निरुक्त आदि ग्रन्थों के किन्हीं उद्धरणो के जो अर्थ ऋषि ने किये हैं, अनार्ष परम्परा से पढने वाले काव्य नाटकों के अभ्यासी जो उन अर्थो को देख कर असगत है ऐसा सहसा कहने को तैयार हो जाते हैं उनकी सेवा में निवेदन है कि या तो वे बहु पठित बनें - दो पुस्तकें पढ़ कर ऋषि का निर्णय न करे और यदि बहुत सी पुस्तको के पढ़ने मे आलस्य है तो जिन्हे ऋषि के सिद्धान्त और वेदार्थ शैली पर विश्वास है उनसे विचार करें कि उन्होने घर बैठ कर अधूरे जो निश्चय किये हैं उनमें कितना सार है।

[उपर्युक्त लेख मे दिये हुये प्रमाण ऋषि की वेदार्थ शैली की विजय कराने वाले हैं। विशेषकर 'उपसर्ग और नाम' का विषय अत्यन्त महत्व का है। हम आर्य विद्वानो का ध्यान इधर आकर्षित करते हैं। सम्पादक]

?

(शान्ति नन्दन विशारद)

"तम पूरित इस घोर निशा मे,
आज उजाला है कैसा?
दीपावली! बनाया तुमने,
वेश निराला है कैसा?
क्या जगमग जगमग तारों से,
होड लगाने आई हो?
शरदसखी की रत्न राशि या,
आज दिखाने लाइ हो?
भारत के उस गौरव से हो,
मोद हृदय मे मान रही?
अपने शतश नेत्र खोल या,
भारत का पहिचान रहो?
श्री सम्पन्न समुज्ज्वल फिर से,
इसको करन आई हो?
या फिर इसको स्वर्ग बनाने,
दिव्य शक्तियाँ लाई हो?
पुष्पावली वीर पूजा का,
तुमने आज बनाई है?"
या विजयी का स्वागत करने,
आरति आज सजाई है?"

* * *

'भारत भानु दिव्य रत्नाकर,
भारत का गौरव प्यारा।
उस भारत को आकर जिसने,
इस भारत मध्य उतारा॥
ढूढ रही हू उस ही को मै,
आज नही वह मिलता है।
फूलो की माला सूनी है,
मेरी यही विकलता है॥
थाल आरती का यह मेरा,
यों ही क्या रह जावेगा?
या माई का लाल सामने,
कोई मेरे आयेगा!

वेदों का महत्व

(लेखक— स्नातक सत्यव्रत वेदविशारद)

वेदों का डंका आलम में बजाने के पूर्व बजाने वालों को उक्त बात ठीक ज्ञात होना चाहिए कि वेद हैं क्या चीज ? अगर छोटे मुह बड़ी बात न मानी जाय तो कहने की धृष्टता करूंगा कि ५० साल के बाद भी हमारे आर्य भाइयों में से ऐसे बहुत कम सज्जन निकलेंगे जो वेदों का स्वाध्याय करते हों ! आर्य समाज की स्थिति को जानने वाले इस स्वाध्याय हीनता से खिन्न हैं, क्योंकि मनुस्मृति के अनुवादक सर विलियम जोन्स ने यथार्थ ही लिखा था कि "मैं बड़े बल पूर्वक कहता हूं कि जब बल पूर्वक नियम पूर्वक वेदों का स्वाध्याय किया जाता था तो आर्यवर्त में बड़े बड़े विद्वान् और सितारे के समान चमकने वाले ज्ञानी पैदा हुआ करते थे। परिस्थिति आज वेद विमुखता से सर्वथा बदल गई है। जिस 'दयानन्द वेदों वालों' ने वेद के स्वाध्याय प्रचार के लिए समग्र जीवन समर्पित किया उसी दयानन्द के अनुयायी हम लोग वेद स्वाध्याय से विमुख हो, यह कैसी आश्चर्यजनक बात है ? हाँ, यह हो सकता है कि सभी वेदों की गहराई तक नहीं पहुंच सकते, मगर जिनकी स्वाध्याय की रुचि है, वे इतर जनों के स्वाध्याय फल से कुछ न कुछ लाभ सद्भाव पूर्वक उठा सकते हैं। ऐसे ही पाठकों के लिए यह मेरा नम्र प्रयास है। न मैं कोई वेद का पंडित हूं, न वेदों की गुत्थियाँ सुलझाने की योग्यता रखता हू मैं तो एक मामूली विद्या लिप्त हूं।

वेद और वेदस्—वेद में वेद यही एक शब्द नहीं उस में वेद और वेदस् ऐसे दो शब्द हैं। वेद शब्द पुल्लिंग है, और वेदस् नपुंसक लिंग है। ये दोनों वेद और वेदस् शब्द विद् धातु से निष्पन्न होते हैं। करणार्थ में घञ् प्रत्यय होने से वेद शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ ज्ञान होता है, और विद्वन् लोग "विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभन्ते वा एभिर्धर्मादिपुरुषार्था इतिवेदाः" "जिन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चारों पुरुषार्थ जाने जाते है उनका नाम वेद है" ऐसा कहते हैं। वेदों के भाष्य कार श्री सायणाचार्य उस की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं —

'इष्ट प्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपाय यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः" अर्थ-इष्टार्थ की प्राप्ति और अनिष्टार्थ की निवृत्ति के लिए अलौकिक उपाय को दिखाने वाला वेद है।

महर्षि दयानन्दजी महाराज ने वेदशब्द की व्युत्पत्ति अपने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ग्रंथ में इस प्रकार से की है —

"विदन्ति-जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते विन्दति विचारयन्ति सर्वे मनुष्या सर्वा सत्य विद्या येषु वा तथा विद्वांसश्च भवन्ति ते वेदाः" अर्थात् जानते है, प्राप्त करते है, विचार करते हैं सब मनुष्य सर्व सत्य विद्याओं को जिनसे अथवा जिनमे और विद्वान बनते हैं उनका नाम वेद है।

'वेदम्' शब्द का अर्थ 'धन' और 'ज्ञान' ऐसा अनेक स्थलों पर आता है। श्री यास्काचार्य ने निघण्टु (२ । १०) 'धननामानि शब्दमाला में 'वेदस्' शब्द का उल्लेख 'मघं, रेक्णः, रिक्थं वेद. रूप में किया है। मगर 'जातवेदस् शब्द की निरुक्ति करते समय 'जातवित्त वा जातधन, इसके साथ साथ, जातविद्य व जात प्रज्ञान', ऐसा भी किया है। इससे 'वेदस, शब्द का अर्थ 'ज्ञान, भी श्रीयास्कमुनि को मान्य था, ऐसा प्रतीत होता है। श्री सायणाचार्य ने ऋग्वेद २– ७-६ के विश्वस्माद् जनुषो वेदसस्परि मंत्रार्थ में वेदस. का अर्थ उत्कृष्ट ज्ञानात् ऐसा किया है। आगे ऋग्वेद ३ ६२-१ इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभितानि वेदसा मंत्र में वेदस् का अर्थ यज्ञ भाग ध्वककर्मविषयकज्ञानेन, ऐसा ज्ञानार्थक किया और ऋग्वेद ४। २५। ७ आस्य वेद खिदन्ति

हस्तिनम्नं' में वेद का अर्थ ज्ञानं वा 'धनं वा ऐसा करते हैं। मगर ग्रिफिथ साहब तो उक्त तीनो स्थलों पर केवल धन (walth) अर्थ ही करते हैं!

'वेदस्, के धनपरक अर्थ तो अनेक स्थलों पर आते हैं मगर एक ही मन्त्र में श्री सायण और महीधर 'ज्ञान, और 'धन' ऐसा भिन्न भिन्न अर्थ करते हैं। पूषानो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्ध स्वस्तये" मन्त्र ऋग्वेद १।८६।५ मे आता है और (शुक्ल) यजुर्वेद २५। १० मे भी आता है। उपर्युक्त ऋग्मन्त्र मे 'वेदस्, का अर्थ सायण 'धन, करते हैं और महीधर यजुर्वेद मे उसका अर्थ 'ज्ञान करते हैं जब सायण और महीधर की यह दशा है, फिर मि. ग्रिफिथ की कौन कहे? इसी सिलसिले में वेदार्थ की दुरूहता के बारे में प्रो मेक्समुलर की बात याद आती है, जो उन्होंने अपने ग्रन्थ भारत हमको क्या सिखा सकता है, (India,what can it teachus) में कही है कि "मैंने स्वयं तीस वर्ष के सतत स्वाध्याय और परिश्रम के बाद ऋग्वेद के कई मन्त्रो का अनुवाद किया है वह नमूना के तौर पर कल्पित है। हम तो अभी तक वैदिक साहित्यरूपी समुद्र की सतह पर फिर रहे हैं। कोई और विद्याकीपुराना स्मारक संसार मे ऐसा शिक्षादायक और लाभदायक नहीं है जैसा कि वेदों का स्वाध्याय।"अकारांत शब्द 'वेद' सारी ऋक्संहिता में सिर्फ एकही स्थल पर आया है। वह मन्त्र यह है "य समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये नमसा स्वध्वर" (।११।५) इधर 'वेदेन' पद का अर्थ वेदाध्ययनेन ब्रह्मयज्ञेन"ऐसा अर्थ सायणाचार्य ने किया है मगर विद्वान् प्रो० मोक्षमूलर ने 'वेद, का अर्थ 'कुशमुष्टि (Broom) किया है और ग्रिफिथ महाशयने वेद का अर्थ विधिविद्य (Ritual Lore) कर दिया है? मगर यह तो शायद यज्ञ प्रकरण में कहीं कहीं 'वेद, पद का अर्थ दर्भपिञ्जूल या मार्जनी परक होने को आभारी है जैसा कि मीमांसा मे 'वेदं कृत्वा वेदिं करोति" वाक्य प्रमुखता से आया है।

'वेदस्' शब्द यजु और सामवेद मे शायद ही कहीं कहीं आया हो, विशेषतया वेद शब्द बहुतायत से पाया जाता है, अतः 'वेद' शब्द का ऋग्यजु सामाथर्व के समुच्चयार्थ में पाया जाना सहज है, जैसा कि "ऋच साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलम्।"

एषमा तस्मान्मा हिंसीत् वेद पृष्टः शचीपते॥
अथ० ७५७-१.

यहाँ पर सायणाचार्य ने 'वेद' का अर्थ "एष वेदं ऋक् साम यजुरात्मकः" ऐसा समुच्चयात्मक किया है; और अथर्व १९-९-१२ "ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोकाः वेदाः सप्तऋषयोऽग्नय" में 'वेदः' का अर्थ "चत्वारः साङ्गा वेदा" ऐसा अर्थ किया है, इसी तरह आज 'वेद' पद का अर्थ चारो वेद ऐसा समझते हैं और 'विद्ज्ञाने,' 'विद् विचारणे', 'विद् सत्तायाम्' और 'विद्लृ लाभे' इन अर्थों में क्रियानुकूल भी भिन्न-भिन्न अर्थ वेद के होते हैं। ज्ञानार्थक में वेद एक है; परा अपरा दोनो विद्याएं वेद में निहित हैं, अत वेद दो हैं, ज्ञान-कर्म-उपासना भेद से वेद में त्रयी विद्या का विवरण होने से वेद तीन भी हैं; और ऋग्यजुसाम और अथर्व इन विभागों में वेद चार भी हैं। इस प्रकार से एक तार्किक विचारधारा आजकल आर्यसमाज में बहती हुई दृग्गोचर होती है। आखिर 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना'तो है ही।

वेद का महत्व

'वेद शब्द का और 'वेदस्' शब्द का विवरण छोड़ कर अब देखना है कि जिन वेदो के बारे में प्राचीनकाल से लेकर आज तक के विद्वान् इतना परिश्रम करते चले आये हैं, उसका कारण—उसका महत्व क्या है? यह तो एक स्वतन्त्र निबन्ध का विषय है, मगर यहाँ संक्षेप से अवलोकन करें तो अनुपयुक्त नहीं होगा।

थोड़ासा भी जिसको संस्कृत का ज्ञान है, उसको मालूम होगा कि गौतम संहिता में आया हुआ 'वेदो ऽखिलो धर्ममूलम्' वेद समग्र धर्म का मूल हैं ऐसा सूचित करते हैं, श्री अत्रि महाराज 'नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्तिमातु समा गुरु" कह कर वेद से बढ़ कर कोई दूसरा शास्त्र नहीं, इस प्रकार वेदों का गौरव गान करते हैं।

बौद्धायन सूत्रकार जिसको "प्रणवात्मकोवेदः कह कर "प्रणवो ब्रह्म" तक की कथा देते हैं वे बकौल औशनसस्मृतिके 'सर्वेषामेवभूतानां वेदश्चक्षु.,सनातनः सनातन वेद सब भूतो की चक्षु हैं, यथार्थ कहते है; (मगर उनसे कोई देखनेका कष्ट उठावे तब न ?)

'ऊर्ध्वबाहुर्विरोम्यैष न च कश्चिच्छृ णोतिमे' की फर्याद करने वाले वेदव्यासजी भी कहते हैं कि 'धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति.'—धर्म जिज्ञासुओं के लिए श्रुति ही परम प्रमाण है ! क्यो कि 'वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्' वेद में सब कुछ प्रतिष्ठित है, अतः "सर्वं विदुर्वेदविद् " वेद के जानने वाले सब कुछ जान सकते हैं ! इसमें श्री० याज्ञवल्क्य महाराज की भी निम्न संमति है.—

'न वेद शास्त्रादन्यत्तु किञ्चिच्छास्त्रं हि विद्यते'

वेदो से बढ़ कर अन्य शास्त्र धराधाम पर विद्यमान ही नहीं, इसलिए कि —

'नि:सृतं सर्वशास्त्रं तु वेदशास्त्रात्सनातनात्' !

सनातन वेद से ही सर्वशास्त्र निकले हुए हैं।

भला, इस दावे के आगे ईसाई, मुसलमान, जैन पारसी आदि के दावे कहाँ ठहर सकते हैं ? कहीं भी नहीं। क्यो ? इसका भी उत्तर लीजिए—

"दुर्बोध्यन्तु भवेद्यस्मा दध्येतुं नैव शक्यते
तस्मादुद्धृत्य सर्वं हि शास्त्रं तु ऋषिभि: कृतम् ।।"

अतः वेदो के समझने और पढ़ने की शक्ति लोगो में नहीं, अत: ऋषियो ने—वेद से ही तत्व निकाल कर शास्त्रो का निर्माण किया !

इन सारी बातो को लक्ष्य में रख कर ही पूर्व काल से महर्षि मनु ने आदेश दिया फिर.—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुतेश्रमम् ।
सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

जो द्विज होकर वेदो को न पढ़े और अन्य श्रम करे, वह इसी जीवन में अति शीघ्र अपने कुल सहित शूद्रत्व को प्राप्त होता है !

अतएव महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज का तीसरा नियम वेद का पढ़ना, पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म निश्चित किया।

हमारे देश के ही शास्त्रकार वेदो की महत्ता गाते हो ऐसा बात नही किन्तु पाश्चात्य पंडित गण भी इन बातो को दुहराते हैं। प्रो०मेक्समूलर ने ऋग्वेद को संसार के सर्व ग्रन्थालयों में सर्व प्रथम ग्रन्थ होने का कहा है। यह बात तो सबको विदित ही है। मोनियर विलियम ने भी लिखा है कि जब आर्यों में ऋग्वेद प्रचलित था तब वे सभ्यता की चोटी पर पहुँचे थे।

और मि० फिलिप ने तो यहां तक लिख दिया है कि वेद न केवल आर्यजाति की पुस्तक हैं, बल्कि वे तमाम संसार यात्री मनुष्य मात्र के लिए अत्यन्त प्राचीन धर्म ग्रन्थ है।

ब्लूमफील्ड महोदयने लिखा है कि ऋग्वेद अपने आदर्श का अन्तिम और अद्भुत पुस्तक है। उसमें सुन्दरता सम्पूर्णता और शुद्धता पाई जाती है" आदि आदि। इस प्रकार अनेक विद्वान कह गये लिखने वाले लिख गये और सुनाने वाले सुन गये। परन्तु अब यह हमारा कर्तव्य रह जाता है कि हम वेद-स्वाध्याय के उचित मार्ग पर आवें येनेष्टं तेन गन्तव्यं। जहां चाह है वहां राह है मगर यह न भूलना चाहिए कि —

"कर्मानुरूपाणि शुभा शुभानि प्राप्नोति सर्वो हि जन फलानि,,

पति पत्नी का प्रेम

जब विवाह होवे तब स्त्री के साथ पुरुष और पुरुष के साथ स्त्री बिक चुकी अर्थात् जो स्त्री और पुरुष के साथ हाव, भाव, नख-शिखाग्रपर्यन्त जो कुछ हैं वह वीर्यादि एक दूसरे के आधीन होजाता है। स्त्री वा पुरुष प्रसन्नता के बिना कोई भी व्यवहार न करें। इनमे बड़े अप्रियकारक व्यभिचार वेश्या पर पुरुष गमनादि काम है इनको छोड़ के अपने पति के साथ स्त्री और स्त्रीके साथ पति सदा प्रसन्न रहें।

दृष्टिकोण

(ले०—श्री प्रो० देवकीनन्दनजी शर्मा एम० ए०)

किसी व्यक्ति अथवा समाज के जीवन-निर्माण में दृष्टिकोण का महत्व कुछ कम नहीं। जो मनुष्य अथवा जाति उन्नति की ओर जाती है उसका दृष्टिकोण ऊँचा होता है।

किन्तु यह दृष्टकोण है क्या बला ! मनुष्य की नाना प्रकार की इच्छायें होती है। ये इच्छाये मिलती जुलती भी होती है, जैसे लड्डू खाने और दूध पीने की, परन्तु साथ ही इस प्रकार की विरोधी भी होती है, जैसे ईश्वर प्राप्ति और मदिरा पान का। वस्तुत इन इच्छाओ की पृथक् पृथक् कोई स्थिति नहीं रहती इन मे सगठन होता है। किन्तु भिन्न सिद्धान्त तन्तुओ मे ये बधी रहती है वे भिन्न हो सकते है। यदि भगवद्भजन, साधु सगति तथा वेदाध्ययन की इच्छाये एक सिद्धान्त पर सगठित है तो मदिरापान, व्यभिचार तथा मास भक्षण की इच्छाये दूसरे सिद्धान्तो पर। इस प्रकार मनुष्य की इच्छाये भिन्न भिन्न सिद्धान्तो पर आश्रित भिन्न भिन्न वर्गों (universes of desires) मे विभक्त है। इन्हे भिन्न दृष्टिकोण (points of view or selves भी कह सकते हैं। अब मनुष्य के स्वभावानुसार इन इच्छासमूहों का भी वर्गीकरण होता है। कोई एक इच्छा समूह को सर्वोच्च स्थान देते है तो अन्य दूसरे को। जो साहसी पुरुष है, उन मे साधारण तया साहस सम्बन्धी इच्छाओ का वर्ग प्रधान रहता है, जो कामी पुरुष है उन मे बहुधा इन्द्रिय तृप्ति सम्बन्धी काम रूप वासनाओ का वर्ग प्रधान रहता है, आचार शास्त्र की दृष्टि से जिस प्रकार के इच्छा वर्ग को मन में प्रधानता दी जायगी, उसी प्रकार का आचरण अथवा दृष्टिकोण उस का बन जायगा। अत: सदाचार निर्माण मे उचित दृष्टिकोण का स्थान सर्वोच्च होना आवश्यक है।

उदाहरण के लिए पजाब मे सैकडों जात पॉत के मनुष्य रहते है। किन्तु साधारणतया उनका दृष्टिकोण उनकी उदरपूर्ति विषयक इच्छाओं की पूर्ति मे ही सीमिति रहता है। किन्तु उनमे से कुछ व्यक्तियो ने अपनी जाति पर किये गये अत्याचारों को न सहन करने का बीडा उठाया उनके हृदय मे अपने धर्म की रक्षा की अग्नि धधकने लगी। फल यह हुआ कि थोडे से व्यक्तियो की समाज होने पर भी आज उनके साहस उनकी वीरता, उनके बल और सगठन के सामने अन्य जातिया शिर झुकाती है। यह सब केवल दृष्टिकोण मे परिवर्त्तन का ही फल था। अन्यथा सब पजाबियो का रहन सहन, खान पान, जलवायु तथा इतिहास तो लगभग समान ही है, परन्तु दृष्टिकोण के परिवर्त्तन ने सिखो को वस्तुत नरसिह बना दिया जबकि अन्य जातियाँ जैसी की तैसी बनी रही।

श्री स्वामी दयानन्द का ध्येय भी समस्त हिन्दुओं के दृष्टिकोण मे परिवर्त्तन करना ही था। उन्होंने यही किया भी, उनकी शिक्षा का बीज मन्त्र था, 'कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्'। कितना परिवर्त्तन ! कहा तो हिन्दू लोग विधर्मियो के ग्रास बने जा रहे थे कहाँ स्वामी जी ने कहा कि जातियो की भाग दौड मे आत्मरक्षा का सर्व श्रेष्ठ उपाय दूसरो के अनुचित बल का कम करना है। बस इसी दृष्टिकोण के परिवर्त्तन के अन्तर्गत आचरण के कितने ही इष्ट सुधार आ जाते है, जैसे निर्भीकता, स्वधर्म प्रेम, स्वाध्याय मे लगन तथा समानता जब तक आर्य समाज अपने बच्चों के कान मे आरम्भ से ही उपर्युक्त बीज मन्त्र न फूकेगा, आर्य आचरण की रक्षा—आर्य धर्म और प्राचीन भारतीय संस्कृत की रक्षा नितान्त असम्भव है।

यह दूसरा प्रश्न है कि इस दृष्टिकोण का परिवर्तन कहाँ तक धर्म नीतिसे सम्बद्ध है। इसी प्रश्न पर

एक समस्या

(ले०—श्री० पं० गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय)



क समस्या कुछ काल से मेरे मस्तिष्क मे घूम रही है। यह कुछ नई नही है परन्तु आजकल मेरे मस्तिष्क पर इसका विशेष आधिपत्य है। मै इसका समाधान नही सोच सका, इसीलिये लिख रहा हू।

आर्यसमाज एक संस्था है धर्म नही है, पिछले दिनो मैने अपने स्कूल के छात्रो का लिखा था कि AryaSamaj is an organisation not a religion इस संस्था का उद्देश्य वैदिकधर्म का पुनरुद्धार है, Its aim is to revive old Vedic religion मै समझता हूँ कि मेरे इस कथनमे किसीको भी आपत्ति न होगी। इसका अर्थ यह है कि ऐसे पुरुष हो सकते हैं जो स्वामी दयानन्द के मतानुसार वैदिकधर्मी हो, परन्तु किसी आर्यसमाज के सभासद न हो। मै तो समझता हू कि ऐसे सैकडो पुरुष है। यह भी हो सकता है कि एक मनुष्य आर्यसमाज का सभासद हो परन्तु वस्तुत वैदिकधर्मी न हो, यह बात प्रकट रूप से तो कठिन है परन्तु किसी किसी अंश मे यह भी सर्वथा असत्य नही है, आप कहेगे कि इसमे समस्या किस बात की? परन्तु ठहरिये मै समस्या को स्पष्ट किये देता हू। मेरी समझ मे समाज के उपनियम कुछ इतने कठिन है कि थोडे दिनो बाद बहुत लोग आर्य सभासद नहीं रहते। इतने मे ही कोई आपत्ति न थी। परन्तु तमाशा यह है कि समाज से नाम कटते ही वह वैदिकधर्मी भी नहीं रहते। सैकड़ो मनुष्य ऐसे मिलेंगे जो न केवल सभासद ही किन्तु पदाधिकारी भी रहे। परन्तु ज्यो ही उनका नाम कट गया वह उदासीन और उनके सम्बन्धी फिर पौराणिक हो गये। इसमे सन्देह नही कि आर्य्यसमाजो और आर्यसामाजिकों की संख्या मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। परन्तु नये नये आते रहते है और पुराने जाते रहते है। यह बात यू० पी० के तो प्राय प्रत्येक नगर और ग्राम में मिलेगी। समस्या यह है कि इसका क्या इलाज किया जाय? एक मुसल्मान किसी सोसायटी का सभासद हो या न हो मुसल्मान रहता ही है। इसी प्रकार ईसाई भी। इसी प्रकार जैनी आदि। परन्तु हमारे वैदिकधर्मी होने का सम्बन्ध आर्यसमाज की सभासदी से है। जहाँ रजिस्टर से नाम कटा और हम खिसके। यदि इच्छा से न सही तो विना इच्छा के ही। और समाज के रजिस्टर से नाम कटने के एक हजार एक कारण हो सकते है जिनका दुहराना व्यर्थ है। जितना अधिक हम संगठन-संगठन चिल्लाते है हमारा शीराजा बिखरता चला जाता है।

सनातन धर्मियो और आर्य समाजियो मे मतभेद रहता है। किन्तु स्वामी जी का दृढ विश्वास था कि यदि उपर्युक्त सिद्धान्त का प्रयोग हिन्दू लोग न करेंगे तो प्राचीन सभ्यता, जिसकी किंचित् झलक उपनिषदो मे दिखाई देती है लुप्त हो जायगी और इसके ह्रास के साथ ही समस्त मनुष्य समाज जो भौतिक उन्नति के ज्वालामुखी पर्वत के साथ खेल रही है, सर्वनाश हो जायगा।

यदि कोई महानुभाव इस समस्या का इलाज बतावेंगे या मुझे ऐसा अनुभव करादेंगे कि यह रोग नहीं मेरा भ्रम मात्र है तो भी मै कृतज्ञ होऊंगा। ऋष्यङ्क के पाठकों के लिये किसी गूढ सिद्धान्त सम्बन्धी विषय पर लिखनेकी अपेक्षा मै यह अपनी समस्या भेट करता हू। आशा है कि श्री सम्पादकजी क्षमा करेंगे। मेरे लिये तो यह एक टेढ़ा व्यावहारिक प्रश्न है।

मुक्त-अवस्था-विचार

(ले०—श्री पं० जगदेवजी शास्त्री)



आर्ष काल के पश्चात् महर्षि दयानन्द ही प्रथम आचार्य हैं कि जिन्होने मुक्ति से पुनरावृत्तिवाद की बड़े प्रबल प्रमाणो द्वारा घोषणा की। यह निश्चित है कि मुक्ति ज्ञान और कर्म के समुच्चय से होती है यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः सधर्म" अर्थात् निश्रेयस (मुक्ति) धर्म जन्य है। "धर्म युक्त कर्म करना और अधर्म को छोड़ देना ही मुक्ति का साधन है-ऋषि दयानन्द" स्पष्ट हो गया कि मुक्ति धर्म से प्राप्य है। धर्म और अधर्म को हम विद्या (यथार्थ ज्ञान) से जान सकते हैं। 'तमेव विदित्वा-तिमृत्युमेति-यजु०" अर्थात् ज्ञान से बन्धन दूर हो सकता है। मुक्ति का शब्दार्थ "छूट" है, अर्थात् कोई प्रतिबन्ध न होना। बन्धन से छूटा हुआ जीव मुक्त कहाता है। बन्धन हट जाने पर जीव स्वतन्त्र हो जाता है। चूंकि मुक्ति प्राप्य है अत अनित्य है। मुक्ति में जीव नियत काल तक आनन्द भोग कर पुनः अपने स्वाभाविक गुण अल्पज्ञता को प्राप्त हो जाता है। स्वामी शंकराचार्य जी मोक्ष को नित्य मानते हैं। चूंकि वह जीव को ही ब्रह्म मानते हैं, अतः ब्रह्म भावी मोक्ष" अर्थात् ब्रह्म हो जाना ही मोक्ष है, ऐसा वे स्वीकार करते हैं। इस कारण उनके मत में मुक्ति नित्य हुई। वह मोक्ष को साधन अन्य नहीं मानते। इससे डरते हैं, यथा—"साध्यश्चेन्मोक्षोऽभ्युगम्यते, अनित्य एव स्यात्" अर्थात् मोक्ष साध्य हो जावे तो अनित्य भी हो जावे। आगे कहते हैं "नित्यश्च मोक्षः" मुक्ति नित्य है। यहां उनका दिया हुआ हेतु भी देखने योग्य है। "सर्वैर्मोक्षवादिभिरभ्युपगम्यते" अर्थात् सब मोक्षवादि नित्य स्वीकार करते हैं। एक स्थल और भी देखिये-"न चाप्यत्वेन कार्यापेक्षा स्वात्मस्वरूपत्वे सत्यनाप्यत्वात्" अर्थात् मोक्ष प्राप्य होने पर भी कार्य नहीं है क्योकि ब्रह्म स्वरूप होने के कारण अनाप्य (अप्राप्य) है। एक ही वाक्य में मोक्ष को आप्य और अनाप्य मान लिया। कितना बड़ा तार्किक और उसकी युक्ति कितनी लचर और भद्दी, क्या करे विचारे असत्य सिद्धान्त मान बैठे। हमारे मतमे मुक्ति प्राप्य है, अत अनित्य है। "अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते" यजु० अर्थात् ज्ञान और कर्म से दुःख दूर करके अमृत मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त करता है। वेद प्रमाण से सिद्ध हो गया कि मुक्ति प्राप्य है अत कार्यापेक्षा होने से अनित्य है। यह ध्रुव सिद्धान्त है। इसको हम आर्य समाजियो ने माना है। परन्तु स्वाध्याय के अभावके कारण हम यह नहीं जानते कि मुक्ति के पूर्व, मध्य में और पश्चात् मुक्त आत्मा की क्या अवस्था होती है। आर्य विद्वानो में भी इस सम्बन्ध में अनेक विवादास्पद विचार पाये जाते हैं। जिनके कारण आर्य जनता भी सन्देह ग्रस्त है। यहाँ निम्नलिखित प्रश्न विचारणीय है। (१) मुक्ति से पूर्व कर्म शेष रहते हैं वा नहीं? यदि रहते हैं तो शुभ अशुभ अथवा दोनो--क्या व्यवस्था है? यदि नहीं रहते तो मुक्ति के पश्चात् बिना कर्म के शरीर कैसे मिल सकता है? (२) क्या मुक्ति काल में भी शरीर रहता है? (३) क्या मुक्तिकाल की अवधि सब मुक्तो के लिये एक जैसी नहीं है? (४) क्या मुक्ति काल में परोपकारार्थ स्थूल शरीर धारण किया जा सकता है? (५) क्या मुक्त आत्मा गर्भ मे नहीं आता? क्या उस का जन्म सृष्टि की आदि (अमैथुनी सृष्टि) में ही हो सकता है? (६) क्या वेदोका प्रकाश सर्गारम्भमें मुक्तो के ही हृदय में हो सकता है? इन प्रश्नो के सुलझने पर अवान्तर भेद भी ठीक हो जावेंगे। अब इन पर क्रमशः प्रश्नोत्तररूप में विचार करते हैं। (प्रश्न) मुक्ति से पूर्व कर्म शेष रहते हैं वा नहीं। (उत्तर) रहते हैं। (प्रश्न) "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" अर्थात् सब कर्म नष्ट हो जाते हैं फिर कैसे कहते हो कि कर्म शेष रहते हैं। (उत्तर) कर्माणि शब्द का अर्थ यहाँ दुष्ट कर्म अर्थात् मुक्ति विरोधी कर्म है। यही अर्थ ऋषि दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में किये है। अर्थात्

दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं। योग दर्शन में देखिये—"तत. क्लेशकर्म निवृत्तिः" अर्थात् क्लेश दायक सब कर्म छूट जाते हैं। "दोषबीजक्षये कैवल्यम्" अर्थात् दोष के कारण दुष्ट कर्म नाश होने पर मुक्ति होती है। न्यायदर्शन में भी लिखा है—"न प्रवृत्ति प्रतिसन्धानाय हीनक्लेशस्य" अर्थात् जिस के क्लेश कर्म नष्ट हो गये हैं, वह फिर जन्म धारण करने में प्रवृत्त नहीं होता। वेदान्त दर्शन इस विषय पर खूब विस्तार से विचार किया है। केवल दो सूत्र यहां उपस्थित करता हूँ। 'तदधिगमे उत्तर पूर्वाघयोरश्लेष विनाशौ तद्व्यपदेशात्' अर्थात् जीवन मुक्त हो जाने पर आगे कोई पाप कर्म नहीं होता और पूर्वकृत पाप का नाश हो जाता है। क्यों कि ऐसा ही उपदेश पाया जाता है। इससे स्पष्ट हो गया कि पाप कर्म ही नष्ट होते हैं सब नहीं। "इतरस्याप्येवमसंश्लेष पाते तु" अर्थात् पाप कर्म से इतर शुभ कर्म का भी (पाते) मुक्तिकाल में (असंश्लेष) सम्पर्क नहीं होता। ठीक है, शुभ कर्म मुक्ति समय में फल नहीं दे सकता, परन्तु मुक्ति के पश्चात् कौन रोक सकता है। इस सूत्र मे इतर अर्थात् शुभ कर्म का केवल असंश्लेष माना है, नाश नहीं और वह भी मुक्ति समय में ही। इस बात को 'पाते' बहुत साफ कर रहा है। यद्यपि इस सूत्र को शङ्कर स्वामी ने अन्यथा लगाया है, परन्तु उनको भी इतना मानना हो पड़ा है कि 'न हि वय कर्मण फलदायिनी शक्तिमवजानीमहे विद्यत एव सा। सा तु विद्यादिना कारणान्तरेण प्रतिबध्यत इति वदाम' — अर्थात् हम कर्म की फल देने वाली शक्ति से इनकार नहीं करते, वह है परन्तु विद्या कारणान्तर आदि से रुकगई है।" कहिये विद्याआदि कारणान्तर हट जाने पर उसकी शक्ति क्यों न काम देगी? मुक्ति से बाहर क्यों न कर दिया जावेगा। मुक्ति समाप्त होते ही शुभ कर्म जन्म के कारण हो जावेंगे। इतने सन्दर्भ से स्पष्ट हो गया कि "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" में कर्माणि" पद का अर्थ दुष्ट कर्म ही है न कि सब कर्म इस श्लोक को पूरा देखने से भी यही बात स्पष्ट होती है अर्थात् "भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यन्ते सर्व सशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥" अविद्या नष्ट हो जाती है तत्वज्ञ हो जाता है सब सन्देह दूर हो जाते हैं। अविद्या कृत कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। यही ग्रहण करना प्रकरणानुकूल और युक्तियुक्त है। शुभ कर्म मुक्ति के पश्चात् जन्म के कारण हो जावेंगे। कर्म शेष न मानना शंकराचार्य की नकल है। अत सिद्ध है कि बिना कर्म के शरीर नहीं मिल सकता। (प्रश्न) मुक्ति मे शरीर रहता है वा नहीं। (उत्तर) स्थूल शरीर नहीं रहता किन्तु सूक्ष्म शरीर अवश्य रहता है। जब मुक्ति से पूर्व के कर्म शेष हैं और उनको वासनाएं भी हैं तब सूक्ष्म शरीर अवश्य रहेगा। (प्रश्न) ऋषि दयानन्दजी मुक्ति मे शरीर नहीं मानते। (उत्तर) यह बात अशुद्ध है। ऋषि ने कहीं नहीं लिखा कि सूक्ष्म शरीर नहीं रहता। यह लिखा है कि स्थूल शरीर नहीं रहता। देखो स० प्र० में नवम समु०—"इन १७ तत्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्म मरणादि में भी जीव के साथ रहता है। यहां आदि से मुक्ति का ही ग्रहण है, क्योंकि जन्म मरण से पृथक मुक्ति ही है। अन्य कुछ नहीं। और भी आगे देखिये—'इसके दो भेद हैं एक भौतिक जो सूक्ष्म भूतों के अशों से बना है। दूसरा स्वाभाविक जो जीव के स्वाभाविक गुणरूप है। यह दूसरा और भौतिक शरीर मुक्ति मे भी रहता है।" यहा कितना स्पष्ट है कि मुक्ति में सूक्ष्म शरीर रहता है। स्थूल और शरीर का निषेध ऋषि दयानन्द जी कर ही चुके थे। और भी हैं देखिये—वे मुक्तजीव स्थूल शरीर छोड़कर सङ्कल्प मय शरीर से आकाश में परमेश्वर में विचरते क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं वे सांसारिक दुःख से रहित नहीं हो सकते।' यहां सङ्कल्प मय शरीर से भी सूक्ष्म शरीर का ही ग्रहण है। जिसमें विचारार्थक मन आदि तत्व होंगे। दूसरे सङ्कल्प का अर्थ यदि भिन्न किया जावे, तब भी शरीर का भाव तो रहा ही। ऋषि दयानन्द ने जहां जहां पर लिखा है कि शरीर नहीं रहता वहां उनका अभिप्राय स्थूल शरीर से ही होता है। शरीर मात्र से नहीं। यह बात उपर्युक्त स्वाध वचन से स्पष्ट हो गई। ऋषि ने एक प्रश्न मे लिखा है कि "मुक्त जीव का स्थूल शरीरहोता है वा नहीं"। यदि ऋषि का अभिप्राय मुक्ति में शरीर मात्रका अभाव होता तो प्रश्न में केवल स्थूल का ग्रहण न करते किन्तु यह कहते कि

मुक्ति में शरीर रहता है वा नहीं। अब ऋषि का अभिप्राय स्पष्ट है, कि सूक्ष्म शरीर मुक्ति मे रहता है (प्रश्न) मुक्तिकाल की अवधि सब मुक्तो की एक जसी है वा भिन्नभिन्न। (उत्तर) एक जैसी। अर्थात् ३६ सहस्र बार सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय काल के समय की बराबर। इसी को परान्त काल कहते हैं। (प्रश्न) एक नवीन ग्रन्थमें आर्य समाजिक एक उच्च अधिकारी ने लिखा है कि मुक्ति भोग का समय सबका एक जैसा नही होता। (उत्तर) यह बात अशुद्ध है। आर्य समाज के उच्चाधिकारी होने से कोई वेदाचार्य थोड़े ही बन जाते हैं। उनकी यह बात प्रमाणशून्य होने से त्याज्य है। दुष्ट कर्मों का अभाव ही मुक्ति देता है। यह अभाव सब मुमुक्ष लोगों का एक जैसा होता है। फिर फल में भिन्नता कैसे हो सकती है। प्रमाण भी हमारी बात की पुष्टि करते हैं। परान्त काले परिमुच्यन्ति सर्वे" यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते अर्थात् एक परान्त काल तक ब्रह्मलोक की आयु है। इसके पश्चात् ही मुक्ति से लौटते हैं। अथर्ववेद का एक स्पष्ट प्रमाण देता हूं।

'प्रपदोव नेनिग्धि दुश्चरित यच्चचार शुद्धैः शफैराक्रमता प्रजानन्। तीर्त्वानमांसि बहुधा। विपश्यन्नो नाकमाक्रमतां तृतीयम् ॥९.५.३॥ यहाँ साफ लिखा है कि जो दुष्टकर्म को छोड़ कर शुद्ध कर्म ही करता है वह दुःखों को पार करके आनन्द भोगता है है। दुष्ट कर्म को छोड़ना ही सर्वत्र है इसके बिना मुक्ति नहीं। यह सब का एक समान है। अत फल भी एक समान हुआ इस कारण मुक्ति का काल सब मुक्तों का एक जैसा है। भिन्न भिन्न नहीं। हाँ ज्ञान का तारतम्य होने से आनन्द भोग की तारतम्यता अवश्य है। परन्तु मुक्ति समय दुष्ट कर्माभाव सामान्य कारण जन्य होने से एक जितना ही रहेगा। (प्रश्न) मुक्ति काल में परोपकारार्थ मुक्त आत्मा स्थूल शरीर ग्रहण कर सकता है वा नहीं? (उत्तर) नही कर सकता, बिल्कुल नहीं। यह मत बड़ा दूषित है कि आत्मा बीच बीच में जन्म लेकर संसार का उद्धार करते हैं। इसी वाद ने अकर्मण्यता फैलाई है। आर्यसमाजी अवतारवाद को तो नहीं मानते परन्तु कई विद्वान् इस भ्रम में अवश्य भूल रहे हैं। वेद में स्पष्ट लिखा है "अमृते लोक अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव" अर्थात् हे (इन्दो) आनन्ददायक ब्रह्म तू (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (अक्षिते अमृते लोके) नाश रहित सदा वर्तमान मोक्ष मे (परिस्रव) सब ओर से आनन्दित कर। यहाँ (अक्षिते) पद बतलाता है कि मुक्ति एक जैसा अमृत स्वरूप है बीच में नहीं टूट सकता। ऋषि दयानन्दजी ने "सदा" शब्द कई जगह इसी बात को स्पष्ट करने के लिये लगाया है। इसी भाव को दर्शाने के लिये दर्शनों में इसको अत्यन्त विमोक्ष और अत्यन्त निवृत्ति माना है यहाँ अत्यन्त शब्द का अर्थ परान्त काल तक दुःखों में न गिरने का है। यदि न होता तो सूत्रकार "तदत्यन्त विमोक्षोपवर्ग" की जगह 'तदभावोपवर्ग" कहते। परन्तु ऐसा न होने से अत्यन्त का अर्थ मुक्ति काल के बीच में दुःख में न पड़ने का ही है। (प्रश्न) मुक्त का जन्म क्या अमैथुनी सृष्टि में ही होता है? क्या वह गर्भ में नही आता? (उत्तर) यह कोई आवश्यक नहीं कि सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि में ही जन्म ले। जब भी उसका परान्त काल समाप्त हो जावेगा तब ही जन्म ग्रहण करना पड़ेगा। (प्रश्न इस प्रकार तो गर्भ में भी जाना पड़ेगा। (उत्तर) हाँ अवश्य गर्भ में आवेगा। आप गर्भ मे जाने में क्यो डरते हैं। (प्रश्न) गर्भ में बड़ा दुःख होता है। "दुःखमेव जन्मोत्पत्तिः" न्या० और 'दुःख बहुलः ससार" योग भाष्य मे कहा है, कि जन्म लेना ही दुःख है और यह संसार दुःख में भरा पड़ा है। (उत्तर) न्यायदर्शन और योगभाष्य का तात्पर्य यह है कि विवेकी इस संसार में दुःख को जाने और सुख को भी क्षणिक-अस्थायि जाने और मुक्ति प्राप्ति करके आनन्द भोगे, जिस में दुःख है ही नहीं। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि संसार में सुख है ही नहीं अथवा थोड़ा है। देखो सत्यार्थ प्र० में ऋषि लिखते हैं। "सृष्टि के सुख दुःख की तुलना करें तो सुख कई गुणा अधिक है।' उन्नत आत्मा के लिये यह संसार साधन है और मुक्ति प्राप्त कराने का एक ही मार्ग है। गर्भ मे जीव को कोई दुःख नहीं होता। जब जीव की वहां जाग्रत और स्वप्न अवस्था ही नहीं तो दुःख सुख कैसे हो सकता है, वह तो

सुषुप्त मेंही रहता है। न दुःख है न सुख है। गर्भ में दुःख का भ्रान्त अकर्मण्य लोग दिया करते हैं। (प्रश्न) तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि मुक्त आत्मा गर्भ में आता है। (उत्तर) सुनिये— स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च। ऋग्वेद॥ ऋषि दयानन्द कृत अर्थ देखिये— हमको मुक्ति से आनन्द भुगाकर पृथिवी में पुन माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है। इस से अधिक और स्पष्ट प्रमाण क्या चाहते हो? (प्रश्न) कई लोग कहते हैं कि मुक्ति चाहे जब होवे परन्तु मुक्ति के पश्चात् जन्म अमैथुनी सृष्टि में ही होगा। जैसा हम नौकर की तनख्वाह दिनों के अथवा मासों के हिसाब से देते हैं। मास के आगे एक दो दिन की कुछ गणना नहीं। दिनों के आगे घण्टों का हम नहीं गिनते। सरकार भी ५५ साला होते ही नौकरी से हटा देता है, उसकी नौकरी चाहे कितने वर्ष की हो। इस का कोई अन्याय नहीं कहता, इसी प्रकार मुक्त भी चाहे जब मुक्त हुये हो परन्तु जन्म सृष्टि की आदि में लें। इसमें कुछ दोष नहीं (उत्तर) यह बात हम अल्पज्ञों की है। यदि हम किसी नौकर का वेतन काट लें तो क्या यह भी प्रमाण होगा। कितनी ओछी मुक्ति है। यदि मजदूरी घण्टों के हिसाब से दी जाती है तो घण्टे नहीं कट सकते। अरे परमात्मा तो क्षण क्षण का हिसाब जानने वाला है और कर्म फल न्याय पूर्वक देता है। उस के हिसाब में गड़बड़ कहां? 'सत्यता अस्य निमिषा जनानाम्।' उसके ज्ञान में क्षण भी पूरे मूल्य का है। अतः ठीक अवधि समाप्त पर ही जन्म देगा। कटौती नहीं कर सकता। गर्भ से डरने वाले लोगों ने अनेक विरुद्ध कल्पनाएं बना ली हैं। यह सब दूषित एवं त्याज्य हैं। इससे सिद्ध हुआ कि मुक्त आत्मा सृष्टि के बीच में भी गर्भ में आ सकते हैं। (प्रश्न) बीच में भी गर्भ में आ सकते हैं। (प्रश्न) बीच में परमात्मा इस लिये नहीं भेजता कि इनको आदि में वेद ज्ञान भी दे देता है। एक ट्रैक्ट में लिखा है कि सब से पहिले मुक्त होने वाले मुक्त होने वाले जीव को परमात्मा वेद ज्ञान देता है। (उत्तर) यह बिल्कुल निराधार है। वेद ज्ञान उन जीवों को मिलता है जिन के कर्म पूर्व सृष्टि में सब से उत्तम होते हैं। देखो सत्यार्थ प्रकाश ७ म समुल्लास— वे ही चार जीव सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे। अन्य उनके सदृश नहीं थे इस लिये पवित्र विद्या का उपदेश इन्हीं में किया इसी प्रकार ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में भी लिखा है। इस से यह सिद्ध हो गया कि मुक्तों को वेद मिलना आवश्यक नहीं है। अतः उनको सृष्टि के आदि में परमात्मा जन्म देकर अपनी व्यवस्था नहीं बिगाड़ सकता। जिस जीव के पवित्र और सर्वोत्तम कर्म होंगे उन चारों को वेद ज्ञान दिया जाता है। (प्रश्न) क्या मुक्तों से भी संसारी जीव के कर्म पवित्र हो सकते हैं? (उत्तर) वाह जी वाह वाह आप मुक्तों के सारे कर्म नष्ट मान चुके हैं। आप के मुक्त वा मुक्ति में वेदाभ्यास न रहने के कारण अल्पज्ञ हो गये हैं। उनके पवित्र कर्म कहां रह गये थे। जब उनके कर्म ही हो नहीं तो पवित्रता विचारी कहां रही। अतः परमात्मा उनको वेद ज्ञान का अधिकारी कैसे मान सकता है। अतः न पहिले मुक्ति का वेद मिलता और न पीछे मुक्त होने वालों को। परस्पर विरुद्ध बातें छोड़ देनी चाहिये। कपोल कल्पना काठ की हंडी है। बहुत बार नहीं चढ़ सकती। समाज शून्य बात को कोई बुद्धिमान् स्वीकार नहीं कर सकता। एक बात और भी है कि मुक्ति मिले सब से पीछे और जन्म लेना पड़े सब से पहले? और बिना गर्भ ऐसी अवस्था क्या? सज्जनो परमात्मा गवगण्ड सदृश नहीं है। नहीं यह संसार अन्धेरनगरी है। वह तो बड़ा गोप्तृतम है। य भूतं च भव्यं च सर्व यश्चाधितिष्ठति वह तो सर्वदा पवित्र सब का स्वामी और न्यायधीश है। हम ठीक ठीक कर्मों के फल का प्रदाता है। उपर्युक्त सब प्रश्न पर विचार हो चुका इसी प्रकार अवान्तर प्रश्न भेद भी समझ लेना चाहिये। आर्य विद्वानों से प्रार्थना है कि वेद और आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करके ऋषि दयानन्द प्रदर्शित सिद्धान्तों का प्रचार सर्वत्र फैलावें यही सच्ची ऋषि पूजा है। प्रभो हम सामर्थ्य दीजिये ताकि हम भगवान् दयानन्द के मार्ग पर चलते हुये ऋषि ऋण से उऋण हो जावें।

———

आर्यकुमारो ! दयानन्द बन जाओ

(ले०—प्रो० किशोरीलालजी एम० ए०)



भारत वर्ष के सामने आज जो विकट समस्या उपस्थित है वह कदाचित इस देश के इतिहास मे कभी उपस्थित नहीं हुई। सतयुग को जाने दीजिये । उस स्वर्णयुग का तो हम आधुनिक नारकीय, दास भारतीयों को अनुमान ही क्या हो सकता है। हां त्रेतायुग के रामराज्य की झलक संस्कृत भाषा के आदि कवि वाल्मीकि जी महाराज की कृपा से आज भी नसीब होती है। राम उस जीवित काल के प्रतिनिधि-स्वरूप आर्य कुमार हैं। आइये आप को इनका यत्किंचित परिचय कराऐं।

श्रुयतांतु गुणरेभियों युक्तोनर चन्द्रमाः

इससे पता चलता है कि त्रेतायुग का आदर्श आर्यकुमार राम अपने आर्योचित गुणों द्वारा ऐसा चमकता था जैसे रात्रि के समय पूर्ण चन्द्र। इसी से नर-चन्द्रमा' की उपाधि देने के लिये कवि विवश हुआ। कौन गुण ? सुनिये- -

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक् यो दृढ़व्रतः

धर्म के जानने वाले, दूसरे के अहसानों को याद रखने वाले, सत्यवाणी बोलने वाले, इरादे के पक्के।

श्लोकों से आप कहीं घबड़ा न जांय इसी भय से कुछ एक अन्य गुणों का दिग्दर्शन मात्र कराकर आगे बढ़ेंगे। तपः स्वाध्याय निरतः, प्रियदर्शनः आत्मवान जितक्रोधः । केवल एक भीषण गुण भी सुन-लीजिये--

अस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे

साधारणतया तो 'जितक्रोध' ही हैं, किन्तु यदि संयोगवश भड़क उठें और रोष आजाय तो, असुरों की तो क्या चले, स्वयं देव-दल भी भय-भीत हो उठे।

पाठक प्रवर ! क्या हमारे आधुनिक भारतीय कुमारों से-देवों को जाने दीजिये, असुरों को परे रखिये, किसी देश का मरण धर्मा-मनुष्य भी डरता है ? कोई जापानी, कोई जर्मन, कोई फ्रैंच,कोई अमेरिकन नहीं नहीं, कोई हवशी तक भी डरेगा ? नहीं। क्यों नहीं ? इसलिये कि हमारे युवक राम की भांति विपुलांस नहीं, उनके कन्धे तो तिरछे पड़ गये हैं। वे 'महाबाहु' नहीं । सींक सी बाहु लेकर किससे भिड़ें ? राम महोरस्क थे। हमारे नव युवकों की छाती पाताल लोक को दिन व दिन धंसी चली जा रही है। वे गूढ़-जत्रु थे । हमारे युवक जन के कधों की हड्डियां सीगसी, खड़ी साफ दिखाई देती हैं। कहांतक गिनाऐं ? वे अनजानु-बाहु थे 'सुशिर' थे, सुललाट थे 'सुविक्रम' थे। हनूमान जैसे विदेशी बज्र-अंग-बली पर भी उनकी धाक थी। वे स्वामी थे और बजरंगी उनका दास। रावण की शक्ति उस समय आसुरी-शक्ति की चरम सीमा पर थी किन्तु आदर्श कुमार के रण कोशल के सामने उसे चूर चूर होते देर न लगी।

अब चलिये कुछ द्वापर युग की सैर करें। लीजिये तीन लोक से न्यारी मथुरा नगरी आ पहुंची। यमुना का मन्द मन्द प्रवाह कैसा मन-मोहक जान पड़ता है। वह देखिये वृन्दावन के कुंज कैसे सघन और शान्तप्रद दिखाई दे रहे हैं। कैसी शीतल मंद सुगन्ध समीर प्रवाहित हो रही है। इसी के आस पास नन्दग्राम, बरसाना, गोवर्धन, गोकुल आदि स्थान बसे हुये हैं। यही पुण्यभूमि, लीला पुरुषोत्तम कृष्ण की क्रीड़ास्थली थी। इसे ब्रज के नाम से पुकारती हैं। अहा ! कैसा सुन्दर समय था ! पुरुष धन धान्य से कैसे सम्पन्न थे। उनके पशु उनका धन थे। 'गो-धन' आज भी उस वास्तविक धन की याद दिला रहा है। हमारा बल ही सद्धाधन है । निर्बल का धन भी अपना धन नहीं रहता उसका सबकुछ होता हुआ भी उसका कुछ नहीं। नन्दबाबा की नौलख धेनु आज भी प्रसिद्ध हैं। दूध की नदियां

वहती थीं। ब्रज भूमि आज भी दिखाई देती है, किन्तु गोरस की कीच कहाँ। उसके आनन्द नृत्य आज स्वप्न हो गये हैं किस लिये ? इस लिये कि आज वहांकृष्णचन्द्र जैसा द्वितीय आर्य कुमार ब्रजचन्द्र नहीं। नहीं वहां उनके आधुनिक सखाओं को माखन मिश्री खाने को मिलता है। अब बताइये कंस हनन कौन करे, सिनेमा के नृत्य देखने वाले 'तप स्वाध्याय विरत', 'सर्वभूत-र्न,त', 'करुण दर्शन, आत्म शून्य, हत-क्रोध, स्कूल और कालिजों की अयोध्या और ब्रज की वायु मण्डल मे पले बाबू ? उत्तर आप स्वय दे लें।

और आगे चलिये। यह देखिये सामने पाटली पुत्र नगरी बसी हुई है। महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य सिंहासनारूढ़ हैं यवसिल्यूकस (शैलूक्य) पश्चिमी सीमा दबाता हुआ चला आरहा है। मौर्य राज के गुप्त चर समाचार सुनाते हैं। आर्य्यवीरोंकी सुसज्जित सेना किस अलौकिक उमग के साथ पश्चिमाभिमुख विदेशी लुटेरे का मुँह तोड़ने के लिए भागी चली जारही है। वह देखिये कैसा भयङ्कर युद्ध होरहा है, दुश्मन के पैर उखड रहे हैं। देखिये यवन दुलारी को सामने लिये यवनराज बद्ध कर भीरुमना क्या प्रार्थना कर रहा है ? मौर्य कुल मुकुट के सामने विजयश्री यवन श्री को उपहार लिए नतमस्तक खडी है। विश्व विजयी अलक्षेन्द्र का उत्तराधिकारी मौर्य सम्राट् को दामाद बनाने मे अपना गौरव समझता रहा है वीर पृथ्वीराज तक राजपूती तूती बोली और आगे भी बोलती यदि जयचन्द्र अपने नाम को कलंकित कर पराजय का कारण न बनता।

मुसलमान काल मे भी हकीकत राय जैसे आदर्श कुमारों ने त्याग और आत्मसमर्पण का उज्वलन्त उदाहरण विजेताओं के सामने रख देश के धर्म और गौरव की रक्षा की बाद को सिक्खों ने अपना सिक्का भी जमा लिया। पंजाब केशरी रणजीतसिंह जब तक जीवित रहा किसी गीदड़ की पजाब की ओर आंख न उठी। मरहठे भी एकबार तो अपनी सी कर के ही हटे। वीर शिवाजी ने नौरंग औरंग के छक्के छुड़ाही तो दिये। उसकाल में दो बातो ने हमारा बहुत साथ दिया। एक हमारे शास्त्र हमारे पास रहे। निहत्थे कर हमें बधिया कोई न बना सका। दूसरे हम विदेशी-बीबियों पर मोहित कभी नहीं हुए। स्वदेश, स्वराज, स्वधर्म स्वभाषा स्ववेश, स्वभूषा, स्वदेशी वस्तु आदि स्वत्वों से हमें बराबर प्रेम बना रहा।

किन्तु हा ! विदेशी बीबियों ने अपनी चमक दमक दिखा हमे वि-मोहित कर लिया। एक प्रकार से नहीं विविधि प्रकारों से और विशेष प्रयत्नों द्वारा हमें अपने विषैले प्रेम पाश में बुरी तरह फांस लिया जिन बातो के लिये हम जीवन निछावर करने तक को उद्यत रहते थे उन्हीं को करने आज चंडी के भृकुटि भय के कारण श्वानवत् दुम हिलाते और पेट दिखाते नहीं लजाते।

किन्तु धन्य है भगवान्,तेरी अपरम्पार लीला ! परमकारुणिक ने अन्त को करुणा दिखाई। अन्धकूप में गिरने से भक्त भारत को बचा लिया। लोग मर्यादा पुरुषोत्तम राम और लीला पुरुषोत्तम कृष्ण को ईश्वर का अवतार मान हाथ पर हाथ धरे बैठे थे कि वही फिर जन्मले तो दुःख सागर से नैया पार लगे। उन्हे विश्वास था कि मानवी शक्ति स्व—प्रयत्न से कितनी विकसित हो सकती है। यह पाठ पढाने नहीं नहीं स्वयमेव बना कर दिखाने के लिये दिव्य-गुरु दयानन्द को मर्त्य-लोक मे भेजा। जोकुछ उसने कर दिखाया कल की सी बात है।

हमें तुलना करके किसी के गौरव को कम करना अभिमत नहीं। केवल सत्य प्रकट करना है। राम को केवल रावण से पाला पड़ा। अन्य छोटे मोटे की गणना ही क्या ? कृष्ण को एक साधारण मण्डलेश कंस से मुठभेड़ करनी पड़ी। जरासिंधु के सामने से तो भाग जाने को ही बाध्य होना पडा ? फिर उन दोनों पुरुषों के पास फौज भी तो इकट्ठी हो गई थी। इधर देखो ? सिवाय सोटे और लगोटे के तीसरी वस्तु पास नहीं। और फिर एक रावण और एक कंस कोही पछाडना नहीं अनेकों दानवों से और एक ही साथ जंग ठानी। आज्ञानुसार कुम्भासुर,

तब, अब और आगे

(ले०—श्री बा० मदनमोहनजी सेठ एम० ए०)

आर्यसमाज का उद्देश्य गुरु की आज्ञा और ऋषि दयानन्द द्वारा दी गई 'गुरुदक्षिणा' में छिपा है। संसार के संपूर्ण इतिहास के पृष्ठ उलट जाइये, विरजानंद से गुरु और दयानन्द से शिष्य कितने मिलेंगे? विरजानन्द की पाठशाला में अनेक शिष्य पढ़ते थे, उनमें अनेक विद्वान् भी थे, किन्तु उन्होंने दयानन्द से ही 'जीवन दक्षिणा' क्यों चाही? दयानन्द की यथार्थ वैदिक सत्यज्ञान प्राप्ति की इच्छा को पूर्णकर सत्य सनातन वैदिक धर्मप्रचार की अग्नि को अधिकाधिक क्यों प्रज्वलित किया? गुरु ने शिष्य को पहिचाना और उनके जीवन को स्थिर कर दिया।

गुरुदक्षिणा की यह माँग-'भारत के अन्धकारको दूर कर सत्य सनातन वैदिक संस्कृति की रक्षा करो—अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन कर आर्ष ग्रन्थों की महिमा स्थापित करो, आज भी आर्यसमाज को अपने उद्देश्यपूर्ति के लिये प्रकाश-स्तम्भ का काम दे रही है। दक्षिणा रूपी बलिवेदी पर ऋषि ने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया।

ऋषि की अमृतत्व प्राप्त करने की अभिलाषा-ज्ञानाग्नि, शिवलिङ्ग पर चूहे के चढने से प्रबुद्ध हुई। प्रकाश की वह क्षीण रेखा—पिता के तिरस्कार, शुद्ध चैतन्य रूप में घूमना, संन्यास ग्रहण, योग-विद्या के रहस्य भेद के लिये यौवन काल में ही शीत, क्षुधा पिपासा, जंगल के भय आदि क्लेशों को कुछ न गिनकर उत्तराखण्ड भ्रमण, नदीतट के भीषण पार्वत्य देशों में विचरण, मठाधीशों का प्रलोभन, अलख-नन्दा तट पर हिमावर्त्त पर्वतीय प्रदेशों का अति-क्रमण आदि दुःखों से, जंगल में बढ़ती हुई वनाग्नि की तरह अधिक से अधिक प्रज्वलित और शक्ति-शाली होती गई। उनके गुरु के संसर्ग से अग्नि शुद्ध होकर स्वच्छ प्रकाश देने लगी—अन्धकार दूर होने लगा, प्रचलित अवैदिक मतमतान्तरों का प्रभाव कम होने लगा—सत्य सनातन वैदिक धर्म का स्वरूप प्रकाशित हुआ।

पाखण्ड सिंधु, दुराचार, अनाचार, अत्याचारादि न जाने कितने दैत्य दानवों का सामना करना पड़ा। शरीरधारी दैत्यों के मानसिक दैत्य कहीं प्रबलतर होते हैं धार्मिक क्षेत्र में भी हजरत ईसा को इतनी कठिनाइयों से पाला पड़ा, न श्रीमान् मूसा को। मुहम्मद साहब अलस्सलाम को तो सिर्फ बुतपरस्तों के साथ जहाद उठानी थी। महात्मा बुद्ध को पशु बलि रुकवाने का मुख्य काम था। और शंकर को केवल बौद्धमत का मूलोच्छेदन मात्र। हमारे लंगोटबन्द को तो क्या किरानी, क्या कुरानी और क्या पुरानी सभी को युद्ध—स्थल में आह्वान देना पड़ा। सचतो यह है सारी खुदाई इक तरफ, वैदिक सचाई दूसरी तरफ सभी को परास्त किया। पश्चिमी प्रवाह को कान पकड़कर पूर्वाभिमुख करदिया। कभी मैदान न छोड़ा। कोई प्रलोभन प्रलोभित न कर सका। निर्भय था, निश्शंक था। शारीरिक मानसिक और आत्मिक उन्नतिका जीता जागता नमूना ऐसा दूसरा इस युग में नहीं प्रकट हुआ। जो कहा सो करके दिखाया। कर दिखाने का समय है। उसके मार्गपर चलो, अवश्य कल्याण होगा।

इस समय

गुरु की उसी आज्ञापूर्ति का उत्तरदायित्व पूर्ण भार ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के कन्धों पर

डाला। आर्यसमाज का प्रारम्भकाल स्वर्ण युग का समय था। प्रत्येक आर्यपुरुष 'सत्य' के आधार पर युगविधाता गुरु का सच्चा शिष्य होने के प्रयत्न मे ही अपने जीवन की सार्थकता समझता था। उस समय के आर्यपुरुषो ने क्या क्या कष्ट नही सहे? आर्य समाजों का बराबर प्रेम व्यवहार क्या भूलने योग्य है? आज भी उस समय की दिव्य मूर्तियों के दर्शन प्रायः हो जाते है।

आर्यसमाज ने शिक्षा, वैदिक प्रचार, कुरीति निवारण आदि समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे आशातीत सफलता प्राप्त की। उसने सैकड़ो शिक्षणालय, गुरुकुल, अनाथालय तथा अनेक परोपकारी संस्थायें स्थापित कीं। उस समय के उपदेशको ने निःस्वार्थ भाव से, श्रद्धा से ओत-प्रोत होकर वेद प्रचार मे अपने सम्पूर्ण जीवनों को लगा दिया। आर्यनेताओ और उपदेशको ने जिस अपने आदर्श जीवन की आहुतियाँ दी हैं उनके प्रकाश से समाज आलोकित हो उठा है।

आर्यसमाज के कार्य तथा उसके संस्था संगठन और अनुशासन की धाक चारो ओर जम गई। आर्यसमाज को भारतीय विकासयुग मे एक विशेष स्थान प्राप्त हुआ, परन्तु

अब

अवस्था बदल रही है। सेवा का स्थान अधिकार ने ले लिया है। प्रत्येक शक्ति अपने हाथ मे रखना चाहता है। स्थान स्थान पर झगड़े नज़र आते है। मुकदमेबाजी तक नौबत पहुँचने लगी—अपनी अपनी मनमानी करने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। संस्थायें जो उद्देश्यपूर्ति के लिये उत्तम साधन थीं स्वयं उद्देश्य बन रही हैं, संगठन शक्ति का ह्रास हो रहा है, केन्द्रित शक्ति बिखर रही है—न भ्रातृभाव है और न अनुशासन। पहला प्रेम कहाँ है? उपदेशको मे वह त्याग और तपस्या—वह आग—नहीं जो दूसरो को प्रज्वलित कर सके। नेताओं में वह धार्मिक आकर्षण नहीं जो दूसरों को अपनी ओर खींच सके। आर्य-

६१

समाज के मुख्य उद्देश्य वेद प्रचार की दशा भी छिपी हुई नही है, उत्तम वैदिक साहित्य भी हमारे पास नहीं है, फिर प्रचार कैसे हो?

क्या यह समय आत्म चिन्तन का नहीं है? हमारी क्या अवस्था है? हमे सोचना चाहिये कि कहीं हमारा

भविष्य

अन्धकारपूर्ण तो नहीं है। काम बहुत कुछ करने को है। दो सभ्यताओं के इस संघर्ष मे वैदिक संस्कृति के पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द के शिष्यों के लिये सुस्ताने का समय कहाँ है? यह समझना भूल है कि आर्यसमाज का कार्य समाप्त हो गया। पश्चिमीय सभ्यता के अव्यवस्थित आचार विचार भारत की प्राचीन सभ्यता को—भारतीय समाज को उलट-पुलट कर रहे हैं। अधिकारवाद और भोगवाद के चकाचौंध ने नवयुवको की बुद्धि फेर दी है—समाज की नस नस मे विष व्याप्त होता जाता है।

ऐसे विकट समय मे कर्तव्य को भूलकर कहीं पथभ्रष्ट तो नही हो रहे—यह बड़ी गम्भीरतापूर्वक विचार करने की बात है।

ऋषि दयानन्द का उद्देश्य तो पूरा होगा ही लेकिन देखना यह है कि ऋषि तथा उसके अनुयायी होने का दावा करने वाला आर्यसमाज आर्य वैदिक संस्कृति की रक्षा मे तथा आर्य ग्रन्थों की महिमा स्थापित करने मे कितना सहायक होता है?

प्रत्येक आर्य पुरुष को ऋषि के इस पवित्र जीवन आहुतिपर्व पर अपने हृदय मे विवेचन करना चाहिये कि हम कहाँ पर हैं? विरासत मे, सत्य सनातन वैदिक धर्म का जो प्रकाश हमने प्राप्त किया है उससे दूसरों को हम कितना प्रकाशित कर रहे हैं?

धर्म-प्रचार में व्यक्तित्व का प्रभाव

(ले०—श्री रमेशचन्द्रजी वन्योपाध्याय एम० ए०)



दि हम, परमतावलम्बियो को स्वमत की दीक्षा देने वाले धर्मों के इतिहास का अध्ययन करे तो हमे पता लगेगा कि धर्म—परिवर्तन के सम्बन्ध मे सिद्धान्तो की अपेक्षा व्यक्तित्व का स्थान अधिक महत्व का है। बौद्ध धर्म ईसाई धर्म, इस्लाम, सब का इतिहास यही प्रकट करता है। आदि के बौद्ध भिक्षु, आरम्भ मे होने वाले ईसाई (विशेष कर ईसा के प्रथम शिष्य) तथा प्रथम खलीफाओ ने दार्शनिक वक्तृताओ और तर्क-पूर्ण शास्त्रार्थों की अपेक्षा अपने वैयक्तिक आचरण के उदाहरण से अपने अपने धर्म का अधिक प्रचार किया। अपने शास्त्रो की उच्चता की घोषणा अथवा आचरण सम्बन्धी विधि निषेध की अपेक्षा प्रेम और सेवा की वह भावना जो उक्त मिशनरियो मे से कुछ ने मनुष्यमात्र के लिये तथा अन्यो ने अपने अनुयायियो और सहयोगियो के लिये प्रदर्शित की—अधिक बलवान आकर्षण सिद्ध हुई। यह सब ऐसे युग मे हुआ जब धर्म के लिये अधिक आदर था और गहरी श्रद्धा थी।

आज नास्तिकता का युग है। यह बात विस्मृत नही की जा सकती कि ससार के सभी भागो मे मनुष्य के मस्तिष्क से धर्म का प्रभाव उठ गया है। अब तक यह विश्वास किया जाता था कि इस्लाम संसारके सभी धर्मोंमे अधिक कट्टर धर्म है और इसमे सिद्धान्तो और मजहबी कृत्यो पर विश्वास करने के लिए सब धर्मों से अधिक कड़ा बन्धन है। किन्तु वहाबी और अहमदियो ने उन सिद्धान्तो को—जो इस्लाम का आधार समझे जाते थे—बड़ा भारी आघात पहुंचाया है। यदि योरोपीयन लेखकों की सम्मति ठीक है तो आधुनिक तुर्क और इराकियो ने भी कट्टरता के मार्ग को छोड़ दिया है। एक ओर धार्मिक ग्रन्थो मे अथवा कम से कम उनके अब तक किये जाने वाले अर्थों में श्रद्धा कम हो रही है तो दूसरी ओर कमालपाशा और इब्नसऊद मे विश्वास बढ़ रहा है। धार्मिक क्षेत्र मे वैयक्तिक प्रभाव का क्या फल होता है यह प्रसिद्ध वहाबी नेता के कार्यों से भली भांति प्रकट होता है। न्यूयार्क के प्रसिद्ध मासिकपत्र 'एशिया' ने इब्नसऊद के विषय मे एक आश्चर्यजनक घटना का इस प्रकार वर्णन किया है कि एक बार एक ब्रिटिश अफसर इब्नसऊद का अतिथि बना। यह घटना उस समय की है जब कि प्राय. नित्य ही नई नई जातियां इब्नसऊद के झण्डे के नीचे आ रही थी, अर्थात् हुसैन से उसका युद्ध होने से कुछ ही पूर्व की। अस्तु। एक दिन संध्या समय ब्रिटिश अफसर अपने डेरे के सामने खुली जगह मे टहल रहा था कि यकायक एक बुड्ढा अरब उसकी ओर यह चिल्लाता हुआ दौड़ा—'काफ़िर, सुअर! तू ने मेरी नमाज की जगह को नापाक कर दिया।' शीघ्र ही हथियार बन्द अरबो की एक भीड़ इकट्ठी हो गई और क्रोध मे आकर वे उस अफसर पर टूटने ही वाले थे कि इब्नसऊद के अङ्ग—रक्षको का एक दल आ गया और उसने बुड्ढे शेख और उसके साथियो को पकड़ लिया। दूसरे दिन उन पर राजकीय महमान की अवज्ञा और शाही कैम्प मे झगड़ा करने का अभियोग लगाया। बुड्ढे अरब ने बयान दिया कि मै काफिर को दण्ड देने का यत्न कर रहा था, क्योकि वह उस जमीन पर टहल रहा था जो सुबह नमाज पढ़ने के कारण पाक हो गई थी। इब्नसऊद को इस पर बड़ा क्रोध आया। उसने कहा, "क्या सारी पृथ्वी अल्लाह की प्रार्थना करने के लिये नही है? इस्लाम ने यह कब बतलाया है कि जमीन का एक हिस्सा दूसरे हिस्से से अधिक पवित्र है? तुम नहीं जानते कि इसी अन्धविश्वास के कारण मैं मस्जिदो की प्रतिष्ठा करने के विरुद्ध हूँ।"

अपराधी अरबो को कोड़े लगाये गये और इसी प्रकार के दूसरे कठोर दण्ड दिये गये।

केवल इब्नसऊद के समान चरित्रवान् और प्रभावशाली पुरुष ही ऐसे लोगो मे, जो अपनी मस्जिदो के लिए असाधारण प्रतिष्ठा करते हैं यह काम करसका। इसकेप्रमाण भातवर्ष मेनित्य ही देखने मे आते हैं इब्नसऊद से पहले वहाबी लोगो का कोई उल्लेखनीय अस्तित्व नहीं था। परन्तु अब एक के बाद दूसरी अरबो की जातियां उनके झण्डे के नीचे आ रही हैं। व्याख्यान द्वारा प्रचार बहुत दिन से बन्द हो चुका। परन्तु ऐसे लोगों मे जो अपने चरित्र की भयङ्करता और कठोर कट्टरता के लिए प्रसिद्ध थे, धर्म-परिवर्तन अब भी जारी है। वैयक्तिक प्रभाव से वे आश्चर्यजनक कार्य हुए हैं जो अपने धर्म और शास्त्रो के महत्व की घोषणा से कभी नहीं हो सकते थे। इस सम्बन्ध के उदाहरण हमारे देश मे भी पर्याप्त रूप मे पाये जाते हैं। मेरा ऋषि दयानन्द तथा आर्य-समाज के पुराने नेता स्वामी श्रद्धानन्द लाला लाजपतराय आदि के जीवन का अध्ययन भी इसी-सचाई का समर्थन करता है। यही बात छोटे आदमियों के लिये भी लागू होती है। आर्यसमाज के प्रत्येक प्रचारक को यह अनुभव होगा; और यदि उसका हृदय काम करना चाहता है तो वह इसी प्रकार करेगा। क्या यह नही कहा जाता कि प्रत्येक आर्य अपने क्षेत्र मे प्रचारक है, किन्तु व्यवहार मे हम क्या पाते हैं? समाजो के मन्त्री और प्रधान ऐसा व्यवहार करते है मानो वह गवर्नमेंट के किन्ही विभागों के सेक्रेटरी और मिनिस्टर है। सम्पत्ति और स्थान का गर्व प्रचारक की भावना का सबसे बड़ा शत्रु है—वह भावनाजिससे प्रत्येक आर्य समाजी और विशेषकर पदाधिकारी प्रेरित होने चाहिए। यह ठीक कहा जाता है कि सबसे अधिक रचनात्मक काल आर्यसमाज के जीवन मे वह था कि जब आर्य संख्या मे थोड़े थे पर थे भावना मे सच्चे। जब कि 'नमस्ते' शब्द से हृदय मिल जाते थे, जब प्रेम और सेवा की भावनाएं प्रत्येक आर्य के हृदय मे निवास करती थीं। आर्यसमाज की ज्वलंत कीर्ति उसी समयसे सम्बन्ध रखती है। किसी जाति या वर्ग के लिये वह दुर्दिनही कहा जायगा जब कि वह अपनी पिछली कीर्ति को गाती हुई जीवित रहना चाहे और उसको बढाने मे अशक्त बन जाय। आर्यसमाज का ऐसा ही दुर्दिन आया प्रतीत होता है।

मै कई वर्ष तक आर्यसमाज के साथ घनिष्ठ सम्पर्क मे रहा हू। कुछ वर्ष तक मैने सार्वदेशिक सभा की ओर से अवैतनिक प्रचार किया। एक बार कलकत्ते के मेरे मित्रो ने मुझे प्रतिनिधि सभा का प्रधान भी बनाया। मै अनेक आर्य प्रचारकों के सम्पर्क मे आया और मैने उनके प्रचार के विभिन्न ढंगो को भी देखा। मेरा विश्वास है कि जिसके हृदय मे मनुष्यमात्र के लिए प्रेम नही है, वह धर्मप्रचार के कार्य मे अवश्य असफल होगा।

संपत्ति और स्थान के गर्व के अतिरिक्त एक अभिमान है काल्पनिक पवित्रता का। मै ऐसे एक सज्जन से मिला, जो कट्टर आर्य थे और जिनका चरित्र भी आदर्श था—केवल एक बात को छोड़कर, वह है उनकी जिह्वा का विष। अनेक प्रतिष्ठित पुरुष जो दूर से उनकी ओर आकृष्ट हुए, उनके कटु शब्दों के कारण उनसे सदा के लिए दूर हो गये। वह सच्चा धर्मप्रचारक नहीं है जो यह समझता है कि एक व्यक्ति से व्यवहार करने से पूर्व हमे यह निश्चय हो जाना चाहिये कि उस व्यक्ति मे मानवीय दुर्बलताएँ बिलकुल नही रही। ऋषि निर्वाण की स्मृति के इस अवसर पर आर्यसमाजों को इन दोषो से रहित हो जाना चाहिये। प्रान्तीयता बिरादरी और मूर्तिपूजा की ओर झुकाव तथा गुरुडम आदि ऐसे दोष हैं जो एक ऐसे समुदाय के लिये, जिसका अस्तित्व संगठन ही पर है, विषाक्त भोजन से कम हानिकारक नही है।

स्वामी दयानन्द और कुरान

(लेखक — श्री प्रो महेशप्रसादजी मौलवी आलिम फाजिल)



सत्यार्थ प्रकाश पहले पहल सन् १८७५ ई० मे प्रकाशित हुआ था। उसमे चौदहवाँ समुल्लास नही है जिसमें श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने मुसलमानो के मत के विषय मे लिखा है किन्तु श्री स्वामी जी ने इस सस्करण के दसवें समुल्लास के अन्त मे यह अवश्य प्रकट किया कि हम मुसलमानो के मत के विषय मे खण्डन और मण्डन लिखेगे। सत्यार्थ प्रकाश का दूसरा सस्करण सन् १८८४ ई० मे हुआ। इसके चौदहवे समुल्लास में स्वामी जी ने मुसलमानो के विषय मे जो कुछ लिखा है उसके पहले एक अनुभूमिका लिखी है, जिसमे पहले यह लिखा गया है —

"जो यह १४ चौदहवाँ समुल्लास मुसलमानो के मत के विषय मे लिखा है सो केवल .कुरान के अभिप्राय से अन्य ग्रन्थ के मत से नही। क्योकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा पूरा विश्वास रखते हैं। यद्यपि फिरके होने के कारण किसी शब्द अर्थ आदि विषय मे विरुद्ध बात है, तथापि .कुरान पर सब एकमत्य है। जो .कुरान अर्बी भाषा मे है उस पर मौलवियों ने उर्दू मे अर्थ लिखा है उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्य भाषान्तर कराके पश्चात् अर्बी के बड़े बडे विद्वानो से शुद्ध करवा के लिखा गया है। यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको उचित है कि मौलवी साहवो के तर्जुमों का खण्डन करे, पश्चात् इस विषय पर लिखे।" .कुरान अर्बी मे जैसा सैकडो वर्ष पहले था वैसा ही आज भी है, किन्तु जिस प्रकार आज बहुत सी बातो मे परिवर्तन हो गया है उसी प्रकार .कुरान के अर्थ में भी कहीं कही भारी परिवर्तन हो गया है। निदान कुछ लाग कह उठते हैं कि श्री स्वामी जी ने जो अर्थ सत्यार्थ प्रकाश मे कुरान की आयतो अर्थात् वाक्यो का दिया ह वह ठीक नही है किन्तु इस विषय मे स्वामी जी ने जो कुछ लिखा है वह उपर्युक्त अनुभूमिका के अश से स्पष्ट ही है। अस्तु। मै पाठको को बतला देना चाहता हूँ कि जिस समय श्री स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश का इसलाम विषयक समुल्लास लिखा उस समय तथा उस समय से पहले पूर्णतया अथवा लगभग वही अर्थ .कुरान के अनुवादको ने माने है जैसा कि उनके रचित ग्रन्थो से स्पष्ट हैं।

(१)

श्री स्वामी जी ने एक आयत का अनुवाद यह दिया है — 'अल्लाह ने उनके दिलो कानो पर मोहर कर दी और उनकी आखो पर पर्दा है और उनके वास्ते बडा अजाब है।" (चतुर्दश समुल्लास मे अंक ५ का अन्त)

अब यह जानना चाहिये कि श्री सर सैयद अहमद खाँ साहब मुसलमानो के एक मुख्य नेता थे, उनकी जीवित स्मृति वर्तमान काल की मुसलिम यूनिवर्सिटी है। श्री सैयद साहब और श्री स्वामी जी मे मित्रता थी। अस्तु। श्री सैयद साहब ने "त.फ्सीरुल .कुरान' के नाम से जो उर्दू भाष्य किया है उसका प्रथम भाग पहले पहल सन् १८८० ई० मे अलीगढ से प्रकाशित हुआ था। उस प्रथम भाग का एक सस्करण लाहौर से प्रकाशित हुआ है वह फजलउद्दीन बुकसेलर काश्मीरी बाजार लाहोर के यहाँ से मिलता है। जिस आयत का अर्थ सत्यार्थ प्रकाश से उद्धृत किया गया है उसी का अर्थ उक्त संस्करण के पृष्ठ १४ मे इस प्रकार है —"मोहर कर दी है अल्लाह ने उनके दिलो पर और उनके कानो पर और उनकी आखों पर पर्दा है और उनके लिये बड़ा अजाब है।"

.कुरान के प्राचीन उर्दू अनुवादको में से जो अनुवाद आज भी प्रचलित हैं और आदर दृष्टि से देखे जाते हैं वह दिल्ली के मौलाना शाह अब्दुल क़ादिर साहब और शाह रफीउद्दीन साहब के है। यह दोनों अनुवाद स्वामी जी से बहुत पहले और श्री सैय्यद महोदय के अनुवाद से लगभग ६०–७० वर्ष पहले के हैं। अनेक प्रेसों से प्रकाशित है। इन दोनोंअनुवादो के शब्द श्री स्वामी जी द्वारा लिखे हुये शब्दो के कहाँ तक समर्थक हैं इसका निर्णय नीचे दिये हुये शब्दो से भली भांति हो जायगा :—

(अ) मौलाना शाह अब्दुल कादिर साहब — "मोहर कर दी अल्लाह ने उनकी दिल पर और उनके कान पर और उनकी आंखो पर है पर्दा और उनको बड़ी मार है।"

(आ) मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब :— "मोहर की अल्लाह ने ऊपर दिलो उनक के और ऊपर कानों उनके के और ऊपर उनकी आंख के पर्दा हैं और वास्ते उनके अजाब है बड़ा।"

सत्यार्थ प्रकाश के चौदहवें समुल्लास के अंक ६ मे लिखा हुआ है :—"उनके दिलो मे रोग है अल्लाह ने उनका रोग बढ़ा दिया।" अब देखिये उक्त तीनों अनुवादकों के शब्द क्या हैं :—

(अ) मौलाना शाह अब्दुल कादिर साहब :— "उनके दिल मे आजार है फिर ज्यादा दिया अल्लाह ने उनको आज़ार।"

(आ) मौलाना शाह रफीउद्दीन साहब —"बीच दिलो उनके के बीमारी है पस बढ़ाई उनकी अल्लाह ने बीमारी।"

(इ) श्री सर सैयद अहमद खां साहब :—"उनके दिलो मे बीमारी है फिर खुदा ने उनकी बीमारी को बढ़ा दिया।"

(३)

चौदहवें समुल्लास के अंक ७ मे लिखा है :— "जिसने तुम्हारे वास्ते पृथ्वी बिछौना और आस्मान की छत को बनाया।"

यही आशय तीनों अनुवादको ने इन शब्दों में दर्शाया है :—

(अ) मौलाना शाह अब्दुल कादिर साहब :— "जिसने बना दिया तुम को जमीन बिछौना और आस्मान छत।"

(आ) मौलाना शाह रफी उद्दीन साहब :— "जिसने किया वास्ते तुम्हारे जमीन को बिछौना और आस्मान को छत।"

(इ) श्री सर सैयद अहमद खाँ साहब :— " (.खुदा वह है) जिसने बनाया तुम्हारे लिये जमीन को बिछौना और आस्मान को डेरा।"

अब अन्त में हमारे पाठकों को यह जानना चाहिये :—

(१) उक्त तीन अनुवादो के सिवा .कुरान के कुछ और भी उर्दू अनुवाद सम्पूर्ण अथवा अपूर्ण श्री स्वामी जी के समय से पहले के हैं।किन्तु इस समय केवल उक्त तीनोंसे ही मुकाबिला करके दिखाया गया है और यह तीनो बहुत प्रसिद्ध हैं।

(२) जिस प्रकार उक्त तीन अनुवाद ऐसे हैं कि सत्यार्थ प्रकाश में दिये हुये अनुवादों से मिलते जुलते हैं उसी प्रकार आशा है कि अन्य सारे भी मिलते जुलते ही होगे क्योंकि उक्त तीनों के सिवा मैंने कुछ अन्य को भी मुकाबिला करके देखा और उनको उक्त तीन अनुवादको के भावो के अनुकूल ही पाया है, किन्तु इस अवसर पर सत्यार्थ प्रकाश से केवल तीन बातों के ही विषय में नमूने के तौर पर लिखा गया है।

(३) जिन आयतो के विषय में श्री स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश मे थोड़ा बहुत लिखा है उनका तथा कुछ अन्य आयतो का अनुवाद तथा भाष्य श्री स्वामी जी के समय के बाद उर्दू में हमारे भारतीय मुसलमान विद्वानों ने क्या किया है ? यदि अब इस बात पर दृष्टि डाली जाय तो अनेक बातें बड़ी मनोरंजक प्रतीत होंगी।

क्या सृष्टि की आदि में वेद एक था?

(ले०—श्री प० देवेन्द्रनाथजी शास्त्री सांख्यतीर्थ)





कुछ शताब्दी पूर्व लोगो का यह विश्वास था कि सृष्टि के प्रारम्भ मे वेद एक ही था, द्वापर तक एक ही रहा। पश्चात् श्री वेदव्यास ने उसके चार विभाग कर दिये, जो उसी समय से ऋग्वेद, यजुर्वेद साम, अथर्व के नाम से चले आते है। इसी पक्ष के मानने वाले इस समय भी हैं। अनेक विद्वान् भी ऐसा ही मानते रहे हैं, अतएव इस विषय पर प्रकाश डालना उचित है। ऋषि दयानन्द ने इस पक्ष का खण्डन किया है। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश मे लिखा है कि "जो कोई यह कहते हैं कि वेदो को व्यास जी ने इकट्ठा किया यह बात झूठी है, क्योकि व्यास के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर, शक्ति वसिष्ठ और ब्रह्म आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे।" इन पक्षो में सत्य कौनसा है और असत्य कौनसा इसका विवेचन किया जाता है। इस विषय मे वेदभाष्यकार महीधर का मत यजुर्वेद के आरम्भ मे इस प्रकार है:—

"तत्रादौ ब्रह्मपरम्परया प्राप्तवेदंवेदव्यासो मन्दमतीन् मनुष्यान् विचिन्त्य तत्कृपया चतुर्धा-व्यस्यऋग्यजुः सामाथर्वा ख्यांश्चतुरो वेदान् पैल, वैशम्पायन, जैमिनि सुमन्तुभ्यः क्रमादुपदिदेश, तेच स्व शिष्येभ्यः, एवं परम्परया सहस्र शाखो वेदो जातः।"

अर्थात् ब्रह्म की परम्परा से प्राप्त हुए वेद को मनुष्यों को मन्दमति समझ कर वेद व्यास जी ने ४ विभागों में विभक्त कर दिया और उनके यजुर्वेद आदि नाम रख दिये, और अपने चार शिष्यो पैल, वैशम्पायन, जैमिनि, सुमन्तु-को पढ़ाया, यो परम्परा से हजार शाखावाला वेद हुआ। यही बात दुर्गाचार्य ने निरुक्त में लिखी है—

"वेद तावदेकं सन्तमतिमहत्वात् दुरध्येयमनेकशा खाभेदेन समाम्नासिषु। सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नातवन्त"। अर्थात् वेद जो कि एक था और पढ़ने मे अति कठिन था, उसकी व्यास जी द्वारा अनेक शाखाए समाम्नात हुई।

अब विचारणीय यह है कि वेद एक था और व्यास जी ने उसका विभाग किया। यह कल्पना कहा से आई? इसका उत्तर यह है कि यह पुराणों की कल्पना है जिसके कारण यह भ्रम फैला है। विष्णु पुराण के ३-३ मे विस्तार पूर्वक इसका उल्लेख है। यहा मैत्रेय जी ने श्री पराशर जी से यह प्रश्न किया कि युग युग में व्यास जी के द्वारा जो वेदो का विभाग हुआ है, कृपा कर उसका वर्णन कीजिये? पराशर जी बोले—"हे मैत्रेय! प्रत्येक द्वापर युग मे भगवान विष्णु व्यास रूप से अवतीर्ण होते हैं और एक वेद के अनेक भेद कर देते हैं।" पराशरजी बोले—"हे मैत्रेय, इस वैवस्वत मन्वन्तर के प्रत्येक द्वापर युग मे व्यास महर्षियों ने अब तक अट्ठाइस बार वेदो का विभाग किया है" इसके आगे पराशर मुनि सारे व्यासो के नाम गिनाते हुए लिखते है कि तत्पश्चात् हमारे पिता शक्ति व्यास हुए और फिर मैं व्यास हुआ, और मेरे अनन्तर जात कर्ण व्यास हुए और फिर कृष्ण द्वैपायन व्यास हुए इस प्रकार इन २८ व्यासों ने द्वापरादि युगो में एकही वेद के चार चार विभाग किये हैं।

एको वेदश्चतुर्धा तुतै कृतो द्वापरादिषु ॥२०॥

उपर के उद्धरण से विदित होता है कि पुराण सृष्टि की आदि मे एकही वेद मानता है और फिर द्वापरादि युगो मे प्रत्येक मे एक एक व्यास का होना मानता है, जो वेदो का विभाग करते आ रहे हैं। वेदो के सम्बन्ध में मत्स्य पुराणादि में भी ऐसा ही लेख है। यहां तक हमने पूर्वपक्ष दिखाया, अब इस

का विवेचन किया जाता है। विष्णु पुराण के ऊपर के लेख मे प्रतिज्ञाही प्रतिज्ञा है, हेतु कोई भी नही है। प्रथम तो यह विचारणीय है कि द्वापर युग में ही व्यास क्यो पैदा होते है ? क्या द्वापर मे ही वेद अस्तव्यस्त हो जाता है, जिसका सुधार करना पडता है, और फिर हर एक व्यास वेदो के जब चार विभाग करता है तो वे विभाग सबके भिन्न भिन्न दृष्टि मे आने चाहिये किन्तु ऐसा नही है। २८ वार विभाग होने पर भी वेदो का वर्त्तमान विभाग ही सर्वत्र मिलता है। यदि कहा जाय कि सब से पहिले द्वापर मे ब्रह्मा जी ने जैसा विभाग किया था, पीछे के व्यासो ने उसी का सुधार कर दिया है तो यही क्यों न मान लिया जाय कि सृष्टि के प्रारम्भ मे परमात्मा ने ही चार विभागो मे चार ऋषियो द्वारा चारो वेद प्रकट किए। क्योकि २८ द्वापर बीत चुके इस लिये २८ वार वेदो का विभाग हुआ इस कल्पना में न कोई प्रमाण है और न हेतु। द्वितीय बात विचारणीय यह है कि प्रथम तो पुराण कहता है कि प्रत्येक द्वापर मे एक व्यास विभाग करता है पुन नीचे लिखा है "पश्चात् हमारे पिता व्यास हुए, फिर मै व्यास हुआ। मेरे अनन्तर जातु कर्ण और फिर मेरा पुत्र व्यास हुआ। अब यह ४ व्यास क्या चार द्वापरों मे हुए है ? कदापि नही। एकही युग मे शक्ति पराशर जातु कर्ण, कृष्ण द्वैपायन इस प्रकार ४ व्यास हो गये तो पुराण के २८ द्वापरों के २८ व्यासो का लेख मिथ्या हो गया। यदि हमसे पूछा जाय तो कहना होगा कि विष्णु जी के महत्व घोतनार्थ यह सारी कपोल कल्पना पुराणो ने घडी है, जिसमे रत्ती भर सार नही है। विचारे महीधर आदि अत्यन्त अर्वाचीन भाष्यकार इनही पुराणो के सहरे आवर्त्त म फसे चक्कर काट रहे हैं। एक तरफ वेदो को नित्य कहते जाते है, दूसरी तरफ व्यासो के द्वारा विभाग कराते जाते हैं। न उनको निज की बुद्धि है और न स्वतन्त्र विचार शक्ति। विचारे क्या करें ? यही हाल अन्य परम्परा के पीछे चलने वाले अन्य लोगों का है।

वेदो का उत्तर

वेद सृष्टि की आदि से ४ है या एक। इसका उत्तर वेद ने स्वयं दिया है जो सर्वथा अकाट्य है। यदि वेद एक होता तो वेद मे वेदो के लिये सर्वत्र एक वचन आना चाहिये था, किन्तु आता है बहु वचन जिससे सिद्ध हैं कि वेद एक नही।

अथर्व १६—६—१२ मे है

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदा सप्त ऋषयोऽग्नयः। तै मेंकृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्मयच्छतु।

अथर्व ४—३५—६

यस्मात् पक्वादमृत सम्बभूव यो गायत्र्या अधिपतिर्बभूव यस्मिन्वेदा निहिता विश्वरूपास्ते नौदने नातितराणिमृत्युम्। यही बात नहीं है, जब वेद स्वय वेदो के चार नामो का उल्लेख करता है तब कैसे माना जा सकता है कि वेद एक था।

अथर्व का० ११-सू० ४

ऋकसाम,यजुरुच्छिष्ट उद्गीथ प्रस्तुतं स्तुतम्। हिङ्कार उच्छिष्टे स्वर साम्नो मेडिश्च तन्मयि—पुनः इसी सूक्त मे ऋच. सामानि, छन्दांसि पुराणं यजुषा सह उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिविदेवा- दिविश्रित ॥२३॥

इत्यादि मन्त्र चारो वेदो मे आते हैं, जिनमें स्पष्ट चारो वेदों के नाम आते है तब यह कैसे संभव हो सकता है कि वेदो के विभाग के साथ नाम भी व्यास जी ने रखे। प्रसग वश ऊपर के मन्त्र मे आए पुराण शब्द का समाधान भी कर देना उचित है, क्योकि कोई कोई विद्वान कहते हैं कि पुराण भी परमात्मा से ही प्रकट हुए। इसका उत्तर यह है कि यहॉ पुराण शब्द क्रिया विशेषण है। पुराण शब्द का अर्थ नित्य है, अर्थात् उच्छिष्ट—परमात्मा से नित्य रूप ऋग्वेद, साम, छन्दांसि अर्थात् अथर्व और यजुर्वेद प्रकट हुए—पुराण शब्द नित्य का वाची है, इसीलिये गीता मे आता है—"अजो नित्य शाश्वतोऽयं पुराणे न हन्यते हन्यमाने शरीरे" यही बात नही कि मंत्रो से ही वेदो का अनेकत्व सिद्ध होता हो, अन्य आचार्य भी ऐसा ही मानते है महा- भाष्यकार पतञ्जलि लिखते हैं 'चत्वारो वेदा साङ्गा

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता' इस मन्त्र के भाष्य में सायण ने भी 'वेदा' पद का अर्थ 'वेदाः साङ्गाश्चत्वार' किया है।

कठ ब्राह्मण मे—

'चत्वारिशृङ्गा इति वेदा वा एतदुक्ताः—अर्थात् 'चत्वारिशृङ्गा' मन्त्र मे ४ वेदो का कथन है।

उपनिषदो मे—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं योवै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। कहकर वेद बहुबचन होने से अनेक वेदों का ग्रहण है इत्यादि। सैकड़ो प्रमाण यह बताते हैं कि वेद एक कभी न था उसका यह विभाग ईश्वर से ही प्राप्त हुआ है।

यदि यह विभाग व्यास कृत होता तो व्यास जी से भी अति प्राचीन रामायण के किष्किन्धाकाण्ड मे यह श्लोक न आता जैसा कि हनुमान के विषय मे राम ने कहा है—

"नानृग्वेदविनीतस्य नाम यजुर्वेद धारिणः
नासामवेदविदुषः शक्यमेवंविभाषितुम्"

श्लोक २८

अर्थात् यह हनुमान ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद न पढ़ा हुआ होता तो ऐसा सुन्दर भाषण न कर सकता।

यही बात द्रोणपर्व अ० ५१ महाभारत मे कही है —

'वेदैश्चतुर्भिः सुप्रीता प्राप्नुवन्ति दिवौकसः।'

किंबहुना? यह बात निश्चित है कि वेदों का यह विभाग व्यास कृत नही है। अब यह शंका होती है कि फिर पुराणादि ने यह वर्णन क्यो किया है। इसका उत्तर यह है कि जब अनेक ऋषियो ने अपने शिष्यों के पढ़ाने के लिये वेदों के भाष्य किये तब कही पाठ भेद कहीं सूक्त भेद, कहीं क्रम भेद हो गये। उस समय तो पठनपाठन—क्रम के कारण और गुरु शिष्य परम्परा से यह ज्ञान रहा कि अमुक शब्द मन्त्र का है अमुक भाष्य का किन्तु दीर्घकाल के अनन्तर यह बात ज्ञात न रही तब वेदव्यास जी ने बड़ी सावधानी से इसका संशोधन किया। ब्राह्मण ग्रन्थों को ठीक क्रम देकर संहिता भाग से पृथक् कर दिया। उस समय जो लोग ब्राह्मणों को वेद कह देते थे उन्होंने यही कहना प्रारम्भ कर दिया कि वेदों का विभाग व्यास जी ने किया है। इस समय भी सभाष्य क़ुरान को क़ुरान और सभाष्य के वेद को वेद ही कहते है। अत. उस समय यह कहना उचित ही था कि व्यास जी ने वेदों का विभाग कर दिया।

यह विषय बड़ा गहन है कि व्यास और उनके शिष्यों ने किन किन शाखाओं का संकलन किया है। लेख विस्तार भय से इस विषय को थोड़ा और लिख कर समाप्त किया जाता है। 'तेन प्रोक्तम्' सूत्र की व्याख्या मे पतञ्जलि लिखते हैं—"नहिच्छन्दांसि क्रियन्ते, नित्यानिच्छन्दांसीति, यद्यप्यर्थोनित्यो यात्वसौ वर्णानुपूर्वी सानित्या तद्भेदाच्चैतद्भवति काठक, कालापकं मौदकं, पैप्पलादकम्" अर्थात् मन्त्र बने हुए नहीं हैं मन्त्र तो नित्य है यद्यपि अर्थ नित्य है पर वर्णोंका क्रम अनित्य है। इसीलिए काठक, कालापक शाखाएं बनी हैं। पाठक देखें क्या स्पष्ट वर्णन है अर्थात् पतञ्जलि कहते हैं कि ऋषियों ने अपने शिष्यों का पढ़ाने के लिये कुछ पाठान्त कर लिये किन्तु अर्थ भेद नहीं किया। इन्ही पाठान्तरों के समुदाय का नाम शाखा है, जो कि कठ, चर, मौदक, पिप्पलाद आदि ऋषियों के नाम से मशहूर है, इसीलिये पतञ्जलि ने अथर्व का प्रथम मन्त्र शन्नोदेवी लिखा है जिस पर वेद विरोधी कहते हैं कि पहिले यह वेद इस मन्त्र से प्रारम्भ होता था किन्तु अब "ये त्रिषप्ता." से प्रारम्भ होता है जिससे जान पड़ता है कि वेद बदल गये। पहिले वेद नष्ट हो गये, इसके उत्तर मे पाठकों को स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि वेद कहीं नहीं बदले। यह मन्त्र शन्नोदेवी पिप्पलाद शाखा मे प्रथम पढ़ा गया है। उसीको पतञ्जलि ने लिख दिया है। इन थोड़ी सी पंक्तियों को लिख कर मैं आर्यों से निवेदन करता हूं कि उनका वेदों के स्वाध्याय मे अपने जीवन को लगाना चाहिये, जिससे सारी वैदिक उलझने स्वयं सुलझ जायंगी।

नमोऽस्तु वेदेभ्य·

वेदार्थ-पुनरुद्धारक ऋषि दयानन्द

(ले०—श्री प० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु)

—x—

वेद आर्यजाति की परम पवित्र सम्पत्ति है। उसके आधार पर ही ऋषि मुनियों ने अपनी कृतियो द्वारा सामान्यत संसार मे विशेष तया भारतभूमि में आर्य सस्कृति की आधारशिला स्थापित की, जो संस्कृति अद्यावधि भी उन प्राचीन परम्पराओं को किसी न किसी रूप मे सुरक्षित किये हुये हैं। इस संस्कृति का आदि स्रोत तो वेद ही है जो प्रभु की वाणी है जिसे आदि सृष्टि में परमपिता परमात्मा ने जीवो के कल्याणार्थ अनेक विधि जीवन सामग्री की भाँति ऋषियो के हृदय में प्रकाशित किया, जिसके विषय में महर्षि मनु से लेकर कपिल कणाद तथा जैमिनि पर्यन्त महर्षियो की साक्षी स्पष्ट विद्यमान है। पुराकाल मे ऋषि महर्षि अपने शिष्यों को प्रवचन द्वारा वेदार्थ का बोधन करा देते थे। किसी वेदांग या उपांग की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। प्राणिमात्र के हितचिन्तक इन महर्षियो ने सुहृद् होकर उस प्रवचन को ग्रन्थ रूप में संकलित कर दिया जिससे वेदार्थ ससार से लुप्त न होने पावे। यही ग्रंथ निरुक्तादि वदांग उपांगो के नाम से प्रसिद्ध हुये। यही बात निरुक्त के प्रथमाध्याय के अन्त में यास्कमुनि ने दर्शाई है। यास्क के काल तक यह वेदार्थ प्रवचन की परम्परा द्वारा चलता रहा, पृथक् कोई वेद का भाष्य या व्याख्यान बना हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता, क्योंकि इस प्रकार रचना करने की आवश्यकता ही नहीं थी। ब्राह्मण ग्रन्थ मुख्यतया विनियोजक ही प्रसंगत. व्याख्यान भी करते हैं। व्याख्यान करना इनका मुख्य लक्ष्य नहीं।

वेदार्थ अन्धकार में

यास्क से पीछे बीसवीं शताब्दी पर्यन्त वेदार्थ अंधकार मे रहा, इसमें अत्युक्ति नहीं। समय समय पर कभी कभी प्रकाश की झलक दिखाई देती रही पर वह भी बहुत धीमी। ऐसे ऐसे योग्य आचार्यो के वेदार्थो को लुप्त करने का यत्न किया गया। लुप्त परम्पराओ (Tradition) के प्रकाश मे आने पर ऐसा विवशत: कहना पड़ता है। वेद और शास्त्रो के नाम पर क्या क्या अनर्थ हुए यह उस काल के भाष्यकारो के भाष्यो से जाना जा सकता है। महीधर के गन्दे अर्थ इसका प्रमाण हैं।

'निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते"

का लोकोक्ति के अनुसार सायणाचार्य की तूती सब ओर बजने लगी। यह अवस्था काई सौ वर्ष तक रही। अंगरेजी राज्य के भारत मे आने पर जब विदेशी लोगों ने भारतीयो को अपनी सभ्यता से उदासीन बनाने के अभिप्राय से की उत्तम उत्तम कृतियो को भी दूषित रूप मे, जानकर या न जानकर संसार के सम्मुख रखना आरम्भ किया। तब उनको अपने उद्देश्य की पूर्त्ति में सायणाचार्य ही सब से अधिक सहायक प्रतीत होते हुये। इसलिये उन्होने वेद को सायण प्रदर्शित स्वरूप मे ही ससार के सामने उपस्थित किया। वहीं से सायणाचार्य के वेदार्थ की झूठी धाक जमना आरम्भ हुई। यदि विदेशी स्कॉलर-सायण को इतना सिर पर न उठाते तो इनका भाष्य भी अन्यों की भाँति रहता। सर्व साधारण की दृष्टि में इतना आगे नहीं आता। दूसरे यह भी कारण हुआ कि सायण से प्राचीन वेद भाष्यकारो का नाम तक नहीं लिया (एकाध को छोड़कर) यद्यपि यास्क के पश्चात् वेदार्थ की प्रतिमा बहुत कुछ शिथिल हो चुकी थी; परन्तु फिर भी वेदार्थ की परम्परा (Tradition) अपने वास्तविक स्वरूप मे नहीं तो कुछ विकृत रूप मे तो आ रही थी। उस रही सही वेदार्थ परम्परा को नष्ट करने का श्रेय सायणाचार्य को ही है। शताब्दियो पर्यन्त जनता वेदार्थ क्रिया से गुमराह रही। यहीं तक नहीं अपितु बीसवीं शताब्दी में ऋषि दयानन्द जैसे महा पुरुष के वेदार्थ प्रक्रियो का प्रकाश कर देने पर भी उनका नाम लेलेकर बड़ी बड़ी संस्थाओं के संचालकों—बड़ी बड़ी समाजो के मुख्याधिकारियो तक

की बुद्धियाँ अनार्यशैली तथा अनार्य साहित्य के निरंतर अनुशीलन करते-कराते रहने के कारण दयानन्द का दिव्य ज्योति का दर्शन न कर सकीं। करतीं भी कैसे ! अनार्यशैली से आर्षज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है। बस, ऐसे लोगों ने कहना तथा लिखना आरम्भ कर दिया—

(१) 'सायण का भाष्य जैसा सुसङ्गत–सुसम्बद्ध प्रतीत होता है वैसा दूसरा नहीं। 'स्वामीजी के भाष्य की धाक नहीं बैठती"।

(२) "यह एक सचाई है कि श्री स्वामीजी कृत वेद भाष्य का क्रम सर्वसाधारण की समझ में नहीं आता। यह एक दूसरी सचाई है कि जिन विद्वानों ने इसे देखा है उनके अन्दर इसके सम्बन्ध में उचित श्रद्धा पैदा नहीं हो सकी" यह ध्वनि अनेक रूपों में आर्यजनता के सामने आती रही और इस समय भी कहीं कहीं से आया करती है। यह है आर्य कहलाने वाले कुछ एक विद्वानों के उद्गार, जो आर्यसमाज या उसकी संस्थाओं के मुकट मणि बने हुए है। यह आर्य जनता ऐसे लोगों के कदमों पर गिड़ गिड़ा कर गिरती हुई दिखाई देती है, जिसका परिणाम अत्यन्त हानिकर हुआ और होता रहेगा। प्रामाणिक वेद भाष्य ऐसे कृपालुओं की सहायता से ही तो बन रहा है !!!

सायण की इस धाक ने आर्य कहलाने वाले विद्वानों की बुद्धियों को कहा तक दूषित कर दिया यही दर्शाना हम यहा अभिप्रेत है।

सायणाचार्य को वेदार्थ—

समझ मे भी नहीं आया।

अब हमे इस बात की सप्रमाण विवेचना करना उचित होगा कि श्री०सायणाचार्यको वेदार्थ कहातक समझमे आया सायणाचार्यकेपक्षपाती विद्वानों ने दयानन्दभाष्य पर जो जो आपत्तियाँ की, उनमें सब से बडी आपत्ति यह थी कि— 'खैर और जो कुछ हो सो हो पर "अग्निमीळे पुरोहितम्" आदि वेद मंत्रों मे 'अग्नि' शब्द का अर्थ परमात्मा नहीं हो सकता।" भ्रान्ति निवारण पुस्तक के ६ पृष्ठ पर कलकत्ता ओरियन्टल विभाग के प्रिंसीपल श्री० पं० महेशचन्द्र न्याय रत्न का उठाया हुआ पूर्वपक्ष देख सकते हैं। हेतु वह क्या देते हैं—"क्योकि अग्निशब्द से लोक मे चूल्हे की आग ही लिया जाता है, ईश्वर अर्थ नहीं लिया जा सकता इसमे साक्षी सायणाचार्य की है"। इत्यादि

जब स्वामी दयानन्द ने वेदभाष्य का प्रकाशन किया। सारे भारतवर्ष में एक कोलाहल सा मच गया। स्वामीजी ने आरम्भ से ही अपने वेद भाष्य मे वेद मन्त्रो के अर्थ आध्यात्मिक-आधिभौतिक आधिदैविक प्रक्रियाओ को लेकर किये। सायणाचार्य इन प्रक्रियाओ के विषय मे मौन है। जहा देखो वही यजमान और यज्ञाग्नि की ही भरमार है। भूमिका मे भी जो थोडा सा लिखा वह भी अस्पष्ट सा है। उसका कारण भी उस से पूर्ववर्त्ती भाष्यो का उपस्थित होना ही कहा जा सकता है, जिनका कि उसने नाम तक नहीं लिया।

आचार्य दयानन्द के तीन प्रकार के अर्थ दिखाने पर अनार्ष साहित्य सेवी मस्तिष्क उस पर उपहास (मखौल) करने लगे। पूर्ववर्त्ती विद्वानो विशेषकर सायण से विपरीत होने की दुहाई देकर दयानन्द भाष्य को सर्वथा हेय तथा कपोल कल्पित बताया गया और कहने लगे कि स्वामी दयानन्द सब अर्थ उलटा करते हैं।

स्वामी दयानन्द ने स्पष्ट घोषणा की कि मै तो लगभग तीन सहस्र ग्रंथो को प्रामाणिक मानता हूँ। मेरा भाष्य प्राचीन ऋषि मुनियो के आधार पर है। मै आप लोगो के उलटे किये हुए अर्थ को उलटा अवश्य करता हू"।

सायण से प्राचीन लगभग १०० सौ वेद भाष्यकार

अबसे कुछ वर्ष पूर्व तक एतद्देशीय तथा विदेशी विद्वानो के सामने एक सायण भाष्य ही उपस्थित रहा, परन्तु अब अनेक विद्वानो की निरंतर खोज से (इसका सब से अधिक श्रेय आर्यसमाज के रत्न अद्वितीय वैदिक रिसर्च स्कालर श्री० प० भगवद्दत्त जी लाहौर को है) सायण से प्राचीन लगभग १००सौ वेदभाष्यो का पता लग रहा है जिनमे लगभग बीस वेद भाष्य मिल भी रहे हैं।

उपर्युक्त आध्यात्मिकादि प्रक्रियाओ को लेकर अनेक आचार्यों ने वेद की व्याख्यायें कीं। आचार्य

स्कन्द स्वामी इनमें सर्व प्रथम हैं। नारायन और उद्गीथ भी उनके सहकारी थे, जिनमें नारायन का वेद भाष्य तो अभी तक नहीं मिला। स्कन्द और उद्गीथ दोनों का मिलता है। यह तीनो विद्वान् समाज से लगभग ८०७-९२० वर्ष पूर्व हुये। इन सम्बन्ध में उद्धरण आगे देखें।

आचार्य आत्मानन्द ने अस्यवामीय सूक्त का कितना सुन्दर आध्यात्मिक अर्थ किया है। वेङ्कटमाधव ने अपनी अनुक्रमणी के वेदार्थ सम्बन्ध मे कितने उज्वल विचार आध्यात्मिक सुधा के रूप में तथा वेदार्थ करने वालों को कैसी योग्यता का सम्पादन करना चाहिये इत्यादि मौलिक बातो पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। हरिस्वामी के शतपथ ब्राह्मण भाष्य में भट्ट भास्कर के तैत्तिरीय संहिता ब्राह्मण, आरण्यकों में, औरभरत स्वामीके सामवेद भाष्यमें प्राचीन वेदार्थ पद्धति का उज्वल स्वरूप अनेक स्थलों में भासित हो रहा है।

आज से कुछ वर्ष पूर्व तक दुर्गाचार्य की निरुक्त टीका वेदार्थ का प्रकाश इतना स्पष्ट रीति से करती दिखाई नहीं देती थी पर अब इस उपर्युक्त बहुमूल्य प्राचीन सामग्री के प्रकाश में देखने से अब दुर्ग का वह स्वरूप नहीं रहा अपितु वह भी उपर्युक्त आचार्यों की भाँति अपने काल तक वेदार्थ की उन प्राचीन परम्पराओं से बहुत कुछ परिचित प्रतीत होते हैं।

वेद मन्त्रों में आये 'अग्नि' शब्द का परमात्म' अर्थ हो ही नहीं सकता कहां तो यह विद्वान् कहलाने वालों की धारणा थी और कहां अब सायण से ६०० वर्ष पूर्व प्राचीन वेदभाष्यकार आचार्य स्कन्द स्वामी

यास्क के मत में प्रत्येक मन्त्र का तीन प्रकार का अर्थ

बताते हैं। जैसा कि ऋषि दयानन्द ने अपनी वेद भाष्य भूमिका में स्थापना की तथा वेद मन्त्रों का अर्थ करते हुये पदेपदे दर्शाया। आचार्य स्कन्द स्वामी लिखते हैं—कि निरुक्तकार यास्क मुनि के मत में वेद के प्रत्येक मन्त्र का अर्थ आध्यात्मिक,नैरुक्त, याज्ञिक-और शुद्ध याज्ञिकादि प्रक्रियाओंके अनुसार होता है। तद्यथा—

"सर्वदर्शनेषु च सर्वे मन्त्रा योजनीयाः। कुतः। स्वयमेव भाष्यकारेण सर्वमन्त्राणां त्रिप्रकारस्य विनयस्य प्रदर्शनाय "अर्थं वाच. पुष्पफलमाह" इति यज्ञादीनां पुष्पफलत्वेन प्रतिज्ञानात्" (निरुक्त स्कन्द स्वामिभाष्य भाग ३ पृ० ३५)॥

अर्थात् सब दृष्टियों (प्रक्रियाओं) में सब मन्त्रो का अर्थ करना चाहिये। क्योंकि स्वयमेव भाष्यकार यास्क मुनि ने (वेद के) सब मन्त्रो का अर्थ तीन प्रकार का होता है यह दर्शाने के लिये "अर्थं वाचः पुष्पफलमाह इत्यादि (नि० अ० १) प्रकरण मे यज्ञादिको को पुष्पफल रूप से वर्णन किया है।"

इस विषय के और भी बहुत से प्रमाण सायण से प्राचीन तथा अर्वाचीन भाष्यकारो के ग्रन्थों से दिये जा सकते हैं; परन्तु इस प्रकार के लेखों द्वारा अधिक नहीं लिखा जा सकता।

क्या आचार्य स्कन्द स्वामी के उपर्युक्त लेख को पढ़ कर कोई विद्वान् कह सकता है कि सायणाचार्य को वेदार्थ का स्वरूप समझ में भी आया हो? यदि आया तो इन वादो और प्रक्रियाओं को लक्ष्य में रख कर उसने वेद मन्त्रो का अर्थ क्यों नहीं किया? है इसका कुछ भी उत्तर?

सब मन्त्रों का अर्थ आध्यात्मिकादि सभी प्रक्रियाओं मे होना चाहिये। इस युग में क्या यह ऋषि दयानन्द के मस्तिष्क की उपज नहीं? क्या यह स्पष्ट नही कि सायण से सैकड़ों वर्ष पहिले वेदार्थ की यह प्रक्रिया विद्यमान थी, जिसकी सायण ने जान कर या न जान कर उपेक्षा की। अपने से पूर्ववर्ती भाष्यकारो आचार्य स्कन्द स्वामी, भरत स्वामी, आत्मानन्द, भट्ट भास्करादि अनेक आचार्यों का नाम तक नहीं लिया। क्या इससे वेदार्थ के विषय में उनकी अज्ञता स्पष्ट नहीं? क्या एतद्देशीय तथा विदेशीय स्कालरो या विद्वानों का सायण के पीछे चलना "अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः" नहीं कहा जा सकता? इसमें पक्षपात रहित विद्वान् ही साक्षी हैं।

वास्तविक वेदार्थोद्धारक

ऐसी अवस्था में आचार्य दयानन्द को वेदार्थोद्धारक कहना कदापि अयथार्थ नहीं कहा जा सकता। वेदार्थ करने वालों में किन किन योग्यताओं तथा गुणों का समावेश होना परमावश्यक है इस विषय में हम आचार्य स्कन्द स्वामी के शब्दों में ही लिख कर आगे दुर्गाचार्य का एक स्थल सहृदय पाठकों की सेवा में उपस्थित करेंगे। स्कन्द कहते हैं कि मन्त्रों में आध्यात्मिक ज्योति का प्रकाश किनको हो सकता है—

'तत्राध्यात्मविदस्तावत् सत्मात्र निबद्ध बुद्धय शिथिलीभूतकर्मग्रहग्रन्थया भिन्न विषय भव सक्रम स्थान वैराग्याभ्यासवशाद् समासादित स्थिर समाधयो निरस्त समस्ताधयो निरस्त बाह्य विषयैषणा निरुधान्त करण वृत्तयो निष्कम्पदीपकल्पा दोत्राज्ञ ज्ञान मनना . . ."

अर्थात् वेद मन्त्रों द्वारा परमात्मा का ज्ञान उन्ही को हो सकता है—जिनकी बुद्धियाँ सत्य के ग्रहण करने में तत्पर हों, जिनकी कर्म ग्रह ग्रन्थियाँ शिथिल हो चुकी हों, अभ्यास और वैराग्य से जिनकी सांसारिक विषय वासनाओं की धारा नष्ट हो चुकी हो और जो स्थिर समाधि को प्राप्त हो चुके हों, सम्पूर्ण क्लेशों से रहित हो बाह्य विषयों की वासना जिनकी नष्टहो चुकी हो अन्तःकरण वृत्तियाँ जिनकी नष्ट हो चुकी हों इत्यादि।

सज्जन वृन्द! यह सब विशेषण किस सुन्दरता से महापुरुष दयानन्द में घटित होते है, यह निष्पक्ष विद्वान् स्वयं सोच सकते है।

वेदार्थ का अपूर्व अश्वारोही

वेदार्थ की प्रक्रिया के विषय में एक बहुत उत्तम बात दुर्गाचार्य ने लिखी है—

"तत्रैवं सति प्रतिविनियोगमस्यान्येनार्थेन भवितव्यम्। त एते वक्तुरभिप्रायवशादन्यत्वमपि भजन्ते मन्त्राः। न ह्येतेषु अर्थस्येयत्तावद्धारणमस्ति। महार्था ह्येते दुष्परिज्ञानाश्च। यथाश्वारोहवैशिष्ट्यादश्वः साधु साधुतरश्च वहति, एवमेते वक्तृवैशिष्ट्यात् साधून् साधुतरांश्चार्थान् प्रवहन्ति॥"

"तत्रैवं सति लक्षणोद्देश मात्रमेवैतस्मिञ्छास्त्रे निर्वचनमेकैकस्य क्रियते। कचिच्च आध्यात्मिकाधियज्ञोपदर्शनार्थम्।

'तस्मादेतेषु यावन्तोऽर्था उपपद्येरन् आधिदैवाध्यात्माधियज्ञाश्रया सर्व एव ते योज्याः। नात्रापराधोऽस्ति॥"

(२) ईदृशेषु शब्दार्थन्याय सङ्कटेषु मन्त्रार्थ घटनेषु दुरवबोधेषु मतिमतां मतयो न प्रतिबहत्यन्ते, वयं त्वत्रैतावदत्रावबुध्यामहे॥" पृ० ६२४

अर्थात् ऐसी अवस्था में विनियोग के भेद से इसका भिन्न भिन्न अर्थ होगा। सो यह वेद मन्त्र वक्ता के अभिप्राय भेद से भिन्नार्थ को भी प्राप्त हो जाते हैं।

इसमें घबराने की कोई बात नहीं है।

मन्त्रों का बस इतना ही अर्थ है, इसकी कैद नहीं लगाई जा सकती। यह मन्त्र महान् अर्थ वाले हैं। अत्यन्त ही दुष्परिज्ञान (बड़े ही परिश्रम क्रियायोगादि की शक्ति से जाने जा सकते है)॥ जैसे अश्वारोही (घुड़सवार) दो के भेद से घोड़ा अच्छा-बहुत अच्छा-बहुत ही अच्छा चलने लगता है। इसी प्रकार वक्ता जितना अधिक योग्य और तपस्वी होगा उसके दर्शाये वेदार्थ से भी उतने ही अधिक साधु—और साधुतर अर्थों का प्रकाश होगा। आजकल के वेदभाष्यकार कहलाने वाले महानुभाव इससे बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

सायण का अश्वारोहण (सवारी करना) स्कन्द स्वामी आदि की अपेक्षा कितना भिन्न था, यह संक्षेपत दर्शा चुके है। स्कन्द ने (यद्यपि वह भी प्रवाह से बच नहीं सके तथापि) अपने समय तक की परम्पराओं (Traditions) को किसी अंश तक सुरक्षित रखा। सायण की दृष्टि वहाँ तक नहीं जा सकी। इसके परिणाम स्वरूप वेदार्थ का परिणाम (Standered) हीन (Low) होता चला गया। उसकी रही सही आभा (अब) तदनुवर्ती एतद्देशीय तथा विदेशीय विद्वानों-स्कालर कहलाने वालों ने नष्ट करदी। कारण वही 'निरस्तसमस्ताधयो'... " इत्यादि गुणों का अभाव॥ उपर्युक्त गुणों से युक्त

होने का सौभाग्य इस युग में दयानन्द को ही प्राप्त हो सका। यह बात हमारे उपर्युक्त लेख से विदित है।

सामान्यतया लोकानुसारतो यही है कि काई "क्या कहते हैं" इसका ही विचार किया जाना है, न कि "कौन कहता है"। परन्तु वास्तविक बात यह है कि "कौन कहता है" और "क्या कहता है" इन दोनो बातों को ही देखने की परमावश्यकता है।

देश-नेत्री श्रीमती सरोजनी नायडू के खद्दर के वस्त्र धारण करने पर "तुम बहुत सुन्दर प्रतीत हो रही हो" महात्मा गाँधी के यह शब्द पापी से पापी के मन मे भी पवित्रता का संचार करते हैं। कोई भी इन शब्दो मे स्वप्न मे भी दुर्भावना का विचार नही कर सकता। परन्तु यदि यही शब्द एक कामी या हीन चरित्र व्यक्ति किसी परस्त्री – माता-देवी के प्रति प्रयुक्त करता है, तो संसार में कोई भी इनसे पवित्र भावना की कल्पना नहीं कर सकता।

पवित्रात्मा दयानन्द के शब्दों में चाहे वह व्याख्यान रूप हो या सामान्य पुस्तक रूप—या वेद-मन्त्रो का काव्य—यह पवित्रात्मा सर्वत्र दृष्टिगोचर होगी। यह उनकी भिन्न भिन्न कृति से ज्ञात हो रहा है। इस आभा को पचासो मिलकर भी कैसे प्रकाशित कर सकते हैं। जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं। किसी भी संसारी प्रवाह में लोकैषणा के वशीभूत पदे पदे गिरावट में फंसते रहते हैं। धन के वशीभूत अपनी अन्तरात्मा को बेच तक देने में संकोच नही करते। स्वयं वेद पर विश्वास नहीं। ऋषि-मुनियो का मार्ग उनको निस्सार प्रतीत होता है। पर यह सब कहने को तय्यार नहीं। पूछने पर हाथ भी जोड़ दें, हम तो सब मानते हैं। ऐसे सैकड़ों आत्मघाती विद्वान् एकत्रित कर देने पर भी वेदार्थ का गौरव संसार में बैठेगा, यह स्वप्न से अधिक नहीं कहा जा सकता। वोटिङ्ग से कहीं वेद भाष्य हुआ करते हैं। अतः पहिले अपने विद्वानों की व्यवस्था ठीक करो। वेदार्थ की मौलिक बातों (Fardanental Prıı cıp ls)पर पूर्ण विचार करने के लिये कम से कम सप्ताह-दो सप्ताह विचार करने की योजना करा,तभी कुछ व्यवस्था बन सकेगी।

जिस याज्ञिक प्रक्रिया को लेकर सायणाचार्य ने इतना कुछ लिखा उसका भी स्वरूप उसने कहां तक समझा, यह बात भी अभी साध्य कोटि में ही समझनी चाहिये। सम्प्रति इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि याज्ञिक प्रक्रिया में भी सायण ने भारी भूलें की हैं जो कभी अवसर आने पर ही दर्शाई जा सकेगी।

भूल कर जाना बड़ी बात नहीं। मनुष्य संसार मे भूलनहार ही तो है, परन्तु सायण के भाष्य की झूठी दुहाई देकर दयानन्द की दिव्य ज्योतिः को मेघाच्छादित करने का व्यर्थ प्रयत्न आर्यसमाजी नामधारी विद्वान् कहलाने वालो द्वारा भी कहीं कहीं दृष्टिगोचर होता है। अत: हमें विवशत: ऐसा कहना पड़ता है। गुण ग्राही होना तो प्रत्येक के लिये उचित है। परन्तु यह भी तो न हो कि गुण ग्रहण के बहाने लोगो को कुमार्ग पर डाला जावे।

आर्य बन्धुओ ! दयानन्द का अध्ययन शुद्ध मस्तिष्क से करो। उस महापुरुष के दर्शाये मार्ग का अनुशीलन करो वेद या दयानन्द के नाम पर संसार को धोखा मत दो "वेद प्रचार के नाम पर मिथ्या प्रचार मत करो। अधिकारो के लिये कनवेसिंग (पार्टियाँ बनाना और झूठा आन्दोलन करना) रूपी पिशाचिनी के उपासक मत बनो। आचार निष्ठा विद्वान् ब्राह्मणो (गुण कर्म से न कि जन्म से) का आश्रय लो, जो केवल तुम्हारी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाने वाले न हों, अपितु तुमको समय पड़ने पर हित की दृष्टिसे कान से पकड़ करभी सीधे रास्ते पर ला सकें। गुलाम उपदेशक-ब्राह्मण-जाति की दासता को तीन काल में दूर नही कर सकते।

देखना ! वैदिकता के नाम पर अवैदिकता का ही विस्तार और प्रचार न कर बैठना जब ऐसी व्यवस्था हम लोग कर पायेंगे तभी दिव्यज्योतिः दयानन्द का सच्चा दर्शन हमें प्राप्त होगा।

संसार को भावी उथल पुथल में आर्य समाज या आर्य भाई अपने शुद्ध आचार-व्यवहार-वेद का स्वाध्याय-आर्य ज्ञान का अनुशीलन-दृढ़ संकल्प परिवारो मे विषय वासनाओं के राज्य को नष्ट कर शुद्ध आर्य जीवन द्वारा संसार का नहीं तो भारत का ही भविष्य निर्माण कर सकते हैं। ऐसी आशापूर्ण दृष्टि आर्य समाज ही की ओर लग रही है। देखें इस में आर्य समाज कहाँ तक उत्तीर्ण होता है। —

सच्चा आर्य

(ले०—श्री शोभाराम धेनुसेवक कविरत्न)



विश्व प्रेम ही जिसके दुर्लभ जीवन का आधार हुआ।
स्वार्थ व्यक्तिगत रहा न जिसका वसुधा ही परिवार हुआ ॥
मनुजमात्र हैं एक भेद—भावों को जो ठुकराता है।
वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥१॥

मानव होकर जो मनुजो पर दिखलाता है प्यार नही।
दानव है वह मनुज कहाने का उसको अधिकार नही॥
वही धन्य नर जो दलितो को देकर मान उठाता है।
वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥२॥

है जग की कल्याण-कामना जहां क्लेश का नाम नहीं।
विश्व प्रेम के राम राज्य में राग द्वेष का काम नही ॥
प्रवर पुजारी विश्व-प्रेम का जग को पाठ पढ़ाता है।
वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य्य कहाता है ॥३॥

मैं शासक हूं तू शासित है मैं ऊँचा तू नीच करे।
मैं स्वतंत्र तू पराधीन है जहां भाव ये गरल भरे—
पहुंच न पाते, जिसके उर से दम्भ द्वेष धा जाता है।
वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥४॥

ईश पुत्र है सभी विषमता लखना इन के बीच नही।
हैं समान अधिकार सभी के कोई ऊँचा नीच नहीं ॥
समता का ये भाव सुधामय जहां सुधा सरसाता है।
वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥५॥

विश्व भलाई करने में जो आत्म भलाई लखता है।
सभी सुखी संवर्द्धित हो ये ध्येय सामने रखता है ॥
दुखी न दुनियां मे कोई हो सब का भला मनाता है।
वही विश्व मे वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥६॥

उर उदार हो मनुज परस्पर नही संकुचित दृष्टि बने।
भीषणता यह हटे, स्वर्गसी शान्ति सौख्यमय सृष्टि बने ॥
जीवन देकर जो दुखियो के जीवन धन का त्राता है।
वही विश्व में वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥७॥

नहीं विषमता की ज्वाला से शान्ति जगत की दग्ध बने।
मानव जीवन को सुख देकर मानव जीवन मुग्ध बने ॥
नर की सेवा करने में जो नारायण को पाता है।
वही विश्व में वन्दनीय हो सच्चा आर्य कहाता है ॥८॥

———:———

* वेदों और पुराणों के विषय *

(लेखक—'श्रीपद' शान्तिभिक्षुजी त्रिशूली)

यं विदुर्नियत नैते देवा दिव्यविभूतयः ।
वन्दे तं सच्चिदानन्दशरीरमशरीरिणम् ॥ १ ॥
विद्यावाचस्पतिं वन्दे श्रीगुरुं मधुसूदनम् ।
श्रद्धाऽभून्मे यमाश्रित्य श्रुतीनामर्थगौरवे ॥ २ ॥
वेदे च ये पुराणे च विषया मूलमादृताः ।
ते संगृह्यात्र दृश्यन्ते प्रीतये शेमुर्षाजुषाम् ॥ ॥

आर्य जाति के साहित्य में सर्व प्रथम स्थान वेदों का है तदनन्तर पुराणो का। इन वेदो और पुराणो मे किन किन विषयो का प्रतिपादन है इस बात को जानने की मेरे हृदय में बड़ी लालसा थी । मै यह जानकर कि पूज्यपाद श्री० ब्र० मधुसूदनजी के यहाँ वेदो की रहस्यमयी चर्चा हुआ करता है सुनने के लिये उत्सुक होने लगा। कईबार जाने का विचार किया, पर हिम्मत न पड़ी। अन्त मे उत्कटाभिलाषा के कारण जाही पहुँचा, और अन्तेवासित्व प्राप्त्यर्थ प्रार्थना की। उन्होने विद्या-चर्चा मे आने की आज्ञा दी। मै जाने लगा। यद्यपि मुझे प्रशस्त पण्डितजी का शिष्यत्व अब तक प्राप्त नहीं हो सका है, फिर भी यह आशा है कि यदि मुझे वह सौभाग्य मिल सके, तो वेदों का रहस्य जन समुदाय को अवगत हो सकेगा और प्रशस्त पंडितजी का स्वाध्यायश्रम शीघ्र ही फलीभूत होकर संसार में एक स्थायी प्रभाव समुत्पन्न करेगा। अस्तु! एकबार बार्तालाप के प्रसंग में मैंने वेदो और पुराणो के विषय के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रकट की। उन्होने उस पर जो बतलाया उसी को स्मृति के सहारे लिखकर 'आर्यमित्र' के पाठको को उपहृत कर रहा हूं।

वेदो के विषय को समझने के लिये सर्व प्रथम दो शब्दो पर ध्यान देना चाहिये। वे दोनो शब्द हैं अग्नि और सोम। यह दोनो शब्द यद्यपि शिक्षित समाज से अपरिचित नहीं हैं तो भी इनसे जिस अर्थ का बोध होता है वह अर्थ वेद भाषा में व्यवहृत 'अग्नि और सोम' के अर्थ को पूरा नहीं कर सकता। लोक में अग्नि शब्द प्राय उष्णस्पर्श-युक्त द्रव्य-विशेष के लिये तथा सोम शब्द चन्द्रमा के लिये व्यवहृत होता है। परन्तु वेद में इन दोनो का बहुत विस्तृत अर्थ होता है। इसी विस्तार के कारण ही हमारे यहाँ आचार्यों ने जगत् का स्वरूप ही अग्नि-सोममय बतलाया है। जिसका तात्पर्य यह है कि संसार के सभी पदार्थों का यदि रासायनिक विश्लेषण Chemical analysis किया जाये तो उनमें दो तत्त्व मिलेंगे एक अग्नि और दूसरा सोम। यह अग्नि और सोम क्या है इसका निर्णय करने के लिये एक ऐसे पदार्थ पर ध्यान डालिये, जिसे क्रमश उत्पन्न स्थिर तथा लीन होना है। सरल एवं लौकिक होने के कारण वृक्ष की उत्पत्ति स्थिति लय का निरीक्षण कीजिये। जब हम बीज को पृथिवी में गाड़ देते हैं तो पार्थिव अग्नि बीज में प्रविष्ट होकर उसके आकार—परिवर्तन का कारण बन जाता है। अब यहाँ पर आप देखे तो मालूम होगा कि बीज मे स्थित सोमांश अग्नि से बिखरने लगता है—भक्षित होने लगता है। इस प्रकार भक्षक अग्नि तथा भक्ष्य सोम के युद्ध का परिणाम यह होता है कि अंकुर रूप तीसरा पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। फिर भी यह लड़ाई बन्द नहीं होती यहाँ तक कि अंकुर बढ़ते बढ़ते वृक्ष हो जाता है। और वृक्ष भी वृद्ध वृद्ध होते होते एक दिन सूख जाता है। वृक्ष की इस प्रकार की उत्पत्ति, वृद्धि और क्षय का क्या कारण है? सरल शब्दो में यदि हम इसका उत्तर दें तो कह सकते हैं कि—'अग्नि और सोम' का विशेष अनुपात ही (किसी पदार्थ का) उत्पादक, वर्द्धक और नाशक है। इस अनुपात को यों समझिये कि—जब वृक्ष शैशवावस्था में होता है तब उसे अपने स्वरूप को बनाने के लिये जितना जलादिरूप सोमांश मिलता है वह उसे संग्रह कर लेता है। उस समय उसके शरीर से अत्यल्प सोम भाग बाहर निकला करता है। तात्पर्य यह कि शैशवावस्था मे वह जितनी शक्ति व्यय करता है उससे अधिक सञ्चित कर लेता है।

पर यौवनावस्था में यह बात नहीं रहती वह जितना समृह करता है उतना ही—फल पुष्पादि द्वारा दूसरा को दान भी कर देता है। यह अवस्था समता की होती है। इसमे न तो वृद्धि होती है न क्षति। पर ज्यो ज्यो वृक्ष वृद्ध होने लगता है त्यो त्यो उसमें समृह शक्ति कम होने लगती है पर व्यय जारीरहता है। इसी लिये एक दिन उसे क्षीण हो जाना पड़ता है।

इस प्रकार ज्ञात हुआ कि—अग्नि और सोम का विशेष अनुपात ही सृष्टि स्थिति और लय का हेतु हुआ करता है इस अग्नि और सोम ही से ससार व्याप्त है ससार मे जो कुछ है वही वेद के वर्णन का विषय है। एव अग्नि सामात्मक विषय भेद से य दि वेद विभक्त किया जाये तो उसके दो भेद होगे। एक अग्नि वेद और दूसरा सोम वेद।

अब देखना है कि अग्नि वेद अर्थात् वेद का वह विभाग जिसमें अग्नि का वर्णन है कौन है। यहा पर यह बतलाना आवश्यक है कि हमारे यहा ग्रन्थों की यह शैली है कि वह आरम्भ में विषय को बतला या करते हैं तथा यथासम्भव ग्रन्थ का प्रयो जन ग्रन्थ पढ़ने के अधिकारी आदि की चर्चा कर दिया करते हैं इस रीति पर ध्यान देकर ऋक्, यजु और साम इन तीन वेदो के प्रारम्भिक मन्त्रो पर निगाह डालिये। वे मन्त्र यह हैं—

१—अग्नि मीले (ळे)। ऋक्॥

२—इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो व सविता। यजु॥

३—अग्न आयाहि। साम॥

इन मन्त्रों में प्रथम और अन्तिम मन्त्र अग्नि विषयक हैं इस बात का अनुमान (अग्नि) शब्द देखकर और साधारण अर्थ समझ कर ही होजाता है। दूसरे मन्त्र में यद्यपि अग्नि शब्द नहीं है पर सविता शब्द है। सविता (सूर्य) भी अग्नि ही है। एवं उपर्युक्त तीनो वेद अग्नि के प्रतिपादक हैं।

पृथिवी अन्तरिक्ष और द्यौ इन तीन स्थान भेदो से अग्नि के तीन प्रकार है। एक एक प्रकार का एक एक वेद में वर्णन है। मुख्यतया ऋक् में पार्थिवाग्नि का, यजु में अन्तरिक्षाग्नि का साम में दिव्याग्नि का तथा गौणतया तत्सम्बन्धी विषयो का कहीं सक्षेप स कहीं विस्तार से विवेचन है।

यह अग्निवेद का वर्णन हुआ। अब सोम—वेद पर निगाह डालिये। अथर्व वेद ही सोम वेद है। सोम के चार प्रकार हैं। प्राण, पवमान, मातरिश्वा और सविता अग्नि वेद में भो सोम का पर्याप्त वर्णन है। फिर भी अथर्व वेद का सृजन क्यो हुआ यह 'अथर्वा' शब्द से मालूम होता है। इसका अर्थ है—'अथ अर्वाक् किञ्चिदवशिष्यते।' तात्पर्य यह कि—सोम के चार प्रकारों से अतिरिक्त भी कोई विशेष सोम तत्व शेष रह जाता है। उसका ही विशेषतया वर्णन होने के कारण सोमवेद अथर्व वेद कहलाता है। इस अथर्व तत्व से ही वनस्पति जगत जीवित रहता है। वनस्पति शास्त्र और आयुर्वेद विद्या का भी यही मूल है। अथर्ववेद का आयुर्वेद स कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह विद्वानों से छिपा नहीं है।

वेदो के विषय का अति सक्षेप से वर्णन हो चुका। अब पुराणो के विषय पर निगाह डालिये। पुराणो के विषय में बड़ा मतभेद है। कुछ लोग पुराणो का सर्वथा हेय समझते हैं। पर बात यह नहीं। पुराण अपने सच्चे स्वरूप से उपादेय हैं। परतु उनका इस समय जो हीन रूप है वह कथावाचकों की कृपा का फल है कि जिन्होंने अगणित काल्पनिक कथाओं का प्रक्षेप करके उनके वास्तविक रूप को बिगाड़ डाला है। अस्तु।

पुराणो म वर्णित विषयो का यदि वर्गीकरण किया जाय तो वह पांच भागों मे विभक्त होते हैं। क—पहिला भाग सृष्टिवाद है। इसमें ससार की उत्पत्ति जैसी हुई इसका निरूपण है। इस सृष्टि विज्ञान के प्रतिपादक छ पुराण हैं। १—ब्रह्म, २—पद्म, ३—विष्णु, ४—वायु, ५—देवी भागवत, ६—नारद। ख—दूसरा भाग मतवाद है। इसमें सृष्टि विषयक आचार्यों के मतभेदों का निरूपण है। इसके प्रतिपादक चार पुराण हैं। १—मार्कण्डेय,

आत्मबल बढ़ाने का सर्वोत्कृष्ट साधन

(ले०—मा० दुर्गाशंकरजी नागर सम्पादक "कल्पवृक्ष")

विश्व प्रचारक प्रसिद्ध मानसोपचारक एमीली कुई शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक उन्नति के लिये एक बहुत सरल सूत्र बतलाते हैं और उनका कथन है कि इसका नित्य प्रातःकाल तथा सांयकाल बीस बार चिंतन करने से मनुष्य अपने जीवन में एक विलक्षण उन्नति कर सकता है। वह सरल सूत्र निम्न लिखित है।

Day by day in every way I am getting better and better दिन प्रतिदिन मैं सर्व प्रकार से उन्नति कर रहा हूँ।

साधारण लोगो को यह आत्म-सूचना निरी कल्पना मालूम होगी किन्तु इसमे बड़ा रहस्य है। इस मानस-शास्त्र के तत्व को चाहे जो आजमा सकता है।

किसी काम को "मैं नहीं कर सकता" इस तरह थोड़ी देर तक अपने आपको उत्तेजन (प्रेरणा) देते रहो। अपने आपको कहते रहो और तुम देखोगे कि तुम्हारी सारी क्रिया-शक्ति नष्ट होती हुई मालूम देगी। शरीर ढीला पड़ जायगा, कुछ आगे झुकने लगेंगे, पांव लड़खड़ाते लगेंगे, सारा शरीर निर्बल और कमजोर मालूम होने लगेगा और मन गिरी हुई दशा मे प्रतीत होगा।

अब तुम किसी कार्य के लिए 'मै कर सकता हूँ" (I can) अपने आपको आत्म सूचना (Suggestion) दो। इसके प्रभाव से तुम्हारा सिर ऊपर उठा हुआ होगा, कन्धे पीछे झुके हुए होगे, फेफड़े बराबर दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेते हुये काम करते रहेंगे और पांव मजबूती से जमीन पर जमे हुये होंगे।

सारांश यह है कि आत्म-सूचना मनुष्य-जीवन का कोचवान है यदि तुम्हारा कोचवान शुभ संकेत (शिव सकल्प) हो तो तुम्हारा जीवन सुख शांति और आनन्द से बीतेगा। इसलिये किसी भी काम को "मै नही कर सकता" ऐसा कदापि न कहो। कठिन से कठिन कार्य को मैं कर सकता हूं—ऐसा कहो, तुम उन्नति के उच्च शिखर पर पहुंच सकोगे। मैं कर सकता हूं (I can) इस संकेत को नियम पूर्वक निरन्तर चिन्तन करने से मनुष्य अपने आपको अपने अधिकार में रख सकता है। प्रत्येक मनुष्य का जीवन उसके विचारों से बनता है, मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है। वर्तमान काल की नवीन खोज से पता लगा है कि रोगो की जड़ शरीर में नहीं, बल्कि मन मे और भावों में रहती है। जब तक इन दोनों की शुद्धि नहीं की जाय रोग कदापि निर्मूल नहीं होते केवल शरीर की आरोग्यता ही पूर्ण आरोग्यता नहीं

२—अग्नि, ३—भविष्य, ४—ब्रह्मवैवर्त। ग—तीसरा विभाग अवतार वाद है। इसमें प्राकृतिक विज्ञानमयी बिभूतियो का निरूपण है। इसके प्रतिपादक ६ पुराण हैं। १-लिंग, २-वाराह, ३-स्कन्द, ४-वामन, ५-मत्स्य ६-कूर्म। घ—चौथा भाग आयतिवाद है। इसमें मरने से बाद (उत्तर काल मे) क्या होता है इसका निरूपण है। इसका प्रतिपादक एक ही गरुण पुराण है। ङ—पांचवा भाग आयतन वाद है। इसमें सृज्यमान जगत् के आधार का निरूपण है। इसका प्रतिपादक ब्रह्मांड पुराण है। इस प्रकार अठारह पुराण उपर्युक्त पांच भागो में विभक्त है।

यह वेदों और पुराणों की संक्षिप्त विषय चर्चा है। ऐसा सुन्दर वर्गीकरण वेद विषयक बहुत से निबन्ध; तथा देवता आदि के प्रपञ्च तथा वेद भाष्यादि का अवलोकन करता हुआ भी मैं नहीं कर सकता था यह केवल गुरु का प्रसाद है। आशा है यह लेख कलेवर में परम लघु होता हुआ भी पाठकों को मुग्ध करेगा।

—— ——

है। शरीर मन और आत्मा तीनो की स्वस्थता ही पूर्ण आरोग्यता है। प्रत्येक कल्पना जो तुम्हारे हृदय मे उठती है, उसमे विद्युत् की सी प्रचण्ड शक्ति विद्यमान है केवल दृढ़ कल्पना शक्ति के प्रभाव से ही तुम अपने मे अद्‌भुत परिवर्त्तन कर सकोगे। जब तुम शारीरिक व्यायाम कर रहे हो, उस समय अपने मन की एकाग्र वृत्तियो को शक्ति पर ही केन्द्रित् करो और दृढ़ कल्पना करो कि तुम बल पूर्वक व्यायाम कर रहे हो। शरीर के जिस किसी अंग का व्यायाम करो उसी भाग पर दृढ कल्पना करो कि उस भाग मे बड़े वेग से रुधिराभिसरण होने लगेगा और वह भाग बलिष्ट और पुष्ट होगा।

अपने हाथो को धीरे धीरे शिर के ऊपर ले जाओ और साथ ही साथ यह कल्पना करो कि कोई भारी वजन ऊपर उठा रहे हो और फिर उसी भावना से हाथो को अपने स्थान पर ले आओ दस बीस वार यह मानसिक व्यायाम करो। इससे तुम्हारे भुज दण्ड बनने लगेंगे और तुम्हे भावना शक्ति का आश्चर्य जनक प्रभाव मालूम देगा।

कल्पना करो कि तुममे अपूर्व मेधा शक्ति, स्मरण शक्ति, धारणा शक्ति, प्रतिभा शक्ति, अत्यन्त तीव्र है और धीरे धीरे तुम बुद्धिमान और तेजस्वी बनने लगोगे।

जब तुम अपने विचारों की धारा को अन्दर गहरे मे उतारोगे और जब तुम्हारे बाह्य जागृति के सब विचार वन्द हो जायेंगे तब तुम्हारे अन्तर मन मे विलक्षण स्फुरणा होगी। मानस बल और आत्मिक बल मे जागृति करने की वैदिक मन्त्रों मे अपूर्व शक्ति है। आत्म बल बढ़ाने के लिये महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने प्राणायाम संध्या और अग्निहोत्र को नित्य नियमित रुप से करने के लिये विशेष जोर दिया है। जितने बड़े लोग हुये है सब ने प्राणायाम के अभ्यास को आवश्यक बतलाया है।

दीर्घ श्वास प्रश्वास या प्राणायाम से रुधिर शुद्ध होता है, आरोग्यता प्राप्त होती है रोगोका नाश होता है। संध्या से एकाग्रता बढ़ती है बुद्धि सामर्थ्य बढ़ती है और अग्निहोत्र से जीवन मे शान्ति प्राप्त होती है जिस समय मनुष्य मन को एकाग्र करके संध्या करता है तो मन्त्रो का प्रभाव उस पर अप्रतिहत होता है, मन के संस्कार शुद्ध होते है अधम वासनाओ पर विजय प्राप्त होती है और शुभ सकल्पा का उदय मन मे होने लगता है और वैदिक मन्त्रों के प्रतिदिन अनुष्ठान से हमारे चित्त का संसर्ग ऋषि जीवन से होता है।

मनुष्य एक बडा चुम्बक है, उसके स्थूल शरीर का सम्बन्ध पृथ्वी से है। चन्द्रमा का सम्बन्ध चित्त से है और चन्द्रमा का प्रभाव चित्त द्वारा मस्तिष्क मे आता है। सूर्य्य का सम्बन्ध आत्मा से है और उसका प्रभाव हृदय द्वारा होता है जिस प्रकार के परिणाम सूर्य्य के उदय और अस्त पृथ्वी मे होते है वैसे ही परिणाम शरीर मे भी होते है। प्रात. साय सन्धिकाल मे अपनी चेतना शक्ति को जाग्रत करके कोई मानसिक अनुष्टान करेगा उसके जीवन मे विलक्षण उन्नति होगी और मस्तिष्क की सुप्त शक्तिया जाग्रत होगी और तीनो चेतनाये शुद्ध होगी। स्थूल मे कार्य करने वाली चेतना भौतिक कहाती है सूक्ष्म मे कार्य करने वाली चेतना मानसिक कहाती है और स्थूल सूक्ष्म से सम्बन्ध रखने वाली आत्मिक या आध्यात्मिक चेतना कहाती है।

इन तीनो वृत्तियो को एक करने के लिये महर्षि दयानन्द जी ने (१) प्राणायाम (२) संध्या (३) अग्निहोत्र और स्वाध्याय इन साधनो को अनिवार्य बतलाया है। प्राणायाम से शरीर बलवान होता है। सध्या से मन शुद्ध और शिव संकल्प वाला होता है और अग्नि होत्र और स्वाध्याय से आत्मानुभूति प्राप्त करना है। जिससे स्वस्थ्य और बलवान शरीर से शान्त और शुद्ध मन से आत्मा की शक्ति की ओर गति पाता है उस समय तीनो चेतनाये शुद्ध होकर मनुष्य पूर्णतया लाभ करता है और जीवन को आनन्द मय बनाता है।

मानस शास्त्र का सिद्धान्त है कि Suggetion gives strength by Repeatition सूचनाये बार बार दुहराने से बलप्रद होती है इस लिये संध्या के समय वैदिक मन्त्रो को एकाग्र मन से अर्थ

दीपावली का संदेश

(ले०—श्री मदनमोहनजी विद्याधर)



जब संसार के सम्पूर्ण प्राणी दीपावलि के परम पवित्र तथा महत्त्वपूर्ण अतीत के गौरव के मूर्त रूप इस त्यौहार को मना रहे थे, कोई हंस रहा था, कोई उछल रहा था, वृद्ध युवा बाल स्त्री पुरुष सभी के हृदय आनन्द से प्लावित और नवीन उमंग से

सहित चिंतन करने से जिस भावना का मन्त्र हो वे संकेत तुम्हारे रुधिर तक पहुँच जायेंगे। और तुम्हारी चेतनता मे संकेत (Suggetion) या मन्त्र का विलक्षण फल प्रकट होगा नमूने के लिये एक वैदिक मन्त्र दिया जाता है:—

ओ३म् तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।
वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ॥
बलमसि बल मयि धेहि ।
ओजोऽस्योजो मयि धेहि ॥
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि ।
सहाऽसि सहो मयि धेहि ॥

यह इच्छानुसार कोई मन्त्र चुन लो और उसका चिन्तन करो या निम्न लिखित संकेतो को एकाग्र मन से पन्द्रह मिनट प्राणायाम के साथ दुहराओ।

'मैं शक्ति हूं' मेरे शरीर व आत्मा में शक्ति का प्रवाह संचार कर रहा है, मैं आरोग्य हूं मेरे शरीर मन और आत्मा में आरोग्यता का प्रवाह बह रहा है। मैं आनन्द हूं मेरे शरीर, मन और आत्मा मे आनन्द का अखण्ड प्रवाह बह रहा है।

एकाग्रता सम्पादन करना ही उसकी एक मात्र कुंजी है, किसी भी तरह एकाग्रता सम्पादन करने का प्रयत्न करो। और फिर जो कुछ भी तुम्हे करना या होना चाहोगे वही हो जाओगे यही सफल जीवन का रहस्य है। साधन में बड़ी शक्ति है और वैदिक मन्त्रों का मनन आत्म शक्ति बढ़ाने के लिये सर्वोत्कृष्ट साधन है।

भरे से प्रतीत होते थे, तब मैं विषाद से गम्भीर मुख बनाए ऊपर छत पर टहलने को निकला। आशा थी मेरे अन्धियारे हृदय को दीपक उजियाला देंगे और मुझे शान्त बनाने के लिये ठण्डी बयार मुझे पखा झलेगी। संसार हंसी के फूलो मे था अकेला मैं ही विषाद की भंवर में चक्कर खा रहा था। थक कर मैं बैठने का ही था कि दीपकों की तड़फड़ाहट ने मेरा ध्यान अपनी ओर खींचा। मैं उन दीपकों की रखवाली पर हो गया जो निर्दय वायु के झोंको की लपेट में आ चुके थे या उसके अदृश्य प्रहारो को किसी तरह झुक झुक कर मानों उसे प्रणाम करते हो, सह रहे थे। हवा का झोका आता, थोड़े से दीपक मौत के मुख मे चले जाते। मैंने सोचा इन पर भी असंख्यों पंतगो ने अपना बलिदान कर दिया, क्या यह भी किसी पर बलिदान होते हैं। जी घृणा से भर गया पर क्या निरर्थक बलिदान होने वाले इन निरपराध सुन्दर दीपकों को हत्या देखना भी मेरे बस से बाहर था।""""नीचे प्रागण में पटापट पटाको का शब्द उठ रहा था। और मेरा हृदय वेग से धड़क रहा था। झुंझला कर हवा के झोंके से पूछा—

"यह निर्दयता कैसी ? निरपराधों का बलिदान!

"यह परख है। जो उत्तीर्ण होंगे, वे ही जलने योग्य समझे जावेंगे।" उसने अपेक्षा से कदम बढ़ाते हुए कहा।

मै अपना सा मुख लिये पहरे पर से उठ आया और अपने आप पर पहरा देने लगा। पर दिल कैद से भाग निकला और दीवार की ओट में सुरक्षित स्थिरता से लौ उठाने वाले दीपक के पास जा बैठने को कहने लगा। मुझे देख कर पहिले वह अकड़ा, फिर मानों झुक कर प्रणाम किया और

हँस पड़ा। क्रोध तो आया पर जामे में ही रहते हुए पूछा:—

"ऐसी हँसी क्यों ? यह प्रसन्नता कैसी ?

"मै राम की आरती के लिये चुना गया हूँ। मुझे आनन्द है, मेरे खिलखिलाने का कारण यही है।"

अगले ही दिन उसे ऋषि की समाधि पर समाधिस्थ, मौन साधे, शान्त, मस्ती मे झूमते पाया। मुझे आया देख वह फिर हँसा खिलखिलाया।

"क्यो आज यह खुशी कैसी ?" पूछा,

"मैं ही ऋषि की कब्र के लिये चुना गया हूँ। मैं संसार को सत्य का मार्ग दिखाने वाली ऋषि की ज्योति हूँ, जो मूर्त रूप धर, यहां उपस्थित हूँ। अखिल विश्व के भवसागर से परित्राणार्थ प्रकाश स्तम्भ हूँ।" उसने अपनी उसी पूर्व मुसकराहट के साथ उत्तर दिया।

मैंने देखा वही लाखो की संख्या मे पतंग गिरे पड़े थे। झट पूछा—

"तो क्या अपने पर दीवाने परवाने की मौत पर भी तुम्हारा हास्य प्रवाह चलता है ?

मुझे छल करते देख वह तन कर खड़ा हो गया बोला—

"ज्योतियाँ किसी से फँसा नहीं करती। यही देख मैं इनके पागलपन पर हँसता हूँ। वह फिर उसी प्रकार स्थिर हो गया।

तो क्या हँसते ही हँसते अपना जीवन बिता दोगे ? जरा रोकर तो देखो। उसमे भी आनन्द है। मीठा दर्द है दूसरों के दुःख पर ही एक आध आँसू ……… …।" उसने बीच ही मे सिर हिला दिया। फिर अपना सिर उठा कर बोला—"सुख और दुःख में समान रहना ही मेरा स्वभाव है। आनन्द बेला में सुमधुर घण्टानाद के बीच में ही आरती के थाल में हँसता हूँ, फूलों की गोद में मैं ही भागीरथी में विहार करता हूँ परन्तु कब्र पर गीदड़ो की चिल्लाहट के बीच कंकड़ो के सेज पर भी मै ही हंसा करता हूं।

मैं झट कमरे में आ बैठा और कागज पर लिखा "सुख दुःख में समान रहना" यही दीपावलि का सन्देश है। गीता ने भी सुखदु.खे समे कृत्वा "'समत्वं य... ...' इस वचन से इसी मत की पुष्टि की है।

परन्तु यह क्या, प्रातः काल उठा तो देखा सब दीपक बुझ चुके थे। सबके गले कटे हुए थे। संसार को प्रकाश देने के लिये अपना बलिदान कर गये। मुझे मालूम पड़ गया "आत्माहुति का मूर्त्त रूप यही है, यज्ञ मयी भावना और त्याग का आदर्श यही है। उच्चकोटि का बलिदान इन्हीं से सीखा जासकता है।

क्या दीपावलि के दिन अपने शरीर को दीपक बनाते हुए ऋषि ने सुख दुःख मे समता और उच्चकोटि के बलिदान का आदर्श संसार के सामने उपस्थित नही किया ?

"महर्षि महिमा"

(ले०—श्री अटल विहारीलाल 'अटल')



वेद-भानु पर आनि अविद्या के घन छाए,
आर्य जाति मत पन्थ अनेको दीप जलाए।
फूट खाइ मद पान दासता को कर सोए,
छोड़े खुले कपाट देखि डाकू दल आए।

लूट लिया सर्वस्व न घर मे कुछ भी छोड़ा,
मद को भी सब भाँति उन्होंने तोड़ा मोड़ा।
अस्त व्यस्त सब भाँति किया अधिकार जमाया,
आर्य जाति का अङ्ग अङ्ग हा! तोड़ मरोड़ा।

दुखित अवस्था दीन-बन्धु को जाति पुकारा,
दिव्य, दयालू दयानन्द आया ऋषि प्यारा।
देख जाति की लूट नैन में आंसू आए,
रक्षा के हित सत्य खड्ग लेकर ललकारा।

डेढ़ अरब के बीच नहीं मन में दहलाया,
ऊंचे स्वर से सत्य वेद उपदेश सुनाया।
ममता, माया, मोह त्याग कर कूदा रण में,
आर्य देश अरु जाति सभी को शीघ्र जगाया।

लुप्त हुई अज्ञान तिमिरि में जो निपुणाई,
करि कुरीति संहार कीर्ति फिरि से चमकाई।
बनो वीर बलवान् जाति को पाठ पढ़ाया,
छिन्न भिन्न सब शक्ति सूत्र में आनि मिलाई।

फूट फबीली हटा, प्रेम पीयूष पिलाया,
रूढ़िवाद के सुदृढ़ दुर्ग को आनि गिराया।
किये अनाथ सनाथ, दुख गौओं का टारा,
छूत-भूत विख्यात भगा, भय से घबराया।

विधवाओं का दुःख हटाया ऋषि ने आकर,
बिछुड़े मिलते बन्धु, हृदय से हृदय मिलाकर।
अपनी भाषा, वेश, सभ्यता को अपनाते,
शिल्प सीखते आज विदेशों में जा जाकर।

मत वादी नहिं आज सामने हो मुख खोलें,
गलती करें सुधार, नहीं बढ़ बढ़ के बोलें।
प्रतिमा-पूजन छुटा, श्राद्ध का करना छूटा,
करिके सन्ध्या, हवन, एक ईश्वर जय बोलें।

छुटै दासता यत्न यही मिलकर करते हैं,
वस्तु स्वदेशी प्रेम सहित धारण करते हैं।
भरें कोष साहित्य स्वदेशी से प्रिय अपना,
हिन्दी, हिन्दू, हिन्द सभी की जय कहते हैं।

जीवन देकर आप जाति में जीवन लाए,
यह दीपावलि दिवस प्राण बलिदान चढ़ाए।
'अटल' करै गुणगान आपका क्या जीवन में,
चमक सूर्य मे जाति ऋणी तब तक गुण गाए।

वैदिक व्याकरण

(ले०—श्री प० तेजोनारायणजी शास्त्री काव्यतीर्थ)

—×—



श्री स्वामीजी महाराज की प्रतिज्ञा है 'वेद सब सत्य विद्याओं का मूल है' संसार में जितनी भी विद्यायें हैं उनका मूल वास्तव में वेद ही है। वेद में समस्त विद्याओं की सूत्र रूपेण प्राप्ति होती है यह तथ्य है—आज हम कुछ वैदिक व्याकरण की चर्चा करने बैठे हैं कुछ लोगो का मत है कि व्याकरण का वैदिक भाषा पर प्रभुत्व नहीं है। वेदकाल का भी वे निश्चय करते हैं अर्थात् वेद को अनित्य मानते और यह कहते हैं कि वेद के समय लोक की अवस्था ऐसी न थी कि भाषा व्याकरण—सूत्रबद्ध हो सकती इसी लिये व्याकरण निर्माता पाणिनि मुनिने वैदिक प्रयोगों की सिद्धि के लिये जगह जगह पर अपनी अष्टाध्यायी में "बहुलछन्दसि" सूत्र बनाये हैं। अभिप्राय यह है कि जैसे लोक में अकारान्त पुल्लिंग शब्दो का तृतीया के बहुवचन से "रामैः" "घटैः" ऐसा प्रयोग बनता है उसी प्रकार वेद में 'देव' शब्द का देवैः' और "देवेभि." ये दोनो प्रयोग बनते हैं। अतएव कोई नियम न होने के कारण पाणिनि मुनि ने अपनी अष्टाध्यायी में "अतोभिस् ऐस्" सूत्र के अनन्तर 'बहुलंछन्दसि" सूत्र बना दिया जिसका अभिप्राय है कि वेद में 'भिस्' को ऐस्" आदेश होता भी है और नहीं भी। इसी से किन्हीं महाशयो की यह भावना होती है कि वैदिक भाषा अव्यवस्थित तथा अपूर्ण है। किंच—महाभाष्यकार ने भी—"दीधी वेवी टाम्" सूत्र का खण्डन करते हुए कहा है "सर्वे विधयः छन्दसि विकल्प्यन्ते" "दीधी वेव्यो छन्दो विषय स्यात् छन्दसि दृष्टानुविधित्वात्' इत्यादि—अर्थात वेद में सभी विधियों का प्रायः विकल्प होता है जैसा कि आगे चलकर स्पष्ट हो जायगा।

पहली बात जो रूपों के विषय में है कि पाणिनि मुनि ने "देवै' और "देवेभिः' दो प्रकार के प्रयोगो को देख भाषा को अव्यवस्थित समझ कर 'बहुलं-छन्दसि" सूत्र बनाया यह उचित नहीं क्योंकि लौकिक भाषा जो कि सर्वथा व्याकरण के सूत्रो से बद्ध है उसमे भी एक ही विभक्ति के परे एक शब्द के ही दो प्रकार के क्या आठ आठ नौ नौ प्रकार के प्रयोग देखे जाते है। उदाहरणार्थ गवाक् शब्द को लीजिये इसके प्रथमा के ही एकावचन में "गवाक् गवाक् गोअक् गोअग् गोऽक् गोऽग् गवाङ् गोअङ् गोऽङ् ये ९ रूप होते हैं तब वैदिक भाषा को अपूर्ण कहना केवल साहसमात्र है।

दूसरी बात जो 'छन्दसि दृष्टानुविधि" वेद मे दृष्ट प्रयोग जैसा हो वही साधु होता है इस विप्रति पत्ति को लेकर जो वैदिक भाषा मे अपूर्णता कही जाती है वह भी निर्मूल है इस भाष्य का अभिप्राय यह नहीं हैं कि कि वेद के शब्दो की साधुता या असा-धुता का निर्णय व्याकरण द्वारा न होने से हम उसमें प्रयुक्त शब्दो ही पर साधुत्व असाधुत्व मानकर वैदिक भाषा को अपूर्ण कहे किन्तु इसका भाष्य अभिप्राय यह है—कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है उसकी इयत्ता प्राणिमात्र का विषय नहीं बन सकती क्योंकि जीव अल्पज्ञ और ब्रह्म सर्वज्ञ है, अल्पज्ञमें सर्वज्ञता नहीं सकती हो फिर ऋषिमुनियो द्वारा निर्मित व्याकरणशास्त्र उस इयत्ता शून्य वैदिकशब्द-राशिका अनुशासन कैसे कर सकेगी? यही बात ध्यान में रखकर पाणिनि-मुनि पतञ्जलि मुनि आदि वैय्याकरणो ने वेद में दृष्टान्तु विधि का सिद्धान्त निर्णय कर दिया है। है। किंच स्थान स्थान पर "बहुलंछन्दसि" सूत्र बना कर भी काम न चलने पर "व्यत्ययो बहुलम्" सू० अ० पा० १—० ८५ द्वारा वेदो में व्यत्यय ८ प्रकार का बतलाया परन्तु जब व्यत्यय से भी वैदिक भाषा पर काबू न चला तब "दृष्टानुविधि" की कल्पना करके यह सिद्धान्त निश्चय किया गया। अतएव यह

दूसरी युक्ति भी वैदिक भाषा को अपूर्ण कहने में असमर्थ हो गई।

अब वैदिक व्याकरण कौन से हैं उनका क्या उपयोग है इस बात को लीजिये और लौकिक व्याकरणो से उनकी तुलना कीजिये। वेदत्रयी के तीन व्याकरण भिन्न भिन्न ऋषियो ने बनाये हैं—और उनके नाम "प्रातिशाख्य' पद से व्यवहृत हैं। ऋग्वेद का व्याकरण "ऋक् प्रातिशाख्य" है इसके प्रणेता महर्षि शौनकाचार्य हैं। यजुर्वेद का "यजु प्रातिशाख्य" है इसके प्रणेता महर्षि कात्यायनमुनि हैं। सामवेद का "साम प्रातिशाख्य" है इसके प्रणेता महर्षि सामगाचार्य हैं इनके अतिरिक्त बहुत कुछ व्याकरण से सम्बन्ध रखने वाले 'शिक्षा' नाम के ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। जैसे—यजुर्वेदीय शिक्षा कात्यायन मुनिकृत सामवेदीय शिक्षा नारदमुनिकृत इत्यादि। लौकि व्याकरण—गार्ग्य, गालव, शाकल्य, शाकटायन, स्फोटायन, आदि के रचित इस पाणिनीय व्याकरण के पूर्व थे—परन्तु इन सब व्याकरणों से प्रथम माहेश्वर व्याकरण था जो कि महेश्वर प्रणीत था—इसी व्याकरण मे सब से प्रथम वर्ण समाम्नाय का उपदेश दिया है जो कि १४ सूत्रों में विभक्त है। प्रथम अचोंका उपदेश तदनन्तर हलो का उपदेश है। इन वर्णो की संख्या ६३ है। इन्हीं पर समस्त लोको के व्यावहारिक तथा वैदिक शब्द निर्भर हैं। चाहे कोई सी भी भाषा क्यों न हो इन से बाह्य नहीं हो सकती। अन्यान्य भाषाओं में पूरी वर्ण माला भी नहीं है इसका हेतु यही है कि उनके प्रवर्त्तक मनुष्य थे परन्तु वैदिक वर्णमाला पूर्ण है। जिसका कि उपदेश माहेश्वर व्याकरण में किया है और इस उपदेश को प्राय सभी व्याकरण प्रणेताओं ने अनुसरण किया हैं। प्राति शाख्यो में तो वर्ण समाम्नायका उपदेश नहीं पाया जाता है हाँ 'उपदिष्टा वर्णा" इस प्रकार के सूत्र ही पाये जाते हैं जिनका कि अभिप्राय यही निकलता है कि वर्णोपदेश कर चुके हैं वह संकेत माहेश्वर व्याकरण की ही तरफ है। परन्तु पाणिनीय व्याकरण में तो स्पष्टतया उन्हीं सूत्रो को प्रारम्भ में रख दिया है और अन्त में "इतिमाहेश्वराणि सूत्राणि" यह भी लिख दिया है। पाणिनीय व्याकरण इ ही वैदिक प्रातिशाख्यो तथा शाकल्य आदि के व्याकरणो के आधार पर बना है। जहां जहां मत भेद है वहा वहां पाणिनीय व्याकरण मे उन उन आचार्यों के नाम देकर सूत्र बनाये हैं जैसे "ल.प शाकल्यस्य" "अ.तोगार्ग्यस्य" अर्थात् इस प्रयोग में शाकल्य से हमारा मतभेद है—या गार्ग्य से हमारा मतभेद है। शाकल्य के मत में ऐसा रूप होता है गार्ग्य के मत मे ऐसा—इत्यादि।

पाणिनीय व्याकरण मे जो प्रकरण है वह भी प्रातिशाख्यो से मिलता जुलता है देखिये—"उपधासंज्ञा—का सूत्र यजु' प्रातिशाख्य के प्रथमाध्याय में 'अनयाद्वर्णात पूर्व उपधा" ॥ ३५ वां है पाणिनीय व्याकरण में "अलोन्त्यात् पूर्व उपधा" है दोनो संज्ञा एक ही प्रकार की हैं अर्थात् दोनो में शब्दतः अर्थत साम्य है। इसी प्रकार सवर्ण संज्ञा का प्रतिशाख्यमें "समान स्थान करणास्य प्रयत्न. सवर्णः." सूत्र है। पाणिनीय व्याकरण मे "तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्" यह सूत्र है। दोनो संज्ञाओ में शब्दतः अर्थतश्च साम्य विद्यमान है। इत्यादि बहुतेरे उदाहरण ऐसे पाये जाते हैं जिनके द्वारा यही निष्कर्ष निकलता है कि पूर्व पूर्व व्याकरण उत्तरोत्तर व्याकरण के हेतुभूत है।

हां अभ्यन्तर रचना व्याकरणो की कुछ भिन्न सी है। पाणिनीय व्याकरण में सन्धि आदि के ऐसे सूत्र हैं जो कि प्राय. लौकिक तथा वैदिक दोनो व्याकरणों मे काम आजाते हैं परन्तु प्रातिशाख्यों में केवल वैदिक प्रयोग देकर ही सूत्रों में निर्देश कर दिया है इसका एक मात्र कारण यही है कि वह वैदिक व्याकरण है जिससे सम्बन्ध है केवल उसीका प्रतिपादन उद्देश्य है। इस उद्देश्य को ही उन्होंने लक्ष्य में रखकर वैसी रचना की है। स्वर सम्बन्ध में यद्यपि पाणिनि जी ने बहुत कुछ कुशलता की है बड़ी होशियारी और बुद्धिमत्ता से चारों वेदों के स्वरों का उपदेश किया है परन्तु वह इतना सुस्पष्ट नहीं है जैसा कि वैदिक प्रतिशाख्यकारों का उपदेश। और यह ठीक ही है कि जो स्पष्टता प्रत्येक के भिन्न

व्याकरणों में आ सकती है वह समष्टि रूप में कैसे आ सकती है। इसी ध्येय को भी सामने रख कर वेद में दृष्टानुविधि पाण्डतजी को मानना पड़ी है और अष्टाध्यायी द्वारा जब समस्त प्रातिपदिको के स्वर का निर्णय जब न हो सका तभी शान्तनाचार्य ने (फिट्) सूत्र की व्याख्या करके और बहुत सारे सूत्र प्रातिपादिक सम्बन्धी बनाकर उसे पूर्ण करने की चेष्टा की है। यद्यपि शान्तनाचार्य पूर्णतया उनमे भी सफल नहीं हो सके तथापि कुछ बहुत अंश में सफलता प्राप्त हो गई। उदाहरण जैसे—'गोध,' शब्द है इसके परे 'अवग्रह' नहीं होता यह पाणिनीय व्याकरण द्वारा नही ज्ञात हो सकता परन्तु प्रातिशाख्य "वायुरसजात" गोधो ... सुभिर्निरष्टयै। अध्याय ५। सूत्र ३७ से निर्णय हो जाता है इत्यादि इस प्रकार के कई एक विषय ऐसे हैं जिनके ज्ञान के लिए वेद पढ़ने वालो को पहले वैदिक व्याकरण अवश्य देखना चाहिये क्यो बिना व्याकरण के भाषा खुलती नहीं है जैसे बिना ताली के ताला यह व्याकरण शब्द राशि की कुंजी है। इस लिए शिक्षा में छन्दः पादो तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्" यह लिखा है। जैसे शरीर में मुख मुख्य है वैसे वेद जानने के लिए व्याकरण भी मुख्य है। वर्तमान काल में इन प्रातिशाख्यो के अध्ययन की प्रथा उठती चली जारही है। इन्हीं ग्रंथो के उद्धारार्थ महर्षि ने गुरुकुलो की आयोजना की थी—हमारी आशायें उन भावी स्नातको की तरफ लगी हैं जो कि शीघ्र कपिल कणाद के स्थान की पूर्ति करेंगे। बिना ब्रह्मचर्य के वेद विद्या नहीं प्राप्त होती है। जैसा वेदो में ही कहा है—(यमेव तु शुचि विद्याभिवत ब्रह्मचारिणम् तस्मैमां ब्रुयाः) जिसको ब्रह्मचारी समझो उसी को वेद विद्या उपदेश दो यह वेद की आज्ञा है। जहां ब्रह्मचर्य है वहां तप है जहां तप है वहां समस्त ऋद्धियां हैं वहां वेद। है वेद ज्ञान का मूल ब्रह्मचर्य ही है इसी की तरफ हमको चलना चाहिये पश्चात् सर्वाभीष्ट सिद्ध होते दीखेंगे।

स्वामीजी की आर्य भाषा

(ले०—श्री प० चन्द्रबली एम० ए०)



देवाणी के प्रकाण्ड पण्डित स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने हिंदी भाषा का आर्यभाषा घोषित कर उसे जा प्रतिष्ठा दी उससे उनकी सत्यनिष्ठा दूरदर्शिता और मंगल बुद्धि का पूरा पता चलता है। हिन्दी के लिए वह परम सौभाग्य का दिन था जिस दिन एक गुजराती तपस्वी ने उसे अपनाकर उसे धर्म भाषा का चोला दिया और समस्त आर्यों की भाषा निर्धारित की। स्वामीजी को आर्य भाषा का तात्पर्य बहुत कुछ वही है जो आजकल राष्ट्र भाषा का हो रहा है। स्वामीजी के इस नूतन नाम करण का यह अर्थ नहीं कि स्वामीजी ने एक नवीन भाषा का प्रवर्तन किया, प्रत्युत यह कि स्वामीजी ने प्रचलित हिन्दी भाषा को ही आर्य भाषा की उपाधि दी। उनकी आर्य भाषा पर विचार करने से यह स्पष्ट अवगत होता है कि स्वामीजी टकसाली भाषा के कायल थे, शुद्ध संस्कृत गर्भित भाषा के हामी नहीं। राष्ट्रभाषा के हितैषियो और भारत के मुरादो को स्वामीजी की भाषा पर पूरा विचार कर आगे बढना चाहिये हमारी तो धारणा है कि स्वामीजी की भाषा हमारी राष्ट्रभाषा का एक नमूना है और व्याकरण से अच्छी तरह व्यवस्थित न होने पर भी व्याकरण की पुजारिन है। स्वामीजी को अपनी भाषा की शुद्धता का कितना ध्यान था, इसका पता उनके पत्रो से भली भाँति चल जाता है। संशोधको से ऊबकर वह स्वत. लिखते हैं, * "इन अशुद्धियो में भाषा की कम और संस्कृत की अधिक है। और जब हम संधि विषय का पाठ करें, तब तुम्हारी और + भी०से० की न जाने कितनी निकलेंगी। अब ऐसा हुआ सो हुआ परन्तु आगे कभी ऐसा न करो। आगे से हम सब पुस्तक देखा करेंगे और अपना लिखाया और तुम्हारा शोधा पुस्तक भी माँग लिया करेंगे, और आज से हम वेद भाष्य भी देखा करेंगे कि कितनी अशुद्धि हैं ·· · जो छप गया सो खैर परन्तु आगे कभी ऐसा न होगा।" पाठकों को भूलना न होगा कि स्वामी जी को भाषा का इतना ज्ञान नहीं था जितना कि संस्कृत का। उनके लिये इतना ही बहुत है कि वे शुद्ध भाषा के उपासक थे। और उसे व्यवस्थित और शुद्ध रूप में देखना चाहते थे। उनके † "एक व्याख्यान का अनुवाद पं० महेशचन्द्र ने अशुद्ध किया। उस दिन से दयानन्द ने निश्चय कर लिया कि हिंदी भाषा द्वारा ही उपदेश किया करेंगे।" इससे प्रकट है कि स्वामी जी अशुद्धि से कितना दूर रहना चाहते थे। स्वामी जी को अपनी इस कमी का ज्ञान था, और वे बराबर इसको कम करते जा रहे थे। उन्होने स्वत लिखा है— * "जिस समय मैंने यह ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने, और जन्म भूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझ को इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था। इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है। इसलिये इस ग्रन्थ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है।" मतलब यह है कि स्वामी जी व्याकरणानुसार चलना चाहते थे। अपनी कमी को छिपाने के लिये व्याकरण को व्यर्थ ही कोसते न थे। जैसा कि हिन्दी में बहुत से लोग कर रहे हैं। और साधारण भूल करते जा रहे हैं। स्वामी जी को इतना अवकाश कहाँ था कि भाषा का अध्ययन कर जनता में प्रचार करते।

* दयानन्द ग्रन्थमाला शताब्दी संस्करण प्रथम भाग की भूमिका पृष्ठ १७

† पंडित भीमसेन।

† दयानन्द ग्रन्थ माला प्रथम भाग पृष्ठ ३९।

* सत्यार्थप्रकाश की भूमिका का आरम्भ।

उस समय के साहित्यिकों की भाषा भी किसी व्यक्ति विशेष की भाषा न थी। उसका परिमार्जन तो आगे चल कर होगा। संस्कृत के पंडितों की भाषा से स्वामी जी की भाषा बहुत कुछ व्यवस्थित और साफ सुथरी होती थी और वे बराबर उनको उनकी त्रुटियों से आगाह करते थे। उनकी शिकायत है * "अब यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता जैसा कि पहिले बनाता था, जैसी कि प्रतिदिन उन्नति करनी चाहिये यह प्रतिदिन गिरता जाता है।" ठीक यह दशा आज हिंदी को हो रही है, यह प्रतिदिन गिरती जा रही है। पदार्थ है कुछ और भाषा बन रही है कुछ और। मतलब यह है कि स्वामी जी की चेतावनी पर ध्यान देना चाहिये और घास काटना छोड़ कर भाषा का निर्माण करना चाहिये। संक्षेप में आर्य भाषा बननी चाहिये।

स्वामी जी की आर्य भाषा के सम्बन्ध मे विचार करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि वे विजातीय शब्दों के शत्रु नहीं थे। अरबी पारसी के प्रचलित शब्दों के प्रयोग करने मे जरा भी नहीं हिचकते थे। उनको इस बात का पता था कि राजा शिवप्रसाद का आमफहम जनता के किसी काम का नहीं है। वह यह भी जानते थे कि यवन शब्दों को निकाल फेंकना भाषा की शक्ति को नष्ट करना है। अतएव जनता के हृदय मे उस की प्रचलित भाषा के द्वारा प्रवेश करना चाहते थे। और उसकी भाषा को खड़ी पड़ी न कह कर आर्य भाषा कहते थे। हिन्दी की अपेक्षा आर्य भाषा उन्हे विशेष प्रिय था और वे इसे आर्यमात्र की भाषा बनाना चाहते थे। आज भी उनके अनुयायी इस भाषा का प्रचार सर्वत्र करना चाहते हैं, और विदेश में भी उसका प्रचार कर रहे हैं। स्वामीजी तथा उनके अनुयायियों ने। आर्यभाषा को जो प्रोत्साहन दिया उसके साहित्य का जो निर्माण किया उसके सम्बन्ध में विचार करना विषयान्तर समझा जायेगा। और यहाँ हो भी नहीं सकता। अतएव विद्वानो के विवेचन और जनता की जानकारी के लिये स्वामीजी की भाषा के कुछ नमूने दिये जाते हैं, जिन्हे देखकर 'हिन्दुस्तानी' के हिमायती भी समझ जायेंगे कि वास्तव मे दयानन्द सरस्वती उनका शत्रु अथवा विरोधी न था वह उसी भाषा का पक्षपाती था जो जनता की हो, और जिसे जनता अपनी भाषा समझ सकती हो।

स्वामीजी ने वक्ता, व्याख्याता, विवादी आदि अनेक रूपों में आर्यभाषा को अपनाया। उनके नाना रूपों पर विचार कर उनका समुचित लेखा ले लेना अभी हमारी पहुँच के बाहर है। जब तक सारी सामग्री प्राप्त नहीं हो जाती तब तक यह कार्य सुगम नहीं हो सकता। स्वामीजी की भाषा के प्रत्येक रूप का परितःप रशीलन यहाँ संभव नहीं। निदान उनकी आर्य भाषा के कुछ नमूने पेश किये जाते हैं भगवान मनु के †सदा प्रहृष्टया भाव्य गृहकार्येषुदक्षया"

सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया की व्याख्या में लिखते हैं। 'स्त्री को योग्य है कि अति प्रसन्नता से घर के कामों में चतुराई युक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार तथा घर की शुद्धि रक्खे। और व्यय में अत्यन्त उदार न रहे अर्थात् (यथा योग्य खर्च करे) और सब चीजें पवित्र और पाक इस प्रकार बनावे जो औषध रूप होकर शरीर व आत्मा मे रोग को न आने देवे। जो जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत् सब को पति आदि को सुना दिया करे। घर के नौकर चाकरों से यथावत् काम लेवे, घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे।" कहने की आवश्यकता नहीं कि इसमे खर्च च ज्, हिसाब आदि अनेक शब्द विजातीय अथवा मुसलमानी हैं, जिन्हें इसी रूप मे स्वामीजी ने प्रयुक्त किया है।

पण्डित और साखी के वाद विवाद पर गौर कीजिये और देखिये कि कितनी टकसाली भाषा है। ‡"(साखी) देख हम रात दिन नंगे रहते, धूनी

* दयानन्द ग्रन्थमाला प्रथम भाग पृष्ठ १८।

† सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास पृष्ठ १११ (शताब्दी संस्करण)

‡ सत्यार्थप्रकाश समुल्लास एकादश पृष्ठ १६६ (शताब्दी संस्करण)

तापते, गांजा चरस के सैकड़ो दम लगाते, तीन तीन लोटा भाँग पीते गाँजा, भाँग, धतूरा की पत्ती की भाजी बना खाते, संखिया और अफीम भी चट निगल जाते नशा में गर्क रात दिन बेदम रहते, दुनयाँ को कुछ नहीं समझते। भीख माँग कर टिक्कड़ बना खाते। रात भर ऐसी खांसी उठती जो पास में सोवे उसको नींद कभी न आवे इत्यादि सिद्धियाँ और साधुपन हम मे है फिर तू हमारी निन्दा क्यों करता है। चेत बाबूडे जो हमको दिक करेगा। हम तुमको भस्म कर डालेंगे (पण्डित) ये सब लक्षण असाधु मूर्ख और गवरगंडे के हैं साधुओं के नहीं। सुनो—"जो धर्मयुक्त उत्तम काम करे, सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो विद्वान् सत्योपदेश से सब उपकार करे, उसको साधु कहते हैं।"

सरल और सामान्य बोल-चाल को भाषा की भाषा की बानगी लीजिये और देखिये कि इसमें भी कितना स्वाभाविक माधुर्य है। '*लोगों ने कहा हमको दर्शन क्यों नहीं होता। वह बोला नाक की आड़ हो ही है जो नाक कटवा आवे तो नारायण दीखें नहीं तो नहीं। उनमें से किसी मूर्ख ने चाहा, नाक जाय तो जाय नारायण के दर्शन हो जायें।" कितनी मीठी चुटकी ली गई है, कितना बढ़िया परिहास है।

समीक्षक की भाषा बहुत ही सटीक और नासूर पैदा करने वाली है। उसके आक्षेपों का उत्तर देना तो दूर रहा उन्हें शान्त चित्त से सुन लेना ही दुस्तर है। स्वामीजी के प्रहार से न जाने कितने लोग कातर होगये, और उन्हें शिष्टाचार की सीख देने लगे। पर स्वामी जी 'कड़वी भेषज बिन पिये मिटै न तन की ताप' के क़ायल थे, और अपनी कटूक्तियों से जनता को सचेत कर पाखंडियों को झकझोर देना चाहते थे। अंध विश्वास के तो वह कट्टर शत्रु थे। और उसे जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते थे किसी ढोंगी की भद्द उड़ाने में जरा भी तरस न आता था। और उनकी भाषा भी कभी कोमल न होती थी

* सत्यार्थप्रकाश समुल्लास एकादश पृष्ठ ५२०

कबीर के विषयमें कहते हैं*क्या कबीर साहब भुनगा था जो फूलों से उत्पन्न हुआ और अन्तमें फूलहोगया

मुस्लिम मत की समीक्षा में स्वामी जी ने जिस भाषा का प्रयोग किया है वह सचमुच हिन्दुस्तानी है और इस बात को पुष्ट करती है कि स्वामी जी की भाषा प्रतिपाद्य विषयके अनुकूल बदलती चलती थी। किसी रूप विशेष से प्रदर्शित नहीं होती थी स्वामी जी ने लिखा है×जो कुरान अरबी भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्य भाषान्तर करा के पश्चात् अरबी के बड़े बड़े विद्वानों से शुद्ध करा के लिखा गया है।‡ इस हिन्दुस्तानी को स्वामीजी आर्य भाषा ही मानते थे। इसका एक नमूना देखिये जब मुसलमान लोग सिवाय खुदा के किसी के साथ ईमान नहीं लाते और न किसी को खुदा का साझी मानते हैं तो पैगम्बर साहब को क्यों ईमान में खुदा के साथ शरीक किया अल्लाह ने पैग़म्बर के साथ ईमान लाना लिखा इसी से पैग़म्बर भी शरीक हो गया पुन लाशरीक कहना ठीक न हुआ। अस्तु समीक्षक की यह भाषा स्वामी जी की अभीष्ट आर्य भाषा नहीं है मुसलिम मत के समीक्षण में उस हिन्दुस्तानी का निर्वाह भले ही हो जिस के लिए बहुत से लोग प्रयत्न शील हैं पर आर्य संस्कृति के विवेचन में इस हिन्दुस्तानी से काम नहीं चल सकता स्वामी जी की आर्य भाषा का आदर्श उनके पत्रों और व्याख्यान अथवा भूमिका में मिल सकता है जिनमें उर्दू के प्रचलित शब्द आर्य रूप में स्वीकृत हुए हैं। निष्कर्ष यह है कि स्वामी जी अलंकृत और कृत्रिम भाषा को अच्छी नहीं समझते थे उनकी समझ में भाषा का वही रूप भव्य और मनोरम है जो जनता के हृदय में घर करले और जिसे पहिचानने के लिए किसी व्याख्याता अथवा मध्यस्थ की आवश्यकता न पड़े"। संक्षेप में जो, "सुरसरि सम सब कहं हित होई, हो। किसी सम्प्रदाय विशेष के लिये ही न हो।

———

* सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास पृष्ठ २२१
× चौदहवें समुल्लास की अनुभूमिका
‡ सत्यार्थप्रकाश चौदहवाँ समुल्लास पृष्ठ ७३०

"कैवल्य और वेद"

(ले०—आचार्य श्री चन्द्रकान्तजी वेदवाचस्पति)



भारतीय आस्तिक दर्शनो मे मनुष्य के जीवन का उद्देश्य मोक्ष—प्राप्ति बताया गया है। अपवर्ग, मोक्ष अत्यन्त पुरुषार्थ आदि शब्दो मे दुःख से सर्वथा विमोचन का भाव भरा हुआ है। आत्मा स्वभावत चित् स्वरूप, सत्स्वरूप है। परमात्मा सत् चित् तथा आनन्द त्रिविध स्वरूप है। आत्मा तथा परमात्मा जीव तथा शिव, नर तथा नारायण मे भेद इतना ही है कि प्रभु आनन्दघन है और आत्मा को आनन्द प्राप्त करना है जिस वस्तु का जो धर्म स्वाभाविक होता है। वह धर्म उस वस्तु में सिद्ध व परिनिष्ठित रूप से रहता है साध्य रूप से नहीं, अतः दुःख निवृत्ति एवं आनन्द प्राप्ति स्वरूप मोक्ष आत्माके लिये प्राप्य होने से उसका स्वाभाविक धर्म नहीं, अपितु नैमित्तिक धर्म है इस लिये मोक्ष दशा विनाश्य-अर्थात् अनित्य भी है। वेद मे एक सुन्दर ऋचा है—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्य पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति।" ऋ० १।१।४।२०

अर्थ—"दो पक्षी (जीवात्मा, परमात्मा) जो साथ रहने वाले और मित्र हैं एक वृक्ष (शरीर) को आलिंगन किये हुए (स्व स्वामि भाव स) है उनम से एक (जीवात्मा) स्वादु अस्वादु फल (कर्मफल) को खाता है और दूसरा (परमात्मा) न खाता हुआ प्रकाशता (देखता) है।

उपर्युक्त मन्त्र में स्पष्टतया कहा गया है कि जीवात्मा रूपी पक्षी के लिये तो भोक्तव्य अवशिष्ट है जब कि परमात्मा रूपी पक्षी तृप्त होने से द्रष्टा के समान अपनी स्थिति मे विद्यमान है। महर्षि दयानन्दजी महाराज ने सत्यार्थ-प्रकाश नवम समुल्लास मुक्ति प्रकरण में लिखा है:—(प्रश्न) × + × वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है या स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचारता है। (उत्तर जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्त जीव अव्याहतगति अर्थात् उसकी कहीं रुकावट नही × × आनन्दपूर्वक स्वतत्र विचरता है अर्थात् मुक्ति की अवस्था म मुक्तात्मा आनन्द मय परब्रह्म में विचरा करते हैं। उनका ब्रह्म के साथ ऐकात्म्य नहीं हो जाता, वे ब्रह्म नहीं बन जाते हैं। वे अपना सूक्ष्म तन्मात्राग्राही इन्द्रियो के बल से किसी अद्भुत अपूर्व आनन्द का आस्वादन करते हैं।

मायावादी वेदान्तियों का कहना है कि जीव का ब्रह्म से व्यावहारिक मिथ्या भेद होने से मोक्ष दशा में जीवकी ब्रह्मभावापत्ति होजाती है,अतएव आत्माके लिये मोक्ष सिद्धावस्था है तथा नित्य है। एक बार अज्ञान तिमिर के सत्व-पुरुषान्यथाख्याति द्वारा नाश होने पर अखण्डाकार" अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकार के ज्ञान के उदय होने पर हमेशा के लिये भव बन्धन छूट जाया करते हैं।

वेदान्तियो के इस कथन के साथ वेद मन्त्रो का कहाँ तक सामञ्जस्य है, यह देखना आवश्यक है।

अथर्व में एक मन्त्र आता है—

"परिविश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशेकम्। यत्र देवा अमृतमानशाना. समाने योना वध्येरयन्त।' अ० २।१।५

अर्थ—"सब भुवनो मे घूम कर सत्य के फैले हुए आनन्ददायक सूत्र (प्रभु) को देखने को मैं आया हूँ जिस सुख स्वरूप एक ही अधिष्ठाता कारण भून प्रभु मे विद्वान् अमरत्व को प्राप्त करते हुये विचरण करते हैं।' मन्त्र से प्रतीत होता है कि मुक्तात्मा देव लोग प्रभु के आश्रय में रहते हुए इच्छा पूर्वक विचरते हैं। वे ब्रह्म स्वरूप नहीं बन जाते हैं। वे परमात्मा के आश्रय में रह कर सुखास्वाद लेते

निष्क्रिय नहीं बन जाते। ऋग्वेद में एक और मन्त्र है—

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् तेहनाकं महिमानः सचन्त, यत्रपूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥" ऋ० १०।९०।१६

अर्थ—यज्ञ स्वरूप (यज्ञ के आत्मा) मनुष्य से देवों ने जिस उद्देश्य से प्रारम्भ में सृष्टि यज्ञ को पूरा किया। अतः वे (यज्ञ) मनुष्यों के लिये मुख्य धर्म (कर्त्तव्य कर्म) हुऐ। जो मनुष्य इस मुख्य धर्म को करते हैं वे निश्चिय लोक मे महिमा (विभूक्ति) वाले हुये अन्त में उस दुःखरहित स्थान (पूर्ण प्रभु) को पाते हैं। जहाँ सृष्टि यज्ञ के साधने वाले देव (सृष्टि निर्माण शक्ति रूप) रहते हैं।"

मन्त्र का भाव सुस्पष्ट है। मन्त्र में यज्ञ कर्म द्वारा मोक्ष प्राप्ति बताई गई है, अतः मोक्ष साध्य दशा का ही नाम है। इसके अतिरिक्त यह भी प्रतिपादित कियागया कि मोक्षावस्था (आनन्दा-वस्था केवल धाम) में जीव प्रभु के आसरे रहते हैं! वे स्वयं ब्रह्मस्वरूप नहीं होजाते है यजुर्वेद में भी इसी आशय का मंत्र आता है —

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त। वह ब्रह्म हमारा बन्धु है हमारा पिता और हमारे सुख दुख का बनाने वाला है। वह सब लोको को और पदार्थों को जानता है जिस व्यक्त अव्यक्त से तीसरे (भिन्न) व्यक्ताव्यक्तम के आश्रय भूत ब्रह्म में स्थिति वाले विद्वन् अमृतत्व को भोगते हुये कर्मों में प्रवृत होते। है इस मंत्र में भी स्पष्ट रूप से जीव को मोक्षदशा में परमात्मा से भिन्न ही प्रतिपादित किया गया है। प्रभु को तृतीय धाम कहा है, क्यो कि जीव प्रकृतिसे भिन्न तृतीय परमात्माही है। यही मोक्षस्थान है-आनन्द धाम है। त्रिदेव अर्थात् तृतीय ज्योति:स्वरूप स्थान भी यही परमात्मनाम है। यह तृतीय धाम अत्यन्त सुख युक्त है अतएव इसको (अमो नाकमाक्रमतां तृतीयम्) अ० ६। ५। १

कहीं कहीं 'नाक' शब्द से भी कहा गया है 'क' का अर्थ आनन्द है। इस से पूर्व दो 'नञ्' लगाये गये हैं, जिससे प्रकृत सुखरूप अर्थ में दृढ़ता आ गई है (नञ् द्वयं प्रकृतार्थदाढ्येयबोधकम्) अर्थात् सर्वथा दुखरहित जो सुखधाम है वह नाक' है—
"यत्र दुःखेन संभिन्न न च ग्रस्तमनन्तरम्"

"अभिलाषोहनीतञ्चतत् सुखं स्वःपदास्पदम्
वही स्वः, नाक, तृतीय धाम शब्दो का तात्पर्य है यही मोक्ष है। यह मोक्ष ज्ञान तथा कर्म दोनों की से ही उपलब्ध होता है। इस विषय में अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं जिन्हें कभी किसी अन्य लेख में देने का प्रयत्न करेंगे।

एक और मन्त्र देखिये:—

"ऋतस्य पपन्थामनुपश्य साध्वङ्गिरसः सुकृतो येनयन्ति। तेभिर्याहिपथिभिः स्वर्गं यत्रादित्याः मधु भक्षयन्ति तृतीये नाकेऽधिविश्रयस्व १८। ४ ३

अर्थः—हे साधक! सत्य के पथ को भलीभाँति लगातार देख जिससे कि सुकर्मी ज्ञानी चलते हैं, उनसे सुखमय स्थान को प्राप्त कर।

यहां आदित्य-असंडु ब्रह्मचारी ज्ञानामृत को भोगते हैं।

हे प्रबुध! उस तृतीय सुखधाम प्रभु-पद में अपने को प्रतिष्ठित कर।

इस मंत्र मे भी मोक्ष-धाम को सुकर्मियो का लोक बताते हैं मुक्त को आधार और जीव को आधेय बताया है, अत ब्रह्म तथा जीव में सादृश्य सम्बन्ध की कल्पना वैदिक दृष्टि से दुरूह प्रतीत होते हैं परिणामतः उपर्युक्त वैदिक प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि ज्ञान कर्म उभय साधनो से साध्य मोक्षावस्था स्वतः सिद्ध प्रतीत नहीं होती है वह एक भाव पदार्थ है। उस दशा में Positive happiness (विधेयात्मक सुख) मिलता है मोक्ष दुःखात्यन्त निवृत्तिरूप अवस्थाही नहीं है। यह बात है कि संसारिक सुख की अपेक्षा मोक्ष सुख इस बात में सुतरां श्रेष्ठ है कि वह क्षणिक तथा दुःख सम्मिश्र नहीं है परन्तु साथ ही मोक्षसुख कर्म का परिणाम होने से साध्य कोटि में माना गया है अतः मोक्ष अनित्य भी है। कर्म से उत्पन्न होने वाला पदार्थ होने से काल दृष्टि से उसकी अनित्यता को कौन

तार्किक व वेदान्त केशरी रोक नहीं सकता। मोक्ष में किस किस प्रकार के सुख होते हैं, एतदर्थ ऋ ९। ११२ द्रष्टव्य है। उदाहरणार्थ एक मन्त्र देते हैं।

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिव। लोका यत्र ज्योतिष्मन्तः तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन् लोके स्वर्हितम्। तस्मिन् मां धेहि पवनामृते लोके ऽक्षितेन्द्रायेन्दो परिस्रव" ॥

९। ११३। ७.

अर्थात् 'जहां प्रकाशमय सुखरूप तृतीय दिव्य-धाम प्रभु पद में यथेष्ठ विचरण होता है, जहां प्रकाश-मय लोक है" ········ (६ मन्त्र)

जिस मुक्ति धाम में नित्य प्रकाश है जिस में सुख है, हे पवित्र करने वाले प्रभो! उसी अमृत चिर-स्थाई मुक्ति-लोक में मुझे धारण कराओ। इन्दो! मुक्त आत्मा के लिये सुख की वर्षा करो"।

इस प्रकार अन्य अनेक मन्त्रों में मोक्ष के सुखों का वर्णन है। यह सुख लौकिक सुख से कोड़ियों गुना उत्तम तथा चिरस्थाई है परन्तु पुण्यों के क्षीण होजाने पर इस अवस्था से लौटकर भी आत्माओं को संसार में आना ही होता है, अर्थात् मुक्ति सान्त होती है। इस लेख में स्थापना को भी हम युक्ति से नहीं, प्रत्युत एक दो प्रमाणों से ही पुष्ट करना चाहते हैं—

ऋग्वेद में एक मन्त्र आता है:——

असुनीते पुनरस्मासु चक्षु: पुन: प्राणमिह नो धेहि भोगम् ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥

अर्थ—हे प्राणप्रेरक प्रभो! हममें दर्शनशक्ति फिर से धारण कराइये। हमें इस संसार में फिर से जीवनीशक्ति तथा भोग दीजिये ऐसा कीजिये कि हम उदय होते सूर्य को चिरकाल तक देखें। हे अनुमते! हमें सुख दो"।

मंत्र में मुक्तजीव की प्रार्थना है कि प्रभो मुझे फिर से शरीर आदि प्रदान करो, ताकि पुरुषार्थ करके फिर इस अवस्था को प्राप्त करूं।

इसी प्रकार ऋ० १ अ० १, २ मंत्र से भी मुक्ति की अवधि समाप्ति के अनन्तर प्रभु की कृपा से मुक्त जीव पुन मा बाप वाले हो जाते हैं और पुनः मुक्ति के लिये प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार एक अनवरत चक्र चलता ही रहता है।

ऋग्वेद में एक सुन्दर मन्त्र आता है——

'ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृ-तत्व मानशुः। तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वोऽस्तु प्रतिगृभ्णीत मानव सुमेधसः' ऋ० म० १०। ६२॥

जो यज्ञ की दक्षिणा से युक्त इन्द्र (प्रभु) की मित्रतारूप मोक्ष को प्राप्त हुए हो, ऐसे हे ज्ञानवान मुक्तात्मा। (अंगिरस. सुमेधसः) उन आप के लिये कल्याण हो। (मानव) मनुष्य सम्बन्धी लोक को फिर पाओ। इस मंत्र में कहा गया है कि भद्र कर्म करने के लिये ज्ञानी पुरुष संसार में फिर फिर कर आते हैं; मोक्षावस्था जीव वा परमात्मा की मित्रता की अवस्था है न कि ब्रह्मस्वरूपापत्ति।

इस प्रकार हमने वेदमन्त्रों के आधार पर संक्षेप में यह बताने का प्रयत्न किया है कि मायावादियों की मोक्ष के सम्बध की कल्पना के आधार में श्रुति नहीं है। वेद तो मोक्षावस्था को साम्यावस्था बताते हैं, जिसमें कि आनन्दघन ब्रह्म के सामीप्य में रहकर सत्ता-रूप जीव आनन्द मग्न रहता है। जिस समय पूर्व संचित ज्ञान व कर्म का परिपाक समाप्त हो जाता है उस समय शरीरधारी जीवात्मा संसार में आकर पुनः कर्म मे प्रवृत्त होता है। इस प्रकार मोक्ष दशा अनित्य है और इसमें ब्रह्म व जीव का ऐक्य नहीं होता है; अपितु आधाराधेय सम्बध ही रहता है

ब्रह्मचर्य-वैभव

जो ४८ वर्षभर अखण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन करता है वह अकेला भी गोलचक्र के समान ६४ योद्धाओंको चक्र के समान भ्रमा सकता है। मनुष्योंमें दश वर्ष तक बाल्यावस्था पचीस तक कुमारावस्था तदन्तनर छब्बीसवें वर्षके आरम्भसे युवावस्था पुरुष की होती है और सत्रहवें वर्ष से कन्या की युवावस्था का आरम्भ है। इसके उपरांत जो स्वयंवर विवाह कराते हैं वे महाभाग्यशाली होते हैं।

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश

(ले०—श्री प० हरिदत्तजी शास्त्री)

जगत्यां समस्या सकलबुधवर्यैरभिमत ।
भविष्यत्यस्त्यासीन्निगमगदित धर्मसुधनम् ।
यतो भ्रान्त्या भ्रान्तैरुदितहतधर्मान् क कुशली
नरो मन्तुं शक्नोत्यपगतबलान् बालुकगृहान् ॥ १ ॥
ततः सर्वैराप्तैर्विदितनिगमै सत्यकृतिभि',
वदद्भिर्यत्सत्यं परसमुपकारव्रतधरैः ।
नरैर्यत्सम्प्रोक्तं सकलमनुजानां हितकृते
महर्षिब्रह्माद्यैश्चरमभवजैमिर्यृषिवरैः ॥ २ ॥
तथा यान् मन्ये ऽहं "प्रभु" मुखपदार्थान् क्षितितले ।
स्फुटं वक्तुं मे तानयमिह प्रयत्नः प्रवितत' ॥
न मे वाञ्छा लेश , "मतमभिनवं यत् प्रचलतात्" ।
नवो द्वेष. किञ्चित् प्रति भवति चित्ते मम मनाक् ॥ ३ ॥
अयं मे ऽभीलाष' वितथमतसन्त्रासजनन ।
यथा ऽऽदेयान् हेयान् ग्रहणपरिहाणेप्सिततमान् ।
विधायांशान् शुद्धं श्रुतिमतमुपैत्वाशुविसृतिभ्
प्रभोरीषा सैषा यदि मम मनीषां प्रभवति ॥ ४ ॥

मनुष्य लक्षणम्

मनुष्यं तम्प्राहुर्मननिरितः वात्मसद शम् ।
परेषां यो दुःखं सुखमपि च तद्वद्गणयति ॥
तथान्याय्ये तिष्ठन् हृदि न कुरुते साध्वसलवन् ।
प्रकामं पापीयो नृपतिदमने यात्वसुवसुः ॥ ५ ॥

अपिच:—

"भवेद् यो धर्मात्मा धनजनतनूभिर्गतबल ।
परित्रातुं तं य' सकल निजशक्त्या दृढमति' ॥
तथा यो ऽधर्मात्मा नियतिवशतश्चक्रनृपति' ।
अवानेतुं हन्तुं तमिह यतते सोऽस्ति मनुजः ॥ ६ ॥
यथाऽऽहस्म श्रीमान् नयविनयभाक् भर्तृहरिरि—
त्यभिस्यः, श्री व्यास , मनुरथ, पुराणाश्च मुनय'—
"निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ ७ ॥

भर्तृहरि ।

न जातु कामान्न भयान्न लोभात् ।
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ॥
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये ।
जीवो नित्यो हेतुरस्यत्वनित्य ॥

महाभारतम् ।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥

मनु ।

सत्यमेव जयते नानृतम् । सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्
नहि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।
नहि सत्यात् परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥

उपनिषत् ।

"अतोऽमीषामिष्टं व्यवसितुमभीष्टं नरवरैः
ब्रुवे सम्प्रत्यर्थानहमिह समासेन, शृणुत ॥ ८ ॥

प्रथमं मन्तव्यम् ।

"तदेकं सच्चित्स्वर्गमयमनपरं ब्रह्म समवित् ।
यमाहुः सर्वव्यापिनमजमनन्तं परगुरुम् ॥
दयालुः सन्न्याय, सकल जगदुत्पत्तिविलय
स्थिति प्राप्तौ हेतुं, सहि मम मतस्त्वीश्वर इति ॥ १ ॥

द्वितीयं मन्तव्यम्—

चतुःसंख्याः वेदाः सहितशुभमन्त्रा मम मते ।
स्वतो मानम्, यद्वद्द्युमणिमखिलाभासवरतमा ।
तदंगोपाङ्गानि स्मृति तदुपवेदा ऋषिसुराः ।
स शाखाः (११२७) सव्याख्याः गणय परतो मानमखिलम् ॥२॥

तृतीयं मन्तव्यम्—

य आचारः शुद्धो वितथलवहीनः समुचितः ।
तथा पक्षपाताद्वितथ वचनात्वैव रहितः ।
सधर्मो मन्तव्यः, तदितरदिहाधर्मपरतः,
प्रणीतं लोकेशा श्रुतिमति वचो नानुहरते ॥

महर्षि का ध्येय और हमारा कर्त्तव्य

(ले०—श्री बा० श्यामसुन्दरलालजी एडवोकेट)



महर्षि का ध्येय क्या था उसका स्वयं महर्षि ने अपने सत्यार्थप्रकाश के अन्तिम वाक्य खण्ड में स्पष्ट वर्णन कर दिया है जिसका सार यह है कि—

"उन सार्वभौमिक वैदिक सिद्धान्तो को जिनको उन्होंने स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश मे संक्षेपत और सत्यार्थप्रकाशादि स्वरचित ग्रन्थों मे विशद रूप से वर्णन कर दिया है मनुष्य मात्र अंगीकार कर अर्थात् मनसा वाचा कर्मणा उन पर आरूढ़ हो मतमतांतरो के व्यर्थ झगड़ो से पृथक् हो परस्पर प्रेम तथा अन्यान्य सुख वहनपूर्वक धर्मार्थ, काम, मोक्ष की सहज से प्राप्ति करते हुए सदा उन्नत और आनन्दित रहे।"

महर्षि ने अपना प्रतिनिधि रूप केवल आर्य समाज को उक्त ध्येय की पूर्ति के लिये छोड़ा है इस के लिखने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। अवलोकनीय यह है कि आर्य समाज ने अपने इस समय तक के काल में क्या किया है और भविष्य मे उसे क्या करना चाहिये यह बात भी विचारणीय है।

मैं सुगमता के लिये अब तक के काल को तीन भागों वा युगों मे विभक्त करना उचित समझता हूँ अर्थात् आरम्भिक युग, मध्य युग और उत्तर युग। प्रत्येक युग के विषय में मेरी दृष्टि में निम्न सारांश है:—

(१) आरम्भिक युग—इस युग में आर्य्य सामाजिक की वैयक्तिक और सामाजिक दोनों अवस्थाएं आचार विचार, स्वाध्याय, धर्मनिष्ठा पारस्परिक प्रेम, प्रचारध्वनि, प्रिय भाषण, तप और त्याग से भरपूर थीं। प्रत्येक आर्य्य समाजी ने जो पढ़ा लिखा था महर्षिकृत ग्रन्थों में से कम से कम सत्यार्थ प्रकाश के नियम पूर्वक श्रद्धायुक्त पढ़ने और उसके अमूल्य उपदेशो को हृदय मे धारण करने का नैत्यिक कर्म बनाया हुआ था। संध्यावंदन का कदाचित् ही कोई शिक्षित आर्य्य समाजी अनभ्यासी था। सत्याचरण और सत्यवादिता उसके जीवन के आकर्षक चिन्ह थे। प्रत्येक आर्य्य समाजी स्वयं ही प्रचारक था। उच्च कक्षा के विद्यार्थियों मे भी केवल नमस्ते के उच्चारण से अगाध समुद्रवत् हृदय प्रेम तरङ्गों से भर जाता था। ऐसा प्रेम का दृश्य मेरे हृदय मे, जब भी स्मरण करता हूं तरोताजा हो जाता है। सन् १८६० ई० में एण्ट्रेंस की परीक्षा के समाप्त होने पर जब आगरे से मथुरा आर्य्य समाज के वार्षिकोत्सव मे सम्मिलित होने के लिये हम कई विद्यार्थी मथुरा स्टेशन पर उतरे तो स्टेशन भर नमस्ते की प्रेम भरी आवाज से गूंज गया और नवयुवक स्वयंसेवकों ने हाथो हाथ ट्रेन भर के सामाजिक आगन्तुको का सामान स्वयं उठा कर इस प्रकार समाज मंदिर मे फुर्ती से पहुंचा दिया और हम सब को मानो प्रेम की गोद में लेकर वहां उपस्थित कर दिया कि वहा पहुंचने पर ज्ञात हुआ कि सबका सामान सुव्यवस्थित रक्खा हुआ है। यह दशा प्रेम के वर्त्ताव की सामान्य थी। प्रत्येक आर्य्य समाजी कुछ काल के लिये अपनी जन्मगत जातपात को भूल गया था। आर्य्य समाज का प्रत्येक सदस्य अपने अन्य सदस्य को सहोदर भाई से अधिक भ्रातृस्नेह मे बंधा हुआ प्रतीत करता था और अपने धार्मिक भावो में इतना दृढ़ था कि वैदिक सिद्धान्तों के ग्रहण करने के कारण जो हिन्दू समाज की ओर से जातीय उत्पात होने लगे थे उन को तृणवत् समझ कर उनका साम्मुख्य करता था। वैयक्तिक और सामाजिक उक्त निष्ठा से सर्व सामान्य शिक्षित और अशिक्षित वर्गों में आर्य्य समाजी और आर्य्यसमाज के लिये आन्तरिक आदर का भाव उदय हो गया था। ऐसे उदाहरण उस समय के अप्राप्त नहीं हैं जबकि कतिपय सरकारी न्याया-लयो में आर्य्य समाजी की साक्ष्य पर अनेक

साक्षियों के प्रतिकूल होने पर भी अभियोग का निर्णय किया गया। सारांश यह कि यह युग वैदिक धर्म का जीता जागता स्वरूप था और उसका देख कर अनेक पाश्चात्य उच्च कक्षा के पण्डित यह स्वप्न देखने लग गये थे कि सम्पूर्ण भूतल के मत मतान्तर शीघ्र ही दूर होकर वैदिक धर्म के प्रकाश मे मनुष्य मात्र विचरने लगेगा। सुशिक्षित अनेक मुसलमान और ईसाई महानुभाव आशा भरी दृष्टि से देखने लगे थे कि निकट भविष्य मे वैदिक धर्म के सार्वभौमिक सिद्धान्त उनको आर्य्य समाज की शरण मे आने के लिये बाध्य करेंगे।

(२) मध्ययुग—इस युग का नाम, संस्थायुग अधिक उचित प्रतीत होता है। इस युग में जिधर देखो उधर स्कूलो और कालिजो को समाज की ओर से स्थापित करने और खोलने की ध्वनि सामाजिक पुरुषो मे उत्पन्न हो गई। विशेष शिक्षित और प्रभावशाली पुरुष इन सस्थाओ केलिये पृथक् पृथक् और डेपूटेशनों द्वारा धन सचय के लिये सर्वथा प्रयत्नशील हो गये। स्वभावत आत्माभिमान और आत्मावलम्बन का भाव शनै शनै मद होकर संस्थाओ के लिये धन सग्रह का काम केवल शेष रह गया। हार्दिक प्रचार का भाव लुप्त हो गया। न स्वाध्याय रहा न धर्म मे श्रद्धा रही। इने गिने अवेतन और अशुल्क भोगी उच्च कक्षा के उपदेष्टाओ को छोड कर ऐसे वेतन भोगी अथवा शुल्क रागी उपदेशको के सिपुर्द प्रचार का काम हुआ जिनके कटु भाषण और साम्प्रामिका ध्वनि ने वैदिक सिद्धान्तो का आकर्षक बनाने के पलटे अपकर्षक रूप मे परिणत कर दिया। उपदेश का स्रोत वाणी थी न कि हृदय। यह उपदेश शुष्क और तीव्र रूप मे मूर्ति पूजा से श्रद्धा उठाने मे तो बहुत सफल हुआ। परन्तु मृतक श्राद्ध के रोकने मे नितान्त अशक्य रहा और जन्मगत जात पात के बन्धन को दूर करना तो पृथक रहा किन्तु सामाजिक पुरुष स्वय उसमे जातीय सभाओ द्वारा उसके पृथक् करने के प्रयास में अधिक सम्बद्ध हो गये। अन्त मे भूल से ऐसे मार्ग का अवलम्बन किया जिससे मुसलमान और ईसाई दोनों समुदायो को निश्चय हो गया कि आर्य्य समाज के निर्देशित सार्वभौमिक वैदिक सिद्धान्त केवल किताबी हैं। अन्यथा आर्य्य समाज और हिन्दुओ में कोई विभेदक अन्तर नहीं है। तथा आर्य्य पुरुष इस प्रणाली और संस्थाज य ईर्ष्या द्वेष और पारस्परिक कलह के कारण पहिले युग के प्रेम से लगभग शून्य हो गये। मूर्ति पूजा के स्थान मे ब्रह्मोपासना, मृतक श्राद्ध के स्थान मे जीवित माता पितादि की शास्त्रीय सेवा शुश्रूषा का कोई विशेष वातावरण, खण्डनात्मक और अश्रद्धात्मक कार्य्यो के स्थान मे मण्डनात्मक और श्रद्धात्मक व्यवस्था के उत्पन्न करने का उपरोक्त दशा में भला किसी को विचार ही क्या हो सकता था? केवल रुपया मागने और दान मे दक्ष और चतुर समाज के क्षेत्र मे विशेषज्ञ रह गये। जिस लालच से स्कूल और कालिज खोले गये थे वह तो स्वभावत स्वप्न रहना ही था किन्तु यह स्कूल और कालिज लगभग सर्वांश मे सामयिक शिक्षा के प्रवाह मे बहने को बाध्य होगये। इस प्रथा के दुष्परिणामों से बचने और वैदिक शिक्षा की प्रधानता द्वारा प्रथम युग को लौटाने के उद्देश्य से इसी युग मे गुरुकुलों की भी स्थापना हो गई है। परन्तु इस प्रयास का फल अभी भविष्य के गर्भ म है और उस पर इस समय कुछ न लिखना अधिक श्रेयस्कर है। उनसे मीठे फलो की आशा से विमुक्त होने के लिये सम्प्रति कोई पर्य्याप्त कारण नही है। फलत इस युग मे समाज पहले युग की प्रवाहित वैदिक धारा को प्रवाहित और समृद्धिशाली रखने मे ही अकृत कार्य्य नही हुआ किन्तु वह स्वय बहुत अंश तक सामयिक प्रवाह में बह गया और अब तक बह रहा है। नेतृत हुए बिना नेता होने की अप्रशंसनीय सामयिक (माडर्न) अभिलाषा और प्रथा ने सामाजिक क्षेत्र में भी अच्छे तल के नेताओं को बहुत कम उत्पन्न होने दिया। और नव वयस्को के किसी के भी नेतृत्व में नेतृत न होने की मनोवृत्ति ने अच्छे तल के कार्यकर्त्ता भी उत्पन्न बहुत कम होने दिये।

(३) तृतीय युग—इस युग मे वह समय लेता हूँ

जो जन्म शताब्दी काल से आरम्भ हुआ है। इस युग की संख्या वृद्धि-व्यसन काल के नाम से पुकारना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। न्यून से न्यून द्विगुण संख्या सामाजिकों को कर दिखलाने के आघोष से जो वास्तव में अच्छे भाव से किया गया था समाज में ऐसे पुरुषों का समावेश होगया है जो न ऋषिकृत ग्रन्थों से अभिज्ञ थे और न यह जानते थे कि वास्तव में आर्यसमाज क्या वस्तु है और उसका क्या उद्देश्य है। बहुतेरे महानुभाव तो ऐसे हैं जो केवल नमस्ते का नाता रखते हैं और अधिक से अधिक समाज के सहायक कहे जा सकते हैं। हां कुछ कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त पुरुष यथा ग्रेज्युएट अण्डर ग्रेज्युएट एल-एल० बी० डिगरी प्राप्त भी इस काल में दाखिल हुए हैं परन्तु लगभग सर्वतो दृष्ट्या यह महानुभाव न तो समाज के सिद्धान्तों और उद्देश्यों को समझ कर उसमें प्रविष्ट हुए हैं और न उनके हृदय उस वातावरण में परिपुष्ट हुए हैं जिनके भीतर धर्म की सच्ची लगन हो वा सहसा उत्पन्न हो सकती हो। अधिकतर उनमें से ऐसे ही सिद्ध हो रहे हैं जो समाज को राजनैतिक वा सोशैल संस्था समझते थे और राजनैतिक छल कपट प्रपंच मय चतुराइयो के अभ्यासी थे। और मसल मशहूर है कि विद्या एक हथियार है जो अच्छे काम में भी उपयुक्त हो सकता है और निकृष्ट काम में भी, इन महानुभावों के हाथ में यत्रतत्र समाज की नकेल होने के कारण समाज एक वाह्य आडम्बर की वस्तु बन गया है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में जहां मन्त्री और प्रधान होते हैं यदि कोई स्पर्धा है तो यह है कि समाज का वार्षिकोत्सव बहुत ठाठबाट से किया जावे और उस ठाठबाट का आदर्श यह है कि उपदेशकों और भजन मंडलियों का ठट्ठ लग जावे। और प्रत्येक कार्य में एक प्रकार की हृदय और श्रद्धा शून्य प्रदर्शिनी की रंगत आजावे। समाज के कार्यकर्त्ताओं में वैदिक सिद्धान्तों में प्रवीणता और स्वाध्याय की मात्रा इतनी बढ़ी हुई है कि उपदेश का प्रबन्ध अन्यो के लिये है उनके स्वयं बैठकर उपदेशों को श्रवण करने के लिये विविध आडम्बरों के कारण समय ही नहीं मिलता है अथवा ऐसा करने के लिये आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती है। प्रत्येक समाज अब सम्मेलनों के एकत्रित करने में भी प्रशंसा समझता है और चाहे जिलान्तर्गत लिखित भांति में पन्द्रह बीस वा उससे भी अधिक संख्या समाजो की क्यों न हो यदि उनमें से दशमांश वा पंचमांश भी शरीक हो गये तो उनका कागज़ी भांति में वह सम्मेलन प्रशंसनीय और विज्ञापनीय हो जाता है। फलतः अब समाज के भीतर जो स्वाध्याय श्रद्धा और भक्ति मे पहले से ही खोखला हो गया था कोई ऐसी बात शेष नहीं रही है जिससे शिक्षित वर्ग उसको आदर और उच्च भाव से देख सके अथवा उसकी ओर आकर्षित हो सके। हां मन्दिरप्रवेश हरिजन उद्धार आदि जब तब ऐसे आकर्षक सार्वजनिक आन्दोलन अवश्य उठ खड़े होते हैं जिनमे आर्यसामाजिक पुरुषो को नव वयस्कों के लिये थिएटर वा सिनेमा की भाँति कुछ रुचिकर व्यवसाय मिल जाता है और उनको पतित तर छोड़ जाता है।

उपरोक्त अन्धकारमय पहलू है जो अनुपात दृष्टया दूसरे और तीसरे युग मे प्रत्येक अनुशीलक को आर्यसमाज के इतिहास मे विद्यमान मिलेगा। पाठक गण भूल करेंगे यदि वह यह समझेंगे कि अपवाद रूप उज्ज्वल पहलू रखने वाले आर्यसमाज नहीं हैं अथवा अनेक आर्य्य सज्जन अब भी ऐसे नहीं हैं जो विद्या स्वाध्याय, तप और त्याग में किसी समाज के भूषण हो सकते हैं और जो अब भी उक्त दशा पर अविदित भांति मे आँसू बहा रहे हैं परन्तु सुव्यवस्था उत्पन्न करने मे इस कारण से अशक्य हैं कि नक्कारखाने में तूती की आवाज का सुना जाना असंभव सा ही है। जो हो अब देखना यह है कि भविष्य मे आर्यसमाज का क्या कर्त्तव्य होना चाहिये। निवेदक की सम्मति यह है:—

(१) कृत्रिम रूप सख्या वृद्धि का भाव सर्वथा छोड़कर जो नर-नारी वर्त्तमान काल में आर्यसमाज के सदस्य हैं उनको अपेक्षित मात्रा में वास्तविक आर्यसमाजी बनने और बनाने का प्रयत्न होना चाहिये। प्रत्येक सदस्य को चाहिये कि वह विशेषतः सत्यार्थप्रकाश के पूर्वार्ध भाग का नित्य प्रति स्वाध्याय आरम्भ करदे और बार बार उसका मनन और

निदिध्यासन करे और ब्रह्म मुहूर्त में उठने के अभ्यास पूर्वक ब्रह्मयज्ञ और देवयज्ञ (सन्ध्या और अग्निहोत्र) का सेवी बने।

(२) आर्यसमाज का संगठन इस प्रकार सुदृढ़ किया जावे कि जो नियम अब शिरोमणि सभा ने पास किये है उनके अनुसार ही आर्य्य सभासदो को बनाया जावे और यह ध्यान मे रक्खा जावे कि लोक चातुर्य्य और विद्या वहीं तक आदरणीय है जहॉ तक कि उसके साथ धर्म की लगन, श्रद्धा और शुभाचरण है तथा 'समाज की बागडोर सदा उन्ही के हाथ मे देनी योग्य है जो विद्वान स्वाध्याय और अनुभवशील, शुभाचरण और वैदिकधर्म मे अनुरक्त हैं' तथा जिनकी आयु लगभग चालीस वर्ष से न्यून नही है। आर्य्य सभासदो के बनाने मे भी यह बात बहुत अश तक ध्यान देने योग्य है। प्रत्येक दशा मे यह बात अत्यन्त सावधानी से ध्यान मे रखने योग्य है कि जिन लोगों मे चुंगी वा डिस्ट्रिक्टबोर्ड वा अन्य इसी प्रकार के सामयिक निर्वाचनकर्त्ता सगठनों के समान कैनवैसिंग (काना-फूंसी) का स्वभाव दुर्भाग्यवश पड़ा दृष्टि पड़े उन पुरुषो को कदापि आर्य्य सभासदी जैसे पवित्र और प्रबन्ध निर्माणक पद पर आसीन नही करना चाहिये क्योकि वास्तव मे इन्हीं आर्य्य सभासदो के ठीक ठीक निर्वाचित होने से उनके द्वारा आगे की प्रबन्ध रचना आदि का कार्य्य ठीक ठीक सम्पादन हो सकता है अन्यथा नही।

(३) समाजो की नियन्त्रण कर्त्री सभाओ का सम्यक् ध्यान कुछ काल के लिये समाजो और सामाजिक पुरुषो मे एक प्रकार की स्वाध्याय और संध्यादि की आत्मा फूंक देने की ओर लग जाना चाहिये और वाणी द्वारा उपदेश के अतिरिक्त आर्य्य भाषा मे विशेषतः ऐसी पुस्तक और पुस्तिकाओ को निर्माण और मुद्रित करा आर्यसमाजो और आर्य्य पुरुषो के पास सस्ते दामो मे पहुँचाना चाहिये जिनसे स्वाध्याय संध्यादि और शुभाचरण की ओर अपेक्षित प्रेरणा हो।

(४) ऐसी सुविधाओ के उत्पन्न करने और ऐसे शिक्षण के प्रबन्ध करने की आवश्यकता है जिसके द्वारा अवेतन भोगी और अशुल्क सेवी उपदेष्टाओ की शीघ्रतर वृद्धि हो और वेतन भोगी और शुल्क रोगी उपदेशकों की शृङ्खला समाप्त हो और जो वेतन भोगी वर्त्तमान काल मे उपदेष्टा हैं उनको रुपया मांगने और लाने के काम से सर्वथा मुक्त कर दिया जावे। और वेतन भोगी उपदेशको की संख्या मे वृद्धि न की जावे।

(५) प्रत्येक प्रान्त में शहरो के लिये केवल एक लकचरर कुछ काल के लिये नियुक्त किया जावे जो अंग्रेजी शिक्षको और कालिज के विद्यार्थियो मे वैदिक धर्म की महत्ता स्थापित कर सके और आर्य भाषा की ओर उनके विशेष ध्यान को आकर्षित कर सके। परन्तु इसके साथ साथ हिन्दी और अंग्रेजी के प्रचुर मात्रा में साहित्य मे पहुचाने की आवश्यकता है जिसके बिना वाणी द्वारा उत्पन्न हुए भाव और विचार कभी स्थिर और सुदृढ नहीं हो सकते।

(६) आर्य्य समाजो मे जो संस्थाएं ऐसी हैं जो अपने पैरो पर खडी नही है और जिनके लिये इधर उधर घूमकर द्रव्यसचय की आवश्यकता है उनको तत्काल ममता और मोह को त्यागकर बन्द कर दिया जावे और उनमे लगे धन और सम्पत्ति को अपने प्रारम्भिक सगठन द्वारा साक्षात वैदिक धर्म प्रचार मे लगा दिया जावे और आगे के लिये कोई नवीन संस्था बिना प्रान्तिक शिरोमणि सभा की आज्ञा के न खोली जावे। कम से कम आर्य्यों को ऐसी संस्थाओ की सहायता कदापि नहीं करनी चाहिये। परन्तु जो संस्थाएं स्वयं साध्य होने के कारण स्थिर रक्खी जावें और जिनके प्रबन्ध के लिये रजिस्ट्री शुदा पृथक् कमेटी वा कमेटियॉ न हो उनके प्रबन्ध का सम्बन्ध अन्तरंग सभा से साक्षात् न रक्खा जावे किन्तु उनके प्रबन्ध के लिये अन्तरंग सभा द्वारा कोई नियमानुसार उपसमिति बनाई जावे जो उसका साक्षात् प्रबन्ध करे। तथाच इन सम्पूर्ण स्वयं साध्य और अस्वयं साध्य संस्थाओ के लिये निम्न बातें अनिवार्य समझी जानी चाहिये अर्थात्

[अ] विद्यार्थियो के लिये एक ही प्रकार की

धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध हो जो प्रान्तिक वा सार्वदेशिक सभा द्वारा निश्चित की गई हो।

[क] सहशिक्षा (Co-education) अर्थात विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियोंके एकसाथ पढ़नेके रोगसे जसका विदेशोंकी भाँति इस देशमेंभी शनैः शनैः प्रवेश होता दृष्टि पड़ रहा है नितांत मुक्त रहना ही पर्याप्त नहीं है किन्तु इन संस्थाओं के प्रबन्धकों को उसके विपरीत तीव्र आन्दोलन खड़े करने की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये कि उनका वह पवित्र भारतवर्ष देश इस रोग के आक्रमण से बचा रहे और वैदिक संस्कृति के पुनः आवर्तन करा पाने का अवसर सदा के लिये न जाता रहे।

(७) प्रान्तिक संगठन में विद्वान् स्वाध्यायशील धर्मरत, अनुभवी दीर्घवयस्क पुरुषों का ही प्रतितिधि बनाकर भेजा जावे न कि केवल विद्वान् परंतु वाचाल अननुभवी नवयुवक पुरुषों को जिनके योग से संगठन शिथिल ही हो सकता है न कि सुदृढ़ और महत्व सूचक क्योंकि यह ध्रुव सार्वतन्त्रिक सिद्धांत है कि बिना अधिक वयस्क हुए और अनुभव प्राप्त किये तत्काल निष्णात विद्यार्थी चाहे उसने किसी भाषा के विद्यालय में उच्च शिक्षा क्यो न पाई हो प्रायः संगठन की महिमा के भार को समझने और वहन करने के योग्य कदापि नहीं हो सकता, हाँ शिक्षा के तलानुसार अपेक्षित अनुभव प्राप्त करने के लिये काल की मात्रा न्यूनाधिक हो सकती है। वास्तव में अन्तरंग सदस्य, अधिकारीवर्ग और उनमे भी क्रमशः मन्त्री और प्रधान के पद एक दूसरे से उत्तरोत्तर इतने गुरु और महत्त्वपूर्ण हैं कि उन पदो पर भूलकर भी ऐसे सज्जनों को पदासीन नहीं करना चाहिये जो पदों के लोलुप और भूखे हैं किन्तु उन पदों पर यथायोग्य उन पुरुषो को नियुक्त करने की आवश्यकता है जो इन पदो से अकृत्रिम भाँति मे बचने वाले हैं और उसी अवस्था में वह उन पदों को स्वीकार करने वाले हैं जब कि उनको दृष्टि मे उनके उन पदों पर आसीन न होने मे सामाजिक कार्यों में या तो क्षति पहुंचने की सम्भावना है अथवा स्वीकार करने से ही सामाजिक कार्यों मे विशेष उन्नति होने की आशा है तथा जो सर्व सम्मति से न चुने जाने को अपने लिये एक प्रकार का दोष समझने वाले हैं।

(८) ग्रामीणो की ओर उस समय तक विशेष ध्यान नहीं देना चाहिये जब तक कि आर्य्यसमाज का वर्त्तमान संगठन अधिक सुदृढ़ न हो जावे और विशेष प्रबन्ध और सुविधाओं द्वारा ऐसे अवेतन भोगी, ग्रामीणो के मध्य में रह कर प्रचार करने वाले महानुभाव न समुपस्थित हो जायें जो किसी सीमा तक चिकित्सक भी और ग्रामीणो के साधारण रोगों का आयुर्वेदिक प्रयोगों द्वारा निवारण कर सकते हों और स्वभाविक रूप मे इस प्रकार उनके प्रीतिभाजन और शिक्षक हो सकते हों।

(९) आर्य्यसमाज को रोटी बेटी सम्बन्ध के विषय में शीघ्रतर वैदिक वर्ण व्यवस्था का शुद्ध स्वरूप अपने भीतर समुपस्थित करने का उद्योग करना चाहिये और अपने से भिन्न समुदायों के साथ चाहे वह हिन्दू वा बौद्ध, मुसलमान हो वा ईसाई सबके साथ उसका समप्रेम का बर्ताव होना चाहिये। आर्य्यसमाज का ध्येय वैदिक संस्कृति है न कि कोई और। यदि उस संस्कृति से उपरोक्त किसी समुदाय की संस्कृति अधिक निकट है तो स्वभावतः उस संस्कृति के नर नारी सब से अधिक और सबसे शीघ्र आर्यसमाज में आकर्षित हो आवेंगे। हमको कोई आवश्यकता नहीं है कि किसी समुदाय के साथ तदात्म्यभाव को ग्रहणकर किसी अवैदिक बात में उसके साथी बनें और अपनी वैदिक वास्तविक स्थिति को अन्यथा समझे जाने का किसी को अवसर दें।

(१०) जहां तक स्वदेश अर्थात् भारतवर्ष का सम्बन्ध है हमको वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार के लिये प्रधानतया आर्य भाषा का माध्यम और तत्पश्चात् देवनागरी लिपि का माध्यम जो वैज्ञानिक आधार पर आरूढ़ होने के कारण, अब वा तब, सार्वभौमिक नही तो कम से कम सार्वदेशिक माध्यम बनने के सुसाध्य समर्थ और योग्य है इतने बल और लगन से सुदृढ़ पकड़ना चाहिये और तत्पश्चात

अँग्रेजी और उर्दू माध्यम को क्रमश: उतना ही महत्त्व देना चाहिये जो उन न देशों में इस देश को एक सूत्र में शीघ्रतर बांधने के लिये अनिवार्य है, जिससे इसदेशका प्रत्येक मनुष्यसमुदायिक भावोको छोड़कर प्रेमपरक एकात्मभाव मे पुनः संगठित होने का सुअवसर निकट भविष्य मे प्राप्त कर सके। अन्त में पाठकगण से आशा है कि उक्त लेख मे जहाँ जहाँ वह आर्य पुरुषों और आर्यसमाजो के विषय में अनुज्ज्वलता बोधक चित्रण का प्रसंग देखेंगे वहाँ-वहाँ उस प्रसंग के साथ साथ महर्षि दयानन्द के उच्च ध्येय का आदर्श अपने सम्मुख रखकर उस चित्रण का अभिप्रेत मूल्य स्थिर करेंगे। अन्यथा इस निवेदक की दृष्टि मे यह कहना साहसमात्र नही है कि आजकल को अन्य सम्पूर्ण मानवीय संगठनो की तुलना में सर्वतो दृष्ट्वा उन का तल इस समय भी ऊँचा ही है और यही कारण है कि अन्यो के साथ उनको अवतरित और प्रवाहित होता देखकर निवेदक को इतना खेद प्रदर्शन और सावधानी के संकेत करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई है। इसी के साथ साथ आर्य सज्जनो से भी अभ्यर्थना है कि वह आर्य-जगत मे ऐसी मनोवृत्ति उत्पन्न करने का भरसक उद्योग करे कि आर्यसमाज को प्रचुर मासिक वार्षिक वा अन्य प्रकार दान देते हुए भी उसके आगन्तुक के भीतर यह भावना जाग्रत हो कि वह पदों के लिये उसमें सम्मिलित नही हो रहा है किन्तु समाज मे शरीक होने मे उसका ध्येय अपनी आत्मोन्नति तथा स्वदेश और संसार की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक अवस्था के उत्कृष्टतर बनाने मे सहायक होने का विशेष उद्देश्य है जिसके लिये आर्यसमाज से बढ़कर दूसरा निर्भ्रान्त और उच्च क्षेत्र नहीं है।

"ऋषेरन्तःकरणम्"

कमलमंशुमवाप्य रवेर्यथा हिमकरस्य यथा कुमुदाकरः।
वीकसितं ऋग्साम तथा मनः कलिहरं सुखदं श्रुति दर्शनम्
—शिवचरणलाल सारस्वतः।

महर्षि से—

("राकेश")

[१]
हे सत्य—सन्ध! हे ऋषिवर!
हे सात्विक—मन! करुणाकर!
पावन कितना, कैसा था?
तव निर्मल—जीवन—निर्झर!

[२]
शुभ कर्म तुम्हारे सारे,
थे अद्भुत, अनुपम, न्यारे;
निज जीवन—ऊषा से ही,
तुम थे आदर्श हमारे।

[३]
सेवा समाज की करने,
चिर—वञ्चक—भ्रम को हरने;
त्यागा था तुमने सब कुछ,
साफल्य—श्री को वरने;

[४]
थे अनुपमेय तुम योगी,
शिवकर, शिव से विष—भोगी;
शिवमय थे जब तुम शिव में,
फिर कहाँ पराजय होगी!

[५]
घन दे चातक से कहना—
तुम भगो, यहाँ मत रहना—
था कृत्य तुम्हारा ही तो—
अथ मृत्यु—सरित में बहना।

[६]
फिर ऐक्य—भाव सिखलाने,
वह सोई ज्योति जगाने;
आओ, महर्षि! भारत में,
कलि—मानस—तिमिर भगाने।

ब्रह्माण्ड का विराट् यज्ञ

(ले०—पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती)

वेद मे प्राकृत नियमो से यज्ञ का वर्णन अनेक स्थलो पर स्पष्टरूप मे आता है, जिसमे कोई यज्ञ सामान्य और कोई विशेष है। जहा सामान्य यज्ञ का वर्णन है वहा सृष्टि के सब प्रधान भागो का यज्ञ के अङ्गो और साधनो के रूप मे निदर्शन कराया गया है। ब्रह्माण्ड की स्थापना जहा यज्ञ रूप मे की गई है वहा समस्त पृथिवी को ब्रह्माण्ड यज्ञ की वेदी सिद्ध किया गया है, जैसा कि यजुर्वेद अध्याय २३ के ६२ वें मन्त्र मे स्पष्ट है—"इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या। अर्थात् प्राकृत महान यज्ञ के लिए यह पृथिवी ही वेदि—यज्ञकुण्ड रूप है जिसकी यज्ञाग्नि का रूप 'अग्निर्होता कविक्रतु' कहते हुए भौतिक अग्नि को बताया है, और यह है भी ठीक! क्योंकि अग्नि ही सब पदार्थों को भस्म करने वाला है। पार्थिव, मनुष्यादि जड चेतन सभी को पृथ्वीरूप वेदी मे हव्यकव्य के रूप मे भस्म करने का कार्य अग्नि और केवल अग्नि का है। इस प्राकृत यज्ञ का मण्डप समस्त नक्षत्र चन्द्रमा सहित अन्तरिक्ष को माना गया है, और समस्त नक्षत्र चन्द्र तारकादि सहित अन्तरिक्ष द्वारा पृथ्वी रूप वेदी सुशोभित होती है। वायु इस यज्ञ का अध्वर्यु इस लिये कहा गया है कि उसी की चेष्टा और क्रिया द्वारा इस महान यज्ञ के हव्यकव्यों का यथास्थान सचय और प्रेषण होता रहता है। सूर्य इस यज्ञ के होमद्रव्यो को भस्म करने वाला अग्नि माना गया है। इसी प्रकार जगत के समस्त पदार्थ इस नैसर्गिक ब्रह्माण्ड यज्ञ के साधक सिद्ध किये गये है। गोपथ ब्राह्मण (१-१३) में तो स्पष्टत तमाहरत् येनायजन तस्याऽग्निर्होतासीत् वायुरध्वर्यु सूर्य उद्गाता चन्द्रमा ब्रह्मा पर्जन्यः सदस्य॥ अर्थात ब्रह्माण्ड यज्ञ का होता अग्नि, अध्वर्यु वायु, उद्गाता सूर्य, ब्रह्मा चन्द्रमा' और सदस्य वर्षा है।

ब्रह्माण्ड यज्ञ के देव पूजा, सगतिकरण और दान, कर्म, ग्रीष्म, शरद्, जल, वायु, प्रकाश और अन्धकार से होते हैं यह यज्ञ कल्प कल्पान्तरो पर्यन्त अहोरात्र रूप में होता ही रहता है जिसकी वेद मे स्पष्ट रूप मे इस प्रकार साक्षी दे रहा है यत्पुरुषेण हविषा देवायज्ञमतन्वत वसन्तो ऽस्यासीदाज्य ग्रीष्म इध्म शरद्धवि॥ अर्थात् पुरुषऽ के द्वारा हवि से देवता जिस यज्ञ को फैलाते हैं उस यज्ञ में वसन्त ऋतु घी है, ग्रीष्म ऋतु ईधन है, और शरद् ऋतु हवि है।

इस नैसर्गिक यज्ञ के होमनीय मनुष्य, पशु पक्षी, कीट, पतग, वृक्ष, लतादि सब पदार्थों की दुहने वा उत्पन्न करने के लिए देवताओं ने विराट् जगत् रूप एक पुरुष पशु नियत किया है कि इस विराट् पशु से मनुष्यादि उत्पन्न होकर पृथ्वी रूपी वेदी मे होम (लय) होने के लिये सतत सामग्री सनुपलब्ध होती रहे। इस सामान्य यज्ञ की सात परिधि अर्थात् मेखला है तथा बारह महीने, छह ऋतु तथा भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीन काल इस प्रकार इक्कीस समिधा इस महान् यज्ञ के लिए नियत की गइ हैं। जिस प्रकार समिधा रूप ईधन के यज्ञकुण्ड मे पडने वाला सब सम्यक हव्य कव्य भस्म हो जाता है वैसे ही इन काल विभागो के चक्र मे पडकर सब मानव और स्थावर जगम जीर्ण हो पृथ्वी रूप यज्ञ कुण्ड मे समाते जाते है। इसलिए यह नैसर्गिक यज्ञ ईश्वरीय सृष्टि के नियमानुकूल स्वयमेव क्षण प्रति क्षण हो रहा है। हमारे उपर्युक्त कथन का आधार इस प्रकार है।

सप्तास्यासन परिधयस्त्रिसप्त समिधः कृता
देवायद्यज्ञं तन्वानाअबध्नन पुरुष पशुम्॥

अग्निवायु आदि देवता स्वाभाविक यज्ञ का विस्तार करते हुए पुरुष अर्थात् विराट् जगत् रूप

शरीर को पशु रूप यज्ञ के लिए दुग्धादि के समान हविष्य बनाने के लिए बांधते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सामान्य यज्ञ का विधान वेद में है, इसी प्रकार इस विशेष प्राकृत ब्रह्माण्ड यज्ञ का भी वेद में वर्णन है, और अग्नि आदि एक एक देवता से उसका विशेष सम्बंध दिखाया गया है, यथा—"अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त" अर्थात् अग्नि को पशु नियत किया है और उससे यज्ञ हुआ। जिस प्रकार पशुजन्य घृतादि से होम होता है, उसी प्रकार आग्नेय पदार्थ जहाँ होम की सामग्री हो वहाँ अग्निसाधन यज्ञ होगा।

'अग्निर्वाअश्व' अग्नि ही को अश्व कहते है। अश्व शब्द 'आशु' अर्थात् शीघ्रगामी होने से जहाँ घोड़ा आदि पशुओं का वाचक है वहाँ अग्नि विद्युत शक्ति का भी—क्योंकि उसकी अपेक्षा आशुगामी कोई पदार्थ नहीं। वह इतने अल्प समय में अपना काम कर जाती है कि जिसका अनुमान करना भी कठिन है। विद्युत के प्रयोग से वायरलेस आदि का आविष्कार अग्नि की आशुगामिनी शक्ति का साक्षात् रूप में परिचय करा ही रहा है। अतः अश्व नाम्ना अग्नि के समस्त उत्कृष्ट गुणों को अपने शरीर, मन, आत्मा, पुत्र, कलत्रादि के उन्नत्यर्थ लगाने का काम अश्वमेध हो सकता है।

शतपथादि ग्रंथों में सम्भवतः इसी प्रकार से अग्नि आदि देवताओं से कार्य लेने वाले राजा को अश्वमेध का अधिकारी दिग्विजेता माना गया है। वहाँ स्पष्ट रूप में उल्लेख है—

सर्वाः वै देवता अश्वमेधे अन्वायत्ता तस्माद् अश्वमेधयाजी सर्व दिशा अभिजयन्ति'—अर्थात् सब देवता अश्वमेधमें आते हैं अश्वमेध करनेवाला सब दिशाओंके जीतनेवाला होता है। इसीलिए 'श्रीवैराष्ट्रं, राष्ट्रं वै अश्वमेधः तस्माद्राष्ट्री अश्वमेधेन यजेत्' आदिसे स्पष्ट है कि ऐश्वर्य ही राज्य है, राज्य ही अश्वमेध है और सम्राट् ही अश्वमेध करे।

विद्वान् लोग और भी प्रकार मनन और विचार पूर्वक यज्ञ के विविध रूपों की सिद्धि कर सकते हैं। और सब वेद के उपर्युक्त नैसर्गिक नियम के अनुसार ही, अन्यथा नहीं। ——

खेल

(लेखक—श्रीप्रो० मु शीरामजी शर्मा 'सोम' एम.ए.)

खेल क्या खेलोगे तुम आज ?
देश के ओ प्यारे युवराज !
तुम्हीं बूढ़े भारत की आस !
तुम्हीं हो श्वास तुम्हीं प्रश्वास ॥
देश गौरव के बल विश्वास।
तुम्हीं में संचित आत्म विकास ॥
तुम्हारे हाथ बचेगी लाज !
खेल क्या खेलोगे तुम आज ?
कभी केशारिया भगवा वस्त्र।
तुम्हीं ने धारण किये सशस्त्र ॥
कभी पीताम्बर धर सर्वत्र।
हुये हाथों में शोभित अस्त्र ॥
सजाते हो अब कैसा साज ?
खेल क्या खेलोगे तुम आज ?
चलायें तुमने तीर कमान।
कान तक तान अचूक निशान ॥
पटा, परिघा, खंजर, शर शान।
कुन्त करवाल विविध विध बान ॥
कहाँ वह आग ? कहाँ वह गाज ?
खेल क्या खेलोगे तुम आज ?
खिलौने खेल खेल बेमेल।
बढ़ाते हैं विषम विष—बेल ॥
बसाई जेल यातना भेल।
मुक्ति भी मिली न कोई गैल ॥
पाप का रहा विपाक विराज।
खेल क्या खेलोगे तुम आज ?
सूट धारण कर भर भर माँग।
पाउडर लेप सजावे साँग ॥
बैडमिन्टन टेनिस की माँग।
भुलाती रजत बहाने रोंग ॥
अरे, छोड़ो यह स्वाँग समाज।
खेल क्या खेलोगे तुम आज ?
देश के ओ प्यारे युव राज।

———

वेदों में मनुष्य आयु पर विचार

(ले०—श्री प० गोकुलचन्द्रजी दीक्षित)



संध्या में जो मंत्र आते हैं उनमे परम प्रसिद्ध मंत्र कि जिसमे प्राणी परमात्मा से प्रार्थना करता है कि–

"पश्येम शरदः शतम्"

अर्थात् परमात्मन् ! मैं सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवित रहूं। यहा यह भी विचारणीय हैं कि वेद ने वर्ष के बारह मासों में से न तो सौ वसन्तों का वर्णन किया न ग्रीष्म अथवा वर्षा का किन्तु सौ शरद का वर्णन किया कि भगवन् हमें सौ शरद देखने को मिले। पाणिनि आचार्य भी "श्राद्धे शरदः" सूत्र ही प्रवचन करते हैं यद्यपि शरद ऋतु मे न तो पिण्ड पितृ यज्ञ न आधुनिक श्राद्ध ही होते हैं यहां सौ शरद का वर्णन वर्षा, ग्रीष्म अथवा वसन्त का ही अनुकीर्तन मात्र है क्योंकि वर्ष के बारह मास मे यदि किसी भी मास का नाम वेदो में आता तो फिर भी यही शंका रहनी सम्भव थी कि जो अब 'शरद' के सम्बन्ध मे है। वेदों में शारदीय वर्णन रहस्य पूर्ण है। इस विषय में फिर कभी लिखा जावेगा। इसके अतिरिक्त दूसरी प्रार्थना आयुष्य वर्द्धन के लिये और भी हैं कि 'रोहेम शरदः शतम्' कि भगवन्! मेरे चक्षु सौ शरद तक देखने वाले बने रहें। पुनश्च-

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान्छतमुवसन्तान्। शत मिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमपुनर्दुः। "... . ...

शतमेव मेव शतात्मानं भवति।
शत मनर्न्तं भवति।
शत मेश्वर्य्यं भवति।
शतमिति शतं दीर्घमायु।

निरुक्तपरिशिष्टभागे

और इसी लिये जीव को यह आशीर्वाद दिया जाता है कि त्वंजीव शरदः शतं वर्द्धमानः। आयु वर्ष शतं नृणां परिमितम् आदि भर्तृ हरि के वाक्य से प्रतीत होता है कि मनुष्य की सौ वर्ष की ही आयु होना विद्वानो को भी अभिमत है।

परन्तु इसके विपरीत एक पक्ष और है कि जिसे प्राचीन ऋषियो से आधुनिक कालीन ऋषियो तक ने विचार की कसौटी पर कसा है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'त्र्यायुषं जमदग्ने काश्यपस्य"इस वेद मंत्र की व्याख्या करते हुये ऋषि दयानन्दने मनुष्य-आयु चारसौवर्षकी मानी है इसी प्रकार यज्ञ परिभाषा सूत्रों में

शाक्ष सम्भवा दिति भारद्वाज'। ५

अर्थात् भारद्वाज ऋषि यह मानते हैं कि "मित्र विन्दयाऽऽयुष्कामो यजेत" इस वाक्य से 'कोऽपि दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारा सेवितं मित्र विन्दाद्यु पाय मधि मात्र तीव्र संवेगेनानुष्ठास्यति तस्य सहस्त्रा युष्ट्वं सम्भवतीति भारद्वाज आचार्यों मन्यते' अर्थात् मित्रविन्दा यज्ञ से सहस्त्र वर्ष का आयु हो जाना भारद्वाज के मत में है। सुश्रुत महर्षि रसायनो द्वारा दश सहस्त्र वर्ष की आयु हो जाना मानते हैं। (सिद्धनागार्जुन के तन्त्र भी इसी प्रकार के हैं) इसके अतिरिक्त "दिव्यं वर्ष सहस्त्रं" इत्यादि वाक्यों मे भी पुरा कल्पीय लागो की आयु सहस्त्र वर्ष की वतलाई गई है—(कातीय श्रौत सूत्र)। मीमांसा शास्त्र मे—

"विप्रतिषेधात्तु गुणयन्यतरः स्यादिति लावुकायन" लावुकायन ऋषि का मत दिखलाया है और "गुणयन्यन्तर" से दिव्य सहस्त्र वष का अध्ययन गौण मान कर आयु का ही परिमाण परिसंख्या किया गया है और उसमें युक्ति यह दी है कि जैसे कोई कहे कि "सिंहो देवदत्तः" कि देवदत्त सिंह है इसी प्रकार इस भाव का कोई यह अर्थ करें कि "सहस्त्र वर्ष का आयुष्य नहीं होता" यहां सहस्त्र संख्या अन्य की द्योतक है तो यह कथन मुख्य न होकर गौण ही होगा क्योंकि 'देवदत्त सिंह नही हो सकता" अपतु देवदत्त का पुरुषार्थ सिंह वत् होने से नृसिहत्व का वोधक होगा जैमिनि आचार्य

ने मीमांसा सूत्र ३० अध्याय छः के सातवें पाद मे सूत्र प्रवचन किया है कि—

अर्थवादो वा विधिशेषत्वात्त स्मान्नित्यानुवादः स्यात्। अर्थात् अर्थवाद के कारण सहस्रो वर्षों की आयु का कथन है क्योंकि विधि शेषत्वात् (वेद प्रमाण पाये जाने से) इस लिये नित्यानुवादः अर्थात् वेदार्थ का ही अनुवादक अर्थवाद है। अन्यार्थ का विधायक नही। तब यह सिद्ध हुआ कि महर्षि दयानन्द, भरद्वाज, सुश्रुत, लावुकायन और जैमिनि इस बात को अर्थवाद से मानते थे कि सौ वर्ष से भी अधिक मनुष्य की आयु हो सकती है क्योंकि मित्रविन्दादि आयुष्य वर्द्धक सत्रो का वर्णन पाया जाता है जिसमें आयु वृद्धि के उपाय मत्रो द्वारा बतलाये हैं।

यहा यह प्रश्न उठता है कि वेदों के विरुद्ध क्या कोई यज्ञ हो सकता है ? क्योंकि विधि विधायक मन्त्रो द्वारा ही यज्ञ सम्पादन होता है और विधि मे पश्येम शरदः शतम् "रोहेम् शरदः शतम्" आदि आदि और भी मंत्र हैं कि जिनमे सौ वर्ष से अधिक आयु के लिये प्रार्थना करना नही बतलाया अत. इस पर विचार किया जाता है।

सब से पहिले ऋषि दयानन्द ने पश्येम शरदः शतम् के होते हुये भी 'त्र्यायुषं जमदग्ने कश्यपस्य की व्याख्या चार सौ वर्ष की आयु परक क्यों की शास्त्र अनुशीलन से यह पता चलता है कि ऋषि दयानन्द ऋषि परम्परा के एक मात्र समर्थक और स्थापक थे उन्हें महाभाष्य में जब पतञ्जलि का ऐसा प्रवचन मिला कि "दीर्घ सत्राणि वार्ष शत द्वानि वार्ष,सहस्त्रकाणि,च। न चाद्यत्वे कश्चिदपि व्यव हरति केवल मृषि सम्प्रदायो धर्म इति कृत्वा याज्ञिकाः शास्त्रेणानु विदधते"।

पतञ्जलि ऋषि ने यहां यह स्पष्ट माना है कि अधिक आयु मनुष्य क्षीण होने से इतने बड़े सत्रयज्ञ मनुष्य नही कर पाता अथवा करता इसकी अर्था पत्ति से निश्चय होता है कि यदि तीनों काल में जब कर्मी भी संभव हो और मनुष्य को दिव्य सहस्त्र वर्ष की आयु मिले तो विधि विधायक यज्ञ मनुष्य सहस्त्र वर्ष पर्य्यन्त कर सकता है यही नही किन्तु पतञ्जलि के विद्यमान समय में सत्रो के अतिरिक्त भिन्न २ यज्ञ भी प्रचलित थे अतः सहस्त्र वर्ष के आयु की धारणा नितान्त निर्मूल नहीं हैं।

कात्यायन के मत से भी यदि जब कभी भी सहस्त्रायुष्य (हजार वर्ष की आयु) मिले सत्र यज्ञ हो सकते हैं। इससे प्रमाणित हुआ कि ऋषि दयानन्द का वचन ऋषि सम्मत है और वेद विरुद्ध भी नहीं क्यों कि सत्र यज्ञ वेदा नुकूल हैं। मीमांसा दर्शन मे यह प्रश्न उठाया गया है कि—

निर्देशाद्वा तद्धर्मे स्यात् पञ्चावत्त वत्। २८। ६। ७

कि आदि सृष्टि के मनुष्यो के भी देह भौतिक पांच तत्वो के बने थे। और अन्य धर्म भी समान थे कोई अलौकिक सामर्थ्य न थे। इसीलिये "सदा चारेण पुरुषः शत वर्षाणि जीवति" इस प्रवचन में सदाचार से सौ वर्ष तक जीता है आख्यान किया गया है। इसी निमित्त मीमांसाकार "विधैतु वेद संयो-गा दुपदेश. स्यात्। २६। ६। ७।

इस सूत्र में यह ज्ञापन करते है कि वेद के सम्ब-न्ध द्वारा उपदेश पाये जाने से सौ वर्ष की आयु वेद मे विधान की गई है। इसको और पुष्ट करने के लिये वे पुनः उन्हे यह सूत्र बनाना पड़ा कि "सहस्र सम्वत्सरं तादायुषाम सम्भात् मनुष्येषु। ३१।६।७। कि सहस्र वर्ष की आयु मनुष्य की होनी असम्भव है इसलिये यहां यह मानना चाहिये कि—

"अपिवा तदधिकारान्मनुष्य धर्मः स्यात् ३२। ६ ७। कि यहां अध्यापन मे मनुष्यो का अधिकार पाये जाने से मनुष्य धर्म ही मानना होगा नकि देवादिकों का।

तब वेद के इस वाक्यो की सौ वर्ष तक हम जीवें अथवा इस श्रुति द्वन्दी वाक्य का कि "दिव्यं वर्ष सहस्त्र' पर्यन्त हम जीवें क. यथार्थ भाव क्या है। केवल यह कि ' शत, सहस्र वाची हो।"

महर्षि कार्ष्णाजिनि ने इसकी मीमांसा करते हुये यह प्रवचन किया कि "स कुलकल्प स्यादिति······ एकस्मिन्नसम्भवात्।" कि यहां कुल कल्प अर्थात् दिव्य सहस्र वर्ष अध्ययन मानना चाहिये वह एक कुल का है क्योंकि एक पुरुष में सहस्र वर्ष अध्ययन

संभव नहीं। परन्तु पूर्व पक्ष करने वाला शंका करता है कि—

"अपिवा कृत्स्न संयोगा देकस्यैव प्रयोगः स्यात ३६। ६। ७।" किकृतरन शब्द के साथ सम्बन्ध पाये जाने से 'एक का" ही निश्चय सम्बन्ध है न कि "कुल का।" इससे यही मीमांसा की गई कि दिव्य सहस्त्र वर्ष में 'वर्ष' की व्याख्या है कि जिसकी इतनी दिव्यता है। वहां कहते हैं कि –

सम्वत्सरो विचालित्वात्। ३८। ६।७।

सम्वत्सर शब्द एक अर्थवाची नहीं,कहीं चन्द्रमा कहीं दिन, और कहीं ऋतुओं का वाचक है। अत स्थान की योग्यता से ही अर्थ लिया जावेगा न कि गौण। दूसरे यह भी कि—

* अहानिवाऽभि संख्यत्वात्। ४०। ६। ७।

दिन में सम्वत्सर शब्द वर्त्तता है। "कुल सत्र मिति कार्ष्णाजिनिः।" इस परिभाषा सूत्र से पिता-पुत्र, पौत्र, तथा प्रपौत्र अनेक पीढ़ियो पर्यन्त मनुष्य सहस्त्र वर्ष के सत्र यज्ञ को कर सकता है यदि ऐसा होना असम्भव हो तो

साम्युत्थान मिति लौगाक्षि.।

आधा सत्र करके समाप्त कर देवे इस लौगाक्षि आचार्य के प्रवचन से विस्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने इसी आधार पर सहस्त्र वर्ष के अर्थ को तीन सौ या चार सौ कहा है क्योकि यहां पर सत्रयज्ञ की चर्चा है जो दिव्य सहस्त्र वर्ष पर्यन्त रहनी चाहिये। इसके अतिरिक्त योगियों की अवस्था का भी दिव्य विचार है जो प्राणायामादि ब्रह्मचर्य से चिरायु होते हैं। निष्कर्ष यह निकला है कि वेदों में शतं जी वेम शरदः से तात्पर्य केवल एक जीवन में सौ वर्ष की आयु के प्रार्थना करनी चाहिये और कुल कल्प पर्य्यन्त सत्रयज्ञ के लिये दिव्य सहस्त्र वर्ष पर्य्यन्त जीने कीइच्छा से प्रार्थना करनी चाहिये क्योंकि वेदो-हिअखिलो धर्मः। और उसमे वर्णित यज्ञ, अध्ययन और अध्यापन कुलकल्प में प्रचलित रहने चाहिये और शतपथ ब्राह्मण में भी एक ही दिन में छः ऋतु बीतने का यही अर्थ होगा कि जो दिव्य सहस्त्र वर्ष मे कुल कल्प का है। और "भूयश्च शरद शतात्" कहने से आयु का अधिक अनियत होना बतलाया अत कभी कभी किसी किसी का सहस्त्रायु होना सम्भव है। क्योंकि काया कल्प विधान सत् शास्त्रों मे पाये जाते हैं।

* यहां शावर भाष्य मे दिन का सम्वत्सर मे वर्त्तना इस प्रकार माना है कि सूर्योदय से बसन्त, मध्यदिन वर्षा, पूर्णोदय से ग्रीष्म, ढलने से शरद एक ही दिन में वर्ते जाते हैं। यह कातीय श्रौत सूत्र के आधार पर लिखा है।

—

हमारे ऋषि का वेदार्थ

(ले०—श्री प० विहारीलालजी शास्त्री काव्यतीर्थ)

समग्र मानव मंडल पर पहले वेद का प्रभाव था, इसके अब अनेक पुष्ट प्रमाण उपलब्ध हो रहे है। "भारत से बाहर के देशों मे वैदिक कर्म धर्म का ही प्रचार था" इस धारणा के अब अनेक ऐतिहासिक प्रमाण मिल रहे हैं। परन्तु आज भी प्रत्येक विद्या का प्रयोग मनुष्य अपने सात्विक, राजस, तामस स्वभाव के अनुसार उत्तम मध्यम और निकृष्ट करता है। उसी प्रकार पुराकाल में भी था। आज भी विज्ञान (Science) का उपयोग नरसंहार मे भी हो रहा है और मानव उपकार मे भी। ठीक इसी प्रकार वेद का प्रयोग दैवी प्रकृति वालो ने शुभ कर्म मे किया, और आसुरी प्रकृति वालो ने अशुभ कर्मों मे। उदाहरणतः "होइहै सोई जो राम रचि राखा, को करि तर्क बढ़ावहि शाखा।" इस चौपाई को एक व्यौपारी व्यौपार के उलझनो को जब सोचते सोचते थक जाता है तो मन को विराम देने के लिये बोलता है। तात्पर्य यह कि तेज़ी मन्दी जो कुछ होगी देखी जायगी। अब कौन माथा पच्ची करे। एक किसान पकी हुई खेती के समय आकाश को घटाओ से आच्छादि देख कर भी यही चौपाई पढ़कर चिन्ता से छुटकारा पाना चाहता है कि जो कुछ होगा देखा जायगा। खेती मारी जाय या बचे मेरा वश क्या है। भगवान् का भक्त अनेक आपदाओ के सहते हुये भी अधीर नही होता। और निश्चित करता है मैं तो अपना कर्त्तव्य पाले जाऊंगा आगे भगवान् की मर्ज़ी। परन्तु एक चोर भी इसे पढ़ता है इस आशय से कि चलो अब सेंध लगाओ, लूट का प्रारम्भ करो। जो भगवान् करे सो होगा। ग़रज़ यह कि इस चौपाई का प्रयोग अपनी अपनी मंशा के अनुसार भले बुरे सब कर सकते हैं। चौपाई उनको रोक नहीं सकती। चौपाई ही क्या, ईश्वर तक का नाम अच्छे बुरे सब कामो मे ले लेते हैं। परन्तु इसमें ईश्वर के नाम का क्या दोष ? ठीक इसी प्रकार वेदों का विनियोग देव दानव सब ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार किया। धार्मिक आर्यजनो ने अपने लोक हितकारी कामो को वेद मंत्र पढ़ पढ़ कर किया और अधर्मी राक्षसो ने अपने हिंसामय स्वार्थपूर्ण काम, वेद मंत्र पढ़ पढ़ कर किये। आर्य भगवान को करुणा वरुणालय जान भगवान की प्रसन्नता के लिये सर्वभूतो की कल्याण कामना से यज्ञ करते रहे, और राक्षसो ने अपने इष्टदेव को भी अपने समान क्रूर मानकर हिंसामय कामो से उसे रिझाना चाहा, और अपने अपने कामो को करते रहे वेद मंत्र पढ़ कर। इनके अपने अपने धर्म गुरुओं ने उनकी रीतियो को क्रम बद्ध किया और देवता व राक्षसो की यही अलग अलग पद्धतियाँ हो गयी। यज्ञ दोनों करते थे मगर देव हिंसा रहित और राक्षस हिंसा सहित। वेद मंत्र दोनो पढ़ते थे एक समझ बूझकर एक अन समझे। धीरे धीरे दोनो प्रकार के लोगों में मेलजोल का परिणाम यह हुआ कि एक दूसरे की यज्ञ विधियाँ गड़बड़ हो गयी। वेद के ज्ञानात्मक प्रचार के कम हो जाने से वेद को केवल यज्ञ मे पढ़ने की पुस्तक मान लिया गया। उसके अर्थ की उपेक्षा करदी। बस यही से ब्राह्मण ग्रन्थ और सूत्र ग्रन्थो में हिंसा का विधान हुआ। देवताओ की विधि निर्बल पड़ गई और राक्षसो की विधि बल पकड़ गई। वेद के अर्थ के पीछे मनुष्य नहीं चलता था किन्तु मनुष्य की रीतियो के पीछे वेद दौड़ने लगा। वेद के अनुसार ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थो को चलने की ज़रूरत नहीं रही। किन्तु सूत्र ग्रन्थो और ब्राह्मण ग्रन्थो का अनुसरण वेद को करना पड़ा। "मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् (मित्र की दृष्टि से प्राणी मात्र को देखे) का उपदेश देने वाले वेद केवल हिंसापूर्ण यज्ञो मे गाने के गीत रह गये। "शन्नो भवंतु द्विपदे शं चतुष्पदे की प्रार्थना सिखाने वाली भगवती श्रुति पशुओ की हत्या कराने वाली बना डाली गयी" कहाँ

तो "गां मा हिंसीरदितिं विराजम्" यजु० १३।४३ का उपदेश और कहाँ गोमेध मे गोवध' कहाँ तो गौ को वेद अघ्न्या बतलावे और कहाँ याज्ञिक लोग गोवध करावें। अथर्ववेद काण्ड १० । अ० ५ सूत्र १० मंत्र ११ में अघ्न्या शब्द पड़ा हुआ है। परन्तु श्रीसायणाचार्य जी इसी सूक्त पर लिखते हैं "आघायताम्, इति सूक्तम्, आहुत्यर्थं गोवधे विनियुज्यते"। शिव शिव आर्यजाति राक्षस बन गयी।

† येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिना यनायिषत।
कुटजे खलु तेनेहा तेने हा मधुकरेण कथम्॥

अध्वर (हिंसा रहित) जिसका नाम वेद ने बताया वह यज्ञ हिंसामय बन गया। दयामयी यज्ञस्थली सूनागृह (कसाई खाना) हो गयी। ऐसे समय में जो भाष्यकार हुये वे भ्रम में फँस गये। सर्व शास्त्र निष्णात होते हुए भी वे तात्कालिक यज्ञ विधियों में उलझ गये। हिंसा-विधायक सूत्र और ब्राह्मण ग्रन्थो के रोब में आकर इन्होंने वेद के अर्थ को इनके अनुसार कर डाला। हिंसाप्रिय याज्ञिकों के सूत्र जाल को ये न काट सके। विद्वन्मान्य स्वर्गीय श्री सत्यव्रत सामश्रमीजी ने ठीक ही लिखा है—

‡ "वस्तुतो भ्रान्ताच्छन्न विज्ञानकालिकानामशेष शेमुषीनामपि तेषां सायणमहीधरादीनामधि देवतार्थ तोऽपि मंत्राभिप्रेत प्रकृतविज्ञान नैवस्फुरितं सम्यगितिवक्ष्योऽवश्यमेवाभवत्' ऐतरेयालोचन१८९॥

श्री सायण महीधर से सर्व तंत्र विद्वान् तो वेद के अर्थोद्धार की कामना करते हुए भी वेद के जिस सदर्थ को प्रकट न कर सके उसे अपने विचारात्मक तपोबल से ऋषि दयानन्द प्रकट करने में समर्थ हुये। नीचे एक मंत्र दिया जाता है जिससे पाठक जान सकेंगे कि वेद का हमारे ऋषि ने वास्तविक अर्थ कैसी भली प्रकार प्रदर्शित किया है।

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुन्तेशुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि। य० ६।१४

"पशोःप्राणांछुन्धति पत्नी मुखंनासिके चक्षुषी कर्णौ नाभिं मेढ्रं पायुं पादान्संहृत्य वाचन्ते शुन्धामि इति प्रति मन्त्रमिति। का० ६।६।२।३

पत्नी पशुसमीपे उपविश्य मृतस्य पशोः प्राणान्मुखादीन्यष्टौ प्राणायतनानि प्रति मंत्रं शुन्धति शोधयति अद्भिः स्पृशति इति सूत्रार्थः" पशुदेवत्वानि, हे पशो अहम् ते वाच वागिन्द्रियं शुन्धामि शोधयामि चरन्तिगच्छन्त्येभिरितिचरित्रा पादा एवंत्वदीयानि सर्वेन्द्रियाणि शुन्धामि। —महीधरभाष्य।

यहाँ कात्यायन सूत्र को मुख्य स्थान देकर महीधरजी ने वेदार्थ को उसी ओर घसीटा है, पर तमाशा यह है कि मरे हुये पशु से यजमान पत्नी कहरही है। "हे पशो" मैं तेरे वाणी आदि अंगो और चरित्र अर्थात् पाँवो को शुद्ध करती हूँ। जल से धोती हूँ।

सूत्र ग्रन्थों ने भाष्यकार को बुद्धि का प्रयोग करने से रोक दिया। वरना मरे पशु को यजमान पत्नी से सम्बोधन न कराते। बुद्धिमान विचारें कि क्या मरा पशु सुन रहा है। क्या माँस धोने मात्र को विनियुक्त होने से वेद मन्त्र का कोई गौरव बढ़ेगा? क्या यह नृशंसतापूर्ण क्रिया में वेद को धर्म पुस्तक सिद्ध होने देंगे? क्या वेद भगवान् को वामीय मत प्रवर्त्तक कात्यायन सूत्र के आधीन कर देना उचित है? अच्छा ऋषि दयानन्द के अर्थ पर विचार करिये तो इस मंत्र के देवता विद्वान् हैं अतः स्वामी जी महाराज ने यह युक्ति शिष्य के प्रति गुरु की मानी है। गुरु का काम है कि शिष्य को ऐसी शिक्षा दे कि शिष्य की वाणी मीठी रहे, प्राण बलिष्ट रहें नेत्र और कानों की शक्ति बनी रहे, नाभि की क्रिया ठीक होती रहे, ताकि पाचन ठीक हो, उपस्थेन्द्रिय गुदेन्द्रिय रोग पीड़ित न हो। अत. उसे सावधान करदें और ब्रह्मचर्य की शिक्षा दें। यह विद्वानो का काम है कि बालको को कुटिलो से सावधान रक्खें और स्वास्थ्य रक्षा का उपदेश दें। इसी भाव से ऋषि दयानन्द "चरित्रान्" का अर्थ "व्यवहारान्" करते हैं।

अब खींचा तानी को देखिये कि किधर है:— वाममार्गी सूत्र का वेद से अनुसरण कराने के लिये

† कमल वन वाला भ्रमर कुटज में उलझ गया।

‡ भ्रमवश से आच्छन्न समय में होने के कारण परम विद्वान होते हुए भी सायणमहीधरादि वैदिक विज्ञान न जान सकें यह शोक है।

महीधरजी "चरित्र' शब्द का अर्थ पाद (पाँव) करते हैं और ऋषि दयानन्द चरित्र शब्द का लोक प्रसिद्ध अर्थ 'व्यवहार करते हैं तुलनात्मक शब्द (Comparative Philology) की रीति से भी अर्थों पर विचार किया जाय तो चरित्र के लिये अंगरेजी शब्द (Charac or) है c t मिलकर "च' होता है लिखा अंगरेजी में भी 'चेरेक्टर' गया। बाला कैरेकृर गया। यह चरित्र का ही अपभ्रंश है। अर्थ वही व्यवहार के हैं। चरित्र शब्द के अर्थ पाव करने म महीधर जी को खैंचातानी करनी पड़ी है, इससे अगल मन्त्रमें है। ओषधे त्रायस्व मनथ्ंहिसी', अ षधि इसका रक्षा करे इसे कष्ट न हो। अब बुद्धिजीवी जन विचारें। क्या मृत पशु की ओषधि रक्षा करेगी? क्या उसको औषधि कष्ट से बचायेगी ? ऋषि दयानन्द का अर्थ स्पष्ट है और शिक्षाप्रद तथा वदों का गौरव बढ़ाने वाला। वह मन्त्र ने गुरू का कर्त्तव्य बताया कि यह शिष्य को केवल मानसिक शिक्षा ही देकर सतोष न करले। किन्तु उसके आचार की भी रक्षा करे। उसके प्रत्येक इन्द्रिय और अग मन प्राण तथा बुद्धि को पवित्र बनावे। शारीरिक उन्नति मानसिक उन्नति के साथ आचरण को दृढ़ करदे। यहाँ गुरू शिष्य के प्रति अपने कर्त्तव्य को कहता है, वहाँ मुर्दा पशु के मांस का धोती हुई यजमान पत्नी राग गा रही है। एक पामर पौराणिक ने "पायुन्त शुन्धामि, मेढ़ ते शुन्धामि, को देखकर मजाक उड़ाया है वह इसमें अश्लीलता देखता है। पर कुण्ठित मति वाले इस भाई को यह नहीं मालूम कि शरीर विज्ञान की शिक्षा देने में यह शब्द अश्लील नहीं माने जाते। शिष्य और शिष्याओं को गुरू और गुरूवानियाँ नि संकोच गुप्तेन्द्रियों में होने वाले रोगों और उनके कारणों से अवगत कर दिया करे तो बहुत सी बालक बालिकाओं के सदाचार और स्वाध्याय की रक्षा हो जाया करे मातायें यदि लड़कियों को रजोधर्म क समय रखने वाली सावधानियों को बता दिया करें तो बहुत सी लड़कियाँ प्रदर का शिकार होने से बच जायें। गुरु लोग यदि विद्यार्थियों को मिथ्या लज्जा को छोड़कर नवयौवन के प्रारम्भ में सावधान कर दिया करें तो अनेक नवयुवक कुटेवों से बच र अपने स्वास्थ्य को बना सकें। प्रमेह का रोग बहुत कुछ जाता रहे। ऋषि दयानन्द ने इस विषय में सत्यार्थप्रकाश में कई जगह सावधान किया है और यही सावधानी वेद मन्त्र सिखाता है। यह है ऋषि दयानन्द की वेदमर्मज्ञता।



श्री प० धुरेन्द्रजी शास्त्री न्यायभूषण
आजकल आप महाराज कुमार शाहपुरा को धार्मिक शिक्षा दे रहे हैं।

गृहदेवियों की प्रवृत्ति

(ले०—श्रीमती रूपकान्तादेवी आर्योपदेशिका)



आर्य शास्त्रों में गृहिणी को घर की लक्ष्मी बतलाया है और उसका कर्तव्य गृह कार्यों का सम्पादन ही है। परन्तु आज पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में पड़कर जहाँ पुरुष स्वयं अपने कर्त्तव्य पथ से पृथक् हो गये हैं। वहाँ स्त्रियों के अन्दर से भी अपनी रही सही सभ्यता और शिक्षा का लाप



लेखिका

होता हुआ दिखाई दे रहा है। यह क्या कम शोचनीय अवस्था है कि जिन आर्य कुलललनाओं ने अपने सतीत्व, अपनी प्राचीन मान मर्यादा, आर्य संस्कृति और सभ्यता को मुसलमानी समय में भी वीरता पूर्वक आततायियों से सुरक्षित रखने मे भी अपनी सफल सामर्थ्य दिखाई थी वहां आज पाश्चात्य सभ्यता की छाप बड़े वेग के साथ प्राचीन संस्कृति के ठेकेदार आर्यसमाजियों के घरों तक में विदेशी वेष भूषा और शिक्षा के रूपमे घर करती दिखाई देरही है। मुझे ना यह कहने मे तनक भी संकोच नहीं जो गृह देवियाँ आज से कुछ दिन पूर्व गृह स्वामिनी बनी हुई थीं आज पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण में गृह कार्य को गर्हित समझ कर पराई नौकरी बजाने में अपना भाग्य और कल्याण समझ रही हैं। मानाकि आज हमने पश्चिम के अनुकरण में आवश्यकताएँ इतनी बढ़ाली हैं कि स्त्री के बिना कुछ कमाए गृहस्थ की गाड़ी चलना असम्भव प्रतीत होता है। परन्तु इसमें भी दोष किसका ? एक समय था जब स्त्री के धनोपाजन को हमारे यहाँ घृणित कहा जाता था, यहाँ तक कि माता पिता के दिए हुए स्त्री धन को पति अथवा उसके कुटम्बी कभी अपने काम में न लाते थे। परन्तु आज यह अवस्था है कि स्त्रियों से जगह जगह नौकरी कराई जाती है और स्त्रियों को गृह लक्ष्मी के स्थान पर कार्यालयों में क्लर्क बनाने का प्रयत्न किया जाता है जिसका स्वाभाविक परिणाम यह हो रहा है कि भारत का भविष्य सभालने के लिए जाति के अन्दर उपयुक्त संतान नहीं बन रही है जिन माताओं ने अपने घरों मे रह कर गृह देवी कहलाकर अपने घर को स्वयं सभाला, उनकी संतानें राम, अर्जुन, कृष्ण, दयानन्द आदि बनीं। क्या जो माताएँ अपनी सन्तान के सभालने आदि गृहस्थ के संचालन का भार पुरुषों पर अथवा वैतनिक सेवकों पर छोड़कर घर से बाहर के कामों में जुट पड़ी हैं, क्या यह सम्भव है कि उनकी संतानें कभी देश और जाति का कल्याण कर सकेंगी। क्या परतन्त्रता के वातावरण में पली देवियों की संतान कभी भारत को स्वतन्त्र कर सकेगी। इस प्रश्न पर बड़ी गंभीरता पूर्वक देश के सच्चे हितैषियों को विचार करना चाहिए।

खरी बात

आर्य बन्धुओं के प्रति

(रचियता श्री कर्णकविजी)

—— × ——

(१)

जारहे किधर आर्य्येवर ! आप,
होरहा है कितना अपलाप ?
कीजिये इस पर गहन विचार;
भाव निज रखते हुए उदार ॥

(२)

आपका प्यारा आर्य्य—समाज;
खोरहा अपना गौरव आज।
आपही इसमें कारण एक;
आप इसका रखते न विवेक ॥

(३)

आप करते हैं वेद—प्रचार;
चरित का करते हैं न सुधार।
आपमें दल—बन्दी का रोग;
इसे कटु अनुभव करते लोग ॥

(४)

आपका सामाजिक सत्सङ्ग;
हो गया है विवाद का अङ्ग।
आप वह करते हैं व्यापार,
कि जिससे होता कष्ट अपार ॥

(५)

आपके साथ वही हैं लोग,
कि जो करते कटु नीति प्रयोग।
आपके भाव नहीं वे आज,
कि जिससे फूले—फले समाज ॥

(६)

नहीं वह आज आपकी ताल,
नहीं वह आज आपका मोल।
दूर हैं आप ध्येय से आज,
नाम ही के हो आर्य्य—समाज !

(७)

आपकी हैं विधवा व्यापार
आपके हैं अनाथ पौवार।
कहें क्या इससे भी विस्पष्ट,
इसे कह कर होता है कष्ट ॥

(८)

आपके पद लिप्सा के भाव,
आपका घटा रहे सुप्रभाव।
आप लड़-लड़ आपसमें आज,
खो रहे हैं समाज की लाज ॥

(९)

आप हैं प्रायः अनय प्रधान,
आप में है कौटिल्य महान।
आपके कलुषित सारे कार्य्य,
आप कहलाने ही के आर्य्य !

(१०)

आप रखते जैसा उद्देश,
आप करते जैसा उपदेश।
आपके लिए एक वह बात;
आप होते इतने ही ज्ञात।

(११)

आप अपने ही शोभाधाम;
आप अपने ही हैं प्रिय राम।
न इससे कोई भी उपयोग;
आप पर हँसते हैं सब लोग।

(१२)

आपने बिरादरी को आज;
बना रक्खा है आर्य्य समाज।
इसीसे अन्तरङ्ग बहिरङ्ग;
आपका ही है सुन्दर अङ्ग।

वेद और पार्थिव गतियाँ

(ले०—श्री ब्र० लक्ष्मणसिंह गुरुकुल काँगड़ी)



आर्य समाज के तृतीय नियम के रूप में ऋषि का कथन है वेद सब सत्य विद्याओं का मूल है। ऋषि की मृत्यु के पश्चात् आज उसके इस कथन की सत्यता का हमें भी अनुभव हो रहा है। वास्तव में वेद विद्याओं की खान है। इस खान को जो मनुष्य

(१३)
आप जब करते कोई बात;
यही उससे तब होता ज्ञात।
आप है विनयावनत महान;
आपही सच्चे आर्य्य निदान।
(१४)
किन्तु जब खुल जाता है भेद;
हृदय को होता तब अति खेद।
आप रखते हैं रूप विचित्र,
न उस का खिंच सकता है चित्र।
(१५)
आपके जीवन में न विकास;
आपके हृदयों में न उजास।
आपका रूप और से और;
आपके झूंठ तीनो ठौर।
(१६)
आप जब अप्रिय सभी प्रकार;
आपका जब अनार्य्य परिवार।
आप तब क्या रखते अधिकार ?
कि हो घरघर वर वेद—प्रचार।
(१७)
आपका तभी आत्म सम्मान;
आपका तभी कहीं उत्थान ?
करो जी ! हो जब आप विनीत;
हृदय के कोमल, इन्द्रिय जीत।

जितना दत्त-चित्त हो कर परिश्रम से खोदेगा उसे उतने ही ज्यादा रत्न प्राप्त होंगे। यह हमारा दृढ़ विश्वास है। इतना होने पर भी हमारा ऐसा विचार है कि वेदों का ज्योतिष के साथ विशेष सम्बन्ध है। यही कारण है कि वेद के ६ अंगो में सर्वोत्कृष्ट स्थान ज्योतिष को ही प्राप्त है। जैसा कि कहा है।

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते
ज्योतिषामयनं चक्षु निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्
तस्मात्सांगमधीत्यैव ब्रह्म लोके महीयते॥

अर्थात् वेद रूपी शरीर के पैर छन्द शास्त्र हैं, हाथ कल्प हैं, चक्षु ज्योतिष है, निरुक्त कान हैं, नासिका शिक्षा है और व्याकरण मुख स्थानीय है। इन्द्रियों मे सब से मुख्य इन्द्रिय चक्षु है और उसी का स्थान ज्योतिष को मिला है।

ज्योतिष के सब सिद्धान्तो का, इस लेख मे विचार करना कठिन ही नहीं असम्भव है अतः हम प्रस्तुत लेख मे केवल पृथ्वी की गतियों के सम्बन्ध में ही विचार करेंगे।

प्रत्यक्ष प्रमाण से तो पृथ्वी स्थिर दिखलाई देती है किन्तु इस वैज्ञानिक युग मे इसे स्थिर नहीं माना जाता। ज्योतिष (Astr n omy) की किसी पुस्तक को उठाकर देखिये वहां लिखा होगा। यह पृथ्वी सूर्य के चारो ओर घूम रही है और एक साल मे इस चक्र को पूरा कर लेती है। इसके साथ-साथ यह अपने अक्ष पर भी घूमती है। * पृथ्वी की ये दो गतियाँ इतनी प्रसिद्ध हैं कि इन्हें बच्चा भी स्वीकार करता है।

* It revolves round the sun along a vast orbit that it accomplishes in a year And while it thus glides along the lines of solar attraction, the terr strial ball rotates rapidly upon it self in twenty-four hours (Astronomy For Amateurs P 215 216.

इन दोनों गतियो को क्रम से Revolution और Ro ation कहते हैं। किन्तु इस समय पृथ्वी की एक और गति स्वीकार की गई है जिसे अंग्रेजो में Precession कहते हैं। अर्थात् पृथ्वी का अक्ष भी घूम रहा है। वैज्ञानिक परिभाषा में इसको यों कहेगे कि पृथ्वी क्रान्ति वृत्त के साथ कोण बदलती रहती है।

अब हमें यह देखना है कि वेद इस विषय में क्या कहता है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध मन्त्र है.—

आयं गौः पृश्नि रक्रमीदसदन्मातरं पुर
पितरं च प्रयन्त्स्व ॥ ऋ. १०. १८९. १.।

प्रस्तुत लेख मै हम आपका ध्यान मंत्र के चार शब्दो पर खींचना चाहते हैं। वे ये हैं: –

१. गौ
२. अक्रमीत्
३. असदन्
४. प्रयन्

सब से पूर्व हम प्रयन् और अक्रमीत् पदो पर विचार करेंगे कि इनका क्या अर्थ है और ये किस लिये प्रयुक्त हैं।

प्रयन्—यह शब्द यहाँ पर गो (पृथ्वी)[1] का विशेषण होकर प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ है चलते हुए। अत मन्त्रार्थ इस प्रकार हुआ 'चलती हुई पृथ्वी आगे पैर रखती हैं (प्रयन् गौ. अक्रमीत्)। यदि पृथ्वी अपने आप किसी और प्रकार की गति अक्ष पर घूमने की गति न कर रही हो तो मंत्र में 'अक्रमीत्' पद पढ़ने पर 'प्रयन्' से सूचित होने वाली गति से भिन्न है। अत यह ज्ञात होता है कि पृथ्वी में अपने आप एक गति है जिसे अक्ष पर घूमना कहिये, चाहे Rota io कहिये। वैदिक परिभाषा मे पृथ्वी की इस गति को 'प्रयाण' कहा गया है।

अक्रमीत्—यह शब्द वेद मंत्र में क्रिया रूप में प्रयुक्त है। इस संपूर्ण मंत्र में दो क्रियाये हैं, १ अक्रमीत् और २ असदन्। असदन् का विचार पीछे करेंगे। 'अक्रमीत्' शब्द 'क्रमु पाद विक्षेपे' धातु से बना है जिसका अर्थ है आगे पैर रखते हुए चलना। यह क्रिया 'गो' विशेष्य के लिये प्रयुक्त हुई है अत मंत्रार्थ इसप्रकार हुआ-प्रयाण करती हुई पृथ्वी आगे पैर रखकर चलती है। इससे यह ज्ञात हुआ कि जहां पृथ्वी मे प्रयाण गति है वहां उसमें एक और गति है जिसको सूर्य के चारो ओर घूमना कहा है अंग्रेजी मे उसी को Revolution तथा वैदिक परिभाषा में उसे 'आक्रमण' कहा गया है।

गौ—इस मंत्र मे ध्यान देने योग्य तीसरा शब्द 'गौ' है। यद्यपि पृथ्वी का प्रयाण (Rotation) और आक्रमण (Revolution) बतलाने को वेद में पृथक् पृथक् दो शब्दो का उच्चारण किया है। फिर गति निदर्शक तीसरा 'गौ' शब्द पढ़ने की क्या आवश्यकता थी ? 'गौ' के स्थान पर पृथिवी वाची कोई और शब्द पढ़ना चाहिये था ताकि पढ़ने और सोचने वालो को भ्रम न हो। फिर भाषाकी दृष्टिसे भी अशुद्ध प्रयोग है जसे एक वृत्त गोल है, यह प्रयोग अशुद्ध है। तो प्रश्न होता है कि यह शब्द क्यो पढ़ा गया है।

यदि पृथिवी मे तीसरी गति न होती तो ईश्वर या तो 'गौ' शब्द के स्थान पर कोई और पृथिवीवाचक शब्द पढ़ता या प्रयन् विशेषण हटा देता। इससे ज्ञात होता है कि परमात्मा का ऐसा पढ़ना इस बात का द्योतक है कि पृथिवी मे एक और गति है जिसे गमन कहते हैं। अब ज्योतिर्विज्ञो ने इस तथ्य को पा लिया है कि पृथिवीमें एकऔर'गमन'(Precession) गति है, अर्थात् पृथिवी का अक्ष भी दिशा बदल रहा है। दूसरे शब्दो में पृथिवी का अक्ष क्रांति वृत्त (Orbit) के साथ परिवर्तनशील है।

असदन्—हमारे ज्योतिर्विज्ञ पृथिवी की इन तीन गतियो को जानकर ही सन्तुष्ट हो गये। किन्तु हमारा वेद इतने पर भी सन्तुष्ट नही होता। वह इससे भी आगे जाता है उसने पृथिवी मे एक और गति स्वीकार की है वह है पृथिवी का संसदन।

इसी मंत्र का चरण है:—

मातरं पुरः असदत्

अर्थात् माता को प्राप्त होती है। पूरा अर्थ इस प्रकार हुआ—गमन करते हुए अपने अक्ष पर प्रयाण करती हुई पृथिवी 'आक्रमण' करता है और माता को प्राप्त होती है।

---

१ निरुक्त

संस्थाएं साधन हैं साध्य नहीं

(ले०—श्री म० श्रीरामजी आगरा)



ऋषि दयानन्द का आर्यसमाज की स्थापना मे प्रमुख उद्देश्य वेद-प्रचार था। उसकी पूर्ति के लिए जो साधन उन्होने प्रस्तुत और प्रयुक्त तकिये उनमे एक सस्थाओ का सचालन भी था। स्वयं ऋषि के समय मे पाठशालाओ और अनाथालयो तक की स्थापना हुई, परन्तु वह सब उनके द्वारा आर्यसमाज के प्रमुख कार्य-वेदप्रचार-में सहायता पहुँचाने के लिए। वास्तव मे सस्थाओ की स्थापना है भी देश सुधार मे एक साधन। यदि उनको ठीक रूपमे सच्चे आर्य नियम और धर्म पूर्वक संचालित करते रहे। इसी लिए समाज ने इस समय तक अपनी शक्ति सस्थाओ के सचालन मे लगाई और देश मे सर्व साधारण के सामने उदाहरण उपस्थित कर दिया। अब हिन्दू भाई अनेक सस्थायें प्राय उन्ही नियमो पर चला रहे है जिन पर कि आर्य सस्थाए चल रही हैं। इसके विपरीत आर्यसमाज की सारी शक्ति आजकल इन सस्थाओ के सचालन मे ही लगी हुई है और एक तरह से जो कार्य साधन रूप था वह साध्य वस्तु सा बन गया है। इसका प्रभाव यह हो रहा है कि जो आर्यसमाज के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति के इच्छुक हैं उन्हे यहबात बुरी लगती है, और है भी बात सोलहोआना बुरी लगने की हमने देख लिया कि दूसरे लाग सस्थाओ को संचालित कर हमारे काम मे साधन रूप बन सकते है तो क्यो न इन सस्थाओं का प्रबन्ध उनको सौंप दिया

यहाँ विचारणीय बात यह है कि माता कौन है? माता उसे कहते हैं जो निर्माण करती है। अर्थात् माता से, यहाँ पृथ्वी के निर्माता का तात्पर्य है। पृथ्वी का निर्माता सूर्य है, यह सिद्धान्त आज वैज्ञानिक भी स्वीकार करते हैं* और हमारा वेद भी इसी को मानता है×। अत मंत्र-चरण का अर्थ हुआ पृथ्वी सूर्य को प्राप्त होती है। इससे यह पता लगता है कि पृथ्वी सूर्य की ओर जा रही है, सूर्य उसे खींच रहा है। खिंचते खिंचते यह अन्त में सूर्य मे जा मिली और उसी में समा गई। इससे जहाँ पृथ्वी में होने वाली चतुर्थ गति का ज्ञान होता है वहाँ यह भी सिद्ध होता है कि अन्त में, प्रलयावस्था में यह पृथ्वी उसी सूर्य में जा मिलेगी और इस प्रकार सूर्य का एक भाग बन जावेगा और सूर्य के समान ही इसका स्वरूप भी चमकता हुआ एक प्रकार का द्रव हो जायेगा।

* But the sun is a patriarch, and each of his daughters has own children (Astronomy for Amateur P 114)

× दिवो समे पृथ्वी सूर्येण (ऋ० ४. ८५. ५)

पृथ्वी की इसी चतुर्थ गति को वैदिक परिभाषा में में 'ससदन' कहा गया है। इसके लिये अंग्रेज़ी में अभी कोई शब्द नही है। इसका कारण यह है कि वे पृथ्वी की इस गति को स्वीकार ही नहीं करते हैं। इस प्रकार मंत्र के तत्त्व को हम यो बतला सकते हैं—

मंत्र शब्द—प्रयन्, अक्रमीत, गौ, असदत्

पृथ्वी की वैदिक गति—प्रयाण, आक्रमण, गमन ससदन।

पृथ्वी की विज्ञान से स्वीकृति गति—Rotation Revolution, Precossion

इसके अतिरिक्त भी ज्योतिर्विज्ञान के कई सिद्धान्त इसी मन्त्र से ज्ञात होते हैं। जिनका हम विषय से सम्बन्ध न होने के कारण इस लेख मे विचार न कर लेख को यहीं समाप्त करते हैं।

इसी प्रकार यदि वेद के एक-एक मंत्र को हम गम्भीर दृष्टि से देखें तो हमें एक ही मंत्र से अनेक रत्न प्राप्त हो सकते हैं। इसी के साथ हम ऋषि के ऊपर लिखित कथनको भी सत्य साबित कर सकते हैं।

जाय और हम आर्य लोग अपनी सारी शक्ति वेद-प्रचार के विभिन्न मार्गों को ठीक करने मे लगा दे। इस प्रकार से काम करने से देश और जाति को दुहरा लाभ हागा। एक तो हम अपना हाथ बँटाने वालो का सहयोग प्राप्त कर लेगे और सामाजिक शक्तियों का जो दुरुपयोग इन संस्थाओ के कारण उत्पन्न हुए वैमनस्य से हो रहा है उसका भी अन्त हो सकेगा। दूसरे हमे और काम करने तथा शक्ति सञ्चय करने के लिए अवसर प्राप्त हा जायगा। साथ ही सभी समुदायो के अच्छे कार्यकर्त्ताओ की हमारे



म० श्रीरामजी उपप्रधान सभा

साथ वास्तविक सहानुभूति हो जायगी, क्योकि उन्हे अनुभव हो जायगा कि आर्य पुरुषो को लोकोपकारी कामो को ठीक रूप से चलाना ही अभीष्ट है। उन्हे इस बात की चिन्ता नही कि वे हमारे ही द्वारा चलाए जाते हैं या नही। ऐसा करने पर आर्य भाइयो को बहुत सा समय आत्मसुधार और वेदप्रचार के लिए मिल जायगा। वैयक्तिक सुधार बिना कोई मनुष्य किसी आन्दोलन मे पड़कर न उस आन्दोलन को लाभ पहुँचा सकता है और न अपना तथा अपने परिवार—पुत्रकलत्रादि का वास्तविक हित कर सकता है। यही कारण है कि बड़े बड़े नामी आर्यों की सन्तान भी आज आर्य नहीं दिखाई देती। यह क्या कुछ कम घाटे की बात है? वर्षों प्रधान मन्त्री रहने वाले लोगो के घरो मे आर्यत्व का प्रवेश भी न हो, यह क्यो? इसी लिए ही न कि आर्यसमाज के अधिकारों पर अधिकारी आर्य पुरुषो को स्थान न दिया जाकर संस्थाओ को सहायता देने वाले पुरुषो को प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। और जो लोग भी प्रधान मन्त्री होते है उन्हे संस्थाओ के चक्र में रात दिन फंसे रहने के कारण इतनी चिन्ता कहां कि वह अपना जीवन अपनी सन्तान के लिए भी अनुकरणीय बना सकें? संस्थाओ की चक्कियां आर्यसमाजो के गले मे बंध रही है और इन्ही के कारण आर्यसमाजो मे अनार्यों का प्रवेश, पारस्परिक कलह, चिन्ता की वृद्धि हो रही है। आज आर्यसमाजों पर प्राय आर्य नामधारी अनार्य अधिकार जमा कर बैठ गये है। वे उनके द्वारा न वैदिकधर्म का प्रचार स्वयं करते है और न अन्य सच्चे आर्य नवयुवको को ही प्रचार के लिए आगे बढ़ने देते है। इस तरह संस्थाओ को साध्य मानकर आर्यसमाज का भी विपरीत प्रयोग होने लगा है। इससे अधिक और शोचनीय अवस्था क्या होगी?

मेरी आर्यसमाज के वास्तविक कर्णधारो से इस अवसर पर ऋषि की पुण्यस्मृति में अपील है कि अब बहुत समय सोच विचार मे न लगावें किन्तु एसा क्रियात्मक कार्य आरम्भ करें कि जिसके अनुसार आर्यों को वास्तविक आर्य बनने का गौरव संसार में प्रेम और वैदिक भ्रातृत्व की लहर बहाते हुए प्राप्त हो। एक बात और फिर समाप्त। वह यह कि जिन आर्यसमाज के अधिकारियों को संस्थाओं के स्वयं संचालन करने में ही हित दिखाई देता हो उनके लिए भी मार्ग खुला हुआ रहे और वह इस प्रकार अपनी वैयक्तिक शक्तियों का उपयोग संस्थाओं के संचालन मे उपयोग कर सकते हैं। आर्यसमाज की सामूहिक शक्ति का उपयोग तो उसके मुख्योद्देश्य वेदप्रचार में ही होना चाहिये। साध्य न बनने पावे—यही प्रार्थना है।

महर्षि की आज्ञा

महर्षि ने नित्य पांच यज्ञ तथा स्वाध्याय करने का आदेश किया है, अत: मण्डल ने आर्यों के लाभार्थ अनेक आर्य वैद्यो के परामर्श से यह अत्यन्त सुगंधित, सर्वरोग नाशक ऋतुओं के अनुसार वैदिक रीत्यानुसार **हवनसामग्री** तैयार की है। अव्वल नं० मूल्य १) सेर द्वितीय नं० ।।।) सेर।

आर्य तथा हिन्दुओं के लिये स्वाध्याय की पुस्तकें

दिव्य दयानन्द १), वीर जवाहर नाटक १,) कुरान मजीद हिंदी १), विश्वासघात ।), कुरान में परिवर्तन।।), खूनी इतिहास ।।), भयानक षडयन्त्र ≈), स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या और इस्लाम की शिक्षा ।।), कुरान की छानबीन ।–), हिन्दुओ चेतो ॥≈) आर्य जाति की पुकार ।≈), मलकानो की पुकार ।–), खतरे का घंटा ≈), लेखराम ग्रंथावली ।–), पतित पावन ।।।–), कर्मवीर प्रताप ॥), पंच महायज्ञ पीयूष ।≈), भीष्म पितामह ।), सुदामा नाटक ।≈) जबरदस्त जिमीदार ।≈), शहीद श्रद्धानन्द ।), भर्तृहरि शतक ।।।

भजनों की पुस्तकें

श्रद्धा संकीर्तन –), भजन संकीर्तन –)।।, कन्या गीत रत्न ।), आर्य भजन कीर्तन ≡)।।, प्रेम भजनावली ≡)।।, मंगलामुखी ।≈), ईश प्रार्थना ≡)।, संगीत सागर ≡)॥, पराकौमुदी ।–), धर्मशिक्षा≈), सच्ची देवियां ।।), पोस्टेज व पैकिंग पृथक।

व्यवस्थापक

आर्योपकारक मण्डल कागारौल–आगरा।

प्रसिद्ध विद्वानो समाचारपत्रो द्वारा प्रशंसित मासिक-पत्र

"संजय"

के महाभारत अंक का मूल्य १।) है जो स्थिर ग्राहकों को ३≡) वार्षिक मूल्य भेजने पर या वी०पी० द्वारा मंगाने पर मुफ्त मिलता है। एजन्टों को भारी कमीशन। नमूना मुफ्त। विज्ञापन के रेट सस्ते।

मैनेजर 'संजय' कार्यालय नया बाजार देहली।

भगवान गौतम बुद्ध

(upside-down printed line: ɹǝqɯ̣ǝʇ ... ɹǝqɯ̣ǝɥ)

(विशुद्ध, संपूर्ण और प्रामाणिक जीवनी तथा पावन उपदेश)

हिन्दू महासभा के सभापति रेवरेंड उत्तमा भिक्षु के इस अनमोल ग्रन्थ पर राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू लिखते हैं–'मैंने उसे बहुत ही चाव और प्रसन्नतापूर्वक पढ़ा। भगवान् बुद्ध के जीवन का इतिहास दुर्भाग्य-वश हम बिहारियो को, संक्षिप्त और परिमार्थित रूप में, मिलना कठिन था। आपने बहुत परिश्रम करके इस अभाव की पूर्ति की है, इसके लिये कोटिश: धन्यवाद! आशा है, आपके प्रयत्न से हमारी जनता में बुद्धदेव सबन्धी ज्ञान का प्रसार होगा, और अपनी जन्मभूमि में बौद्धधर्म को लोग फिर से पहचानने लगेंगे।" प्रत्येक देशभक्त हिन्दू को पढ़ना चाहिये। पृष्ठ संख्या ५००; सचित्र, छपाई कागज, उत्तम; जिल्द दर्शनीय; मूल्य २।।)

पता मैनेजर हिन्दू समाज सुधार कार्यालय लखनऊ

हवन कर्ताओं को शुभ समाचार

सफरी हवन हेण्ड बक्स १२ चीजों का पूरा सैट सिर्फ २।।) रु० में। आर्य राजा होने से शाहपुरा में यज्ञ हवन का विशेष प्रचार है हमारे यहाँ की संस्थाओं व विद्वानों के आदेशानुसार हवन सामग्री तैयार की जाती है। हवन सामग्री थोक भाव २०) रु० मन और महाराजा धूपबत्ती १) रु० सेर मिलती है। मार्ग व्यय ग्राहकों को देना होगा। अजमेर अर्द्ध-शताब्दी पर आने वाले यात्रियों ने हमारी सामग्री को लेकर बड़ी प्रशंसा की थी। एक बार अवश्यमेव परीक्षा कीजिये। परिमाण से बने हुये ताँबे के हवन कुण्ड, छोटे बड़े ऊनी आसन, तपेदिक और प्लेग नाशक सामग्रियाँ भी हर समय तैयार मिलती हैं।

अजमेर में एजेन्ट सूर्यनारायण एण्ड सन्स केशरगज, अजमेर। जेठमल आर्य सर्राफ कड़का चौक, अजमेर।

गोकुललाल आर्य एण्ड सन्स शाहपुरा स्टेट (राजपूताना)

वैदिक पुस्तकालय मुरादाबाद

—: के :—

स्वाध्याय करने योग्य अमूल्य रत्न

आध्यात्मक पुस्तकें।

सांख्यदर्शन भाषानुवाद

आस्तिक दर्शनों में महर्षि कपिल प्रणीत सांख्य-दर्शन का सब से अग्रस्थान है। मूल्य सजिल्द १॥)

न्याय दर्शन (भाषानुवाद) मूल्य १॥)

वैशेषिक दर्शन (भाषानुवाद) मूल्य१॥)

योगदर्शन, व्यास भाष्य

भोजवृत्ति सहित

पहिले सूत्र फिर उसका पदार्थ फिर भावार्थ पुन. उसी सूत्र पर व्यास कृत संस्कृत वृति फिर उसका भाषानुवाद दूसरी रीति पर सूत्र का आशय यथा सम्भव व्यक्त और सरल किया गया है। मूल्य अजिल्द ३) सजिल्द ३॥)

दशोपनिषद्

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्ड मांण्डूक्य, तैत्तरीय, ऐतरेय और छान्दोग्य व बृहदारण्यक इन दश उपनिषदों पर पंडित बदरीदत्त जी जोशी का किया सरल अनुवाद है। इसमें प्रथम श्लोक पुन उनका सरल पदार्थ तत्पश्चात भावार्थ दिया गया है, जिससे मूल का आशय भली प्रकार हृदयगम्य हो जाता है। मू० ४)

छान्दोग्योपनिषद् भाष्याभाष्य १॥)

बृहदारण्योपनिषद् भाष्याभाष्य १॥)

ध्यानयोग प्रकाश

इसमें अष्टांगयोग और उसकी क्रिया का बड़ी ही उत्तम रीति से निरुपण किया गया है इसके ले०श्री स्वामी लक्ष्मणानन्द जी महाराज हैं, जो योगक्रिया मे पूर्ण कुशल थे। योग का क्रियात्मक अध्ययन करने के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। मू०१॥)

ध्यान की रीति मू० -)

मानव धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) मू० ॥)

गीता विमर्श

(लेखक श्री पं० नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ)

यदि आप महाभारत का मर्म और भगवद् गीता का सच्चा रहस्य जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को एक बार आद्योपान्त पढ़ जाइये आपको सारी महाभारत की कथा हस्तामलकवत हो जाइगी। इस किस्म का भाष्य गीता पर आर्य जगत् में नहीं हुआ है। मू०१॥)

इतिहास और जीवन चरित्र

श्री कृष्ण का जीवन चरित्र

गीतोपदेष्टा श्री कृष्ण के नाम को भला कौन नहीं जानता, उनका यह प्रभावोत्पादक जीवनचरित्र श्रीमान् देशभक्त ला० लाजपतराय की ओजस्वनी से लेखनी से निकला है। मूल्य १)

छत्रपति शिवाजी

इस पुस्तक के लेखक भी भारत-भूषण श्री ला० लाजपतराय जी हैं मू० ।≈)

दानवीर कर्ण मू० ।≈)

हकीकतराय धर्मी ।≡)

हजरत मुहम्मद साहब मू० ॥)

श्री स्वामी विरजानन्द मू०≈)॥

सिक्खों के दस गुरू मू० ।॥)

बालपयोगी पुस्कें

बालसत्यार्थ प्रकाश

सत्यार्थप्रकाश के गूढ़ सिद्धांतों को बालापयोगी सरल भाषा में ढाला गया है मू० ।।)

संतान शिक्षक मू० ।।)

बजमिन फ्रौक लिन

अमेरिका के राष्ट्रपति महात्मा बैंजनिन फ्रैंकलिन एक दरिद्र कुल में पैदा हुये थे। अपने पुरषार्थ से किस प्रकार इन्होंने अमेरिका का सर्वोच्चपद प्राप्त किया था। इसके पढ़ने से ही ज्ञात होगा। मू०।।=)

विचित्र ब्रह्मचारी

आलोचनात्मक व ईसाई मुसलमान

धर्म की खण्डन पुस्तकें

विषलता-ले० गाज़ी धर्मपाल ।=), तर्क इसलाम I), कुरान की छानबीन ।–), वैदिकधर्म इस्लाम १), खतरे का घण्टा =), अल्ला मियां की सुन्नत –), अल्ला मियां का हुलिया –), इस्लाम की गप्प –), मुसलमानी बुर्का–), काठ का उल्लू –), कुरान भाषानुवाद १), ईसाई सिद्धांत दर्पण ।=), भोंदूजाट व पादरी साहब ≡), ईसाई मत परीक्षा)॥, ईसाई मत में मुक्ति असम्भव है)।, ईसाई विद्वानों से प्रश्न)।

अन्य उपयोगी पुस्तकें

देश दिवाकर।

इस पुस्तक में अगरेजी शासन में जो भारत की जो जो आर्थिक ह्रास और प्रजा की जैसी दरिद्रता और दुर्दशा हुई है, उसका दिग्दर्शन कराया गया है इसके ले० स्वामी भास्करतीर्थजी शारदा पीठ हैं। मू० १)

शुद्धनामावली

" आज कल नाम रखने की परिपाटी बहुत बिगड़ गई है द्विजों मे भी प्राय कर्णकटु और निरर्थक नाम रक्खे जाते हैं। इस पुस्तक में २५०० नाम ऐसे दिये गये हैं, जो श्रुति प्रिय होने के अतिरिक्त भाव बोधक भी हैं, पुस्तक अति उत्तम है मू०॥)

आर्य पर्वावली

आर्यसामाजिको को कौन कौन से त्योहार और किस प्रकार मानने चाहियें। इसका विवरण देखना हो तो इस पुस्तक को मंगाइये। मूल्य ।॥) स्वर्ग में सबजैक्ट कमेटी =)॥, स्वर्ग में महासभा ।),कण्ठी जनेऊ का विवाह =), यह तीनो पुस्तके स्वर्गीय पं० रुद्रदत्त शर्मा लिखित हैं। और हास्यरस पूर्ण हैं। सन्ध्या मंजूस)॥, नवयुवको उठो –), मुकद्दमेबाजी से बचो –), मुक्ति और पुनरावृति –)॥, ग्रहण क्या है)।॥, क्षात्रधर्म –), नशा निवारक)॥, शिवलिंग पूजा)॥, बकरा विनय)।, ईश्वर विचार ।।)

स्त्री गीत संग्रह

यह पुस्तक बड़े परिश्रम से स्त्रियो के गाने के लिये तैयार की गई है। इस पुस्तक का पहला संस्करण हजारों की तादाद में छपा और हाथो हाथ बिक गया। अब दूसरा एडीशन बड़ी सजधज के साथ निकाला गया है। टाइटिल तिरंगे चित्र से चित्रित है, इस पर भी पुस्तक का मूल्य लागत मात्र ॥) है।

स्त्री शिक्षा की अपूर्व पुस्तक बालाबोधिनी

(श्री सन्नूलाल जी कृत)

जिनकी लिखी हुई पुस्तक स्त्रीसुबोधिनी लाखो की तादाद में बिक रही है, वही इसके सुयोग लेखक हैं। पुस्तक के विषय में अधिक कहना व्यर्थ है। छोटी छोटी कन्याओ से लेकर युवको तक के लिये प्रथम से ही पढ़ने के लिये लिखी है, पुस्तक चार जिल्दों में समाप्त हुई है। मू० =), ।), ।=), ॥) बुकसेलरो को खास रियायत दी जाती है।

पता:—वैदिक पुस्तकालय मुरादाबाद यू० पी०

दीपावली के उपलक्ष में भारी रियायत

—— × ——

(यह सुनहला अवसर केवल पन्द्रह नवम्बर तक रहेगा, इस बीच जो सज्जन अपना पत्र संसार के किसी भी डाकखाने में डालेंगे उनको मेरे औषधालय की निम्नलिखित नव रत्ने पौन मूल्य पर दी जायेगी)

वीर्य-संजीवनी सुधाः—सज्जनो ! शरीर में धातु ही उत्तम पदार्थ है। जिन्दगानी का दार-मदार इसी पर है। इसके बिगड़ने से अनेक प्रकार के रोग घेर लेते है। इसके बिगड़ने का मुख्य कारण कुचाल है। इसके सेवन से स्वप्नदोष, पेशाब व दस्त के साथ धातु गिरना, शिर में दर्द, चेहरे पर जर्दी आना, आलस्य, नपुन्सकता, अजीर्ण और शीघ्रपात इत्यादि समस्त रोगों को नष्ट कर नामर्द से मर्द, हृष्ट-पुष्ट और निरोग बनाता है। मूल्य२)

अशोकारिष्टः—यह सब प्रकार के स्त्री रोग की दवा है। इसके सेवन से सब तरह के प्रदर, मासिक धर्म के दोष, योनि शूल, गर्भाशय का शोथ ज्वर, रक्तपित, मन्दाग्नि, अर्श, प्रमेह, सूजन, ऋतु में गड़बड़ी, बाधक, हिस्टिरिया, प्रभृति, बन्ध्या, गर्भाशय के शिथिल हो जाना इत्यादि शीघ्र दूर होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। इससे वन्ध्या स्त्री को भी गर्भ प्रगट होकर ठहर जाता है और कभी नष्ट होने का डर नहीं रहता। मू० १।।)

द्राक्षारिष्टः—खाद्य वस्तु अन्न व फलों में सबसे अधिक शक्ति व गुण ताजे अंगूरों में है। अत: इसमें अधिकाधिक परिमाण में अंगूर दी गई है। यह बाजारू व नकली द्राक्षारिष्टों से अधिक गुणकारी है। यह शुद्ध रीति से परिश्रमपूर्वक तैयार की, गई है। इसमें स्मरण-शक्ति की कमी, पाचन-शक्ति की शिथिलता, दिमाग तथा हृदय की कमजोरी, श्वास खाँसी, स्वरभंग, राज्यक्षमा (क्षय), क्षीणता, दुर्बलता और प्रसूता स्त्रियों की कमजोरी, बिमारी के बाद की कमजोरी अर्थात् समूल नष्ट करती है। मू० १।।) बोतल।

नेत्र-सुधा सुरमाः—नेत्र ही जीवन का सुख है। अत: इसकी रक्षा करना प्रथम कर्तव्य है। यह शुद्ध रीति एवं अमूल्य नेत्र उपकारी दवाओं से बनाने के कारण अधिक गुणकारी है। आँखों में लगते ही शीतलता छा जाती है। यह रतौन्धी, काँच, माँस वृद्धि, पटल्य, आँखों में अंधेरा छा जाना, माड़ा, जाला, धुन्ध, फुली, परवाल, आँखों से पानी बहना, नेत्र का लाल व पीला रहना और आँखों में खुजली होना आदि नष्ट कर आँखों की ज्योति ज्योति बढ़ाता है। मू० १)

—: निखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन से प्रमाणित :—

गुरुकुल कांगड़ी का

च्यवनप्राश

बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री व पुरुष सब के लिए हर मौसम के योग्य बढ़िया टानिक है। इससे फेफड़े मजबूत होते हैं, दिल को ताकत मिलती है और शुक्र तथा वीर्य की वृद्धि होती है। कीमत ४) सेर।

श्री मान्यवर नमस्ते!

आपका भेजा हुआ १ पौंड च्यवनप्राश ६ माशा सुरमा और २ तोला सत्त शिलाजीत प्राप्त हुआ। मैंने इनका व्यवहार किया और अत्युत्तम पाया। कृपया दो पौंड और भेजिये।

म० वी० एम० सुब्बा० बर्मेरा बृटिश सोमिज लैंड बाया अदन।

आप से जो च्यवनप्राश मंगवाया था, वह निहायत फायदेमन्द साबित हुआ है। कृपया आध सेर और भेजिये। —एम० एम० प्रसाद लैंड ओनर, पाजौन रंगून।

सतशिलाजीत— कमजोरी, सुस्ती वीर्यदोष, प्रमेह, कमर दर्द, आदि के लिए निहायत मुफीद है। कीमत ३) रु० तोला

द्राक्षारिष्ट— कब्ज, बदहजमी, पुरानी खाँसी की मशहूर औषधि। थकावट के बाद इसे पीने से शरीर व मन ताजा हो जाता है। कीमत १।) का आध सेर, ॥।) का एक पाव।

भीमसेनी सुरमा

आँखों को बुढ़ापे तक सुरक्षित रखने के लिए "भीमसेनी-सुरमा" का नियमपूर्वक इस्तेमाल कीजिये। आँखों से पानी बहना, खुजली, कुकरे आदि रोग कुछ ही दिनों में दूर हो जाते हैं। कीमत ३) रुपया तोला।

❀ सूचीपत्र मुफ्त ❀

एजण्टों को विशेष सुविधा—बड़े बड़े शहरों में सोल एजेंसी के लिए पत्र व्यवहार कीजिये।

पता—आयुर्वेदिक फार्मेसी नं० १ गुरुकुल कांगड़ी

(सहारनपुर)।

कहानी-माला की ५ लाख प्रतियां निकल गईं

प्रसिद्ध पत्र **आर्य्यमित्र** लिखता है —

"प्रयाग के कला प्रेस से यह कहानी माला प्रकाशित होनी प्रारम्भ हुई है। कोई भी ट्रैक्ट ८ पृष्ठों से अधिक का नहीं है। सब ट्रैक्टों पर, उनके विषय के अनुरूप, शिक्षाप्रद व्यंग्य चित्र भी दिये गये हैं। विषय कहानी के रूप में समझाया गया है। कहानी बड़ी सुन्दर और सरल भाषा में लिखी गई हैं। ऐसे ट्रैक्ट जनता में बड़ी रुचि से पढ़े जाते हैं। समर्थ आर्यसमाजों और सम्पन्न आर्य पुरुषों को चाहिए कि वे इन ट्रैक्टों की सैकड़ों, सहस्रों कापियां खरीद कर उन्हें सर्व-साधारण में वितीर्ण करें। इस सदुद्योग के लिए श्री विश्वप्रकाश जी बधाई के पात्र हैं।"

सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान म० नारायण स्वामी जी लिखते हैं।

"मैंने श्रीयुत विश्वप्रकाश जी रचित लगभग २० कहानियों को देखा जो कहानी माला के सिलसिले में कला प्रेस, इलाहाबाद से निकल रही हैं। ये छोटी छोटी कहानियाँ हैं जिन्हें सभी बड़ी दिलचस्पी से पढ़ सकते हैं। कहानियाँ जहाँ एक ओर मनोरञ्जक हैं तो दूसरी ओर शिक्षाप्रद भी हैं जिन्हें बच्चों और कन्याओं के हाथ में बिना सकोच के दे सकते हैं। १) सैकड़ा मूल्य होने से बड़ी सुगमता से प्रचारार्थ बांटी जा सकती हैं। इनका खूब प्रचार होना चाहिये।"

"यह कहानी माला नहीं किन्तु **कहानी रत्न-माला है** इनके द्वारा आर्य शास्त्रों के गूढ़ विषयों को हिन्दू तथा आर्य्य समाजी घरों तक पहुँचाना हमारा काम है। कोई भी हिन्दू तथा आर्य्य समाजी घर बिना इनके नहीं रहना चाहिये। वर्षों से हिन्दू तथा आर्य्य देवियों के सम्मेलों पर महानुभाव दानवीर अनेक सज्जन मुफ्त समाज सुधारक तथा कुरीति निवारक पोथियां बांटने की जरूरत जो अनुभव कर रहे थे वह निसन्देह उक्त कहानी रत्न-माला से यह काम ले सकते हैं। रेल के डब्बों में यदि हम इनके बेचने वा बांटने का प्रबन्ध कर सकें तो मुसाफिरों का भारी उपकार हम कर सकेंगे।
—आत्माराम अमृतसरी, बड़ौदा

श्री पूरनचन्दजी एडवोकेट भूतपूर्व प्रधान

आर्य्य प्रतिनिधि सभा, संयुक्तप्रान्त

मेरा छोटा पुत्र जिसकी आयु ८ साल के लगभग है उसने इन सब कहानियों को बड़े प्रेम से पढ़ा और वह इनको समझ सका। यह कहानियाँ प्रत्येक परिवार में रखने योग्य हैं और इनका जितना प्रचार हो उतना ही अच्छा है। आपके परिवार ने जो साहित्यिक जगत में वृद्धि की है उसको लक्ष्य में रखकर यह कहने में कुछ अत्युक्ति न होगी कि 'ईं खाना हमा आफ्ताबस्त'।

)। प्रति — १) सैकड़ा

- (१) गुरु घण्टाल
- (२) शराबी पति
- (३) विधवा की आहें
- (४) बम बम महादेव
- (५) पण्डों की लीला
- (६) छुआ-छूत
- (७) मरे बाप भोजन
- (८) भूत की लँगोटी
- (९) कब्र के फरिश्ते
- (१०) स्वामी दयानन्द की कहानी
- (११) स्वा० श्रद्धानन्द की कहानी
- (१२) धर्मवीर प० लेखराम की कहानी
- (१३) आर्यसमाज की कहानी
- (१४) शुद्धि की कहानी
- (१५) बुढ़ौती में जवानी
- (१६) गुड़ियों का ब्याह
- (१७) शीतला महारानी
- (१८) जादू की पुड़िया
- (१९) हमारा बोलबाला
- (२०) धर्म की फरियाद

नम्र निवेदन

ऋषि निर्वाण दिवस के समय प्राय: 'आर्यमित्र' सदा ही अपना विशेष रूप धारण करता रहा है। आर्यों के पर्व केवल मनोविनोद और मिष्टान्न भोजन के लिये ही नहीं अपितु सामाजिक जीवन में एक नवस्फूर्ति भरने तथा गम्भीर समस्याओं और भावी कार्यक्रम पर एक दृष्टि डालने के हेतु भी होते हैं। भगवान की प्रेरणा से इस वर्ष आर्यसमाज को एक स्वर्णावसर अपनी परीक्षा देने के लिये हैदराबाद सत्याग्रह के रूप में मिला था। सन्तोष की बात है कि समाज उसमें अनुत्तीर्ण नहीं हुआ। अत: इस वर्ष के निर्वाण दिवस पर हम अपने सामाजिक जीवन को सत्याग्रह युद्ध में प्राप्त हुई सफलता के प्रकाश में विशेष रूप से देख सकें इसी उद्देश्य से इस वर्ष के ऋष्यङ्क ने हैदराबाद विजयाङ्क का रूप धारण किया है। किन्तु अनेक अनिवार्य कारणों से इसमें विशेषाङ्क की तड़क भड़क नहीं है और इसे विशेषाङ्क के रूप में रखने में हमें सकोच हो रहा है। इस विशेषाङ्क के निकालने का निर्णय बहुत शीघ्रता से किया गया अतः बहुत सी अपेक्षित सामग्री मिल नहीं सकी। फिर भी जिन महानुभावों ने हमारी प्रार्थना पर शीघ्र ही अपने विचार लिखकर भेजे उन लेखकों और कवियों के प्रति हम कृतज्ञ हैं। प्रबन्ध सम्बन्धी परिवर्तन की तयारी होने तथा महायुद्ध के कारण कागज की मँहगी हो जाने से प्रकाशन भी सजधज के साथ नहीं हो सका। तथापि जिस उद्देश्य से यह अंक निकाला गया है उसकी पूर्ति अवश्य करेगा इसमें सन्देह नहीं है। प्रेमी पाठकों से अनुरोध है कि वे इसे उसी दृष्टि से देखेंगे।

'आर्यमित्र' सारे जगत् की और विशेष कर संयुक्त प्रान्त के आर्यसमाज की श्वास के समान है इसकी रक्षा सहायता और इसे पुष्ट करना प्रत्येक आर्यसमाज और आर्यसमाजी का कर्त्तव्य है।

अन्त में हम उन लेखकों से क्षमा याचना करते हैं जिनके लेख देर से आने के कारण स्थान नहीं पा सके अथवा समय पर आने पर भी उन्हें हम अन्य आवश्यक लेखों के कारण स्थान नहीं दे सके। परिमित समय और परिमित स्थान के कारण ऐसा करना अनिवार्य हो जाता है। शेष सामग्री को साधारण अंकों में स्थान दिया जायगा।

निवेदक

बाबूराम सम्पादक

॥ ओ३म् ॥

हमारा अन्तिम निवेदन

सन् १६३६ ई० के समाप्तिकाल में हमने 'आर्य-मित्र' और 'आर्य भास्कर प्रेस' का ठेका लिया था। हमने आर्यजगत् की जो सेवा की उसे आर्य संसार भली प्रकार जानता है। जिन उत्साहों से हमने 'आर्य-मित्र' और 'आर्य भास्कर प्रेस' को पर्याप्त उन्नत स्थिति पर पहुंचाने के उद्देश्य से इसका ठेका लिया था, बहुत प्रकार के यत्न किये कि हम इस लक्ष्य तक पहुँचे परन्तु ज्यों-ज्यों यत्न किया गया त्यों त्यों और नये-नये अड़ंगे लगते गये और भविष्य की उन्नति की आशा मन की मन में डूबती रही।

चाहते थे कि 'भ० दी० आर्य भास्कर प्रेस' का आमूल चूल नवीभाव हो जाय, उसका अंग-प्रत्यंग सर्वथा नया, तरोताज़ा हो जाय, परन्तु वेलुएशन करने वाले मध्यस्थ ने यह पंक्ति लिख दी कि 'प्रेस की कोई वस्तु बेची न जायेगी' इसी आधार पर मनमाना वेलुएशन कर दिया गया, और हमने प्रेस के अंगों मे जीवन डालने की अपेक्षा, सब पदार्थों की वैसी की वैसी रक्षा करना उचित समझा। इसी प्रकार समय समय पर हमे हमारे कार्य में प्रोत्साहित करने की अपेक्षा हमें निराश करने का यत्न किया गया, स्वयं आर्य प्रतिनिधि सभा के अन्तरंग सदस्यों तक ने आर्यमित्र को धक्का पहुँचाने का यत्न किया और हमारे विरुद्ध वातावरण उत्पन्न किया गया। पहले भी कई बार कागज की मंहगाई आई, इस समय भी कागज का भाव दूना हो गया, सब पत्रों ने मूल्य बढ़ा दिये, परन्तु हमने अनेक प्रकार से घाटा सहकर भी अपने ग्राहकों से मूल्य वृद्धि की चर्चा तक नहीं की, स्वयं भारी घाटा सहा, तो भी आर्य प्रतिनिधि सभा को तो किसी प्रकार भी हानि नहीं होने दी।

सम्पादन की दृष्टि से भी हमारा सदा यत्न यही रहा कि 'मित्र' के स्तम्भों में नया जीवन संचार हो, 'मण्डल' ने बीच में बड़ा अच्छा यत्न भी किया, परन्तु आर्य प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के प्रतिकूल आन्दोलन के कारण हमें पुनः अपने नये कार्य पर भी रोक थाम सहनी पड़ी। हमने अपनी शर्तों के अनुसार सम्पादकों पर कभी कोई बन्धन नहीं रखा, वे स्वतन्त्रतापूर्वक 'मित्र' को चाहे जैसा संचालित करते थे, हमने अपनी ओर से कभी ऐसा मौका नहीं दिया कि कोई कार्य सभा को स्वीकृत नीति के विपरीत हुआ हो।

इस प्रकार हमने सब प्रकार से आर्थिक हानियां सहकर भी आर्य जनता की बड़ी लगन से सेवा की, १६ नवम्बर १६३६ को हमारा ठेके का काल समाप्त होता है, हम उसी सद्भाव से "मित्र" और "प्रेस" का भार श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा के कर कमलों में पुनः सौंप रहे हैं, यदि अवज्ञाने में हमसे कोई किसी के प्रतिकूल कार्य हुआ हो उससे उनके चित्त में खेद या मानसी व्यथा उत्पन्न हुई हो तो हम उसके लिए करबद्ध क्षमा याचना करते हैं, और आशा करते हैं कि आप भविष्य में भी हमारे प्रति सद्भावना दर्शावेंगे।

भवदीय—

मथुराप्रसाद शिवहरे

मैनेजिंग डाइरेक्टर आर्य साहित्य मण्डल लि०

अजमेर।

[मण्डल के डाइरेक्टर श्री शिवहरे जी ने उक्त पंक्तियों में सभा के सदस्यों पर अनुचित आक्षेप किया है। हम केवल इसलिए कि ठेका छूटते समय ठेकेदार अपने मन की बात कह सकें इन पंक्तियों को जाने देते हैं—सम्पादक]



सत्याग्रही दयानन्द

संयुक्त-प्रांत के कुछ कार्यकर्त्ता



श्री ठा० कर्णसिंहजी छाकर



श्री रासबिहारी जी तिवारी



श्रीयुत श्रीराम जी भारती



श्री देश[illegible] अधिकारी

॥ ओ३म् ॥

विषय-सूची

खुलती है अब कारा बन्दी !

(ले०—श्री सत्यभूषण 'योगी' वेदालंकार)

खुलती है अब कारा बन्दी !
प्रहरी चिर अभ्यस्त करों से
लेकर ताली सूने मन से
खोल रहा है ताला, देखो दुनियाँ का उजियारा बन्दी !
खुलती है अब कारा बन्दी !

(२)

बाहर आओ अभिनन्दन हो,
कोटि कोटि मुख से वन्दन हो,
देख रहा है उत्सुक नयनों से तुमको जग सारा बन्दी !
खुलती है अब कारा बन्दी !

(३)

तुमने उल्टा मार्ग बनाया,
मुक्ति हेतु बन्धन अपनाया,
जग बन्धन का प्यारा बन्दी, तुमको बन्धन प्यारा बन्दी !
खुलती है अब कारा बन्दी !

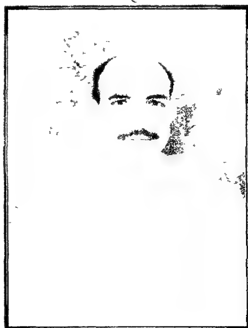
['बन्दी गीत' से]



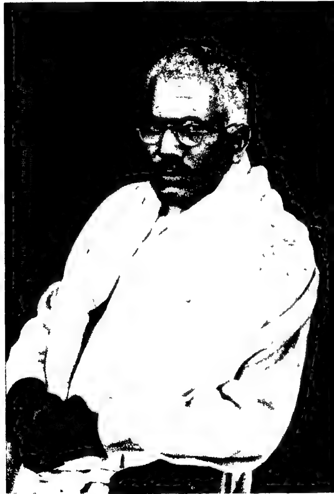
हैदराबाद सत्याग्रह के द्वितीय सर्वाधिकारी
देशभक्त कुँवर चाँदकरणजी शारदा



हैदराबाद सत्याग्रह के तृतीय अधिनायक
लाला खुशहालचन्दजी खुर्सन्द



हैदराबाद सत्याग्रह के चतुर्थ अधिनायक
राजगुरु श्री प० धुरन्दरजी शास्त्री



हैदराबाद सत्याग्रह के पञ्चम सर्वाधिकारी श्रीयुत पंडित वेदव्रतजी वानप्रस्थी ।



हैदराबाद सत्याग्रह के सप्तम सर्वाधिकारी श्री ज्ञानेन्द्रजी सिद्धान्तशिरोमणि ।

* ओ३म् *

आर्य्यमित्र

का

हैदराबाद-विजयांक

वर्ष ४२

* दीपावली संवत् १६६६ वि० *

१ नवम्बर १६३६

अङ्क ४५-४६

* ईश-प्रार्थना *

ॐ आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।

यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥

ऋक्० ६।२२।१०

शुचि यज्ञ विज्ञानादि से प्राप्तव्य हो तुम सर्वदा ।

विश्वेश ! हम पावें अहिंसा शुद्धता युत सम्पदा ॥

अज्ञानयुत इस विश्व को ऐसी अहिंसा दो प्रभो ।

ध्रुव धर्म से युत हो सदा यह 'आर्य' सब संसार हो ॥

—क्षेमचन्द्र 'सुमन'

आर्यसमाज-विजयाष्टक

(१)

दुर्दम्य दारुण दुःख मेटा देश का जिसने सभी
दुख दीन का अवलोक सुख अपना नहीं समझा कभी
रक्षा सदा करता रहा जो जन्म भू के लाज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(२)

निःस्वार्थ सेवा का जिसे निज गर्भ से ही ध्यान है
कर्तव्य पालन का जिसे निज देश पर अभिमान है
धुन है सदा जिसको अकेले अन्य हित के काज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(३)

होवे जगत् में दासता पर वह सदा स्वाधीन है
उसके विवेक समुद्र का यह विश्व सारा मीन है
प्रतिमा मयी मणि रूप जो है मातृ भू के ताज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(४)

है सार जिसको ही मिला विज्ञान पारावार का
मर्मज्ञ जो है द्वैत मे अद्वैतता के प्यार का
महिमा सिवा जिसके न कोई जानता प्रभुराज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(५)

बलिदान होना जानता जो धर्म के संग्राम में
है नाम की इच्छा न जिसको अन्य हित के काम में
जिसको हटा सकती न पीछे भीति भी यमराज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(६)

अन्यान्य मत जिसको पकड़ अंगुलि खड़े होने लगे
वे बाल्य धी से आज हैं यद्यपि बडे होने लगे
पर सामने जिसके जगत् की पन्थ माया आज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(७)

गौरव समेत अगम्य जिसका माननीय गुरुत्व है
गधर्व गण भी गा रहा जिसका प्रकृष्ट प्रभुत्व है
शोभा नहीं अन्यत्र उसके सत्यता मय साज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

(८)

जिससे दलित हो दम्भ सेना दूर छिप रोया करी
अज्ञान माया विश्व को तज कर उसे किससे डरी
झुक-झुक करूं मे वन्दना उस वीर तेजोभाज की
जय जय कहो जय शील जीवित आर्य ! आर्यसमाज की

लेखक—
आयुर्वेद शिरोमणि कविराज
श्री रत्नाकर शास्त्री

सत्याग्रह और असहयोग

(ले०—आर्य सत्याग्रह के प्रथम डिक्टेटर श्री म० नारायण स्वामीजी महाराज)



सिविल नाफरमानी (Civil disobedience) ये शब्द प्रचलित अर्थों मे सबसे पहले अमरीका के प्रसिद्ध विद्वान् थौरिया (Thoreau) ने प्रयुक्त किये थे, अमरीका वाले इसका प्रयोग कतिपय कानूनो के विरुद्ध खासकर युद्ध मे हथियारों के सीमित प्रयोग और अनुचित टक्स से सम्बन्धित कानूनो के विरुद्ध करते थे। परन्तु महात्मा गाधी ने सभी बातो मे इसका प्रयोग किया है।

(२) इस देश में महात्मा गांधी से पहले, अहिंसामय असहयोग का प्रयोग, ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध, १८१२ ई० मे, बनारस मे किया गया था। ब्रिटिश कर्मचारियो की प्रबन्ध सम्बन्धी कुछ बाते ऐसी थीं जिन्हें बनारस वाले अपने लिये अन्याय पूर्ण समझते थे, चिरकाल तक दूकानें बन्द रहीं, लोगों ने काम छोडे रक्खा और अपने नेताओ की आज्ञाओं का पूर्ण रीति से पालन किया। फल यह हुआ कि आन्दोलन सफल हुआ अगरेज कर्मचारियों को झुकना पड़ा और वे बाते रद्द हुई और टैक्स भी माफ किया गया।

(३) १८३० ई० मे मैसूर राज्य के विरुद्ध भी सफलता पूर्ण सिविल नाफरमानी की गई थी।

(४) महात्मा गाधी के नेतृत्व में अफ्रीका के बाद, इस देश में भी कई बार असहयोग आन्दोलन किया गया परन्तु सत्याग्रहियों के पूर्णतया अहिंसक न रहने अथवा सत्याग्रह की मर्य्यादाओं को भंग करने से वे आन्दोलन बन्द करने पड़े अथवा असफल हुये।

(५) सत्याग्रह के इतिहास मे, हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह एक विशेष स्थान रखता है। इस आन्दोलन की खूबिया ये थीं —

(क) आन्दोलन प्रारम्भ से अन्त तक पूर्णतया सत्य और अहिसा पर अवलम्बित रहा—

(ख) सत्याग्रहियों ने अनेक प्रकार के अपमान सहने और उत्तेजित किये जाने पर भी नियम और मर्यादाओं का भग नहीं किया।

(ग) अब तक के सत्याग्रह बराबर स्थानिक होते रहे हैं अर्थात् जो जहा रहता था उसने वहीं सत्याग्रह किया था। परन्तु इस हैदराबाद सत्याग्रह मे सत्याग्रहियो को लम्बी लम्बी यात्रा और बहुत सा धन व्यय करके सत्याग्रह करना पड़ा।

(घ) भिन्न भिन्न जेलो मे सत्याग्रहियो पर अनेक प्रकार की सख्तिया की गई, अमानुषिक व्यवहार किये, रुग्ण होने पर चिकित्सा का भी अच्छा प्रबन्ध नहीं हुआ, इसीलिए २१ सत्याग्रहिय की मृत्यु भी हुई परन्तु फिर भी हमारे सत्याग्रही प्रसन्नता से इन सभी अत्याचारों को सहते रहे और नियमो से विचलित नहीं हुये।

(च) सत्याग्रहियों के सत्याग्रह केन्द्रो तक पहुचने में अनेक प्रकार की असुविधाओं के होने पर भी, बडे बडे जत्थे स्पेशल ट्रेनों द्वारा, सत्याग्रह करने के लिए, सत्याग्रह स्थलो पर पहुँचते रहे।

(छ) सत्याग्रह करने के लिए तीसरी और चौथी पक्ति में रहने वाले व्यक्ति ही नहीं गये थे अपितु डिक्टेटर बन कर जाने वाले प्राय सभी प्रथम पक्ति में रहने वाले व्यक्ति थे।

(ज) सत्याग्रह का संचालन इतनी उत्तमता से हुआ कि इस देश ही मे सबका ध्यान उसकी ओर

आर्य्यवीर-दल स्थापित करो

महर्षि दयानन्द और अहिंसा धर्म

[ले०—राजस्थान के गौरव देशभक्त श्री कुंवर चाँदकरण शारदा अजमेर]



हमारी राष्ट्रीय विजय की द्योतक दीपावली के शुभ अवसर पर लक्ष्मी की लीला-स्थली, सरस्वती की क्रीड़ा-भूमि सभ्यता की जननी, भारत भूमि के सच्चे उद्धारक, आर्य्य-लाल महर्षि दयानन्द के बनाये अहिंसा धर्म पर ही कुछ उल्लेख कर मैं अपने को पवित्र करता हूँ। मनुष्य स्वभाव ही से सुख चाहता है, परन्तु फिर भी संसार में दुःख अधिक प्रतीत होता है। योरुप भयंकर जर्मन युद्ध से दुखी है और भारत पराधीनता और दरिद्रता से दुखी है। वह साम्राज्य-वाद और हिटलर शाही दोनों का नाश चाहता है। सुख और दुःख हमारे मनोदेव पर निर्भर है। जैसा हम कार्य करते हैं, उसका ही फल सुख-दुख रूप में हमें अवश्य मिलता है। अब प्रश्न यह उठता है कि कैसे काम करना चाहिये जिससे हमे सुख मिले और दुःख न हो। कौन से कार्य करने में दुख और कौन से कार्य करने में सुख है। सभी धर्मों का आदि स्रोत वैदिक धर्म बतलाता है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह इन पांच यमों के पालन करने से तथा शौच सन्तोष तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान इन पांच नियमों के पालन करने से मनुष्य परमानन्द को प्राप्त कर सकता है।

अहिंसा के अर्थ यह हैं कि किसी भी निर्दोष प्राणी को मनसा वाचा कर्मणा किसी प्रकार दुःख न पहुंचाया जाय। हमें दुःख है कि कुछ लोगों ने अहिंसा के झूठे अर्थ लगा कर अत्याचार सहना और अत्याचारी को दण्ड न देना अहिंसा धर्म मे सम्मिलित कर लिया है। प्रश्न यह है कि संसार में जब दूसरे मनुष्य अहिंसा धर्म का पालन न करें तो 'अहिंसा परमो धर्मः' को मानने वाले को किस हद तक अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिए। नर संहारक हिंसक तोपों हवाई जहाजों के सामने हम कैसे अहिंसा धर्म बोलते हुए हाथ पैर बांधे ठहर सकते हैं। ऐसी दशा में यदि हम प्रतिकार रूप में दुष्टों का शस्त्रों से दमन न करें तो निश्चय ही मारे जाते हैं। जो भाई यह कहते हैं कि जर्मनी और रूस के सामने निःशस्त्र प्रतिकार और सत्याग्रह करके विजयी हो जावेंगे तो मुझ को उन पर हंसी आ जाती है। क्योंकि रूस और जर्मनी के लोगों को अपनी बढ़ती हुई प्रजा को बसाने के लिए भूमि चाहिये अतः वे निर्दयी होकर अपने उपनिवेश बसाने के लिए आपको हवाई जहाजों से ही उड़ा देंगे, और आपका निःशस्त्र प्रतिकार निरर्थक सिद्ध होगा। आप मारे आयेंगे और स्वर्णमयी मातृभूमि पर वे आकर बसेंगे

आकर्षित नहीं हुआ किंतु इग्लैंड में भी उसका प्रभाव पहुंचा और चार बार पार्लियामेंट में प्रश्न भी किये गये।

(ण) सत्याग्रह के देवता महात्मा गांधी ने भी आर्य सत्याग्रह की मुक्तकठ से प्रशंसा की।

(त) सत्याग्रह पूर्णतया सफल हुआ और सबसे बढ़कर मार्के की बात यह हुई कि हैदराबाद राज्य और आर्य्य समाज के सम्बन्ध, सत्याग्रह की समाप्ति पर अच्छे रहे।

और 'वीर भोग्या वसुन्धरा' के सिद्धान्त के अनुसार आनन्द लूटेंगे। इसलिए सशस्त्र विदेशी फौज के संग्राम मे नि.शस्त्र होकर बैठने वालों को मैं हिंसक मानता हूँ क्योंकि अत्याचार सहना महान् हिंसा है तथा अ याचारी एवं अन्यायी को न मारना हमे नरकगामी बनाने वाला है। जब मैं उपर्युक्त बात कहता हूँ तो मेरे कुछ भाई कहते हैं कि आप ऐसी बातो से हिंसा धर्म का प्रचार करते हैं। उन भाइयों की सेवा मे मेरा नम्र निवेदन है कि भाई ! यदि कोई नपुंसक कहे कि मैंने आजन्म ब्रह्मचारी होने का व्रत लिया है तो क्या उस नपुंसक को कोई भला आदमी ब्रह्मचारी मानेगा ? उत्तर मिलेगा कि नहीं। क्योंकि जिसमे जो शक्ति नहीं उसके त्याग का यदि वह दम्भ करे तो ससार उसे झूठा ही समझेगा। ब्रह्मचारी तो वह है कि जिसमे वीर्य और पुरुषार्थ है और फिर वह इन्द्रिय निग्रह करता है। उसी प्रकार भारतवासी जब पराधीन है उनके पास शस्त्र नहीं हैं, वे स्वार्थ मे फंसकर क्षात्र धर्म व क्षात्र तेज को भूल गये हैं तब यदि वह यह कहे कि हम अहिंसावादी हैं इसलिए नही लडते तो ससार यही कहेगा कि ये कायर हैं और अपनी कायरता अहिंसा के आडम्बर मे छिपाते है। सच्चा अहिंसावादी तो वह है जिसके शरीर मे शक्ति है जो वीर्य्यवान् और तेजस्वी है जो अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग जानता है, तोप चलाना हवाई जहाज से बम बरसाना और नई नई गैसें छोड़कर फौजों का मूर्छित करना और मारना जानता है और फिर इतनी शक्ति रखते हुए भी हिंसा नहीं करता है। जिसके शरीर में शत्रु के पराजित करने का बल है पर आत्मिक बल से शत्रु पर विजय प्राप्त करता है तभी वह सत्य और अहिंसावादी कहला सकता है। अतः सच्चे अहिंसावादी बनने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम तोप तलवार हवाई जहाज से बम गिराना बन्दूक सघ खोलकर निशाने लगाना सब आधुनिक अस्त्र शस्त्रों का चलाना सीखें, जब हम इस प्रकार शक्तिशाली बन जायेंगे तो हिंसक जातियां अपने आप हमसे भय खायेंगी और हमारे सामने से भाग जावेंगी।

आर्यसमाज के प्रवतक संसारोद्धारक महर्षि दयानन्द ने हमे बतलाया है कि अन्यायकारी बलवान् से बलवान् का भी बल क्षय करने के लिये हमे सदा तत्पर रहना चाहिये। महर्षि दयानन्द ने केवल बातें ही नहीं बताई बल्कि शारीरिक बल का प्रयोग सिद्ध करके बताया। उनमे शारीरिक बल था तभी तो उन्होने कर्णसिह की तलवार के दो टुकड़े करके फेंक दिये थे। उनके शारीरिक बल और उनके ब्रह्मचर्य तेज के सामने दुष्टों का मान मर्दन होता था अत सिद्ध हुआ कि देश, धर्म और आर्य्य संस्कृति की रक्षा का एक सरल उपाय यही है कि महर्षि दयानन्द के पद चिन्हों पर चलकर हम आज के पवित्र दिवस स्थान स्थान पर पुरुषों के लिये आर्य्य वीर दल और स्त्रियों के लिये आर्य्य शक्ति-दल स्थापित करें। स्थान स्थान पर व्यायाम शालायें और शारीरिक शिक्षा विद्यालय स्थापित करें और उनमें भर्ती होना अपना कर्त्तव्य समझें। फौजी कवायद और अस्त्र शस्त्र के प्रयोग सीखने से हम आर्य्यसमाज के शारीरिक उन्नति वाले नियम का भला प्रकार पालन कर सकेंगे और सच्चे आर्य्य कहलायेंगे, मुझे लिखते हुये हर्ष होता है कि आर्य्य पुरुषों ने कायर पुरुषार्थ हीन अकर्मण्य लोगों के अहिंसा धर्म को ठुकराकर स्थान स्थान पर आर्य्य वीर दल, महावीर दल, अग्नि दल, गैंती दल आदि अनेकों दल स्थापित कर दिये हैं आर्य्य-हिन्दू जाति भली प्रकार समझ गई है। यदि हम अहिंसा धर्म के ढकोसले को लेकर निर्बल और कायर बने रहेंगे तो निश्चय ही बलशाली राष्ट्र हमें पैरों तले रौंदते ही रहेंगे। हाल ही में सारे भारत का जेल से छूटने के बाद मैंने भ्रमण किया है। उसमें मैंने अपने व्याख्यानों मे आर्य्य वीर दल स्थापित करने पर ही जोर दिया और सभी स्थानों पर आर्य्य हिन्दू जनता ने मेरी अपील को सुनकर आर्य्य-वीर दलों का सुसंगठन किया है और हजारों नव युवक इनमें भर्ती हुये हैं। अतः आर्य्य वीरो ! आर्य्य देवियो !! संसार की गति विधि से लाभ उठाओ। तुम्हारे

विपक्षी तुम्हारी सभ्यता को मिटाने के लिये किस प्रकार खाकसारादि दल संगठित कर रहे हैं और तुम्हारे विरुद्ध नाना प्रकार के षड्यन्त्र रच रहे हैं। आपने हैदराबाद सत्याग्रह संग्राम जीता है और आगे भी विस्तृत कार्य्य क्षेत्र पड़ा हुआ है। अत: क्षात्र धम जाग्रत कर सत्य और न्याय की तलवार हाथ में लेकर कमर कस कर खड़े हो जाओ। संसार की कोई भी शक्ति दयानन्द की सेना का मुकाबला नहीं कर सकती। वीरता हमारी विश्व विजयी प्यारी मातृभूमि का अपना बीज है। साहस हमारे सुमनोद्यान का सुरभित पुष्प है। आन और शान पर जीवन बलिदान करना हमारी पुरानी आदत है। विश्व विख्यात वीरों और वीरांगनाओं को उत्पन्न करने वाला हमारा प्यारा आर्यावर्त देश ही है। पुष्पक विमान में बैठने वाला धनुर्धारी राम, और सुदर्शन चक्र घुमाने वाला, गीता का रचयिता भगवान कृष्ण जेसे हमारे दिव्य ज्योति स्तंभ हैं वीरत्व से परिपूर्ण, धर्म के लिये सर्वस्व बलिदान करने वाले संसार के इतिहास मे अद्वितीय वीर हमारी ही आर्य्य-जाति सदा से उत्पन्न करती आई है। स्वदेश प्रेम से उन्मत्त होकर रणांगण मे देश द्रोहियों के रक्त पीने वाली रण-चण्डियां, धर्म रक्षार्थ ज्वाल मालाओं को छाती से लगाने वाली सतियां हमारे ही प्यारे भारतवर्ष के गौरव को आज दिन बढ़ा रही हैं।

अतः हैदराबाद सत्याग्रह संग्राम के विजयी आर्य्य वीरो! विजय के मद मे कहीं सो मत जाना कर्म वीर बन कर सार्वदेशिक सभा द्वारा बताये हुए रचनात्मक आर्य वीर दलों के सगठन कार्य में लग जाओ और इस प्रकार अपना संगठन दृढ़ करके आगे के लिए कूच करो। आर्य वीरो की विजयी दयानन्द की सेनाओं के हाथ मे सदा श्री विभूति और विजय रहेगी। उसमे लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। संसार के भूले भटके भ्रम पूर्ण नर नारी अपने ओ३म् के झण्ड के नीचे आकर अपने को गौरव शाली समझेंगे विशाल मन्दिरों के उत्तुंग, स्वर्ण-शिखर मस्जिदों के श्वेत गोल गुम्बद, गगन चुम्बी गिरजों की मीनारों पर आपके पवित्र ओ३म् के झण्डे लहरायेंगे। सब मन्दिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों मे संसार के सब धर्मों के आदि स्रोत वेदों के मन्त्रों का गान होगा। हवन यज्ञ होंगे। दूध घी की नदिया बहेगी। भारत को प्राचीन आर्य गौरव पुनः प्राप्त होगा। हमारे विश्वजित और अश्वमेध यज्ञ फिर सफल होंगे। सारे संसार मे सुख और शान्ति फैलेगी और सारा संसार एक स्वर से बोलेगा:—

'वही वृद्ध भारत गुरू है हमारा"

बोलो महर्षि दयानन्द की जय।

'जो बोले सो अभय। वैदिक धर्म की जय'।



कहानी

खतरे की घन्टी

(ले०-श्री महावीरसिंह वर्मा "वीर" म० वि० ज्वालापुर)

टन टन घंटी का नाद हुआ,
निस्तब्ध हुआ प्रिय बन्दीघर!
तालों पर ताले जड़े गये,
अरु टन टन से छाया था डर॥

फुर फुर करती हुई सीटियाँ बज रहीं थीं मानो चिड़िया ने जेल पर धावा बोल दिया हो। साथ ही धम धम का अव्यक्त नाद सैनिकों के शुभागमन की सूचना दे रहा था। बारगा की छत कॉप रही थीं। टन टन टन टन करती हुई खतरे की घन्टी बज रही थी। यह आध घन्टे तक रो चुकी थी, और आगे भी यही कार्य क्रम था। घन्टा बजती ही जा रही थी, उस घन्टी की आवाज और सीटी की फुर फुर ने एक समाँ सा बाँध दिया था। आज वे भूखे थे, कौन? वे वीरव्रती सत्याग्रही! जो सिर से कफन बाँध कर संग्राम में कूदे थे, और जिन्होंने स्वाभिमान पूर्वक कच्ची सड़ी रोटियों के खाने से इन्कार कर दिया था। रात्रि ६॥ का टाइम था कि अकस्मात् निष्ठुर सुपरिन्टेंडेन्ट ने खतरे की घन्टी बजवा दी। घन्टी, और वह खतरे की घन्टी, जिससे जेल की दुनियाँ कराह उठती है। घन्टी किसी अज्ञात अशुभ की सम्भावना पैदा कर रही थी, निःशस्त्र सत्याग्रही पिंजड़ों में बन्द हो चुके थे। वह कालरात्रि अब भी मुझे याद है। नन्हीं नन्हीं बूंदें टपक रही थीं अन्तरिक्ष मेघाच्छन्न था। झंझा के झोंके शीतलता का आदान प्रदान करते हुये झूम रहे थे। कभी कभी चपला भी चमक कर उस नीरव रजनी को भयंकर बना देती थी। क्या होने वाला है? भाई क्या होगा? हम लोग परस्पर सशङ्कित होकर पूछ रहे थे। मैं भी गुनगुना रहा था। गान में आल्हाद नहीं, विषाद था।



लेखक

'भाई पल में क्या होना है,
इसका है कुछ ज्ञान नहीं।
कर्तव्य मार्ग है कटकयुत,
भगने का लेना नाम नहीं॥"
"ऐ! प्राणों के पुनीत दीपक,
दो क्षण की है तेरी आभा।
प्रतिपल जगती का परिवर्तन,
जग मेरा है झूठा दावा॥"

मैं इन विचारों में तल्लीन था, रह रह कर अज्ञात आशंका मुझे बेचैन कर देती थी। एक दूसरे का मुंह ताक रहा था, मानो संकट की छाया देखना चाहता हो। ३०० सैनिकों ने यथावत् निरीक्षण करके बारगा के फाटक खोलकर जेलर के आदेश पालन करने का प्रयास किया। जेल के पहले हिस्से में उन्होंने बारगों को खोलने के निमित्त यथाशक्ति प्रयत्न किया। परन्तु सत्याग्रहियों ने दर्वाजा अन्दर से पकड़ रक्खा था। ये सैनिक जिनमें १५० खाकसार तथा गुण्डे भी सम्मिलित थे, जेल के दूसरे भाग में



आ नमूदार हुये। खतरे की घन्टी अब भी बज रही थी। इन सैनिकों के समीप लाइटें तथा गैसे भी थीं। १५७ के पास संगीन संयुत बन्दूकें तथा १५० के पास लोहे से मढ़े हुये से डण्डे मौजूद थे। इस बारग के एक कोने पर एक कोठरी थी, जो दर्वाजे से शून्य थी, अधिक संख्या होने के कारण कुछ सत्याग्रही बारग में कुछ बरामदे में, कुछ कोठरी मे और कुछ निद्रा देवी की गोद में विश्राम ले रहे थे बारग के अन्दर वाले सत्याग्रहियों ने सैनिकों को आते देख दर्वाजा मजबूती से पकड़ लिया था। सैनिकों ने बरामदे के सत्याग्रहियों को उठकर अन्दर चलने को कहा, और कोठरी के अन्दर वालों को बाहर आने को कहा, बीच में निहत्थों के ऊपर पुलिस टूट पड़ी। निद्रादेवी के उपासकों के ऊपर भी लाठी चार्ज किया गया तथा बन्दूकों के कुन्दों से मारा पीटा गया। इसके उपरान्त सैनिक बारग पर झपटे, परन्तु उनकी एक न चली। दर्वाजा अन्दर से बन्द था, दर्वाजा मोटे लोहे का था, बीच मे जालीदार चद्दर लगी हुई थी। पुलिसमैनों ने संगीनें चुभोना शुरू कर दिया, उधर सत्याग्रहियों ने बिस्तर दर्वाजे से सरका कर रख दिये। अन्त में पुलिस हताश होकर फिर उन्हीं घायलों पर टूट पड़ी। एक एक सत्याग्रही पर पचास पचास सैनिक टूटते थे। बड़ा रोमाञ्चकारी दृश्य था। सच पूछो तो जलयान वाला बाग बनने में थोड़ी सी कसर थी। बरामदा खून से तर होगया, सत्याग्रहियों के सिर फट गये, मैदान भी रक्त से रंग गया। घायलों के आर्त्तनाद से वह दुनियाँ रो रही थी। पानी! पानी! दो घूंट पानी की पुकार थी, एक चीख थी, लेकिन वहाँ पानी कौन देता वह तो प्राणों के भूखे थे। शायद किसी शायर ने इसी समय के लिये कहा था—

"वक्ते जिबह जानवर को देते हैं, पानी पिला।"
"हजरते इन्सान को पानी पिलाना है मना॥"

मैं भी अपने कुछ भिन्न गुरुकुलीय छात्रों के साथ भोजनशाला के एक कोने में बन्द था। इस वीभत्स काण्ड के उपरान्त हम रोटी परोसने वालों को एक नूतन बारग में बहुत से सैनिकों की संरक्षता में लाया गया। क्या अद्भुत दृश्य था, हम लोग भावी को सोच कर काँप रहे थे। बारग में हमें बन्द कर दिया गया, रोशनी पहले ही हटाली गई थी, सर्वत्र शान्ति थी। हाँ आकाश अवश्य आँसू बहा रहा था। कवि हृदय भी रो रहा था।

उन नन्हीं नन्हीं बूंदों से,
आकाश बहाता था आँसू।
वीभत्स दृश्य को देख देख;
करुणेश बहाता था आँसू॥

अंधेरी बारग मे हम लोगों को बिस्तर नहीं दिये गये। हम सब चुप-चाप बैठ गये। अचानक पानी पानी का शब्द कानों मे आया, आवाज में विषाद था, और थी करुणा। हम लोगों ने आंखें फाड़ फाड़कर देखना शुरू कर दिया, तो ज्ञात हुआ कि हमारे साथ ही घायलों की एक पंक्ति लेटी हुई है, भला पानी कहां! घायलो से लाठीचार्ज की राम-कहानी सुनते सुनते प्रभात होगया, प्रथम ऊषा की झांकी मनोहर थी, तदुपरान्त भगवान् भास्कर का तेजोमय ललाट अनोखी छटा दिखला रहा था। मैं खिड़की से झाँक रहा था बरामदे का खून धोया जा रहा था। प्रभात बीता, मध्याह्न आया, मध्याह्न बीता सन्ध्या आई, परन्तु घायलों तथा सम्पूर्ण बन्दीघर के सत्याग्रहियों की सुधि किसी ने न ली। ताला जड़ा रहा, घायलों का एक बूंद पानी का शब्द दिल में आग लगा देता था। जब यह घायल चीख रहे थे उस समय की एक घटना स्मरणीय रहेगी। मुसल-मान के एक लड़के ने टीन के डब्बे को पिचका कर सीकचों से पानी को पिलाया और हम लोगों ने तसले से पानी लेकर घायलों के मुंह में डाला, अपने मुंह में नहीं। १ टट्टी थी और १५०आदमी, टट्टी घर में पाखाना भर गया था, पेशाब का पानी बह बह कर बारग में आने लगा था। यह था हमारी बारग का अजीब नजारा। दो दिन के उपरान्त हम सबको एक एक मुट्ठी चावल दिये गये। घायलों को पानी दिया गया, उनके घाव धोये गये, डाक्टर ने आकर

पट्टियाँ बाँधी। अगले दिन फिर हम बन्द रहे, पानी की याचना पर एक बारग पर दुबारा लाठीचार्ज किया गया। ऊपर खड़ा हुआ पहरेदार चिल्ला रहा था—'और पीटो! और पीटो! काफिरों को और पीटो! यह ओ३म् का झण्डा फहराने आये हैं।' इसके उपरान्त हर एक बारग वालों को डण्डों से पीटा गया। बहुत छोटे व्यंकटराव, धर्मपाल, मोहन इत्यादि बालकों को थप्पड़ों से पीटा गया। वह धम से जमीन पर गिर पड़े। इसके उपरान्त अधिकांश लोगों के डण्डा बेड़ियाँ डाल दी गई। उनकी आवाज़ बड़ी ही करुणापूर्ण थी। मुझे उस समय शिमला साहित्य सम्मेलन मे पठित किसी कवि के यह शब्द याद आगये।

"गीत जंजीर की झंकार पै हम गायेंगे।
देखकर इस जोश को सन्तरी सर्मायेंगे॥"

सत्याग्रही उन बेड़ियों को झकझोर कर खूब गाया करते थे। इस प्रकार मैं पन्द्रह दिन तक औरङ्गाबाद ही रहा। रोज सत्याग्रही बन्द रहते थे। केवल भोजन के लिये शेर बाहर निकाले जाया करते थे। फिर उनके दर्शन सीकचों मे ही होते थे। मैं इसके पश्चात् हैदराबाद के बन्दीघर के दर्शनार्थ चला गया। पता नहीं फिर बेचारों पर क्या बीती? हाँ विजय के पश्चात् लौटते हुये मैं औरंगाबाद के अत्याचार सुनकर सिहर उठा था। क्या मनुष्य का इतना पतन हो सकता है। क्या मानवता का उपहार पशुता ही है। अब भी मुझे उस काली रात्रि की वह टन-टन याद आ जाती है और उस खतरे की घन्टी का इतिहास याद आ जाता है तथा कानों में कभी कभी वह ध्वनि सुनाई देने लगती है और मैं चौंक उठता हूँ।

ए खतरे की घन्टी तेरा;
इतिहास रक्त से भरा हुआ!
उस टन टन में इक क्रन्दन है;
वह बलिदानों से पगा हुआ॥

(औरंगाबाद जेल के लाठीचार्ज की एक सच्ची घटना)

भाग्यनगर सत्याग्रह

(ले०—श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी
प्रधान युद्ध समिति)



ई वर्ष पत्र व्यवहार करके जिस समय सार्वदेशिक सभा निराश होगई उस समय ६-१०-३८ को इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार किया। श्री नारायण स्वामी जी सर्वाधिकारी नियत हुए तथा व्यक्ति गत सत्याग्रह की आज्ञा दी गई और सोलापुर में सम्मेलन करके, समष्टि रूप से सत्याग्रह किया जाय वा न किया जाय निश्चय हो।

श्री नारायण स्वामीजी २८-१०-३८ को देहली से फ्रांटियर मेल से चले और प्रातः काल मुंबई में मे उतर कर आर्यसमाज मन्दिर में ठहरे और रात को १० बजे की गाड़ी से चलकर प्रातः काल ३० १०-३८ को सोलापुर पहुंच गए वहाँ पं० बसीलाल जी स्वागतार्थ उपस्थित थे। श्री स्वामी जी कुछ दिन पागा जी के बगले मे ठहर कर फिर मंगलवार पेठ में कनाले जी के मकान मे चले गए और सम्मेलन के लिये उधर ही भूमि ली उस भूमि में २५-२७-१२-३८ को आर्य सम्मेलन हुआ जिसके प्रधान श्री एम० एस० अणे जी यवतमाल निवासी थे उसी में समष्टि सत्याग्रह का प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

जनवरी में निजाम सरकार को पत्र स्वामीजी की ओर से लिखा गया जिसका भाव था आर्यसमाज की यह मांगें हैं इनको पूरा किया जाय अन्यथा सत्याग्रह होगा। उस पत्र का कोई उत्तर न मिला। तब २२-१-३६ को हैदराबाद दिवस मनाया गया। पश्चात् ३०-१-३६ से समष्टि रूप में सत्याग्रह

आरम्भ होगया जब श्री नारायण स्वामी जी हैद्राबाद पहुच कर पकड़े गए।

स्मरण रहे हैदराबाद नगर मे व्यक्ति गत सत्याग्रह अक्टूबर से आरम्भ हो चुका था जब सप्ताह मे २ दिन काग्रेस, १ दिन हिन्दू सभा, १ दिन आर्य समाज सत्याग्रह करता था खम्बा में आर्यसमाज ने २ दिन प्रति सप्ताह सत्याग्रह किये और जुलाई २२–१६ ३६ तक सत्याग्रह होता रहा हैदराबाद के वीरों में से केवल एक को घटना लिखता हूँ ४ भ्राता थे जो क्रम से सत्याग्रह करके जेल मे गए सबसे कनिष्ठ भ्राता भारत भूषण नाम का था जब ३ भ्राता कारागार में थे तो इसने सत्याग्रह किया इसको १ मास की कैद हुई जब यह छूटा तो इसने जेल आफीसर से कहा 'मेरी सदरकत (विशेष भोजन जो जेल में डाक्टर की आज्ञा से मिलता है) तयार रखना मैं ८ दिन मे पुन आता हूँ और यह सत्यवादो बालक ठीक आठवें दिन सत्याग्रह करके फिर कारागार में पहुँच गया।

द्वितीय सर्वाधिकारी श्री कु० चाँदकरणजी शारदा बने, उन्होंने बडे उत्साह से काम किया और प्रत्येक समाज से एक एक वीर सत्याग्रह के लिये भेजने की प्रेरणा की और ५–३–३९ को सत्याग्रह किया, उनके साथ ७० वीर थे, तृतीय सर्वाधिकारी लाला खुशहालचन्दजी १५० वीर लेकर २२–३–३६ को सत्याग्रह के लिये गए उनके साथ ही सत्याग्रह में गरमी उत्पन्न हो गई और उनके उत्तराधिकारी श्री धुरेन्द्रजी शास्त्री थे जिन्होने सयुक्त प्रान्त राजस्थान, मु बई प्रान्त में भ्रमण करके आन्दोलन की धूम मचादी और प० हरिशंकरजी शर्मा आगरा निवासी को अपने साथ ले जाकर दिग्विजय का सम्पादन उनको सौंपा जो सम्पादन कला मे सिद्ध हस्त हैं। और २८–४–३६ को ५०० सत्याग्रहियों को स्पेशल लेकर सत्याग्रह किया उसी समय से सब प्रान्तो से सत्याग्रही विशेष रूप से सत्याग्रह क लिये आने आरम्भ हो गए।

पाचवें सर्वाधिकारी पं० वेदव्रत जी थे इन्होंने बिहार, सी० पी० में आन्दोलन किया और ५–५–३६ को पुसद से उमरखेड होकर हद गाम में ५०० वीरो सहित सत्याग्रह किया उस समय जेल सब भर गई थीं और स्थान की तलाश निजाम सरकार कर रही थी हैदराबाद गुलबर्गा, औरंगाबाद में नई जेल बनाई थी। सप्तम सर्वाधिकारी म० कृष्ण जी बने उन्होने मनमाड से ७८२ वीरों सहित स्पशल ट्रेन द्वारा ५–७–३६ का सत्याग्रह किया, इन्होने पजाब में भ्रमण करके खूब आन्दोलन किया इन्होंने ७० सहस्र रुपये सत्याग्रह के लिये जमा किये। जिस समय इन्होंने सत्याग्रह किया उस समय निजाम सरकार के प्रबन्ध की मृत्यु होगई। न स्थान न भोजन न वस्त्र न पात्र, न जेल का नियम न कैदियो की गणना थी। सबमें गड़बड़ थी अधिकारी वर्ग हैरान था और किं कर्त्तव्य विमूढ होरहा था।

सप्तम सर्वाधिकारी श्रीज्ञानेन्द्रजी सिद्धान्त भूषण थे जो १७० सत्याग्रहियो सहित पकडे गए थे इन्होंने गुजरात, काठियावाड़ प्रात में प्रचार किया था इन्होने २२–७–३६ को सत्याग्रह किया था ८ वें सर्वाधिकारी पं० विनायकराव जी थे जिन्होंने २२ ८–३६ को सत्याग्रह करना था वह उसी दिन रोक दिये गए। ६ वें सर्वाधिकारी श्री आर० सी० मसानियाजी थे जिन्होंने विनायकरावजी के पीछे कार्य सम्भालना था।

इनके अतिरिक्त निजाम राज्य के सर्वाधिकारी थे, श्री विनायकरावजी दोनो ओर से आठवें थे। निजाम राज्य के डिक्टेटर श्री दत्तात्रेयप्रसादजी, श्री शेषरावजी, दिगम्बररावजी वकील, श्री हरिपन्तजी वकील, इनके कारण निजाम राज्य में आन्दोलन बढ़ा। वहाँ से ४–५ हजार तक सत्याग्रही आए। सब सत्याग्रही १२ हजार थे जिनका समिति को पता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी थ जो निजाम राज्य में अन्दर सत्याग्रह करके पकड़े गए उनकी सूची समिति के पास नहीं आई।

सफलता के कारण

प्रथम वह वीर हैं जिन्होंने सत्याग्रह किया और अपने जीवन कारागार में समाप्त कर दिये उनकी संख्या २५ है। मैं एक घटना लिखना उचित समझता हूँ वीर शांति प्रकाश, कलानौर जि० गुरदासपुर का रहने वाला था उसने ५ २ ३६ को गंजोटी में सत्याग्रह किया, वहां से धारा शिव (उसमानाबाद) भेजा गया वहां टाइफाइड हो गया, क्षमा के लिए कहा गया तो उसने उत्तर दिया कि जब तक सत्याग्रह समाप्त न हो वापिस न जाऊंगा। उसके पूज्य पिता रामरत्न जी को बुलाया गया उसका देहान्त वहां २६-६-३१ को हो गया, स्वर्ग सिधारने से पूर्व उसने पूज्य पिता से कहा— आपने शांति नाम दिया था मैंने धर्म युद्ध मे शहीद होकर शांति प्राप्त की है आप मेरे विषय मे निश्चिन्त रहे।

दूसरे वह १२ सहस्र वीर हैं जिन्होंने कारागार में दु:ख सहे मैं अनेक उन वीरों को जानता हूँ जिन्होंने घरपर कुछ नहीं किया था वहां वह सानन्द जेल का जीवन व्यतीत करते थे।

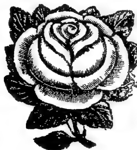
तीसरे देवियां हैं जिन्होने सत्याग्रह की आज्ञा न मिलने पर धन संग्रह करने, और सत्याग्रही भेजने मे अभूतपूर्व कार्य किया कुलांगनाओं ने न धूप देखी, न शीत, सत्याग्रह के लिए काम किया। चतुर्थ दानी सज्जन हैं जिन्होंने ७ मास में १० लाख रु० व्यय के लिए दे दिया, और यह धन कर रूप में नहीं अपनी इच्छा से दे दिया। स्वयं सेवकों को बुला बुला कर दिया।

इसके साथ साथ हिन्दू महासभा जिसने अन्त तक साथ दिया और कांग्रेस के नेता जिन्होंने आर्य समाज की पूरी पूरी सहायता की इनके अतिरिक्त पैरामोंट पावर जिसने समझौता करवाने मे सहायता दी और कार्य समाप्त हो गया। यदि यह सब शक्तियां एकत्र न होतीं तो इस प्रकार, इतना शीघ्र सत्याग्रह समाप्त न होता यह कहा जा सकता है।

सफलता के कारणों मे स्थायी संचालकों का भी धन्यवाद होना चाहिए, जो यह हैं-श्री चिरंजीवलाल जी वानप्रस्थी कश्मीर प० धर्मवीर जी वेदालंकार श्री आर० सी० मसानिया जी, श्री ठाकुर कर्णसिंह जी छोकर मथुरा, प० ज्ञानचन्द्र जी सदस्य दयानन्द सेवा सदन लाहौर, प्रो० शिवदयाल जी लाहौर, प० वशीलाल जी मन्त्री निजाम प्रतिनिधि सभा, (यह सबसे मुख्य और वीर अनथक कार्यकर्ता इस सत्याग्रह के जीवनाधार थे) डा० डी० आर० दास जी आदि सज्जन हैं।

इस सत्याग्रह से शिक्षा लेनी आवश्यक है। सबसे प्रथम यह है, कि जो विपक्षी यह कहते फिरते थे कि आर्य जाति वैदिक धर्म के नाम पर एकत्र हो सकती है उनको पता लग गया होगा कि इस सत्याग्रह में सब वैदिक धर्मी मिल कर कार्य कर रहे थे कोई भेद भाव न था भविष्य मे भी आर्य जाति को इसी प्रकार मिलकर कार्य करना चाहिये यदि संगठित होकर, शुद्ध मन से दृढ़तापूर्वक कार्य किया जाय तो ऐसा कोई कार्य नहीं जो संपादन न हो सके।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो सव्य आहितः



दिवाली का प्रसाद

(ले०—प्रो० ज्ञानचन्द्र जी एम० ए० जलन्धर)



वाली की रात्रि आर्यजगत् के लिये एक महत्वपूर्ण रात्रि है क्योंकि यह रात्रि आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द जी के नाम से सम्बन्धित है। इसी रात्रि को सत्य के दूत और वेदों के सूर्य महर्षि का परलोक गमन हुआ था। अत आर्यजगत् के लिये दिवाली का मनाना तभी सार्थक हो सकता है जब वह उस वस्तु के लिये जो महर्षि को अति प्रिय थी अपना सारा जीवन अर्पण कर दे। महर्षि आर्य समाज के तीसरे नियम में लिखते हैं कि "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है" इसलिये महर्षि का सच्चा स्मारक मुख्य रूप से वेद का ही प्रचार है। इस नियम में दो रहस्य हैं। प्रथम यह कि महर्षि इसे न केवल धर्म परन्तु परमधर्म के नाम से वर्णन करते हैं, द्वितीय यह बात है कि वह केवल आर्य्यों के लिये ही नहीं अपितु सर्व आर्य्य पुरुषों के लिये इस नियम को निर्धारित करते हैं।

वेद की महिमा

मनु महाराज अपने धर्मशास्त्र में पाठकों के लाभ के लिये वेदों की महिमा इस प्रकार वर्णन करते हैं।

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यम् यथाकालमतन्द्रित ।
तं ह्यस्याहुः परं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥

मनु ४-१७०

अर्थात् गृहस्थ अप्रमादी होकर ठीक समय पर वेद का नित्य अभ्यास करे क्योंकि यह उसका परम धर्म है और अन्य धर्म उसके नीचे हैं।

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तम: ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तप परमिहोच्यते ॥

मनु ५-१७२

अर्थात् तप करने की इच्छा वाला ब्राह्मण वेद का ही सदा अभ्यास करे क्योंकि इस शास्त्र में वेदाध्ययन ही सदा ब्राह्मण का परम तप है।

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वय ॥

मनु २-१५६

अर्थात् जो द्विज वेद को न पढ़कर अन्यत्र श्रम करता है वह जीता हुआ ही सपरिवार शूद्र भाव को प्राप्त होता है।

चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकाश्चत्वारश्चाश्रमा पृथक् ।
भूत भव्यं भविष्य च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥

मनु १२-६९

चारों वर्ण, तीनों लोक अलग अलग चारों आश्रम और भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् तीनों काल यह सब वेद से ही प्रसिद्ध होते हैं।

सेनापत्य च राज्य च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्य च वेदशास्त्रविदर्हति ॥

मनु १२-९८

सेनापत्य राज्य तथा दण्ड देने का स्वामीपन और सब लोगों पर आधिपत्य वेदशास्त्र का जानने वाला ही कर सकता है।

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन् ।
इहैव लोके तिष्ठन्स ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ १२

वेदशास्त्र के अर्थ का तत्व जानने वाला चाहे जिस आश्रम में रहकर इसी लोक में रहता हुआ मोक्ष को प्राप्त होता है।



हैदराबाद सत्याग्रह के षष्ठ सर्वाधिकारी—महाशय कृष्णजी बी० ए० ।



हैदराबाद सत्याग्रह के अष्टम सर्वाधिकारी—बैरस्टर श्री विनायकरावजी विद्यालङ्कार ।

हैदराबाद सत्याग्रह की सफलता

(ले०—श्री आर० सी० मसानियाँ उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यदेश व विदर्भ)



ह परमात्मा की महती कृपा है जो मुझे हैदराबाद सत्याग्रह में काम करने का मौका मिला, नहीं तो मैं कोरा रह जाता। कारण कि मुझे सत्याग्रह में जाने का मौका नहीं मिला मेरे सत्याग्रह में जाते जाते सलाह का पैगाम आगया।

मैंने पुसद, उमरखेड़ तथा वाशिम इन तीन नगरों में शिविर खोलकर सत्याग्रह का काम चलाया था। सब से बड़ी तथा विशेष बात यह है कि इन तीनों नगरों की जनता ने मेरा पूरा साथ दिया अर्थात् सत्याग्रह के लिये मुझे जनता की तरफ से सब तरह की सहायता मिली, फलस्वरूप इन तीनों शिविरों का खर्च चलाने के लिये मुझे सार्वदेशिक सभा के सत्याग्रह फण्ड का रुपया उपयोग में लाने की जरूरत नहीं पड़ी। बल्कि शिविरों का खर्च पूरा कर बचा हुआ धन लगभग तीन हजार रुपया सार्वदेशिक सभा के कोष में जमा कर दिया गया, यह सफलता प्राप्त होने का कारण यह है कि सत्याग्रह का कार्य शुरू करने के पूर्व प्रचार कर जनता को प्रेम पाश में बांध लिया गया था।

दूसरी विशेष बात यह है कि इन तीनों शिविरों में सत्याग्रह करने की गति विधि दूसरे शिविरों से

इसी प्रकार अथर्व वेद में लिखा है।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदय तां पावमानी द्विजानाम्। आयु प्राण प्रजां पशु कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥अथर्व १९॥

अर्थात् मन को उत्साह से प्रेरणा करने वाली वेदमाता की मैंने स्तुति की है। (प्रभु आदेश करते हैं) आयु प्राण प्रजा पशु कीर्ति ज्ञान तेज मुझे देकर मुक्ति प्राप्त करो।

प्राचीनकाल में वेदाध्ययन की प्रथा

वेद का प्राचीन समय में इतना मान होता था कि उस समय ब्रह्मचारी को गुरुकुल से समावर्तन के पश्चात् घर आते समय गुरु यह उपदेश देते थे

स्वाध्यायान्मा प्रमद।

इस तरह ऋषि तर्पण के पर्व पर भी ऋषि ऋण से उऋण होने के लिये पुराने और नये शिष्य गुरु के पास एकत्रित होकर यज्ञ करते थे और तत्पश्चात् जिस वेद के अध्ययन का निश्चय करते थे उसका पाठ गुरु आरम्भ कर देते थे।

अन्तिम निवेदन

हैदराबाद दक्षिण को जेलयात्रा से वापिस आने के पश्चात् मैंने इस प्रतिज्ञा को धारण किया है कि यथाशक्ति वेद विषयक ग्रन्थों का अध्ययन करके रोचक विधि से उनके सार को सर्व साधारण के सामने रक्खा जाये। मेरा व्यक्तिगत विचार यह है कि आर्यसमाज का भविष्य वेदप्रचार के बिना कदापि उज्ज्वल नहीं हो सकता। अतः मैं 'आर्यमित्र' के पाठकों से सविनय निवेदन करता हूँ कि वे महर्षि के मृत्युदिवस पर वेद के पढ़ने अथवा पढ़ाने की प्रतिज्ञा धारण करें, इससे उनका और आर्य जाति का कल्याण होगा।

निराली थी, यहाँ तो साक्षात् जैसे कि फौज युद्ध में जाती है उसी प्रकार युद्ध के स्थान पर अर्थात् सत्याग्रह करने के स्थान पर सत्याग्रहियों को खूब सजा कर पंक्ति के रूप में ले जाया जाता था। नगर की स्त्रियां जगह जगह सत्याग्रहियों का पुष्पों से सत्कार करती थीं, कहीं इन्हें मिष्टान्न खिलाया जाता था और कहीं इन पर पुष्पों की वर्षा होती थी। इस प्रकार बैंड बाजे से दर्शकों के साथ उमरखेड़ से निज़ाम के हदगांव पैन गंगा नदी पर चार मील पैदल चल कर पहुँचते थे।

इस सत्याग्रह के समय दर्शकों की अपार भीड़ रहती थी, इसकी संख्या बढ़ते बढ़ते चालीस हजार तक पहुंच गई थी, इसमें निज़ाम की जनता पांच हजार तक शामिल रहती थी, जिनके लिये निज़ाम सरकार की आज्ञा निकली थी कि जो मनुष्य सत्याग्रह के जुलूस में शामिल होगा, उस पर पांच रुपया दण्ड किया जायगा। इतनी सख्ती होने पर भी निज़ाम के पांच हजार मनुष्यों तक आजू-बाजू के रास्ते से आकर जुलूस में शामिल हो जाते थे और आये हुए विद्वानों का सत्कार कर उन्हें भेंट देते थे।

सत्याग्रह के दिवस एक बड़ा भारी मेला लगता था इनकी भूख प्यास के लिये बाजार लगता था, होटल लगते थे, जिनमें यात्रियों को सब तरह के भोज्य पदार्थ मिलते थे। जनता को इश्तिहार द्वारा सूचना दी जाती थी कि अमुक दिवस सत्याग्रह किया जायगा। इसलिये सत्याग्रह का मैदान दूर दूर के दर्शकों की मोटरों तथा बैल गाड़ियों से खूब भर जाता था, जुलूस में स्त्री, बच्चे और मनुष्य सब शामिल होते थे, आफिसरों के ठहरने के लिये तम्बू लगाये जाते थे और मेज़-कुर्सी का भी इन्तज़ाम रहता था।

तीसरी बात-सत्याग्रहियों को विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद पाने के लिये बड़े बड़े नेताओं को बुलाया जाता था, नेताओं के स्वागत में उमरखेड़ नगर तोरन-पताका आदि से खूब सजाया गया था, जगह-जगह दरवाजे बनाये गये थे, माननीय श्री लोकनायक बापूजी अणे, श्री बाबा साहेब खापर्डे जी, श्री वीर सावरकर जी सभापति हिन्दू महासभा आदि नेताओं को बुलाकर जनता में खूब प्रचार कराया गया, इनके व्याख्यानों में श्रोताओं की संख्या दस हजार से अधिक रहती थी, इसलिये जनता के सुभीते के लिये लौडस्पीकर का प्रबन्ध किया जाता था।

सत्याग्रह करने के स्थान का दृश्य

सत्याग्रह करने के स्थान पर एक तरफ निज़ाम की फौज सत्याग्रहियों को गिरफ्तार करने के लिये खड़ी है, दूसरी तरफ सत्याग्रहियों की फौज खड़ी है, तीसरी तरफ अंग्रेज़ सरकार की पुलिस तथा आफिसर्स दृश्य देख रहे हैं। इन दलों के बीच में बड़े बड़े विद्वान् स्टेज पर खड़े होकर सत्याग्रहियों को उपदेश सुना रहे हैं कि वीर सत्याग्रही आप लोग सत्याग्रह संग्राम फतेह करके आवें और विजय प्राप्त करने का उन्हें आशीर्वाद भी दिया जाता था।

गरमी का मौसम है, धूप कहती है मैं हूँ सो कोई नहीं। ऐसी कड़ी धूप में निज़ाम की फौज तथा आफिसर्स गुपचुप व्याख्यान सुनने खड़े हैं, इधर छोटे-छोटे बालक ऐसे जोश भरे जयकारे लगा रहे हैं कि हृदय हिल जाता है।

यह सब कार्यवाही समाप्त होने पर सत्याग्रही पंक्ति के रूप में जयकारे लगाते हुए आगे बढ़ते हैं। निज़ाम के अधिकारी उन्हें रोक कर समझाते हैं, आप लोग कहाँ जा रहे हैं।

उत्तर—हम लोग अपने भाइयों को धार्मिक हक दिलाने के लिये जा रहे हैं।

प्रश्न—धार्मिक हक तो सब लोगों को बराबर मिल रहे हैं, सब जनता सुख चैन में है, आप लोग फजूल ही गड़बड़ मचा रहे हैं।

उत्तर—यदि ऐसा है तो बहुत खुशी है, हमें जाने की आज्ञा देवें। हम अपने भाइयों से मिलेंगे और जनता में धार्मिक प्रचार करेंगे।

प्रश्न—नहीं, नहीं, आप लोग मजमे के रूप में नहीं जा सकते, एक एक मनुष्य जा सकता है।



आप जाने की इजाज़त नहीं देते हैं तो हम सत्याग्रह करेंगे—जो बोले सो अभय वैदिकधर्म की जय। उसी समय सब सत्याग्रही गिरफ्तार कर लिये जाते हैं और उन पर फौजदारी मुकद्दमा चला कर उन्हें जेल भेजा जाता है।

बीच बीच में पुसद के मुसलमानों ने कई बार मारपीट की, फौजदारी मुकद्दमे चले और दण्ड देना पड़ा। स्वामी नित्यानन्द जी पर भी मुसलमानों ने १४३ द० का मुकदमा चलाया, स्वामी जी के सत्याग्रह की सजा भोग कर निज़ाम जेल से बाहर निकलते ही पुन अंग्रेज़ी पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर यवतमाल जेल में दाखल किया। आर्यों ने ज़मानत देकर स्वामी जी को छुड़ाया और अभी स्वामी जी का मुकदमा चल रहा है। उमरखेड़ में भी मुसलमानों ने झगड़े किये और तय होगये।

वाशिम में किसी प्रकार का झगड़ा नहीं हुआ, सत्याग्रह का कार्य शान्ति पूर्वक समाप्त हुआ, यहाँ पर आर्यसमाज नहीं था इस कारण प्रचार करके यहाँ आर्यसमाज कायम कर दिया गया। यह सफलता श्री पंडित देवराज जी आर्य मिशनरी होशियारपुर के परिश्रम से हुई है, मैं उस समय नवम सर्वाधिकारी बन कर सत्याग्रह के लिये गया था।

इसमें कुछ शक नहीं, भाग्यनगर सत्याग्रह संग्राम में आर्यों की बहुत ही कड़ी परीक्षा हुई है। यह तो आर्यों के सच्चे तप और त्याग का फल है और परमात्मा की विशेष कृपा है जो आर्यों को ऐसी विकट परीक्षा में भी सफलता मिली है। विजय प्राप्त करने का दूसरा कारण संगठन शक्ति है। इसलिये हम संगठन की ओर अधिक ध्यान देने की कोशिश करें और जहा जहां भिन्नता है उसे मिटाकर एकता की ओर लाया जाय, इसी में हमारी भलाई है।

भाग्यनगर में आर्यसमाज का कायाकल्प

[ले० - श्री पं० रामदत्त जी शुक्ल एम० ए० एडवोकेट लखनऊ]

निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ।
ददतुस्तौ बलिं चैव निज गात्रास्त्रगुक्षितम् ॥

ऋषि दयानन्द ने प्रज्ञाचक्षु एवं वीतराग यति विरजानन्द से प्राप्त की हुई वैदिक संस्कृति को प्राणपण से साधारणतया समस्त संसार में किन्तु विशेषतया भरत खण्ड में वैदिक धर्म को प्रतिष्ठित करने के निमित्त अपने जीवन का प्रत्येक क्षण व्यतीत करते हुये सन् १८८३ का दीपमालिका के के पुण्य दिवस में ऐहिक जीवन का अवसान किया। उन्होंने जिस महान् आदर्श की पूर्ति के लिए अपने जीवन की आहुति दी उस कार्य मे आंशिक सफलता तो प्राप्त हो सकी किन्तु उसकी पूर्णता के लिये ऋषि ने सन् १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना करके उस सस्था को ही अपने महान् लक्ष्य को पूर्ति का निमित्त बनाया।

वेदप्राण दयानन्द के पश्चात् आर्यसमाज ने गत साठ वर्षों में अलौकिक उत्साह के साथ धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, और शिक्षा सम्बन्धी जीवन क्षेत्रों में अप्रतिहत प्रभाव के साथ कार्य किया, देश कालिक परिस्थिति और अपने बलाबल को तुलनात्मक दृष्टि से देखते हुए आर्यसमाज ने अनेक अर्थों में आशातीत सफलता प्राप्त की और अनेक आन्तरिक त्रुटियों के होते हुए भी आर्यसमाज सर्व साधारण सत्य और न्यायप्रिय धर्मप्राण जनता की प्रीति और सहानुभूति का उचित भाजन बना। मनुष्य स्वभाव का यह एक वैलक्षण्य है कि असुविधा बहुल काल में तो उसमें विशेष स्फूर्ति बल पराक्रम और संघर्ष प्रियता दिखाई पड़ती है किन्तु सुविधा बहुल अवस्था में शिथिलता निर्बलता, भीरुता, दीनता, और अकर्मण्यतादि दुर्गुणों का प्रकोप होने लगता है, आर्यसमाज भी मनुष्य स्वभाव सम्बन्धी इस सिद्धान्त का अपवाद प्रयत्न करने पर भी सिद्ध न हो सका, क्यो कि राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति ज्यो ज्यों व्यापकता के साथ बढ़ती गई त्यों त्यो प्रायः समस्त विचारक और कर्मठ व्यक्ति उसमे मनोयोग के साथ सहयोग प्रदान करने लगे। शनैः शनैः राजनीतिक कार्य क्षेत्र ही कर्मयोगियों के लिए कर्तव्यपालन का एक विशाल केन्द्र बन गया और ऐसी अवस्था मे दुर्धर्ष आर्षप्राण ऋषि दयानन्द से अनुप्राणित होने पर आर्यसमाज अपने अन्दर भी अनेक अनार्योचित दोषों को अनुभव करने लगा।

ऐसे विषम समय में आर्यसमाज को उदासीनता से आपाततः म्रस्त देखकर घर और बाहर के हित साधकों एवं अहित साधकों ने आर्यसमाज की कठोर आलोचना आरम्भ कर दी और आर्यसमाज ने भी ऐसे अवसर पर शान्ति और सुवधा के सहारे कालयापन करना अवसरोचित समझा अभिसन्धि प्राप्त होने पर वैदिक संस्कृति वैदिक धर्म, आर्य जातीयता आर्ष साहित्य संस्कृत भाषा और आचार व्यवहार परम्परा को निर्मूल करने वालों ने आर्य समाज और उसके प्रमुख कार्य कर्ताओं को अनेक अनुचित अवैध एवं कूट उपायों से दबाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया, उपर्युक्त अवसर प्राप्त होने पर भी आर्यसमाज ने "पयः पलायति स जीवति" इस सिद्धान्त के अनुसार आचरण करना सुविधाजनक समझा, किन्तु कालपुरुष के विशाल नियमों के विरुद्ध अधिक समय तक चलना कठिन होता है, इस कारण उचित मात्रा में अपने अन्दर आत्म विश्वास संघर्ष, सामर्थ्य, अदम्य साहस उत्कट उत्साह



प्रवृष्ट संलग्नता और क्षत्रियोचित धीरता की पर्याप्त मात्रा का अनुभव न करते हुए भी धनञ्जय की भांति सर्व-साधन-सम्पन्न ओत प्रोत पशुबल युक्त हैदराबाद को निरंकुश निजाम शाही के विरुद्ध वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति आर्य राष्ट्रीयता आर्य साहित्य और आर्य आचार व्यवहार परम्परा की रक्षा के लिए आर्यसमाज ने अहिंसात्मक सत्याग्रह संघर्ष की दीक्षा ली।

अहिंसात्मक सत्याग्रह संग्राम १० जनवरी १६३६ से ८ गस्त १६३६ तक चलता रहा, इस संघर्ष के सम्बन्ध में अंग्रेजी सरकार परोक्ष रूप से निरकुश निजामशाही को अनुचित और अवैध सहायता देती रही, सुदूरवर्त्ती टर्की, स्पेन अबिसीनिया, आस्ट्रिया, अलबानिया जैकोस्लोवेकिया, चीन, और पालेण्ड निवासियों के उत्पीडन पर अविरल अश्रुधारा बहाने वाले राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के प्रमुख नेतागण हैदराबाद के १८ कारागृहों में पैशाचिक पशुता के साथ प्रपीड़ित किये जाने वाले सत्य निष्ठ, धर्मप्राण, तप त्याग की दीक्षा लेकर अहिंसात्मक सत्याग्रह संग्राम मे प्रवृत्त होने वाले आर्य वीरों के प्रति अक्षम्य उदासीनता धारण किये रहे। देश के गण्यमान्य अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त "वसुधैव कुटुम्बकम्, की माला जपने वाले महापुरुषों ने अपने को हैदराबाद सत्याग्रह से उतना ही दूर रक्खा जितना कि शश के शृंग होता है, प्रेस एजेन्सियों के प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों और अनेक भुक्त भोगी मर्यादाविध्वंसक धु आधार व्याख्याताओं ने किसी अनिर्वचनीय आत्मीयता के कारण निरंकुश निजामशाही के अन्याय और अत्याचार पूर्ण शासन कार्यों की अनुचित सराहना की तथा अन्यान्य प्रकार से अनेक विघ्नबाधाएं उपस्थित होने पर भी आर्यसमाज ने अभूत पूर्व सगठन और सयम के साथ इस सघर्ष को सात मास तक चलाया, इस संग्राम में २० सत्याग्रहियों ने अपने प्राणों की हवि देकर निजामशाही की नृंशसता को मनुष्यता में परिणत करने का सफल उद्योग किया, और सात सर्वाधिकारियों की संरक्षता में १५ हजार वीर आर्य सत्याग्रहियों ने नारकीय यन्त्रणाओं से परिपूर्ण निजाम शाही की जेलों को अपने धार्मिक आचार व्यवहार से परिपूत कर दिया। इस सघर्ष में न तो नृशंस निजाम शाही और उसके नराकार दास पशुओं ने हिंसा के किसी भी क्रूरतम साधन के प्रयोग में लाये बिना छोड़ा और न आर्य सत्याग्रहियो ने ही सत्य और अहिंसा व्रत से अणुमात्र विचलित होने का विचार किया। अन्त में निजाम शाही पराजित हुई, वैदिक धर्मी आर्यसमाज की अहिंसात्मक सत्याग्रही सेना की विजय हुई, मित्र शत्रु और उदासीन सभी ने एक स्वर से आर्यसमाज के प्रति साधुवाद और प्रशंसात्मक भाव प्रकट किये। जिन धार्मिक अधिकारों की परिरक्षा के हेतु आर्यसमाज ने अहिंसात्मक सत्याग्रह की दीक्षा ली थी, उनको अभिलषित रूप में पूर्ण करने की घोषणा निजाम शाही की ओर से की गई और आर्यों के साथ न्यायोचित व्यवहार करने का आश्वासन दिया गया।

इस प्रकार सर्वथा शिथिल आर्यसमाज का एक प्रकार से कायाकल्प सम्पन्न हुआ और उसमे पुनः यौवनानुरूप स्फूर्ति पराक्रम उत्साह और सघर्ष प्रियता आदि उदात्त मानवोचित गुणों का प्रतिष्ठापन हुआ, इस महान् विजय के उपलक्ष्य में समस्त सम्बन्धित महानुभाव उचितरूप से प्रशंसा के भोजन हुये हैं। अप्रतिहत चक्र धर कालपुरुष की अनुकूल प्रेरणा से नितान्त विषम परिस्थिति में पड़ कर भी आर्यसमाज का यश सर्वत्र फैला और अब निर्बल एवं क्षुद्र हृदय युक्त लोगों को भी विश्वास हो गया है कि आर्यसमाज किस धातु का बना हुआ है और अवसर आने पर किस प्रकार क्षात्रोचित मर्यादाओं के अनुरूप प्राणपण से संग्राम क्षेत्र में अवतीर्ण होकर अपने पूर्वज आर्य वीरो की भांति सफलता के साथ विजय लाभ कर सकता है।

किन्तु इस कायाकल्प के अनन्तर अब आर्य समाज के प्रमुख नेतागणों का उत्तरदायित्व अत्य-



क्या अहिंसा अमोघ अस्त्र है ?

(ले०—श्री पं० बिहारीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ)

जो लोग प्रह्लाद की जैसी कथाओं, ईशू जैसे चमत्कारों और तरह-तरह के मौजिज़ों पर विश्वास कर सकते हैं, उनके लिये तो अहिंसा और सत्याग्रह से आततायी क्रूरात्माओं, नृशंस नर पिशाचों के हृदय परिवर्तन होजाने का विश्वास कर लेना अनहोनी बात नहीं है पर गोतम और कपिल की जाति जिसे तर्क तुला पर बिना तोले किसी बात को स्वीकार न करना चाहिये था आज ऐसे अयुक्त गपोड़ों में फँस गई, यह शोचनीय बात है। अहिंसा व्यक्तिगत शील है और बहुत अच्छा गुण है, इसमें कोई सन्देह नहीं मगर उसे जाति गत



कार्यों में भी लागू करना अहिंसा का दुरुपयोग ही है। मनु महाराज तो कहते हैं:—

"आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्"

अर्थात् आततायी दुष्टों के मारने में सोच विचार न करे।

वेद भगवान् कहते हैं:—

रन्धया शासदव्रतान्। अथर्व।

अग्ने तं भस्मसात्कुरु। यजुः।

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम्।

याश्चते हस्त इषवः परावामगवोवप॥ यजुः॥

अर्थात् दुराचारियों को कुचलो। जो तुम्हें सतावे उसे खाक करदो। धनुष पर बाण संधान करके शत्रुओं पर छोड़ो और उनके बाणों को दूर कर दो।

धिक बढ़ गया है, और उनका कार्य क्षेत्र भी अपेक्षाकृत विस्तृत हो गया है, इसलिये निकट भविष्य मे अवसर आने पर पुनः संग्राम दीक्षा लेना अनिवार्य होगा इस सैनिक भावना से प्रभाविन होकर अविलम्ब क्षात्रोचित शिक्षा दीक्षा का सर्वांगीण आयोजन आरम्भ करने का सुप्रबन्ध करना चाहिए इस प्रसग मे आर्यसमाज का संगठन सुदृढ़ आन्तरिक अनुशासन सुसंगठित रचनात्मक कार्य उन्नत, विस्तृत, और बहिरंग परिस्थिति का सम्यग्ज्ञान स्व और पर बल का परिणाम और प्रभाव देशकालानुकूल रचनात्मक अथवा ध्वंसात्मक शक्ति प्रयोग और वैदिक धर्म मर्यादा अनुसार सार्वजनीन आर्य राष्ट्रीयता को स्थापित करने का महान् आदर्श अपने समस्त विचारो और कार्यो के साथ समन्वित करते रहने पर कायाकल्पोपार्जित शक्ति प्रतिष्ठित रह सकती है, और आर्यसमाज के द्वारा मानव जाति का कल्याण साधन कर सकती है।

अब बताइये श्रुति, स्मृति के विरुद्ध आर्यजाति को जैन बौद्धधर्म की अव्यवहार्य शिक्षा कैसे मान लेनी चाहिये। अहिंसा के पूर्णावतार सत्याग्रह के आविष्कारक और एक मात्र स्वामी महात्मा गांधी डायर हृदय को न बदल सके। ओडवायर को कायल न कर सके। राजकोट में अहिंसा असि की धार खुट्टल होगयी। जिन्ना और उनके साथियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मगर फिर भी भावुकभक्त अभय-देव जी जैसे अहिंसा और सत्याग्रह से हृदय परिवर्तन होजाने का विश्वास करते हैं। जिस प्रह्लाद को ये लोग उदाहरण में पेश करते हैं, वह स्वयं अपने पिता का हृदय परिवर्तन न कर सका। आखिर प्रह्लाद के इष्टदेव नरसिंह का हिरण्यकश्यप के उदर का आपरेशन करना पड़ा।

"दुष्ट मानता डण्डे से"

गांधीवादी इसका उत्तर देते हैं कि "अगर हृदय परिवर्तन नहीं हुआ तो सिद्धान्त की त्रुटि नहीं किन्तु अहिंसा की अपूर्णता है। पूर्ण अहिंसा सिद्धि होने पर अवश्यमेव हृदय परिवर्तन हो जायेगा। क्रूर से क्रूर दानव भी दयालु मानव बन जायेगा।" अच्छा अगर यही बात है तो ऐसी सिद्धि क्या जातिगत हो सकती है ? क्या एक समूचे देश का योगी बन जाना सम्भव है ? फिर अहिंसा का हथियार जातिगत कहां हुआ ? हां व्यक्तिगत बात हो सकती है, और विशेष विशेष संस्कारी हृदयों पर ही इसका असर पड़ सकता है। समूची जाति के लिये अहिंसा अस्त्र को लाभदायी बनाना, प्रत्येक शत्रु के लिये इसी शस्त्र का प्रयोग करना एक पवित्र वहम है। अच्छा तो यह प्रश्न हो सकता है कि आर्यसमाजियों ने हैदराबाद में अहिंसात्मक सत्याग्रह क्यों किया ? इसका उत्तर स्पष्ट है। जब अपने धर्म पर आ बनें तो बलिदान हो जाना चाहिये यदि शत्रु बलवान् हों तो भी न्याय और सत्य की रक्षा के लिये, अपने सिद्धान्तों को अटल रखने के लिये मर जाना चाहिये। जान देवे मगर अन्यायी के आगे सिर न झुकावे। इसी भावना से आर्यसमाज ने सत्याग्रह किया था। आर्यसमाज का सत्याग्रह हकीकतराय और गुरु गोविन्दसिंह जी के पुत्रों के सत्याग्रह के समान था। हाँ, शक्ति होते हुए आर्य समाज उसी तरह के सत्याग्रह को भी उचित और धर्म समझता है जैसा कि वीर बन्दा और शिवा जी ने किया और जैसा कि राम, कृष्ण, अर्जुन आदि महावीर और आर्य पुरुष करते रहे हैं। यदि रामचन्द्र जी लंका के द्वार पर अनशन करते, यदि पांडव दुर्योधन के द्वार पर अहिंसात्मक सत्याग्रह करते तो परिणाम क्या होता ? क्या शिवाजी सत्याग्रह के शस्त्र से औरंगजेब को वश में ला सकते थे ? क्या सत् नामी साधु सत्याग्रह करके औरंगजेब के मुकाबले में सफल हुए ? औरंगजेब ने सबको हाथियों से कुचलवा डाला। कत्ल करा दिया मगर उनकी मांग पूरी न की, और न आज उनका कोई प्रभाव रहा ? यदि सिक्ख भी अहिंसात्मक सत्याग्रह करते रहते तो उनका नाम ही शेष रह जाता। लोकतन्त्र शासन का दम भरने वाली सभ्य ब्रिटिश सरकार के साथ ही ऐसे आन्दोलन किये जा सकते हैं। आततायी बर्बर नृशंस उद्दण्डों के प्रति नहीं।

हैदराबाद सत्याग्रह की सफलता अहिंसा की विजय नहीं है। वहां के अत्याचारियों पर इसका जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा। यदि वे किसी ऊंची शक्ति से न दबाये जाते। यदि उन्हें ब्रिटिश सरकार का भय न होता। यदि आर्य वीरों की आगामी शक्ति और हिन्दुओं के भड़क उठने की आशङ्का न होती तो आर्यों को पीसने का सवाब बिना लूटे न मानते। काफिरों को क़त्ल कर बहिश्त में हूरों के हकदार बने बगैर न रहते। आज हिन्दुस्तान भर में मुसलमान मुस्लिम राज्य के स्वप्न देख रहे हैं। तुर्किस्तान से सहारनपुर तक का मुस्लिम साम्राज्य का सुस्वप्न उन्हें दीखता रहता है। वह किसी देश विशेष बन्धन में नहीं पड़ना चाहते। अब तो वे 'हिन्दी हमवतन हैं हिन्दोस्तां हमारा' की जगह 'मुस्लिम हमवतन हैं सारा जहां हमारा' गाते हैं। मुस्लिमलीग ने दो तीन वर्ष से साम्प्रदायिकता का वह विष वमन किया है कि इस उग्र विष से सारा देश उत्तप्त हो र



है। मुसलमान विश्वमुस्लिम-बन्धुत्व के राग अलाप रहा है और बहुसंख्यक हिन्दुओं को काफ़िर कह कर घृणा करता है। मुस्लिम नेता किसी तरह भी मनाये पटाये में नहीं आ रहे हैं, और मुस्लिम संघटन की तय्यारी में लगे हुए हैं, और बहुत दृढ़ संघटन उन्होंने बना भी लिया है। आज कांग्रेस नेता उनके संघटन से दहल गये हैं। बार बार उनके द्वार खट खटाते हैं। मगर वे सूधे मुंह बात नहीं करते इधर हिन्दू अचेत पड़ा है। अहिंसा न जगत् विजय के मीठे स्वप्न देख रहा है। हिन्दू, मुसलमान ईसाई,सब आपस में भाई भाई की भग पीकर मस्त है। विश्व बंधुत्व का व्यामोह इसे घेरे हुए है।

विश्व बन्धुत्व का विचार बुरी बात नहीं, वेद स्वयं कहता है—

'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि सम क्षे।'

परन्तु इसके साथ ही यह भी तो है कि "मित्र स्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्" सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, और मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखु। बकरी के बच्चे अगर विश्व बन्धुत्व की भावना से भेड़िये के भाट पर चले जाएं तो सिवा इसके कि उसको क्षुधा बुझाने का पुण्य कमाएं, अपना या अपनी जाति का कोई हित नहीं कर सकते। मुसलमानों में खाकसारों की आतककारिणी सेना बन गई है। उसके कारनामे सामने है। गाधीजी के भक्त और पं० जवाहरलालजी के प्यारे खुदाई खिदमतगार अपने को पलटनी कवा यद और तलवार आदि से लैस बनाये हुए हैं। अह रार कांग्रेस का कल्मा पढ़ते हुए भी तलवार और भाले लिये हुए हैं। मगर अभागा हिन्दू, कृपाण की जगह करवा तलवार की जगह तकली और धनुष की जगह धुनकी से काम लेना चाहता है। चरखे को सुदर्शन कह कर एक दिव्य अस्त्र का उपहास कर रहा है। हिन्दुओं का एकच्छत्र नेता बम के गोलों का मुकाबिला रुई के गोलों से करना चाहता है। तोप को तकली से जीतने की असम्भव कल्पना कर रहा है। विध्वंसकारी अस्त्रों को अनशन और अहिंसा से विफल करने की धुन में हैं। ईश्वर कृपा करें आज हिन्दुओं के सामने वैसी ही परिस्थिति है जैसी महमूद के समय थी। आज किसी नगर में भी हिन्दुओं की जानमाल सुरक्षित नहीं है। कोई त्यौहार उत्सव या जलसा निर्विघ्न समाप्त होजाये तो बड़ी गनीमत समझी जाती है। बहुसंख्यक व र हिन्दू दूसरों की दया पर ही जी रहे हैं। इनकी अहिंसा कायरता समझी जाकर उपहास्य बनाई जा रही है। आज संयुक्त प्रान्त में खाकसार उपद्रवों की खाक छलीच रहे हैं। सरकार उनकी मिन्नत मनौती कर रही है। हिन्दुओं पर रौब जमाया जा रहा है बकौल वियोगी हरि जी

चूमत चरण शृगाल के गज मद मर्दन शेर।
झपटत बाजन पै लवा हाय दिनन के फेर॥

इस विपरीत परिस्थिति को बदलना पड़ेगा। हिन्दुओं को स्व स्वरूप की स्मृति करानी होगी, और आततायियों से रक्षा करनी होगी, और यह काम सिवा आर्यसमाज के कौन कर सकता है? इस समय बिखरी हुई हिन्दू जाति का संघटन आर्यसमाज फिर कर सकता है। अपनी संस्कृति सभ्यता और साहित्य की रक्षा के लिये हिन्दुओं को आर्यसमाज क सिवा और आश्रय नहीं ढूढ़ना चाहिये, और आर्यसमाज को भी इस पुरातन जाति, इस महान् देश की रक्षा का भार अपने सिर समझ लेना चाहिये क्योंकि हिन्दूमात्र में कोई संस्था ऐसी नहीं है, जिसे भारत और भारतीय संस्कृति से इतना प्रेम हो। अत आर्य समाज को इस महत्वपूर्ण कठिन काम को पूरा करने के लिये बल संचय करना चाहिये। अनुशासन का बल, धन का बल, शारीरिक संघ बल, आन्दोलन का बल, यह सब शक्तियाँ संचित करनी चाहिये।

अनुशासन का बल दृढ़ होगा नेताओं की आज्ञा पालन से धन बल बढ़ेगा उदारता और व्यापारिक कार्य खोलने से, शारीरिक सघ शक्ति के लिये आर्य वीर दलों को बढ़ाना चाहिये। आन्दोलनों के लिये अखबार हाथ में करने होंगे। आर्यसमाज को यह भावना बहुमूल्य कर लेनी चाहिये कि भारत की संस्कृति की चौकीदारी उसे करनी है और वह इसके

शुभ–सन्देश

आर्यसमाज का कायाकल्प



(ले०—श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ)



आर्य सत्याग्रह से हैदराबाद के मुसलमानों पर एक प्रकार का आतंक सा छा गया है और वे अब समझ गये हैं कि आर्यों के साथ व्यर्थ अड़ने में कोई लाभ नहीं है। उनकी मनोवृत्ति बदल गई है और इसका परिणाम यह होगा कि भविष्य में वे आर्य-समाज के कार्यों में किसी प्रकार के भी अड़ंगे नहीं लगायेंगे।

हैदराबाद राज्य के आर्यों का कर्त्तव्य है कि वे शान्त रीति से अपना काम करते रहें। सहन शीलता तथा प्रेम से जनता को अपनी ओर खींचें अपने व्यवहार से यह सिद्ध करके दिखावें कि आर्यसमाज प्रेम करने की वस्तु है उपेक्षा अथवा घृणा करने की वस्तु नहीं है। आर्यसमाज आत्मा को ऊपर उठाने वाला समाज है वह मानव समाज को सुख शान्ति-एवं समृद्धि का सन्देश देता है। वह अध्यात्मिक वाता-



लेखक

वरण को उत्पन्न करने वाला समाज है। वह किसी से घृणा नहीं करता, वह किसी से शत्रु भाव नहीं रखता, वह सबको मित्र की दृष्टि से देखता है, हैदरा-बाद के आर्यों का यह भी कर्त्तव्य है कि वे केवल

योग्य है। वहम, कल्पना, भावुकता और चमत्कारों के विश्वास से राष्ट्रीय कार्य नहीं चला करते। ईश्वर भी कायरों की सहायता नहीं करता है। आलसी भक्त अन्धकूप में गिरते हैं। आर्यसमाज को हिन्दुओं का अन्धविश्वास दूर करना होगा। अव्यवहार्य आदर्शों का मोह छोड़कर परिस्थिति को देखकर चलने की शिक्षा देनी होगी। आर्यसमाज उठ और अगली सार्वभौम विजय की तैयारी कर। आर्यो! हैदराबाद विजय के बाद एक और विजय के लिये तैयार बनो। आलस्य और प्रमाद को मार भगाओ याद रक्खो,

नीरक्षीरविवेके हंसालस्यं त्वमेव तनुषे चेत् ।
विश्वस्मिन्नधुनान्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः ॥

निष्पक्ष न्याय के लिये सत्य और असत्य के भेद के लिये दुर्जनों से सज्जनों की रक्षा के लिये तुम्हारा बलवान् बनना जरूरी है। निर्भय होकर कहो:—

सख्ये त इन्द्र वाजिनः माभेम शवसस्पते ।



बधाई





(१)

देश हृदय स स्वागत करता सत्याग्रही जवानों का
क्या सन्यासी, निधन धनी क्या सबही क अरमानों का
क्या पजाबी बगाली, मद्रासी वीर जवानों का
अरे ! अटक से और कटक तक लेकर सब मरदानों का

(२)

छोड़ा सब घर ब र जो कि बन जेलों क महमान चल
नव नव बलिदानों में उठ उठ अ र्य-ज ति के प्र ण चल
बढे चले ये बढ कर करन अधिकारों का भाग चल
शूर शिवाजी की भू पर मिटने उनके बलवान चले

(३)

मचल उठे जब प्राण मचादी इनने प्राणों की होली
इनके खू से रग कर जेलें बनी नई धर्मापाली
पानीपत हल्दी घाटी का साहस ले सिर धर रोली
प्रान्त प्रान्त के नगर नगर से निकल पड़ी लाखों टोली

(४)

अ जलो क विजयी सै नक । तुमको आज बधाइ है
खुद ताकत भी आज तुम्हारे चरण चूमने आ ई है
विजय पता का विमल व्योम म तुमने ही लहराइ है
विजय घो ष ध्वनि अम्बर म घहर घहर घहराइ है

(५)

स्वागत स्वा गत तुम्ह रा भारत क अभिमानों से
गगा तट क म लयाय क मुक्त हृदय क प्राणों से
गाँधी क आशार्वाद स नहरू के वरदानो स
नारायण शारदा कृष्ण से आर्य जाति के प्राणो स

(६)

अमृतसर के गुरुद्वारे से, आर्य लोग क तन मन से
और महल से कुटिया तक के महासभा के जन जन से
भारत के बालक बालक से भारत भू के कण कण स
रुखी सूखी रोटी खाने वाल त्याग कृषक गण से





लेखक—

श्री राजेन्द्र वर्मा

धार्मिक स्वतन्त्रता से ही सन्तुष्ट न हो बैठें पूर्ण नागरिक अधिकारों (जो कि राजनैतिक अधिकारों पर निर्भर रहते हैं) की अपेक्षा करने से भी काम नहीं चलेगा । धार्मिक स्वतन्त्रता भी राजनैतिक अधिकारों के बिना सुरक्षित नहीं रह सकती ।

समय की गति कभी एकसी नहीं रहती । समय ने हैदराबाद राज्य की गति भी बदल दी और आर्य सत्याग्रह के कारण आर्यसमाज में भी काया-कल्प हो गया एवं आर्यसमाज की आयु बढ़ गई । आर्य सत्याग्रह द्वारा जो बोध हुआ है उसमें यदि यथार्थ लाभ उठाया गया तो निःसन्देह आर्यसमाज भविष्य में भी बहुत बड़ा काम कर सकेगा । तथास्तु !

विजयी सत्याग्रह और पश्चात्

[ले०—श्री स्वामी आनन्दघन जी एम० ए०]

बड़े सन्तोष की बात है हैदराबाद सत्याग्रह बड़े गौरव के साथ विजय श्री से समन्वित हुआ। इस सत्याग्रह मे आर्यसमाज का मुख्यत: और हिन्दू जाति का साधारणत: त्याग और तप, सहयोग और संगठन धार्मिक शासन और अनुशासन का अच्छा प्रदर्शन हुआ और भारत की सबसे दीर्घकाय और धनाढ्य रियासत के शासन को भी जो अहिसा मे विश्वास नहीं रखते, पता चल गया कि अहिसात्मक सत्याग्रह मे कितना बल है। न केवल आर्य नवयुवको और वृद्ध पुरुषो को ही इस धार्मिक सेवा और तप से लाभ हुआ किन्तु हमें पूर्ण विश्वास है कि वहाँ के शासक वर्ग जेलर, सुपरिन्टैन्डैंट पुलिस इन्सपैक्टर, सिपाही, डाक्टर, कलक्टर, आदि तथा वार्डर कैदी, आदि के भी विचारो और चरित्रो मे भी काफी सहानुभूति और निर्मोत भावों का समावेश हुआ। इस विजय से और भी कितने ही गौण लाभ हुए।

१–सब प्रान्तों के आर्य भाई एक स्थान पर एकत्र हुए और मैत्री भाव पैदा हुआ। प्रान्त प्रान्त के निवासियो की भाषा, वेश, भाव का ज्ञान तो हुआ ही अपितु वहाँ पर समाज के कार्यो और प्रभाव का भी पूर्ण परिचय मिला जो वैसे कभी हो ही नहीं सकता था।

२—पंजाब, बगाल, यू० पी० व सीमाप्रान्त के भाइयों ने दक्षिण देश का निरीक्षण किया और अनायास ही एक पंथ दो काज सम्पन्न होगये। माता के सागर प्रक्षालित चरण भाग का दर्शन करके उसका समग्र रूप जाना।

३—हमे अपनी योग्यता और निर्बलताओं का पता चला और कितनी ही सुधार योजनाओं का विचार और सूत्र पात जेलो में ही आरम्भ होगया। यह श्री गणेश अभिनन्दनीय है।

४—इस सत्याग्रह की विजय से आर्यसमाज की बहुत शक्ति बढ़ गई जिसको शीघ्र काम मे लाकर लाभ उठाना चाहिये। अंगरेजी मे एक कहावत है। Nothing succeeds like success कि 'विजय के समान कोई विजयी नहीं होता। इस विजय से छोटी छोटी रियासतो मे किसी को हिम्मत नहीं होगी कि आर्यसमाज के न्याययुक्त धार्मिक कार्यों में बाधा पहुंचाएँ और यदि किसी ने नादानी से बाधा उपस्थित की भी तो आर्य वीर दल हिम्मत और विश्वास से उसका मुकाबिला कर सकता है। अभय हो गये हैं फिर क्या ?

धर्म केवल पुस्तकों को वस्तु नहीं बल्कि
यत: 'धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः

अत: आर्यसमाज के जो अंग शिथिल हो रहे हैं उनमे जीवन फूंक कर खूब सबल और व्यवहार कुशल बनाने से ही यह लोक और परलोक बन सकते हैं। शिक्षा, संगठन गौरक्षा, प्रचार, दान सुधार अछूतोद्धार स्वराज्य प्राप्ति आदि क्षेत्रों में क्या करणीय है यह विचारना चाहिये।

१—शिक्षा बड़े महत्व का विषय है। गुरुकुलों की शिक्षा पूर्ण नहीं है और न वह राष्ट्रव्यापी ही बन सकी। अतएव एक चार्टर्ड 'आर्य विश्व विद्यालय' के स्थापित होने की नितान्त आवश्यकता है जहाँ वैदिक आदर्शों के अनुसार त्याग और तप करते हुए सब विद्याओं का अनुशीलन किया जा सके।



वैदिक संस्कृति, व्यापक पाण्डित्य, ब्रह्मचर्य और कुलभाव (साम्यभाव) स्वामी दयानन्द की शिक्षा प्रणाली के मौलिक सिद्धान्त हैं। 'आर्य विश्व विद्यालय' होने से यह प्रश्न ही नहीं रहता कि हमारी उपाधियों को लोग स्वीकार नहीं करते अतएव हमारे लड़के फिर बाहर की परीक्षाऐं पास करें, न इस शिकायत के लिये भी अवकाश रहता है कि आर्य समाजी अपने लड़कों को गुरुकुल नहीं भेजते। वास्तव में अभी तक किस गुरुकुल मे धनुर्वेद अर्थात् जो राज सम्बन्धी काम करना है, शस्त्रास्त्र विद्या नाना प्रकार के व्यूहों का अभ्यास, कवायद आदि क्षत्रियोचित विद्या जिसका सत्यार्थ प्रकाश मे आदेश किया गया है सिखाई जाती है? अर्थवेद जिसको शिल्प विद्या कहते हैं जिससे पदार्थ उनके गुण विज्ञान, क्रिया कौशल नानाविध पदार्थों का निर्माण व सब प्रकार की हस्त क्रिया और यंत्र विद्या जिनका स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में जोर दार निर्देश किया है उनके सिखाने का क्या प्रबन्ध किया गया है? अतएव स्पष्ट है कि क्षत्रिय वैश्य और शूद्रो की यानी तीन वर्णों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं। ऐसी दशा मे समाज की रक्षा कैसे हो सकती है? केवल विज्ञापन बाजी लच्छेदार लेख और भावुक भाषणों से गुरुकुलों को चलाना सम्भव नहीं। शिक्षा को पूर्णता के लिये 'आर्य विश्व विद्यालय' की स्थापना जरूरी है। अब सरकारी सहायता लेना भी बुरा नहीं।

२—संगठन—सब कहीं झगड़े और दल बन्दी का जोर है। समाजों के चुनावों मे ग्यारह महीने के चन्दे के बजाय चरित्र और धर्म मय जीवन को अधिक महत्व दिया जाना चाहिये। लोकोपकारी संस्थाओं का समाज से अलग संगठन किया जाना चाहिए और संस्थाओं में भी उनको अधिकार विशेष रूप से मिलने चाहियें जो पुष्कल धन से दीर्घ सेवा से संस्था की सेवा करें। समाजों के प्रधान व प्रतिनिधि सभा के प्रधान व प्रतिनिधि सभा के प्रधान धार्मिक व्यक्ति चुने जाकर उन्हें अपनी कार्य कारिणी समिति (cabinet) बनाने का अधिकार दिया जाना चाहिये। जो लोग जाति पांति के झगड़े फैलावें उन्हे समाज से अलग कर दिया जाय तभी संगठन दृढ़ हो सकता है।

३—अछूतोद्धार—यद्यपि स्वामी दयानन्दजी ने शूद्रों को बहुत अधिकार दिये तथापि आर्यसमाज का अछूतोद्धार के सम्बन्ध मे बहुत कर्तव्य शेष है। हमारे उद्देश्य की पूर्ति इससे नहीं होती कि अछूतों को मन्दिर प्रवेश का अधिकार मिल जाय। इस प्रकार तो आर्यसमाज पर कार्य भार और बढ़ता है क्योंकि मूर्ति पूजो की संख्या बढ़ती है। हमारे मन्दिर तो सबके लिये खुले है। हमारा तो यही कर्तव्य है कि अछूतो को अधिकाधिक संख्या में समाज के सदस्य बनाकर उन्हे शौच शिक्षा संस्कृत और वैदिक भावों से समन्वित करें जिससे वे उत्तम नागरिक बन सकें।

४—गोरक्षा—के सम्बन्ध में आर्यसमाज ने क्रियात्मक कार्य विशेष नहीं किया। एक भी आदर्श गोशाला स्थापित नहीं की गई। यदि आर्य सज्जन प्रत्येक स्थान पर यथासम्भव एक एक सहकारी गोशाला स्थापित कर स्वयं व अपने बच्चों को गोदुग्ध पिलाने का व्रत ग्रहण करें तो अति उत्तम कार्य हो जावे। ऐसी गोशाला (Cooperative Dairy) के लिए सरकारी सहायता भी मिल सकती है। बूढ़ी गउएं साहूकारों की गोशालाओं मे भेजी जा सकती हैं क्योंकि वे केवल ऐसी ही गायों का पालन करने पर खर्च करते हैं।

५—प्रचार—प्रचार की बड़ी सख्त जरूरत है। हैदराबाद को जेलो मे हजारों सत्याग्रही ऐसे देखे गये जिनको संध्या भी नहीं आती थी। प्रचार से ही विचार परिवर्तन होता है। स्त्री प्रचारिकाओं की संख्या भी काफी होनी चाहिए। गांवों में प्रचार के लिए कुछ बैलगाड़ी ऐसी तैयार की जायें जो बन्द डिब्बे नुमा हों उनमें एक फर्श, पैट्रोमैक्स लैम्प, बाजा तबला व टूटने वाली मेज कुर्सी का सैट हो। उनमें अनेक विषयों पर ट्रैक्ट (पुस्तिकाऐं) और साधारण रोगों की दवा भी रहे। इनमें एक एक प्रचारक



और एक एक हांकने वाला गांव गांव घूम कर प्रचार करें। हांकने वाले को तबला बजाना और लैम्प आदि जलाने का भी ज्ञान होना चाहिये। जो लोग दवा के दाम दे सकें उनसे लिए जायं इससे भी बहुत खर्चा निकल आवेगा।

६—विशेष प्रचारक—समाज मे कुछ विशेषज्ञों की भी आवश्यकता है। जिसे समाज के सिद्धान्तों का साधारण ज्ञान होते हुए किसी एक विषय का पूर्ण और गम्भीर ज्ञान हो। ऐसा व्यक्ति ही उस विषय पर कुछ महत्व पूर्ण सम्मति दे सकता और योजना तैयार कर सकता है। आर्यसमाज में शिक्षा विशेषज्ञ गोरक्षा विशेषज्ञ, दान प्रणाली विशेषज्ञ, जैसे पण्डितो का अभाव सा ही है। यह युग विज्ञान और विशेषज्ञो का है। वायसराय भी विशेषज्ञो (experts) की राय लेता रहता है अतएव ऐसे विशेषज्ञ तैयार करने के लिए एक निधि स्थापित होनी चाहिये जिसमे से किसी विषय की खोज या विशेषज्ञान प्राप्त करने वाले को २—४ वर्ष के लिए समुचित छात्रवृत्ति दी जाये, जिससे वह निश्चिन्तता पूर्वक विशेष ज्ञान का सम्पादन कर सके और समाज को लाभ पहुंचा सके।

६—दान प्रणाली—देश मे कुदान बहुत होता है दान सुधार के सम्बन्ध में आर्यसमाज के सम्बन्ध मे आर्यसमाज के महान् नेता स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने जो अपने ग्रन्थ 'यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमरीका' मे लिखा है उसे अमल मे लाने के लिए आर्यसमाजियों को दान संघ स्थापित करने चाहिये और दान प्रणाली का सुधार करना चाहिये।

८—स्वराज्य प्राप्ति—के लिए राजार्य सभा का संगठन जोरो से होना चाहिए जिससे धार्मिकता और राष्ट्रीयता का समन्वय हो सके। स्वराज्य शब्द सबसे पहिले स्वामीजी ने प्रयुक्त किया था यह स्मरण रहे।

६—आश्रम व्यवस्था—ब्रह्मचर्य आश्रम सब की आधार शिला है। स्वामी जी ने लिखा है कि राजनियम और समान नियम ऐसा हो कि द वर्ष के पश्चात् सब कोई लड़कों को गुरुकुल भेजने को बाध्य हों। इस पर अमल होना चाहिये। ५०-५५ वर्ष के बाद आर्य लोग वानप्रस्थ हो जाने चाहियें, परन्तु उनके रहने को आश्रमो या गुरुकुलों मे प्रबन्ध होना चाहिए और जो निर्धन हो उनके लिए भोजन का भी कुछ प्रबन्ध आवश्यक है। उनसे थोड़ा हल्का सा अर्ध समय (चार घंटे) कुछ काम भी लिया जाय तो कोई बुराई नहीं। समाज मे संन्यासियों की काफी संख्या है परन्तु दीक्षा देने वाले महात्मा इस बात का विचार नहीं करते कि स्वामी जी ने केवल ब्राह्मणों को अर्थात् गुण कर्म स्वभाव से ब्रह्मवृत्ति वालों को ही संन्यास लेने का अधिकार बताया है। सब प्रकार के साधुओं से आर्यसमाज का उद्देश्य गिर जाने की बहुत आशंका है।

ये कुछ आवश्यकीय और व्यावहारिक बातें पाठकों के सामने रखी गई। आशा है अन्य सज्जन अपने अपने विचार प्रगट कर योजनाएं तैयार करेंगे। करने के लिए और भी बहुत सी बातें हैं क्योंकि महर्षि ने संसार को माया रूपी या असार नहीं बताया बल्कि सच्चा बतलाया है जिसकी उन्नति आवश्यक है।

[गद्य-गीत]

अमर आहुति !

एक वृक्ष था—बहुत बड़ा और बहुत विशाल काय ! इस वृक्ष पर स्वार्थ, साम्प्रदायिकता, ईर्षा, द्वेष गुलामी, दमन और आत्म-हनन के अनेकानेक फल लगे थे ।

इस वृक्ष के प्रदेश में यह फल, उदारता, समानता, ऐक्य, प्रेम, आजादी, इन्साफ और तरक्की के नाम से प्रसिद्ध थे ।

इस वृक्ष की छाया में सवा करोड़ से ऊपर चोटीधारी हाड़ माँस के असहाय पुतले आश्रय ले रहे थे । वृक्ष के यह फल ही इनके जीवन के साधन थे, और इन्हीं पर यह तड़पते—तिलमिलाते हुए धीरे धीरे सभ्यता, संस्कृति अधिकार, कर्त्तव्य, और जीवन मृत्यु का भेद भूलते जा रहे थे ।

परन्तु वृक्ष का मूल आधार और स्तम्भ यही ऋषि पुत्र थे इन्हीं के खून पसीने की कमाई और सहयोग से यह हरा भरा था ।

तुमसे यह सब कुछ न देखा गया, और जब कि दुनियाँ भर में जीवन और अधिकारों का महान् सघर्ष मचा है—यह अत्याचार देखा भी कैसे जा सकता था ?

तुमने न्याय और मनुष्यता के नाम पर इस वृक्ष की पर्याय बदलने का भरसक प्रयत्न किया—पर तु इसमें दुरभिमान, अहंकार कट्टरता और धर्मांधता की जड़े इतनी मजबूत होगईं थीं कि उन पर वास्तविकता और स्थिति का प्रभाव डाल सकना कठिन ही नहीं वरन् नितान्त असम्भव था । इसको फिर से पर्याय बदलने के लिये इसे सींच कर नया खाद लगने की जरूरत थी—और वह भी बलिदान ! कुरबानी !! समाज के नौनिहालों के शीश, और प्राणों !!! का ।

तुम इस वृक्ष का महत्व समझते थे । तुम्हारे रक्त से उसे खोया नवजीवन मिलता था और विनाशकारी कड़वे फलों के स्थान पर नवीन पुष्प पल्लवों की महक से समाज और देश का सामूहिक उपकार होता था ।

तुमने इस चिर वन्दनीय भावना का स्वागत किया और हँसते हँसते इस वृक्ष पर अपने ध्रुव प्राणों की 'अमर आहुति' चढ़ादी ।

शहीद तुम धन्य हो ।

———

लेखक—
कल्याणकुमार 'शशि'

मलखान !

(हैदराबाद सत्याग्रह की सच्ची कहानी)

लेखक—
विद्यानिधि सिद्धान्तालङ्कार



रुड़की के पास रामपुर गांव में सूर्यवंशी ठाकुरों की बस्ती है। मलखानसिंह वहीं रहता है। अपने पूर्वजों का उष्ण रक्त अब भी उसकी धमनियों में बहता है। स्वाधीनता के दिव्य मन्त्र का कट्टर उपासक है। पिछले दिनों, जब एक महात्मा के आह्वान पर, कांग्रेस ने नौकरशाही के विरुद्ध सत्याग्रह का विपुल संग्राम छेड़ा था, मलखान, कांग्रेसी सैन्य में भरती होकर, भीषण लाठी वर्षा में हँसते हँसते जा घुसा था। कई मास को सख्त कैद भोगकर जब वह विजयी वीर की भांति अपने ग्राम में लौटा था—ग्रामवासियों ने उसका हार्दिक अभिनन्दन किया था। वह अनाथों का रक्षक, दुखियों का सहारा और शरणागत वत्सल था।

उस दिन जब रुड़की का पहला जत्था हैदराबाद जाने लगा, मलखान उसके साथ हो लिया। लोगों ने बहुतेरा कहा "कमसे कम पत्नी को तो सूचित कर दो"—मगर मलखान का जवाब तैयार था।

"वह अपने मायके है अब कौन खबर करता फिरे।"

"और लड़का ?"

"वह भी अपनी माँ के पास है।"

"तब तुम्हें इस तरह बाल बच्चों से लुक छिप कर नहीं जाने दिया जायगा। दूसरा जत्था थोड़े ही दिन बाद रवाना होगा। उसमें चले जाना।" अधिकारियों ने कहा।

' सूर्यवंशी सदा हिरोल* में रहे हैं। मेरा स्थान पहले ही जत्थे में है।"

दृढ़ स्वर में मलखान बोला।

कोई चारा न देख अधिकारी चुप होगये। मलखान को पहले जत्थे में जाने का गौरव प्राप्त हुआ।

\+ + + + +

एक साल सपरिश्रम कारावास का दण्ड पाकर वह जेल की चार दीवारी में बन्द कर दिया गया।

उसके गठीले बदन और तेजस्वी चेहरे पर वार्डरों और जेल दारोगा को भी डाह होती। तंग करने के अभिप्राय से वे कभी कभी उसे ३०-३० सेर ज्वार पीसने के लिए दे देते और न पिस सकने पर खूब मार लगाते। कभी कभी इतना वजन खिचवाते, मस्त भैंसा भी जिसे मुश्किल से खेंच सकता।

इतनी मेहनत के बाद भोजन क्या मिलता ? वही ज्वार की सूखी रोटी। आधी रेत मिली हुई। लाल मिर्चों और तेल से भरा दाल का पानी, जिसमें डुबकी लगाने से भी एक दाना न मिले। पीने को पानी की मुश्किल से चौबीस घण्टे में सिर्फ दो छोटी छोटी लुटियायें। मलखान के ओंठ भी न भीगते। उसे सोने

*राजपूती लड़ाइयों में सबसे आगे चलने वाली सेना का नाम था।

के लिये जो कोठरी दी गई थी उसमे सूर्य की किरणें भी आने से घबराती।

मगर सत्याग्रही के लिये इन कष्टो की शिकायत कहां? वह तो हँस हंस कर ऐसी विपत्तियों का सामना करता है। मलखान सत्याग्रह-संग्राम का मजा हुआ सिपाही था। गिडगिडाना, घबराना आता न था।

वार्डर लोग इस पर और भी खिजते। वे दारोगा से बिना पूछे ही उसे तरह तरह की मनमानी आज्ञायें दे देते।

एक दिन, बडी मेहनत करने के बाद भी, वह २५ सेर बाजरा न पीस सका।

वार्डरों का मौका लग गया। तुरन्त दारोगा से शिकायत की।

"वह तो अच्छा खासा तन्दुरुस्त जवान है। उस से इतना मामूली सा काम भी न हो सका?'

दारोगा ने पूछा।

' चाहे तो सब कर सकता है हुजूर। थाली पर बैठ कर कटोरे के कटोर दाल पी जाता है। मस्त पड़ा है!'

' फिर?

"मजहब पाक और दीनदारों की खिल्ल उडाने से फुरसत मिले तब न?"

' हूँ!" दारोगा का चेहरा गम्भीर होगया।

सायंकाल होते न होते मलखान डण्डा बेडी मे पड़ा था। रात भर अकेला सूनी कोठरी में पडा रहा।

धीरे धीरे प्रभात हुआ। कौओं की आवाज सुन कर मलखान ने अनुमान लगाया, सवेरा होगया है।

इतने में कोठरी का दरवाजा खुला और जेल दारोगा हँसते हुए उसके सामने आ खडा हुआ। जब तक मलखान कुछ पूछता वह धीरे धीरे बोला—

"बाहर एक वार्डर कलम दवात लिये खड़ा है। यह लो, माफीनामा। मैं तब तक इस कोठरी से बाहर जाऊंगा, जब इस पर तुम्हारे दस्तखत देख लूंगा।

"और यदि मैं न करूं, तब?" मलखान बोला।

"तो आज की रात देखने के लिये तुम दुनियाँ में जिन्दा न रह सकोगे।"

कठोर स्वर में दारोगा बोला।



शहीद मलखानसिंह जी का एकमात्र पुत्र
(राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री की गोद मे)

"बोलो, दोनो में से तुम्हें क्या पसन्द है? रिहाई या मौत?"

"ऐसी कायरतापूर्ण रिहाई की अपेक्षा मैं मौत को ज्यादा अच्छी समझता हूँ।" दृढ निश्चयात्मक स्वर में मलखान बोला।

"तो वही हो"—कह कर दारोगा बाहर निकल गया और थोड़ी ही देर में चार दीर्घकाय अरब उस कोठरी में घुस आये।



धीरे धीरे पांच बज गये। सायंकाल हो आई। जेल से बाहर डूबते सूर्य की मन्द किरणें और पौधों पर पड़ रही थीं। बहुत दूर, गांव के किसान खेतों में स्वच्छ गीत गा रहे थे। गांव को आने वाली पगडंडो पर गाय भैंस के झुण्ड धीरे धीरे घर को चले आ रहे थे। ग्वाला गा रहा था।

अकस्मात् मलखान को कोठरी पर से एक बड़ी चिड़िया विकट रुदन करती हुई उड़ गई। यह मलखान की चेतना थी। उसका घायल शरीर शाम होते न होते जेल अस्पताल मे उपस्थित था। बेहोश। संज्ञाहीन।

सुदूर, ८०० मील के फासले पर, अपने मायके मे बैठी मलखान की स्त्री का, ठीक उसी समय, मानों किसीने भालों से बींध दिया हो। वह स्त्री सुलभ संकोच त्याग कर अपनी मां से बोली—

'मुझे रामपुर भिजवादो। मेरा जी घबड़ा रहा है। उन्हें ···उन्हे ···" उससे आगे न बोला गया। वह उच्छ्वसित स्वर मे रोने लगी।

"यह तुझे एकाएक क्या हो गया, बेटी? अरे, तू रो क्यों रही है? क्या बात है?" उसकी मां ने पूछा।

"जैसे कोई मेरा गला दबा रहा है! मेरा दम घोट रहा है! मां, मां!·· वे···वे"

—वह पागलों की तरह आकाश के शून्य में ताकने लगी। जैसे उसे कोई बुला रहा हो।

उसी समय, ठीक समय, हैदराबाद जेल के भैरव चिकित्सालय मे मलखान के प्राण पखेरू उड़ गये। इधर उसकी स्त्री चीख मारकर बेहोश होगई।

··· ···जब वह जागी प्रभात हो चुका था। उसके मा बाप उसे होश मे आये देख आनन्द से उछल पड़े। उसकी मां धीरे धीरे उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगी।

नीचे से डाकिये ने पुकारा। एक तार था। कांपते हाथों खोल कर वह पढ़ने लगा—

"हैदराबाद जेल मे कैदी मलखान का अस्पताल मे देहान्त होगया।" तार मे लिखा था।

एक बार चीख कर मलखान की स्त्री फिर बेहोश होगई।



सफलता

[ले०—पूज्य स्वा० सर्वदानन्द जी महाराज]



संसार में यह एक अद्भुत शक्ति है, यह दृष्टि पथ में तो नहीं आती तो भी प्राणीमात्र इसकी इच्छा करता हुआ दिखाई देता है। यही इसकी विचित्रता है। जिसको इसका दर्शन हो जाता है वह निहाल खुशहाल दृष्टि में आता है। यह सृष्टि मे प्रत्यक्ष है। पशु आदि इच्छा की न्यूनता के कारण इससे बहुत दूर नहीं रहते हैं। मनुष्य ने अपनी इच्छाओं को बहुत ही विस्तार दिया है, इस कारण से ही यह सफलता कभीकभी इसका साथ छोड़ देती है। तत्काल मनुष्य विकल होकर दुःखों का स्थान बन जाता है। कुछ काल निढाल बेहाल रहकर पुन इसके दर्शन के लिये यत्नवान् होता है। इसी उधेड़बुन तानतुन में समस्त जीवन बीत जाता है। जो कार्य करना था वह तो न हुआ। अन्त समय जब अपने को असमर्थ पाता है, अतीत समय तो फिर नहीं आता पुन यह अपनी भूल पर पछताता है। सफल होने की इच्छा से संसार में आया था निष्फल होकर के यहां से चला, संसार प्रवाह का यही कारण है। ऐसे दृष्टान्तों से शास्त्र भरा पड़ा है। जिसने मनुष्य के असली उद्देश को समझ लिया, सफलता ने वास्तव में उसका ही साथ दिया। उसने ही संसार मार्ग को समाप्त और परमात्मा को प्राप्त किया। इस नियम के आधीन सफलता का तात्विक स्वरूप प्रकट होता है। वहाँ पर निष्फलता को पुनः स्थान नहीं है। जिसका कोई सकल्प निष्फल नहीं होता है शास्त्र उसको ही परमात्मा बताता है। जब मनुष्य संसार के स्वरूप को जानकर राग द्वेषादि दोषों को इसका कारण पहचान कर अपने स्वयत्न से सत्सग स्वाध्याय और प्रेम प्रयत्न से इससे पीछा छुड़ा लेता है तो वह भी परमात्मा के समान हो जाता है। इसी अवस्था का नाम मोक्ष है। यही सफलता या कामयाबी की चरम सीमा है। संसार में तो मनुष्य को सफलता और विफलता के साथ रहना ही पड़ता है बार बार की नाकामयाबी से मनुष्य रोता है और कभी कभी अपने हाथों अपने जीवन को भी खाता है और सफलता का साथ हो जाने से मनुष्य हँसता और जीवन सुखमय हो जाता है। संसार ऐसे दृष्टान्तों से भरा पड़ा है। यथा परीक्षार्थी विद्यार्थी सफल होने के निमित्त दिन रात परिश्रम करता है परिणाम अनुकूल होने से प्रसन्न हो जाता और खुशी में फूला नहीं समाता है। विपरीत परिणाम निकलने से विकल है उदासीन है रोगी के समान दृष्टि में आता है। इस आघात से जिसने पीछा छुड़ा लिया वह पुन सफल होने के लिये यत्न करता है और कोई इस कष्ट की वृद्धि से मरता है। इसलिये मनुष्य को प्रत्येक कार्य करने के समय परिणाम पर दृष्टि अवश्य ही डालनी चाहिये। समझ से किया हुआ काम मनुष्य के सुख का कारण होता है। यदि आलस्य से किया या बिना सोचे ही कर दिया तो इसको दुःख का सामना ही करना पड़ता है। मनुष्य कर्म करने में स्वतत्र है फल परमात्मा के आधीन है। अतएव परिणाम जैसा भी निकले मनुष्य को अधिक हर्ष या शोक करना ठीक नहीं शान्त स्वभाव होकर पुन उस कार्य की सिद्धि के लिये यत्न करना ही उचित है। सफलता जब एक व्यक्ति का साथ देती है तो उसको प्रसन्न करती है

और जब इसका सम्बन्ध समुदाय से होता है तो समस्त समाज हर्ष में आजाता है। ऐसा तभी होता है जब समष्टि का भाग्य सुख प्रसार के लिये जागरूक होने पर होता है तब कोई इसका निमित्त बन कर केवल यश का भागी ही होता है वह गुण तो समष्टि में विद्यमान ही था उसके उदय करने के लिये किसी उच्च आत्मा की आवश्यकता थी, अतएव मनुष्यों को विचार पूर्वक पुरुषार्थ से कार्य करना चाहिये ज्ञात नहीं किस समय अदृष्ट सुखदायी पल में आरहा है और वर्त्तमान काल को सहायता को चाहता है यदि ऐसा न होगा तो फिर वह पीछे पड़कर कालान्तर में जागरूक होगा।

आर्यसमाज ने हैदराबाद का सत्याग्रह विचारपूर्वक किया और सफलता ने उसका साथ दिया उत्साह से सचेत और सावधान होकर वहां को जाते थे। दर्शक लोग उनको देखकर हर्ष में आते थे। व्यय के लिये द्रव्य दान की दाताओं के और सत्याग्रह में जाने वाले पुरुषों के अन्तःकरण में प्रभु की प्रेरणा ही थी। इस प्रकार की जागृति का हो जाना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर है। दृढ़ विश्वास को देखकर अन्त में निजाम सरकार ने भी अपनी उदारता का परिचय दिया। सबको मुक्त किया और जो जहां से आया था किराया देकर वहां को भेज दिया अन्यथा दो लाख रुपये का और खर्च बढ़ जाता। ऐसी अवस्था से सामाजिक संसार को खुशी हुई इनकी अचित सलग्नता से दर्शक समुदाय भी प्रसन्न हुआ। यह दृष्टि गत बात है कि प्रसन्न समुदाय को देखकर उदार पुरुष प्रसन्न ही होते हैं। अब समाज यदि पारस्परिक विवाद को हटा कर और अन्तर्वर्ती कलह को मिटा कर आगे बढ़ना चाहे तो बड़ा ही अनुकूल अवसर है अन्यथा कुछ दिन पश्चात् यह चर्चा हटी तो वहां की वहां ही गति सिद्धि होगी। विचार कर कोई अच्छा प्रोग्राम सामने आने से और साध्वी प्रवृति में जाने से मनुष्य समुदाय के अन्तःकरण में बल का संचार होता रहेगा। उसके तीन उपाय हैं—

प्रथम—ऋषि दयानन्दजी महाराज ने गौ करुणानिधि पुस्तक को लिखा जिसकी ओर आर्यसमाज का ध्यान ही नहीं गया, इस अंश में आर्यसमाज ऋषि के सन्देश से कितना दूर हट गया है आप ही जानें। दूध और घृत जिसका उल्लेख वेदों में आता है और जो बल बुद्धि की वृद्धि का निमित्त है इस पुरुषार्थहीन देश से कितना दूर हट गया है और जिस अंश में मिलता भी था वह भी बनावट में जाकर असलियत से दूर होगया। इस ही कारण से काल पीड़ित पशु लाखों की संख्या में मर रहे हैं। आर्यसमाज को इस तरफ ध्यान देना चाहिये था, जिससे अच्छा घृत और अच्छा दूध मनुष्यों को मिले और कपिला, कामधेनु, सुरभी, विमला, रेनुका इत्यादि गौओं की नस्लें जो अच्छा दूध देने वाली बनें। गौ का दूध, घृत, तक्र, या दही जिस मनुष्य के आहार में सम्मिलित होता है यदि वह आरोग्यता के नियमों को जानता है तो निरोग ही रहता है। इस कार्य को समुदाय के सहारे किया जाय तो लाभ के सिवाय हानि कभी नहीं होती है, सैकड़ों आदमी इस कार्य में लगेंगे, बेरोजगारी से बचेंगे, शरीर अच्छे होंगे वहीं साधारण पठन पाठन और स्वाध्याय सब कुछ हो सकता है। यदि आर्यसमाज इस कार्य को करे तो इसकी वृद्धि के लिये और उपाय भी सोचे जा सकते हैं। सात, आठ करोड़ रुपया गौशालाओं पर खर्च हो गया और हर साल पचीस, तीस लाख रुपया इसकी सहायता में आता है, लेकिन ऋषि का उद्देश्य इससे पूरा न हुआ और आर्यसमाज का इस ओर ध्यान न गया।

द्वितीय—सार्वदेशिक सभा का महोत्सव किसी भी प्रतिनिधि में प्रति वर्ष अवश्य ही होना चाहिये और वही प्रतिनिधि उसके समस्त भार को और व्यय को संभालें, इस प्रतिनिधि के अच्छे आदमी जो कार्य करने में चतुर हों उन्हे इस कार्य को सुपुर्द किया जाय और हरएक प्रतिनिधि से एक आदमी जो समझ की परीक्षा में चतुर हो मिन्नत से, आग्रह, प्रेम से या आदर से बुलाया जाय। इनका काम आर्यसमाज में आने वाली त्रुटियों पर विचार और उसके निराकरण



के उपायों का विचार ही करना होगा, पांच, छः वर्ष के बाद एक प्रतिनिधि का भाग होगा जो कठिन नहीं है। इसका होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रत्येक वस्तु संस्कारों से सुन्दरता में आती है और सबल होजाती है। इसके अभाव में वस्तु वैरूप होकर निर्मूल सी दिखाई देती है। जो समय बीत गया सो बीत गया और इसका आरम्भ होना चाहिये और उसी स्थान से स्वयंसेवक आर्य वीर दल का निर्माण भी होना चाहिये। सेवक का यह गुण हो—वह उत्साही, बलवान्, आज्ञाकारी और चरित्रवान् होना चाहिये। यह बड़ा ही जरूरी काम है, इसके बिना कोई भी समुदाय बल में नहीं आता, जब शिक्षा ही किसी को नहीं दीगई तो समय आने पर अस्वाभाविक काम को कैसे करने लगेगा। समय ने अपना स्वरूप दिखा दिया है यदि आर्यसमाज इस बात को हितकर समझता है तो उसको इस काम में तत्पर हो जाना चाहिये।

तृतीय—सार्वदेशिक सभा को एक समूह बनाना चाहिये जिसमें पांच हजार प्रति वर्ष व्यय होगा यदि कार्य का स्वरूप ठीक हो गया तो अल्पकाल के ही पश्चात् अपने भार को आप उठा लेगा, वह ये हैं— एक अंग्रेजी का विद्वान् एम० ए० जो समझदार हो बोलने और लिखने में चतुर और वैदिकधर्म का प्रेमी हो। यत्न से इसका मिलना तो सुगम है और एक संस्कृत का विद्वान् जो सर्व शास्त्र निपुण, शास्त्रमर्मज्ञ इसकी संज्ञा ऋषि वेदभाष्य करते समय वेद पारग लिखते हैं, ऐसा होना चाहिये और दो शास्त्री परीक्षा पास हों जिनकी लेखनशैली बहुत अच्छी हो और एक हिन्दी, संस्कृत से परिचित हो, फारसी का आलिम हो। इन पर पांच हजार रुपया साल खर्च होगा। इसका काम यह होगा—एक अखबार अच्छे कलेवर में जिसमें वैदिकधर्म की चर्चा हो, निकाला जाय। वह दोनों मिलकर विचारपूर्वक ऋग्वेद का आरम्भ करें। काम तो कठिन प्रतीत होता है, मगर थोड़ा समय आगे चल कर कार्य सरलता में आजायेगा, अभ्यास के आधीन होकर बड़े बड़े अलौकिक काम लोकपथ में देखे जाते हैं। ये भी वैसा ही होगा औरइनके निकृष्ट उपदेश को लेखक लिखेंगे और फारसी का जो आलिम है वह अच्छे ग्रन्थों में से जिनमें आलिमों ने अपनी सम्मति को प्रकट किया है गद्य या पद्य में, हिन्दी में उसके तात्पर्य को लिखेगा। जैसे फैजी ने गीता को फारसी में लिखा। यदि कोई शंका आर्यसमाज पर करेगा तो उसका उत्तर यही सभा देगी और यदि कोई लेखबद्ध शास्त्रार्थ चलायेगा तो उसका विचार यही सभा करेगी और यदि कोई आर्यसमाज में ग्रंथ रचना करे तो वह इसी सभा के पास आवे यदि उपयोगी हो तो लेखक को उसका कुछ मूल्य तो दिया जाय मगर छपाना इसका ही काम होगा। यदि लेखक ऐसा न करे तो लेखक उस का स्वयं जिम्मेवार होगा इससे यह लाभ होगा कि अन्य रचित ग्रन्थ को लेकर लोग आर्यसमाज पर शंका करते हैं और अड़चन सामने आती है उससे बचाव होगा ये मार्ग बड़ा ही अच्छा है ऐसे बड़े समाज-संसार में इसका होना बड़ा ही जरूरी था मगर इधर ध्यान नहीं दिया, आर्यसमाज को चाहिये था कि ऐसे कार्य के लिये उपयोगी विद्वानों को बना लेता अब भी यदि ध्यान दिया जाय तो पांच, सात वर्ष में ऐसे विद्वान् हो सकते हैं। संस्कृत का साहित्य बड़े ही विस्तार में विद्यमान है, उसको वैदिक मार्ग में लाने की आवश्यकता है और पाठ्यप्रणाली जो प्रचलित है एक सूत्र में लाना इसका काम होगा। यदि किसी मनुष्य या समाज से कोई उत्तम या मन्द काम होजाता है, उससे उसके स्वभाव का या विचार का ठीक ठीक पता नहीं चलता है, किन्तु उसके प्रतिदिन छोटे छोटे कामों से या व्यवहारों से उसका असली स्वरूप जाना जाता है। इसलिये जो सुसाइटी अपने छोटे छोटे कामों को ठीक कर लेती है तो उनसे जो मिल कर बड़ा काम बनता है वह भी ठीक होता है।

दोहा—पंचों में पति रही, पाये लाख करोड़।
अब समाज समझ से काम ले, दे तू तू मैं-मैं छोड़॥
इसमें ही है हित तेरा, बन जा स्वारथ का त्यागी।
लोकमती है सर्वदा, नव-नव गुण अनुरागी॥

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह का इतिहास

आवश्यक निवेदन

परमेश्वर की असीम कृपा से आर्यसमाज को अपने सत्याग्रह के सत्य उद्देश्य में सफलता प्राप्त होगई। केवल आर्यसमाज के ही नहीं प्रत्युत जगत् भर के इतिहास में "हैदराबाद सत्याग्रह संग्राम" एक अपूर्व घटना है। इसमें एक बड़ी शक्तिशाली राजसत्ता से बिना किसी प्रकार के शस्त्रप्रयोग या रक्तपात के, त्याग, तप और आत्म-बलिदान के बल से, केवल अहिंसात्मक सत्याग्रह द्वारा ९० प्रतिशत प्रजा के छिने हुए धार्मिक अधिकार प्राप्त कराये गये हैं। वस्तुतः इसका इतिहास बड़ा अद्भुत, आश्चर्यजनक रोमाँचकारी होगा।

हैदराबाद राज्य के रोमाँचकारी अत्याचारों की मर्मभेदनी कथाएं, निर्दोष, निरपराध धर्म-प्रचारको पर जेलों की भीषण यातनाओं की दिल दहलाने वाली सत्य गाथाये और आर्य हिन्दू जनता के वीर धर्म प्रेमियों के त्याग, तप और आत्म बलिदानों का सत्य सत्य विवरण यथार्थ रूप में इतिहास के चमकते पृष्ठोंपर अंकित हो जाना अत्यन्त आवश्यक है, जो आगे की सन्तानों के लिये उज्ज्वल पथ-प्रदर्शक का कार्य कर सकेगा।

हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि हिन्दू व आर्य किसी भी संस्था और किसी भी त्यागी, तपस्वी, आत्मबलिदान के साधक वीर सत्याग्रही और धर्म प्रेमी उत्साही कार्यकर्त्ता, जिसने इस सत्याग्रह-संग्राम के लिये कुछ भी कार्य किया है, का विवरण इस इतिहास के पृष्ठो पर अवश्य अंकित हो तथा पक्षपात रहित यथार्थता को लिये हुए, समस्त आवश्यक सामग्री से सम्पन्न हो। हमें विश्वास है कि आप अपनी संस्थाओं का विवरण, उनका सत्यग्रह संग्राम में कार्य, आपकी संस्था से भेजे गये वीर सत्याग्रही जनों के नाम, उनके जेल समय के सत्य अनुभव, तथा सत्याग्रह प्रचार मे लगे कार्यकर्त्ताओं के विवरण उनके चित्र, तथा ब्लाक आदि सभी सामग्री इतिहास के निमित्त अवश्य यह भेजेंगे। समस्त सामग्री ३० सितम्बर तक अवश्य कार्यालय में पहुँच जानी चाहिये, जिससे आपका भेजा विवरण आदि स्थान पाने से वञ्चित न रहे।

साथ ही यदि हो सके तो यह सूचित करें कि कितनी प्रतियाँ आप "हैदराबाद सत्याग्रह इतिहास" की लेने के इच्छुक है, जिससे आपके यहाँ का कोई सज्जन इस इतिहास से वञ्चित न रहे।

आपको विदित हो कि यह इतिहास २०×३०=१६ पेजी के ३०० पृष्ठो से भी कहीं अधिक में पूर्ण होगा और सैकड़ों चित्र भी इसमें रहेंगे। इसका मूल्य भी लगभग केवल लागतमात्र ही रखा जावेगा। अतः हमारा नम्र निवेदन है कि आप अपनी सामग्री और हो सके तो आर्डर भी अवश्य ही उक्त अवधि तक भिजवा देवें।

भवदीय निवेदक—मैनेजिंग डाइरेक्टर,
आर्यसाहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर।

महान् विजय और महान् भय

[ले०—श्री० पं० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार सिद्धान्त शास्त्री एम० ए०, एल टी० अजमेर]



अभी अधिक समय नहीं हुआ जबकि आर्यसमाज और हिन्दू महासभा द्वारा अपने धार्मिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए संचालित हैदराबाद सत्याग्रह मे उनको अभूत पूर्व सफलता और शानदार विजय प्राप्त हुई है। इस आर्य सत्याग्रह की पूर्ण सफलता के सम्बन्ध में किसी का मत भेद नहीं हो सकता, लेकिन इस बात में तनिक भी संदेह नहीं कि इस सत्याग्रह में आर्यवीरो ने जिस तप, त्याग और बलिदान का परिचय दिया है, वह संसार के इतिहास में एक अमर घटना के रूप में सर्वदा स्वर्णाक्षरो मे लिखा जायगा। आर्यसमाज के हितैषी, तटस्थ और विरोधी जनों ने उसके इस अनुपम त्याग बलिदान और कठोर अनुशासन आदि की मुक्त कंठ से प्रशंसा है। वस्तुतः आर्यसमाज और उसके साथ समस्त हिन्दू जाति के लिए यह एक गौरव की वस्तु है, जिसने इस समय समस्त संसार मे आर्यसमाज की धाक बिठादी है।

लेकिन संसार के इतिहास में प्रायः देखा गया है कि जब कोई जाति या राष्ट्र अपने किसी युद्ध में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करता है तो वह अपने विजयोल्लास में और हर्षोन्माद में इतना लवलीन हो जाता है कि वह अपने आगे के कर्त्तव्य को विस्मरण कर बैठता है, बस वहीं से उसका पतन प्रारम्भ होता है। परन्तु जो जाति और राष्ट्र अपने विजयोत्सव-काल में भी सजग रहकर पीछे को नहीं, किन्तु आगे को देखता है, वह अधिकाधिक उन्नति की ओर अग्रसर होता जाता है।

इसी मानव-समाज-शास्त्र के नियमानुसार इस समय हिन्दू जाति को भी एक जबर्दस्त चेतावनी द्वारा आज हमे बतलाना है कि यह विजय और सफलता, जो हैदराबाद सत्याग्रह मे प्राप्त हुई है, वह कुछ भी नही है यह तो एक बहुत छोटा सा संग्राम था जो प्रत्यक्ष रूप मे स्टेट द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धों के हटाने के लिये किया गया था, लेकिन अब आगे हिन्दू जाति के लिये इससे भी कहीं बड़े बड़े भयंकर खतरे और युद्ध प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप मे सम्मुख उपस्थित हैं जिनका ज्ञान भी हमारे बहुत भोले भाइयों को नहीं है। वे खतरे इतने भयंकर और विनाशकारी हैं कि यदि इस समय हिन्दुओं ने सचेत होकर उनका प्रतिकार न किया तो बहुत थोड़े दिनो मे ही न केवल आर्य सभ्यता, संस्कृति, भाषा, और वैदिक साहित्य का ही लोप हो जायगा अपितु हिन्दू जाति का अस्तित्व ही संसार से मिट जायगा। इन भयंकर खतरों का केवल दिग्दर्शन मात्र इस लेख मे कराया गया है, जिनके आखें हों, वह जरा उन्हे खोल कर पढ़ें और हृदय हो तो तनिक उसे थाम कर अनुभव करें।

हिन्दू सभ्यता पर बाहरी आक्रमण

योरोप के एक बड़े विचारक ने ठीक ही कहा है, "If you wish to destory a nation, destory its history, and the nation will be abolished of its own accord" अर्थात् यदि किसी जाति को नष्ट करना हो तो सबसे पहले उसके इतिहास को नष्ट करदो, फिर उस जाति का नाश स्वयमेव अवश्यभावी है। किसी उर्दू कवि ने ठीक कहा है।—"कौम का तारीख से जो बेखबर हो जायगा। रफ्ता रफ्ता आदमीयत खोके खर हो जायगा।" यही एक बात है। जिसको पाश्चात्य लोगों ने अच्छी तरह समझा है। उन्हो

लिये बार बार वे अपने ग्रन्थों और लेखों में इस प्रकार का प्रयत्न करते रहते हैं जिससे हिन्दू अपने प्राचीन इतिहास को भूल जायें, उसका गौरव उनके हृदय से कम हो जाय और वे अपने को तुच्छ और निकृष्ट (inferior) समझने लगें। उनके देखा देखी बहुत से उनके अन्ध भक्त भारतीय शिष्य भी हमारे साहित्य सभ्यता और धर्म पर आक्षेप करने लगते हैं और प्राचीन आर्य गौरव के इतिहास को ही



श्री प० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालंकार

मिटाना चाहते हैं। इस प्रकार के हमारे इतिहास और संस्कृति पर आक्रमण करने वालों को हम चार श्रेणियों में बाँट सकते हैं।

(१) पाश्चात्य देशों के वे विद्वान् तथा उनके भारतीय शिष्य भी जो वैदिक साहित्य के अध्ययन करने का दम भरते हैं।

(२) योरुप और अमेरिका के पक्षपात पूर्ण लेखक और फिल्म कम्पनियाँ जो किसी राजनैतिक उद्देश्य को लेकर हमारी सभ्यता को बदनाम करने की चेष्टा करती हैं।

(३) वे अंग्रेज और भारतीय इतिहास लेखक जो हमारे प्राचीन गौरव की सच्ची घटनाओं को तोड़ मरोड़ कर इतिहास में लिखते हैं।

(४) भारतीय प्रान्तों की वे कांग्रेस सरकारें जो राष्ट्रियता के नाम पर मुसलिम हिन्दू मेल के स्वप्न देखती हुई हमारी सभ्यता के इतिहास पर कुठाराघात कर रही हैं।

अब इनमें से प्रत्येक की जरा विस्तृत व्याख्या सुनिये।

(१) पाश्चात्य विद्वानों का आक्रमण।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि योरुप और अमेरिका के अनेक विद्वानों ने हमारे वैदिक साहित्य का अध्ययन बड़े मनोयोग के साथ किया है और कर रहे हैं यहां तक कि उनमें से अनेक ने अपना समस्त जीवन ही वैदिक साहित्य के विभिन्न अंगों के अध्ययन में लगा दिया है लेकिन अज्ञानता से हो या धार्मिक पक्षपात की भावना से इस बात का हमें अत्यन्त शोक है कि उन्होंने भारतीय भावना को हृदयगम न करके अपना मनमाना अर्थ ही वैदिक साहित्य में घुसेड़ने की चेष्टा की है। किसी ने "अज एक पाद्" का अर्थ "एक अज मा ईश्वर" के स्थान में "एक पैरवाला बकरा" कर दिया। किसी ने वेदों के निर्माण का समय केवल चार पांच हजार वर्ष ही बतलाया है, किसी ने वेदों में अनेक जादू टोना और और मानवी सृष्टि का इतिहास सिद्ध करने की चेष्टा की है। किसी ने वैदिक और संस्कृत साहित्य को आधुनिक और निकृष्ट बतला कर संसार की आंखों में उसके मूल्य को गिराने का प्रयत्न किया है, और किसी ने तो रामायण और महाभारत के मुख्य पात्र राम सीता, दशरथ और युधिष्ठिर आदि पांडवों को ऐतिहासिक पुरुष माना ही नहीं, उनको



केवल कवि की कल्पना की एक बड़ी उड़ान मान कर कह दिया कि यह संसार में कभी हुये ही नहीं, यह कोई साधारण लेखक हो वह बात नहीं, किन्तु इनमे अमेरिका की कोलम्बिया यूनीवर्सिटी के प्रो० ब्लूम फील्ड, एडिनबरा यूनीवर्सिटी के प्रो० कीथ, लन्दन यूनीवर्सिटी के प्रो० मैकडोनल और जर्मनी के प्रो०श्लीगल आदि चोटी के विद्वान् भी सम्मिलित हैं। यही नहीं संसार की दृष्टि मे प्राचीन आर्यों को गिराने के लिए Gazetteer of India Vol II Page 257 पर प्रो० मैकडोनल ने प्राचीन आर्यों की रीति रस्मों का वर्णन करते हुए लिखा है कि "There (at the brides house) they were entertained with beef", अर्थात् विवाह के समय कन्या पक्ष की ओर से बारात के आर्यों को जो भोज दिया जाता था उसमें उन्हे गाय का मांस खिलाया जाता था। बस; हद हो गई! इससे बढ़कर आर्यों पर और क्या लांछन लगाया जा सकता है?

इन पाश्चात्य वैदिक विद्वानों का प्रभाव हमारे भारतीय विद्वानों पर भी बिना पड़े नहीं रहा, और लोकमान्य तिलक तथा कलकत्ता विश्व विद्यालय के प्रो० आर० सी० दत्त आदि विद्वानों ने भी वेदो की उत्पत्ति का काल केवल कुछ सहस्र वर्षों तक ही सीमित कर दिया। शोक इस बात का है कि पाश्चात्य देशो में एक वर्ष मे ही ४६ पुस्तकें तक वेदों के सम्बन्ध में प्रकाशित हो जाती हैं जिनमें वैदिक धर्म, सभ्यता, साहित्य, तथा आर्य जाति पर अनेकों आक्रमण किये जाते हैं, लेकिन हमको उनके उत्तर देना तो दूर रहा, उन पुस्तको के नाम तक का पता नहीं हो पाता। इस प्रकार ससार के उच्च शिक्षित समाज में और विद्वान् मंडल में वैदिक धर्म और आर्य हिन्दू जाति का गौरव प्रति दिन नष्ट किया जा रहा है। यह हमारी सभ्यता और जाति पर कितना भयंकर आक्रमण है?

(२) पाश्चात्य आन्दोलनों का आक्रमण।

पाश्चात्य देशों में जिन वैदिक विद्वानो का ऊपर वर्णन किया गया है, उनके अतिरिक्त अन्य लेखक तथा राजनीतिज्ञ अपने धार्मिक उद्देश्य से अथवा राजनीतिक और आर्थिक उद्देश्य से हर प्रकार भारत को बदनाम करने की चेष्टा करते रहते हैं। उनको हम निम्न लिखित भागों मे बांट सकते हैं:—

(अ) वे लेखक और लेखिकाए जो किसी राजनीतिक उद्देश्य को लेकर भारत में आते हैं और भारत निवासियों के केवल अवगुणों का वर्णन करने के लिए ग्रंथ प्रकाशित करते हैं। जैसे कुछ वर्ष पहिले मिस मेयो ने "मदर इंडिया" नामक पुस्तक लिखकर भारत वासियों और विशेष कर हिंदुओं के गौरव को गिराने की असफल चेष्टा की थी। रडयार्ड किपलिंग आदि अन्य अनेक लेखक भी इसी प्रचार चेष्टा करते रहे हैं।

(ब) पाश्चात्य साम्यवाद और विज्ञानवाद की लहर भी हमारे भोले भाले देश वासियों को तथा विद्यार्थियों को नास्तिकता की ओर ले जा रही है। यह भी हिन्दुओं की धार्मिक भावना के विरुद्ध हिन्दू धर्म के गौरव को कम करने वाली लहरें हैं।

(स) पाश्चात्य फिल्म कम्पनियां भी कुछ ऐसे फिल्म तैयार करती हैं जिनमें भारत वासियों और हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का मजाक उड़ाया जाता है, जिससे दर्शकों के हृदयों मे उसका गौरव गिर जाता और वह हिन्दू जाति को दीन निकृष्ट, असभ्य और जंगली समझने लगते हैं। इस प्रकार की फिल्में "India speaks" "Bengali Longer" आदि तो पहिले ही अमेरिका मे बन चुकी थीं, अब सन् १६३७ में "Sacred India" फिल्म, बिशप् लडांडे ने फ्रांस मे तैयार कराई जो अमेरिका में भी दिखलाई गई। उसमें सात भयंकर दृश्य हिन्दू धर्म को बदनाम करने के लिए प्रदर्शित किये गये हैं—

(१) नितान्त वस्त्र रहित नागा साधु (२) रीछों की तरह बाल बढ़ाये हुये, साधु जिनकी जटाएं पैरो तक बढ़ी हुई हैं (३) लम्बे लम्बे दो दो इंच नाखून वाले साधु, जिनके भालू के से पंजे हो जाते हैं (४) कुम्भ कोनम का छोटा सा कुंड

चिन्तन

(ले०—श्री कुँ० हरिश्चन्द्र देव वर्म्मा "चातक" कविरत्न)

घाटी निज नग्नता छिपाती हिम की चादर ओढ़ नवीन,
फिर न कहीं दिखलाई देते उसके निम्न गर्त छवि-हीन।
नवल पल्लवों के मिस तरु भी निज नंगापन झाँप रहे,
काँटों की क्रूरता छिपाये फूलों के दल काँप रहे।
हिम गलता, पल्लव गिरते हैं, झड़ जाते वे कोमल फूल,
फिर द्विगुणित नंगापन उनका हृदय बीच उपजाता शूल।
हम न आवरण-प्रिय होवें सखि! हम न छिपाये अपने को-
हम न कभी ललचायें मिथ्या गौरव के उस सपने को।
फूलों ने सुस्पष्ट कर दिया कलियों में जो था अस्पष्ट,
इसीलिए सब फूल चाहते सह करके काँटों का कष्ट।
उच्च देश वासी होकर भी दिखलाता निज चन्द्र कलंक,
तभी उसे उडुराज मान कर गगन लगाये है निज अंक।
हम भी फूल और शशि सा ही सखि! सबसे निज हृदय कहें,
व्यर्थाडम्बर की बहिया में कभी भूल कर नहीं बहें।
अन्तिम शय्या पर प्रियतम के संग करने का चिर विश्राम-
सरपट भाग रही है सरिता, वर्षा शीत या कि हो घाम।
अथक निरन्तर एक भाव से झरना करता कल कल नाद-
प्राणेश्वर के गुण गायन का क्या पड़ गया इसे भी स्वाद?
चल सखि? चल हम भी सरिता-से निज प्रियतम से मिल जावें,
निर्झर-से उनके गुण गावें, हसी खुशी से खिल जावें।

जिसके गदले और सड़े हुए पानी में दस दस लाख आदमी स्नान करते हैं। (५) दो दो और तीन तीन वर्ष की बाल विधवाएं (६) उन बच्ची विधवाओं के के शरीरों को गर्म लोहे की सलाखों से दागा जाना (७) हिन्दू मूर्तियों (काली देवी आदि) के सामने सैकड़ा बकरे और भैंसों के बलिदान से रक्त का बहना। (Hindustan Times 5-11-37) इस प्रकार के फिल्मों को दिखलाकर योरुप और अमेरिका के पादरी लोग वहां यह सिद्ध करते हैं कि हिन्दू धर्म और सभ्यता बिलकुल जंगली और निर्दयी है। इस-लिए उसको मिटाने के लिए और हिन्दुस्तान में ईसाई मत का प्रचार करने के लिये वे पादरी एक एक साल में ५६ लाख रुपया तक जमा कर लेते हैं। लेकिन हतभाग्य हिन्दू जाति को अपने ऊपर होते हुए इन भयंकर आक्रमणों का पता भी नहीं चलता।

[नोट—यह लेख लेखक की शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तक "खतरे का बिगुल" से दिया गया है। पुस्तक आर्य साहित्य मंडल अजमेर में छप रही है—सम्पादक)

महर्षि दयानन्द
तथा
हमारी विजय

(ले०—श्री बा० श्यामसुन्दरलालजी एडवोकेट मैनपुरी)



प्रत्येक वस्तु के देखने का पृथक् पृथक दृष्टिकोण होता है और उसका शुभ और अशुभ होना देखने वाले की मनो वृत्ति पर भी बहुत कुछ निर्भर रहता है। आर्यसमाज महर्षि दयानन्द का प्रतिनिधि है और जो कुछ कार्य्य उसका हो रहा है उस पर वस्तुत महर्षि की छाप की प्रतीक्षा की जाती है क्योंकि आर्यसमाज का प्रस्तुत वैदिकधर्म जिसका घोतन उसके नियमों और विशेषत उसके प्रथम तीन नियमों में किया गया है वही है जिसके रंग रूप का चित्रण उक्त स्वनामधन्य महर्षि का ही किया हुआ है। अतएव हमको अपनी विजय का परीक्षण उस महर्षि की दी हुई व्यवस्था से करना उचित है जो उनके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में मुख्यत वर्णित है।

महर्षि का दिया हुआ ध्येय ही वैदिकधर्म का ध्येय है और उसी ध्येय का पूर्ण करना आर्यसमाज का उद्देश और मिशन है और जहां तक हमने उस ध्येय को पूर्ण कर पाया है और गत निजाम हैदराबाद सत्याग्रह में उसके पूर्ण करने का परिचय दिया है वहीं तक हमारी वास्तविक विजय है और वही विजय हमारे सच्चे हर्ष का कारण बन सकती है।



लेखक—

यदि महर्षि के ग्रन्थों को ध्यान पूर्वक पढ़ा जायेगा तो विदित होगा कि महर्षि ने कोई कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य कर्म ऐसा नहीं छोड़ा है जिसके क्रमश करने और न करने से सर्वाङ्ग पूर्ण नर नारी और सर्वांग पूर्ण उत्कृष्ट मनुष्य समाज का उत्थान और विकास हो सकता हो और उसको उन्होंने छोड़ दिया हो। उन्होंने गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्य्यन्त और ब्रह्मचर्य्य से लेकर सन्यास आश्रम तक तथा गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था और वैदिक राजतन्त्र को लेकर एक से एक महत्वपूर्ण नीति रीति का प्रदर्शन कर दिया है और सहस्रों वर्षों से अवनति के गर्त में गिरती चली आती और अब शताब्दियों

से पराधीनता और दासता की शृंखला में बंधी इस आर्य्य जाति को उठने और उठाने के लिये सभी कुछ विवेचन कर दिया है और स्पष्ट बतला दिया है कि वह पुनः किस प्रकार उज्ज्वल भविष्य को पूर्ववत् प्राप्त कर सकती है और संसारस्थ अन्य मानव समुदायों को भी उस अशान्ति और दुःख से त्राण दे सकती है जिसमें वह शनैः शनैः पदार्थ विज्ञान के शिखर पर पहुंचे हुए भी सब प्रकार नष्ट और भ्रष्ट हो जाने के निकट पहुंच गये हैं।

महर्षि का ध्रुव निश्चय था कि यह आर्यावर्त्त देश ही सृष्टि के आरम्भ से महाभारत के आरम्भ से कुछ काल पूर्व तक सम्पूर्ण जगत् का शिक्षक और गुरु था और इसी देश के विद्वानों ने मिस्र, यूनान और रोम आदि देशों की सभ्यता को पश्चिम में और चीन आदि देशों को पूर्व में दीर्घकाल तक शिक्षित और दीक्षित रक्खा तथा संसार में जितनी विद्याएं और कलाएं विद्यमान् हैं वह मूल रूप में इसी देश से वहां पहुँची है और संसार के समस्त धर्म और उसकी समस्त भाषाएं केवल वैदिकधर्म और वैदिक भाषा के उत्तरोत्तर भवान्तर रूप हैं। महर्षि की यह धारणा मनगढ़न्त नहीं है। उसकी पुष्टि अनेकानेक पाश्चात्य धुरन्धर पण्डितों ने की है। लेख के बढ़ जाने के भय से मैं केवल यत्किञ्चित उद्धरण श्रीमती मैडेम ब्लेवैट्स्की विविध विद्या विशारदी तथा थीओसोफिकल सोसाइटी की सयुक्त संस्थापिका के सुप्रख्यात ग्रन्थ (secret Doctrine) सीक्रेट डाक्ट्रिन पृष्ठ २०८ से २१० तक देने की प्रेरणा को रोकना अनुचित समझता हूँ। वह अंग्रेजी भाषा में लिखती है जिसका भाषान्तर निम्न है:—

"संस्कृत भाषा की मूल वैदिक भाषा मूल से ग्रीक भाषा ज्येष्ठ भगिनी कही गई है। वास्तव में वह उसकी माता है जो कि अब पांचवीं मनुष्य जाति के योगियों की गुप्त भाषा है। सैमिटिक भाषाएं तूरानी भाषा सहित उसी प्राचीन संस्कृत भाषा की ज्येष्ठ सन्तानों के पश्चात् प्रथम बिगड़े हुए पद्यात्मक लेखों की खिचड़ी रूप उपज हैं। सेमीटिक लोग मुख्यतः अरब के निवासी पीछे के आर्य्य हैं जो आत्मीयता से गिरे हुए और भौतिक जीवन में निपुण थे। यहूदी लोग भी भारतवर्ष से बहिर्गत भारतीयों के वंशज हैं जो कैल्डिया आदि देशों में जाकर आबाद हुए। पुनः उसके आगे लिखती है:—

"वेद ईश्वरप्रदत्त ज्ञान है। यह बात तुलनात्मक धर्मों के स्वाध्याय से स्पष्ट और सिद्ध होती है। प्रत्येक पैग़म्बर का अपने आपको पैगाम लाने वाला बतलाना और किसी नवीन धर्म का उपदेश न बनना यही सिद्ध करता है कि वह पिछले ज्ञान को आगे-आगे पहुँचाने वाला हुआ है।"

पुन 'Isis Unveiled' (आईसिस अन्वेल्ड) भाग २ पृ० ३० पर लिखती हैं।

'अब इतना प्रचुर क्रमागत साक्ष्य उपलब्ध हो चुका है कि यत्किञ्चित् भी सन्देह नहीं हो सकता कि भारतवर्ष न केवल सभ्यता, शिल्प और विविध विद्याओं का ही किन्तु समस्त प्राचीन धर्मों का चाहे वह मूसाई और क्रिश्चियन धर्म हो अथवा अन्य सभी का मातृ भूमि वा आदि स्रोत है।

अतः ध्यान में रखने योग्य यह बात है कि महर्षि का अभिप्राय सब से पहले आर्य्यावर्त्त को अपने उपदेश का केन्द्र बनाने में केवल हिन्दू जाति से न था जिनको वह आजकल के आर्य्य (अर्थात् पतित आर्य्य) के नाम से सम्बोधन करते थे किन्तु मुसलमान और ईसाई भाई भी उनके अभिप्राय में शामिल थे, क्योंकि सभी विज्ञ पुरुष ऋषि के ग्रन्थों से तथा अन्य भांति में जानते हैं कि भारतवासी मुसलमान और ईसाई वंशानुवंश क्रम से अन्त को भारतवासी ही हैं चाहे वह अधिक वा न्यून काल से धर्म परिवर्तन की दृष्टि से उन उन नामों से सम्बोधित क्यों न होने लगे हों।

निदान मैं इस लेख में केवल सार्वजनिक मोटे मोटे महत्वपूर्ण और व्यापक सिद्धान्तों को लेकर बतलाने का प्रयत्न करूंगा कि विगत सत्याग्रह में उनमें से किस ध्येय का कौन सा अंश कहां तक प्राप्त



होगया है और उसको कहां तक आर्यसमाज की विजय कहा जा सकता है।

इसमें किञ्चित् सन्देह नहीं कि इस पुण्य देश में जहां पर इस्लामी हमलों और इस्लामी सल्तनत से पहले सहस्रों लाखों वर्ष आदि काल से और पुनः ब्रिटिश साम्राज्य अर्थात् सन् १८५७ ई० से बराबर धर्म और संस्कृति के प्रचार और अनुष्ठान की पूर्ण स्वतन्त्रता रही हो और उस स्वतन्त्रता को मानवीय नैसर्गिक अधिकार समझा जाता रहा हो वहीं पर एक ऐसी बड़ी रियासत में जो देश की अन्य सारी रियासतों में बड़ी और सभ्य गिनी जाती हो और जिसमें अति अधिक हिन्दू जनता और अति अल्प मुसल्मानी जनता आबाद हो इस्लाम धर्म के शासक उस नैसर्गिक अधिकार को, स्पष्ट कानूनी शब्दों में नहीं किन्तु अमली तौर पर छल कपट भरे फर्मानों और हुकमों के द्वारा हिन्दू जनता से छीन रहे हों, यह एक ऐसा अन्धेर था जिसके श्रवण मात्र से कौतूहलमय आश्चर्य होता है और इस अन्धेर खाते को दूर करने के लिये जिसके कारण सभ्य से सभ्य, मृदुभाषी से मृदुभाषी उच्च कक्षा के धुरन्धर वैदिक-धर्मी पण्डित बेरोकटोक रियासत के भीतर वैदिकधर्म जैसे आदि कालीन अति उज्ज्वल धर्म के प्रचार करने के लिये नहीं जा सकते थे आर्य्य पुरुषों और आर्य-समाजियों का कई वर्षों के लगातार प्रयत्नों के असफल होने पर अहिंसात्मक सत्याग्रह का करना एक ऐसा कर्तव्य बन गया था कि उससे जी चुराना आर्यसमाज का स्पष्ट पतन था तथा जिस प्रकार के अमानुषीय और शर्मनाक अत्याचारों और अन्यायुक्त प्रहारों के कई मास निरन्तर होते और उनके सहन करते रहने पर भी आर्यवीरों ने अपने अहिंसा व्रत को नहीं छोड़ा यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसी अनुपम थी कि उसके सदृश उदाहरण मिलना कठिन किन्तु असम्भव सा प्रतीत होता है। केवल ये दोनों बातें ही अपने आपमें ऐसी हैं और ऐसी विजय का दिग्दर्शन कराती हैं जिसके प्राप्त करने का सौभाग्य किसी संस्था को सहसा प्राप्त नहीं होसका, और उस पर आर्यजगत् परमात्मा के धन्यवाद और निरभिमान पूर्वक जितना हर्ष मनावे वह अनुचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनकी इस सफलता में इतनी भावी कार्यक्षमता की मात्रा निहित है कि उसका अनुमान लगाना सहसा संभव नहीं है। परन्तु इसके उपरान्त उक्त रियासत ने कहां तक अपनी घोषणा से अपनी कानूनी विषमता को दूर किया है। कहां तक वह अपनी सभ्य और नम्र आश्वासन ध्वनि के अनुसार जिससे प्रभावित हो आर्यसमाजों की सर्व शिरोमणि सार्वदेशिक सभा ने सत्याग्रह को बन्द कर दिया है, अपनी निर्बलता और विषम नीति रीति की वास्तविक भीति को शीघ्रतर दूर कर देगी। इसका उत्तर भविष्य के ही गर्भ में है। यदि कानूनी भीति में उक्त घोषणा का अधिक मूल्य नहीं है अथवा कुछ भी मूल्य नहीं है, तो उसके विषय में अब सरपच्ची करना सर्वथा अनुचित और निष्फल है किन्तु अपने समय को व्यर्थ नष्ट करना है। यदि अखबारों में ऐसी सूचना छप रही हैं जो उक्त घोषणा और आश्वासन ध्वनि से मेल खाती दृष्टि नहीं पड़तीं तो भी वर्तमान परिस्थिति का अवलोकन करते हुए यह अनुचित होगा कि हम अभी अधिक प्रतीक्षा न करें और स्टेट के रवैये पर कार्य्य प्रहार करना आरम्भ करदें। हम सबको विश्वास रखना चाहिये कि हमारी सार्वदेशिक सभा अपना कर्तव्य इस विषय में अवश्य कर रही होगी और उसमें सचेत और सतर्क होगी। मेरी लघु सम्मति में सच्ची परीक्षा उक्त रियासत की नेकनीयती और आश्वासन के मूल्य को कूतने के लिये यही हो सकती है कि हम शीघ्रतर श्रीमती सार्वदेशिक सभा के निश्चयानुसार अपेक्षित धन-राशि एकत्र कर रियासत के भीतर और बाहर वैदिकधर्म और संस्कृति के प्रचार और अनुष्ठान के सम्पूर्ण साधन को समुप-स्थित कर दें। उक्त विजय के पीछे यदि हमने अपना उक्त कर्तव्य पूर्ण कर लिया और उक्त साधनों को जुटा दिया तो उक्त रियासत की नीयत और रवैये का ही पता न चल जायगा, किन्तु हमारी विजय ठोस और सच्ची विजय का रूप धारण कर लेगी अन्यथा



दुःख के साथ सिद्ध होगा कि हम केवल उमंगों के धनी हैं न कि वास्तविक कार्यक्षमता युक्त सच्चे व्रती।

परन्तु क्या उपर्युक्त विजय महर्षि के वास्तविक उच्च ध्येयों की दृष्टि से कोई भी मूल्य रखती है? सत्याग्रह तो एक प्रकार का आपद्धर्म है, जो एक प्रकार से अपनी ही असावधानी और अकर्मण्यता का स्मरण दिलाता है और जो कुछ उसमें कष्ट और दुःख भोगने पड़े हैं वह एक प्रकार से उसी असावधानी और अकर्मण्यता रूप पापों का फल था। किन्तु वस्तुतः वह तो परमात्मा की कृपा से प्रायश्चित्त रूपी हमारे संशोधन के लिये ही विकट समस्या के रूप में उदय हुआ था और उस प्रभु का धन्यवाद है कि उसमें हम उत्तीर्ण हुए। अन्यथा क्या यह शोक की बात नहीं है कि महर्षि के उद्देश्य को लगभग साठ-सत्तर वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी हमने न हिन्दू नेताओं और न मुसलमान नेताओं की आकुञ्चित मनोवृत्तियों को बदल पाया है जिनके कारण न ही देश में पराधीनता से मुक्ति पाने के लिये एक दृष्टिकोण हो पाया है और न अपेक्षित भावों और विचारों की समता हो पाई है

अतएव निम्न पंक्तियों में केवल दिग्दर्शन मात्र महर्षि के थोड़े से शब्द उद्धृत करता हूँ जिनसे विदित होगा कि हम लोग ने कैसी बड़ी भूलें की हैं, जिनके कारण आर्यसमाज विजय तो क्या क्षयरोग में ग्रसित हो अपने अस्तित्व को खोने की ओर अग्रसर हो रहा है। अथवा यों कहना चाहिये कि उन बातों में हिन्दू सोसाइटी के रोगों में यथा पूर्व फंसा रह कर रामानुजी, कबीरपंथी आदि किसी सम्प्रदाय विशेष की भांति एक पृथक् सम्प्रदाय बन कर हिन्दू सोसाइटी में विलीन होने की तय्यारी कर रहा है। और इस सब का मूल कारण यह है कि प्राय आर्य समाजी वाङ्मय वैदिकधर्मी हैं जो साहित्यक क्लब की भांति उसके अधिवेशनों में मिलते जुलते और उठते बैठते हैं, उससे अधिक वैदिकधर्म का प्रभाव रोटी-बेटी आदि के रूप में नहीं हो पाया है और न वह मर्यादाएं स्थिर हो पाई हैं जिनकी दृष्टि से आर्यसमाजियों का परस्पर एक दूसरे की ओर आकर्षण हो और वह एक संगठित होकर उत्तरोत्तर वृद्धिशील समुदाय में परिणत हो जावे और सम्पूर्ण भारतीय समुदायों को अपने भीतर शनैः शनैः किन्तु उत्तरोत्तर शीघ्र शीघ्र अपने भीतर सम्मिलित कर लें। मूलरूप से यह दोष दो हैं। अर्थात् पहला सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त एक परमात्मा के जीते जागते विश्वास और उसके सन्ध्योपासन के स्थान में मूर्त्तिपूजा का अहिंसात्मक प्रबल विरोध करना।

द्वितीय गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था का सतत अनुष्ठान और वर्त्तमान जन्मपरक जात पात व्यवस्था अथ त् कास्ट सिस्टम् का अपने अमल से उग्र विरोध न होना जिसके भीतर रोटी बेटी, अनुचित छूआछूत, आचार अनाचार, भक्ष्याभक्ष्य की उचित मर्यादाओं का स्थिर करना स्वाभावतः प्रविष्ट हो जाता है।

प्रथम मूर्त्तिपूजा के विषय में केवल इतना कहना पर्याप्त है कि यह वह प्रथा है जिसने हिन्दू समुदाय को विवेक शून्य एक ईश्वर के स्थान में विविध देवी देवताओं का उपासक बना एक राष्ट्रीय धर्म के अनुयायी होने के गौरव से सर्वथा वंचित कर दिया है। महर्षि दयानन्द ने उक्त विषय में सत्यार्थप्रकाश स० ३ समुल्लास (पृ० ३१४ से ३१६ तक १७ विरोधी आक्षेप देकर पांचवें व छठवें आक्षेप में लिखते हैं—

'नाना प्रकार की विरुद्ध स्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्त्तियों के पुजारियों [मूर्त्तिपूजकों] का ऐक्यमत नष्ट होकर विरुद्ध मत में चलकर आपस में फूट बढ़ा करके देश का नाश करते हैं तथा उसीके भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं और पराजित होकर अपना राज स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भटियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विधि दुःख पाते हैं।" पुनः आगे "मूर्त्ति के जड़त्व गुण आत्मा में आने से विचारशक्ति घट जाती है, विवेक के बिना न

वैराग्य और वैराग्य के बिना विज्ञान, विज्ञान के बिना शांति नहीं होती। जो कुछ होता है सो उन [वीत राग शान्तों] के संग, उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है... प्रीति होने का कारण गुण, ज्ञान है। ऐसे मूर्तिपूजा आदि बुरे कारणों से ही आर्य्यावर्त्त में निकम्मे पुजारी, भिक्षुक, आलसी, पुरुषार्थ रहित करोड़ों मनुष्य होगये हैं, सब संसार में मूढ़ता उन्होंने ही फैलाई है। झूठ, छल भी बहुत सा फैला है।" महर्षि क्रोधित हो यहां तक उस स्थल पर लिखते हैं कि 'जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाण प्रेमियों को पत्थर तोड़ने, बनाने और घर रचने आदि के कामों में लगाके खाने पीने को देता और निर्वाह कराता।"

शोक है ऐसे बड़े दोष से हम आर्यसमाजी उदासीन से होगये हैं। प्रीति पूर्वक हिन्दू सोसाइटी के इस दोष को दूर करने का प्रयत्न नहीं करते और न हिन्दू सोसाइटी के नेता अपनी उदासीनता तथा भीरुता से हिन्दू जनता के हृदय से इस अवैदिक पूजा को निकालने का प्रयत्न करते हैं जिसका आधार केवल महन्तों और मठधारियों आदि के स्वार्थों पर है, किन्तु दिन व दिन उसकी वृद्धि होती जा रही है।

द्वितीय "गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था" के विषय में महर्षि ने पर्य्याप्त विवेचन सत्या० समुल्लास ४ पृ० ८४ से ६० तक किया है। परन्तु इस अभागे देश में यह ऊटपटांग जन्मपरक जात पांत की व्यवस्था ऐसी चिपट गई है कि जन्म दिन से हम उसी के आधार पर पलते, चलते, फिरते, खाते पीते, रोटी बेटी का व्यवहार करते यहां तक कि उठते बैठते भी उसी के अनुसार हैं। महर्षि का उपदेश उनके ग्रन्थों में बन्द है और हम आर्यसमाजी उसी पुरानी रूढ़ि के अनुसार धड़ाधड़ ब्राह्मण नाम से प्रख्यात अपने अपने विशेष उपवर्गों में तथा ठाकुर, जाट, कायस्थ, वैश्य आदि समस्त उपजातियों के लोग अपनी अपनी ही उपजातियों में दौड़ दौड़ कर विवाह कर रहे हैं अब तक यह भी नहीं हुआ है कि तीन सहस्र उपजातियों के पलटे केवल चार बड़े ब्राह्मणादि प्रसिद्ध वर्गों में पारस्परिक विवाह सम्बन्ध होने लगते। पुनः विवाह सम्बन्ध तो दूर की बात है, प्राय खाने पीने में भी शुद्धाशुद्ध और भक्ष्याभक्ष्य के आधार पर जैसा कि महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश में वैज्ञानिक दृष्टि से निरूपण कर दिया है ऐसी मर्यादाएं आर्यसमाज स्थिर नहीं कर पाया है कि आर्यसमाजी मात्र में तो खान पान विषय में प्राय. ऐक्य स्थापित होगया होता। कितना शोक है कि विवाह में ही नहीं किन्तु खान पान में भी प्रायः आर्यसमाजी उसी प्रकार हिन्दुओं की रूढ़ियों में जकड़े हुए हैं जैसे कि आर्यसमाजी बनने से पहले। शोक है कि हमारी इसी निर्बलता ने मि० धर्मपाल जैसे न जाने कितने योग्य मुसलमान भाइयों को वैदिकधर्म में दीक्षित होने से रोक दिया। यदि उक्त निर्बलता न होती तो न जाने कितने भारतीय मुसलमान नामधारी भी वैदिक मत की शरण में आ जाते और आज दृष्टिकोण भारतीय मात्र का क्या होता। विवाहों पर शर्मनाक क़रारदाद और लैन देन की भी प्रथा आर्यसमाजियों में वैसी ही स्थिर है जैसी पहले थी परन्तु विवाह लगभग सब के सब कहे वैदिक ही जाते हैं। सच यह है कि यदि शीघ्र हम आर्यसमाजियों का उक्त त्रुटियों की ओर ध्यान न गया और अन्दर बाहर एक सा हमने अपने आपको न कर पाया और वैदिकधर्म को आचरण रूप में न अपना पाया तो उक्त विजय शायद ही हमको पच पावेगी, किन्तु भय हो सकता है कि हमारा व्यर्थ प्रमाद और अभिमान बढ़ कर हमको और भी नीचे की ओर न ले जावे। जिस पार्टीबन्दी और पदलोलुपता के कौतूहलमय दृश्य सत्याग्रह से पहले प्रति ध्वनित हो रहे थे और 'आर्यमित्रादि' समाचार पत्रों के स्तम्भ रंगे जा रहे थे उनको सहसा बिना किसी तप त्याग और आत्म संयम की निष्ठा के व्रत और आचरण के अपने आप पलायमान समझ हम कहीं इस विजय के घमंड में अपने दोषों के दूर करने के कर्त्तव्य को भूल न जावें और उसका

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह की सफलता और उससे शिक्षा

(लेखक—श्री प० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति भू० पू० प्रधान कर्नाटक प्रान्तीय हैदराबाद आर्य सत्याग्रह, सहायक समिति–बंगलौर)



मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हुआ कि आर्यजगत् का सुप्रसिद्ध प्रतिष्ठित पत्र 'आर्यमित्र' दीपावली के पवित्र अवसर पर हैदराबाद विजयांक' प्रकाशित कर रहा है जिसके लिये मुझे भी एक लेख लिखने को सम्पादक जी ने अनुरोध किया है जिसे सहर्ष स्वीकार करके मैं उपयुक्त विषय पर कुछ विचार प्रकट करना चाहता हूं। हैदराबाद रियासत में धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये किये गये सत्याग्रह संग्राम में आर्यों को जो शानदार सफलता प्राप्त हुई कौन स्वतन्त्रता प्रेमी या सज्जन है जो उस पर हर्ष प्रकाशित न करेगा। आर्य नेताओं के अतिरिक्त पूज्य महात्मा गान्धी, राष्ट्रीय महासभाध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद जी, प० जवाहरलाल नेहरू, महामना पं० मदमोहन मालवीय जी श्रीयुत जमनालाल बजाज, श्रीमती सराजिनी नायडू, डा० पट्टाभिसीतारामैय्या इत्यादि सभी राष्ट्रीय नेताओं ने आर्यसमाज की इस शानदार विजय पर उसे हार्दिक बधाई दी। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद जी ने सार्वदेशिक सभा के सुयोग्य प्रधान माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त जी के नाम पत्र लिखते हुए लिखा था 'हैदराबाद में आर्यसमाज को धार्मिक आज़ादी के लिये सत्याग्रह करना पड़ा यही आश्चर्य की बात थी पर जिस खूबी और संयम के साथ आपने उस सत्याग्रह संग्राम का संचालन किया वह कम आश्चर्य की बात नहीं थी। आर्यसमाज अपने त्याग, कार्यदक्षता और संयम के लिये बधाई का हकदार है। " मैं आशा करता हूँ कि जो जागृति इस समय पैदा हुई है वह रचनात्मक काम में लगाई जाएगी और उससे स्थायी कल्याणकारी फल निकाला जाएगा।" सेठ जमनालाल बजाज जी ने श्री पूज्य प्रधान जी सा० स० के नाम पत्र में लिखा कि "इस युद्ध को इतने त्याग, कुशलता और संयम के साथ चलाने के लिये आपके जरिये मैं आर्यसमाज को हार्दिक बधाई देता हूँ।"

आर्य सत्याग्रह की इस शानदार सफलता और विजय ने निस्सन्देह आर्यसमाज का गौरव बहुत अधिक बढ़ा दिया है। मैने सत्याग्रह संग्राम के समय कर्णाटक प्रान्त में की प्रचारयात्राओं में इस बात को सर्वत्र देखा था कि कट्टर से कट्टर मठाधिपतियों और आर्यसमाज के घोर विरोधियों में भी धर्म और संस्कृति की रक्षा तथा स्वतन्त्रता के लिये किये गये धर्मयुद्ध के कारण आर्यसमाज के लिये बड़ा सन्मान

फल यह न हो कि हम महर्षि के सौंपे मिशन को वास्तव में सफल बनाने के स्थान में और भी दुःसाध्य बना देवें। आशा है कि हमको परमात्मा ऐसी सुबुद्धि प्रदान करेंगे कि हम आत्मचिन्तन द्वारा अपने को अधिक अधिक सद्ध्यायी, सदाचारी और सत्कर्मी बना अपने जीवन को अधिक अधिक आर्यत्व विशिष्ट कर ऋषि के मिशन को पूर्ण करने की ओर सतत प्रयत्न करेंगे और परमात्मा हमारे पुरुषार्थ को सफल करेंगे।

का भाव उत्पन्न होगया था और आर्यसमाज ही वस्तुत. हमारे धर्म और संस्कृति की रक्षा कर सकता है इस बात को वे अनुभव करने लग गये थे। सत्याग्रह के इस शानदार अन्त ने तो उस गौरव के भाव को और भी अधिक बढ़ा दिया है। इस सफलता के कारणों पर विचार करते हुए हमें स्पष्ट ज्ञात होगा कि ईश्वर विश्वास तथा भक्ति, धर्म और संस्कृति का प्रेम, आत्मा की अमरता में विश्वास के कारण निर्भयता त्याग और बलिदान की शुभ-भावना, अहिंसा और सत्य के व्रतों का यथाशक्ति पालन, संगठन और नियन्त्रण (Discipline) इत्यादि उनमे से मुख्य थे। जेलों से भी जो पत्र मुझे

श्री नानूरामजी उपदेशक आर्य उपसभा बदायूं



आप बदायूं से आने वाले पहले जत्थे के अधिनायक थे।

तथा अन्यों को सत्याग्रहियों से प्राप्त होते रहे उनसे ज्ञात होता था कि ईश्वर-भक्ति ने आर्यों को कितना निर्भय तथा सहिष्णु बना दिया था। उदाहरणार्थ मेरे प्रिय शिष्य श्री मुरलीधर जी ने गुलबर्गा जेल से २६-७-३९ को भेजे पत्र में मुझे लिखा । 'यहाँ की हर एक तकलीफ आनन्द-पूर्वक बीतती है। मैं यहाँ रहता हुआ भी आपके पवित्र भावों के भजनों को गाया करता हूँ और उन विचारों के अनुसार अपने आपको आनन्द में समझता हूँ।" ४-८-३९ के पत्र में उन्होंने जेल में बनाये दो भजन मुझे लिख कर भेजे जिनमें से निम्नलिखित पंक्तियों को उद्धृत करना पर्याप्त होगा।

"ओ३म् का जाप हम करते रहे दिन रात जेलों मे।
वृथा जाने न पाएं हे प्रभो ये साँस हमारे॥
तपस्या करने को जेलों, में आये हैं तुम्हारे जन।
तपस्या से तपाकर दूर करदो ताप हमारे॥"

इस ईश्वर भक्ति के भाव को आर्य लोग जितना दृढ़ करेंगे उतना ही उनका जीवन पवित्र और निर्भय बनेगा। इसमें सन्देह नहीं। अहिंसा और सत्य, सत्याग्रह के मौलिक तत्त्व हैं जिनका जितनी अच्छी तरह पालन किया जाएगा उतना ही शीघ्र और प्रबल रूप से विरोधियों पर भी उसका प्रभाव होगा। वेद भगवान् के 'ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः' ये शब्द इस विषय मे स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं जिनका अर्थ यह है कि सत्य का शब्द इतना तेजस्वी होता है कि वह बहरों के भी कानों तक पहुँच कर उसे प्रभावित कर ही डालता है। हैदराबाद के कट्टर मतान्ध शासकों पर आर्यों की सत्यनिष्ठा का आखिर प्रभाव हो ही गया यद्यपि इस विषय में बहुत से लोगों को बड़ा सन्देह था। अहिंसा व्रत का पालन आर्य जनता ने बहुत उत्तमता से किया। यदि सत्य के व्रत का भी पूर्ण रीति से पालन किया जाता तो मेरा विश्वास है कि इस धर्मयुद्ध में सफलता और भी शीघ्र प्राप्त होती। यह स्वीकार करना पडेगा कि कई बार जनता पर प्रभाव उत्पन्न करने के लिये कई बातें फैलाई गईं जो अत्युक्ति पूर्ण तथा पूर्ण सत्य नहीं थीं। इस विजयोत्सव को मनाते हुए सब आर्य सत्य के व्रत को पूर्णता से निभाने का व्रत धारण करेंगे ऐसी मैं आशा रखता हूँ। माननीय श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त आदि मान्य नेताओं ने इस आदर्श को आर्य जनता के सन्मुख सम्पूर्ण रूप से रखकर उसके अनुसरण का आदेश दिया था। "सत्यमेव जयते नान-



तम्" अर्थात् अन्त में सत्य की ही विजय होती है असत्य की नहीं इस ऋषिवाक्य को हमे कभी न भूलना चाहिये ।

सबसे बड़ी बात जिसने बाहर की जनता पर आर्यसमाज के गौरव की छाप लगादी वह आर्यों का त्यागभाव सगठन बल तथा अनुशासन (Discipline) था। किस प्रकार सभी आर्य अपने सर्वाधिकारियो तथा सत्याग्रह-समिति की आज्ञाओं का सम्पूर्णतया बिना ननुनच के पालन करते रहे, किस तरह सभी पार्टीभेद को भुलाकर एकता और प्रेम के सूत्र में बद्ध होकर त्याग और बलिदान का आदर्श जनता के सामने रखते रहे यह बात अत्यन्त अभिनन्दनीय थी। आर्य सत्याग्रह की विजय का एक मुख्य कारण यही आर्यों का प्रबल संगठन तथा अनुशासन था इसमे अणुमात्र भी सन्देह किसी को नहीं हो सकता। त्याग भावना को धारण करने के साथ साथ सब आर्य इस सगठन और अनुशासन की भावना को दृढ़ करने का यदि सदा प्रयत्न करते रहेंगे तो ससार की घोर से घोर विरोधिनी शक्ति से भी टक्कर ले सकेंगे।

इसमे कोई सशय का कारण नहीं । इस विजय पर हर्ष मनाते हुए आर्य अभिमान को प्रदर्शित न करें किन्तु सर्वशक्तिमान् परमपिता के आगे नम्रता पूर्वक प्रार्थना करें और उसे धन्यवाद दें कि उसकी कृपा से ही उन्हे यह विजय भी प्राप्त हुई है। (त्वामभिप्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ।) साथ ही उपयुक्त गुणों को बढ़ाते हुए सब रचनात्मक कार्य में तत्पर हों, यही मेरा नम्र निवेदन है।

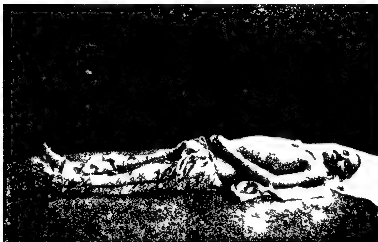
———

गुरुकुल वृन्दावन का महोत्सव

गुरुकुल वृन्दावन का ३५ वाँ महोत्सव ता० २५-२६-२७-२८ दिसम्बर १९३९ में होगा। समस्त जनता से निवेदन है कि वह अभी से अपने प्रिय गुरुकुल के महोत्सव को सफल बनाने के लिये पूर्ण उद्योग प्रारम्भ कर दे तथा अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित हो कर पुण्य और यश के भागी हों।

—चेतरामसिंह मुख्याधिष्ठाता

हैदराबाद सत्याग्रह के अमर शहीद विष्णुभगवन्त तन्दूरकर



मृत्युशय्या पर



पीठ पर आततायियों द्वारा किये गये चोटों के निशान ।

पथ-प्रदर्शक

लेखक—
श्री नागेन्द्र शर्मा 'अरविन्द'
ब्रह्मचर्याश्रम-देवघर

प्रथम पथ भूले पथिक को,
सुगम मग किसने दिखाया ?

कल उदधि के बीच डगमग हो रहा जलयान था जब।
तुमुल कोलाहल मचा था संकटों मे प्राण था जब॥
बन चतुर नाविक कहो किसने तुम्हें इस पार लाया ?
प्रथम पथ-भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया ?

लुप्त सुध-बुध हो चुकी थी, हाय! सञ्ज्ञा-हीन थे तुम।
भेद भावों की विकटतम भ्रान्तियों मे लीन थे तुम॥
विदित है किसने हृदय मे, ज्ञान का दीपक जलाया ?
प्रथम पथ भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया ?

हो चुका जब था परम निस्तब्ध आर्यावर्त उपवन।
किस निराशा से न जाने मौन थे मधुकर, विहग-गण॥
याद है उस काल किसने वेद-वेणु को बजाया ?
प्रथम पथ-भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया ?

बित चुके वे दिन, बिता वह आपदाओं का जमाना।
हो चुके उस ठौर से तुम कमर कस कब के रवाना॥
हिन्द नभ मे पवन घन का था कभी आतंक छाया।
प्रथम पथ-भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया॥

पथिक हिन्दू जाति! अब तो है निकट मंजिल तुम्हारा।
पर कहो उस दिन मिला किसका अरी, सुन्दर सहारा ?
तिलक, गांधी से सुविज्ञों ने किसे गुरुवर बताया ?
प्रथम पथ-भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया ?

सतत निर्झरिणी उसी को कीर्ति का कल गान करती।
याद कर-कर उस 'दया-आनन्द' को रजनी सिसकती॥
है अचेतन के हृदय में भी नहीं क्या वह समाया ?
प्रथम पथ भूले पथिक को, सुगम मग किसने दिखाया॥

❈ परिचय ❈

सुख संचारक कम्पनी मथुरा की स्थापना १८६०ई० में हुई थी और अपने जीवन के इन सैंतालीस वर्षों में हमारे कार्यालय ने जो उन्नति की है वही हमारे कार्य की सचाई और सफलता का ज्वलन्त प्रमाण है, कम्पनी के संचालकों का ध्यान सदा ही इस बात पर रहा है कि कमसे कम मूल्य पर उपयोगी वस्तुयें जनता के सामने रख सकें और इस प्रयत्न में वे सफल भी हुए हैं केवल भारत ही नहीं वरन् अन्य देशों ने भी हमारी सेवाओं को स्वीकार कर हमें यथेष्ट प्रोत्साहन दिया है। भारत तथा विदेशों में हमारी औषध एक लाख पैंतालीस हजार एजेण्टों द्वारा बिकती हैं और लगभग १लाख रुपया प्रति वर्ष इनके विज्ञापन पर व्यय किया जाता है और इन्हे बाहर भेजने के लिये सुख सञ्चारक पोस्ट आफिस के नाम से एक अलग पोस्ट आफिस है।

हमारे यहां की प्रस्तुत पेटेन्ट तथा अन्य औषधें कितनी गुणकारी एवं लोकप्रिय हैं। उन्हे भारत के अधिकांश मनुष्य जानते हैं हमारी आयुर्वेदिक औषध परीक्षोत्तीर्ण तथा अनुभवी वैद्य की देख रेख में प्रस्तुत की जाती हैं और उनके लिये व्यवहार होने वाली सामिग्री भी शुद्ध तथा उत्तम व्यवहार की जाती है तथा उनके निर्माण में आधुनिक मशीनें व बिजली के यन्त्रों से आवश्यकतानुसार सहायता ली जाती है।

हमारे कार्यालय को देखकर सार्टीफिकेट हमें सम्मानित व्यक्तियों ने दिये हैं। हमारी औषधियों के जो प्रमाणपत्र प्रदर्शनियों से प्राप्त किये हैं वह आयुर्वेदिक सूचीपत्र में छपे हैं।

हमारे यहां की निर्माणित औषधों की आप स्वयं परीक्षा करके उनके गुणकारी होने का विश्वास करें यही हमारा अनुरोध है।

हमारे यहां प्रत्येक भाषा जानने वाले कर्मचारी हैं इसलिये सुविधानुसार जिस भाषा में आप चाहें पत्र व्यवहार करें, किसी विशेष रोग का पूरा विवरण लिख कर उनके लिये औषधि मंगाई जा सकती है, गुप्त रोगों के सार्टीफिकेट छापे नहीं जाते।

हमारे यहां दवाइयों के सिवाय नीचे लिखा सामान भी बिकता और तय्यार होता है आपको जिस चीज की जरूरत हो हमें लिखिये। एक पोस्टकार्ड पर अपना नाम, गांव, डाकखाना और जिला लिखकर भेज दीजिये आपके पास घर बैठे सूचीपत्र भेज दिया जावेगा। अगर किसी खास चीज की जरूरत हो तो नीचे लिखे सूचीपत्रों में से जिसकी आवश्यकता हो मगायें, बीमारी की बाबत कोई सलाह हमसे पूछनी हो तो मुफ्त सलाह देते हैं बीमारी का हाल किसीको बताया नहीं जाता, जवाब के लिये टिकिट की जरूरत नहीं।

नीचे लिखे सूचीपत्र जुदे भी छपे हैं।

१–शृंगार का सूचीपत्र नाटक थियेटर रामलीला रासलीला, स्वांग तमाशों तथा गाने बजाने के सामान का सूचीपत्र।

२–रबर की मुहर, सील मुहर चपरास, हस्ताक्षर और तारीख की मुहरों का सूचीपत्र।

–आयुर्वेदीय औषधों का सूचीपत्र।

४–घड़ियों का सूचीपत्र जिसमें जेबी घड़ियां हाथ पर बांधने की घड़ियां, दीवार पर लगाने की घड़ियां टाइमपीसें आदि का सूचीपत्र।

५–टाइप का सूचीपत्र छापेखाने वालों के काम का है जिसमें छापने को अक्षरों के नमूने हैं।

इनके सिवाय हम मथुरा मे मिलने वाला सामान अचार, चूर्ण, चटनी, मुरब्बे, शर्बत, बर्तन, छपी हुई धोती, अगोछे फैन्सी साड़ियां, पेड़े आदि भी ग्राहकों की प्रसन्नता के लिये भेज देते हैं।

ग्राहकों को सब प्रकार संतुष्ट रखना हम अपना परमधर्म समझते हैं। इसलिये आपसे निवेदन है कि एक बार हमारे व्यवहार की परीक्षा अवश्य कीजिये, पूरा हाल जानने को सचित्र बड़ा सूचीपत्र मगाकर देखिये, पत्र में अपना पूरा पता जरूर लिखिये।

अप्रैल सन् ३०से सरकार ने डाकखर्च बढ़ा दिया है यानी ४० तोले तक की पार्सल का महसूल रजिस्ट्री फीस सहित ।≋) लगता है इससे छोटी से छोटी चीज का डाक महसूल ।≡) से कम न लगेगा। इसके सिवाय ≈) मनीआर्डर कमीशन के और लगेंगे।

सत्याग्रही दयानन्द

(ल०—राजगुरु श्री प० धुरेन्द्रजी शास्त्री चतुर्थ अधिनायक आर्य सत्याग्रह)

ऋषि दयानन्द तप, तन के पुत्र थे। वे सत्य के लिये जिये और सत्य के लिये ही उन्होने अपने प्राणों की आहुति दी। सत्य उनके जीवन का सार था। सत्य परमात्मा है और सत्य ही ऋषि की साधना है। ऋषि के आचार, विचार लेख सम्भाषण युक्ति प्रमाण, शास्त्रार्थ और व्याख्यान सब सत्य के आधार पर आश्रित थे। वे सत्य की खोज मे घर से निकले और सत्य की खोज मे ही वन वन घूमते फिरे। जब तक उन्हे सत्य का पता न लगा तब तक वे बराबर एक जिज्ञासु की भाति सत्य की तलाश मे रहे।

ऋषि दयानन्द सत्य के अनन्य अनुयायी थे। उनके मन वचन और कर्म मे पूर्ण समता थी। अर्थात् वे जैसा सोचते वैसा कहते और जैसा कहते वैसा ही करके दिखाते थे। उनके ब्रह्मचर्य युक्त सबल एव तेजस्वी शरीर को देखकर दर्शक पर एक अद्भुत प्रभाव पडता था। उनका आत्मा सत्य से परिपूर्ण होने के कारण महान् था और यही कारण है, बडी से बडी विरोधिनी शक्ति भी ऋषि को मुहूर्तमात्र के लिए भी कर्तव्य से च्युत नहीं कर सकी। इन्होने सत्य विरोधियो के भयकर प्रहार सहे परन्तु हृदय मे कटुता का प्रवेश तक न होने दिया। विपक्षियो के ईट पाषाण प्रहार से बचने के लिये कई बार ऋषि दयानन्द ने भयकर जाडे की रात्रिया जमुना जल मे खडे खडे बिताईं। परन्तु उस समय भी उनके सत्य पूर्ण हृदय मे लोक मङ्गल कामना के अतिरिक्त और कुछ न था।

ऋषि का जीवन सत्याग्रह का जीवन है। हिंसा तो उनके कार्यक्रम का अग ही न थी। जो महात्मा अपने विष देने वाले को भी रुपयो की थैली देकर चुपचाप विदा कर सकता है, जिसके मस्तिष्क में कट्टर से कट्टर विरोधी को भी बन्धन मे फसाने की बात नही समाता, जो विरोधियो के प्रबल प्रहारों को हसते हसते बड़ी शान्ति के साथ सहने की अपूर्व क्षमता रखता है, वह सत्याग्रही नहीं, तो कौन है ?


लेखक

ऋषि दयानन्द परम सत्याग्रही थे। उनके आदर्श जीवन से शिक्षा लेकर हम लोग भी सत्य की महिमा

को समझते हुए सत्य के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं। दम्भ, द्वेष, छल, छद्म, लिप्सा और लोलुपता का सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं। ये सब बातें एक सच्चे सत्याग्रही के लिए विष तुल्य हैं। जो व्यक्ति या जो समाज वास्तविक सत्याग्रही बनने का अभिलाषी है, उसे इस प्रकार के सब दुर्गुणों को तिलाञ्जलि देनी पड़ेगी।

आर्यसमाज का पौधा ऋषि दयानन्द द्वारा ही आरोपित किया गया था। वह अब विशाल वृक्ष के रूप में संसार के सामने है। आर्यसमाज की आधार शिला सत्य की अटल और अडिग चट्टान पर रखी गई है। आर्यसमाज का कर्तव्य है कि वह एक क्षण के लिए भी सत्य पालन से विचलित न हो। सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी उसे सत्योपासना से विमुख न होना चाहिए। आर्यसमाज का प्रत्येक सदस्य सत्य के लिए प्राण न्यौछावर करने को तैयार रहे। उसके जीवन की साधना सचाई या सत्यता ही होनी चाहिये। सत्याग्रही की आत्मा में एक दिव्य शक्ति प्रादुर्भूत होती है, जिसकी समता में संसार का बड़े से बड़ा पाशविक बल भी निस्तेज और क्षीण सिद्ध हो जाता है। एक ओर अकेला सत्य साधक लंगोटबन्द दयानन्द, और दूसरी ओर विरोध करने वाला सारा संसार! निष्पक्ष विवेकियों के हृदय मन्दिर में आसन बिछा कर बैठते हैं। यह है सत्य का प्रताप। अभी कल परसों निजाम जैसी महती शक्ति के मुकाबले में संसार सत्य बल का साधारण-सा चमत्कार देख चुका है। विश्ववन्द्य महात्मा गान्धी सत्य के सहारे ही आज विश्व की दृष्टि में भारत का गौरव स्थापित कर रहे हैं।

सत्य-सत्य कहने से कोई सत्य का उपासक या सत्याग्रही नहीं बन सकता। सच्चा सत्याग्रही बनने के लिए अपने आत्मा में पूर्ण सत्य का समावेश करना होगा। मन, वच और कर्म सत्यमय बनाना होगा। हमारा वायु मण्डल सत्यमय होगा। सोते जागते, उठते बैठते, खाते पीते सत्य ही का स्वरूप हमारी आंखों के सामने होगा। उस समय हमारे प्राण सत्य के लिए होंगे और सत्य हमारी सहायता करेगा हम सत्य को वेदी पर बलिदान होंगे और संसार में सत्य की महिमा बढ़ेगी सत्य कहते कहते हम संसार से विदा होंगे और अन्ततः सत्य में ही विलीन हो हो जायंगे।

बलिदानों पर

श्रद्धाञ्जलि

तब भी प्रकाश की किरणें विश्व के अन्तःपुरों को अपने दिव्य तेज से आलोकित कर रही थीं। एक पैशाचिक शक्ति उसे डस लेना चाहती थी। परन्तु सूर्यास्त वेला की गोधूलि में उनका भाग्य सूर्य तो चमक ही उठा था।

वह वसंत का समय न था। प्रकृति का तरुणपन उसे आकर्षण विहीन करने लगा था। मां भारती का कोमल वृक्षस्थल धर्मोन्मादी मुस्लिम दीवानों के अत्याचारों से रौंदा जा रहा था। तब अत्याचार का अन्त करने तुम भाग्यनगर को गये थे। तुम जेल मे डाल दिए गए। यही तुम्हारा छोटा सा विश्व था। एक ओर यदि पशुता थी तो दूसरी ओर मानवता। तुम अत्याचार की आग मे जलते और वह चेतनता देता, तुम उत्पीड़ित होकर तड़फते और वह हंसता, तुममें जीवन था, वह मारता, तुम मरते वह हंसता! कितनी भयंकर थी वह हंसी। उसके पीछे कितनी कुचली आहें थी जो इसी मानवी जीवन के ही साथ अनंत में विलीन हो जाती हैं!!

तुम पर हथोड़ों के घाव पड़ते, परन्तु तुम उषा के आलोक में विहंसते! तुम हंसते हसते अमर मृत्यु का आलिंगन करते जैसे तुम अपनी विशालता की महान् सत्ता को अपने आप में छिपाये रखकर मानव समूह से परे प्रकृति देवि के अनन्त अञ्चल में बिखेरने चले जा रहे हो! तुम ने आपत्तियां झेलना सीखा है, अत्याचार सहना नहीं! क्योंकि

"महा मृत्यु चलती है आगे,
करे अभिवादन मे विजय स्वर!"

यही तुम्हारे जीवन की साकार अभिव्यक्ति थी!!

× × ×

जीवन का संध्या काल था!
तुमने अपने जीवन की बलि दी थी!!
तुम्हारे दामन पर खून के दाग पड़े थे!!!

× × ×

तुम्हारी अग्नि की ज्वालाएं और भी अधिक प्रबल होकर देश के कोने कोने मे क्रांति का सन्देश पहुंचा रही हैं। ज्योति की वह टिमटिमाती लौ, प्रसुप्त प्रदेश को जागृत करने का प्रयत्न कर रही है। जीवन का बुझता हुआ प्रदीप एकाएक झिलमिला उठा, संसार ने समझा कि वह बुझ गया, परन्तु अब उसने देखा कि अभी जीवन शेष है!

तुम्हारी वह भीषण ज्वाला!
दीपक की अमर ज्योति!!
आर्यों के प्राणों का मधुर संगीत!!!

× × ×

आज जब तुम हमारे मानस में आते हो, हमारे जीवन की अभिव्यक्ति दो बूंद आंसू-तुम्हारे चरणों में लुढ़क पड़ते हैं! जब लाखों मस्तक आगे झुकते रहेंगे तब किसे ज्ञात होगा कि—

'वियोगी होगा पहिला कवि-
आह से निकला होगा गान!!"

× × ×

[ले०—श्री "अग्नेश" माथुर]

सत्याग्रह या आत्म शुद्धि

(ले०—श्री भगवतीप्रसादजी अध्यापक)

सन् २१ के असहयोग आन्दोलन मे महात्मा गाधी ने 'असहयोग या आत्मशुद्धि" नामक लेख लिखा था। जब आर्यसमाज का हैदराबाद सत्याग्रह आरम्भ हुआ तब मुझे उक्त लेख की याद आगई। सत्याग्रह युद्ध जब चल रहा था तब कई व्यक्तियो ने ऐसा कहा था कि हम इस युद्ध का अवसर देने के लिए निजाम के कृतज्ञ हैं कि जिससे आर्यसमाज मे एक अन्दरा हलचल पैदा हुई है और सिथिलता दूर होरही है।

श्रीमती सुशीलादेवी जी पीलीभीत



आप आदर्श आर्य महिला हैं। आपने आर्य सत्याग्रह क लिए पर्याप्त धन राशि एकत्रित की थी।

"असहयोग" और "सत्याग्रह" ही क्या प्रत्येक युद्ध अथवा यो कहिए कि प्रत्येक विपत्ति मनुष्य को कुछ ऊँचा उठाती है। कुछ पवित्रता प्रदान करती है और बहुत सा अनुभव और ज्ञान बढ़ाती है। बुद्धिमान् धीर और साहसी लोग विपत्तियो से डरते और घबराते नहीं वरन् उनका वीरता से सामना करते हैं। इतना ही नहीं वरन् अनेक विजिगीषु दुस्साहसी वीर ऐसे होते हैं जो आपत्तियो का स्वागत करते हैं और स्वयम् उन्हे ढूंढने जाते हैं।

उर्दू के किसी कवि ने कहा है:– मुसबत मे बशर के जौहरे मर्दाना खुलते हैं" और दूसरा एक कवि कहता है.—

सुर्खरू होता है इन्सॉ आफतें आने के बाद।
रंग लाती है हिना पत्थर पै पिस जाने के बाद॥

इस सत्याग्रह मे आर्यसमाज को कुछ सफलता मिली है। इसी सफलता से आर्यसमाज गर्वान्वित होरहा है। ससार मे आर्यसमाज की धाक बैठ रही है। लोगो ने देखा और समझा कि ऋषि दयानन्द के अनुयायियो मे निर्भयता है, बल है, बलिदान भावना है, कार्य दक्षता है सगठन है और सबसे बढ़कर है आत्मसयम और सत्याग्रह के अनुरूप अहिंसा की भावना।

ऐसी सुन्दरता और प्रतिष्ठा के साथ सत्याग्रह समाप्त होने पर आर्यसमाज की विमल यश पताका बहुत ऊंची लहराने लगी है। इसमे सन्देह नहीं। हजारों आर्य सत्याग्रहियो ने जो जेल की यन्त्रणाओं, हजारो मील की यात्रा के घोर कष्ट तथा अन्य अनेक प्रकार की विपत्तियो को सहा है इसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा और मानवृद्धि की जाय कम है। प्रत्येक निष्पक्ष आलोचक (द्रष्टा) बिना हिचकिचाहट के यह कहेगा कि गाधी जी के सन् ३० के महान् सत्याग्रह आन्दोलन की अपेक्षा हैदराबाद आर्य सत्याग्रह आन्दोलन यदि बढ़कर न था तो किसी भी प्रकार कम भी न था। महात्मा गांधी ने सत्या-

ग्रह की समाप्ति पर जो वक्तव्य Statement प्रकाशित किया था उससे भी यही ध्वनि निकल रही थी।

किन्तु अब क्या हमको इसे विजय समझ कर इसके उल्लास में अभिमान से भर जाना चाहिए। यह एक प्रश्न है? मेरी सम्मति में तो इस महायुद्ध के पश्चात् अत्यन्त ठंडे दिल से तथा गम्भीरता के साथ गहरा विचार करने की आवश्यकता है। अगर कोई सुनने की हिम्मत रखता है तो मैं कहने का साहस रखता हूँ कि तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। यह सफलता आपकी पूर्ण विजय नहीं है। यह केवल एक मोर्चे की जीत है और अगर आप इसी की खुशी में फूल जांयगे तो शीघ्र ही मुर्झा जांयगे। यह तो पहिली ही मन्जिल है अभी बहुत लम्बा चौड़ा मैदान मारना बाकी है।

मेरा तो यह विश्वास है कि दैव ने इस सत्याग्रह युद्ध की प्रेरणा इसीलिए की थी कि ऊंघता हुआ आर्यसमाज जागे, चैतन्य हो, उठ खड़ा हो और दक्षिण देश मे गहरी नींद में सोई हुई आर्य जाति को जगाए। यदि आर्यसमाज इस कार्य को नहीं करता तो समझना होगा कि उसने दैवी प्रेरणा को, दैवी सकेत को नहीं समझा और उसने ईश्वर की सामयिक आज्ञा का पालन नहीं किया।

इस सत्याग्रह आन्दोलन को तीक्ष्ण दृष्टि से अवलोकन करने पर हमको अपनी अनेक त्रुटियों का भी पता लग सकता है। आर्यसमाज का यह एक अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह एक चतुर सेनानी की भाति अपने दल के समस्त छिद्रों का अन्वेषण करके उनको पूर दे भर दे। इस स्थान पर मैं दो चार अत्यन्त आवश्यक त्रुटियो की ओर आर्य पुरुषों का ध्यान खींचना चाहता हूं। आशा है विचारशील आर्य इस पर यथोचित ध्यान देंगे।

१—सबसे पहिली बात जो मुझे अखरी, यह है कि सैकड़ा हिन्दुओं को हमने इस युद्ध में भेजा इसका स्पष्ट अर्थ है कि खास आर्यसमाज के क्षेत्र में सिपाहियों की कमी है। यह बड़ी शोचनीय अवस्था है कि समाजों के पुराने गण्यमान्य अधिकारी जो आजीवन उच्च अधिकारों पर आरूढ़ रहे इस बलिदान के अवसर पर दुम दबा गए। बहुत सी प्रतिष्ठित समाजे ऐसी हैं जहां का कोई सदस्य सत्याग्रह में नहीं गया। कोई कोई बडे अधिकारी तो युद्ध के आरम्भ से अन्त तक यही कहते रहे कि वहां आदमियो की आवश्यकता नहीं; रुपया चाहिए, रुपया भेजो। संभवतः उन्हे डर था कि कोई उन्हीं से न कह बैठे कि आप क्यों नहीं जाते। कई दलों के सेनापति माला पहिनते और भेंट लेते हुए शिबिर तक पहुंचे और बेचारे स्वयम् सेवकों को जेल में ढकेल स्वयम् प्रचार के बहाने बाहर सैर करते रहे।

हमारी दूसरी त्रुटि यह थी कि जिस सन्ध्या और हवन का अधिकार दिलाने हम जेल जा रहे थे उसे हम जेल के बाहर बल्कि अपने शिविर में भी भले प्रकार न करते थे। इससे हवनादिक में हमारी श्रद्धा को न्यूनता प्रगट होती है जो अत्यन्त गर्हित है।

तीसरे कार्य का संगठन कुछ इस प्रकार से हुआ कि सारी शक्ति कुछ गिने चुने आदमियो के हाथ में रही और पचासो कुशाग्र बुद्धि, अनुभवी और कुशल तथा वीर व्यक्तियों की शक्तियों का कोई उपयोग न हुआ।

चौथा बड़ा भारी दोष यह था कि जेल में सत्याग्रहियो को आपत्तियो की जानकारी का कोई प्रबन्ध न था। और यह भी कि अनेक अवसरो पर खान पान सेवा सत्कार में पक्षपात पूर्ण व्यवहार हो जाता था जब कि इस व्यवहार में सैनिको के साथ अत्यन्त कठोरता के साथ साम्य रखने की आवश्यकता है।

इन सब बातो का निष्कर्ष यह है कि हममें आर्यत्व की अभी बड़ी भारी कमी है। यह जो थोड़ी सी सफलता मिली है सो ईश्वर की विशेष अनुकम्पा का फल है। हमारे अन्दर त्याग बलिदान और पवित्रता अत्यन्त अल्प है। हमारी पवित्रता और बलिदान की अपेक्षा हमें कहीं अधिक फल मिल गया है। यदि हम अब सचेत न हुये, हमने अपने अन्दर से रुपया लाने वाले और व्यवहार कुशल किन्तु अव-

सत्याग्रह में

गुरुकुल विश्व विद्यालय वृन्दावन का भाग



रुकुल वृन्दावन में शोलापुर आर्य सम्मेलन के पश्चात् २६ दिसम्बर को हैदराबाद की स्थिति पर विचार करने के लिए एक आर्य-सम्मेलन किया गया और तत्काल ही गुरुकुल के अध्यापक गण तथा ब्रह्मचारी सत्याग्रह प्रचार में जुट पड़े । गुरुकुल वृन्दावन का प्रथम जत्था १५ फरवरी १६३६ को स्नातक ब्रह्मदत्त जी आयुर्वेद शिरोमणि की अध्यक्षता में रवाना हुआ। इस जत्थे मे सर्व श्री ब्र० नरदेव (सुपुत्र स्व० सेठ रामगोपाल जी बेला) ब्र० नित्यानन्द, ब्र० सत्यपाल, ब्र० ब्रह्मानन्द एवं सुखदेव जी आदि सम्मिलित थे । इनमे कई एक ब्रह्मचारी स्याम व फीजी आदि दूर देशो के रहने वाले भी थे। यह जत्था द्वितीय सर्वाधिकारी श्री कुं० चांदकरण जी शारदा के साथ सत्याग्रह करता हुआ गुलबर्गा में गिरफ्तार हुआ और प्रत्येक को १३ मास का सपरिश्रम कारावास दिया गया । इन सत्याग्रहियों को जेल में घोर यन्त्रणायें दी गई । कोल्हू चलाने व चक्की पीसने का कार्य कराया गया और ब्र० नरदेव जी को लक्कड़ वार्ड मे उल्टा लटका कर मार पीट की गई।

गुरुकुल का दूसरा जत्था श्री राजगुरू पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री के साथ श्री पं० शिवचैतन्य जी कार्यकर्त्ता गुरुकुल वृन्दावन को अध्यक्षता में २७ मार्च को गया । इस जत्थे में ब्र० ज्ञानेन्द्र, ब्र० देवीशरण, ब्र० रामदेव, ब्र० सत्यदेव एव राजेन्द्रसिंह वर्मा आदि सम्मिलित थे । इस जत्थे ने ५ अप्रैल को श्री निवृत्ति रैड्डी जी के साथ गुलबर्गा मे सत्याग्रह किया और इनमे से प्रत्येक को ६-६ मास को कठोर सजा हुई । गुरुकुल के इस दूसरे जत्थे का भी जेल में भारी भारी कष्ट उठाने पड़े । अधिनायक तथा ब्रह्मचारियों को गड्ढे खोदने और चक्की पीसने आदि के कठिन कार्य दिए गए, जिनसे उनके हाथों में छाले हो जाते थे और दुष्ट भोजन के कारण प्राय: सबको रोगाक्रान्त रहना पड़ा ।

गुरुकुल वृन्दावन के तीसरे जत्थे मे गुरुकुल के अध्यापक स्वा० आनन्दघन जी एम० ए० एल एल० बी० तथा अनुसन्धान विभाग के कार्यकर्त्ता पं० प्रियरत्न जी आर्ष गए थे, ये भिन्न भिन्न स्थानों में प्रचार करते हुए २० अप्रैल को शोलापुर पहुँचे । वहाँ से आर्ष जी १०५ सत्याग्रहियों के साथ उस्मानाबाद में गिरफ्तार हुए । जिन्हें २५-२५ मास की सजा मिली। स्वामी आनन्दघन जी चतुर्थ सर्वाधिकारी श्री पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री के साथ गुलबर्गा में गिरफ्तार हुए और आपको भी २५ मास का कारावास हुआ।

वित्र चरित्र व्यक्तियों को गला सड़ा अङ्ग समझ कर अलग न किया तो हम बड़ी भयंकर स्थिति मे पहुंच जाएंगे । इस पवित्रीकरण को किए बिना यदि हम कोई और युद्ध छेड़ेंगे तो उसमे कभी सफलता न होगी ।

मेरा तो निश्चय है कि यदि समाज में उपरोक्त दोष समझ कर उसका परिहार न किया तो सत्याग्रह युद्ध की सब आहुतियां निष्फल गई जैसे हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिए गणेश शंकर विद्यार्थी की आहुति ।



इसके पश्चात् गुरुकुल का चतुर्थ जत्था पं० शिवशर्मा जी उपाध्याय आयुर्वेद शास्त्री की अध्यक्षता में रवाना हुआ, इसमें पं० सत्यदेव जी व्यायाम शिक्षक, स्नातक श्री सुधीन्द्र जी सिद्धान्त शिरोमणि, ब्र० कृष्णस्वरूप जी अधिकारी, श्री सतीशचन्द्र जी २य वर्ष तथा श्री रघुराज जी 'रघु' आदि सम्मिलित थे। यह जत्था ५ जून को छठे सर्वाधिकारी म० कृष्ण जी के साथ औरंगाबाद में गिरफ्तार हुआ और प्रत्येक को २५-२५ मास का दंड दिया गया। पं० सत्यदेव जी को दो बार भयंकर पेचिश हुई। जिससे आपका भार ४० पौंड कम होगया। स्नातक सुधीन्द्र जी को स्वा० स्वतंत्रानन्द जी ने मनमाड कैम्प का अध्यक्ष बना दिया इसलिए वे जेल न जा सके। गुरुकुल आगे और भी जत्थे भेजने को तैयार था किन्तु सत्याग्रह स्थगित हो जाने से रुक गया।

गुरुकुल के ब्रह्मचारियो, स्नातकों तथा कर्मचारियों ने सत्याग्रही के रूप मे जेल जाने से पूर्व समिति के शिविर में रहकर तथा मार्ग मे मथुरा, आगरा, ग्वालियर, झाँसी, मऊरानीपुर, इटारसी, खंडवा; येवला मनमाड, नागपुर, शोलापुर और बम्बई आदि नगरों में सत्याग्रह के सम्बन्ध में प्रचार करते हुए वैदिक सिद्धान्तों को और मन्तव्यों को जनता के सामने पहुंचाया। व्याख्यान और उपदेश द्वारा जनता का ध्यान आर्यसमाज की ओर आकृष्ट किया। इसके सिवा हैदराबाद की जेलों मे दूसरे सत्याग्रही भाइयों को नियमित जीवन व्यतीत करना सिखाया। दैनिक संध्या- हवन की पद्धति जेलों मे प्रचलित की। जेल में रहते हुए अपने ध्येय पर सत्य और अहिंसा का पालन करते हुए अविचलित रहे। हमें कहते हुए गर्व है कि गुरुकुल का एक भी सत्याग्रही अपने कर्तव्य से लेशमात्र भी च्युत नहीं हुआ और सदैव दूसरों के लिए आदर्श बना रहा। सत्याग्रह-संग्राम के समाप्त होने पर गुरुकुल पधारने पर श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी महाराज (अध्यक्ष सत्याग्रह समिति) ने गुरुकुल के सत्याग्रहियों के प्रति अपने उद्गार प्रगट करते हुए कहा था कि:—"मुझे गुरुकुल के ब्रह्मचारियों तथा स्नातकों की धर्म परायणता, सत्य निष्ठा और कार्य शैली से अत्यधिक सन्तोष है। मैं कह सकता हूँ कि इस सत्याग्रह संग्राम में गुरुकुल की सार्थकता सबके सामने स्पष्ट हो गई। और उनके ऊपर व्यय हुई धन और शक्ति इस संग्राम में पूरी पूरी वसूल हो गई।" सत्याग्रही भाइयों के अतिरिक्त गुरुकुल के अन्य ब्रह्मचारियों तथा कर्मचारियों ने भी प्रचार कार्य मे पूरा सहयोग दिया। समय समय पर सभायें करके वृन्दावन और मथुरा की सोई हुई हिन्दू जनता में जीवन और जागृति का संचार किया इस अवसर पर अन्ध विश्वासों और रूढ़ियों के गढ़ में बन्द जनता के हृदय में जो वैदिक ज्योति जगी है वह सदियों तक उन्हे आलोकित करती रहेगी।

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने सत्याग्रह संग्राम के लिए गुरुकुल मे से ही लगभग ६००) की धनराशि एकत्रित की। स्मरण रहे कि ब्रह्मचारियों ने अपना भोजन त्याग कर-भूखे रह कर और कर्मचारियों ने मास मे २ दिन की आय देकर इस धन को जुटाया था। जिनमें श्री बा० रामदीन जी तथा प० त्रिलोकीनाथ जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आपने क्रमशः ५०) तथा २५) हैदराबाद सत्याग्रह के लिए दान दिया। इसका उपयोग सत्याग्रहियों को हैदराबाद भेजने तथा प्रचार करने मे किया गया। यद्यपि यह राशि बहुत अल्प है परन्तु इसमें ब्रह्मचारियो के सात्विक त्याग तथा सराहनीय धर्म प्रेम की छाप स्पष्ट झलकती है। पाप से सचित धन मे से करोड़ों रुपयों की दान राशि भी इसकी तुलना में नहीं ठहर सकती इस धन राशि के अलावा बाहर से आने वाले सैकड़ों आर्य सत्याग्रहियों का ५ मास तक निरन्तर भोजनादि द्वारा सत्कार करना भी गुरुकुल के आर्थिक सहयोग का ही एक अंग रहा है। कदाचित् दान पर चलने वाली किसी और दूसरी संस्थाओं को इतने सत्याग्रही भाइयों का भोजनादि सत्कार का सुअवसर प्राप्त नहीं हुआ होगा। सत्याग्रह समिति के शिविर में भी गुरुकुल के अध्यापक श्री सुधीन्द्रनाथ जी सिद्धान्त शिरोमणि येवला केन्द्र के

अध्यक्ष रूप में निरन्तर ४ मास तक काम करते रहे।

उपनिवेशों के ब्रह्मचारियों के नवयुवकोचित उत्साह के समाचार से भारतीय उपनिवेशो मे आर्य सत्याग्रह की लहर दौड़ गई। इस सत्याग्रह के विश्व व्यापी बनाने मे इन प्रवासी ब्रह्मचारियो का बड़ा हाथ है। इस दृष्टि से यह गुरुकुल सबसे आगे बढ़ रहा है।

जेलों में सेवा, त्याग और तपस्या का आदर्श

हैदराबाद राज्य की अमानुषिक यातनाओ से परिपूर्ण जेलो में यो ता सभी आर्य सभी सत्याग्रही भाइयो ने पर्याप्त सहन-शीलता और धैर्य का परिचय देकर इस विशुद्ध धार्मिक युद्ध को विश्व-इतिहास के पृष्ठों मे अमर बनाया है। परन्तु गुरुकुल के सत्याग्रहियो का उसमे अपना स्थान है गुलबर्गा, हैदराबाद, संगारेड्डी, औरंगाबाद आदि स्थानो मे जहाँ भी गुरुकुल के ब्रह्मचारी और स्नातक रहे अपने त्याग, तपस्या और संयम का दूसरों के सम्मुख आदर्श उपस्थित करते रहे। दूसरों की सुविधा का ध्यान रखना, बीमारो की सेवा सुश्रूषा करना, आपत्ति के समय धैर्य एवं संयम रखना ही इनका जेलों मे प्रधान लक्ष्य रहा, कठोर से कठोर यातना और रोमांचकारी दंड भी हंसते हंसते झेलने का इनको अभ्यास होगया था। स्ना० ब्रह्मदत्त जी तथा ब्र० नरदेव जी ने लक्कड़ वार्ड के अमानुषिक अत्याचारों को सहन करते हुए मुंह से आह और उफ तक न निकाली। निरपराध होने पर भी लाठी चार्ज का शिकार बनने वाले ब्र० नित्यानन्द जी, ब्र० देवीशरण जी, ब्र० राजेन्द्रसिंह जी वर्मा ब्र० सत्यदेव जी और ब्र० ब्रह्मानन्द जी जिस मुस्कराहट के साथ जेल मे व्यवस्था को स्थिर किए रहे वह क्या भूल जाने की चीज है। जेल के अधिकारियों की हर एक दण्ड-व्यवस्था जैसे इनके अहिंसा व्रत को अचल बनाने वाली बन गई थी। जेल के वर्कशाप मे बैठे जो सुन्दर सुन्दर वस्तुओं मे ब्रह्मचारियो ने निर्माण की हैं वे हैदराबाद मे आगे आने वाले कैदियों को अनुकरण का काम देंगी।

सत्याग्रह से लौटने के बाद राजगुरु श्री पंडित धुरेन्द्र जी शास्त्री ने इस गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को प्रशंसा करते हुए कहा था कि—"धैर्य, संयम, सेवा, तपस्या और धर्म प्रेम की भावना का जो उज्ज्वल आदर्श यहाँ के सत्याग्रही ब्रह्मचारियों ने इस संग्राम मे रक्खा है वह आने वाली पीढ़ी के लिए पथ-प्रदर्शन का काम देगा।

विजय के बाद

(ले०—श्री प० महेन्द्रप्रताप जी शास्त्री एम० ए० एम० ओ० एल० देहरादून)

डाक्टरों का कहना है कि बीमारी से अच्छा होने पर अधिक सावधानी की आवश्यकता हुआ करती है। बीस पचीस दिन तक टाइफाइड विषम ज्वर अथवा अन्य किसी ऐसी बीमारी से पीड़ित रह कर रोगी निर्बल हो जाया करता है, इसलिये उससे पीछा छूटने पर उसे अधिक सावधानी से रहना चाहिये -डर रहता है कि उसकी निर्बलता में कहीं वही अथवा कोई और बीमारी आकर उसे दबा न ले। कभी कभी ऐसा भी होता है कि बीमारी से छूटते ही रोगी और उसकी परिचर्या करने वाले कुछ लापरवाह होजाते हे—सोचते हैं कि अब तो दुश्मन को पछाड़ ही दिया, अब क्या है? इसका परिणाम यह होता है, वह पछड़ा हुआ शत्रु मौका पाकर फिर उभड़ जाता है और तब लेने क देने पड़ जात हैं। इस भयंकर परिणाम से बचने के लिये पछाड़े हुए शत्रु से सतर्क रहने की आवश्यकता है।

इससे मिलती हुई एक ऐतिहासिक सचाई भी है। कभी कभी जीतने वाले हार जाया करते हैं। रोम और ग्रीस का प्रसिद्ध युद्ध इसका उदाहरण है। इतिहास ने इस प्रकरण में लिखा है कि—"The conquered were the con uorers" अर्थात् पराजित विजेता बन गये। रोम वासी ग्रीक लोगों पर विजय पाने के बाद, अपनी विजय के हर्ष में अथवा अन्य किसी कारण से, इतने असावधान हो गये कि ग्रीक लोगों पर उनकी जीत का कोई प्रभाव नहीं हुआ। ग्रीक सभ्यता वैसी की वैसी बनी रही।

इस घटना-व्यतिक्रम के अनेक कारण होते हैं। सब से प्रथम और मुख्य कारण तो यह है कि यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह आपत्ति में अथवा उस



लेखक—

की सम्भावना में सतर्क रहता है पर जब आपत्ति टल जाती है तो वह लापरवाह हो जाता है। उसकी यह असावधानी टली हुई आपत्ति के लिये स्वर्ण अवसर का कार्य देती है। कभी कभी ऐसा होता है कि विजयी सेना अपनी जीत की प्रसन्नता में सो जाया करती है और शत्रु की सेना, अवसर पाकर, छापा मार देती है। कभी कभी विजयी सेना में अनुशासन अथवा नियन्त्रण (Discipline) की कमी होजाती है। विजयी सेना के सिपाही जीत के उन्माद में आपे से बाहर हो जाते हैं; नियन्त्रण को भूल जाते हैं; लूट मार मचा देते हैं। अपने डेरा और रक्षा



के गौरव को एक ओर रख अपने स्वार्थ को पूरा करने लगते हैं। यह बात कभी कभी यहां तक बढ़ जाती है कि सेना के अन्दर ही विद्रोह हो जाता है। जब सिपाहियों को लड़ने के लिये शत्रु नहीं मिलता तो वे अपने आदमियों को ही अपने क्रोध और बल का शिकार बना लेते हैं और इस प्रकार शत्रु से किये जाने वाले कार्य को वे स्वयं ही कर देते हैं। विजेता का दर्प भी कभी कभी उसके नाश का कारण बन जाता है। घमण्ड में आकर आदमी उचित अनुचित कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को भूल जाता है। वह ऐसे काम कर बैठता है जो 'चमण्डी का सिर नीचा' इस कहावत को सच्चा साबित कर देते हैं। कभी कभी जीत आदमी को अकर्मण्य भी बना देती है—वह समझता है कि मुझे जो करना था कर चुका, अब कुछ करना शेष नहीं। वह भावी कार्यक्रम को एकदम भूल जाता है। इस प्रकार अनेक कारण हो सकते हैं जिनके द्वारा जीत हार से भी अधिक हानिकारक सिद्ध हो सकती है। इसलिये विजयी सेना को अधिक सावधानी से कार्य करना चाहिये।

इतनी भूमिका के बाद हम प्रकृत विषय पर जाना चाहते हैं। अभी आर्यसमाज ने हैदराबाद में सत्याग्रह संग्राम जीता है। संग्राम के समय आर्यसमाज ने अद्वितीय संगठन शक्ति,कार्य शक्ति, सहनशीलता, त्याग आदि का परिचय दिया है। उसके विरोधी भी उसका सिक्का मान गये। उसके प्रशंसक कहते हैं कि उन्हें पता न था कि आर्य जाति में इतनी शक्ति है; समय पड़ने पर वह इतना कार्य कर सकती है। बहुतों का कहना है कि वैदिकधर्म के नाम पर इतना बड़ा आयोजन सैकड़ों वर्षों से न हुआ था। ऐसी अनेक बातें प्रशंसा में कही जा रही हैं और ठीक भी हैं। पर हमें उन्हें सुनकर प्रसन्न होकर ही न रह जाना चाहिये। जीत के बाद के कार्य का ध्यान रखना चाहिये, नहीं तो, ईश्वर न करे, हमारी जीत हार में परिणत हो जावेगी। हमारी सम्मति में आर्य जाति का कर्त्तव्य दो भागों में बांटा जा सकता है। एक तो दक्षिण प्रचार सम्बन्धी और दूसरा आर्यसमाज की उन्नति से सम्बन्ध रखने वाला। हैदराबाद सम्बन्धी कार्य दक्षिण प्रचार के अन्तर्गत है।

दक्षिण प्रचार के सम्बन्ध में प्रथम बात सार्वदेशिक सभा की मांगों को पूरा करना है। वहां प्रचार आदि के लिये सभा ने तीन वर्ष का कार्यक्रम बनाया है और उसे पूरा करने के लिये उसने तीन लाख रुपये की अपील की है। आर्यसमाजों, आर्यों, वैदिकधर्म प्रेमियों का कार्य है कि सभा के लिये यह धन शीघ्र एकत्रित कर दें। सत्याग्रह के दिनों में धन खूब एकत्रित किया गया—सबने अपनी अपनी सामर्थ्यानुसार यज्ञ में आहुतियां डालीं, जिसका परिणाम यह हुआ कि सत्याग्रह में लगभग आठ-दस लाख रुपये व्यय हुए। पर अब देखना है कि उसी प्रकार धन दिया और एकत्रित किया जाता है या नहीं। हमने अनेक स्थानों पर यह कहते सुना है कि अब सत्याग्रह समाप्त होगया, अब धन एकत्रित न हो सकेगा। इसे हम कायरता समझते हैं। हमें प्रायः चन्दे करने पड़ते हैं और हमारा अनुभव यह है कि धन देने वाला

श्री चौ० पृथ्वीसिंहजी 'बेधड़क'



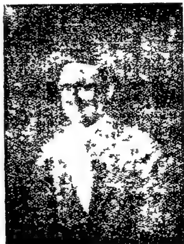
आप प्रसिद्ध आर्य प्रचारक हैं। आपने अपनी १००) की नौकरी को त्याग कर सत्याग्रह में भाग लिया था।

लोगों की कमी नहीं—कार्य करने वाले और धन एकत्रित करने वाले लोगों की कमी है। इसलिये यह कहना कि धन एकत्रित न हो सकेगा ठीक नहीं। एकत्रित करने वालों में लगन और उत्साह होना चाहिये। धन एकत्रित करने का कार्य आर्यसमाज को ही करना होगा—दूसरे लोग तो धन देंगे—इससे अधिक कुछ नहीं। इसलिये सत्याग्रह के समय विभिन्न स्थानों पर धन एकत्रित करने के लिये जो समितियां बनायी गई थीं उन्हें बना रखना चाहिये और उन्हींसे यह कार्य कराना चाहिये। दूसरे सत्याग्रह के समय जो मासिक सहायतायें मिलती थीं, आगे छ मास तक उन्हें उसी प्रकार प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। यह अवश्य है कि कुछ आदमी उदासीनता दिखावेंगे, परन्तु उनसे धन प्राप्त करना हमारा ही कार्य है और यह करना होगा। धन तीन साल के कार्यक्रम की जड़ है। उसके बिना वह पूरा नहीं हो सकता। इसलिये तीन लाख रुपये का एकत्रित हो जाना अत्यावश्यक है।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात सार्वदेशिक सभा का नियन्त्रण मानना और उसे पूरा सहयोग देना है। दक्षिण प्रचार का कार्य बड़ी सावधानी के साथ करना है। उसकी सफलता और असफलता पर वहां आर्यसमाज के भविष्य का निर्णय होगा। वहां यदि अपने अपने चावलों की खिचड़ी पकाई गई तो बड़ी हानि होगी इसलिये यह कार्य अपनी शिरोमणि सभा के ही हाथ में छोड़ देना चाहिये। संस्थाओं का खजाना उपदेशकों का भेजना आदि सब कार्य सभा की ही देख रेख में होना चाहिये। सभा ने वहां सुपरीक्षित और विशेष दक्षता रखने वाले उपदेशक आदि को ही भेजना निश्चय किया है—जनता को उसमें योग देना चाहिये।

कहीं कहीं पर सत्याग्रह की सफलता पर सन्देह किया जा रहा है। एक दो सज्जन ने तो यहां तक अधीरता दिखाई कि सत्याग्रह की समाप्ति के साथ ही साथ अपने विचार पुस्तक रूप में प्रकाशित कर दिये। अनेकों का कहना है कि हैदराबाद में अब भी वही अवस्था है। यदि इस प्रकार के विचार सार्वदेशिक सभा के पास पहुँचा दिये जावें तब तो कोई हानि नहीं, पर ऐसा न कर उन्हें लेखनी या मुख के द्वारा जनता में फैलाना अनुचित है। उससे आर्यसमाज के मान को बट्टा लगता है। इससे सभा के प्रति भक्ति में भी कमी आती है और आर्यसमाज का नियन्त्रण भी ढीला होता है। हम यह जानते हैं कि ऐसा करने वाले भी आर्यसमाज के शुभचिन्तक हैं, पर कभी कभी शुभचिन्तकों के द्वारा भी हानि हो जाती है। इस बारे में अधिक से अधिक यह हो सकता है कि हैदराबाद में फिर सत्याग्रह करना पड़े, तो उसके लिये अब तो रास्ता देख लिया है। अब तो अनुभव भी होगया है। आवश्यकता पड़ने पर उससे लाभ उठाया जा सकता है।

श्रीयुत लाडलीप्रसादजी वकील, अम्बाह (ग्वालियर)

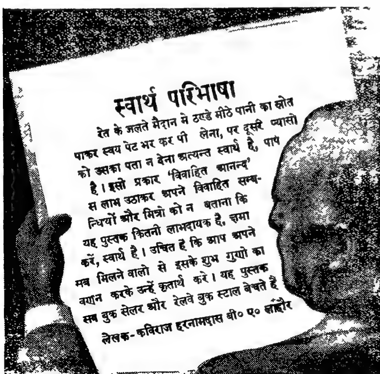


आप दृढ़ आर्य सज्जन हैं। आपने सत्याग्रह चलने तक २००, मासिक सहायता प्रदान की थी।

सत्याग्रह में विजय होने पर दूसरी बात जिस पर हमें ध्यान देना चाहिये, आर्यसमाज की अवस्था

सुधारना है। सत्याग्रह से पहिले समाज के कार्यों में शिथिलता सी आती जाती थी, आलोचक तरह तरह से उसके बारे में कहते सुनते थे। परन्तु सत्याग्रह ने समाज में पुनर्जीवन का संचार कर दिया और अनुभव करने लगे कि आर्यसमाज एक कर्मण्य संस्था है। अब हमारा कर्त्तव्य है कि इस प्रशंसा को स्थायी बनायें। कहीं ऐसा न हो कि लोग कहने लगें कि आर्यसमाज ने सत्याग्रह की विजय से लाभ न उठाया। इस बदनामी से बचने के लिये हमें उसी प्रकार कार्य करना होगा। जिस प्रकार सत्याग्रह के दिनों में किया था। कार्य को ढग से करने के लिये आवश्यक है कि आर्य समाज के लिये तीन तीन वर्ष का कार्यक्रम बनाया जाया करे। सब आर्यसमाज अन्य कार्य करते हुए भी, अपनी विशेष शक्ति उसी कार्यक्रम को पूरा करने में लगा दें। इस कार्यक्रम के निर्धारण के लिये प्रति तीन वर्ष बाद एक आर्य महा सभा (Aryan Congre s) हुआ करे—जिसमें आर्यसमाज सम्बन्धी अन्य बातों पर भी विचार हुआ करे। इस महासभा में कार्यक्रम तै हो जाने के बाद उस पर कार्य करना सार्वदेशिक सभा का कार्य होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि सभा इस कार्यक्रम को पूरा कराने का पूरा प्रयत्न करेगी। केवल एक बार कार्यक्रम की सूचना दे देने से कार्य न चलेगा—मासिक अथवा त्रैमासिक रिपोर्टों द्वारा यह भी मालूम करना होगा कि किस समाज ने क्या किया, आदि। इससे सार्वदेशिक सभा की शक्ति बढ़ेगी, उसका कार्य व्यापक होगा और उसका महत्व बढ़ जायेगा। आर्यसमाज में बराबर जीवन बना रहेगा। वे बराबर जनता के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित किये रहेंगी। यह अवश्य है कि आर्यसमाज के कार्यों को अन्य अनेक संस्थाओं ने अपना लिया है, परन्तु अभी बहुत कार्य करने को पड़ा है। अभी देश के हृदय गावों तक, बिचारे अपढ़, निर्धन ग्रामीणों तक सुधारों की आवाज भी नहीं पहुँची। फिर यदि औरों ने अपना लिया है तो अच्छा है—समाज भी करे और दूसरे भी करें।

इसके अतिरिक्त आर्यसमाजों के झगड़ों को दूर करना भी आवश्यक है, परन्तु हमारी समझ में झगड़े दूर करने से दूर नहीं हुआ करते। झगड़ा करने वालों के पास यदि काम नहीं होता तो वे झगड़ते हैं, पर यदि उनके सामने कोई प्रोग्राम हो, कार्य हो तो वे झगड़े भूलकर उसमें लग जाते हैं। इस सत्याग्रह में इसका प्रमाण मिल चुका है। इस लिये यह बुराई भी तीन वर्ष के कार्यक्रमों में जुट जाने से दूर हो सकती है।



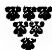
विजय-गान

(ले०—श्री "अम्बेश" माथुर)

जग जीवन—जीवन जग,
निमल, अति सुभग, सुभग !
मां भारती वन्दे !

बरसो भारत मे भन भन,
जीवन हो उन्मन, उन्मन,
आलोकित हो जीवन कण कण !
मां भारती वन्दे !

भङ्कार गीत का विकल विकल,
हँस मानव रे ! विमल विमल,
आराधन कर प्रतिपल प्रतिपल !
मां भारती वन्दे !



एक आदर्श आर्य परिवार



यह परिवार लश्कर (ग्वालियर) निवासी सेठ गूजरमल जी जोहरी का है
जिन्होंने हैदराबाद सत्याग्रह मे जेल यात्रा की थी।



सेठ गूजरमल जी



श्रीमती गुरदेवी (धर्मपत्नी)



म० राजपाल (पुत्र)



म० प्रकाशपाल (पुत्र)



सेठजी का भवन फीरोजपुर (पंजाब) में



अरनिया (बुलन्दशहर) में सेठजी का हाथी पर जलूस



सेठजी के जामाता ला० ब्रजलालजी बैंकर गढदिवाल



सेठ गूजरमलजी (जेल मुक्त होने पर)

एक सत्याग्रही

सेठ गूजरमल जी का परिचय

(लेखक—श्री डा० महावीरसिंह जी)



ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त तथा आर्य-समाज के पुराने सेवक सेठ गूजरमल जी जौहरी लश्कर (ग्वालियर) की प्रसिद्ध फर्म पाल ब्रदर्स के प्रोप्राइटर हैं। आपकी जन्म भूमि गोंदवाल जिला अमृतसर(पञ्जाब)है। आप फीरोजपुर में भी कुछ काल तक निवास करते रहे हैं, जहाँ आपने एक बिल्डिंग 'आर्य भवन' नाम से निर्माण की है। आप आर्यसमाज लश्कर तथा उसके डी० ए० वी० स्कूल की कमेटी और लाहौर के डी० ए० वी० कालिज की मैनेजिंग कमेटी के मान्य सदस्य हैं। आपके परिवार में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती गुरुदेवी के अतिरिक्त ६ पुत्र तथा पुत्र बधुएं और पौत्र हैं। आपका परिवार एक आदर्श आर्य परिवार है। आपका समस्त परिवार ऋषि तथा आर्यसमाज का पूर्ण भक्त है तथा आप समाज के सच्चे सेवक भी हैं। अब भी समय २ पर आप अपने कार्यों से जनता को मुग्ध कर लेते है तथा तन, मन, धन से समाज की सेवा करते रहते हैं। आर्यसमाज लश्कर में आपने अपनी पूज्यनीय माता गंगादेवी के नाम से एक निधि भी स्थापित करा रक्खी है। आपका वैदिकधर्म से प्रेम आपकी उस कविता से प्रगट होता है जो आपने हैदराबाद जाने से पहले २ अप्रैल को फीरोजपुर में अपने स्वागत के उत्तर में सुनाई थी। जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

वसीयत लिख दी ताकि काम से विश्राम पाजाऊँ।
जरूरत आ पड़े तो मैं वहीं पर काम आजाऊँ॥
जो मुझसे हो सकेगी धर्म की खिदमत बजाऊँगा।
रहूँगा जब तलक जिंदा धर्म के गीत गाऊँगा॥
जहां तक हो सकेगा धर्म प्रण पूरा निभाऊँगा।
धर्म की राह में अपना तन-मन धन लगाऊँगा॥
मेरी इच्छा है मेरे सारे बेटे धर्म को पालें।
फरायज को करें पूरा न उनको भूल कर टालें॥
धर्म के काम आना ये मेरी उनको नसीहत है।
यह वैदिकधर्म ही उनके लिये असली वसीयत है॥

हैदराबाद सत्याग्रह में अपूर्व त्याग

हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह आर्यसमाज के जीवन मरण का प्रश्न था। इस अवसर पर आर्य-समाज का अकर्मण्य व्यक्ति भी सत्याग्रह को सफल बनाने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहा था। ऐसे नाजुक समय पर सेठ गूजरमल जी कब चुपचाप बैठ सकते थे। आपने भी इस नगर से गुज़रने वाले तथा वैसे ही आपके परिवार ने भी सत्याग्रही वीरों का तन, मन धन से, सेवा सत्कार करना आरम्भ कर दिया और आर्य सार्वदेशिक सभा देहली तथा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा लाहौर की सेवा में सूचना दे दी थी। जब आपकी आत्मा को स्वागत करने मात्र से सन्तोष न हुआ तो आप स्वयं हैदराबाद सत्याग्रह में जाने के लिए उत्कंठित हो उठे और और सत्याग्रहियों के सेवा सत्कार का कार्य अपनी धर्मपत्नी और अपने सुपुत्र म० राजपाल और म० प्रकाशपाल को सौंप कर १ मार्च को फीरोजपुर को चल दिये।

हैदराबाद जेलों के भयंकर समाचार पढ़कर और जेल अधिकारियों की सख्तियाँ और कठिन कार्य को देखते हुए और उनका सामना करने के लिए आपने



सत्याग्रह करने का निश्चय कर लिया। सेठ जी ने यह समझ लिया था कि मैं हैदराबाद से जिन्दा न लौटूंगा। अत: अपनी कुल सम्पत्ति १२३०००) एक लाख तेईस हजार वसीयत द्वारा अपने पुत्रों के नाम अर्पण कर दी और पाँच हजार रुपया धर्म कार्यों के लिए दान कर दिया गया। इस सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिए अपने भाई ला० महन्तराम को ट्रस्टी नियत करके हैदराबाद जाने का ऐलान कर दिया तथा २२ मार्च को आप और ला० महन्तराम हैदराबाद के मनाने के लिए लाहौर पधारे। परी महल में उत्सव मनाया गया जहां श्रीयुत सत्यार्थी जी ने आपका परिचय कराया और आशीर्वाद देकर विदा किया। २ अप्रैल को फीरोजपुर शहर की आर्यसमाजों की ओर से जलसा हुआ, आपको खुशहाल वीर सेना के जत्थे के साथ विदा करने के लिए सहस्रों नर नारी एकत्रित हुए। फीरोजपुर और गोंदवाल की जनता की ओर से आपको मानपत्र प्रदान किए गए। ला० अनन्तराम जी एम० ए० बार एटला प्रधान आर्यसमाज ने तिलक लगाकर आशीर्वाद दिया तथा विशाल जलूस निकाला गया। तत्पश्चात् आप मोगा, कोटकपूरा, फाजिल्का, मुक्तसर, अबोहर, मान्सा मन्डी, जींद, भटिंडा, रोहतक इत्यादि स्थानों पर प्रचार और धन संग्रह करते हुए देहली पहुँचे। दीवान हाल में जलसा हुआ, फिर आपको ठा० अमरसिंह जी अपने नगर अरनियाँ में ले गए, वहाँ आपका हाथी पर जलूस निकाला गया और प्रीतिभोज हुआ एवं मानपत्र भेंट किया गया। वहाँ से खुरजा, सिकन्दराबाद, अलीगढ़ मथुरा, आगरा प्रचार करते हुए १२ अप्रैल को लश्कर (ग्वालियर) पधारे, यहाँ के स्वागत का वर्णन अकथनीय है। नगर निवासियों ने पुष्पमाला मिठाइयाँ जलपान दुग्धपान से सैकड़ों जगह सत्कार किया एवं मानपत्र प्रदान किए। आपने २५) की थैली खुशहाल वीर सेना के जत्थे को तथा १५) की थैली मेहता सावनमल जी के जत्थे को और ५) के वस्त्र आदि महीपाल प्रचारक को भेंट दिये। तत्पश्चात् झांसी शिवपुरी आर्यसमाज की ओर से आपका बैंड बाजे के साथ जलूस निकला और प्रचार हुआ।

बम्बई में चौपाटी पर विशाल सभा हुई और आपका फोटो लिया गया और आपकी जन्म भूमि गोंदवाल के निवासी मेसेज बाबा प्रद्युम्नसिंह एण्ड सन्स के प्रोप्राइटर बाबा गुरुमुखसिंह जी ने आपके जत्थे को प्रीतिभोज दिया और जत्थे का फोटो लिया गया। २१ अप्रैल को आप शोलापुर पहुँचे, २२ अप्रैल को आप श्रीमान् राजगुरु धुरेन्द्र जी शास्त्री के साथ गुलबर्गा में गिरफ्तार हो गये। आपको दो साल की कड़ी कैद की सजा हुई, जेल अधिकारियों ने आपको अत्यन्त कठिन कार्य करने को दिये। जिनको सहन कर और जेल के नियमों का पालन करते हुए आप सत्याग्रहियों की देखभाल और सेवा सत्कार का कार्य भी करते रहे। भोजन ठीक न मिलने के कारण आपका शरीर दुर्बल होता गया। आपका २५ पौंड वजन कम होगया परन्तु आपने धैर्य को न छोड़ा, जेल अधिकारियों ने यह जान कर कि आपका १५०००) पन्द्रह हजार का जिन्दगी बीमा हो रहा है आपसे विशेष व्यवहार का सम्बन्ध करना चाहा परन्तु आपने उसे स्वीकार न किया। २८ जून को मि० हालेस गुलबर्गा जेल में पधारे उनसे आपकी मुलाकात हुई और आपने २५ पौंड वजन कम होने का जिकर भी डाइरेक्टर जनरल से किया। उस पर आपको ५ जौलाई की रात को डाक्टरी राय में नहाने से वजन कम हो जाने की वजह से ४० सत्याग्रहियों के साथ जेल से मुक्त कर दिया आपने शोलापुर पहुँच कर दुबारा सत्याग्रह करने का विचार प्रकट किया। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की आज्ञा न मिलने पर आप मनमाड होते हुए १५ जौलाई को लश्कर (गवालियर) आगये। आपने आकर यह प्रण किया कि जब तक सत्याग्रह की पूर्ण विजय प्राप्त न होगी तब तक मैं घर पर भी जेल जीवन व्यतीत करूंगा। आपने एक टाट, एक कम्बल, एक तसला रख छोड़ा था।

जमीन पर सोते थे और एक वक्त भोजन करते थे। आपके मकान पर आर्य पुरुषों की भीड़ लगी रहती थी। हैदराबाद में आपके भाई ला० महतराम को जेल अधिकारियों ने बहुत कड़ी सजा दे रखी थी। उनको डंडा बेड़ी लगाकर गर्मी में डाल रखा था। आपने दुबारा हैदराबाद जाने का निश्चय कर लिया था और उनसे मुलाकात करने की इजाजत के लिये सर अकबरहैदरी और जेल अधिकारियों को तार दिये और आपकी धर्मपत्नी ने भी १००) रुपया मासिक देने की प्रतिज्ञा की। अचानक सत्याग्रह रोक दिया गया और डाक्टरी वजू पर सत्याग्रही लौटने शुरू होगये और आपने और आपके परिवार ने जिस तरह हैदराबाद जाने वाले जत्थों का स्वागत सत्कार किया था ऐसे ही वापस आने वाले सत्याग्रहियों का सत्कार भोजन आदि से करना आरम्भ कर दिया। सैकड़ों सत्याग्रही आपके मकान पर भोजन करते रहे। १४ अगस्त को श्रीयुत अजितसिंह जी सत्यार्थी का स्टेशन गवालियर पर स्वागत किया और उनके सम्मान में टी पार्टी दी गई। २१ अगस्त को सातों विजयी डिक्टेटरों का स्वागत स्टेशन पर किया गया और सबसे भेंट हुई। २२ अगस्त को कुंवरसुखलाल व ठा० अमरसिंह जी और २३ अगस्त को लाला महन्तराम जी के जलूस निकाले गये और प्रीतिभोज दिये गये और चांदी के कप और सुनहरी कब्जे की तलवार और मानपत्र भेंट किये गये और आपके घर पर घी के चिरागों और बिजली के कुमकुमों की रोशनी की गई। २५ तारीख को आप अपने जत्थे के साथ पञ्जाब को रवाना हुए अरनियां और फीरोजपुर में आपका शाही स्वागत हुआ तथा गार्ड ऑफ आनर दिया गया। १०००० हजार स्त्री पुरुष एकत्रित हुए और फोटो लिये गये एवं मानपत्र दिये गये, विशाल प्रीतिभोज हुये। इसके अतिरिक्त अमृतसर, गोंदवाल, करतारपुर, मियानी, पठाना, जालन्धर, लुहारवरतापपुरा, कपूरथला, जंडियालागुरु इत्यादि नगरों में आपका स्वागत हुआ। आर्यसमाज गवालियर सिटी की ओर से प्रीतिभोज दिया गया परगना गोहद (गवालियर) में आपने आर्यसमाज स्थापित किया और आपको मानपत्र और कृपाण भेंट हुए।

श्रीमान् लाला गूजरमल जी और उनके परिवार के राजपाल, प्रकाशपाल, यशपाल, वंशपाल, रामपाल, सत्यपाल, ब्रह्मपाल व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती विद्यावती, श्रीमती पार्वतीदेवी आर्यसमाज के अनुपम रत्न हैं, भगवान् आपके परिवार को चिरायु रखें।

आपने इसमें ७ महीने का समय और २६४२) व्यक्तिगत खर्च किया।



आर्य सत्याग्रह आन्दोलन में पंजाब का भाग

[ले०—श्री हितैषी अलावलपुरी सम्पादक "प्रकाश" लाहौर]



एक वर्ष पूर्व की बात है, यही अक्तूबर का महीना था जब सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली निजाम सरकार से उन शिकायतों को दूर करवाने के लिये जो हैदराबाद के आर्यो को रियासत में पूजा, प्रचार तथा नये मन्दिरों को खोलने पर लगी पाबन्दियों के विरुद्ध थीं पत्रव्यवहार कर रही थी और उधर हैदराबाद से आर्यों के एक के अनन्तर दूसरे के वहद के समाचार आरहे थे जिससे आर्य जनता में रोष बढ़ रहा था और वह दिसम्बर के अन्त में होने वाली आर्यन कांग्रेस और उसके निश्चयों की प्रतिज्ञा करने को भी तैय्यार न थी और उत्सुक थी कि शीघ्रातिशीघ्र सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया जाय।

आर्यसमाज लाहौर के उत्सव की घोषणा हुई तो मैंने तजवीज की कि इस वर्ष एक "हैदराबाद कान्फ्रेंस" रखी जाय जिसमें भाग लेने के लिये पंजाब भर के आर्यों को आमन्त्रित किया जाय। मेरी इस तजवीज पर अमल किया गया और अनारकली तथा वच्छोवाली दोनों आर्यसमाजों ने अपने यहां के कार्य क्रम में हैदराबाद सत्याग्रह कान्फ्रेंस को विशेष स्थान दिया। और मेरी इन आँखों ने उस अवसर पर आर्यों के उत्साह और जोश के जो दृश्य देखे उन्हें देख कर उसी समय विश्वास हो गया कि यदि आर्य समाज को हैदराबाद में सत्याग्रह करना पड़ा तो उसकी अवश्य विजय होगी क्योंकि आन की आन में हजारों रुपयों के वादे तो हुये ही नकद भी हजारों ही प्राप्त हुये और कई सौ वालंटियर भी उसी समय भरती हो गये चुनांचे समय ने हमारे विश्वास को सत्य कर दिखाया।

(२)

जूं ही युद्ध का बिगुल बजा पंजाब का आर्य-जगत् उठ बैठा। नेताओं ने उसे बता दिया कि पंजाब आर्यसमाज का गढ़ समझा जाता है अतः हैदराबाद के आर्यों की आंखें पंजाब पर, लगी हुई हैं। आर्य जगत ने यह चेतावनी सुनी और अपनी पुरानी रवायात को बरकरार रखने का विश्वास दिलाया। समय आने पर उसने दिखा दिया कि वह अपने दुःखी भाइयों के लिये क्या कुछ कर सकता है। सबसे पहले जत्थे में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की संस्था गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों ने भाग लेकर सिद्ध कर दिया कि पंजाब के आर्य हैदराबाद के आर्यों के दुःख को अपना दुःख समझते हैं। इसके बाद पंजाब की सभी आर्य प्रमुख संस्थाओं विशेष कर गुरुकुलों, दयानन्द उपदेशक विद्यालय, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, डी० ए० वी० कालेज और स्कूलों के विद्यार्थियों ने अपनी शिक्षा आदि की परवाह न करते हुये इस युद्ध में अपनी आहुति देना प्रथम कर्त्तव्य समझा। नतीजा यह हुआ कि कालेजों के प्रोफेसर, आचार्य, उपदेशक तथा अन्य कार्यकर्ता भी जेल जाने को तैयार हो गये और वे गये। इसी पर बस नहीं, आर्यजगत् के प्रमुख व्यक्ति ला० खुशहालचन्द और महाशय कृष्णजी भी बड़े-बड़े जत्थों के साथ हैदराबाद रियासत से टक्कर लेने गये! पंजाब ने उन्हें जिस समारोह से भेजा वह समारोह शायद ही किसी अन्य अवसर पर देखने में आया हो। महाशय कृष्णजी ने अपने एक मास

दौरे में जहाँ ७५ हजार रुपया धर्म युद्ध के लिये प्राप्त किया वहाँ उनका राजसी ठाठ के साथ स्थान स्थान पर स्वागत भी किया गया और ३-४ सौ मान पत्र भेंट किये गये। उनके लेखों ने पंजाब भर में जो अग्नि प्रचण्ड की थी वह उनके दौरे से एक ज्वाला का रूप धारण कर गई। और नगर नगर और ग्राम ग्राम में सत्याग्रह का ही चर्चा होने लगा। क्या बच्चे, बूढ़े और युवकों को दिन रात यदि कोई धुन थी तो धर्म युद्ध के लिये धन जमा करने की।

(३)

इसका परिणाम क्या हुआ ? आर्य जगत् ने पंजाब से जो आशा लगा रखी थी वह पूरी हुई। १ अक्टूबर ३९ को सार्वदेशिक सभा के वार्षिक अधिवेशन में जब सत्याग्रह का हिसाब पेश हुआ तो ज्ञात हुआ कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के द्वारा आर्य सत्याग्रह समिति को १ लाख ४७ हजार रुपया भेजा गया। इसमें २८ हजार रुपया देहली समाज का शामिल है क्योंकि देहली की समाज आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बंधित है। इसी तरह प्रादेशिक सभा लाहौर की ओर से १४ हजार रुपया भेजा गया। गोया कुल १ लाख इकसठ हजार वह धन अलग रहा जो सीधा भेजा गया अथवा सत्याग्रहियों के स्वागत सत्कार, किराया और भोजन इत्यादि पर व्यय हुआ। वह धन कई लाख होगा। फिर सत्याग्रही देने में भी पंजाब सब सूबों से आगे हो रहा कुल सत्याग्रहियों में ½ सत्याग्रही पंजाब के थे। यदि हैदराबाद के वीर निकाल दिये जांय तो पंजाब के सत्याग्रही आधे से कम न थे।

अपने जीवन की आहुति भी इस यज्ञ में कई पंजाबी युवकों और वृद्धों ने दी। जिन्होंने युद्ध क्षेत्र में वीर गति प्राप्त की उनका बलिदान तो खून की स्याही से हैदराबाद के इतिहास में लिखा जायगा इनके अतिरिक्त कई वीर जो बीमार होकर आये थे एक एक करके अपना सर्वस्व बलिदान कर हमसे बिछुड़ रहे हैं।

सारांश यह कि आर्यसमाज की हैदराबाद सत्याग्रह विजय में पंजाब का सब प्रान्तों से अधिक हाथ है उसने इस संग्राम में अपना जो भाग दिया है वह इस योग्य है कि उस पर गर्व किया जा सके! मैं पंजाब के आर्य जगत् को इसके लिये बधाई देता हूँ।

आर्य सत्याग्रह का परिणाम

[ले०—श्री प० भगवान स्वरूप जी न्याय भूषण सयुक्त मन्त्री आर्य प्रतिनिधि राजस्थान व मालवा अजमेर]

हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह समाप्त होने के बाद कई आर्य बन्धु तथा अन्य सज्जन प्रायः पूँछा करते हैं कि इतने धन व जन का बलिदान करके प्राप्ति क्या हुई है? जो विज्ञप्ति निजाम गवर्नमेंट की ओर से प्रकाशित हुई है उससे वे लोग सन्तुष्ट नहीं, और सत्याग्रह के संचालकों पर आक्षेप करते हुए यह कह दिया करते हैं कि समय से पूर्व बन्द कर दिया गया, कोई परिणाम सन्तोषजनक नहीं निकला।

मेरा ख्याल इसके विपरीत है। मैं समझता हूँ कि जो धन या बलिदान हुआ और कष्ट उठाया गया उसका शुभ परिणाम हमें प्राप्त हो गया। आर्यसमाज घाटे में नहीं है। आर्य सत्याग्रह का जो उद्देश्य था वह पूरा होगया, अतएव उसके सचालकों ने बड़ी बुद्धिमत्ता का कार्य किया। इतना ही नहीं आरम्भ से लेकर अन्त तक संचालन इतनी उत्तमता से होता रहा कि देखने वाले भी दंग रह गये, और मेरी तो यहां तक धारणा है कि हमारी सफलता का बहुत कुछ श्रेय, कौशलपूर्ण युद्ध संचालन नीति को है।

हां तो मैं परिणाम के सम्बन्ध में लिखने चला था। मैं ता० १६ को मनमाड से करीमनगर श्रीमान् शारदा जी को देखने के लिये रवाना हुआ। ता० १७ अगस्त को प्रातःकाल कामारेड्डी स्टेशन पर मोटर में बैठा। कामारेड्डी से ६४ मील की यात्रा मोटर द्वारा करनी था। प्रातःकाल ७ बजे का समय, वर्षा होरही थी और मैं स्टेशन से चलकर मोटर लारी में आ बैठा। गाड़ी खूब भरी हुई थी। वह ७॥ बजे के लगभग चली। बातों बातों में वर्षा के विषय में चर्चा चल पड़ी। यात्रियों में से ही एक ने कहा—'आज आर्य जेल से छूट रहे हैं, और वर्षा शुरू होगई है। लगभग मास डेढ़ मास से वर्षा नहीं थी। जनता त्राहि त्राहि पुकारने लगी थी, उस व्यक्ति का यह कहना था कि प्राय सभी कहने लगे 'हां, भाई बात तो ठीक है, आज उन लोगों के छूटते ही वर्षा होने लगी, अभी तक बूँद नहीं थी, कल तक कड़ाके की धूप थी, रात रात में क्या से क्या होगया।" इसे हिन्दू मुसलमान सबों ने स्वीकार किया।

करीमनगर में १० बजे पहुंचा। ज्ञात हुआ कि शारदा जी अभी छूटकर मेदापल्ली स्टेशन गए हैं। वहां नगर में देखा तो बन्दनवारें लग रही हैं, दुकानें सजी हुई हैं। शारदा जी मोटर में जब बाजार से निकले, स्थान स्थान पर लोगों ने फूल मालाएं पहिनाईं और स्वागत किया।

वहां से जब मैं मोटर द्वारा मेदापल्ली स्टेशन पर पहुंचा जो करीमनगर से २५ मील पर है, तो वहां देखा कि नगर मेदापल्ली से कईसौ आदमी स्टेशन पर श्रीमान् शारदा जी को विदाई देने को उपस्थित हुए हैं। यद्यपि स्टेशन पर पुलिस मौजूद थी इन्स्पेक्टर पुलिस लोगों को मना कर रहे थे कि ये लोग न आयें, परन्तु अपने नेता के दर्शनों को लोग उमड़ रहे थे। अन्त में शारदा जी आगे बढ़े, सब लोगों से मिले और विदा ली।

इसी प्रकार हैदराबाद में आर्यसमाज मन्दिर सुल्तान बाजार में केवल डेढ़ घण्टा पूर्व की सूचना होने पर लगभग डेढ़ हजार आर्य बन्धु एकत्रित हो गए, और वहां पर ध्वजा रोहण, हवन और व्याख्यान हुए। स्टेशन पर हजारों की सख्या में उपस्थित होकर लोगों ने विदाई दी। जय जयकार की गगन

सयुक्त-प्रांत के कतिपय कार्यकर्त्ता



श्री ठा० शूरवीरसिंह जी एडवोकेट बिजनौर



श्री बा० कालीचरण जी मन्त्री



आचार्य विश्वश्रवा



श्री बा० उमाशकर जी वकील



श्री चा० जयदवसिह जी एडवोकेट





श्री रामकृष्ण जी निगम एम ए एल एल बी









श्री पं० शिवदयालु जी





श्री बा० विष्णुस्वरूप जी

अपूर्व काया-पलट

(एक आश्चर्यजनक किन्तु सत्य घटना)

उस वृद्ध ग्वाले की तत्पर सेवा से प्रसन्न हो रत्नागिरी ने उसे अपने महान् योग की केवल छः मात्रायें प्रसाद रूप मे दे दीं। एक दम अपार शक्ति का अधिकारी बन जाने की प्रबल इच्छा ने उसे सभी मात्रायें एक साथ खा लेने को विवश किया। फलस्वरूप स्वयं योगीराज को औषधि के प्रबल वेग को रोकने के लिये अत्यन्त हैरान होना पड़ा और फिर भी जीर्ण वृद्धावस्था में ग्वाले को तीन विवाह करने पड़े और जो दशा हुई उसका वर्णन करना सभ्यता का उल्लंघन करना है। यह समाचार राजा, महाराजा, रसिक, रईस आदि लोगों में बिजली की भांति फैल गया और सबके सब इस गुप्त रसायन, महावाजीकरण के बनाने की विधि जानने के लिये उत्सुक हुए। नवाब बहालपुर के ससुर हाजी हयात मोहम्मद खाँ साहब ने अपनी लगन और सेवा से बाबा जी से यह योग जीत ही लिया। उन्होंने इसे लाहौर के प० ठाकुरदत्त शर्मा को बतलाया। शर्मा जी ने इसे दो अन्य योगों के साथ लिखकर इन तीनों से उत्तम वाजीकरण बतलाने वाले को १०००) नकद इनाम देने की घोषणा की। आज २० साल के लगभग हो गये और यह पुरस्कार कोई प्राप्त नहीं कर सका है। फिर मथुरा के बाबू हरिदास ने इसे "चिकित्सा चन्द्रोदय" मे छपवा दिया। हमने भी इस योग को स्वयं बनाकर सैकड़ों दुबलता, नपुंसकता वीर्यविकार ग्रस्त रोगियों पर बरता और तत्काल गुणकारी पाया अनेक पत्र पत्रिकाओं में छपवा दिया। पाठक भी बनाकर लाभ उठ वें।

योग—शुद्ध बुरादा फौलाद २० तोला, शुद्ध श्वेत, मल्ल १ तोला शुद्ध कपूर १॥ माशा को १ घण्टा देखकर घृतकुमारी में घोंटकर मिट्टी के कूचे में मजबूत बन्द कर ५ सेर कण्डों में फूंके। दुबारा एक तोला हरताल वर्की शुद्ध १॥ माशा कपूर- शुद्ध में, तीसरी बार गन्धक आमलासार शुद्ध १ तोला, कपूर १॥ माशा में, चौथी बार शुद्ध संस्कारित पारद १ तोला, कपूर १॥ माशा को ऊपर की भांति १६ आंच दे। फिर इस को कड़ाही में डालकर बराबर इन्द्रवधू डालदें और नीचे आग जलावें जब इन्द्रवधू जल कर राख हो जावें तो हवा देकर उड़ा दें। बस "अपूर्व शक्तिदाता" योग तैयार है। चार चार चावल सुबह साँय माखन या मलाई से खावें ऊपर मिश्री मिला दूध पीवें।

इसी योग की प्रशंसा में मथुरा के बाबू हरिदास जी लिखते हैं कि इसके सेवन से एक हफ्ते में एक आदमी का वजन ४ पौंड बढ़ गया, दूसरे का चेहरा लाल सुर्ख हो गया। भूपाल के वैद्यराज बालकृष्ण शर्मा ने ६५० रोगियों पर बरता और से अधिक गुणकारी पाया। रत्नाकर के सम्पादक, श्री छोटेलाल जैन आयुर्वेदाचार्य ने गृह चिकित्सा पथ प्रदर्शक में छापा है कि इतना प्रचण्ड शीघ्र गुणकारी योग दूसरा नहीं देखा।

हमारा दावा है केवल ७ दिन सेवन से शरीर में रक्त दौड़ता नजर आवेगा, २१ दिन में चेहरा लाल काश्मीरी सेब की तरह चमकने लगेगा, ४० दिन में नपुंसकता निर्बलता दूर हो जाती है। स्त्रियों के हर प्रकार का प्रदर दूर हो गर्भधारण-शक्ति आती है। जिगर व मैदे की शक्ति बढ़ाकर भूख दूनी करता है। पाचन क्रिया ठीक होती है। कफ, तिल्ली, की खराबी खाँसी, नजला, जुकाम, बदन दुखना, खून का पतलापन, आंखों का पीलापन, कभी कभी चिनगारी से उड़ते दीखना, बार बार थूक गिरना, दमा तथा हर तरह की कमजोरी तुरन्त दूर कर, नवजीवन सञ्चार करता है। योग भलीभांति समझाकर लिखा है। फिर भी यदि आप न बना सकें। तो बनी बनाई १६ आंच दी हुई ४० दिन की ८० मात्रा डाकखर्च सहित ६॥) में हम भेज देंगे। यदि कोई बात समझ में न आवे जवाबी कार्ड डाल कर उत्तर मंगालें।

मंगाने का पता—वैद्यरत्न सत्यदेवजी रूपविलास कम्पनी नं० १४२ कंचौसी इटावा यू० पी०

इस प्रकार कहनी चाहिये कि सब प्रतिनिधि सभाओं में यू० पी० प्रतिनिधि सभा प्रथम संख्या में रही। इसकी व्याख्या इस प्रकार है।

यहां हम इस बात पर विचार करने नहीं बैठे कि सत्याग्रह के जितने केन्द्र थे उन सब पर यू० पी० के केन्द्राध्यक्ष न के बराबर थे तथा अन्य व्यवहार की बातों को भी उपेक्षा दृष्टि से यदि देख लें तब भी चार बातें छिप नहीं सकती।

१—संयुक्तप्रान्त के डिक्टेटर केवल एक राजगुरु जी बने और पंजाब के तीन डिक्टेटर हुए। क्योंकि पंजाब में दो विभाग है दोनों की प्रतिनिधि सभाएं पृथक् पृथक् है अतः वहां के दो डिक्टेटर लिए गए और तीसरे प० बुद्धदेव जी विद्यालंकार। यह सबको विदित है कि धन जन डिक्टेटरों के साथ अधिक गया यदि संयुक्त प्रान्त के द्वितीय डिक्टेटर बा० उमाशंकर जी भी दौरा करके जेल पहुंच गये होते तो पर्याप्त धन और जन उनके साथ गया होता।

२—राजगुरु जी चौथे डिक्टेटर थे। जिस दिन राजगुरु जी डिक्टेटर नियत हुए और जब जेल जाने का दिन था बहुत थोड़ा अन्तर था। इतने कम दिन किसी को न मिले होंगे। राजगुरु जी को यात्रा ही न कर मिली। हमें याद है कि राजगुरु जी जब बरेली आये तब उतरते ही स्टेशन पर उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हारे नगर से एक सहस्र लेकर जाऊंगा मैंने कहा स्वीकार है, पर सायंकाल को आप व्याख्यान दें। किन्तु उनके पास बरेली के लिए चन्द घण्टे थे कहने लगे अभी चला जाऊंगा, ऐसी स्थिति मे भी पाच सौ से अधिक खड़े खड़े मिल गया। प्रायः राजगुरु जी की स्थिति वह रही जैसे नुमायश की ट्रेन कि स्टेशन पर ही दर्शन दर्शन कर जाओ और भेंट चढ़ा जाओ इस अवस्था मे भी राजगुरु जी ने डिक्टेटरों का रिकार्ड बीट किया।

३—प० बुद्धदेव जी विद्यालंकार संयुक्त प्रान्त के रहने वाले और पंजाब मे बहुत दिन रहे इन्होने दोनों प्रान्तो मे दौरा किया और दोनो स्थानो से धन जन प्राप्त किया। पता नहीं टोटल लगाने मे इनकी गणना किधर हुई थी ?

४—प० देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री आचार्य गुरुकुल सिकन्दराबाद जो स्वर्गद्वार तक ही पहुंच पाये शुमार भी किये गए या नहीं ?

यह सब बातें ऐसी है जिन पर विचार न करके नम्बर दा मे डालना उचित नही। प्रान्त के दृष्टि कोण से डिक्टेटर नियत नहीं हुए प्रत्युत प्रतिनिधि सभाओं के दृष्टिकोण से डिक्टेटर नियत हुए। प्रतिनिधि सभाओं के दृष्टिकोण से ही सोचना चाहिए कि किस प्रतिनिधि सभा ने क्या किया उसमें यू० पी० सभा ने प्रधान स्थान प्राप्त किया। और अन्त मे एक शब्द यह भी कहना अनुचित नहीं कि राजगुरु जी से उनके सब सत्याग्रही प्रसन्न रहे।

गुरुकुल महोत्सव और आर्यसमाजों का कर्त्तव्य

गुरुकुल वृन्दावन का महोत्सव इस वर्ष ता० २५ दिसम्बर से २८ दिसम्बर तक मनाया जायगा। दो तीन वर्षों से गुरुकुल के उत्सव के समय जो सहायता प्राप्त होनी चाहिये वह प्राप्त नहीं होती जिसके कारण गुरुकुल के कार्य कर्त्ताओं को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है इसलिये आय बन्धुओं का कर्तव्य है कि वह गरुकुल के महोत्सव को सफल बनाने के लिये अभी से प्रयत्न प्रारम्भ करदें और गुरुकुल को अपने नगर की ओर से एक अच्छी धन राशि भेंट करें। समाजों के अधिकारी तथा सभा सदों को इस दिशा मे विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है कि वह अपने नगरमे गरुकुल सप्ताह मनावे और उसमें गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का प्रचार करें तथा गुरुकुल के लिये पुष्कल धनराशि एकत्रित कर गुरुकुल भिजवाने की कृपा करें। हैदराबाद आर्य सत्याग्रह से आर्य जनता ने इस बात का भली भाँति अनुभव कर लिया है कि जो धन गुरुकुल प्रणाली के लिये जनता की ओर से व्यय किया जारहा है वह सफल हुआ ऐसी अवस्था में प्रत्येक आर्यसमाज का कर्तव्य है कि वह अपने प्रिय गुरुकुल वृन्दावन को जिसने कि अपने सत्याग्रह कार्य से उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाया, पूर्ण आर्थिक सहायता दें और अपने नगर मे गुरकुल की सहायता के निमित्त स्थायी प्रबन्ध करने की योजना बना कर अविलम्ब कार्य मे परिणत करने की कृपा करें। आशा है समस्त महानुभाव मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर गुरुकुल महोत्सव को हर प्रकार से सफल बनाने के लिये पूर्ण सहयोग देकर हमे अनुगृहीत करेंगे।

आपका विनीत कुल सेवक
चेतरामसिंह मुख्याधिष्ठाता

उत्सव-सूचनायें

—आ० स० धामपुर (बिजनौर) का वार्षिक उत्सव १४, १५ तथा १६ नवम्बर को होना निश्चय हुआ है। कुं० सुखलाल जी तथा पं० रामचन्द्रजी देहलवी के पधारने की पूर्ण आशा है।

—कान्तिचन्द्र प्रभाकर उपमंत्री

—आ० स० मनकापुर (गोंडा) का २य वार्षिक उत्सव १६, १७ तथा १८ नवम्बर को होना निश्चित हुआ है। अनेक गरायमान्य व्यक्तियों को निमन्त्रित किया गया है। —मंत्री

—आ० स० गंगोह (सहारनपुर) का वार्षिकोत्सव १५, १६ तथा १७ नवम्बर को समारोह पूर्वक मनाया जायगा। १५ नवम्बर को नगरकीर्तन होगा।

—मंत्री

—आ० स० बांदीकुई का ११ वां वार्षिक उत्सव ११, १२ तथा १३ नवम्बर को समारोह पूर्वक होगा।

—मंत्री

—आ० स० गोरखपुर का उत्सव २३, २४, २५ तथा २६ नवम्बर को अत्यन्त धूमधाम के साथ मनाया जायगा। अनेक उपदेशक महानुभावों को आमंत्रित किया गया है। —मंत्री

—आ० स० लश्कर (ग्वालियर) का वार्षिक उत्सव दीपावली की छुट्टियों में ११, १२, १३ तथा १४ नवम्बर को समारोह से मनाया जायगा। —मंत्री

—आ० स० जयपुर का वार्षिक उत्सव २५, २६, २७ तथा २८ नवम्बर को धूमधाम से होना निश्चित हुआ है। —मंत्री

आर्यसाहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर का
भावी कार्य-क्रम



जब से आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर ने स्वय एक लिमिटेड संस्था होकर अपने को एक आर्यजगत् की सार्वजनिक सस्था का रूप दे दिया है तब से 'मण्डल' ने वैदिक आर्य सिद्धान्तो के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित करके समाज की बड़ी सेवा की है, सत्यार्थप्रकाश, जैसी विशाल पुस्तक को ।) (चार आने) मे कर दिया और लाखो प्रतियां जनता मे फैला दी. ऋषि दयानन्द के अन्य अनेक ग्रन्थ जैसे ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, व्यवहारभानु, पञ्चमहायज्ञविधि आदि ग्रथ भी पूर्व के मूल्यो से तिहाई, चोथाई दामो में प्रस्तुत कर दिये । सब से महत्वपूर्ण कार्य सरल हिन्दी में चारों वेदों के भाष्य पूर्ण करना था जो उसने अपने को लिमिटेड करने के ५ वर्षों के भीतर भीतर कर दिया, और पूर्व के कुछ खंडो के द्वितीय संस्करण हो गये और कुछ के द्वितीय संस्करण छप रहे है, इसके अतिरिक्त अनेक आर्यसमाजों के अधिकारी शुभ चन्तकों ने हमसे आग्रह किया है कि वेदो के सरल धारावाही हिन्दी में ऐसे अनुवाद कर दिये जावें जिन के पढ़ने मे एक रस विषय का अध्ययन होसके, और वे चारों वेदों के भाष्य भी मूल्य मे इतने सुविधा से मिल सकें कि सब ले सके अर्थात् उनका दाम १०), १५) रु० से अधिक न हो, परन्तु अभी मण्डल के सामने तो यह योजना मात्र प्रस्तुत है । मण्डल ने वेद भाष्य को अंग्रेजी भाषा में निकालने की घोषणा भी की थी । बहुत कुछ यत्न भी इस दिशा में होरहा है ।

इधर अनेकों उत्तम सद्भावनाओ और उज्ज्वल लोक सेवा की कामना से प्रेरित होकर आर्य साहित्य मण्डल लि० अजमेर ने 'आर्यमित्र' और भास्कर प्रेस' का ठेका भी लिया परन्तु इस कार्य में मण्डल को बहुत भारी घाटा लगा, इस कारण हमारे बहुत से चिन्तन अन्य उत्तम ध्येय भी होने से रुक गये । द्रव्य के अभाव मे बहुत से कार्य न किये जासके । सत्यार्थ प्रकाश के नये संस्करण प्रकाशित करने में भी विलंब होगया । मोटे अक्षरो का सुन्दर विशाल संस्करण भी सामने है। हमे खेद से कहना पड़ता है कि अभी तक आर्य जनता ने आर्य साहित्य मण्डल जैसी सर्वोपयोगी संस्था को अपनाया ही नहीं । लिमिटेड होने के उपरान्त २ लाख की स्थिर पूँजी में से अभी तक केवल ५००००) रु० के ही हिस्से बिके जो सर्वथा सुरक्षित हैं. यदि ये शेष हिस्से भी आर्य जनता हाथों हाथ ले लेती तो मण्डल के चिन्तत कार्य अभी तक कभी के होगये होते ।

'मण्डल' ने भविष्य मे यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि वह अब अपनी समस्त शक्ति, धन और ध्यान वैदिक साहित्य के प्रकाशन मे ही लगा देगा 'मित्र' और 'भास्कर प्रेस' का ठेके का कार्य इस मास में ही समाप्त हो जावेगा, अब आगे के वर्षों में उसको बहुत से ऐसे कार्य करने हैं जिनसे आर्य जनता का बहुत सा लाभ होना सम्भव है। जिन महत्वपूर्ण कार्यों पर हम आर्य जनता का ध्यान खींचना चाहते हैं। उनमें से कुछ यह हैं—

(१) ब्राह्मण ग्रन्थों का भाषा भाष्य—
वेदभाष्य पूर्ण करने के अनन्तर ब्राह्मण ग्रन्थों के ही सरल हिन्दी अनुवाद निकालने का कार्य हाथ में लेना था, परन्तु वह अभी अधूरा पड़ा है, दर्शनग्रन्थ, स्मृति ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद निकाले हैं, मनुस्मृति का अनुवाद हुआ पड़ा है, छापना शेष है, सबसे

मुख्य कार्य संस्कृत का एक उत्तम सर्वोपयोगी हिन्दी कोष तथा एक **वैदिक हिन्दी कोष** निकालना अत्यंत आवश्यक है, जिससे वेद का अनुशीलन करने वाले केवल कोष के आधार पर वेदमन्त्रों पर नित्य नये नये ढंगों से विचार कर सकें।

वैद्यक ग्रन्थों में **चरक संहिता** का मूल अनुवाद सहित तीन खण्डों में निकल चुका है **सुश्रुत संहिता** लिखी पड़ी है, उसकी बड़ी भारी मांग है। इसका निकालना भी आवश्यक है।

श्रौत सूत्र—वैदिक कर्म काण्ड के भली प्रकार ज्ञान करने के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, **गृह्य सूत्रों** में समस्त संस्कारों की पद्धतियां हैं, इनका अनुशीलन भी अति आवश्यक है, हमारे लक्ष्य मे तो समस्त वैदिक साहित्य का हिन्दी भाषा मे प्रकाश करना है, इसके अतिरिक्त आर्य वैदिक सिद्धान्तों पर उत्तमोत्तम पुस्तकों का प्रकाशन करना आवश्यक है, ऐसे सिद्धान्त विवेचक ग्रन्थों का अभी आर्य साहित्य मे सर्वथा अभाव है। ये सब कार्य बिना द्रव्य के होने असभव हैं क्या आर्य जनता नहीं चाहती कि वैदिक अन्वेषणों सम्बन्धी उच्च काटिका मासिक पत्र हो। परन्तु द्रव्याभाव से उसका निकालना भी कठिन है,

परन्तु आर्य जनता यदि इधर अपना कुछ थोड़ा सा भी कर्तव्य अनुभव करे तो कुछ कठिन नहीं है, 'मण्डल' इस समय आर्य जगत् की सार्वजनिक संस्था है उसको चाहिये कि उसको सब प्रकार से अपनाए उसके लक्ष्यों की पूर्त्ति के लिये उसके सब हिस्से ले लें। १०। १० के हिस्सो को धनी अल्प धनी सभी लेकर इस धर्म पुण्य कार्य मे सहयोग देकर प्रत्येक आर्य अपना कर्त्तव्य पालन कर सकता है। हमे पूर्ण आशा है कि अब आर्य जनता सचेत होकर मण्डल को सब प्रकार से अपनावेगी। भवदीय निवेदक

मथुराप्रसाद शिवहरे मैनेजिंग डाईरेक्टर

आ० सा० मण्डल लि० अजमेर।

कन्या गुरुकुल हाथरस

विशेष महोत्सव

प्रति वर्षों की भाँति इस वर्ष भी कन्या गुरुकुल का वार्षिकोत्सव बड़े दिन की छुट्टियों में २३ दिसम्बर से २६ दिसम्बर १९३९ तक मनाया जायगा। इस उत्सव की विशेष बात यह है कि इस वर्ष कन्या गुरुकुल से कन्यायें डिग्री लेकर स्नातिकायें बनेंगी।

जो सज्जन अपनी कन्याओं को प्रविष्ट कराना चाहें वे १० दिसम्बर तक कार्यालय से पत्र व्यवहार करके निश्चय करलें। ताकि प्रवेश के समय सुविधा रहे। इस वर्ष २५ कन्यायें प्रविष्ट की जावेंगी।

—लक्ष्मीदेवी आचार्या।

श्री० दुर्गाप्रसाद सुपरवाइजिंग डाइरेक्टर आर्यसाहित्य मण्डल ने भगवानदीन आर्यभास्कर प्रेस, राजामण्डी आगरा से छापकर प्रकाशित किया।

सम्मन

नमूना नम्बर १७० [बदस्त अवाम फरोख्त के लि

फार्म इत्तिलानामा हस्ब दफा ११ ऐक्ट जायदाद हाय मकरूजा संयुक्त-प्रांत

हरगाह गनेशीलाल बल्द घनश्यामदास कौम बारासेनी साकिन मडकावली परगना असदपुर जिला बदायूं । ने एक दरख्वास्त हस्ब दफा ४ एक्ट जायदाद हाय मकरूजा पेश की है।

लिहाजा इस तहरीर की रू से हस्ब दफा जिम्नी १ दफा ११ ऐक्ट मजकूर इत्तिला दी जाती है कि उस जायदाद को जिसका ब्योरा नत्थी किये हुये जमीमों मे दर्ज है दरख्वास्त देने वाले ने हस्ब दफा ८ या हकदारों ने हस्ब दफा १० मजकूर को जायदाद बताया है।

अगर कोई शख्स जायदाद मजकूर पर कोई दावा रखता हो तो बादइशाअत से जो इस इश्तिहार के संयुक्त प्रात के गजट मे छपने का तारीख है तीन मास के भोतर अपने हकों के सम्बन्ध में उस हाकिम के आगे अपनी अर्जी पेश करे जिसके हस्ताक्षर नीचे दिये हुए हैं।

जमीमा (क)

कर्जदार के हक मालिकाना आराजी के मुताल्लिक

नम्बर सिलसिलेवार	जिला	नाम जायदाद	मौजा मय नम्बर बदोबस्त व महाल	दर्खास्त देने वाले का मुस्तकिल व काबिल विरासत और काबिल इन्तकाल हकियत का ब्योरा	दर्खास्त देने वाले की हकियत का विस्तार जो रजिस्टर दफ्तर साहब कलक्टर मे दर्ज है	दर्खास्त देने वाले की हक्कियत पर मौजूदा तशखीस मालगुजारी
१	२	३	४	५	६	७

१—बदायू हुलकावा परगना असदपुर पट्टी गनेशीलाल खाता खेवट न० ५ जमीदारी १ बिस्वा १२ कचवानसी १५ ननवानसी १३ तनवानसी मालगुजारी २०)।

२—बदायूं दुबारी खुर्द परगना असदपुर मुहाल गनेशीलाल खाता खेवट नं० १ जमीदारी १७ बिस्वा मिनजुमला २० बिस्वा ९६) रुपया।

३—बदायूं मड़कावली परगना असदपुर मुहाल प्रानसुख खाता खेवट १ जमीदारी १० बिस्वा मिनजुमला २० बिस्वा ५) रुपया।

जमीमा (ख)

कर्जदार की जायदाद जो भूमि सम्बन्धी मालिकान हकों को छोड़कर हस्ब दफा ६० जाब्ता दीवानी सन् १९०८ कुर्क और नीलाम हो सकती है।

सिलसिले का नम्बर	जायदाद की किस्म	दर्खास्त देने वाले की हक्कियत की वसअत (विस्तार)
१	२	३

१—मकान वाके मौजा मड़कावली परगना असदपुर तहसील गुनौर पूरब रास्ता पश्चिम मोतीराम उत्तर रास्ता गली दक्खिन गनेशीलाल। द: अंग्रेजी मुन्सरिम

आवश्यकता

मिर्जापुर अनाथालय के लिये एक सुयोग्य मिडिल पास, सिलाई बूटा कसीदा तथा और दस्तकारी का काम अच्छी तरह जानने वाली अध्यापिका की, जिसकी आयु ४० के लगभग हो और अनाथ विधवाओं पर प्रेम भाव से पूर्ण रूप से शासन कर सके। भोजन तथा स्थान मुफ्त, वेतन योग्यता के अनुसार प्रमाण पत्र आदि सहित अर्जी भेजिये।

मन्त्र अनाथालय,
(४६-४७) मिर्जापुर

महर्षि और उनका आर्य समाज



"वास्तव में स्वामी दयानन्द सरस्वती उन शक्तिशाली व्यक्तियों में हैं, जिन्होंने अर्वाचीन भारत का निर्माण किया है, और उसके नैतिक तथा धार्मिक जीवन के जन्म दाता व अग्रणी हैं। उनका आर्यसमाज स्पष्टतया, निस्सन्दिग्धरूप से हिंदू भारत की संस्थाओं के सुधार और कायाकल्प में सबसे अधिक प्रबल प्रतिनिधि रहा है।

मेरी दृष्टि में वह धार्मिक और सामाजिक सुधारक और कर्मयोगी थे।

स्वामी दयानन्द का उद्देश्य हिंदू समाज और धर्म को अनुप्राणित करना, और भारत की पूर्व संस्कृति और परम्परा के अनुरूप उसका पुनर्निर्माण करना था।

दूसरी ओर भारत मे हमें प्रसिद्ध आर्यसमाजी अत्यन्त प्रभावशाली नेता भी मिलते हैं। लगन में, संगठित कार्य की क्षमता मे, गहनता और दृढ़ता में आर्य समाज किसी से नीचे नहीं हैं। आर्यसमाज एक स्वदेशी और चेतनशील सृष्टि है।

ईश्वर करे आर्यसमाज, जिसकी स्थापना स्वामी दयानन्द ने की, उनका योग्य अनुगामी हो और हमारी प्यारी मातृभूमि भारत में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान का निमित्त हो।

नेताजी श्री सुभाषचन्द्र वसु





मूल्य एक प्रति
आठ आना ।।)

सम्पादक – पं० धर्मपाल विद्यालङ्कार
स० सम्पादक—गोपालदत्त जोशी विद्याभास्कर

* ओ३म् *

आर्यमित्र

का

ऋष्यंक

वर्ष ५१ | दीपावली, ता० २८ अक्टूबर सं० २००५ | अङ्क ४२-४३

❀ मंगल कामना ❀

जो न हटा मुख फेर, बढ़ा जीवन भर आगे।
जिसका साहस देख विघ्न, भय, संकट भागे।
सबल सत्य की हार, अनृत की जीत न होगी।
ऐसे प्रबल विचार सहित विचरा जो योगी।
उस दयानन्द मुनिराज का प्रकृत पाठ जनता पढ़े।
प्रभु शङ्कर आर्यसमाज का, वैदिक बल गौरव बढ़े

नाथूराम "शङ्कर"

महर्षि दयानंद के प्रति
कुछ प्रमुख नेताओं की श्रद्धांजलियाँ

महात्मा गांधी—



'स्वामी दयानन्द ने हमारे लिये जो अनेकों बहुमूल्य वसीयत छोड़ी हैं उनमें से अस्पृश्यता के विरुद्ध असन्दिग्ध घोषणा भी एक है।"

श्री. अरविन्द घोषः—

वह ईश्वर की सृष्टि का एक सेनानी, प्रकाश का एक अप्रतिम सैनिक मानव समाज और संस्थाओं का शिल्पकार, आत्मा के मार्ग में प्राकृतिक बाधाओं का साहसी और कर्कश विजेता था। आध्यात्मिक व्यावहारिकता का प्रधान चरित्र है जो मेरे समक्ष चित्रित होता है। इन दो शब्दों का समन्वय ही, जो अधिकार हमारी कल्पना में इतने अधिक विलग हैं, मुझे दयानन्द की परिभाषा ज्ञात होती है। यही वह व्यक्तित्व था, जिसकी आत्मा में ईश्वर का निवास था जिसकी दृष्टि में कल्पना थी और जिसके हाथों में उस कल्पना के अनुरूप मूर्त बनाने की शक्ति थी।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर—



'मेरा नमस्कार है गुरुवर दयानन्द को, जिनकी अन्तर्भेदिनी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में एकता और सत्य का अन्वेषण किया, जिनके मस्तिष्क ने भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग को स्वच्छता से ग्रहण किया—भारत को जिनका आह्वान अविवेक और अविद्या के प्रमाद से सत्य और पवित्रता के जीवन में जाग्रत होने का आवाहन है।"

सर सैयद अहमद खाँ—

(अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के संस्थापक)

"स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुगामी उन्हें देवता मानते हैं और वास्तव में वह इसके योग्य थे। उन्होंने एक ही प्रकाशमान, निराकार प्रभु की पूजा सिखाई और अन्य

किसी का नहीं। हम स्वर्गीय स्वामीजी के सुपरिचित थे और सदा ही उनका अत्यंत सम्मान करते थे। वह इतने विद्वान् और उत्तम मनुष्य थे कि प्रत्येक धर्म के अनुगामियों के आदर के पात्र थे। समस्त हिंदुस्तान में एक भी आदमी उनकी कोटि का इस समय नहीं मिल सकता। उनकी मृत्यु पर शोक करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है क्योंकि वह एक अप्रतिम व्यक्ति थे।"

++++++

जहूर बख्श—

ऋषि दयानन्द के दैवी जीवन में ऐसे अनेक महान गुण समान रूप से विकसित हुए हैं कि मैं अपरिहार्य रूप से उनकी ओर आकृष्ट हो गया हूँ। कभी २ लोग पुराण, कुरान और बाइबिल की समालोचना करने के कारण उनकी निन्दा करते हैं और उन्हें बुरा समझते हैं, परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि उन्होंने दूसरे धर्मों के प्रति घृणा कहाँ प्रदर्शित की है। कुछ धार्मिक विश्वास और रूढ़ियों का खंडन उनके विचार और मत स्वातन्त्र्य के सुन्दर उदाहरण हैं। विचार स्वातन्त्र्य भयभीत होने की वस्तु नहीं, इसके द्वारा ही वास्तविक उन्नति होती है। दूसरों की समालोचना से संकुचित होना कायरता है। यदि ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में कुछ धार्मिक विश्वासों का खंडन किया तो उन्होंने उचित ही किया। दूसरे धर्म के अनुयायियों को इससे विचलित नहीं होना चाहिए। उन बातों पर निष्पक्ष रूप से विचार करना उनका कर्त्तव्य है और ऋषि की सदिच्छा से प्रेरित आलोचना के प्रकाश में उनको सुधार कर लेना चाहिए। यह उनके लिए उपयोगी होगा। अतः ऋषि दयानन्द का विचार स्वातन्त्र्य प्रशंसनीय है। उससे संसार का उपकार हो सकता है। क्या यह गुण सम्माननीय नहीं?

ऋषि दयानन्द विश्वमित्र थे, उनका प्रेम सार्वभौम था। उनके उदार हृदय में सबके प्रति, चाहे वह आर्य, मुस्लिम, जैन, ईसाई, सनातनी कोई भी हों, समान प्रेम था। उनके विश्व प्रेम की परिधि से बाहर कोई नहीं था।

++++

लाला लाजपतराय—

पँजाब केसरी ने इन शब्दों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है—

"दिग्विजयी शंकर के उपरान्त प्रथम बार एक ऐसी उत्तम कोटि के गुरु का प्रादुर्भाव हुआ जो पैगम्बरी के आसन के योग्य था और जो अन्य गुरुओं के मध्य इस प्रकार देदीप्यमान था जैसे चन्द्र और तारागण के मध्य सूर्य।

+ ++

मि० ए० ओ० ह्यूम—

इंडियन नेशनल कांग्रेस के संस्थापक—

यह सबको स्वीकार करना पड़ेगा कि स्वामी दयानन्द एक महान और पुण्यात्मा व्यक्ति थे तथा हमारे प्रिय देश के कीर्ति स्तम्भ थे और सबको यह अनुभव होगा कि उनको खो कर भारत को एक महा शोचनीय हानि हुई।"

++++

डा० एनी बेसेंट –

स्वामी दयानन्द प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने 'भारत भारतीयों के लिए है' की घोषणा की।"

++++

रोमें रोलां—

प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक और दार्शनिक ने लिखा है –

"दयानन्द सरस्वती का व्यक्तित्व उत्तम कोटि का था। इस सिंहमय व्यक्ति के विषय में योरोप का भारत पर विचार करते समय ध्यान रखना ही पड़ेगा, क्योंकि वह एक विरल संघात था नेतृत्व की प्रतिभा से संयुक्त एक कर्मशील विचारक था दयानन्द ने भारत को सुप्तप्रायः देह को अपना रक्त, अपना तेज, अपना निश्चय प्रदान किया। उनके शब्द पराक्रम के बल से गूँज उठे। दयानन्द अस्पृश्यता के घृणित अन्याय को कदापि सहन नहीं कर सकते थे

दयानन्द नारी जाति की शोचनीय स्थिति सुधारने में भी उतने ही उदार और साहसी थे। वह संन्यासी नेता, मानव समाज के उद्धारक थे। वास्तव में भारत के इस पुनर्जन्म और जागृति में उनकी ही सबसे अधिक प्रबल शक्ति थी। राष्ट्रीय संगठन और पुनर्निर्माण के वह सबसे प्रचण्ड प्रवक्ता थे। मुझे प्रतीत होता है कि उन्होंने ही चौकसी की।

++++

आर्य समाज !

(श्री हरिशङ्कर शर्मा)

—१—

ऋषि दयानन्द ने तुझको जन्म दिया है
उस परम तपस्वी का बल पाय जिया है
तूने विश्रुत वैदिक विभूति अपनाई
दे-देकर बल बलिदान प्रतिष्ठा पाई

—२—

तू वेदामृत का पान किया करता है
गत गौरव पर अभिमान किया करता है
कर सभा सब की पुण्य लिया करता है
जग को सुन्दर उपदेश दिया करता है

—३—

तूने अब तक अगणित अनाथ अपनाए
जाने कितने मरतों के प्राण बचाए
तूने जन-जन में समता-भाव प्रचारा
अबलाओं को बल दे; विवेक विस्तारा

—४—

महिलाओं का सम्मान बढ़ाया तूने
अज्ञों को अक्षर-ज्ञान कराया तूने
पतितों को प्रेम-प्रसार उठाया तूने
"गुरुडम' का दुर्गम दुर्ग गिराया तूने

—५—

तूने सद्शिक्षा का महत्त्व समझाया
खोले गुरुकुल कालेज सदा यश पाया
पर अब तो तू कुछ देता शिथिल दिखाई
क्यों ऐसी प्रगति-हीनता तुझमें आई

—६—

उठ-उठ, कर्त्तव्य कर्म्म में शक्ति लगादे
सोये समाज को जगकर स्वयम् जगादे
शिथिलों को कर्म्म-केसरी पुनः बनादे
मृतकों को संजीवनि श्रुति—सुधा पिलादे

—७—

बापू के तप ने देश स्वतन्त्र बनाया
फिर से स्वराज्य का दिव्य दिनेश दिखाया
वह पराधीनता-पाश कट गया सारा
अब तो अपने पर है अधिकार हमारा

—८—

सामाजिक दोषों से यह देश भरा है
नैतिकता का अनुपम आदर्श गिरा है
सद्भावहीन सब लोग स्वार्थ में रत हैं
फिर शान्ति कहाँ, सब भ्रान्त और श्री हत हैं

—९—

आचार भ्रष्टता का भ्रम भूत खड़ा है
छल-छद्मवाद का अक्खड़ ऊत अड़ा है
रिश्वत-रमणी हँस हँस किलकार रही है
निज मित्रों को दे द्रव्य दुलार रही है

—१०—

सर्वत्र 'सिफ़ारिश की बोली तूती है
योग्यता इसी से जाती नित कूती है
अपनाये जाते बस बिरादरी वाले
या मित्र, सगे-सम्बन्धी: जाते पाले

—११—

समता का मर्दन, मान किया जाता है
मादकता को सम्मान दिया जाता है
अस्पृश्य भाव का, भाव चढ़ा जाता है
दुष्कर्म धर्म्म के शीश मढ़ा जाता है

—१२—

मत-पन्थों को ही धर्म्म समझने वाले
हैं सत्य मार्ग को भूले, भोले-भाले
तू समझादे, वैदिक विधि मानवता है
दुर्भाव, दम्भ, दुर्मति दुर्दानवता है



ऋषि दयानन्द का दिग्विजय



(माननीय श्रीघनश्याम सिंह गुप्त, अध्यक्ष धारा सभा मध्यप्रान्त व बरार)

हमारी इस भारत भूमि ने समय - समय पर जिन महान् आत्माओं को जन्म दिया उनमें ऋषि दयानन्द का एक प्रमुख स्थान है। इतिहास बतावेगा कि ऋषि दयानन्द भारत के उद्धारकों में से एक प्रमुख हुए हैं जिनकी तुलना में बहुत थोड़ी विभूतियां उतरेंगी। ऋषि दयानन्द का कार्य उस समय हुआ जब कि उनके बताए हुए मार्ग में चलना ही बुरा समझा जाता था। भारत की कुरीतियों को उन्होंने स्पष्ट रूप से उस जमाने में देखा जब कि सबकी आंख बन्द थीं और जब हिंदू समाज उन दुर्गुणों को ही गुण समझता रहा। उन्होंने अपनी आवाज़ भी तब बुलन्द की जब कि कोई सुनने को भी तैयार नहीं थे और जबकि ऋषि को उन बातों को निर्भीकता से बताने में वाहवाही नहीं मिलती थी। आज हम देखते हैं जिन बातों का ऋषि ने प्रचार किया उनको भारतवर्ष प्रायः अक्षरशः मानने को तैयार है। इस प्रकार ऋषि का दिग्विजय सम्पूर्ण हो गया है, जैसा कि इतने थोड़े काल में और किसी दूसरे का होना इतिहास कदाचित नहीं बताता। आर्यसमाज एक जीती जागती धार्मिक और सामाजिक संस्था है और संस्था के रूप में तत्कालीन राजनीतिक आंदोलनों में (विशेष अवस्थाओं को छोड़ कर) उसने भाग नहीं लिया और लेना भी नहीं चाहिए। परन्तु इस सम्बन्ध में मैं अपने आर्यसमाजी मित्रों से अनुरोध करूंगा कि हमारी राष्ट्रीय राजनैतिक संस्था जो कांग्रेस है उसमें व्यक्तिगत रूप से आर्यसमाजियों को सम्मिलित होना चाहिये। अब दासता छूटने के बाद भारत के कर्णधारों में निर्माण का समय आया है और उसमें ऋषि की शिक्षा और मनोवृत्ति का उचित प्रभाव और स्थान न हो यह भारत के लिये दुर्भाग्य का विषय होगा। इस लिए मेरा अनुरोध है कि हम सब अपनी एक मात्र राजनैतिक राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस में जावें और राष्ट्र की निस्वार्थ सेवा करें, जिस प्रकार हमने आर्यसमाज के प्लेटफार्म से धार्मिक, सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी सेवायें की हैं और कर रहे हैं।



—१३—

है आज हमारा राज्य, हमारा बल है
यह बल नित बढ़ता रहे, सुदृढ़ सबल है
आत्मा, मन और शरीर बलिष्ठ बनादे
मानवता का सच्चा आदर्श सिखादे

—१४—

सब दोषों का संहार शीघ्र ही करदे
मानवता में सुख, शान्ति, प्रेम, नय भरदे
तू त्याग तपस्या को फिर से अपना ले
अपनी खोई निधि एक बार पुनि पाले

—१५—

उठ समय यही है, फिर से ज्योति जगादे
भारत में पुनि पहला सा ही युग लादे
सर्वत्र अहिंसा सत्य धर्म की जय हो
सब बनें धीर धर्मज्ञ पाप का क्षय हो



कतिपय गण्यमान्य नेताओं के सन्देश तथा श्रद्धांजलि

मानिनय श्री पुरषोत्तमदास जी टन्डन

(अध्यक्ष प्रान्तीय धारा सभा)



'आर्य मित्र' का जो विशेषांक दीपावली के अवसर पर निकलने वाला है उसके लिए मेरी हार्दिक शुभ कामना।

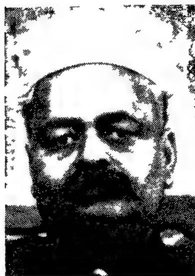
'आर्य मित्र' देश की और समाज की आवश्यकता के अनुरूप अपने को उपयोगी बनावे और समाज का तल ऊँचा करने में सहायक हो यह मेरी कामना है।

पुरुषोत्तमदास टण्डन
(अध्यक्ष प्रा० असम्बली)

✦✦✦✦

माननीय श्री गोविन्द बल्लभ जी पन्त

(प्रधान मन्त्री, युक्त प्रान्त)



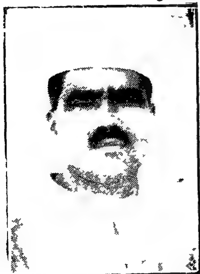
मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि "आर्य मित्र" स्वामी दयानन्द जी की जयन्ती के अवसर पर ऋषि अङ्क निकाल रहा है।

स्वामी दयानन्द जी ने देश व समाज की मानसिक व बौद्धिक उन्नति के लिये जो कुछ किया है उसके लिये हमारा देश सदा ऋणी रहेगा।

मुझे आशा है कि "आर्य मित्र" स्वामी जी के सिद्धान्तों के अनुसार आज की परिस्थिति में देश की समस्याओं को सुलझाने में सहायक होगा।

गोविन्द बल्लभ पन्त
(प्रधान मन्त्री)

मानतीय श्री मोहनलाल सक्सेना
मन्त्री पुनर्वास विभाग भारत सरकार



यह जानकर हर्ष हुआ कि ऋषि दयानन्द के निर्माण दिन के अवसर पर ऋषि अंक निकलने जा रहा है। मैं आशा करता हूँ की स्वामी जी ने जो सादा जीवन और उच्च विचार का आदर्श हमारे सामने रखा है उसको हम अपनायेंगे। स्वामी जी ने जो देश में सामाजिक और धार्मिक जागृति पैदा की उसके लिये हम सदा उनके ऋणी रहेंगे।

मोहनलाल सक्सेना

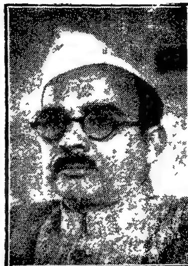
✦✦ ✦

मुझे हर्ष है कि आगामी दीपावली के अवसर पर आप "आर्य मित्र" का ऋषि अंक निकाल रहे हैं।

महर्षि दयानन्द इस युग के उन महापुरुषों में से थे जो संसार में मनुष्य जाति को ऊंचा उठाने के लिए जन्म लेते हैं। महर्षि दयानन्द ने हमारे देशवासियों को निर्भय, उदार और सत्य के पथ पर चलना सिखाया है। वे सत्य के सच्चे पुजारी थे। उनके आदर्शों को देश के कोने कोने में पहुँचाना हमारा प्रत्येक का कर्तव्य है।

जगनप्रसाद रावत
सभा सचिव।

मानतीय श्री केशवदेव मालवीय
(विकास मन्त्री युक्त प्रान्त)



ऋषि दयानन्द हमारे देश की उन विभूतियों में से हैं जिन्होंने अपना जीवन समाज सेवा में ही बिता कर अपनी सेवा की स्मृति छोड़कर हमारे बीच नहीं रहे। उन्होंने समाज सेवा का एक आदर्श सामने रख कर देशोन्नति में जो कार्य किया है देश के सभी लोग उससे परिचित हैं। उनकी पुण्य स्मृति में 'आर्य मित्र" अपना एक विशेषांक दिवाली के अवसर पर निकालने जा रहा है। मुझे प्रसन्नता है कि पत्र ऋषि के आदर्शों को समक्ष रखकर समाज की उन्नति में अग्रसर होगा। आशा है पत्र समाजिक बुराइयों को दूर करने में सचेष्ट रहेगा।

केशवदेव मालवीय

✦✦✦✦

मानतीय श्री आत्माराम गोविंद खेर
मन्त्री स्वायत शासन विभाग

—मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की पुण्य स्मृति में दीपावली के अवसर पर आर्यमित्र का ऋष्यंक निकलने जा रहा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का

पदार्पण ऐसे युग में हुआ था जब भारतवर्ष अपनी महान् पतितावस्था को प्राप्त हो चुका था। राजनैतिक दासता के साथ साथ, हमारा सामाजिक, धार्मिक एव सास्कृतिक पतन चरमावस्था को पहुच चुका था। उन्होंने अपने बाल ब्रह्मचर्य कठिन तप, और प्रकाड पाडित्यप्रतिभा से देश को उस गर्त से निकाला और आधुनिक युग में सर्वप्रथम स्वराज्य अथवा राजनैतिक स्वतन्त्रता का महत्त्व अपने सुविख्यात ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' में दर्शाया। देश में सच्ची राष्ट्रीयता का प्रसार, विद्या प्रचार, सामाजिक सुधार तथा चरित्र निर्माण, इन सबमें ऋषि दयानन्द का प्रमुख हाथ रहा है उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने जो लोकोपयोगी कार्य किये हैं वे सर्वथा सराहनीय हैं। आशा है अब स्वतन्त्रता के इस युग में, आर्य समाज भारतवर्ष को एक आदर्श राष्ट्र बनाने में प्रगतिशील होगा। जिससे हम पुन मानवता के कल्याण के लिये उद्धार का पथप्रदर्शन कर सके।

आत्माराम गोविन्द खेर

अभिनंदन

[ले०—लक्ष्मी प्रसाद द्विवेदी 'चन्द्र' विशारद]

दीपावलि ! का अभिनन्दन है।
जगी भवनि है, जगा नगर है,
जगा आज जन जन का मन है।
शुभागमन के पावन पथ पर,
जगमग नव क्रीड़ा क्रन्दन है।
दीपावलि ! का अभिनन्दन है।
जगी ज्योति है, जगा पवन है,
जगा आज दीपक का तन है।
दीपित दिशि के नूतन पथ पर,
जगा सुभग कानन नन्दन है।
दीपावलि ! का अभिनन्दन है।
जगी प्रीति है, जगा मदन है,
जगा आज उर में कम्पन है।
नमित शीश से शोभित पथ पर,
आर्य देव ! का पद वन्दन है।
दीपावली ! का अभिनन्दन है।

माननीय श्री गिरधारी लाल जी
(मन्त्री आबकारी विभाग)



मुझे प्रसन्नता है कि 'आर्यमित्र' महर्षि दयानन्द की पुण्य स्मृति में दीपावली पर्व के सुअवसर पर अपना ऋष्यंक प्रकाशित कर रहा है। स्वामी जी ने भारतीय संस्कृति की रक्षा कर राष्ट्र की रक्षा की जिससे उन्होंने राष्ट्र को न केवल विनाश के गर्त से बचाया बल्कि लाखों गिरे हुओं को उबारा। श्री दयानन्द जी वर्णाश्रम धर्म को केवल कर्मानुसार मानते थे, संस्कारों को आवश्यक समझते थे, और किसी जाति को अछूत नहीं मानते थे। भारत उनके जीवन काल में गुलाम था परन्तु आज भारत स्वतन्त्र है। इसलिए हमें समस्त सामाजिक कुरीतियों, बधनों तथा भेदभाव को त्याग कर महर्षि दयानन्द के आदर्शों को जीवित रखने का यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए। मेरे हृदय में दयानन्द जी के लिए अत्यधिक श्रद्धा है और मैं इस सुअवसर पर उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

गिरधारी लाल

ऋषि दयानन्द

(ले०—श्री अलगूराय शास्त्री एम. एल. ए.)

दीपावली का महान् पर्व आ गया। वैदिक धर्म के अद्भुत प्रचारक महर्षि दयानन्द को इसी पर्व में निधन प्राप्त हुआ था। लोग अपने घरों में जगमगाते दीप जला रहे थे, उधर उनका शाश्वत प्रकाश लुट रहा था। पर वे तब इस भारी क्षति को अपने नन्हें उजाले में देख नहीं पा रहे थे।

अपने सत्यार्थ प्रकाश से दयानन्द ने जिस दिव्य ज्योति का निर्भीक प्रसार किया वह दिन-दिन अधिक चमकती जायेगी। नवोदित तारक प्रारम्भ में मन्द प्रकाश देता है, किन्तु धीरे-धीरे उसकी ज्योति टिकाऊ हो जाती है और कारी अँधियारी में वह सूर्योदय तक आकाश मण्डल को जगमग करता रहता है।

१८७४ से १८८३ तक कुल १० वर्ष के स्वल्प समय में उन्नीसवीं शताब्दी के उस अलौकिक वैदिक आचार्य ने जो महान् कार्य किये उनका सिंहावलोकन कर कौन कृतज्ञता की भावना रखने वाला चकित न होगा।

आश्चर्य! कि उस तपस्वी वीर त्यागी एवं दिव्य दृष्टा ने ऐसे विकट समय में नितान्त अकेले इतना किया।

आज का भारत, हमारी आज की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आर्थिक भावनायें निस्सन्देह दयानन्द की दैवी प्रेरणाओं का परिपाक हैं। जो यह भारत का स्वाधीन प्रासाद सहसा हमारे सामने उठ खड़ा हुआ है, उसकी दागबेल दयानन्द ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में डाली थी। Siteplan अथवा मानचित्र तय्यार कर दिया था। उसी चित्रके अनुरूप इस महान् राष्ट्र के प्रासाद की नींव पड़ी थी। आज यह उस नींव पर क्रमशः भर ऊपर उठी हुई दीवाल के ऊपर निर्मित प्रासाद है जिसमें भारतीय जन समाज गौरव के साथ स्वतन्त्रता की सांस ले रहा है।

(१) स्त्रियों को शिक्षा को उन्हें पुरुष के समकक्ष अधिकार मिलें यही नहीं—"तेभ्यो माता गरीयसी; मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्य देवो भव"

लेखक

के वचनों के अनुसार माता एवं पिता में माता की ही पदवी बड़ी है। उसी का स्थान बड़ा है। "आत्मा हि दारा सर्वेषां दारसंग्रहकारिणाम्" विवाहित जोड़ी में स्त्री आत्मा है और पुरुष शरीर। ये आर्ष शिक्षायें महर्षि दयानन्द ने तब दीं जब भारत में स्त्रियें पाव की जूती समझी जाती थीं। स्त्रियों की शिक्षा के लिये कन्या

गुरुकुलों का आरम्भ हुआ। उनके सम्बन्ध में क्रांतिकारी विचार मन्थन आरम्भ हुआ। दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में अपनी पैनी नुकीली लेखनी का जो चमत्कारी प्रयोग किया उससे स्त्रियों के सम्बन्ध में भारत यकायक चौंक पड़ा और आज तो भारत ही है जिसके राजदूत, गवनर आदि महिला वर्ग में से दिखाई पड़ते हैं। जिस महर्षि ने यह सब किया था आज वह उसके रूप को देख तो नहीं रहा है, किंतु क्या कृतज्ञ मानव यह कह न उठेगा कि "महिलाओं को गर्त से उठा कर महान् सम्मानित पदों पर खड़ा करने वाला ऋषि दयानंद था?"

(२) अछूत तो थे ही अछूत—शूद्रों एवं अछूतों को "समानी प्रपा सह वोऽन्नभाग," "सं गच्छध्वं सं वदध्वम्" आदि के महा मंत्र सुना कर "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्" के कुविचार मिटा कर जिसने समाज में समान मानवाधिकार दिलाये वह कौन था? वही दयानन्द! वही दयानन्द जिसकी दिव्य दृष्टि ने निर्भ्रान्त रूप से सत्यों पर प्रकाश डाला है।

(३) स्वदेशी का प्रचार।

(४) देश में कला कौशल का विस्तार।

(५) अपने देश में अपना प्रजातंत्रीय शासन।

(६) बालक बालिकाओं की शिक्षा का राजकीय प्रबन्ध—गुरु कुल वास, सब का समान रूप से लालन पालन एवं शिक्षण, यह सब बातें ऋषि दयानन्द की क्रान्तिकारी राजनीतिक, सामाजिक दृष्टियों की द्योतक हैं।

श्यामजी कृष्णजी वर्मा को जर्मनी भेजा कि उद्योग धन्धों के यान्त्रिक रूप का प्रचार भारत में भी हो—विदेशों पर तयार माल के लिये भारत निर्भर न हो। शासन का रूप प्रजातन्त्रीय हो क्योंकि—"राष्ट्री विशं घातुकः"—निरंकुश राजा प्रजा का घातक होता है। शासन स्वदेशीय हो क्योंकि "माता जैसा विदेशी शासन भी स्वदेशी शासन की समता नहीं कर सकता।" यह दयानन्द की दी हुई दृष्टिये हैं।

दयानन्द ने हमें अपना राज दिया, अपना समाज दिया, अपनी शिक्षा दी अपनी व्यवस्था दी परन्तु सब से बढ़कर उन्होंने हमें वैदिक श्रुतियों का जगमगाता दीपक दिया कि सघन अंधेरे में भी हम पथ-भ्रष्ट न हो पावें। अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य बोध के लिये हम श्रुतियों के विधान आदेश-विधि निषेध को देखें—उनमें जो विहित है करें, वर्जित है त्याग दें। 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ'—क्या करें क्या नहीं, इस सम्बन्ध में जिस परमात्मतत्व से ये शास्त्र विधि निषेध वाक्यपुंज वैदिक श्रुतियें प्रकटीं उस परमात्मा की आज्ञा में चलना श्रेयस्कर है और इस कारण उन शास्त्रों को ही कार्य अकार्य के विवेक के लिये देखना चाहिये।

भविष्य के लिये ऋक्, यजु, साम, अथर्व के दीप-चतुष्टय हमारे मन मन्दिर में जला कर वह महर्षि दीपावली में इस पुण्यपर्व में हमें छोड़ चला था। यह पर्व हमारे मन मन्दिरों को वैदिक प्रदीपों से सदा प्रकाशित रखे, आज सत्यार्थ प्रकाश के प्रणेता आचार्य दयानन्द की पुण्य स्मृति में नत मस्तक हों और उनकी प्रेरणाओं को कार्यान्वित करने का व्रत लें ताकि "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"—की चिरकृत प्रतिज्ञा पूरी कर गुरु ऋण से उऋण हो पावें।



—जहां जितने मनुष्यादि के समुदाय अधिक होते हैं, वहां उतनाही दुर्गन्ध भी अधिक होता है। वह ईश्वर की सृष्टि से नहीं, किंतु मनुष्यादि प्राणियों के निमित्त से ही उत्पन्न होता है, क्योंकि हस्ति आदि के समुदायों को मनुष्य अपने ही सुख के लिये इकट्ठा करते हैं, इससे उन पशुओं से भी जो अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होता है, सो मनुष्यों के ही सुख की इच्छा से होता है। इससे क्या आया कि जब वायु और वृष्टि जल को बिगाड़ने वाला सब दुर्गन्ध मनुष्यों के ही निमित्त से उत्पन्न होता है तो उसका निवारण करना भी उनको योग्य है।

—ऋषि दयानन्द



स्वामीजी का साहस



(ले०—श्री रामगुरु धुरेन्द्र शास्त्री प्रधान सभा)

यह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सिद्धान्त है कि सत्य, एवं साहस का आश्रय लेने वाला सुगमता से प्राप्तव्य स्थान को पहुँच सकता है।

जो व्यक्ति शरीर रूपी नौका में सत्य एवं साहस के चप्पू लगा लेगा, वह संसार-सागर को पार करने में सर्वथा समर्थ हो जावेगा और देव दुर्लभ देह में सत्य एवं साहस के (पक्षी के समान) पंख द्वय लगा लेगा, वह औन्नत्य शिखरशिखरारोहण में सर्वथा सफल प्रयास प्रतीत होगा। उद्यमी सत्याश्रयी एवं साहसी व्यक्ति के दुश्मन के दुर्ग शीघ्र ही ध्वस्त हो जाता है। वह कष्ट साध्य कार्य को सिद्ध करने में सदा सफल रहता है।

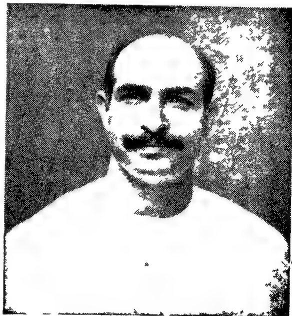
महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज की जीवनी के पढ़ने से भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि उनका जीवन इन सद्गुणों से नितान्त प्रभावित था। इन गुणद्वय से उनका जीवन सदा ओतप्रोत था। वे सत्य एवं साहस के सहारे ही अपने समस्त कार्यों को निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न करने में समर्थ होते थे।

यद्यपि '—अदीनाम शरदः शतम्" यह वेद का आदर्श है परन्तु कभी कभी केवल वाग्वीरत्व मनुष्य समाज को दुःख के गहरे गर्त में ऐसा गिरा देता है कि चिरकाल तक उससे निकलना कष्ट साध्य हो जाता है केवल वाग्वीर नर सदा निराशा नर्क में ही पड़ा रहता है, आपदायें उसे परेशान किये रहती हैं। और चोट खाये हुये सर्प की तरह वह व्याकुल रहता है।

सत्य एवं साहस के सहारे से ही पुरुष विपत्त पक्ष प्रत्याख्यान, किंकर्तव्यविमूढ कलंक पंकप्रक्षालन और निन्दनीया नास्तिकता को नितान्त निर्मूल करने योग्य बन सकता है।

कविरत्न प० प्रकाशचन्द्र जी के शब्दों में —

विनय विवेक ब्रह्मचर्य वेद विज्ञता से,
विद्वद्वरों में धाक अपनी जमा गये।
सत्य और असत्य की परख करने के हेतु,
कर में कसौटी शुद्ध तर्क की थमा गये॥
गुरुदत्त सदृश प्रकाण्ड नास्तिकों का माथा तो,
मस्तक "प्रकाश" प्रभु पद में नमा गये।



लेखक

देव दयानन्द मृत्यु मुख में समा गये कि,
मानवों के मन में, नयन में समा गये॥

आज दीवाली के दिन हम महर्षि का स्मृति दिवस मना रहे हैं, परन्तु असंख्य दीपों को प्रकाशित करने वाले उस प्रकाशपुंज से यदि हम कुछ प्रकाश लेकर अपने अन्तःकरण रूपी दीपक को प्रकाशित कर पाये तो दिवाली के साथ २ हमारा

होंगे न उऋण कभी ऋषि-उपकार से ।

(श्री रणञ्जयसिंह 'ददन' युवराज अमेठी राज्य)

दोहा

बन्द तिमिर में था हुआ, कमल बीच मकरन्द ।
ऋषि-रवि सत्य प्रकाश से, मुक्त हुआ सानन्द ॥ १ ॥

घनाक्षरी

राज्य दृढ़ करने को आंग्ल देसवासी यहाँ
चाजे चातुर्य्य पूर्ण चलते रहे फन्द की ।
भारतीय, भाषा भाव भेष देश भूले निज
बने वे विदेश-भक्त बुद्धि ऐसी मन्द की ।
'भारत भारतीयों का' घोषणा हुई है तब
सब से प्रथम श्री महर्षि दयानन्द की ।
भागे 'ददन' भारतीय, भागे गौराङ्ग प्रभु
त्यागे यह देश, कृपा स्वामी सुखकन्द की ॥ २ ॥
भारत स्वतन्त्र हुआ, धूम चहुँ ओर मची,
उत्सव मनाये गए विविध प्रकार से ।
गूँज गया गगन, नगर और ग्राम गूँजे
गूँज गईं घाटियाँ भी जय जयकार से ।
धन्यवाद बापू जी प्रभृति कर्मवीरों को है
स्वत्व मिले जिनके परिश्रम अपार से ।
किन्तु 'ददन' मुख्य श्रेय श्री दयानन्द को है
होंगे न उऋण कभी ऋषि उपकार से ॥ ३ ॥

जीवन भी सफल होगा। सतत न्यायपोषक, अन्याय विरोधी उदात्त भारतीय संस्कृति के पुनः प्रतिष्ठापक उस देव दयानन्द को हम इस पुण्य पर्व पर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हैं, प्रभु हमें उसके मार्ग का अनुसरण करने की बुद्धि व शक्ति दे ।

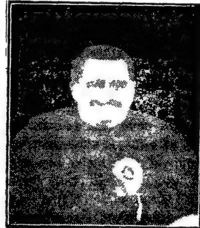
महर्षि दयानन्द का महत्वपूर्ण कार्य

(लेखक—श्री मदनमोहन सेठ, रिटायर्ड चीफजज)

आज से एक शताब्दी पूर्व की दुर्दशा को समझे बिना हम महर्षि दयानन्द के कार्य के महत्व को नहीं समझ सकेंगे। किसी कार्यकर्ता के कार्य की आलोचना अथवा प्रशंसा करने से पूर्व उसकी आत्मा को हृदयगम कर लेना आवश्यक होता है। ब्राह्मसमाज के महान् नेता श्री० केशवचन्द्र सेन ने समकालीन भारत का चित्रण इस प्रकार किया है "अपनी ओर देखो कि किस प्रकार तुम रूढ़ियों से बँधे हो, तुम्हारी स्वतन्त्रता हर ली गई है, धूर्त पुजारियों ने किस प्रकार तुम्हें दास बना रखा है, परम्परा के असह्य भार से किस प्रकार तुम्हारी अच्छी भावनाएँ और विचार दबा दिए गए हैं। अपने घरों की ओर देखो, अपनी माँ, बहिन, पुत्री और पत्नी की ओर देखो कि किस प्रकार वह जनाने की काल कोठरी में बन्द कर दी गई है। जिनके स्वतन्त्रता के अधिकार को कुचल दिया गया है। तुम्हारे सामाजिक सगठन किस प्रकार अभिशाप बन कर तुम्हे दुर्बल और आचार भ्रष्ट बना रहे हैं। अपने दैनिक जीवन में देखो कि तुम्हें प्रत्येक पग पर अपनी आत्मा के विरुद्ध कितना बलिदान करना पड़ता है, तुम चारों ओर ऐसी रीतियों से बँधे हो जिन्हें तुम घृणा ही कर सकते हो और कोस ही सकते हो। क्या वह धार्मिक शासन जिसके तुम आधीन हो अत्यन्त कष्टकारी तानाशाही नहीं है? क्या तुम ऐसी भयकर रीतियों में नहीं बँधे हो, जिससे तुम्हें लज्जा आती है और जो बुद्धि के लिए कलंक है, जिनसे त्राण पाने के लिए तुमने कितनी बार आहें भरी हैं?

हिन्दुओं की मनोवृत्ति दूसरे धर्मों के प्रति क्या थी, और उस पर ऋषि के कार्य का क्या प्रभाव हुआ, एक मुस्लिम लेखक खान बहादुर मौलवी अब्दुल्ला के शब्दों में सुनिए —

पहले हिंदू यदि कलमा पढ़ लेता था या बपतिस्मा लेता था तो उसको सदा के लिए जाति से बहिष्कार कर दिया जाता था, परन्तु आर्यसमाज ने उनकी शुद्धि आरम्भ कर दी। अनेकों ईसाइयों और नवमुस्लिमों की शुद्धि कर के अपने में मिला लिया। इस दुर्भिक्ष में आर्यसमाज के अनाथालयों ने घोषणा कर दी कि किसी हिन्दू बालक को दूसरे धर्म को न दिया जाय और समाज उनके पालन पोषण का भार लेगा। इस प्रकार महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज ने हिन्दुओं के कलंक को धो दिया।



—लेखक

१८५२ में एक प्रोफेसर रामचन्द्र ने ईसाई मत इसलिए ग्रहण किया था कि हिन्दू धर्म ईश्वरीय नहीं हो सकता क्योंकि उस पर भारतवर्ष के हिंदुओं का ही एकाधिकार है और अन्य धर्मावलम्बी उसमें नहीं आ सकते। आर्य समाज के इस वैदिक सार्वभौम धर्म का प्रतिपादन होने से अब प्रत्येक व्यक्ति उसमें प्रवेश कर सकता है।"

इस से हम जान सकेंगे कि उस समय भारत की कैसी संकटमयी दशा थी, ईसाई और मुस्लिम विजेता किस प्रकार अगाधसम हिन्दूजाति के शव के बटवारे के लिये

स्वतन्त्र भारत के लिये ऋषि दयानन्द का संदेश

(श्री इन्द्र विद्या वाचस्पति प्रधान सार्व० आ० प्र० सभा देहली)

परतन्त्र भारत के लिये ऋषि दयानन्द का सन्देश यह था कि अच्छे से अच्छा विदेशी राजा भी बुरे से बुरे स्वदेशी राजा से अच्छा नहीं हो सकता। अब देश स्वतन्त्र हो गया है। ऋषि का सन्देश आज भी देश वासियों के लिये विद्यमान है। ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है जो नियम राजा और जो प्रजा के सुखकारक और धर्म युक्त समझें उन २ नियम को पूर्ण विद्वान् की राजसभा बांधा करे परन्तु इस विषय पर ध्यान रखें कि जहाँ तक बन सके वहाँ तक बाल्यावस्था में विवाह न करने देवें। युवावस्था में भी बिना प्रसन्नता के विवाह न करना कराना और न करने देना, ब्रह्मचर्य का यथावत् सेवन करना, व्यभिचार और बहु विवाह को बन्द करें कि जिससे शरीर और आत्मा में पूर्ण बल सदा रहे क्योंकि जो केवल आत्मा का बल अर्थात ज्ञान बढ़ाते जाएँ, और शरीर का बल न बढ़ावें तो एक ही बलवान पुरुष ज्ञानी और सैंकड़ों विद्वानों को जीत सकता है। और जो केवल शरीर ही का बल बढ़ाया जाय आत्मा का नहीं तो भी राज्य पालन की उत्तम व्यवस्था बिना विद्या के कभी नहीं हो सकती। बिना व्यवस्था के सब आपस ही में फूट विरोध लड़ाई झगड़ा करके नष्ट भ्रष्ट हो जाएं। इसलिये सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिये जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार व्यभिचार और विषयासक्त है वैसा और कोई नहीं है। विशेष क्षत्रियों को दृढ़ाङ्ग और बल युक्त होना चाहिये क्योंकि जब वे ही विषयासक्त होंगे तो राजधर्म ही नष्ट हो जायगा और इस पर भी ध्यान रखना चाहिये कि "यथा राजा तथा प्रजा" जैसा राजा होता है वैसी उसकी प्रजा होती है इसलिये राजा और राज पुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त कर सबके सुधार का दृष्टान्त बनें,

सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास।

ऋषि दयानन्द का यह सन्देश स्वतन्त्र भारत के शासक और जनता दोनों के लिये है। जिन लोगों के हाथ में इस समय देश की राज्य सभा आई है, उनको विशेष रूप से स्मरण रखना चाहिये कि सत्ताधारी के दुष्टाचार से प्रजा में दुष्टाचार फैलता है और जिस प्रजा में दुष्टाचार आ जाता है, वह स्वतन्त्र नहीं रह सकती।

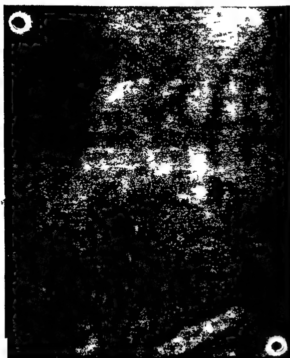


हर्षित हो रहे थे। ऐसे समय परमपिता की असीम अनुकम्पा से, वेदवाणी के आदि निकेतन पुण्यभूमि भारत में भगवान् दयानन्द का आविर्भाव हुआ आज इस ऋषि का, ब्रह्मा से जैमिनि पर्यन्त ऋषियों की प्रणाली के उद्धार कर्त्ता का, भारत की स्वाधीनता आन्दोलन के ब्रह्मा का अतिकृतज्ञ भावों से हम अभिनन्दन करते हैं। आज हम अनुभव करते हैं कि हम पर ऋषि ऋण और दृढ़ हो गया है। किस प्रकार हम उससे मुक्त हो सकेंगे यही समस्या है!



श्री भृगुदत्त जी तिवारी

अधिष्ठाता आर्यमित्र



— ऋषि निर्वाण दिवस आर्यसमाज के लिये एक विशेष महत्त्व का दिन है। आर्य समाज के लिये यह आत्मनिरीक्षण का समय है। महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज को ही अपना उत्तराधिकारी बनाया और अपनी दैवी सम्पत्ति का समस्त उत्तरदान उसी को दिया। आर्यसमाज के भूतकालिक क्रियाकलाप पर हर्षित होने मात्र से काम नहीं चलेगा आज हमें यह सोचना है कि भविष्य में स्वतंत्र भारत में, हमारा क्या स्थान है, क्या आवश्यकता है? और उसकी पूर्ति के लिये हमारी गतिविधि क्या हो?

जातीय जीवन के प्रत्येक पक्ष में आज सुसंस्कृत लोगों की आवश्यकता है जिनका चरित्र आलोचना से ऊपर हो। चरित्र का मानदण्ड भयङ्कर रूप से गिर गया है। आज आर्य संस्कृति से अनुप्राणित सहस्र २ नवयुवकों की आवश्यकता है जो आधार स्तम्भ बन कर राष्ट्र के इस नवीन भवन को अपने पुष्ट स्कन्धों पर उठा ले। जिनके निर्मल चरित्र की प्रशंसा शत्रु और मित्र मुक्त कंठ से कर सकें।

— भृगुदत्त तिवारी

श्री सुरेन्द्र शर्मा जी

कोषाध्यक्ष आ० प्र० सभा तथा स० अधिष्ठाता आर्यमित्र

संवत्सर आते हैं और चले जाते हैं। प्रति वर्ष शरद् ऋतु आता है और उसके साथ आती है कार्तिकी अमावस्या। हिंदू जनता बड़े उत्साह से इस पवित्र पर्व पर पावस ऋतु की मलिनता को गृह शोधन कर और सहस्र २ दीपमालाएँ जला कर दूर कर देती है। हिंदू जाति के जीवन पर एक सहस्र वर्ष से ऐसी घनघोर घटाएँ छाई हुई थीं कि मार्ग नहीं सूझता था। महर्षि दयानन्द ने आकर इस पुण्य भूमि का शोधन किया और अपना जीवन दीप नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के स्नेह से प्रदीप्त कर तिमिराच्छन्न देश को आलोकित कर दिया। ऋषि के शिष्यों को आज दीपमालिका फिर आवाहन कर रही है कि वे आवें और अपने गुरु के प्रकाश स्तम्भ से ज्योति लेकर देश के कोने २ में प्रकाश को फैला दें।



पंजाब के अतिरिक्त सम्पूर्ण देश हिन्दुओं के हाथों से निकल चुका था। धीरे धीरे पंजाब पर भी अंग्रेजों का शौर्य और पराक्रम चमकने लगा हिन्दू पस्त हिम्मत हो बैठे। उनमें छल प्रपंच दिखावा मिथ्या प्रवचना जाति-पांति छुआछूत घुस गये थे, जो अन्दर ही अन्दर हिन्दू धर्म को खोखला बना रहे थे।

वेदों का पवित्र सन्देश सुनाया। गिरी हुई जनता ने वेदों की अमर वाणी को समझा उन्हें अपनी कमजोरियों का अनुमान हुआ उन्हें मालूम हुआ कि वे बहुत कुछ खो बैठे हैं। धर्म का वास्तविक स्वरूप वे कुछ भी न समझ पाये हैं।

इस उग्र, तपस्वी, परमज्ञानी महाव्रती दयानन्द ने प्राचीन भारत के दर्शन कराकर आर्य जाति

एक श्रद्धांजलि

ऋषि दयानन्द का महान् कार्य

(प्रो० राम चरण महेन्द्र एम० ए०)

वह केवल धर्म ही नहीं, हिन्दुओं के जीवन मरण का प्रश्न था; हिन्दू समाज की कमजोरियाँ, मूर्ति पूजा, अंधविश्वास, पापाचार के कीटाणु हिन्दुओं का ह्रास कर रहे थे।

गुजरात प्रान्त के मौरवी राज्य में शिवरात्रि के दिन सम्वत १८९४ में एक ब्राह्मण बालक के दिल और दिमाग में यह सब कुछ देख कर एक हलचल उत्पन्न हुई।

उसने अपना अखण्ड ज्योति का प्रचार करने के लिये अपना परिवार त्यागा, घर छोड़, साधु संन्यासी बना। पवनों में भ्रमण कर आत्म तत्व की खोज और साक्षात्कार किया। जिससे उनका यश और शौर्य सम्पूर्ण देश में फैल गया।

फिर, सम्वत १९१२ में अपनी ध्वजा फहरा कर में पुनः आत्म सम्मान पैदा किया।

संवत् १९३२ में बम्बई में पहिला आर्यसमाज स्थापित किया गया। उसकी उपयोगिता जनता और समाज ने समझी फिर तो स्थान २ नगर २ में आर्य समाज स्थापित हो गये और आज तो आर्य समाज ने सम्पूर्ण धर्म तथा समाज पर अपना आधिपत्य जमा लिया। उस महान् आत्मा के प्रताप से ही आज हिंदू धर्म बना हुआ है अन्यथा मुस्लिम और अंग्रेजी सभ्यताएँ हमें कभी का निगल गई होतीं।

संवत् १९४० की अमावास्या को देश के नेत्र खोलकर, प्राचीन ऋषियों की सभ्यता, ज्ञान, अन्तर्ज्योति को जगाकर तथा उद्धार का रास्ता दिखा कर वह देव ज्योति अनन्त में विलीन हो गई।



स्वराज्य कैसा हो ?

(लेखक—पं० रामदेव वेदालंकार, बी० ए० बी० हाई स्कूल झरिया)

१५ अगस्त के बाद हमारा भारत वर्ष स्वतन्त्र हो गया है। इस स्वतन्त्रता देवी की आराधना के लिए हजारों नहीं अपितु लाखों ही पुरुषों ने हाथ ही नहीं बढ़ाया बल्कि खून की होली खेली और सर्वस्व का त्याग किया। उस स्वतन्त्रता को हमने प्राप्त किया परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही अपने राष्ट्रपिता बापू को खो दिया। सचमुच यह एक पहेली है कि हमारी स्वतन्त्रता प्राप्ति तथा बापू के निधन में कौन अधिक मूल्यवान है। जिस समय हम स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे उस समय समस्त भारत वासियों का एक ही नारा था कि अंग्रेजों ! हिन्दुस्तान छोड़ दो। अंग्रेज़ों ने १५ अगस्त को हिंदुस्तान छोड़ दिया और हम स्वतन्त्र हो गए।

रामराज्य—स्वतन्त्रता-मिलनोपरांत लोकतन्त्र या रामराज्य की मधुरध्वनि कानों में सुनाई देने लगी। लोकतन्त्र या रामराज्य का मतलब यह कहा गया कि जिस शासन-सूत्र में भारतीय जनता अथवा उनके प्रतिनिधियों का हाथ हो। इसी बात को अमेरिका के राष्ट्रपति इब्राहीम लिंकन ने इस प्रकार कहा था।

The Government of the people for the people by the people will not perish from the earth.

अर्थात् जनता का राज्य, जनता के लिए राज्य तथा जनता द्वारा संचालित राज्य पृथ्वी से नहीं मिट सकता। इसी प्रकार की लोकतन्त्र प्रणाली को महात्मा जी रामराज्य का नाम दिया करते थे। साधारण जनता में उनके रामराज्य का तात्पर्य यह होता था कि भारतवर्ष के रहने वाले निवासी सुखी समृद्ध एवं समुन्नत हों, अन्न वस्त्र, शिक्षा, औषध एवं वैयक्तिक विकास की समान सुविधायें सब को प्राप्त हों। कोई भारतीय अन्न के बिना भूखा तड़प तड़प कर प्राण विसर्जन न करता हो। न कोई वस्त्र की कमी के कारण नंगा ही रहता हो और सर्दियों में शीत का शिकार होता हो। भारत के सभी लोग साक्षर हों, साक्षर ही नहीं अपितु विविध-विद्याओं के विद्वान तथा नाना—शस्त्रों के आविष्कारक हों, बीमारी के समय भारतीय प्रजा के लिए समुचित औषध का प्रबन्ध हो, कोई व्यक्ति दवा के कारण अकाल में ही काल की गोद में न चला जाता हो। इन सब बातों के साथ ही सबको समाज में वैयक्तिक विकास की समान सुविधा हो, भारतीय समाज ऐसा न हो कि एक विशेष वर्ग को विशेष सुविधा हो और अन्य वर्गों का समाज में कोई स्थान ही नहीं। इस प्रकार ऊंच-नीच का भेद समाज में न हो। रामराज्य में भाषण की स्वतन्त्रता हो, किसी को भी अपनी विचारधारा को प्रकट करने की रुकावट या बाधा न हो। भाषण की स्वतन्त्रता के साथ ही लेखन की स्वतन्त्रता हो अर्थात् देश में प्रेस एक्ट जैसे कड़े कानून न हों जिससे कि लेखन की स्व-[illegible]

ऊंचे राज्य के नागरिकों में आत्म सम्मान की भावना हो, आत्मसम्मान के साथ ही उत्तरदायित्व की भी भावना भरपूर हो। राष्ट्र के व्यक्तियों को दैहिक, दैविक तथा भौतिक ताप न सताता हो, तुलसी दास के शब्दों में हमारा राज्य इस प्रकार हो—

दैहिक दैविक भौतिक तापा
रामराज्य काहु नहिं व्यापा।

अर्थात् रामराज्य में किसी को भी दैहिक (रोगादि) दैविक (अनावृष्ट्यादि) भौतिक (चोरकर्मादि) ताप नहीं सताता हो। अगर राज्य में प्रजा को दुःख होगा तो वह राज्य तथा राजा अवश्य ही खतम हो जायगा ऐसी भावना राज्य में हो। तुलसीदास जी ने उसी बात को निम्न रूप में कहा है—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

अर्थात् जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुःख पाती है वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है।

जहाँ राजा प्रजा का मालिक व शासक नहीं अपितु सेवक के रूप में कार्य करता हो सेवा कार्य की दृष्टि से जहाँ एक मेहतर और वायसराय का पद बराबर हो, वही तो सच्चा स्वराज्य या रामराज्य है। जहाँ प्रजा की इच्छा ही प्रधान हो प्रजा की बलवती इच्छा के सामने राजा की इच्छा का कोई मूल्य न हो, जहाँ प्रजा का हित प्रधान हो, प्रजा के हित के सामने राजा का हित गौण हो, जहाँ राजा अपनी प्रजा के लिये अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु का भी परित्याग कर सकता हो, अर्थात् भवभूति के शब्दों में—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यद्वा जानकीमपि
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति [illegible]

अर्थात् प्रजा को प्रसन्न रखने के लिये स्नेह, दया मैत्री और महारानी तक को परित्याग करते हुये कोई दुःख नहीं होता, कहने का मतलब यह है कि जहाँ राजा और प्रजा का सम्बन्ध पिता-पुत्र जैसा हो, कालिदास के कथनानुसार—
प्रजानां विनयाधानात् रक्षणात् भरणादपि
स पिता पितरस्तासां केवल जन्म-हेतव.।

इक्ष्वाकुवंशीय राजा दिलीप, प्रजाओं का नियमन करने से उनकी रक्षा तथा परिपालना करने से, वास्तविक पिता वही था, उनके पिता तो सिर्फ जन्म देने ही वाले होते थे। जिस राज्य में इस प्रकार का वातावरण हो, उसी को राम-राज्य कहा गया है। वह राज्य कैसा होगा यह पाठक ही कल्पना कर सकते हैं।

मेरे उपर्युक्त लेखन से मुझपर राजतन्त्र के पक्षपाती तथा समर्थक होने का दोष आ सकता है, परन्तु गम्भीरता पूर्वक तत्वान्वेषण से पता लगता है कि पुरातन राजतन्त्र की आधार-शिला लोकतन्त्र ही थी, अतः मैं लोकतन्त्र का ही समर्थन कर रहा हूं न कि राजतन्त्र का पुरानी प्रथा के अनुसार राजा भी निर्वाचित होता था ऐसे अनेकों उदाहरण भारतीय इतिहास में उल्लिखित हैं। दशरथ जब वृद्ध हुए तब उन्होंने पौर एवं जानपद सभाओं की सलाह (निर्वाचन?) से ही राम को अभिषेक करने का निश्चय किया था। डा. काशीप्रसाद जायसवाल जी के 'हिन्दू पोलिटिक्स' नाम की पुस्तक को देखने से पता चलता है कि ई. पू. तथा ई. प. भी अनेकों गणतन्त्र (कुल मुख्य) लोकतन्त्र राज्य इस भारत में विद्यमान थे, जिन्होंने कि सिकन्दर को आगे बढ़ने से रोका था अतः लोकतन्त्र प्रणाली नई न समझकर पुरानी ही समझनी चाहिये और साथ ही यह भी समझना न चाहिये कि इस लोकतन्त्र प्रणाली का विकास यूरोपीय राष्ट्रों ने ही किया।

समाजवाद—आज एक दल विशेष यह मानता है कि हम ही सारी समस्याओं कि जड़ अर्थ है, वे अपने ही तरीके से आर्थिक समस्या को हल करना चाहते हैं, वे कहते हैं कि अगर समाज में धन का समान वितरण (Euqal distribution of wealth) हो, तो समाज की कृत्रिम असमानता का नाश हो जायगा। समाजवादी वैयक्तिक उद्योग धन्धों (Private interprize) का समूल नाश चाहते हैं, वे कहते हैं कि सम्पत्ति के उत्पादन व समस्त साधनों (कल कारखाने आदि) पर राष्ट्र का अधिकार होना चाहिए। समाजवादी धर्म एवं ईश्वरवाद के प्रति उदासीनता का भाव रखते हैं और भौतिकवाद को प्रधानता देते हैं।

जहाँ तक समाजवाद के सिद्धांत से तात्पर्य है वहाँ तक उसका सिद्धान्त ठीक है, परन्तु जब तक उसका क्रियात्मक रूप सामने नहीं आता तब तक उस पर कैसे विश्वास किया जाय कब का उदाहरण देने से ही काम नहीं चलता सिद्धान्त को दृढ़ के तो सार्वभौमिक उन्नति करने वाली ऐसी पद्धति चाहिए जो हमारी सम्पत्ति सभ्यता एवं संस्कृति को समुन्नत करे। महात्मा ईसा ने एक जगह कहा था—Man does not live apon bread alone. अर्थात् मनुष्य सिर्फ रोटी के ही सहारे नहीं जीता, उसके जीने का एक पहलू धर्म संस्कृति एवं ईश्वर भी है धर्म संस्कृति तथा ईश्वर को मानना ही आस्तिकवाद है।

वैदिक वर्ण व्यवस्था—भौतिकवाद के समर्थक आस्तिकवाद की इस गहरी खाई को वैदिक वर्ण व्यवस्था से ही पाट सकते हैं यह वैदिक वर्ण व्यवस्था सर्व प्रकार से परि पूर्ण है, इस वैदिक वर्ण व्यवस्था में जहां आवश्यकतानुसार सम्पत्ति के समान वितरण की बात कही गयी है वहीं साथ ही आवश्यकतानुसार समान श्रम वितरण की बात भी विद्यमान है। ब्राह्मण ज्ञान अर्जन तथा तथा ज्ञानदान से क्षत्रिय अपने—पराक्रम द्वारा, वैश्य अपने वाणिज्य द्वारा, शूद्र अपने सेवा कार्य के द्वारा समाज में जीवन यापन करने का अधिकारी है अन्यथा नहीं। अपने गुण और कर्म के अनुसार सब को समाज में प्रतिष्ठा एवं सुखमय जीवन बिताने का हक है, कोई भी जन्मजात ब्राह्मण या क्षत्रिय अपने कर्मच्युत होने पर समाज में सुखपूर्वक जीने का अधिकारी नहीं, ब्राह्मण, ब्राह्मण के कार्य से ब्राह्मण है, क्षत्रिय अपने पौरुष से क्षत्रिय है, वैश्य अपने व्यापार करने से वैश्य है, शूद्र अपनी सेवा करने से ही शूद्र है, अपने कर्म से हीन होने पर समाज में वे प्रतिष्ठा प्राप्त करने तथा निष्क्रिय जीवन व्यतीत करने के अधिकारी नहीं है। अतः मेरी दृष्टि में भौतिकवाद एवं आस्तिकवाद में सामञ्जस्यस्थापन वैदिक वर्ण व्यवस्था द्वारा ही सम्भव है अन्यथा नहीं स्वतन्त्र भारत में कोई भी प्रणाली लागू होगी, वह भारत की आत्मा भारतीयता की उपेक्षा करके पुष्पित एवं प्रफुल्लित नहीं हो सकती ऐसी, मेरी आशा ही नहीं अपितु विश्वास है।

विद्वान शास्त्रों का यही मुख्य काम है कि उपदेश या लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें। पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

आर्यसमाज का भविष्य

[ले० विद्याभास्कर ओमप्रकाश शास्त्री खतौली]

भारत दो भागों में बट गया। समस्त हिंदू आर्यों का प्रबल आन्दोलन भी उसे न बचा सका और उसके टुकड़े हो गये। भारत के प्रमुख राजनैतिक नेता व उनकी कांग्रेस भी उसे न बचा सकी। जिस समय मैं आर्यसमाज के उत्सवों पर उपदेशकों और विशेष कर भजनीकों व कवियों को "पाकिस्तान भले बन जावे, नहीं बनेगा पाकिस्तान" गाते सुनता था, तो मैं जानता था कि यह सब हमारी आन्तरिक मनोभावना का सहारा लेकर केवल हमें कुछ समय के लिये प्रसन्न करने, वाहवाही लूटने या मनोरंजन के लिये ही हो रहा है। और पाकिस्तान को अब कोई शक्ति बनने से नहीं रोक सकती। पं० जवाहरलाल, म० गांधी, सरदार पटेल जैसे राजनैतिक नेताओं के सख्त विरोध करने और हमारे वर्षों के विरोधी प्रचार के होने पर भी पाकिस्तान बना, और हिंदुओं के सबसे कर्मठ संगठन "आर्यसमाज" को सबसे अधिक क्षति उठानी पड़ी। उसकी शक्ति का केन्द्र और कार्य का मेरुदण्ड भग्न हो चुका है। ऐसी स्थिति में हमें सोचना नितान्त आवश्यक है, कि किस प्रकार पुनः आर्यसमाज शक्तिशाली बन सकता है? इत्यादि......

अनेक महानुभाव अभी भी यह आशा लगा रहे हैं, कि दोनों देश (भारत और पाकिस्तान) एक न एक दिन पुनः एक हो जायेंगे। परन्तु यह सब कोरी कल्पना है। और उनका यह विचार भी उनकी उस कोरी आदर्शवाद की उड़ान का परिणाम है, जिसमें उन्होंने अभी तक भारतीयों को डाल रक्खा है। जिस समय आयर्लैंड का विभाजन हुआ और वह "आयर" और "अलस्टर" दो भागों में बंटा उस समय भी लोगों की यह धारणा थी कि यह विभाजन अस्थायी है, परन्तु अनुभव ने बतलाया, कि उनकी यह केवल 'कल्पना' ही थी। राजनीति ही एक ऐसा स्थान है, जहाँ आदर्श 'व्यवहार" से पीछे फेंक दिया जाता है। अतः हमें "व्यवहार" जो "सत्य" है, उसे नहीं भूलना चाहिए।

"हिंदुस्तान" व "पाकिस्तान" दो पृथक् राष्ट्र हैं। इन दोनों राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध पड़ोसी होने से तो मित्रता पूर्ण होना चाहिये परन्तु वह शत्रुता पूर्ण भी हो सकते हैं। प्रकट में सम्प्रति व्यवहार कोई मित्रता पूर्ण नजर भी नहीं आ रहा। पाकिस्तान में हमारा प्रचार व प्रसार सर्वथा असम्भव है। परन्तु यदि हम अपने देश हिंदुस्तान में अपने को शक्तिशाली बना सकें तो हमारा भविष्य अभ्युदय शाली भी बन सकता है।

यह समय कौन भूल सकता है कि जब सन् २४ में मथुरा की शताब्दी बड़े समारोह व उत्साह से मनाई जा रही थी। चारों ओर अजीब जोश था। दिशा में "घर जावे तो जावे, मेरा वैदिक धर्म न जावे" के नारों से गुञ्जरित हो उठी थीं। पुण्य भूमि मथुरा के भाग पुनः जागे। आर्यसमाज में नवजीवन का संचार हुआ। वह पुनः भारत के कोने कोने में सजग और सबल हो गया था। उस समारोह के अनन्तर स्वा० श्रद्धानन्द जी के नेतृत्व में जो एक दम शुद्ध, हिंदू संगठन का कार्य प्रारम्भ हुआ उसने सन् २१ से प्रारम्भ कांग्रेस के नेतृत्व को पीछे ढकेल दिया—और एक बार पुनः सारे भारत में आर्यसमाज ही आर्यसमाज छा गया। यह आर्यसमाज की महान् विजय थी। 'शुद्धि आंदोलन' जहाँ आर्यसमाज का एक धार्मिक कार्य था। वहाँ वह महर्षि के राजनैतिक विचारों या "वैदिक स्वराज्य" के स्थापन का मुख्य साधन भी था। इस बात को चाहे हमने न समझा हो। परन्तु हमारे विरोधियों ने इसे अवश्य अनुभव किया था यह ही कारण था, कि स्वा० श्रद्धानन्द जी का वध शीघ्र से शीघ्र शताब्दी के २ वर्ष बाद ही किया गया। और इस प्रकार आर्यसमाज के उस स्वर्ण युग और महान् कार्य का पटाक्षेप हो गया स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या के बाद वस्तुतः आर्यसमाज नेतृत्व हीन हो गया।

दूसरी ओर मुसलमानों की प्रमुख संस्था ने अपने को तबलीग के कार्य में असफल देख कर और देश की राजनैतिक स्थिति को देखते हुए, अपने अधिकारों की रक्षा व नये अधिकारों की मांग मुस्लिम लीग द्वारा प्रारम्भ करदी थी। उस समय आर्य समाज और उसकी समस्त संस्थायें उस ओर ध्यान न देकर कांग्रेस की सहायक बनी रहीं। साथ ही कांग्रेस की अरविंद विचार धारा (जो क्रमशः रूस के आदर्शों पर अवलम्बन प्राप्त कर रही थी) आर्य नेताओं के मस्तिष्क में घर करती गई। उन्होंने स्वामी दयानन्द जी के राजनैतिक

विचारों के अनुसार अपनी प्रचार परिपाटी को छोड़ दिया। राजनैतिक क्षेत्र में भी सिवाय इसके कि वे परामर्शी थे उनका अपना कुछ न रहा न इस स्थिति ने आर्यसमाज को इस नगण्य स्थिति में पहुँचा दिया कि उसका न धार्मिक क्षेत्र में प्रभाव रहा, और न राजनैतिक क्षेत्र में ही. महात्मा गांधी जी की एक यह विशेषता थी, कि उन्होंने एक राजनैतिक नेता होते हुये भी सामाजिक सुधार के कार्य को भी अपने निजी सिद्धांतों के अनुरूप अपनाया। यह आश्चर्य की बात थी, कि आर्यसमाज के पण्डितों ने भी उनकी हाँ में हाँ मिलाई। इस प्रकार आर्यसमाज का प्रताप राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में कम होता चला गया। आर्य समाज का वह युग भी स्मरणीय है, जिसमें इसे एक राजनैतिक विद्रोही संगठन समझा जाता था। इसका प्रत्येक कार्य ब्रिटिश शासन की दृष्टि में सन्देह की वस्तु थी। परन्तु वह युग चिरस्थायी न रह सका।

महात्मा जी के निधन के बाद हमारी सरकार ने धर्मों के सम्बन्ध में जो नीति स्वीकार की है। उस पर यदि हम जरा बारीकी से विचार करें, तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि जिस तर्क शक्ति से हम आज तक संसार के मतमतान्तरों के सिद्धांतों की परीक्षा व समीक्षा करते थे, उसे अब भविष्य में सहन नहीं किया जा सकेगा। वर्तमान सरकार ने धर्मों के संबंध में जिस नीति की घोषणा की है वह एक धर्महीन या ला मजहब सरकार ही कही जा सकती है, और वह किसी भी कारण वश गैर हिंदू लोगों के मजहबी जज्बात का ख्याल रक्खेगी। चाहे हिंदुओं की धार्मिक भावनाओं को कितनी भी क्षति क्यों न हो, चूंकि उसकी नीति अल्पसंख्यकों की रक्षा पर अवलम्बित है।

इस स्थिति में आर्यसमाज का क्या होगा यह विचारणीय प्रश्न है।

* * *

सत्यार्थ प्रकाश के विषय में स्वामीजी के विचार

"मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।"

"उद्बोधन"

उठो ! वीर भारत सन्तानो !
पग-पग को अविराम सुगति दो ;
जीवन को अति सूक्ष्म सुमति दो।
मानवता के पथ में जाकर ;
किया शील बन कर उन्नति दो।
आत्मिक, दैहिक बल अपनाकर, जगो वीर-भारत सन्तानो !
विद्या का उपहार दिला दो ;
वैभव का नव हार पिन्हा दो।
निज गौरव अभिमान जगा कर ;
आर्य संस्कृति—धार बहा दो।
आगत बाधाओं को दलकर, बढ़ो वीर भारत सन्तानो !
दानवता, अपकर्ष मिटा दो ;
युग युग का उत्कर्ष दिखा दो।
उन्नत राष्ट्र ध्वजा फहरा कर ;
भारत का आदर्श दिखा दो।
शौर्य-जनित विक्रम दिखलाकर, उठो ! उठो !! भारत सन्तानो !
उठो ! वीर-भारत सन्तानो !

—लक्ष्मी प्रसाद द्विवेदी

दैनिक 'आर्यमित्र' कैसे हो

(ले० श्री सुखदेव वैद्य)

देश को स्वतन्त्रता इस प्रकार से और ऐसे उथल पुथल के समय में प्राप्त हुई है जब कि उसे बहुत उच्च कोटि के अनुभवी एवं कर्मनिष्ठ विद्वान चिकित्सकों (पथ प्रदर्शकों) की महती आवश्यकता है; इस समय भारत देश अशान्ति की अग्नि में झुलसा जा रहा है, जिधर देखो उधर ही अनीति अत्याचार एवम् भ्रष्टाचार का बोलबाला है अधिकांश जनता की मनोवृत्ति दूषित हो चुकी है।

वर्तमान समय स्फूर्ति और साहस से कार्य करने का है, केवल लम्बी २ योजना और प्रस्तावों से कार्य सिद्ध नहीं होगा, यदि इस अवसर पर भी हमने शिथिलता रखी तो भविष्य सर्वदा के लिए अन्धकार पूर्ण हो जायगा; अतः आर्य समाज रूपी चिकित्सक को अब कर्तव्य पथ पर अग्रसर होकर अपना प्रचार साधन बढ़ाना चाहिए। यह प्रचार का युग है 'आर्य मित्र' को समय के अनुकूल बनाकर वैदिक सन्देश घर २ में पहुँचाना है।

अनुमानतः १॥ वर्ष से यह प्रयत्न हो रहा है कि 'मित्र' को अविलम्ब दैनिक कर देने का यत्न हो रहा है इसके लिए समिति बन गई जिसकी रजिस्ट्री भी हो चुकी है किन्तु उपयुक्त धन प्राप्त न हो सकने से 'मित्र' दैनिक न हो सका।

'सभा' के पास धन की कमी है? धन के वास्ते नित्य ही भिक्षा मांगनी पड़ती है यह कितनी लज्जा की बात है!

मेरी सम्मति में तो मांगने वाले और देने वाले दोनों ही नवीन उत्पन्न किये जावें तो कार्य ठीक हो; जो स्वेच्छा से दान दे और [illegible] का प्रश्न ही न उठे; स्वेच्छा से वही देगा जो धनी होने के साथ ही वैदिक धर्म के लिये नवीन उत्साह रखता है। 'आर्य मित्र' के लिये २ लाख रु० की अपील की है जिसे १॥ वर्ष हो चला, जब तक २ लाख रु० न हो 'मित्र' दैनिक कैसे हो?

अंततः सारांश रूप में मेरा यही अभिप्राय है कि जैसे भी सम्भव हो सके हमें अपने प्रचार साधन में सुधार तथा वृद्धि करनी है, 'मित्र' को समय की मांग के अनुरूप अविलम्ब दैनिक कर देना चाहिये ताकि हमारी जहाँ-२ की सभाओं और नेताओं द्वारा देश समाज की जहाँ-२ कहाँ-२ सेवा हो रही है इन सब हलचलों का आम जनता को नित्य प्रति ज्ञान होता रह सके, तभी तो जनता आर्य समाज को जीवित जागृत संस्था समझ कर उसका हृदय से स्वागत कर सकेगी।

हम तो उस शुभ दिन की प्रतीक्षा में हैं जब कि हमारा समाचार पत्र प्रेम और सम्मान के साथ प्रत्येक धर्मावलम्बी पढ़ता हुआ नजर आवे, न कि केवल कुछ चुने हुए आर्यसमाजियों तक ही सीमित रहा जावे।

* * * *

मन्त्र गीत

(प्रो० मुन्शीराम शर्मा, एम. ए.)

त्वद् विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वियन्ति वनिनो न वयाः।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम्। ऋ० ६-१३-१.

अयि सुन्दर, सुन्दरता-स्रोत !

तुमसे निकल निकल फैले हैं बल, वैभव, गरिमा के गोत ॥१॥
जैसे तरु से फूट फूट कर चारों ओर गईं शाखाएँ।
सब में एक मूल रस व्यापक, गुप्त फूल फल-अभिलाषाएँ॥
जिसने सेवन किया, मिला धन, दिव्य वृष्टि की सृष्टि निराली।
शक्ति सामरिक, ज्योति प्रशंसित, गति को भी गति देने वाली॥
एक तुम्हारा आश्रय बनता भव सागर में पावन पोत ॥२॥





प्राचीन भारत की आदर्श गुरु शिष्य परम्परा

आर्ष गुरु विरजानन्द और आदर्श शिष्य दयानन्द

आर्य संस्कृति की अति प्राचीन प्रणाली, गुरु शिष्य परम्परा का प्रतिपालन जिस तत्परता के साथ महर्षि दयानन्द ने किया वह वर्त्तमान युग के लिये एक आश्चर्य जनक घटना है। आज गुरु नामधारी मास्टरों की विदेशी वेश भूषा और तद्रूप विद्यार्थी वर्ग की मनोवृत्ति में अथवा व्यास पूजा के नाम पर अन्ध परम्परानुगामियों में गुरु के चरणों में बैठ कर सांगोपांग विद्या के अध्य-

दीपावलि गोवर्द्धन भ्रातृद्वितीया

ले०—प० बिहारीलाल शास्त्री

दीपावली पर इकट्ठे ५ त्योहार मनाये जाते हैं। धन तेरस जिस दिन कोई न कोई गृहस्थ‌ी की वस्तु या खिलौना मोल लिया जाता है पुराने बर्तन तो इस दिन बहुतायत से बदले जाते हैं। नरक चतुर्दशी वा छोटी दिवाली – इस दिन तेल मलकर स्नान करना ही आवश्यक है। सिरस के पत्ते गूमे के फूल चिरचिरा कहीं कहीं मालिन घर पर रख जाती है।

दीपावलि को भी ...

सब जानते ही हैं दीपमाला, लक्ष्मी पूजन। प्रतिपदा को गोवर्धन में गोबर के गाय बछड़े ग्वाले बनाकर एक गोबर के घेरे में रक्ख जाते हैं। फिर पूजन होता है भातृ द्वितीया के दिन भी चित्र गुप्त जी का पूजन होता है। (सब में नहीं प्राय कायस्थों में)। और बहिन भाइयों को भोजन कराके तिलक करती है।

लेखक

अब इस पर विचार करना कि क्या यह त्योहार इतना ही प्रयोजन रखता है। यदि इतना ही है तो रूढ़ि ...

परन्तु दीपावली कोई रूढ़ि या मत मतान्तर की गढ़न नहीं है। यह त्योहार तो एक ऋतु सम्बन्धी उत्सव है। राष्ट्रीय त्योहार है प्रत्येक भारत वासी को चाहे वह किसी धर्म मत का मानने वाला हो उसके लिये आवश्यक है।

भारत में विकट वर्षा प्राय दशहरे तक समाप्त हो जाती है। दशहरे से मकानों की सफाई मार्गों का सुधार प्रारम्भ कर दिया जाता है मकानों की सफाई लिपाई पुताई के साथ घर की पुरानी निकम्मी वस्तुओं को भी अलाकृत करना ही चाहिये इसलिये धन तेरस का दिन रक्खा गया है। इस दिन बर्तन, खाट, पीढ़ी कुरसी आदि सबको नया रूप दे दिया जाता है। चित्र खिलौने जो सजावट की वस्तुएं हैं उनसे घर सजाया जाता है। साथ ही देश की शिल्प कला को इससे प्रत्साहन भी मिलता है। यह दिन राष्टभर की शिल्प कला प्रदर्शनी का हैं। प्रत्येक गृहस्थ के लिये कोई न कोई वस्तु मोल लेना आवश्यक धर्म इसलिये रक्खा कि कारीगरों को लाभ पहुँचे और कला विकसित हो।

चतुदशी के दिन तेल मलकर उष्ण जल से स्नान करना कुछ बड़ बूटियों का लाना इसलिये है कि वर्ष में एक दिन स्वास्थ्य प्रदर्शन भी होना चाहिये। तेल मलना स्नान करना यह शरीर रक्षा के साधनों के प्रतीक है। इस दिवस ने राष्ट्र को स्वास्थ्य वर्द्धन और रक्षण की शिक्षा दी और रोगादि नरक से बचने की विधि बताई। यह दिन स्वास्थ्य और आयुर्वेद प्रदर्शनी का है।

अमावस्या भराभर अन्धेर का दिन स्वच्छ श्वेत मकान, फिर पंक्ति बद्ध दीपक छटा, यह सब मिलकर कितना मन प्रसन्न करते हैं।

सभ्य जातियाँ ही प्रकृति का आनन्द लेती हैं और सेवा करती हैं।

भारतीय भी उस सभ्यता तक पहुँचे हैं। प्रकृति का आनन्द लेते और उस आनन्द से जाति का स्वास्थ्य बढ़ाने के लिये भारतीयों ने त्योहारों की परम्परा रक्खी है।

शरद् पूर्णिमा चाँदनी का आनन्द लेने को रक्खी। इस उत्सव का नाम रक्खा "कौमुदी महोत्सव" चाँदनी का आनन्द लेने के साथ ही अन्धेरे का आनन्द क्यों न लिया जाय। १५ दिन पश्चात् ही अन्धेरी की शोभा देखने के लिये यह महोत्सव रक्खा गया। यह कहना तो बिल कुल गलत है कि यह त्योहार श्री रामचन्द्रजी की लंका विजय के उपलक्ष्य में है या श्री रामचन्द्रजी का आज राजतिलक हुआ था।

श्री रामचन्द्रजी का राजतिलक तो चैत्र में हुआ था और राम रावण युद्ध हुआ था जाड़ों में। श्री रामचन्द्रजी लौट कर भी चैत्र में ही आये थे।

यह उत्सव तो प्राकृत ऋतु परिवर्तन के हैं। नव सस्येष्टि—होली रबी की फसल के अनाज से हवन करने के लिये है और दिवाली खरीफ की फ़सल के अनाज का नव सस्येष्टि है। होली पर जौओं का हवन किया जाता है और दिवाली पर धान का। यह करके खीलें बाटी जाती हैं। और यह चिह्न हैं कृषि प्रदर्शनी का। जिसके होले होला पर बढ़िया हुए उसको राज्य से परितोषिक मिला। जिसकी खीलें दिवाली पर बढ़िया हुईं उसे दिवाली पर पुरस्कार मिलना चाहिये। इस प्रकार दोनों फसलों पर कृषकों को उत्साहित करने और भगवान् का धन्यवाद देने के लिये नव सस्येष्टि हैं। लक्ष्मी पूजन और जुआ—पुराणों में शिव पार्वती के जुआ खेलने की कथा भी है। जिसका इस समय पर कोई लाभ नहीं। सीधी बात तो यह है कि वर्ष भर में यह दिन गृहस्थी का आय व्यय लेख पत्र तैयार करने का है तथा पिछला आय व्यय जानने का भी। जो मनुष्य आय व्यय को नियमित रक्खेगा उस पर लक्ष्मी जी सदा कृपा रक्खेगी ही। लक्ष्मी जी के बढ़ाने के साधन ही हैं—कृषि, वाणिज्य, शिल्प, कला कौशल। यह सब विना स्वास्थ्य के हो नहीं सकते। इस लिये त्रयोदशी चतुर्दशी को उपयुक्त दो प्रदर्शनियों और अमावस को कृषि प्रदर्शनी करके रात्रि में दीपकों की शोभा में देश में लक्ष्मी जी के आने की प्रतीक्षा करना और उन्हें बुलाने और स्थिर रखने के लिये जुआ (बैलेंस) को ठीक रखना कितना सुन्दर कार्य क्रम है। प्रतिपदा को गोवर्द्धन—गौओं को बढ़ाना, देश के पशु धन की वृद्धि, यह भी देश की लक्ष्मी को बढ़ाने का साधन है। गौओं में रात्रि में ग्वाले आकर कुछ दोहे पढ़ते हैं जिसे हेर लगाना कहते हैं। यह रिवाज सूचित करता है कि इस दिन चरवाहों और गोधन की सेवा कर उसे बढ़ाने वालों को कृषक आदि प्रजा जन तथा पशु वर्द्धक कृषकों को राज्य से पारितोषिक मिलता था। गोबर के खिलौने आदि बनाना यह बताते हैं कि गोबर सन्मान के योग्य है। हमारे खेतों को हरा भरा बना देने के लिये गोबर बहुत उपयोगी पदार्थ है। गोबर तिरस्कार के योग्य नहीं मान के योग्य है।

द्वितीया के दिन भ्रातृ द्वितीया बहिन भाइयों में प्रेम दृढ़ता बनाये रखने के लिये है। यह पारिवारिक उत्सव है। श्री चित्र गुप्त जी पुराणों में लेखन कला के देवता माने गये हैं अतः यह दिन लेखकों के उत्सव का है। चित्र गुप्त नाम अन्त करण का भी है क्यों कि हमारे आचार विचारों के संस्कार अन्त. करण पर पड़ते हैं। यम संसार को नियमन करने वाला ईश्वर इस अन्त करण की सूत्यनुसार ही मनुष्य को दंड या पुरस्कार देते हैं। चित्र गुप्त जी की पूजा वा यम की पूजा यमुना स्नान से नहीं हो सकती जैसी कि आज कल जनता में विश्वास फैला हुआ है। चित्र गुप्त जी की पूजा वा यमराज को प्रसन्न करने का उपाय है अपने को संयम में रखना, मानसिक संस्कारों को शुद्ध बनाना। इस प्रकार यह ५ दिन का पर्व है—

१ धन तेरस वा शिल्प कला प्रदर्शनी।

२ चतुर्दशी—स्वास्थ्य आयुर्वेद प्रदर्शनी।

३ दीपावली—कृषि प्रदर्शनी वा आर्थिक पर्व।

४ - गोवर्द्धन—गोधन वर्द्धन पशु प्रदर्शनी।

५—पारि वारिक प्रेमोत्सव लेखन कला प्रदर्शनी।

लेखक सम्मेलन आत्म विचार पर्व इन सब बातों को विचारते हुए यह पर्व राष्ट्रीय उत्सव ठहरता है न कि साम्प्रदायिक वा मतवादोत्सव यह उत्सव ऋतु परिवर्तन के साथ जुड़ा हुआ है। प्राय. प्रत्येक भारतीय को यह उत्सव मनाना चाहिये। हिन्दुओं में सब ही सम्प्रदाय वाले इस उत्सव को मनाते हैं। मंगलाचरण या दैनिक कार्य वा ईश्वर स्तुति प्रत्येक अपने अपने इष्ट के अनुसार करता है। वैष्णव, शैव, शाक्त, सिक्ख जैन, वैदिक, पौराणिक और समाजी सनातनी सब अपने अपने ढँग पर पूजा पाठ इत्यादि करते हैं। मकानों की शुद्धि और उजाला सब लोग करते हैं। हाँ ईसाई और मुसलमान दो सम्प्रदाय ऐसे हैं कि भारतीय ऋतुपरिवर्तन के विरुद्ध आचरण करते हैं। मुसलमान ईदपर अपने मकान पुतवाता है चाहे सावन भादों में ही पड़े। ईसाइयों



तू

(लेखक—प्रो० मुन्शीराम शर्मा एम० ए०)

तू अखिल सृष्टि का अलकार
इस रम्य मनोरम रूपा ने पाया तुझसे शृंगार प्यार ॥१॥
पौ फटते ही नव बाला सी आती ऊषा ले अरुण राग।
भोली भाली निज झोली में विकसित सुमनों का ले पराग॥
भरती नभ में आभा अपार ॥२॥
वनराजि विराजित हरी भरी, गिरि कानन अन्तर में फैली।
जिसने अपनी गुरु गरिमा से ढँक दी, माँ की झोली मैली॥
दी आँखों को अनुपम बहार ॥३॥
षड् ऋतुओं का सौंदर्य कहीं, अम्बर डम्बर लालिमा कहीं।
नव पल्लव पाटल पुष्प राशि, किसमें तेरी छवि भरी नहीं ?
निकली तुझसे सौंदर्य धार ॥४॥
यह स्वर्ण कान्ति, यह रजत रूप, यह झिलमिल-२ सा प्रकाश।
तेरी शोभा की एक लहर, तेरी सुषमा का लघु विकाश॥
पाता प्रकाश तुझसे प्रसार ॥५॥
विद्युत, वाडव, दावानल में ज्वालामुखियों में ज्वलित ज्वाल।
पावक के भैरव रौद्र रूप—सब में व्यापक तू महा काल॥
तू मृदुल भयङ्कर कण्ठ हार ॥६॥
तू हरी भरी हरियाली में मेरे हरि क्यों छिपता जाता।
तू लाली में माली बनकर फिर क्यों लोहित कण बरसाता॥
तू अविदित गति अज्ञात सार ॥७॥
तू मूल स्रोत, तू प्रथम रेख, तू विविध रूप जग की जननी।
जीवन का जीवन एक तु ही, तू प्राण चेतना ज्ञान धनी॥
तू एक सार हम सब असार ॥८॥

का बड़ा दिन तो निश्चित है परन्तु वह कुहरे पाले के दिनों में पड़ता है ये लोग भी उन्हीं दिनों में सफ़ाई करते हैं।

यह दोनों मत भी यदि दीपावली मनावें, मागलिक उपासना अपने मतानुसार करलें तो क्या हानि हो ?

इतनी सांस्कृतिक शुद्धि तो इन दोनों सम्प्रदायों की होनी ही चाहिए कुछ भाई यह कहते हैं कि यह उत्सव इन्हीं दिनों में क्यों होना चाहिए और दिन रख लिये जायें तो मुसलमान ईसाई भी सम्मिलित हो जायें परन्तु इस पर विचारना यह है कि क्या इससे अच्छी तिथियाँ प्रकाश का आनन्द लूटने के लिये अमावस्या से अच्छी तिथि और शरद से अच्छी ऋतु कोई हो सकती है ? फिर ये दिन क्यों हटाये जायें। और सकीर्ण साम्प्रदायिकों की सकीर्णता की रक्षा के लिये परम्परागत राष्ट्रीय त्योहार को क्यों विकृत किया जाय। बुद्धि संगत तो यही है कि मत का दुराग्रह छोड़ कर युक्ति युक्त बात को अपनाया जाय। विदेशी मतों को अपनाते समय उस विदेशी की संस्कृति, और सभ्यता को स्वीकार न किया जाय। अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को त्याग कर विदेशी न बना जाय।

पैंसठ वर्ष के बाद

(लेखक—श्री गङ्गाप्रसाद उपाध्याय)

यह कहना भूल है कि आ. स प्रभावहीन हो गया है। वह तो निरतर आगे बढ़ रहा है और अपने उद्देश्य में अधिकाधिक सफलता प्राप्त करता रहा है" हम निराशा के दृष्टिकोण को बदलें फिर हम वास्तविकता को जान पायेंगे। ये ही विचार इस लेख में आपको मिलेंगे।

—सम्पादक



जिस दीपमालका की रात्रि को जगत् का सूर्य ऋषि दयानन्द हमारी आँख से ओझिल हो गया उसके पश्चात् चौंसठ दीपमालिकायें आई और चली गईं। अब पैंसठवीं आ रही है, इन पैंसठ वर्षों में भूमण्डल पर कितना परिवर्तन हो गया इसका अनुमान करना सुगम नहीं है। पृथ्वी तो लगभग वैसी ही बनी हुई है। सूर्य मण्डल तथा अन्य तारागण भी वैसे ही हैं। भौगोलिक परिस्थितियों में कोई भेद नही पड़ा अजमेर के जिस आना सागर के तट पर ऋषिवर की अस्थियों को समाधिस्थ किया गया वह भी उसी प्रकार से बह रहा है। परन्तु भारत की धार्मिक सामाजिक और नैतिक परिस्थितियों में बहुत बड़ा अन्तर हो गया है। अंग्रेजों से शासित भारत के स्थान में आज स्वतन्त्र भारत है। हमारे गवनर जनरल हमारे मिनिस्टर, हमारी धारा सभा हमारा अपना शासन। आज इगलैंड में हमारे महा मन्त्री का उसी प्रकार स्वागत हो रहा है जैसे ६५ वर्ष पूर्व इगलैंड के महा मन्त्री का किसी अन्य देश में होता।

आज अंग्रेजी भाषा जा रही है। आर्यभाषा का प्रचार बढ रहा है। आज मटरा के स्थान पर हम मथुरा और कौनपुर के स्थान में कानपुर लिखने लग गये हैं पहले जो टोप का मान था वह अब खद्दर की गाँधी टोपी का हो गया है। संस्कृत अध्ययन की ओर अधिक रुचि बढ़ गई है, आज चाहे स्वामी दयानन्द की भांति कोई वेदों को ईश्वरीय ज्ञान न मानें परन्तु उनको



लेखक

गड़रियों के गीत मानने को तैयार नहीं। हमारी श्रद्धा वैदिक साहित्य की ओर बढ़ती जा रही है। यद्यपि आज भी अछूतपन विद्यमान है, परंतु लोगों के मनों से वह उठ चुका है। सामाजिक सुधारों की ओर से उतनी उदासीनता नहीं है। जिस शुद्धि के कारण ५० वर्ष पूर्व

आर्य्य लोग कुओं पर नहीं चढ़ने पाते थे उसके अनुकूल बनारस के पंडित-वर्ग की व्यवस्था प्राप्त हो चुकी है। हमारी भारतीय सरकार का जातीय झंडा वैदिक अरुणता को प्राप्त नहीं हो सका तथापि २००० वर्ष पीछे हटकर अशोक के चक्र को धारण कर चुका है। इसका अर्थ यह है कि इन पैंसठ वर्षों में भारत कहाँ से चल कर कहाँ आ गया, और स्वामी दयानन्द और संसार के बीच में जो बहुत बड़ी खाई उपस्थित थी वह कहाँ तक पट गई। इस खाई को पाटने में आर्य्य समाज का कितना हाथ है यह बताने की आवश्यकता नहीं। केवल जितनी बरुया में सत्यार्थ प्रकाश अबतक छप चुका है उसी की ओर दृष्टि डालिये और सत्यार्थ प्रकाश रूपी बड़ी नहर से छोटी छुटी नालियाँ या बड़े बड़े नाले निकल कर दूरस्थ खेतों तक पहुँचे हैं उन का भी थोड़ा सा अनुमान लगाइये। यदि आप ऐसा करेंगे तो आपके हृदय के भीतर आर्य्य समाज के संस्थापक के लिए अधिक श्रद्धा उत्पन्न होगी। आपका मन नई आशाओं से परिपूरित होगा और आप नये उत्साह से काम कर सकेंगे। उस बड़ी खाई के तट पर खड़े होकर एक दृष्टि डालो और देखो कि पहले कितनी चौड़ी खाई थी और अब कितनी रह गई है। और अब यह खाई कैसे भर सकती है। जो लोग हमारे पिछले ६५ वर्ष के काम को अकिंचित समझ कर निराशा को बढ़ाने का काम कर रहे हैं वह इस खाई को और चौड़ा बना रहे हैं। जो भूत और वर्तमान में वास्तविक तुलना नहीं कर सकता वह भविष्य के लिए अच्छा प्रोग्राम तैयार नहीं कर सकता। मैं इस लेख में वर्तमान युग की नई समस्याओं का उल्लेख नहीं करना चाहता। मेरी धारणा है कि दृष्टिकोण के बदलने से भविष्य का मार्ग अधिक स्पष्ट हो जायगा। परिस्थिति का सामना करने और नये मार्ग का खोज निकालने के लिए उदारता और वीरता की आवश्यकता है।

◆◆◆◆

ऋषि ऋण शोध

ले०—श्री प० रामदत्तजी शुक्ल एम-ए० एडवोकेट

"ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योनूचानः स नो महान्" मनु.

ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों की पावन परम्परा को आर्ष परम्परा कहा जाता है, दूसरे अर्थों में इस पुनीत परम्परा को ही वैदिक संस्कृति अथवा आर्ष संस्कृति कहा जाता है। परम्परागत इस ज्ञान निधि के प्रतिष्ठापक और गुरु शिष्य परम्परा से प्रवाहक तपोधन महात्माओं को ऋषि, महर्षि और ब्रह्मर्षि भी कहा जा सकता है। अपने आविर्भाव काल में इस विश्वजनीन कल्याण साधक महान् ज्ञानराशि को देशकालिक सर्वथा विपरीत परिस्थिति के कुप्रभाव से विलुप्तप्राय और विस्मृतप्राय देख कर ऋषिऋण शोध के निमित्त सम्पूर्ण आयु पर्यन्त अलौकिक अध्यवसाय करने वाले स्वनामधन्य महर्षि दयानन्द सरस्वती ने चिरकाल के पश्चात् एक बार पुन आर्यजाति के उत्कर्ष, वैदिक धर्म की श्रेष्ठता, आर्ष संस्कृति की महत्ता, भारतीय सभ्यता की व्यापकता, आर्यावर्त्त की विश्वजनीन राष्ट्रीयता और वेदज्ञान की सार्वकालिक उपादेयता का अपनी असाधारण प्रतिभा के साथ प्रतिपादन किया। उन्नीसवी शताब्दी के तीसरे और चौथे चरणों में दुर्भाग्य से भारत राजनीतिक दासता में सर्वथा आबद्ध होने के कारण अपने स्वरूप, अपने धर्म, अपनी सभ्यता, अपनी परम्परा, अपनी रीतिनीति, अपने आचार व्यवहार, अपनी जातीयता, अपनी राष्ट्रीयता, अपने ऐतिहासिक उत्कर्ष और अपनी उत्कृष्ट भावनाओं को प्राय विस्मृत कर चुका था। ऐसे सूचीभेद्य अज्ञानान्धकार के दारुण कराल काल में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अकस्मात् ज्योतिस्तम्भ के रूप में प्रकट होकर भारतीय आर्यों और उनके द्वारा समस्त मानव जाति को वेद का अमर सन्देश सुनाया। एक बार पुन दिग्मूढ़ विमुग्ध मानव को 'विश्ववारा वैदिक संस्कृति' की ओर आकृष्ट करने का देवदुर्लभ प्रयास किया। वेद महर्षियों के चिर संचित ऋषि ऋण के शोध करने का ऐसे युग में सफल प्रयत्न किया कि जब किसी प्रकार की सुविधा अथवा सौकर्य उपलब्ध होना सम्भव ही नहीं था, क्योंकि चिरकालिक कोढ़ की भांति राजनीतिक दासता के साथ विदेशियों के धर्म, सभ्यता संस्कृति, परम्परा, शिक्षा, साहित्य, इतिहास, भाषा और भाव सभी का असह्य भार भारतीयों के अक्षम कन्धों पर लादा जा रहा था तो दूसरी ओर एतद्देशीय रूढ़ियों, अन्धपरम्पराओं मिथ्यावादों, कुपन्थों, परस्पर विरोधी सम्प्रदायों और विरोधी भावनाओं के घातक कुप्रभावों से देश व्यापी दयनीय घोर सर्वथा दुर्निवार्य बाधाओं के नीचे पिसे जा रहे थे न कोई मार्ग दृष्टिगोचर होता था और न कहीं कोई पथ प्रदर्शक ही दिखाई पड़ता था। तथापि सौभाग्य से महर्षि दयानन्द सरस्वती ने हमको उस समय में भी सतर्क किया, सावधान किया और वैदिकधर्म के अमर उपदेश से पुन जीवित करने के लिये अनुप्राणित किया। हम जग गये और महर्षि प्रदर्शित वैदिक संस्कृति के विशाल राज पथ पर अग्रसर होने के लिए, अद्भुत साहस को प्रदर्शित करने के लिए प्रोत्साहित भी हुये। इतने ही में विचित्र विधि गति के एक ही आक्रमण में सन् १८८३ की

अमावस्या को अकस्मात् दिव्य दीप दयानन्द ने हम सबको आर्ष प्राण से अनुप्राणित कर स्वयं कैवल्य का अनुसरण किया। जिस प्रकार दीपमालिका के कोटि २ दीपक अपनी कोमल बत्ती और स्निग्ध स्नेह से अमा के गाढ़ अन्धकार को अपनी पवित्र ज्योति से प्रकाशमान करते थे, करते हैं और करते रहेंगे, ठीक उसी प्रकार दिव्य दीप दयानन्द रूपी ज्ञान ज्योतिस्तम्भ का प्रभाव भी सदा सर्वदा आर्ष प्राण मानवों के हृदयाकाश को दिव्य ज्योति से ज्योतिष्मान् करता रहेगा अस्तु—

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन को परिमित अनुभव करते हुये अपने जीवन कार्य की सुपूर्ति के लिये आर्ष प्रज्ञापूर्वक अपना सुसंगठित रूप से प्रतिनिधित्व कर सकने के लिये सन् १८७५ में विश्वविख्यात आर्यसमाज को और अमर सन्देशों के अद्भुत संग्रह ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश का निर्माण किया। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन के ५६ वर्ष में से लगभग ४० वर्ष उस महान् कार्य की तैयारी में अपूर्व तप: साधना के साथ लगाये कि जिस को वह शेष १६ वर्ष तक यथाशक्य करने के प्रयास में संलग्न रहे। देशकालिक विपरीत परिस्थिति, समानधर्मा साथियों और सहायकों का नितान्त अभाव, चारों ओर विरोध और बाधाओं का बाहुल्य और जिनके कल्याण के लिये सतत तन्मयता से व्यस्त रहे वहां प्राण तक लेने के लिये लगातार सचेष्ट। ऐसी असाधारण भीषण परिस्थिति में भी महर्षि ने आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, वैधानिक संगठनात्मक और शिक्षादि के विषय में जितना उत्कृष्ट और व्यापक प्रभावोत्पादक कार्य किया है उतना एक पूरे जीवन में होना कठिन है। मानव जीवन का ऐसा कोई पार्श्व शेष नहीं रहा कि जिसके सम्बन्ध में महर्षि ने अपनी विचक्षण प्रज्ञा द्वारा पथप्रदर्शन न किया हो। महर्षि के उत्तराधिकारियों ने आर्यसमाज के शरीर को निःसन्देह अधिकाधिक वपुष्मान् बनाने में कोई त्रुटि नहीं की, और अपने शरीर से आर्यसमाज न केवल भारत में ही अपितु समस्त सभ्य संसार में सुविख्यात हो गया। समाज सुधार, शिक्षा प्रचार, रूढ़िवाद निराकरण, अन्ध-परम्परा उन्मूलन, समाज संगठन और धर्मप्रचार आदि - आदि लोकोपयोगी कार्यों में निःसन्देह आर्यसमाज ने लगभग ५० वर्ष तक शेष समस्त भारत का पथप्रदर्शन किया। समाज संगठन और आन्दोलनात्मक प्रचार की दृष्टि से आर्यसमाज ख्यातिमान् बना, यह गौरव की बात है।

इधर राजनीतिक क्षेत्र में राष्ट्रीय महासभा ने पिछले ३० वर्ष से जिस ओज और क्षमता से सुसंगठित कार्य किया और भाग्यपुरुष महात्मा गांधी के नेतृत्व में शान्तिमय एवं सत्य और अहिंसात्मक आन्दोलन से, पशुबल से सुसज्जित संसार के सबसे पुराने और सबसे अधिक शक्तिशाली साम्राज्यवादी ब्रिटेन की राजनीतिक दासता से भारत को चिरकाल के पश्चात् विमुक्त कर दिया. इस आश्चर्यजनक विजय के उपरान्त राष्ट्रीय महासभा की साख देश और विदेशों में इतनी अधिक बढ़ने लगी कि जिसके कारण देश की विभिन्न राजनीतिक संस्थाएँ या तो नाम शेष हो गईं, अथवा अपना २ कायाकल्प करने के लिये परिस्थितिवश किन्तु अनिच्छापूर्वक विवश हो गईं। इस प्रकार राजनीतिक मार्ग नितांत अवरुद्ध अनुभव करके सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में पदार्पण करने के जैसे तैसे उपक्रम इधर उधर होने प्रारम्भ हो गए किन्तु आर्यसमाज अपने जन्म से ही एक धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक एवं शिक्षाप्रदायक आयोजन रहा है इसलिए इस युगान्तर में भी आर्यसमाज को अपने उद्देश्य, प्रयोजन, विचारधारा, साधनोपाय, दृष्टिकोण और मनोवृत्ति में किसी प्रकार का मौलिक परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं हुई. इतना ही नहीं आर्यसमाज के लिये तो ऐसी अनेक सुविधाएँ अपने देश में अपना राज होने से उत्पन्न हो गई हैं कि जिनके कारण देश के कोने २ और विदेशों में भी वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, वैदिक सभ्यता, वैदिक साहित्य और वैदिक आचार विचार प्रतिष्ठापित करने में विशेष सुविधा होरही है। यह बात और है कि देशकालिक प्रवाह और

समुपस्थित सुविधाओं के होते हुये भी आर्यसमाज अपनी अदूरदर्शिता, संकुचित भावना, विचारसंकीर्णता, प्रमाद और अकर्मण्यता से अवसरोचित अध्यवसाय न करे और आर्योचित उत्साह के साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्पष्ट निर्दिष्ट ऋषिऋण शोध कार्य में संलग्नता के साथ न लगे

देश के प्रत्येक अग्रणी नेता, विद्वान्, वैज्ञानिक साहित्यिक, कवि, कलाकार, शासक, उद्योगपति और सार्वजनिक प्रमुख कार्यकर्तागण एक स्वर से लगातार भारतीय संस्कृति, भारतीय परम्परा, भारतीय दर्शन, भारतीय धर्म, साहित्य, भारतीय आध्यात्मिकता, सत्य और अहिंसादि के सार्वभौम और सावकालिक सिद्धान्तों को ध्वनित और प्रतिध्वनित कर रहे हैं। इस आन्दोलन से देश और विदेश के विचारशील प्रभावित भी हो रहे हैं, और आज उनकी उत्कट अभिलाषा भी हो रही है कि वह स्वयं उपर्युक्त आदर्श सिद्धान्तों के विषय में साक्षात् परिचय प्राप्त करके आर्य जीवन के अनुरूप अपने २ जीवन बनाने का प्रयास करें. परन्तु इसके लिए जिस उच्चकोटि के निश्चित और विस्पष्ट ग्रन्थों की आवश्यकता है, उनके निर्माण का अभी भारत में कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है. न केवल भारतीय भाषाओं में अपितु संसार की सभी ज्ञात भाषाओं के साहित्य में भारतीय धर्म, संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, शिक्षाप्रणाली, आचार व्यवहार और आध्यात्मिक आदर्श जीवन विषयक छोटी बड़ी प्रमाणिक पुस्तकों की अत्यन्त आवश्यकता है। साथ ही मासिक पत्रिकाओं की भी उसी प्रकार आवश्यकता है कि जिसके द्वारा देश और विदेशों में वैदिक विचारधारा का प्रचार हो, और वर्त्तमान युग में आवश्यक प्रश्नों के समाधान करने के लिए हम अपने विचार प्रस्तुत कर सकें, और दूसरे के दृष्टिकोण को समझकर उनसे यथोचित सम्पर्क स्थापित कर सकें. क्योंकि विज्ञान के प्रभाव से अब देशकालिक दूरी उत्तरोत्तर दूर ही होती जा रही है. प्रत्येक जाति और राष्ट्र के लोग परस्पर विचारों का आदान प्रदान ऐसे ही सुविधा के साथ कर रहे है कि जैसे एक देश के लोग किया करते थे. भारतवासियों को तो इन सुविधाओं से और अधिकाधिक लाभ उठाने की आवश्यकता है इस क्षेत्र में आर्यसमाज के प्रमुख विद्वान् अनन्य मनस्कता के साथ लग जावें तो अपेक्षाकृत इनको अधिक सफलता होना सम्भव है

ग्रन्थ निर्माण कार्य से भी अधिक महत्त्व का कार्य है हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज और उनका अविलम्ब सुन्दर प्रकाशन. इस कार्य के लिए जहाँ प्रचुर धन की आवश्यकता है वहाँ उससे भी अधिक महत्वपूर्ण उन तपोधन विद्वानों की भी आवश्यकता है कि जो आजन्म इस कार्य में अपना पूरा जीवन खपाने के लिए तैयार हों अनुसंधान करके ऐसे व्यक्तियों को कार्य में लगाया जाय और आजीवन उनके जीवन निर्वाह का समुचित प्रबन्ध किया जाय सौभाग्य से आज भी सहस्रों हस्त लिखित अलभ्य ग्रन्थ देश के पुस्तकालयों में और व्यक्तियों के घरों मे पड़े हुए है कि जिनको न कोई देखने वाला है और न उनको प्रकाशित करने का कोई प्रबन्ध हो सका है। इस महान् कार्य की पूर्ति के लिये केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकारें, विश्वविद्यालय, बड़ी २ सभायें और विख्यात पूंजीपति महानुभाव अपने २ धन से राष्ट्र की श्रीवृद्धि कर सकते है। आर्यसमाज इस कार्य में प्रमुख भाग ले सकता है। इसी कार्य से मिलता हुआ कार्य है उन वेदमूर्तियों का प्रबन्ध कि जो आजतक असहायावस्था में रहते हुए भी परम्परागत वेद की शाखा प्रशाखाओं को अपने कण्ठ में धारण करते आए हैं। आज उनकी जो अत्यंत दयनीय दुर्दशा है, उसका समुचित वर्णन शब्दों द्वारा सम्भव नहीं है किन्तु जिस वेदनिधि को इन लोगों ने अबतक जीवित रखने का सफल प्रयास किया है, वह कार्य वस्तुत. असाधारण महत्त्व का है।

ऋषि ऋण शोध कार्य के लिये जहाँ उच्चकोटि के मौलिक ग्रन्थों की आवश्यकता है, वहाँ उससे कम महत्व उन जीवित जाग्रत तपोधन और प्रज्ञावान् विद्वानों का नहीं है कि जो अपनी ओजपूर्ण वाणी के द्वारा देश और विदेशों में वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, वैदिक सभ्यता और वैदिक परम्परा का प्रभाव पूर्ण प्रचार कर सकते हों। अभी तक समस्त भारत में इस प्रकार के विचारक

प्रचारकों को आवश्यक शिक्षित और दीक्षित बनाने के लिए कोई प्रबन्ध सरकार या सार्वजनिक संस्थाओं की ओर से नहीं है। इसका कटु परिणाम यही होता रहा है कि जब संसार के दूसरे लोग अपनी मिथ्या भावनाओं, अतथ्य विचारों, भ्रम पूर्ण धारणाओं और घातक विश्वासों का सुसंगठित रीति से लगातार प्रचारकों को भेज कर भारतीय संस्कृति, धर्म, सभ्यता और परम्पराओं के विरुद्ध प्रचार और आन्दोलन करते रहते हैं, तो हम अपने २ स्थानों पर बैठे हुए ही मनमोदकों से अपनी तृप्ति करते रहते हैं इस कार्य को भी सरकार और सार्वजनिक संस्थायें समान रूप से कर सकती हैं। आर्य समाज के लिये इस दिशा में भी बहुत कुछ कर्त्तव्य है।

देश में भी बौद्धिक तल के अनुसार साहित्य निर्माण का बड़ा कार्य अब तक नहीं के बराबर ही हो सका है। सांस्कृतिक और धार्मिक साहित्य निर्माण कार्य आर्यसमाज से अच्छा और शीघ्र कदाचित् अन्य संस्था न कर सके। क्या आर्य समाज अपने ऋषि के ऋण का शोध करेगा?



तमसो मा ज्योतिर्गमय

[श्री शम्भूनाथ सिंह]

बुझी न दीप की शिखा असीम में समा गयी!
अमन्द ज्योति प्राण-प्राण बीच जगमगा गयी!

अथाह प्रेम के प्रवाह में पली
अमर्त्य वर्तिका नहीं गयी छली
असंख्य दीप एक दीप बन गया
कि खिल उठी प्रकाश की कली कली।

घनान्धकार जल गया स्वयं, नहीं हिली शिखा
प्रकाश-धार से तमस भरी धरा नहीं गयी!

अकम्प ज्योति-स्तम्भ वह पुरुष बना
कि जड़ प्रकृति बनी विकास-चेतना
न सत्य-बीज मृत्तिका छिपा सकी
उगी, बढ़ी, फली अरूप कल्पना।

न बँध सका असत्-प्रमाद-पाश में प्रकाश-तन
विमुक्त सत्-प्रभा दिगन्त बीच मुसकरा गयी!



अब आर्य समाज क्या करे

लेखक
आचार्य श्री नरदेव शास्त्री

"स्वराज्य हो तो गया पर स्वसंस्कृति व स्वसभ्यता के बिना यह कितना सुखदायक होगा ? पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित शासक वर्ग से कहाँ तक आशा की जाय ? ऐसे समय में आर्य समाज किस मार्ग का अवलम्बन करके राष्ट्र निर्माण में सहायक हो सकता है ? अथवा अपनी स्थिति को सुरक्षित या समुन्नत बना सकता है। मान्य लेखक ने इसी विचार को लेकर कुछ बातें प्रस्तुत की हैं जो विचारणीय हैं।
सम्पादक

अंगरेज यहाँ आये और हमारे घर की फूट का फायदा उठाकर उन्होंने यहां अपना साम्राज्य प्रस्थापित किया और लगभग दो सौ वर्ष हमारे सिर पर रहे, खूब रोब दोब से रहे और गये भी ऐसे कि संसार चकित है। पर जाते जाते भारत को ऐसा निबल कर गये, द्वैधीभाव के कीटाणु इस प्रकार फैला गये कि कोई पुण्य ही शेष थे कि भारत बच गया, ईश्वर की कृपा ही थी कि अपने आप को संभाल सका। आज जिस प्रकार के राजे महाराजे एक सूत्र में ओत प्रोत होकर भारत संघ में सम्मिलित हैं कहीं दो सहस्त्र पूर्व इस प्रकार का संगठन रहता तो भारत कभी भी दासता का अनुभव न कर सकता। इसके भी दिन फिरने थे, फिर गये। अब इसके भी दिन आने थे आगये। भारत स्वतन्त्र हो गया, खुला श्वास प्रश्वास लेने लगा। यद्यपि आर्य समाज ने समष्टि रूप से स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भाग नहीं लिया तथापि आर्य समाज ने स्वतन्त्रता के युद्ध में सफर मैना का काम तो किया ही है, और संसार को यह बात माननी पड़ेगी। स्वतन्त्रता के युद्ध में व्यक्तिगत रूप में, सहस्त्रों की संख्या में सम्मिलित रूप में जो कार्य किया उसका भी अपना एक इतिहास है, जिसको कोई कभी लिखेगा ही।

स्वतन्त्रता के मिलने से स्वा० दयानन्द की हार्दिक इच्छा सफल हुई। समझ लीजिए कि स्वामी जी का आधा मिशन सफल हो गया। अवशेष आधे को पूरा करना आर्यों का काम है। वह यह कि उसको प्राचीन धर्म तथा प्राचीन संस्कृति पर बल देकर सब ध्यान इसी ओर देना पड़ेगा। उनका पिछला तप तो कई अंशों में सफल हुआ। जो त्याग तप विपरीत मार्ग में लगा था स्कूल कालेजों की, स्थापना अंगरेजी शासन चक्र के कल पुर्जे तैयार करने में लगा था वह तो प्रायः नष्ट हो चुका था। लाखों करोड़ों रुपया इन स्कूल कालेजों पर खर्च हुआ था। अब अंगरेजी का मोह दूर होना चाहिए। इस दिशा में एक पाई भी खर्च नहीं होनी चाहिए। भारतसंघ नवीन पद्धति की शिक्षा दीक्षा को अपने ढंग



लेखक

पर सम्हालेगा, चलायेगा। उसको देशोपयोगी बनायेगा। आर्य समाज तो अपनी समस्त शक्ति प्राचीन आर्य संस्कृति के प्रचार तथा प्रसार में लगाये।

इसलिए कि हमारी विधानपरिषद् ने इस राज्यपद्धति को कुछ अंगरेजी प्रजातन्त्रपद्धति कुछ अमेरिकन

पद्धति पर चलाना स्वीकार किया है। इस पद्धति का किसी धर्म विशेष, जाति विशेष, समुदाय विशेष से सम्बन्ध नहीं रहेगा। भारत संघ में ८६ फीसदी हिंदुओं आर्यों के होते हुए भी इसका आदर्श, हिन्दुराज्य नहीं रहेगा। सबका धर्म रहेगा अपने अपने घरों में और राज्य में रहेगा राष्ट्रधर्म। सबको अपने अपने धर्म पालन करने, मनाने में स्वतन्त्रता रहेगी। पर कोई धर्म दूसरे धर्म वालों के साथ खुलमखुल्ला छेड़खान न करसकेगा। खुले मैदान कोई किसी का खण्डन मन्डन न कर सकेगा। न खुला चैलेंज देकर, ललकार कर शास्त्रार्थों का अखाड़ा ही चला सकेगा। भारतीय समाज म काल वश आयी हुई बुराइयों को तो धारा सभा की नवनिर्मित धाराएँ ही दूर कादेंगी इसलिए जिस काम को भारत संघ नहीं कर सकेगा उसको आर्य समाज पूरा करेगा, पूरा करना होगा। यदि आर्य समाज यह नही कर सकता तो इतिहास के पन्नों म से अपने नाम को मिटने हुये देखने के लिए तैयार रहना चाहिए। यदि आर्य समाज यह न कर सकेगा त हम जिनको हिन्दू, सनातन धम कह कह कर हँसते हैं, उपहास उड़ाते हैं वे आर्य समाज क मध्यन मार्ग पर आकर काम सम्हाले गे।

आर्य समाज का पूर्व का त्याग तप समाप्त प्राय है। अब नये सिरे से उत्कट त्याग तथा तप करना पड़ेगा। दुगुना त्याग तप करना पड़ेगा, तब आर्य संस्कृति का उद्धार होगा और पूरा पूरा बल लगाया गया तो किसी समय भारत संघ ही आर्य संस्कृति के परम भक्तों के हाथों में आसकता है।

अब तो भारत संघ ऐसों के हाथों में है और अभी दस पन्द्रह वर्ष ऐसों के हाथों में रहेगा जिनको, अंगरेजों के चले जाने पर भी, अंगरेजी तथा अंगरेजी पद्धतियों से मोह रहेगा। क्यों कि शासन चक्र ही ऐसा है।

अंगरेजों को भारत के अंगरेजी शिक्षा में पालित पोषित लोगों ने ही निकाला। जैसे विष को विष से उतारते हैं, जैसे काँटे को, पास सुई न हुई तो काँटे से निकालते हैं सो वही बात हुई। अंगरेज गुरुओं की सिखाई हुई विद्या उन्हीं को उलटी पड़ी और भारतीयों को फली। "विषस्य विषमौषधम्"

यह, तथा

"कण्टकेनैव कण्टकम्"

इकि चरितार्थ हुई।

विष से विष तो उतर गया पर अभी जो पहिले विष का असर बचा हुआ है उसको उतारना आर्य समाज का काम है। उसके पास उपाय भी है पर यदि वह उसको काम में न लाये तो और बात है।

आर्य समाज अब स्कूलों और कालेजों पर व्यर्थ धन न खर्च करे, न परिश्रम करे। उसको तो सब ऐसे काम करने चाहिए जिनसे भारतीय जनता पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति के पञ्जे से बच कर "स्व" को समझ ले यही मैं इस समय कह सकता हूँ। स्वतन्त्रता के आते ही "स्वराज्य" हो गया पर स्वसभ्यता तथा स्वसंस्कृति के संपर्क से शून्य 'स्वराज्य" भी हमको यथार्थ सुख देसकेगा, इसमें सन्देह है—

महर्षि की इच्छा

सर्व सत्य का प्रचार कर सबको ऐक्य मत में कर, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीति युक्त कराकर सबसे सब को सुख लाभ पहुँचाने के लए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमहान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे जिसमें सबलोग सहज से धर्म अर्थ काम मोक्ष की सिद्धि कर के सदा उन्नत आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।

× × ×

वेद अर्थात् जो २ वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा है उस २ को हम यथावत करना और छोड़ना मानते हैं। जिस लिये वेद हम को मान्य हैं इस लिए हमारा मत वेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को, विशेष आर्यों को एकमत्य होना चाहिये।

आचार्य दयानन्द



नारी जाति पर ऋषि दयानन्द का ऋण

(श्रीमती विज्ञानबाला जौहरी, बी० ए०)

"भारत माता की जय" का नारा लगाने वाले अपनी कल्पना में मिट्टी और पत्थरों के ढेर, पर्वत और उपत्यका, नदी और नालों की विजय की ही भावना करते रहे हैं। "भारत माता' शब्द का अन्तर्निहित भाव व्यक्त करते हुए भारत सघ के प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू ने एक बार अपने भाषण में कहा था कि इस शब्द से हमारा तात्पर्य मिट्टी पत्थर से नहीं वरन् देशवासियों से है।

परन्तु इस देश को "भारत माता" के नाम से ही क्यों गौरवान्वित किया गया ? 'भारत को' पाश्चात्य देशों के समान पितृ-देश Fatherland क्यों नहीं पुकारा गया ? क्यों सदा मातृ भूमि की गुणावलियाँ गाई जाती हैं ?

आर्य संस्कृति में माता को सबसे महत्ता दी गई है। हिन्दू काल में नारी का स्थान उस गौरव के आसन से गिर कर शूद्र और गॅवार के स्तर पर आ गया था। वैदिक काल में घोष हुआ—'मातृमान्, पितृमान्, आचार्यमान् पुरुषों वेद' और दूसरे युग ने कहा 'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्'। कितनी विषमता है दो संस्कृतियों में !

आज जो लोग हिन्दू संस्कृति और आर्य संस्कृति का समन्वय करना चाहते हैं वह या तो आत्म वचना करते हैं अथवा संसार को धोखा देते है। जब इस देश में इतना प्रभूत अविद्यान्धकार छाया हुआ था कि हमारे बड़े २ महात्मा भी, ढोल, गँवार, शूद्र, पशु नारी," का आलाप करते थे, जब शताब्दियों की दासता से जकड़ी जाकर नारी जाति परदा और कुप्रथाओं में पिसी जाती थी, जब उसका एक मात्र क्षेत्र जेल के समान घर की चहार दीवारी तक ही परिमित रह गया था, तब प्रभात की स्वर्णिम ऊषा के समान स्निग्ध ज्योति का प्रसार करते हुए भारत के गहन तमाच्छन्न क्षितिज पर महर्षि दयानन्द का आविर्भाव हुआ।

ऋषि के जीवन चरित्र को जिन लोगों ने पढ़ा है वह जानते हैं कि किस प्रकार एक बार राजस्थान का परिभ्रमण करते हुए एक नग्न कन्या के समक्ष आ जाने पर ऋषि ने अपना शिर अवनत कर लिया था। कारण पूछ जाने पर उन्होंने उत्तर दिया था कि मातृ शक्ति के प्रति श्रद्धा से नत होकर उन्होंने ऐसा किया। ऋषि ! वह तेरी उदात्त भावना क्या कहीं और दिखाई देती है ? समानाधिकार के इस युग में द्वेष से प्रेरित होकर हम यह भूल गये हैं कि नारी का स्थान हमारी संस्कृति में पुरुष से उच्चतर है। मातृ जाति समानाधिकार की ही अधिकारिणी नहीं है वह समाज में विशेष सम्मान, विशेषाधिकार की पात्र है।

ब्राह्म समाज का सती प्रथा को विनष्ट करने का प्रयत्न श्लाघ्य अवश्य था और वैसा ही है हमारी वर्तमान समाज व्यवस्था को समानाधिकार के सिद्धान्त पर ढालने का प्रयत्न। परन्तु वह उस स्थिति से कहीं निम्न कोटि का है जिसकी रूप रेखा आर्य संस्कृति में परिलक्षित होती है। राजा दशरथ के द्वारा बनवास की आज्ञा सुन कर महारानी कौशल्या श्रीराम को आदेश करती हैं कि पिता के वचन से माता का वचन अधिक माननीय है अतः मैं आदेश करती हूँ कि न जाओ, यह सब वाल्मीकि रामायण में मलेगा तुलसीकृति में नहीं।—

जितने भी सुधार आर्य समाज में दृष्टि गोचर होते हैं उन सब के आदि प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ही थे। नारी जाति के प्रति उन्होंने क्या उपकार नहीं किए; शिक्षा प्रसार, स्वयंवर का प्रतिपादन, बाल विधवा का पुनः विवाह, पर्दा, बाल विवाह आदि का निषेध, कौन सा पक्ष ऐसा है जो उन्होंने छोड़ दिया। कहा जाता है कि आज समाज ने इन सब बातों को अपना लिया है परन्तु कितने संकुचित और विकृत रूप में। इन को व्यापक बनाने के लिए समाज का पुनर्निर्माण होना चाहिए।

व्यक्तिवाद से उठकर ऋषि दयानन्द ने संस्कृति

का आधार 'वेद' को घोषित किया, वह ईश्वरीय ज्ञान जो स्पष्ट शब्दों में आदेश करता है—

"सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥
ऋ० १०।८५।४६

हे वधू ! तू ससुर के लिए महारानी हो, सास के लिए महारानी (सम्मान का पात्र) हो ननदों के लिए महारानी हो और देवरों के लिए मीरा रहो ही। कौनसा धर्म ग्रंथ है जो नारी को यह गरिमा देता है ?

आज दीवाली के दिन, ऋषि के निर्वाण दिवस पर कृतज्ञता के भावों से भर कर इस महान् आत्मा के प्रति स्त्री जाति के ओर से मै श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती हूँ, जिसने नारी जाति की युगों की दासता के बन्धन को काट ही नहीं दिया वरन् उसे माता के गौरवान्वित आसन पर पुनः प्रतिष्ठित किया।

भारतीय संस्कृति की द्विविधा

(अनु० — श्री राजेन्द्रकुमार जी बी० ए०)



भारतीय जागृति के अग्रदूत थे स्वामी दयानद सरस्वती, आर्यसमाज और उसके आदियुग के नेता, बगाल में राजा राममोहन राय, ब्राह्म-समाज और उसके नेता, बम्बई और महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज और उसके नेता, थियोसोफिकल सोसायटी और उसके नेता, सर सैयद अहमद खाँ और अलीगढ़ आंदोलन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, व कमचद्र चटर्जी और बँगला के उद्धार का आदोलन, उर्दू हिंदी और भारत की मुख्य भाषाओं की लगभग समकालीन-पुनश्चेतना, राष्ट्र भाषा आदोलन, भारतीय पत्रकार कला का उद्भव, विवेकानन्द, अरविन्द घोष, रामतीर्थ, इंडियन नेशनल कांग्रेस और उसके संस्थापक, ऐतिहासिकों, विचारकों और कलाकारों का बङ्गाली सम्प्रदाय; कांग्रेस के प्रथम वामपन्थी नेता तिलक, बगाल आदि का क्रांतिकारी दल; महात्मा गांधी और भारतीय उद्योगों का उदय और श्रमिक वर्ग के आदोलन।

(प्रो० रघुपति सहायजी का मूल लेख "लीडर" के दशहरा अंक में प्रकाशित हुआ है। यह उसीका अनुवाद है। विद्वान् लेखक ने बड़ी योग्यतासे अर्वाचीन भारतीय संस्कृति के प्रवाह का दिग्दर्शन कराया है। यह विवेचना कहा तक समीचीन है, योग्य पाठक स्वय ही निश्चय करें। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की उलझन से भारत भी आज द्विविधा में है। ऐसी दशा में भारतीय जागृति की भावी रूप रेखा क्या होगी यह लेखक का अपना दृष्टिकोण है) —सम्पादक)

१८५७ के बाद —

विदेशी राज्य की स्थापना से भारत के स्वाभिमान को गहरा घात पहुंचा। १८५७ का विद्रोह उसकी अभिव्यक्ति मात्र था। भारतीय इतिहास के न्याय में १८५७ का विप्लव एक अनिवार्य पक्ष था। उसका फल केवल नाशकारी और ध्वंसात्मक ही नहीं हुआ। साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से लिखे हुए स्कूल और कॉलेज के इतिहासों आदि में भी इस विद्रोह के प्रति एक प्रच्छन्न और गुप्त सहानुभूति झलकती है क्योंकि इसके द्वारा ही भारत में ब्रिटिश सत्ता का संस्थापन हुआ। आश्चर्य है कि किसी ने भी आज तक इस विद्रोह को भारत की उन्नति का बाधक नहीं बताया। जब हम यह अनुभव करते हैं कि १८५७ का विद्रोह एक दुधारी तलवार थी जो विनाशात्मक ही नहीं थी वरन् रचनात्मक भी थी तो हमें परिस्थिति की विषमता स्पष्ट होती है। विदेशी सत्ता के संरक्षकों ने इसे मौन और गुप्त आशीर्वाद दिया क्योंकि इससे उनका शासन सगठित हुआ और वे भयभीत भी हुए क्योंकि यह विद्रोह उन शक्तियों कही परिणाम था जो उसकी असफलता पर प्रत्यक्ष हुई—अर्थात् भारतीय जागृति की उपर्युक्त शक्तिशाली वाहिनियाँ।

जागरण का प्रारम्भ —

एक अर्थभरी शाति किन्तु एक निर्दय अपरिहार्यता के साथ भारतीय जागरण के चतुर्मुखी आन्दोलन ने अपनी सृष्टि का कार्य नवीन संघातों और विषमताओं के समन्वय नवनिषेध और आदेश द्वारा आरम्भ कर दिया। इस प्रकार साम्राज्यवाद की प्रत्येक वृद्धि विदेशी सत्ता का सगठन भी, भारतीय जागृति के भँवर में पड़ कर उल्टा प्रभाव करने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि साम्राज्यवाद अपने ही जाल में फँस गया। आशा के विपरीत ईसाई मिशन, धर्म परिवर्तन, प्रचार, स्कूल, कॉलेज और

उपनिवेश कुछ काल के बाद राष्ट्रीयता को चरितार्थ करने लगे। पश्चिम के पौर्वात्य लेखकों, मैक्समूलर, मोनियर विलिअम्स आदि के भ्रामक और प्रशंसात्मक किंतु आलोचनात्मक लेखों की भी वही दशा हुई। साम्राज्यवाद की प्रत्येक संस्था का यही हाल हुआ। साम्राज्यवाद के प्रत्येक अस्त्र—अंग्रेजी शिक्षा, यात्रा, रेलवे और अन्य यान्त्रिक आविष्कार, विदेशी व्यवसाय, भारतीय विदेश गमन और बाधित भ्रम साम्राज्यवाद के ही विरुद्ध हो उठे और जागृति की उन्नति से सम्बद्ध हो कर भारतीय राष्ट्रीयता के बढ़ते हुए ज्वार को बढ़ाने लगे।

स्वयं इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना अंग्रेजी अधिकारियों के संरक्षण में हुई परन्तु इलाहाबाद के चतुर्थ सम्मेलन से ही वह उनके लिये दुराशा सिद्ध होने लगी। विभाजन द्वारा शासन के सिद्धान्त पर आधारित साम्प्रदायिक संस्थाओं, अखिल भारतवर्षीय मुस्लिम लीग, ईसाई सम्मेलन आदि आदोलनों में भी प्रयत्नशील भटकती हुई किंतु राजद्रोही राष्ट्रीयता ने अपना प्रभाव जमाना आरम्भ कर दिया और उसका क्षीण शब्द एंगलो इंडियन समुदाय तथा बड़े योरोपियन व्यवसाइयों में भी सुनाई पड़ने लगा। भारतीय जागरण का वेग और गति चारों ओर से अयाचित दिशाओं से साम्राज्यवाद के गढ़तक से बढ़ रहे थे। म्युनिसिपेलिटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, प्रांतीय काउन्सिल, भारतीय सिविल सर्विस तक न विभिन्न अंशों में नई भावना को पकड़ा, जो अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के पीछे पिशाच के समान लगी हुई थी। संगठित और कार्य कुशल नौकर शाही की जागरूक सावधानी और तीव्र उपायों पर भी वह छाया बनी ही रही।

भारतीय जागृति को देश के बाहर की घटनाओं से भी अवलम्ब मिला। रूस और जापान की लड़ाई, तुर्की, मिश्र, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान आदि मुस्लिम देशों के राजनैतिक उलट फेर और परिणामतः "सर्व इस्लाम" आन्दोलन, चीन और एशिया के अन्य भागों की जागृति नीग्रो और अन्य कृष्णवर्ण जातियों का प्रश्न, इन सब का सम्मिलित प्रभाव पड़ा जिससे भारतीय जागृति के विस्तार में अभिवृद्धि हुई। परंतु जहाँ एक सर्व संयुक्त एव परिवर्तनकारी भारतीय जागृति की चेतन धारा में नितांत विभिन्न, अयाचित, निराशाजनक विरोधी शक्तियाँ खिंच आई वहाँ इसमें से प्रत्येक को एक प्रकार के स्त्रैण्य, अवास्तविकता और परिणामी माया से मुक्ति का बोध हुआ और जिस प्रकार साम्राज्यवाद भारतीय जागृति के प्रभाव में पड़ गया उसी प्रकार भारतीय जागृति की धाराएँ भी साम्राज्यवाद के सर्वव्यापक दम घोटने वाले कपट युक्त चंगुल में फंस गई।

आदिम उत्साह शीघ्र भंग हो गया। समस्त सांस्कृतिक शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कार्य तथा संस्थायें निराशा जनक, व्यर्थ और प्रवाहहीन प्रतीत होने लगी। इन सब पर साम्राज्यवाद की शोषक और मारक छाया घूमने लगी। यह दुखदायी अनुभूति होने लगी कि विशुद्ध धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, शैक्षणिक सुधार भी तब तक देश में नहीं पनप सकते जब तक कि उन्नति विरोधी शासनव्यवस्था कायम है।

नवीन प्रेरणा

भारत तथा संसार की स्थिति नवीन अग्रगति के लिए तैयार थी। नई प्रेरणा महायुद्ध रूपी ऐसे प्रलय के रूप में आई जिसने संसार को हिला दिया। संसार व्यापी उन्मत्त और उदण्ड सुधारों का प्रभाव भारत में गांधी जी और गांधीवाद के आगमन के रूप में हुआ। गांधी जी में और गांधी जी के साथ भारतीय जागृति का प्रथम दीर्घयुग समाप्त होता है। गांधी जी और गांधी वाद भारतीय जागृति की विद्रोही, भ्रामक परन्तु शक्य और शक्ति शाली प्रथम पक्ष की घटनायें हैं। भारतीय जागृति, जिसका आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हुआ, प्रथम बार गांधी जी द्वारा निश्चित कार्य में न सही परन्तु असंदिग्ध संदेश में समाप्त हुई। गांधीवाद के आदिम रूप में, भारतीय जागृति का प्रथम रूप अधिक संगठित और सम्बद्ध हो जाता है और, एक क्रान्तिकारी गति धारण कर लेता है। वह धाराएँ, जो अब तक केवल भावना प्रधान, रहस्यमय और बौद्धिक थी जो निम्न रूप में 'सांस्कृतिक' हो गई थीं, गांधी जी द्वारा क्रियाशील हो गई और वास्तविकता के ठोस धरातल पर आ गई। भारतीय जागृति में प्रथम बार एक सामाजिक चेतना का उदय हुआ और प्रथम बार भारतीय जागृति के आन्दोलन में जनता में चेतना आई। इस नवीन चेतना प्रादुर्भाव में भौतिकवाद का आधार और वास्तविकता की प्रमुखता स्पष्ट होती जाती है, कुछ गांधी जी के कारण और कुछ उनके प्रभाव से विलग भी। पहले के समान, भारतीय जागृति

अपने रूप की परिधि से पुन बाहर आ जाती है। प्रथम बहुरंगो रूप के जो तीन चौथाई शताब्दी के परिवर्तनों में बचा रहा, गांधी जी के साथ समाप्त हने पर भारतीय जागृति अन्तत मार्ग वैभिन्य पर आ गई है। अन्त में विचारणीय विषय स्पष्ट हो गये, भारतीय जागृति के आधारभूत चक्र दृष्टिगोचर होने लगे।

भारतीय जागृति अपनी स्पष्टता के विषय में क्षुभित हो गई है उसके पुरातन अस्पष्ट परस्पर विरोधी और प्रतिकूल आदर्श अपने पर ही प्रत्यावर्तित हो रहे हैं और आज भारत की अर्थ पूर्ण यथार्थता है प्रत्येक व्यक्ति का हृदयान्वेषण। भारत आज अपने को एक कष्ट दायी वेदना म ग्रस्त पाता है, वह द्वैध के मध्य में है एक ओर विगत भूत है और दूसरी ओर अप्रसूत भविष्य। समग्र प्राचीन मान—गत तीन चौथाई शताब्दी की सब धार्मिक और अध्यात्मिक, औद्योगिक शैक्षणिक और राजनैतिक प्रवृत्तियाँ विशेषतया गांधी और गांधीवाद, तीव्र आलोचना के विषय हो रहे हैं। यथार्थता पदार्थ पूजक नहीं होती और बाह्य शक्तियों के समक्ष कल्पना शील आदर्शवाद और समझौते सम्भव नहीं है।

आज द्वितीय महायुद्ध, ब्रिटिश शासन और महात्मा गांधी के पश्चात् भारतीय जागृति की स्थिति क्या है और कहाँ है? मैंने यह दर्शाने का प्रयत्न किया है कि वह मार्ग वैभिन्य पर है। वह क्या नया रूप, नया विषय नवीन विशिष्टता धारण कर रही है और किस प्रकार यह नवीन शक्तियाँ एक चेतन शील, शक्ति शाली ऐक्य में सम्बद्ध की जा सकती है?

भविष्य

नवीन जागृति की विशेषता होगी एक नई सरल और यथार्थ सृष्टि। विचार, भावना और इच्छा की जाग्रत एकता ही उसकी विशेषता होगी, परिणामत वह अपनो यथार्थ, स्पष्टता और सुखसाध्यता से परिलक्षित होगी जिसका उसके आदिम रूप में अभाव है। नई जागृति, ऐसी राजनैतिक सांस्कृतिक भावनाओं, आदर्शों और समझौतों को जिनका आधार वर्तमान नभौतिक पतनोन्मुख व्यवस्था के भावनावशेष हैं, कोई स्थान नहीं देगी। उसकी सारी शक्ति और भवितव्यता, आशा और आदर्श का केन्द्र उसका जीवन और प्रेरणा ही जनत होगा। विज्ञान, दर्शन कला, नीतिशास्त्र संस्कृति समग्र अङ्ग नागरिक और राजनैतिक कार्यों की सब योजनाओं सब राष्ट्र वर्धक और रचनात्मक कार्यक्रमों क्रांतिकारी विचारों और संस्थाओं मे शुद्ध वृत्ति सामूहिक चेतना होगी वह उच्च वर्ग के पतन शील प्रभावों और एकाधिपत्य से मुक्त होगी। वह अध्यात्मवाद अथवा स्वार्थी धर्मों के चक्रव्यूह में पथभ्रष्ट न होगी, रहस्यवादी अथवा दार्शनिक और बौद्धिक भावनाओं में वह नहीं जायगी। वह अधिकाधिक पूर्णता प्राप्त करने का यथार्थ भौतिक आधार का, गुण और परिमाण के समन्वय का, प्रयत्न करगी। वह अधविश्वास, सामतशाही और कोरे अध्यात्मवाद की श्रृङ्खलाओं को तोड़ फकेगी और विशेषाधिकार के संगठित गढ़ों के विरुद्ध वह अधिकाधिक उग्र होती जायगी। ऐसी समग्र शक्तियों के प्रति वह स्पष्टतया विनाशकारी होगी और उनके विरुद्ध संगठित आक्रमण करेगी। वह सामूहिक प्रेरणा से प्रेरित होगी, और सामूहिक चेतना से ही चालित होगी। वह विस्तृतरूप से और वेग पूर्वक क्रांतिकारी और मौलिक होगी। मार्क्स का कथन है युगों से दार्शनिक संसार की व्याख्या करने म लगे रहे हैं, अब बड़ा कार्य उस प्रवृत्ति को बदलना है।

सार्वभौमिकता—

यह विरोध किया जा सकता है कि भारतीय जागृति की नई स्थिति की रूपरेखा इस लक्षण पाश्चात्य की दासत्वपूर्ण अनुकृति ही प्रदर्शित करती है। यह विरोध नया नहीं है रूस मे मार्क्स वादियों और पुरातन रूसी संस्कृति के पक्षपातियों में भी संघर्ष हुआ था। स्टेलिन ने स्वभावानुसार उत्तर में उत्तर दिया था कि नई संस्कृति आत्मा म समाज वादी और रूप में राष्ट्रवादी होगा। यह संस्कृतियों के समन्वय का युग है। भारतीय संस्कृति की नवीन अपूर्वता तब दिखाई पड़ेगी जब भारतीय जीवन के भौतिक, आर्थिक, राजनैतिक तारतम्य दूर हो कर एक नये भवन का निर्माण होगा। नवीन जीवन और संस्कृति, आकार और वस्तुकला संसार और भारत के लिए, मुख्य रूप में समान ही होंगे। अनिवार्य रूप से ये सार्वभौम होंगे। भारतीय संस्कृति के पुनः पुष्पित होने का वही उपयुक्त समय होगा। भारत की नवीन जागृति बिना

कारी और रचनात्मक होगी। अपनी दृढ़ संचालक शक्ति द्वारा वह संस्कृतियों की परस्पर अन्योन्याश्रयता और भारतीय संस्कृति की विशेषता को प्रतिबिम्बित करेगी हमारे कलाकार, कवि, दार्शनिक चित्रकर वास्तुकार और संगीतज्ञ भारत की प्राचीन संस्कृति के तथा अन्य जातियों के शाश्वत तत्वों को ग्रहण करके उनमें जीवन भर देंगे। भारत की अद्वितीय प्रतिभा जीवन के नये रूपों को एक द्युतिमान शान्ति प्रदान करेगी, एक सन्तुलित धीरता और गति, एक नई आध्यात्मिकता, एक लय और संगीत जो भारत की अपनी ही विशेषता है। आज हम उस संगीत की दूर वर्ती क्षीण प्रतिध्वनि सुन पा रहे हैं और भारतीय जागृति की क्रमबद्ध वाहिनियों की दूरस्थ पगताल का शब्द चतुष्पथ पर सुन रहे हैं।

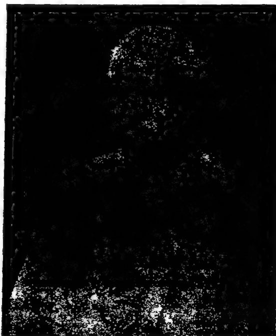
महर्षि दयानन्द का उपकार

(ले० — श्रीरामजी मुख्याधिष्ठाता गु० कु० विश्वविद्यालय, वृन्दावन.)

प्रति वर्ष दीपमालिका का पवित्र पर्व दिवस आता है और आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती के, साधारण तथा मानव जाति के सन्मुख, किन्तु विशेषतया आर्य जनों के सन्मुख उन समस्त उपकारों को लघुकाय दीप मालिका के दीपकों के व्याज से चित्रित कर उपस्थित करता है। महर्षि ने न केवल अपने जीवन भर ही वैदिक धर्म का अमर उपदेश अपने व्याख्यानों, प्रवचनों, शास्त्रार्थों एवं उपदेशों द्वारा अपने समय के नर नारियों तक पहुँचाया, अपितु अपनी लेखनी द्वारा भी ऐसा साहित्य रचा कि जिस से भावी नर और नारी गण अपने २ जीवनों को उन्नत और पवित्र बनाने में समर्थ हो सकेंगे। हमारे ऊपर महर्षि के जितने उपकार हुये हैं और उनका जो ऋण आर्यसमाजियों पर है, उसको चुकाना यदि सम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य प्रतीत होता है।

मेरी आयु ८० वर्ष से अधिक हो चुकी है। अपने जीवन में जो कुछ आर्य समाज की सेवा कार्य करने का अवसर मिला है, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि महर्षि ने आर्य जीवन निर्माण के लिये जो २ व्यावहारिक धर्मानुष्ठान के कर्त्तव्य कार्यों का प्रतिपादन अपने उपदेशों और ग्रन्थों में किया है, उनको यदि साधारण कर्मठ्य मनुष्य भी नियम पूर्वक करने का अभ्यासी बना रहे तो चिरायु पर्यन्त कार्य करने की शक्ति बनी रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सद् उपदेशों से मैंने तो यही सीखा है कि संयम के साथ नियम पूर्वक यदि व्यावहारिक जीवन कार्यों को किया जाय तो शारीरिक आत्मिक और सामाजिक तीनों प्रकार की उन्नति करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हो सकती है।

भगवान् दयानन्द ने ही ब्रह्मचर्यमय जीवन की महिमा अपने उदाहरण से हमारे सन्मुख प्रस्तुत की है। सर्वप्रथम उन्होंने स्वयं ब्रह्मचर्य के प्रताप से शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक



लेखक

उन्नति के उस आदर्श को प्रस्तुत किया कि जिसकी रचना के लिये अन्य उदाहरण मिलना कठिन है। उसके उपरान्त अपने सदृश पूर्ण ब्रह्मचारी, तेजस्वी, वर्चस्वी और विचारशील पथप्रदर्शक विद्वान् तैयार करने के लिये महर्षि ने आचार्य कुल

अथवा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का सविस्तार प्रतिपादन किया। आचार्य की इस गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की उत्तमता और उपयोगिता को सभी लोग हृदय से सराहते हैं और अब तो स्वतन्त्र भारत राष्ट्र के लिये ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण, महारथी क्षत्रिय, पुरन्धी देवियां, सभेय युवा, यजमान के वीर पुत्र, कला कौशल विशेषज्ञ वैश्य और कर्मण्य सेवक शूद्र गण सभी की यथोचित शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ शिक्षा केन्द्र यदि हो सकता है तो वह ब्रह्मचर्य आश्रम में जीवनमय गुरुकुल शिक्षाप्रणाली ही है।

महर्षि के वैदिक आदर्शों से प्रभावित हो कर स्वयं गुरुकुल शिक्षा का कुछ भी अनुभव न रखते हुये और स्वयं इस प्रकार की संस्थाओं के तपोमय जीवन की कठोरता से सर्वथा अलिप्त रहते हुये भी आधुनिक शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त आर्यजनों ने बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में गुरुकुल शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। समुचित अनुकूल परिस्थित न होने तथा आवश्यकतानुसार साधन और सहायता न मिलने के कारण इन संस्थाओं से इस प्रकार के उच्च कोटि के विचारक और कार्यकर्त्ता न तैयार हो सके कि जिस प्रकार सर्वसाधारण की आशा थी। किन्तु इसमें जो त्रुटि हुई उसका उत्तरदायित्व किसी एक व्यक्ति या वर्ग पर नहीं है, सभी पर है। पूरी सहायता और पूरा सहयोग प्राप्त होने पर निस्सन्देह गुरुकुलों से वही आशायें पूरी हो सकती हैं कि जिनसे न केवल आर्यसमाज को लगन के प्रचारक, अथक कार्यकर्ता ही उपलब्ध हो सकें अपितु स्वतन्त्र भारत राष्ट्र के लिए ऐसे कर्मठ दृढ़ विचारक और अदम्य साहसी नागरिक भी प्राप्त हो सके कि जिनके चरित्र बल से जातीय और राष्ट्रीय जीवन का प्रत्येक कार्य सराहनीय हो सके।

वर्षों में यद्यपि मुझको वृद्ध कहा जाता है किंतु महर्षि की दया से अब भी मेरी यही मनःकामना है कि आर्यजनों के सक्रिय सहयोग से गुरुकुलों की उत्तरोत्तर उन्नति विकास और विस्तार हो कि जिनसे जहां एक ओर हम आदर्श नागरिक जीवन संचार कर सकें, वहां महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी के उपकारों से यथा सम्भव उऋण हो सकें।





क्रान्ति-दूत का हिमालय दर्शन



(ले०—कुँवर हरिश्चन्द्र देव वर्मा 'चातक' कविरत्न साहित्यालङ्कार)

देखा उसने 'चारु चन्द्रिका में—
गंगा का रूप :
रजत-वस्त्र ओढ़े—
सुन्दरता ही बह रही अनूप।'
किम्वा हृदय हिमालय का यह-
विप्लव बहा उस ओर—
झुलसे पड़े जिधर रोते हैं—
प्रेम पुराय के मोर ?
या सशरीरी हो युग युग के—
ऋषियों का वरदान—
द्रुत गति से चल पड़ा
विश्व का करने को कल्याण ?
नहीं! नहीं!! यह फूट पड़ा है—
गिरिवर का आनन्द—
जिसमें घुल कर बहा जा रहा—
है अम्बर का चन्द !
तारे भी तारापति के संग—
बहते हैं चुपचाप—
राजा और प्रजा का कैसा—
है यह सुखद मिलाप !
या प्रशान्त निशि में यह—
अम्बर निज रत्नों के साथ—
पावन मातृभूमि के चरणों पर
रखता है माथ ?
तृप्ति न पाई या स्वर्गङ्गा में—
कर के सुस्नान—
आया नीचे उतर—
जाह्नवी को सुन कार्ति महान ?
नहीं! नहीं!! निज चन्द्रवंश का—
देख भयानक ह्रास—
गंगा में मिल उसकी—
उन्नति का करता आवास।
मानों यह सब जान हिमलयके—
उर का उत्साह—
झपट बह चला झरनों के मिस
ले कर नवल प्रवाह।
उसी एक की एक भाव से
करो सदा तुम याद—
मत ढूँढ़ो दूसरा, यही
उड़ो! उड़ो!! पक्षी कहते हैं—
उस अनन्त की ओर—
जहाँ अजस्र उठा करती है—
महदानन्द-हिलोर।
कैसे जान गये ये तरु भी—
उस रहस्य का भेद ?



लेखक

निर्झर कहते साह्लाद।
सदा सत्य के लिये उग्र—
रक्खो मानस में प्यास—
भागो चलो! रुको मत क्षण भर
चल कर करो तलाश!!
चीत्कार कर उठे अचानक—
भर मानस में खेद—
हाय! अचल हम चल न सकेंगे—
उस अनन्त की ओर,
कोई हम तक भी पहुँचा दो—

उसकी करुणा कोर ”
या मनव का दुःख यहाँ भी —
लाई पवन – हिलोर —
जिससे, डर कर वृद्ध —
कर रहे चीत्कार यह घोर ?
भाषा मय हो वृद्ध या कि —
कहते निज मन की पीर ?
केवल कवि के कान —
जिसे सुनने के लिये अधीर ।
लोग देखते उड़ते पक्षी,
उड़ते हुये विचार —
नहीं देखते, केवल कवि ही —
देख रहा हरबार ।
लोग फूल चुनते, पर कोई —
हृदय न चुनता हाय !
केवल कवि ही हृदय–चमन का —
करता है व्यवसाय ।
स्वप्न–सृष्ट–से शुभ्र स्वच्छ —
जग मे प्रसिद्ध नग–राज —
ओ तुम हिम गिरि ! श्वेत जटाओं —
से शोभित अघराज !!
प्रति पल उन्मुख रहे अरे तुम !
उस अनन्त की ओर —
जहाँ प्रम का नया सूर्य —
उगता ले नूतन भोर ।
जहाँ नवीन साँझ–वेला
आती ले नूतन प्यार,
जहाँ चाँदनी में करते —
हिल मिल प्रिय सदा विहार ।
बादल भी तव शृंगों पर —
आकर करते विश्राम —
ऐसा लगता स्वर्ग तुम्हारे —
ऊपर है अभिराम ।
तुम्हें झुकाने आये कितने —
भीषण झंझावात —
तुम्हें झुकान आये कितने —
प्रलयङ्कर उत्पात ।
पर तुमतो अन्तर्द्रष्टा थे —
रहे उठाये शीश —

हार मान कर विघ्न बने —
तब पथ के प्रिय आशीष ।
ऊपर से कठोर पर भीतर से —
हो तुम नवनीत —
ताप–तप्त जग देख दृगों से —
धार बहाते मीत ।
प्रचुर पत्थरों मे शोभा का —
बाँध एक भंडार —
मूर्तिमान तुम उस महान्
कवि की कविता सुकुमार ।
करुण हृदय शत शत छन्दों में —
रहा तुम्हारा फूट —
झरनों में भी व्याप्त तुम्हारा —
है संगीत अटूट ।
तुमने देखा है जीवन में —
वह विकास का काल —
जब न ताप त्रय मानव के —
उर में करते ये शाल ।
तुमने देखा अपने से भी —
बड़ा विभव का कोष —
तुमने देखा बड़े बड़े —
सम्राटों का वह रोष ।
पर अब तुम यह देख रहे हो —
मानव का दुर्वेष —
ठुकराया जाता पर आता —
उसको तनिक न त्वेष ।
मानव ईश्वर की प्रतिमा है
पर वह कितना दीन ?
उसका रक्त चूस कर होते —
धनिक और भी पीन ।
उन धनिकों ने ही ईश्वर का —
विकृत कर दिया रूप —
उन धनिकों ने ही छाया को —
बना दिया कटु धूप ।
फिर भी दलित पीड़ितों की —
सुन कर यह आर्त पुकार —
नहीं तुम्हार गंगा यमुना में —
आता है ज्वार ?
अनाचारियों को जो पल में —

हुबा – बहा दे दूर,
या फिर कोई शृङ्ग टूट कर —
कर दे चकनाचूर ?
शृङ्ग न टूटा किन्तु हुआ यह —
मुझको पूर्ण प्रतीत —
झाँक उठा उद्ग्रीव हिमालय —
है वह कहाँ अतीत ?
‘एक स्वप्न – सा चला गया —
तब रहे अरे ! तुम मौन ?
देखें अब उसके लौटाने में —
समर्थ है कौन ?
गूँज उठा यह कौन ? कौन है ?
माता का प्रिय लाल ?
किसको ये (यौवन) त्रय अक्षर
पाकर हुये निहाल ?
कौन आज युग धर्म निमंत्रण —
को करके स्वीकार ?
प्रकट करेगा पीड़ित
मानवता पर दिल से प्यार ?
कौन फूल की जगह —
कंटकों का छिनेगा ताज ?
कौन बचायेगा अपनी —
माता बहनों की लाज ?
कौन शृङ्खलाये तोड़ेगा
करके नव निर्माण ?
श्रम – दान कर कौन करेगा
जन जन का कल्याण ?
कौन कौन ? मै ही राहुल गा —
आकर तड़ित – प्रवाह —
अब न सुनाई कहीं पड़ेगी —
आर्तजनों की आह ।
हे गिरीन्द्र ! मैं शपथ तुम्हारी —
करता हूँ सौ बार —
मेरे प्रतिक्षण में अङ्कित होगा —
स्वदेश उद्धार ।
हे मयङ्क ! पङ्कज पवित्रता —
अब न बनेगा और !
प्रेम पुष्प का चारु चाँदनी
छिटकेगी सब ठौर ।

साक्षी गंगा यमुना सन्दी—
रहना ओ रजनीश ?
माँ के चरणों पर ही केवल—
एक झुकेगा शीश ।
धीरे - धीरे चारु चाँदनी—
चली स्वर्ग की ओर—
मानो यह सन्देश सुनाने को—
हो प्रेम - विभोर ?
प्राची प्राङ्गण में उषा—
आई ले नवल हिलोर—
रजनी के बालों के मोती -
चुन चुन रही बटोर ?
वृक्षों की चोटिया मजे ले—
रहीं नशे में झूम—
शीतल मन्द सुगन्ध समीरण—
रहा चतुर्दिक घूम ।
दुनिया में प्रवृत्त होने की—
खुशी लिये ये फूल—
इस रूपाभ मधुर वेला में —
हँसते सब कुछ भूल ।
मानव मन की अभिलाषा - सी—
किरणें चारों ओर—
लगी फैलने, पक्षी गण भी—
लगे मचाने शोर ।
देख प्रकृति - सौन्दर्य—
परस्पर मानो करते बात—
भोले शैशव-सा प्यारा—
आया यह मधुर प्रभात ।
भ्रमर पंक्ति पीले पीछे—
फूलों पर करती नाच—
मानो खोटा खरा, कसौटी
सोना करती जाँच ?
अथवा श्याम रंग फिर होगा—
जगती का सरताज—
इसकी ही यह अग्र सूचना—
देता भ्रमर—समाज ?
या कञ्चन से कान्त—
कपोलों पर प्रिय अलक ललाम—
लिखती-सी विचित्र लिपि में—
कुछ आकर्षण उद्दाम ?
अरुण बिम्ब का और जाह्नवी—
का होता है मेल ;
पानी में भी आग जल रही—
कैसा अद्भुत खेल ?
नीर परिधि में बन्दी होकर—
बिम्ब न फिर भी बन्द—
काया की माया में पड़ ज्यों—
जीव सदा स्वच्छन्द ।
जंगल में अनदेखे कितने—
फूल उठे हैं फूल,
हम सबके अनदेखे ही वे
मिल जायेंगे धूल ।
ऐसे कितने ही आँसू—
बह जाते हैं चुप चाप—
जिन्हें न दुर्बल दृष्टि—
मनुज की कभी, गिन सकी आप ?
जो न पकड़ में आता—
उसका भी जग में है मूल ;
कितने ही रहस्य अविदित हैं—
समझो ! करो न भूल !!
सारी संसृति उस महान के—
आलिङ्गन में बद्ध,
उसका चिन्तन मनन करेगा—
सुख-सौभाग्य समृद्ध ।
आयु समाप्त हुई रजनी की
आया नवल विहान,
मर जाने ही में जीवन का—
मिलता है वरदान ।
मरती तो है मृत्यु, किन्तु —
जीवन है अमर अनन्त ,
स्वादु गंध रुचि में—
जीवन का रहता सदा बसन्त ।
ऐसा मरण मरो जिससे—
जग को हो जीवन प्राप्त !
ऐसा जीवन जियो कि जग की—
होवे मृत्यु समाप्त !!

अखण्ड ब्रह्मचारी

(ले०—श्री प्रियव्रतजी वेद वाचस्पति आचार्य
गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी)



महाभारत युद्ध के आरम्भ में जब अर्जुन लड़ने के लिए उद्यत नहीं हो रहा था तो उसे संग्राम के लिए प्रोत्साहित करने के लिए श्री भगवान् कृष्णचन्द्र जी महाराज ने जहां उसे गीता का उपदेश दिया था वहां अपना विराट् रूप भी दिखाया था ऐसा महाभारत में वर्णन आता है। श्री कृष्णचन्द्र जी के उस विराट् रूप के सम्बन्ध में महाभारतकार ने सञ्जय के मुख से कहलवाया है—

दिवि सूर्य सहस्रस्य, भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मनः॥

अर्थात्—"यदि आकाश में हजार सूर्य एक साथ इकट्ठे होकर चमकने लगे तो उनकी जितनी आभा और कान्ति होगी उतनी आभा और कान्ति अपना विराट् रूप अर्जुन को दिखाते समय भगवान् कृष्णचन्द्र जी की था।"

मैं जब कभी भगवान् दयानन्द के व्यक्तित्व का स्मरण करता हूं तो मुझे सञ्जय का यह श्लोक अनायास स्मरण हो आया करता है। संसार के इतिहास में जितने महा पुरुष हो गये हैं वे सब अपने अपने क्षेत्र के सूर्य थे। अपने अपने क्षेत्र में उनकी अद्वितीय आभा और कान्ति थी। परन्तु जब मैं भगवान् दयानन्द के जीवन और कार्यों को देखता हूँ तो मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि जब इन सब महा पुरुषों को एकत्र कर दिया जाय तब भगवान् दयानन्द की आभा और कान्ति बनती है। मैं अपने मन की बात कह रहा हूँ। मुझे तो भगवान् दयानन्द ऐसे ही—लगते हैं। अन्य महा पुरुष एक एक सूर्य हैं। दयानन्द इन सहस्रों सूर्यों की कान्ति के बराबर कान्ति वाले एक विराट सूर्य हैं।

राजा हरिश्चन्द्र का सत्य, महात्मा बुद्ध, ईसा और गांधी जी आदि महा पुरुषों की अहिंसा तथा दुःखिया और कष्टापन्न लोगों के लिए प्रेम, भगवान् शंकर का तर्क और दर्शन ज्ञान, महर्षि याज्ञवल्क्य और व्यास आदि का वेद ज्ञान, महाराजा जनक और अनेक ऋषि और महर्षियों का ब्रह्मज्ञान, गोखले तिलक आदि की राजनीतिज्ञता, लक्ष्मण, हनूमान, भीष्म, शंकर आदि महापुरुषों का ब्रह्मचर्य और संयम, भगवान श्री कृष्णचन्द्र का निष्काम कर्म ये सब महर्षि दयानन्द में चरम सीमा में विद्यमान थे, विभिन्न सूर्यों का तेज उस एक सूर्य में सन्निहित था।

सब क्षेत्रों में भगवान् दयानन्द की सीमातिगामी स्थिति को विस्तार के साथ लिखने का अवसर और स्थान नहीं है। उनके प्रचण्ड ब्रह्मचर्य के विषय में आज उनकी पुण्य स्मृति के दिन कुछ पंक्तियों लिखने की इच्छा होती है।

ब्रह्मचर्य का सिद्धान्त उन कुछ थोड़े से सिद्धान्तों में से है जिनके आधार पर आर्य सभ्यता का भवन खड़ा हुआ है। भगवान् दयानन्द ने ब्रह्मचर्य की महिमा पर अपने ग्रन्थों और उपदेशों में जितना बल दिया है उतना अन्य बहुत कम बातों पर दिया है। दयानन्द ने स्वयं अपने जीवन में ब्रह्मचर्य का अनुभव किया था वे अखण्ड ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य में अपना निराला रस होता है। आजन्म और अखण्ड ब्रह्मचर्य के रस के निरालेपन का तो कहना ही क्या? दयानन्द ने इसी अखण्ड ब्रह्मचर्य के रस का पान किया था। वे आर्य जाति के बच्चे-बच्चे को ब्रह्मचर्य का पाठ

पढ़ा कर उसके जीवन को सच्चे और सात्विक सुख से भरना चाहते थे। उन्होंने देख लिया था कि ब्रह्मचर्य के अभाव में शरीर जीर्ण शीर्ण और रोगों का घर बन जाता है। ज्ञान शक्ति विलुप्त हो जाती है। उत्साह उमंग और हौसले का अभाव हो जाता है। कोई भी सद्गुण पनप नहीं सकता। ब्रह्मचर्य हीन व्यक्ति शारीरिक मानसिक और आत्मिक सभी दृष्टियों से निःशक्त और तेज हीन हो जाता है। ऋषि दयानन्द ने देखा था कि आर्य जाति ब्रह्मचर्य की महिमा को भूल कर निःशक्त और तेजो हीन व्यक्तियों का समुदाय बन कर सभी क्षेत्रों में परम अवनत अवस्था को प्राप्त हो रहा है। इस अशक्ति और तेजो हीनता के रोग की एक मात्र रामबाण औषध ब्रह्मचर्य का सेवन है। ऋषि ने इस सत्य का अनुभव करके भारत के कोने कोने में ब्रह्मचर्य के मन्त्र का फूंकना आरम्भ किया।

दयानन्द ब्रह्मचर्य के अपने प्रवचनों का स्वयं ही उदाहरण बने। वे आजन्म और अखण्ड ब्रह्मचारी रहे। और इस प्रकार के पराकाष्ठा के ब्रह्मचर्य का सेवन करके उन्होंने अपने भीतर शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की असीम शक्तियों का सञ्चय किया। उनके विलक्षण पाण्डित्य और अद्वितीय तर्क शक्ति के सम्मुख कोई प्रतिपक्षी ठहर नहीं सकता था। उनके आत्मिक तेज के आगे भयंकर से भयंकर विरोधी फीके पड़ जाते थे। उनका शारीरिक बल भी अद्वितीय था। चार चार घोड़ों की बग्घी को रोकना, बड़े बड़े पहलवानों को अपनी कांखो दबोच कर कूद जाना, मस्ताने सण्डों को सींगों से पकड़ कर ढकेल देना, जंगली रीछों को अपनी हुंकार से डरा देना, उनके लिए साधारण बात थी।

ऋषि का ब्रह्मचर्य कितना अखण्ड और पूर्ण था इस पर उनके जीवन की एक घटना से बहुत प्रकाश पड़ता है कलकत्ता नगरी में उपदेश करते हुये ऋषि ने एक दिन ब्रह्मचर्य पर प्रवचन किया। जनता ब्रह्मचर्य की महिमा सुनकर गद्‌गद हो गई। अगले दिन उनके डेरे पर एक युवक पहुँचा। यह युवक आगे चलकर बंगाल के प्रसिद्ध नेता अश्विनी कुमार दत्त के नाम से प्रख्यात हुआ। युवक ने ऋषि से कहा—भगवन् मैं कौतूहलवश एक प्रश्न आप से पूछना चाहता हूँ। क्या आप मेरे प्रश्न का समाधान करेंगे ? ऋषि ने उत्तर दिया युवक तुम प्रश्न पूछो, यदि हम उत्तर आता होगा तो हम अवश्य उत्तर देंगे। युवक ने कहा कि महाराज मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या कभी आप के मन में भी काम का विकार उत्पन्न नहीं होता ? मैं ऐसा समझता हूँ कि आप में भी और मनुष्यों की भान्ति कभी न कभी काम का विचार या विकार आ ही जाता होगा। और लोग ब्रह्मचारी नहीं हैं इसलिए वे अपने विचार को दबा नहीं सकते आप ब्रह्मचारी हैं इस लिए आप अपने मनोविकार को दबा लेते होंगे। ऋषि ने कहा युवक ? तुमने बेढब प्रश्न पूछा है। पर मैं तुम्हारे प्रश्न का सही सही उत्तर देने के लिये समाविस्थ होकर अपने अब तक के सारे जीवन पर दृष्टि पात करके उसका सिंहावलोकन करता हूँ। यह कह कर ऋषि कुछ देर के लिए समाविस्थ हो गये और अपने सारे जीवन की जाच करने लगे। कुछ देर के बाद समाधि भङ्ग करके कहने लगे युवक ? हमें तो नहीं याद पड़ता कि कभी हमारे मन में भी काम का विकार उत्पन्न हुआ हो। कितना निरभिमान उत्तर था।

युवक ने फिर पूछा कि महाराज आप ने यह ऊंची स्थिति किस साधना और किस उपाय से प्राप्त की है ? ऋषि ने कहा कि इसका उपाय तो बड़ा सरल है। वह यह है कि मैं कभी अपने मन को खाली नहीं रहने देता। मैं हर समय किसी न किसी काम में लगा रहता हूँ। कभी वेद भाष्य, कभी वेदांग प्रकाश लिखना, कभी दर्शकों के प्रश्नों का समाधान, कभी व्याख्यान, कभी शास्त्रार्थ, और कभी पत्रोत्तर लिखवाना, और जब कोई और काम नहीं होता तो ओंकार का जाप कर रहा होता हूँ। या समाविस्थ हो जाता हूँ। काम आता होगा तो मेरे मन की द्वार को बन्द पाकर वह वापिस चला जाता होगा। ऋषि ने कैसा सरल और उत्तम उपाय बता दिया है। जो ब्रह्मचारी रहना चाहता है वह कभी अपने मन को खाली न रहने दे। वह किसी न

"स्वतन्त्रता का प्रथम पुजारी"

(लेखकः-डा० सूर्यदेवशर्मा साहित्यालंकार सिद्धान्त शास्त्री, एम. ए. एल. टी. डी लिट् अजमेर)

आज जो भारत में स्वतन्त्रता सूर्य का उदय हुआ, सारे देश में राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक चेतना ने उत्तरोत्तर परिवर्तित होते हुये जो रूप ग्रहण किया है उसका श्रीगणेश किस महापुरुष ने किया था ? किसने बीज रूप में इन सबको विशाल भारत निवासियों के हृदय प्रांगण में बिखेरा ? यह इस लेख में पढ़िये।

—सम्पादक



र्य समाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द का पद संसार के महान सुधारकों में बहुत ऊँचा है। अब भारत स्वतन्त्र हो चुका है लेकिन भारतीय स्वतन्त्रता के लिये भूमि तैयार करने में ऋषि दयानन्द का हाथ सबसे अधिक रहा। स्वतन्त्रता प्राप्ति और देशोन्नति के जो २ साधन और सुधार थे उनका बीजवपन करने वाले ऋषि दयानन्द ही थे। हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियों और पाखण्ड के खण्डन में जहाँ वह अग्रसर रहे वहाँ रचनात्मक कार्यों में भी वह अग्रगण्य थे। महात्मा गांधी के बहुक्षेत्र व्यापी सुधारों के लिये उन्होंने एक उत्तम भूमि निर्माण की। हिन्दू जाति में प्रचलित बाल विवाह बहु विवाह जाति पांति के भेद भाव पर उन्होंने प्रबल कुठाराघात किया। अछूतोद्धार आर्य भाषा प्रचार देव वाणी संस्कृत का सम्मान तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति का उद्धार उनके मुख्य आदर्श तथा उद्देश्य रहे हैं।

इन समस्त सुधारों के अतिरिक्त स्वामी जी का नाम भारतीय स्वतंत्रता के आदि निर्माताओं में आदर के साथ लिखा जायगा। जब भारत में स्वराज्य का कोई नाम भी नहीं जानता था और राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय सन् १८७५ में स्वामी जी ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में भारत वर्ष के लिये अखण्ड, स्वाधीन, स्वतन्त्र और निर्भय स्वराज्य का प्रतिपादन किया था और लिखा था कि विदेशी शासन चाहे कितना भी अच्छा क्यों न हो अपने शासन से अच्छा नहीं हो सकता। इसलिये भारतीय स्वतन्त्रता के महान कर्णधार नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने स्वामी जी के सबंध में अपने विचार प्रकट करते हुये लिखा था "स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महान् व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने नवीन भारत का निर्माण किया। इसी प्रकार कवि सम्राट

किसी काम में उसको सदा लगाए रखे।

ऐसा संयम और ब्रह्मचर्य का धनी था हमारा आचार्य ! जाति के जीवन को सर्वांगीणरूप से सशक्त और तेजोमय बनाने के लिए ब्रह्मचर्य के औषध की आज भी ऐसी ही आवश्यकता है जैसी ऋषि ने अनुभव की थी। प्रकृति प्रधान और इन्द्रिय सुख परायण पश्चिमी सभ्यता से हमारे नवयुवक और नवयुवतियां अनेक ऐसी बातें सीख रहे हैं जो जीवन में से संयम को सर्वथा नष्ट कर देने वाली हैं। सिनेमा इन संयम विरोधी चीजों में शायद सबसे भयंकर है। संयम हीनता की बाढ़ को रोकने के लिए ऋषि दयानन्द के अनुयायियों को अपने आचार्य का अखण्ड ब्रह्मचर्य और मानव जाति के कल्याण के लिए दिया हुआ उसका ब्रह्मचर्य का संदेश सदा स्मरण रखना होगा।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने (जिनको कि महात्मा गांधी अपना गुरुदेव कहा करते थे) लिखा है 'आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्व के अज्ञान से मुक्त कर भारत को सत्य और पवित्र का जागृति में लाने वाले गुरुवर दयानन्द को मेरा बारम्बार प्रणाम हो"। स्वराज्य के मूल मंत्र के साथ ही स्वामी जी ने स्वराज्य के साधनों अर्थात एक भाषा एक वेश, एक देश एक आराध्य परमेश तथा पारस्परिक अद्वेष और ब्रह्मचर्य के सदेश पर विशेष बल दिया और स्वयं एक आदित्य ब्रह्मचारी तथा सरल जीवन और सत्य के पुजारी के रूप में एक उच्च आदर्श भारतीय नवयुवकों के सम्मुख उपस्थित किया जिसकी सराहना विश्ववन्द्य महात्मा गांधी जी ने इन शब्दों में की थी:—

"महर्षि दयानन्द भारत के आधुनिक ऋषियों में सुधारकों में श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे, उनका ब्रह्मचर्य उनको विचार स्वतन्त्रता, उनका सबके प्रति प्रेम, उनकी कार्य कुशलता इत्यादि गुण लोगों को मुग्ध करते थे" स्वामी जी अत्यन्त ईश्वर विश्वासी, सत्य के पुजारी तथा सरल जीवन के प्रेमी थे और वह देशोत्थान में साम्प्रदायिकता को अत्यन्त अहितकर समझते थे। देश में राजनैतिक और धार्मिक एकता को उत्पन्न करने की दृष्टि से ही उन्होने दिल्ली दरबार के समय भारत के विभिन्न सम्प्रदायों के तत्कालीन नेता श्री केशव चन्द्र सेन, सर सैयद अहमद खाँ तथा ईसाई पादरी आदि को आमन्त्रित किया था किंतु उस समय देश के दुर्भाग्य से इस कार्य में उनको सफलता न मिल सकी।

इन सबसे बढ़कर स्वामी जी का एक महान् चिरस्थायी कार्य उनका सन् १८७५ ईस्वी में बम्बई में आर्यसमाज का स्थापना करना था जिसकी शाखायें आज समस्त भारत में तथा मलाया, ब्रह्मा, मारिशस, अफ्रीका फिजी तथा अमेरिका आदि तक विस्तृत हैं। साम्प्रदायिक भावना से दूर रह कर आर्यसमाज ने प्राचीन आर्यसंस्कृति, हिन्दूजाति, हिन्दी भाषा, अछूतोद्धार, जातिभेद निवारण, विद्या प्रचार स्त्री जाति का उद्धार, स्वदेशी प्रचार तथा देशोद्धार के विभिन्न क्षेत्रों में जिस त्याग तप, संलग्नता, साहस और सेवाभाव से महान् कार्य किया है वह किसी से छिपा नहीं आर्यसमाज ने अनेक ऐसे नवयुवक उत्पन्न किए जो देश की स्वतन्त्रता के लिये हँसते २ अपने प्राणों का बलिदान कर गए और उनमें से अनेक विधर्मियों की साम्प्रदायिकता का शिकार बन गए। जहाँ एक ओर आर्य समाज ने हिंदूजाति और भारत देश में एक अद्भुत जागृति करने के लिये सैकड़ों डी. ए वी हाई स्कूल, कालेज, गुरुकुल, कन्या पाठशालायें आदि संस्थापित की, वहां दूसरी ओर स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज तथा पंजाब केसरी ला० लाजपतराय जैसे महान् त्यागी नेता देश को दिये जिन्होने अपने रक्त से भारतीय स्वतन्त्रता के पौधे को सींचा। श्री ला० लाजपतराय जी तो कहा करते थे 'स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं मैंने संसार में केवल उन्हीं को एक मात्र अपना गुरु माना है, वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्य समाज मेरी धर्म की माता है।"

जिस आर्य समाज के कर्णधारों ने आर्यसंस्कृति की रक्षा और देश के उत्थान में इतना सक्रिय भाग लिया और ले रहे हैं उसके प्रवर्तक स्वामी दयानन्द वास्तव में आधुनिक युग के एक ऋषि थे। गुरु दक्षिणा चुकाने के लिये उन्होंने जो व्रत लिया था उसी को पूरा करने में उन्होंने अपना समस्त जीवन लगा दिया और अन्त में हँसते हसते विषपान करके अपने जीवन को अर्पण कर दिया। सम्वत १९४० दीपावली के सायंकाल को अजमेर नगरी में यह कहते हुये "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" वह स्वर्ग सिधार गये। दीपावली को ज्ञान और जागृति का वह सबसे बड़ा दीपक सहस्त्रों दीपकों को अपनी ज्योति से प्रकाशित कर सदा के लिये बुझ गया।

करें हम ऋषि की याद सहर्ष,
दीपावली का यह शुभ संदेश।
विश्व में हो वैदिक उत्कर्ष,
रहे स्वाधीन हमारा देश॥

स्वाधीन भारत में आर्य समाज

(श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालङ्कार)

(मान्य लेखक ने अपने इस लेख में आर्यसमाज का आत्मशुद्धि और देश विदेश में विराट् रूप धारण करने की प्रेरणा की है जिस प्रकार बौद्धों का भिक्षु वर्ग अथवा ईसाइयों का मिशन करता रहा है; परन्तु धर्मार्य सभा बिना राजार्य सभा कहाँ तक सुयोजित हो सकता है यह पाठक गण स्वयं निर्णय करेंगे।

—सम्पादक



अलखनन्दा की चोटी पर खड़े ऋषि दयानन्द आर्त्त भारत की करुण पुकार सुन कर वैयक्तिक मुक्ति का परित्यागर कर पीड़ित दलित और शोषित जन समाज की सेवा के लिए हिम शिखर से उतर आए। ऋषि की तपस्या का चमत्कार आर्य समाज के प्रसार के रूप में दिखाई दिया। आर्य समाज वनाग्नि के समान नहीं बल्कि विद्युत् गति से फैला।

आर्य समाज धूम्रकेतु के समान आकाश में चमका। पर देश विभाजन के एक झटके ने आर्य समाज को वहाँ से समाप्त कर दिया जहाँ उसकी सर्व प्रथम विधिवत स्थापना हुई थी और जो आर्य समाज का सब से प्रबल दुर्ग समझा जाता था। देश के एक भाग से आर्य समाज का अन्त हो गया, आर्य समाज का ही नहीं उसकी विचार धारा का भी अन्त हो गया। इसका कारण क्या है? क्या कभी इस पर हमने विचार किया?

कोई भी विचार आदर्श और धर्म दो ही प्रकार से फैल सकता है। चरित्र की श्रेष्ठता और सेवा। ... फैलने में और जनता द्वारा अपनाए जाने में कोई सन्देह नहीं रहता। चरित्र और सेवा ऐसा आकर्षण है जो विरोधी को भी मुग्ध और प्रशंसक बना देता है। समाज ने शिक्षा प्रसार को अपनाया पर ये शिक्षा संस्थाएँ प्रचारक न बन कर उस पर भार हो गईं। आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिये समाज को ऐसे मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा जिससे इसके चरित्र की श्रेष्ठता, उज्ज्वलता और तेज मन्द पड़ गए। आर्य समाज एक भट्टा था, जिसका कार्य मजबूत ईंटें बनाना था पर जब भट्टा बनाने वाले ही कमजोर और शिथिलांग हो गए, वे मजबूत ईंटें कैसे बनाते? आज हमारे समाज में जो भ्रष्टता नजर आती है, चोर बजार फैला हुआ दिखाई देता है मँहगी बढी हुई है इन सब के मूल में एक कारण है जिस पर ऋषि दयानन्द बराबर बल देते रहे। महर्षि का कहना था कि जब तक हमारा चरित्र शुद्ध न होगा हम अपनी नैतिक और मानसिक दुर्बलता दूर न कर सकेंगे। और आत्मिक दृष्टि से बलवान न हो सकेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण हम स्वाधीन हो गए, पर हमारी अवस्था पतन के मार्ग पर ही हुई है। ...

गोचर नहीं होता। ऋषि ने जिस प्रकार के ज्ञानवान जन समाज की कल्पना की थी आज भी उसका कहीं पता नहीं है। आज भी हमारा समाज दूसरों की बुद्धि से सोचता है और दूसरे के लैम्प से प्रकाश पाकर मार्ग ढूँढता है। मानसिक और बौद्धिक पराधीनता का अन्त नहीं हुआ। प्रश्न यह कि आर्य समाज इस कार्य को सब इस परिवर्तित समय में कैसे करे?

हरेक देश अपने सैनिकों का सम्मान करता है और उन पर गर्व करता है। सबसे पहले उनकी आवश्यकता पूरी करता है। पर हमारा क्या हाल है? हम अपने शिक्षकों कार्य कर्ताओं और उपदेशकों से क्या बर्ताव करते हैं? उनको भाड़े का टट्टू समझ कर उनका बड़ा निरादर करते हैं और उनको साधारण पारिवारिक चिन्ताओं से भी मुक्त रखने की चेष्टा नहीं करते। क्या आज के आर्य समाज में धर्मवीर लेखराम का होना सम्भव है?

स्कूलों के मैनेजर अपने को डिक्टेटर से कम नहीं समझते। उनका शिक्षकों से व्यवहार ताना शाह के समान होता है। आर्यसमाज को इस लिए महान् आत्मशुद्धि की आवश्यकता है।

आर्य समाज में ठेकेदारों की कमी नहीं है पर क्या इन ठेकेदारों का बर्ताव अन्य ठेकेदारों से भिन्न होता है? क्या वे अधिक सहृदयता से मजदूरों के साथ बर्तते हैं? क्या वे मजदूर वर्ग को अपने जैसा ही आदमी समझते हैं? यदि ऐसा नहीं है तो आर्य समाज कैसे आशा कर सकता है कि वह जन समाज में फैलेगा और जन समाज उसकी विचार धारा को स्वीकार करेगा? प्रश्न यहीं आकर रुकता है कि वह नैतिक बल कहाँ है, और शुद्ध चरित्र कहाँ है? जिससे जन समाज मुग्ध हो कर आकृष्ट हो?

इसलिए यह बात नहीं कि भारत के स्वाधीन हो जाने से आर्य समाज की आवश्यकता का अन्त हो गया, बल्कि वह पहले से दुगनी बढ़ गई है। उसको स्वाधीनता के रक्षक दृढ़ चरित्र के सैनिक तैयार करने हैं जो बड़ा से बड़ा प्रलोभन आने पर भी देश को किसी भी अवस्था में न बेचें और राष्ट्र के साथ विश्वासघात न करें। आज भी देश में ९० प्रतिशत निरक्षर हैं और उनको ज्ञानवान बनाने की आवश्यकता है। आज ग्राम मूढ़ता और रोग के घर बने हुए हैं और उनको उनसे मुक्त करना है। लगभग ५० लाख प्रवासी भारतीय दुनियाँ के विभिन्न भागों में फैले हुए हैं। उनके साथ मातृ भूमि का सम्पर्क बनाये रखने वाले शिक्षकों, प्रचारकों,, मिशनरियों की जरूरत है। आज भी आर्य समाज के साहित्य का विस्तार ऋषि के ग्रन्थों से आगे नहीं हुआ है जिसे वह दुनिया के सामने गर्व से रख सके और जिसको पढ़ने के लिए विश्व का विद्वत्समाज लालायित हो। प्रश्न यह है कि यह सब कैसे हो?

आर्य समाज में शिक्षालयों की कमी नहीं है पर उनका संचालन किसी विशिष्ट उद्देश्य से किया जाता है यह दिखाई नहीं देता। हिन्दी को ऋषि दयानन्द ने सर्व प्रथम अपनाया, पर आर्य समाज यह दावा नहीं कर सकता कि उसके गुरुकुलों की हिन्दी प्रामाणिक हिन्दी है और उसको ही सन्देह होने पर प्रमाण मानना चाहिए, जैसे ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी की अंग्रेजी प्रामाणिक मानी जाती है। गुरुकुल को खोज और अन्वेषण का केन्द्र बनाया जाय। दुनिया के किसी विद्वान को हिन्दी या संस्कृति के किसी ग्रन्थ के विषय में सन्देह हो तो वह उसकी निवृत्ति के लिए गुरुकुल से परामर्श करना अनिवार्य माने। यह स्थिति हमको उत्पन्न कर देनी चाहिए। जन साधारण से संपर्क बढ़ाने के लिए आर्य समाज को गाँवों की ओर मुँह मोड़ना चाहिए। सातवें दिन संध्या और हवन करने से ही उसको सन्तुष्ट न होना चाहिए। गाँवों को सुन्दर और रोग मुक्त बनाने का यत्न करना चाहिए। जो धर्म, विचार और आदर्श जनता को नीरोग, समर्थ और ज्ञानवान और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनायेगा वही समाज जनता के हृदय में स्थान पा सकेगा।

आर्य समाज को आर्य संस्कृति के प्रचारकों का एक दल तैयार करना चाहिए जो आ[illegible] तथा

प्रवासी भारतीयों का मातृभूमि के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध बनाये रखने में सहायता दे ।

स्वाधीन भारत में आर्य समाज पहले से भी अधिक महत्वपूर्ण और गौरवपूर्ण स्थिति प्राप्त कर सकता है, यदि वह परिवर्तित स्थिति के अनुसार अपना नया कार्यक्रम बनायेगा और सेवा का बीहड़ मार्ग पकड़ेगा क्या हम ऋषि निर्वाणोत्सव के इस पुण्य अवसर पर जन सेवकों, प्रचारकों, शिक्षकों, चिकित्सकों और मिशनरियों की एक विशाल सेना बनाने का संकल्प करेंगे ?

महर्षि दयानन्द को विष किसने दिया ?

(श्री देवीप्रसाद जौहरी)



सत्य कल्पना से भी अद्भुत होता है । २५ वर्ष पूर्व की घटना है । वैशाख मास था रेगिस्तान की तेज गर्मी थी, जोधपुर में उस समय वाटर वर्क्स नहीं था । वहाँ एक बहुत बड़ा तालाब है जिसमें वर्षा ऋतु में पानी संचित किया जाता है और उसे वर्ष भर उपयोग में लाया जाता है । वहीं पर एक सायंकाल को गर्मी से उत्तप्त होकर मैं भी पहुँच गया वहाँ एक ७० वर्ष के वृद्ध सज्जन को मैंने सन्ध्या करते देखा । मुझे वह आर्य समाजी प्रतीत हुए अत ऋषि दयानन्द के जीवन सम्बन्धी कुछ घटनाएं जानने की मैंने उत्सुकता प्रकट की, क्योंकि राजस्थान स्वामी जी का प्रधान कार्य क्षेत्र रहा था । उन्होंने कहा 'पहले वचन दो कि किसी से भी मेरा नाम नहीं लोगे' विश्वास हो जाने पर फिर कहा — यूं तो स्वामी जी के जीवन-चरित्र लिखे जा गये हैं, परन्तु एक घटना का उल्लेख कहीं भी नहीं है और न उसे प्रकाशित करने का कोई साहस ही कर सकता है । एक बार ऋषि दयानन्द जोधपुर महाराज के दरबार में उपस्थित थे जब एक राजकाय पत्र ब्रिटिश सरकार की ओर से देशी रियासतों के लिए आया हुआ, विचाराधीन था । दरबारी गण दुविधा में थे कि क्या उत्तर दें, क्योंकि उसका राजनैतिक प्रभाव रियासत की भावी स्थिति पर पड़ता था । अन्त में स्वामी जी के सुझाव के अनुसार उत्तर दिया गया । उस उत्तर से इंडिया हाउस (India House) में खलबली मच गई । भारत सरकार को आदेश आया कि जोधपुर महाराज से पत्रोत्तर देने वाले का नाम और सम्पूर्ण राज सभा का चित्र माँग कर भेजा जाय । ऐसा ही किया गया । ब्रिटिश राज सभा के चतुर निरीक्षकों ने चित्र पर नजर दौड़ाई परन्तु वह कहीं न अटकी । क्षुब्ध हो कर पार्लियामेंट का आदेश आया कि इस चित्र में वह व्यक्ति नहीं है जिसके मस्तिष्क से वह उत्तर निकला है । महाराज से उस व्यक्ति का नाम और चित्र लेकर भेजा जाय । पुनः स्वामी जी का नाम और चित्र भेजा गया अन्य रियासतों से भी उनके व्याख्यानों की रिपोर्टें सी॰ आई॰ डी॰ द्वारा पहुंच चुकी थीं । तुरन्त गवर्नर जेनरल को भर्त्सना मिली कि एक ऐसा खतरनाक व्यक्ति स्वच्छन्द घूम रहा है जिससे ब्रिटिश सरकार को बड़ा खतरा है और तुम्हारा ध्यान उस पर नहीं गया, यदि शीघ्र ही उसकी गति विधि बन्द नहीं करते हो तो तुम एक अयोग्य शासक सिद्ध होंगे । और इसके बाद केवल कल्पना ही की जा सकती है स्वामी जी को जगन्नाथ के द्वारा विष दिया जाना, सरकारी डाक्टर की चिकित्सा और स्वामी जी के निर्वाण के बाद ब्रिटिश सरकार की आर्य समाज पर वक्र दृष्टि इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी के लिए देखें श्री महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) जी द्वारा लिखित पुस्तक Arya Samaj and its detractors ।

१५ अगस्त सन् ४७ को जब आर्य समाज सिविल लाइन्स लखनऊ में स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया तब मैंने प्रथम बार इस घटना को सुनाया । क्या कोई अन्वेषक इस सत्य पर प्रकाश डाल सकेंगे कि ऋषि का वास्तविक विष दाता कौन था ?

ऋषि उत्सव अत्यन्त हर्ष से मनाइये

(ले० देशभक्त कुँवर चाँदकरण शारदा, प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान, मालवा, अजमेर)



आज दीपावली का पर्व है आज सारे भारत वर्ष में बड़े उत्साह से ऋषि उत्सव मनाया जा रहा है। हैदराबाद विजय से इस उत्सव की महत्ता और भी अधिक हो गई है। हैदराबाद में विजय पर आर्य वीरों को स्थान २ से बधाई के सन्देश भेजे गये हैं। आज उस मनस्वी महर्षि दयानन्द के गुणगान प्रत्येक आर्य कर रहा है क्योंकि उस तेज के पुञ्ज ने ही मानव जाति के लिये आज से ६२ वर्ष पूर्व प्राणों की आहुति दी थी। महर्षि के वैदिक सद्‌रा ने आर्यों के हृदयों में स्वतन्त्रता की प्रबल वेदना उत्पन्न की, और सारे संसार में खलबली मचा दी उस त्यागी तपस्वी ब्रह्मचारी धर्मवीर महर्षि दयानन्द सरस्वती की अदृश्य आत्मा आज सर्वत्र काम कर रही है। उसकी वाटिका के पवित्र कुसुमों का समूह करके प्रत्येक नरन री माला बना रहा है। स्वयं पहन रहा है, और दूसरों को पहना रहा है महर्षि दयानन्द चाहते थे कि सब को पेट भर अन्न मिले। रहने को मकान मिले। दवादारु का प्रबन्ध हो सुखी रहने के साधन सब का समान रूप से सम्पन्न हो। अज्येष्ठा सो अकनिष्ठास का सिद्धान्त पालन किया जाकर सब भाई २ के समान हैं। भारत का विधान प्रजातन्त्र के आधार पर बन रहा है। यह आर्य समाज की भारी जीत है।

देश के प्रान्तों, राजधानी नगरों ग्रामों के नाम बदल कर उनके स्थान पर सुन्दर प्राचीन नाम रक्खे जा रहे हैं। ताकि हमें हमारी प्राचीन संस्कृति पर अभिमान हो। राष्ट्रभाषा हिंदी कई प्रान्तों में हो रही हैं। और देवनागरी लिपि के प्रचार का सर्वत्र प्रबन्ध हो रहा है। विदेशी शासन के चिन्ह मिटाये जा रहे हैं। निरंकुश शासन सब जगह से समाप्त हो रहे हैं।

स्वतन्त्र भारत में आर्य समाज का नवीन कार्य क्रम निर्माण करने के लिए आर्यों की बृहत्त आर्य सम्मेलन की योजना बन रही है। हैदराबाद के बाद काश्मीर और काश्मीर के बाद पाकिस्तान पर आर्यसभ्यता की पताका लहराने के लिए और पुनः अखण्ड भारत के लिए आर्य वीरों की बाजूएँ फड़क रही है हमें दुख है आज प्राचीन सभ्यता की हँसी करने वाले हमारे में ही बैठे हैं वे लोग अपनी नेतागिरी इसी में मानते हैं कि आर्यधर्म और भारी संस्कृति का नाम स्वतन्त्रता संग्राम में कहीं न आजाय। वे लोग पश्चिमियों की नकल करना और धर्मान्ध मुसलमानों की खुशामद करना अपनी नेता गिरी का अङ्ग मानते हैं। आर्यसमाज व हिन्दू धर्म से घृणा करते हैं। परन्तु वे सफल नहीं हो पाते, आर्य समाज द्वारा प्रतिपादित सार्व भौम कार्य और सार्व भौम चक्रवर्ती राज्य ही संसार के तृतीय महायुद्ध को रोक सकता है। इसके लिए निरन्तर तेजस्वी प्रचार की आवश्यकता है। हमारे सिद्धान्त सब समझदार व्यक्ति मान रहे हैं। निश्चय ही आर्य समाज का उज्जवल भविष्य है। आर्य समाज संसार का पथ प्रदर्शक बनेगा और परमपवित्र वैदिक धर्म के झंडे के नीचे आकर दुःखी संसार सुखी होगा। महर्षि दयानन्द का यही सुख स्वप्न था जिसको पूरा करने के लिए हम दृढव्रती हैं। इसी लिये बड़ी प्रसन्नता के साथ दृढ़ संकल्प कर कर्म वीर बन कर आज हम ऋषि उत्सव तथा दीवाली उत्सव मना रहे हैं

T. B.
टी० बी० } 'तपेदिक तथा पुराने ज्वर के रोगियो-ध्यान पूर्वक पढ़ो !

भारतीय ऋषियों की खोज का अद्भुत चमत्कार (JABRI जबरी) एक आश्चर्य जनक घटना

मेरी स्त्री अनेक दिनों से बीमार थी, आखिर डाक्टरों ने 'तपेदिक' (टी० बी०) रोग बतलाया। 'तपेदिक' का नाम सुनते ही होश हवाश उड़ गये। अन्त में डाक्टरों ने ऐक्सरे करके दोनों फेफड़े खराब (गल जाने की बात कह कर मुझे आदेश दिया कि रोगी १०–१५ दिन का मेहमान है। इसको अस्पताल से ले जाओ और किसी अलग कमरे में रख दो। कोई इसके पास न जावे थूक आदि से बचाव रखो। लाचार होकर उसको घर ले आया।

फिर क्या हुआ ? अखबार 'मिलाप' में आपकी दवा 'जबरी' का विज्ञापन देखा। दिल ने कहा, जहाँ सैकड़ों रुपया हकीम, डाक्टरों की भेंट चढ़ा चुका हूँ, यह भी खर्च करके देखलूं। रोगी ने कहा कि जब डाक्टरों ने यह कह दिया है कि दोनो फेफड़े खराब हो चुके हैं और मैं १०–१५ दिन की मेहमान हूँ तो व्यर्थ क्यों खर्च करते हो, मुझे अब परमात्मा पर छोड़ दो। परन्तु दिल ने न माना और तुरन्त 'जबरी' नं० १ का आर्डर दे डाला। पांचवे दिन पार्सल पहुँच गया और विधि के अनुसार औषधि शुरू करा दी गई।

फिर क्या हुआ ? वही आश्चर्य जनक चमत्कार। जिस रोगी के बारे में डाक्टरों ने मौत का फतवा दे दिया था और ६ मास बराबर इलाज करने पर भी बुखार न गया था, शक्तिशाली औषधि 'जबरी' ने दस दिन में ही अपना चमत्कार दिखा दिया, बुखार बिल्कुल जाता रहा। शरीर में रक्त संचार होने लगा और दिल में पहले की सी उमंग पैदा हो गई। दिल में पूर्णरूप से विश्वास हो गया कि जिस दवा ने इतनी जल्दी ऐसा चमत्कार दिखाया है क्यों न स्त्री को एक बार वहीं ले जाकर पूर्ण रूप से परीक्षा करा कर आगे को इलाज का प्रबन्ध किया जाय। मेरी स्त्री की भी यही राय हुई।

फिर क्या हुआ ? जिस रोगी में चारपाई से उठने की शक्ति न थी हज़ारों मील रेल की यात्रा करके 'जगाधरी' आ गई। यहाँ पूर्ण परीक्षा के बाद उत्तम रूप से औषधियों का प्रबन्ध हुआ, रोगी की तन्दुरुस्ती दिन पर दिन बदलती गई और परमात्मा की कृपा से बिल्कुल ठीक हो गई है। यह ऋषियों के रक्त से सींचे हुए आयुर्वेद शास्त्र की पूर्ण सफलता का चमत्कार है। उपरोक्त घटना सरदार कर्तारसिंह इण्डियन मिलटरी जनरल हस्पताल, कराची से घटी।

पाठक वृन्द ! यह एक नहीं और भी देखिये ?

(१) लाला काशीप्रसाद वैश्य दारानगर (इलाहाबाद), (२) बा० मुन्नालाल स्टरकीपर सिम्भावली शूगर मिल पो० बक्सर (मेरठ), (३) बा० रामसिंह घर नं० ६१ रीठा मण्डी (देहरादून), (४) श्री तोमलहुसेन रईस मो० मुसेपुर पो० भरतकुण्ड जिला फैजाबाद (५) श्री-गिश्वर-प्रसाद तिवारी स्कूल नड़ुगावाँ पो० वालनगज (बिहार), (६) ठाकुरसिंह नैपाली मु० कटैया पो० हरलखी जिला दरभंगा, (७) श्री रामखलावनराम, भीखूराम पो बाजार गुसाईं जिला आजमगढ़, (८) श्री लीलाधर कापरी, आर० सी० बाड सेनाटोरियम, भवाली जिला नैनीताल, (९) श्री गोविन्दराव चौधरी लायब्रेरियन काटन मार्केट नागपुर (सी० पी०) आदि सैकड़ों सज्जनों का यही कहना है कि शक्तिशाली औषधि 'जबरी' दवा नहीं बल्कि यथार्थ मे रोगी को काल के गाल से बचाने वाली 'ईश्वरीय शक्ति' है। सैकड़ों हकीम वैद्य, डाक्टर, अपने रोगियों पर व्यवहार करके नाम पैदा कर रहे हैं। अनेक आदमी तार से आर्डर देते हैं। तार के लिए थोड़ा सा पता 'जबरी' (जगाधरी) (Jabri Jagadhri) लिख देना ही काफी है। मूल्य इस प्रकार है—"जबरी" स्पेशल नं० १ अमीरों के लिये जिसमें साथ साथ ताकत बढ़ाने के लिये सोना, मोती, अभरक आदि मूल्यवान भस्मे भी पड़ती हैं मूल्य पूरा ४० दिन का कोर्स ७५) रु० नमूना दस दिन के लिये २०), "जबरी" नं० २ जिसमें केवल मूल्यवान जड़ी बूटियाँ हैं पूरा कोर्स २८) रु० नमूना १० दिन ६) रु० महसूल आदि अलग हैं आर्डर में अखबार का हवाला तथा नं० १ दो साफ लिखें। तुरन्त आर्डर देकर रोगी को जान बचायें। १० दिन ही में अद्भुत चमत्कार दिखाई देगा। पार्सल जल्द प्राप्त करने के लिये मूल्य मनीआर्डर से भेजें, जिससे तुरन्त भेज दें।

पता—रायसाहब के० एल० शर्मा एण्ड सन्स, रईस एण्ड बैंकर्स [२१] "जगाधरी" (पूर्वी पंजाब)

भारतीय संस्कृति की तीन पवित्र शृङ्खलायें

(श्री र० वि० धुलेकर एम० एल० ए०)

वर्तमान भारत के उत्थान के प्रधान विधायक मेरी सम्मति से तीन महापुरुष हैं। क्रमशः महर्षि दयानन्द, लोक मान्य तिलक और राष्ट्रपिता महात्मा गाधी। इन्होंने वर्तमान भारत को अपने हाथों से बनाया। अन्य महान् व्यक्तियों और महा पुरुषों का इसमें योगदान नहीं है अथवा उनकी महत्ता किसी प्रकार कम करने का मेरा उद्देश्य है ऐसा न समझना चाहिये। अणु अणु में उसी परमात्मा का पूर्ण प्रकाश है।

किंतु जब हम लौकिक दृष्टि से विवेचना करते हैं तो हम किसी न किसी वस्तु अथवा व्यक्ति को अधिक महत्ता देने पर बाध्य हो जाते हैं। महर्षि दयानन्द का आगमन ऐसे समय हुआ जब भारत वर्ष अपनी संस्कृति, अपनी भाषा अपने संगठन, अपनी जातीयता, अथवा यों कहिये कि अपने धर्म, अपनी आत्मा का अनेक, शताब्दियों के परधर्मीय दुष्ट राज्यों से रक्षा करते करते थक सा गया था। कारण बड़ा बिकट था। दक्षिण में श्री गुरु समर्थ रामदास और शिवाजी प्रभृति, उत्तर में श्री गुरु नानक और उनके शिष्य वर्ग तथा श्री तुलसीदास तथा उनके अनुयायियों के प्रयत्नों से मुगलराज्य परास्त हो रहा था कि अकस्मात पश्चात्य जातियां स्पेन पुर्तगाल, फ्रान्स तथा इगलैंड के निवासी,छद्म वेषधारी वणिकों के रूप में आधमके। परिस्थित वही हुई जो स्पष्ट है कि यदि कोई पहिलवान डेढ़ दो घंटे किसी दूसरे शक्तिशाली पहिलवान से लड़ते लड़ते उसे चित करने पर आ रहा हो और ऐसी भरी हुई दम के समय, एक नहीं चार चार अन्य ताजे पहिलवान उस पर टूट पड़े। आश्चर्य यह नहीं है कि वह पहिलवान हारा क्यों? आश्चर्य तो यह है कि वह जीवित ही रहा क्यों?

सारे जगत के इतिहास में ऐसा देश कोई नहीं है जिसके निवासी शताब्दियों तक पर राज्य में रहें और जीवित रहें। क्या योरोप, क्या अफ्रीका, क्या एशिया, भारत से बाहर किसी देश को, देखिए, आक्रमण हुआ कि या तो वहाँ के आदि निवासी उन्मूलित होकर नष्ट हो गये या अपनी संस्कृति खोकर दूसरे बन बैठे। किसी अन्य सभ्य कहाने वाले देश में आदि निवासी न मिलते हैं और न उनकी संस्कृति ही मिलती है।

भारत में, जिसे लाखों वर्षों का तूफान देखना पड़ा है, उसके सिरके ऊपर से सहस्रों आपत्ति रूपी बाढ़े आईं और निकल गयीं किन्तु वह अभी तक वैसा ही खड़ा है। लोग कहते हैं कि भारतवासी बड़े धीमे चलते हैं, जल्दी बदलने पर तैयार नहीं हैं, नई रोशनी लेने पर तैयार नहीं, पाश्चात्य साइन्स और पाश्चात्य रहन सहन लेने पर तैयार नहीं है, बड़े ही कट्टर पथ हैं—किंतु तुलसी दास जी के बचनों में "जो अधिक चले भटकन कहाई।" अथवा यों कहिये कि जल्दी जल्दी रग गिरगिट ही बदल सकता है। जिस रंग में मौलिकता होती है वह बदलता नहीं। बाहिरी स्पर्श से मैला हो सकता है किंतु बदलता नहीं। मैल के छूटने से फिर वैसे का वैसा हो जाता है।

उपरोक्त विवेचन इस कारण किया गया कि यह स्पष्ट किया जा सके कि इन तीन महा पुरुषों ने क्या किया जिस से मै उन्हें वर्तमान भारत का रचयिता समझता हूँ

अंग्रेजी राज्य की स्थापना के बाद महर्षि दयानन्द ही प्रथम महान व्यक्ति थे जिन्होंने भारतवर्ष का पुनर्निर्माण कार्य सर्वतोमुखी अन्दोलन द्वारा प्रारम्भ किया। वर्तमान समय में जितनी प्रकार की हलचलें दिखाई देती हैं लगभग सबके जन्मदाता महर्षि जी थे। महात्मा गाधी ने भारतीय उत्थान के लिये सत्य और अहिन्सा के जो बीज मत्र प्रचारित किये उनका मूल महर्षि ने वेदों के अध्ययन और मनन के रुप में प्रारम्भ किया था, वेद ही भारत की आत्मा हैं वे ही ईश्वरीय ज्ञान हैं और भारत की सभ्यता के सभी तत्वों का जनक तथा उनका आ

क्या किसी शास्त्र पुराण अथवा मत या सम्प्रदाय के ग्रंथों में पायी जाती हे उन सभी का बीज वेदों में पाया जाता है। जो भी मत या सम्प्रदाय भारत में जन्म कर्म हुआ उसने अपने मत की पुष्टि में वेदों का ही सहारा लिया। अन्य मत से विरोध बताते हुये प्रत्येक ने यही प्रतिपादन किया कि उसका मत वेदानुकूल है अन्य का नहीं। अद्वैत केवलाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, परमात्मा जीव और प्रकृति का अनादित्व, मूर्तिपूजा अवतार वाद, यहां तक कि नास्तिकवाद तथा प्रकृतिवाद सभी का मूल सभी ने वेदों को ही बताया है। श्री मद शङ्कराचार्य का मायावाद उसी पर अवलम्बित है। श्री रामानुजाचार्य और श्री रामानन्द जी तथा श्री तुलसीदास जी सभी वेदों का ही आश्रय लेते है।

इस को महर्षि दयानन्द ने पहिचाना और अंग्रेजी राज्य के उच्चाटन तथा भारत की सुप्त आत्मा को जाग्रत करने का यही मार्ग ढूँढ निकाला। अन्य कोई भी मार्ग का अवलम्बन निष्फल होता। भारतीय समाज, - वास्तव में हिन्दू समाज, के एकीकरण के लिए वेद और वैदिक तत्व ही ऐसे मन्त्र थे जिन्होंने भारत की सुप्तात्मा को जगा दिया, थके हुए शरीर में शक्ति का संचार कर दिया और अंग्रेजी राज्य के दृढ़ मूल को हिलाने के कार्य का श्री गणेश कर दिया। वेदों के अध्ययन और वैदिक मार्ग के अवलम्बन के प्रचार के साथ २ भारतीय समाज की अनेक त्रुटियों को दूर करने का भी प्रचार महर्षि जी ने किया। मद्यपान निषेध, स्त्रियों में पर्दा प्रथा हटाना तथा उनमें शिक्षाप्रसार, बाल विवाहों का बन्द किया जाना, दलित जातियों का उद्धार, मानवीय समानता शुद्धि अथवा जगत की समस्त पिछड़ी हुई जातियों को सभ्य अर्थात् आर्य बनाना। महर्षि दयानन्द जी ने ही सर्वप्रथम धार्मिक प्रचारक होते हुए राजकारण में हाथ डाला और सत्यार्थ प्रकाश में ग्रथित कर दिया कि विदेशी राज्य अर्थात् परराज्य से किसी प्रकार का देशी राज्य स्वराज्य) भी अच्छा है। इस महामन्त्र से भारतीय स्वराज्य आन्दोलन को जितना बल मिला है उसकी मात्रा को वर्तमान भारतीय नहीं जानते। वेदों में स्वराज्य की महिमा गाई गई है और मातृभूमि स्वर्ग से भी ऊपर तथा प्रियतर है यह हमारे पूज्य महर्षि ने ही बताया और इस स्वराज्य मन्त्र ने प्रत्येक भारतवासी के हृदय में अनजाने घर कर लिया और जब लोकमान्य तिलक ने "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" रूपी सिंह गर्जना की और तत्पश्चात् महात्मा गांधी ने इसी स्वराज्य प्राप्ति के लिए सत्याग्रह सविनय अवज्ञा का आन्दोलन "परराज्य" (अंग्रेजी राज्य) के विरुद्ध जारी किया और आगे चलकर 'भारत छोड़ो" (Quit India) का शखनाद किया तो सारा भारतवर्ष इन तीनों ध्वनियों से गुञ्जरित होकर परतन्त्रता से मुक्त हो गया।

भारत की मुक्ति के इतिहास की इस शृङ्खला—महर्षि दयानन्द, लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी—को बताना ही इस छोटे से लेख का उद्देश्य है। शृंखला की तीनों कड़ियाँ कितनी पवित्र कितनी दृढ़, और कितनी आत्मीय हैं यह तो स्पष्ट ही है।

दीपावली का उत्सव जिस प्रकार अन्धकार में प्रकाश उत्पन्न करता है महर्षिके जीवन को भी इस पवित्र दिन ने प्रकाशित कर दिया हम बड़ी नम्रता से उनके चरणों मे श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

जो आज हम हैं वे उन्हीं के कारण हैं। इति शुभम्



विशेष सूचना

शीघ्रता में 'आर्यमित्र का ऋष्यक प्रकाशित करने का निश्चय होने के कारण हमें पिछला अङ्क २१ अक्टूबर) का बन्द करना पड़ा था। अब यह ऋष्यक प्रकाशित हो चुका है जो आपके हाथों में है।

दीपावली के अवकाश के कारण अगला अङ्क (४ नवम्बर) बन्द रहेगा, और आर्यमित्र का अगला अङ्क ११ नवम्बर को प्रकाशित होगा। ग्राहक कृपया नोट करलें।

– सम्पादक

माननीय श्री निसार अहमद शेरवानी

मन्त्री कृषि विभाग युक्त प्रान्त ने निम्न सन्देश आर्यमित्र के ऋषि अंक के लिये दिया है। माननीय कृषिमन्त्री का यह सन्देश हम देर से प्राप्त कर पाये हैं, अतः यहां दिया जा रहा है —

'मुझे यह जानकर बड़ी खुशी है कि आर्यमित्र महर्षि स्व० दयानन्द सरस्वतीजी महाराज की यादगार में पिछले साल की भांति इस साल भी ऋष्यङ्क निकाल रहा है।

दयानन्द जी महाराज हिन्दुस्तान के उन महापुरुषोंमें से एक हुए हैं जिनपर हर समझदार इन्सान को फख है। स्वामी जी महाराज ने एक परमेश्वर की पूजा फिर सिखाई। सारी दुनिया के सब मनुष्यों को एक साथ प्रेम पूर्वक मिलकर रहना बताया। मूर्ति पूजा, नशीली वस्तुओं का सेवन, छूतछात जातिपात के बन्धन, बचपन की शादी आदि बुरी रस्मों के खिलाफ अपनी जोरदार आवाज उठाई और हिन्दुस्थान के निवासियों में सबसे पहिले स्वराज्य स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता के भाव उत्पन्न किये।

हिन्दू जाति पर ही नहीं बल्कि देश के सभी निवासियों पर उनके उपदेशों का बहुत बड़ा असर पड़ा। इस लिये हम सब उनके बहुत बड़े ऋणी हैं। ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि हम सबको उनके बताए हुए मार्ग पर चलने के लिये सद्बुद्धि दें। इस अङ्क की सफलता के लिए इस शुभावसर पर मैं अपनी शुभकामना प्रकट करता हूं। निसार अहमद शेरवानी

✦✦✦✦

श्री प० धर्मपालजी विद्यालङ्कार सम्पादक आर्यमित्र



श्री पण्डित रामदत्त शुक्ल एम० ए० एडवोकेट
मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा



✦✦✦ ✦✦

श्रीमती विज्ञान बाला जौहरी
बी० ए० विदुषी



आपका लेख पृष्ठ ३४ में देखिये

सम्पादकीय—

महर्षि की स्मृति में

आदि सृष्टि से आज तक जितने भी महा पुरुष प्रत्येक युग में और प्रत्येक देश में अवतीर्ण होते रहे हैं युग धर्म के अनुसार उनके कार्यों में वैभिन्न्य प्रतीत होता है परन्तु उन सब के मूल में एक समानता मिलती है और वह है सत्य की उत्कट शोध और श्रद्धा। वेद के शब्दों में हम उसे मेधा और श्रद्धा कहते हैं। चरित्र के इन दो अंगों का जिस मात्रा में किसी व्यक्ति मे विकास होता है उसी से हम उसकी सापेक्ष महानता का अनुमान करते हैं।

इस मान दंड को लेकर जब हम ऐतिहासिक विभूतियों को नापते हैं तो महर्षि दयानन्द की उच्चता पर हमारी दृष्टि सहसा नहीं ठहरती। योगी अरविन्द ने तो यह लिखा है कि ऋषि दयानन्द, अन्य महा पुरुष रूपी पर्वत शृंगों के मध्य सर्वोच्च गौरीशंकर शृंग के समान हैं जिसके हिमालोक से दर्शक चकाचौंध में आ जाते हैं, परन्तु जिस हिमानी की वेगवती धाराओं से ही यह धारा परिप्लावित हो रही है। यह सत्य है कि महर्षि दयानन्द की महानता को समकालीन भारत और संसार पहचान नहीं सका है, परन्तु वह समय आयगा जब अन्य गिरि शृंगों को विजय कर इस महान शृंग पर पहुँचने का भी यात्री गण प्रयास करेंगे। वह उसको विजय कर सकेंगे इसमें सन्देह है, क्योंकि उसका उद्गम स्थान भौतिक जगत् से ऊपर उस आनन्द लोक में स्थित है जिसकी धारा को, ऋषि ने रोग, शोक, दुःखदैन्यपीड़ित इस पृथ्वीतल पर बहाना चाहा था।

ऋषि की सर्वतोमुखी प्रतिभा किस प्रकार अपना आलोक विकीर्ण कर गई है यह अध्ययन की वस्तु है। जो लोग कतिपय वृक्षों को ही उद्यान समझ रहे हैं वह ऋषि की सृष्टि पर एक विहंगम दृष्टि न डाल सकेंगे, वह न समझ सकेंगे कि ऋषि की कामना क्या थी। यदि वह महर्षि का विराट् रूप देख लें तो अर्जुन के समान स्तम्भित हो जायँ, यदि महर्षि का उत्तराधिकारी आर्यसमाज उस रूप का दर्शन कर लेता तो पार्थ के समान निस्संशय होकर कार्य क्षेत्र में पदार्पण करता। तब गुरुकुल और कालेज पार्टी, विधवाश्रम, अनाथालय आदि संस्थाओं के फेर में पड़ कर व्यर्थ समय नष्ट न करता, तब वह राष्ट्रवाद से सन्तुष्ट न होता वरन् सार्वभौम चरित्र के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का बीजारोपण करता और उसका नवांकुरित पौधा, आर्य परिवार, ग्राम, नगर, मंडल, राष्ट्र का रूप यथा क्रम धारण कर एक विशाल वट वृक्ष का रूप धारण कर लेता जिसकी सुखदायिनी छाया में इस मर्त्य लोक का प्रत्येक देश, पक्षी सम अपने कोटरों का विश्वास सहित निर्माण करता।

आज के युग में एकता पर बड़ा बल दिया जाता है। हिन्दू हिन्दू एक, हिन्दू मुस्लिम एक, एशिया की एकता, मुस्लिम देशों की एकता, एंग्लो सैक्सन एकता न जाने कितने एकता के राग अलापे जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संघ तक बने हुये हैं परन्तु एकता का मूल मन्त्र क्या है इसके जाने बिना एकता सम्भव नहीं है। ऋषि दयानन्द ने भारत ही नहीं अपितु संसार की सब समस्याओं को सुलझाने का एक मार्ग बताया था; वह था, ईश्वरीय आदेश, जो निर्भ्रम होता है। जिसका आदि स्रोत 'वेद' है। इस विषय में वेद कहता है "समानोमन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सहचित्तमेषाम्", उन शाश्वत नियमों के ज्ञान के आधार पर, जिनपर प्रकृति चल रही है, उनके अनुकूल अपने मन और चित्त आदि को बना कर ही संसार से युद्ध की काली छाया को, संघर्ष की कटुता को

दूर किया जा सकता है। इसके लिए यदि आदि में संघर्ष भी करना पड़े तो वह भी अन्त में सुख दायक ही होगा। ऋषि की इच्छा थी "चक्रवर्ती साम्राज्य"। किसका? सम्प्रदायों का, राष्ट्रों का हिन्दुस्तान का? क्या यह उसी इम्पीरियलिज्म का प्रतिपादन है जिसके प्रतीक ब्रिटिश आदि साम्राज्य थे और जिनकी कटु स्मृतियों का दुःस्वप्न के समान हम आज भी भूल नहीं है? नहीं! ऋषि का साम्राज्य था, वैदिक साम्राज्यवाद महात्मा गांधी के शब्दों में 'रामराज्य' हजरत मुहम्मद के शब्दों में खुदाई सल्तनत और महात्मा ईसा के शब्दों में Kingdom of Heaven। हाँ, महर्षि की यह इच्छा अवश्य थी कि उसके अग्रदूत एतद्देशवासी हों हों क्योंकि मनु के शब्दों में वह हमारी ही परम्परा है—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः"

प्रश्न यह है कि ऋषि की उस इच्छा की पूर्ति कैसे होगी, ऋषि ऋण का परिशोध कैसे होगा? आज हम आत्म निरीक्षण करें। जब देवी साम्राज्य का स्थापन करना है तो प्रथम अपने से ही आरम्भ करें। अपने दुर्मति, दानव द्वेष को शमन कर दें। अपने परिवार, अपने ग्राम, अपनी जाति को कुरीतियों से, भ्रष्टाचार से मुक्त करने का बीड़ा उठायें। दूसरे की आंखों का तिनका देखने से पहले अपने आंखों का तिल देख लें। महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश में साधारणतया सब सम्प्रदायों का खण्डन किया परन्तु विशेषतया क्रियात्मक पग हिन्दुओं के विरुद्ध ही उठाया। आज युग युगान्तर की कुरीतियां की नींव हिल चुकी है परन्तु उन्हें धराशायी कर, नव निर्माण करना शेष है इसके बिना हम परस्पर किसी में भी अपने प्रति विश्वास पैदा नहीं कर सकेंगे। ब्रह्मसमाज के शुद्धि आदि आन्दोलनों की विफलता का मूल कारण, राष्ट्र विभाजन का आधार, केवल यही हमारी संकुचित मनोवृत्ति है। एक ओर हम हिन्दुत्व के मोह में बुरी तरह जकड़े हुए हैं, दूसरी ओर पाश्चात्य संस्कृति का आलोक हमें दिवान्ध बनाये दे रहा है दीप मालाओं के आलोक में आज नगर जगमगा रहे हैं, बिजली के लैम्पों की ...

घनघोर तमिस्रा को दूर कर रात्रि के निविड़ अन्धकार को दिन के प्रकाश में बदल देने को सूर्य से स्पर्धा कर रही हैं। गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ सहस्रों दीपों से द्युतिमान होकर गर्व से मस्तक उन्नत किए हुए अपने सौन्दर्य पर इठलाती हुई नक्षत्रलोक से प्रतियोगिता कर रही हैं। इन महलों के वासी चित्र विचित्र वस्त्राभूषण धारण किए हुए देव दुर्लभ वाहनों में इतस्ततः घूमते हुए हास-विलास करते हुए अभिनय गृहों में नाट्य आदि कलाओं का आस्वादन करते हुए आज इन्द्रपुरी को भी लज्जित कर रहे हैं। परन्तु अन्तःकरणों में तथा नगरों की इस परिधि के बाहर आज भी उतना ही घनघोर अन्धकार फैला हुआ है जितना उस अमावस्या को था जब ऋषि दयानन्द का जीवन दीप निर्वाण को प्राप्त हुआ था। प्रकृति आज भी वैसी ही स्तब्ध है, जन पदों में आज भी वैसी ही स्थिति है। वही अन्धकार, वही कुरीतियां, वही रोग शोक, दुःख दैन्य और दारिद्र्य ताण्डव नृत्य कर रहे हैं जिसे देख कर महर्षि दयानन्द का हृदय द्रवीभूत हो उठा था। जिस करुण पुकार, विह्वल चीत्कार को सुन कर वह हिमालय की प्रशान्त कन्दराओं और ब्रह्मरस के अमृत का त्याग कर इस कठोर कर्म भूमि पर अवतीर्ण हुए थे।

दूसरी ओर प्रतिक्रियावाद को, साम्प्रदायिकता को, राष्ट्रवाद को क्रमबद्ध बाहुओं में संसार को अग्निकुण्ड में डाल देना चाहता है। कहां है वह आर्यवीर जो प्रतिभा और आत्म विश्वास से, मेधा और श्रद्धा से सृष्टि का नूतन निर्माण करे।

कृतज्ञता प्रकाश

शीघ्रता में अङ्क प्रकाशित करने का निश्चय होने के कारण हम इस अङ्क को इतना सुन्दर रूप न दे सके जैसा कि चाहते थे। फिर भी जो कुछ बन पड़ा पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। हम अपने उन सभी लेखकों कवियों तथा अन्य सहयोगियों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने कि अपना अमूल्य समय देकर हमें अनुगृहीत किया। जिन लेखकों की रचनायें देर से आने, अथवा स्थानाभाव के कारण इस अङ्क में स्थान नहीं पा सकीं उनसे हम क्षमा प्रार्थी हैं। अगले अङ्कों में यथाक्रम हम उन रचनाओं को प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे।

महर्षि के जीवन से संबन्धित कुछ तिथियां

सम्वत् १८८१ वि० (१८२४ ई०) को श्री स्वामी जी महाराज का जन्म हुआ।

सम्वत् १८९४ वि० माघ बदी १४ शिवरात्रि) (सन् १८३८ ई० को मूर्ति पूजा के प्रति अश्रद्धा हुई।

सम्वत् १८९६ वि में छोटी बहिन का देहान्त हुआ।

सम्वत् १८९९ वि में चचा की मृत्यु हुई।

सम्वत् १९ १ वि० में घर छोड़ा। सम्वत् १९०३ वि० में अन्तिम बार घर छोड़ा। सन्यास ग्रहण करके 'दयानन्द' नाम धारण किया।

सम्वत् १९१७ वि० में श्री स्वामी विरजानन्द जी की सेवा मे मथुरा पहुँचे।

सम्वत् १९२० वि० वैशाख मास (अप्रैल सन् १८६३ ई०) से प्रचार काय आरम्भ किया।

सम्वत् १९२३ वि० फाल्गुन शुक्ल १ को हरिद्वार के कुम्भ मेले पर पहुंच और फिर 'पाखण्ड खण्डनी पताका' गाड़ी।

सम्वत् १९२६ वि० कार्तिक सुदी १२ मगल (१६ नवम्बर सन् १८६९ ई , को काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ 'प्रतिमा पूजा विचार' पर हुआ।

सम्वत् १९२९ वि० पोष बदी ९ (१६ दिसम्बर सन् १८७२ ई०) को कलकत्ता पहुच।

फागुन बदी १० (२१ फरवरी सन् १८७३) के व्याख्यान का अनुवाद कलकत्ता में जनता के सम्मुख अनुवादक ने अशुद्ध पेश किया।

सम्वत् १९३० वि० चैत सुदी एकादशी (८ अप्रैल सन् १८७३ ई०) को पण्डित ताराचरण जी के साथ हुगली में शास्त्रार्थ हुआ।

सम्वत् १९३० वि० पौष कृष्ण १ शनिवार (६ दिसम्बर सन् १८७३ ई०) को काशी में एक संस्कृत पाठशाला खोली गई थी।

सम्वत् १९३१ वि० के ज्येठ (अर्थात् सन् १८७४ ई० में मई मास) को हिन्दी में सबसे पहिला व्याख्यान काशी में दिया था।

सम्वत् १९३२ वि० चैत्र शुक्ल १ बुधवार (७ अप्रैल सन् १८७५ ई०) को बम्बई में आर्य समाज सबसे पहले स्थापित हुआ और आर्य समाज के नियम बने जो संख्या में विस्तार में दस से अधिक थे।

कार्तिक बदी ३० अर्थात् अमावस्या (३० अक्टूबर सन् १८७५ ई शनिवार को 'संस्कार विधि' प्रथम संस्करण का लिखा जाना आरम्भ हुआ था।

भादों सुदी प्रतिपदा (२० अगस्त सन् १८७६ ई०) रविवार को 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' का काय आरम्भ हुआ।

इस सम्वत के अन्तिम अर्थात् सन् १८७७ ई० के प्रारम्भिक काल मे 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' की छपाई आरम्भ हुई।

सम्वत् १९३४ वि० ज्येष्ठ (अधिक) शुक्ल १३ रविवार (२४ जून सन् १८७७ ई०) को लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना हुई और आर्य समाज के प्रचलित दस नियम इसी अवसर पर बने।

भौमवार मार्गशुक्ल ६ सम्वत् १९३४ वि० (११ दिसम्बर सन् १८७७ ई) को 'ऋग्वेद भाष्य' का कार्य आरम्भ हुआ।

पोष सुदी १३ (१७ जनवरी सन् १८७८ ई०) गुरुवार को 'यजुर्वेद भाष्य' का कार्य आरम्भ हुआ।

सम्वत् १९३५ वि में ऋग्वेद व यजुर्वेद भाष्य' की का छपाई आरम्भ हुई।

सम्वत् १९३६ वि माघ शुक्ल २ बृहस्पतिवार अर्थात् (१२ फरवरी सन् १८८० ई०) को काशी में वैदिक यन्त्रालय स्थापित हुआ था जो कि बाद को सन् १८८१ ई म प्रयाग और फिर सन् १८९१ ई० में अजमेर मे पहुच जहाँ कि अब भी है।

शनिवार अगहन सुदी १ (२६ नवम्बर सन् १८८२ ई०) को यजुर्वेद भाष्य का रचना समाप्त हुई।

सम्वत् १९३९ वि० फाल्गुन कृष्ण ५ मगलवार (२७ फरवरी सन् १८८३ ई को उदयपूर में स्वीकार पत्र लिखा गया अर्थात् 'परोपकारिणी सभा' की स्थापना हुई।

आश्विन बदी १३ (२९ सितम्बर सन् १८८३ ई०) को (अन्तिम बार) जोधपुर में रात के समय विष दिया गया

दीपावली (कार्तिक की अमावस्या) मगलवार ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को ६ बजे के लगभग सायंकाल के समय अजमेर में स्वर्ग लोक को सिधारे।

हिन्द के प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू
आप लन्दन से पेरिस होते हुए
६ नवम्बर को भारत वापस आ जायेंगे।



"यह एक दिलचस्प ख्याल है कि हिन्दुस्तान में मूर्ति पूजा यूनान से आई। वैदिक धर्म सभी तरह की मूर्तिपूजा के खिलाफ था। देवताओं के लिए कोई मन्दिर तक न थे। शुरू का बौद्ध धर्म इसका कट्टर विरोधी था, और बुद्ध की मूर्तियाँ और प्रतिमाएं तैयार करने की खास मना ही थी। लेकिन यूनानी कला का असर अफगानिस्तान और सरहद के आस पास काफी गहरा था और रफ्ता रफ्ता उस असर ने काम किया। फिर भी शुरू में बुद्ध की कोई मूर्तियाँ न बनी, जिन्हें कि समझा जाता है कि बुद्ध के पहले के अवतार हैं, अपोलो APOLLO जैसी मूर्तियाँ बनीं। इसके बाद खुद बुद्ध की मूर्तियां बनने लगीं। इससे हिन्दू धर्म के कुछ रूपों में भी मूर्तिपूजा को प्रोत्साहन मिला। हाला कि वैदिक धर्म पर यह असर न पड़ा और वह इससे बचा रहा। मूर्तियां प्रतिमा के लिए फारसी व हिन्दुस्तानी में अब तक लफ्ज़ बुत जो बुद्ध से निकला है।" —प० नेहरु

महर्षि दयानन्दजी रचित ग्रन्थ और उनका काल

(१) सत्यार्थप्रकाश सं० १९३२ वि०
(२) ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका १९३३ वि०
(३) संस्कार विधि—१९३२ वि०
(४) वेदाङ्ग प्रकाश—१९३९ वि०
(५) पंच महायज्ञ विधि सं० १९३५ वि०
(६) गोकरुणा निधि
(७) आर्योद्देश्यरत्नमाला १९३४ वि०
(८) भ्रमोच्छेदन और अनुभ्रमोच्छेदन
(९) भ्रान्तिनिवारण सं० १९३४ वि०
(१०) व्यवहार भानु—१९३६ वि०
(११) आर्याभिविनय सं० १९३२ वि०
(१२) वेद विरुद्ध मत खण्डन सं० १९३१ वि०
(१३) स्वामी नारायण मत
खण्डन सं० १९३१ वि०
(१४) वेदान्तिध्वान्त निवारण सं० १९३३ वि०
(१५) संस्कृतवाक्यप्रबोध सं० १९३६ वि०
(१६) पाखण्ड खण्डन वि० १९१३
(१७) यजुर्वेद भाष्य सं० १९३४ वि०
(१८) ऋग्वेद भाष्य प्रारम्भ—१९३४ वि
(१९) अद्वैत मत खण्डन वि १९२७
(२०) सन्ध्या सं० १९१० वि०

हिन्दू कोड बिल

इस विषय में आर्य समाजोंके पास विज्ञप्ति सं० ६ ता० १-८-१९४८ सभा मन्त्री जी की ओर से भेजी गई। किन्तु अब ज्ञात हुआ है कि सार्वदेशिक सभा देहली ने इस विषय में धर्मार्य सभा की सम्मति मांगी है। अतः समस्त आर्य समाजों को इस सम्बन्ध में धर्मार्य सभा की सम्मति प्राप्त होने पर ही अपने निश्चय स्वीकार करने उचित होंगे।

निवेदक—
मदनमोहन सेठ
कार्यकर्ता प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त

❋ विषय सूची ❋

॥ ओ३म् ॥

[यह दर्शक-पत्र (प्रास्पेक्टस) रजिस्ट्रार ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनी यू०पी० के पास रजिस्ट्री हो चुका है]

आर्यमित्र प्रकाशन लिमिटेड (समवाय)

(३ जुलाई १९४७ को इण्डियन कम्पनीज ऐक्ट १९१३ के आधीन लखनऊ में परिमित दायित्व के साथ संगठित)

अधिकृत पूंजी........५,००,०००) रु०

२५) रु० प्रति भाग के २०,००० भागों में विभाजित

प्रार्थनापत्र के साथ...१२॥) प्रतिभाग (प्रार्थनापत्र कम्पनी से मिलते हैं)

द्वितीय भाग पर......१२॥) निर्देशकों (डाइरेक्टरों) की इच्छानुसार

निर्देशक (डाइरेक्टर)

१ श्री राजधिराज श्रीमान् उमेदसिंहजी — शाहपुरा राज्य, (राजपूताना)
२ ,, राजगुरु प० धुरेन्द्रशास्त्री — साधुआश्रम अलीगढ़
३ ,, मदनमोहन सेठ एम० ए० एल एल० बी० — रिटायर्ड जज, २२, रेडीची रोड, लखनऊ
४ ,, बा० उमाशंकरजी — वकील भूतपूर्व एम०एल ०ए०, मु० सॅजरहा फतेहपुर
५ ,, प० लक्ष्मी दत्त दीक्षित — पुस्तकाध्यक्ष भारत बैंक लि० दरिया गंज,देहली
६ ,, प० धर्मपाल विद्यालंकार — जमीदार टिकैतगंज, बदायूँ
७ ,, प० महेन्द्र देव शास्त्री — मुरारी फाइन आर्ट वर्क्स नं० ४ दरियागंज देहली
८ ,, कर्णसिंह छौंकर — वाइस चेयरमैन म्युनिसिपल बोर्ड मथुरा
९ ,, भृगुदत्त तिवारी एम ए० एल एल बी० — वकील तथा म्युनिसिपल कमिश्नर गणेश गंज लखनऊ।

श्रेष्ठी (बैंकर्स)

१ सेंट्रल बैंक आफ इंडिया लिमिटेड
२. भारत बैंक लिमिटेड

लेखा—निरीक्षक (ऑडिटर)

श्री जगदीश प्रसाद ऐंड कम्पनी रजिस्टर्ड ऐकाउन्टेंट्स, चाँदनी चौक देहली।

दर्शक—पत्र (प्रास्पेक्टस)

१. समवाय (कम्पनी) का उद्देश्य— आर्य समाज को, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक, वेदानुकूल आदर्शों के प्रचार के लिए तथा नवजात स्वतंत्र भारत में भारतीय जीवन के पुनर्निर्माण के लिए एक शक्तिशाली मुद्रणालय (प्रेस) की आवश्यकता है।

आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त की प्रेरणा से तथा उसके संरक्षण में 'आर्यमित्र प्रकाशन लिमिटेड' समवाय का संगठन, आर्य समाज की उपर्युक्त आवश्यकता के पूर्त्यर्थ विशेषतः हिंदी में दैनिक, साप्ताहिक तथा मासिक समाचार-पत्रों के सञ्चालन के लिए और सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक और राजनैतिक साहित्य के प्रकाशन के लिए किया गया है।

२—**प्रधान कार्यालय**—कम्पनी का प्रधान कार्यालय लखनऊ में नारायण स्वामी (आर्य) भवन, ५ हिल्टन रोड पर स्थित रहेगा। भारत के अन्य स्थानों पर शाखाएँ खोली जा सकती हैं।

३—**न्यूनतम प्रस्तुत पूंजी**—४००० भागों का विक्रय न्यूनतम राशि है जिस पर निर्देशक गण विभाग करेंगे।

४—**निर्देशकों की योग्यता तथा पारिश्रमिक**—समवाय के नियमों (आर्टिकिल्स) के आधीन निर्देशक पद की योग्यता के लिए अपनी ओर से अथवा जिस संस्था का वह प्रतिनिधि है उसकी ओर से—जब तक वह निर्देशक पद पर रहे—कम्पनी के न्यूनतम १०००) के भाग लेना आवश्यक होगा।

कम्पनी की बैठक में सम्मिलित होने के लिए निर्देशक को मार्ग व्यय तथा १०) दैनिक भत्ता दिया जायगा।

५—**निर्देशकों का विशेष लाभ**—भागीदार होने के अतिरिक्त डाइरेक्टरों का कोई भी विशेष लाभ नहीं है।

६—**क्रीत सम्पत्ति अथवा प्रस्तावित क्रीत सम्पत्ति**—जो कम्पनी द्वारा क्रयार्थ प्रस्तावित अथवा क्रय की गई—के विक्रेता के नाम और पते तथा वह राशि (नगद, भाग, या प्रतिज्ञा-पत्र) जो प्रत्येक विक्रेता को दातव्य है—

आर्य प्रतिनिधि सभा, सोसाइटी, ५, हिल्टन रोड लखनऊ। भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस लखनऊ का मूल्य २५०००) रु० भागों के रूप में।

७—**राशि प्रदत्त अथवा दातव्य**—(नकद, भाग या प्रतिज्ञापत्र) किसी उपर्युक्त प्रकार की सम्पत्ति के लिए, जिसमें साख के लिए प्रदत्त अथवा दातव्य राशि का भी उल्लेख होना चाहिए—

साप्ताहिक आर्यमित्र की साख के लिए जो सभा द्वारा ५० वर्ष तथा अधिक से प्रकाशित हो रहा है १०,०००) के मूल्य के ४०० भाग।

८—**प्रारम्भिक व्यय**—अनुमानतः प्रारम्भिक व्यय ५००) से अधिक नहीं होगा।

९—**पत्र-प्रमाण [दस्तावेज]**—समवाय के अनुबोधक (मेमोरेण्डम) तथा नियमों (आर्टिकिल्स) की प्रतियां कम्पनी के अधिकृत कार्यालय में साधारण कार्य समय के अन्तर्गत देखी जा सकती हैं।

१०—**भाग-परिवर्तन**—निर्देशकों को बिना कारण बताये भागों के परिवर्तन के पंजीकरण (रजिस्ट्री) न करने का पूरा अधिकार है।

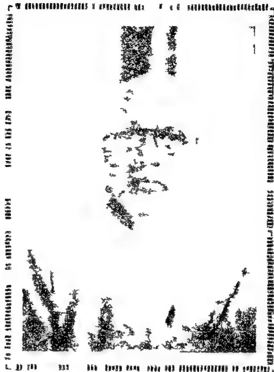
११—**पारिश्रमिक (कमीशन)**—भागों के विक्रय पर कमीशन की दर—नकद ५) प्रतिशत, भागों के रूप में—६।) प्रति शत।

१२—**व्यवस्था निर्देशक (मैनेजिंग डाइरेक्टर्स)**—समवाय के नियमों के अनुसार श्री मदनमोहन सेठ और पं० धर्मपाल विद्यालङ्कार २० वर्ष के लिए क्रमशः मुख्य व्यवस्था-निर्देशक तथा उप व्यवस्था निर्देशक नियुक्त किए गए हैं। मर्यादाएँ (शर्तें) एक स्वीकार-पत्र (इकरारनामे) में होंगी।

मुद्रक—लाला जगनप्रसाद भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस, लखनऊ।

आर्य मित्र

सम्मेलन के सभापति अध्यक्ष



श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज

आज राष्ट्र का कण कण जगकर तुमसे नव निर्माण मांगता,
इतिहासों के नव पृष्ठों पर अपना खोया नाम मांगता



उपदेशक सम्मेलनाङ्क

III)

माननीय अध्यक्ष तथा श्री पं० रामचन्द्रजी देहलवी
सम्मेलन के अन्य कार्यकर्ताओं के साथ हैदराबाद में









श्री भृगुदत्तजी तिवारी एम० ए० एल-एल० बी०
स्वागताध्यक्ष



माननीय श्री क० एम० मुंशी



आप २९ मई को सम्मेलन का
उद्घाटन करेंगे

उठो परीक्षा काल उठो संघर्ष करो नव सृष्टि बनाओ।
अन्तिम विजय तुम्हारी होगी आगे क़दम बढ़ाओ॥

ओ३म्



राष्ट्रगीत

आर्य भुवन मन मोहनी
निर्मल सूर्य करोज्वल धारिणि
जनक जननि जननी
नीलसिन्धुजल धौत चरणतल
अनिल विकम्पित श्यामल अंचल
अम्बर चुम्बित भाल हिमाचल
शुभ्र तुषार किरीटिनी
आर्य भुवन मन मोहिनी
प्रथम प्रभात उदित तव गगने
प्रथम सामरव तव तपोवने
प्रथम प्रचारित तव वन भुवने
ज्ञान धर्म कथ काव्य काहिनी
आर्य भुवन मन मोहिनी
चिर कल्याणमयि तुमि धन्या
देश विदेशे वितरित अन्ना
जान्हवि यमुना विगलित करुणा
पुणय पियूष स्तन्य वाहिनी
आर्य भुवन मन मोहिनी

× × ×

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर

❀ ओ३म् ❀



लखनऊ ५-१२ मई १९४९

अग्न य यज्ञमध्वर विश्वत परिभूरसि । स इद्वेषु गन्छति । ऋग् १-१-४

हे तेजस्वरूप भगवन् ! जिस अखण्ड यज्ञ म आप सर्वत व्यापक रहते हैं वही यज्ञ दिव्यता को प्राप्त होता है।

नया अध्याय

सृष्टि क आदि स ही मानव जब २ जिस २ रूप म भी रहा और जा भी सामयिक सुविधायें उस प्राप्त हाती रही उन्हीं का लेकर वह सुख सुविधा के यत्न करता रहा। जिस को उसने अपने जीवन का उत्कृष्ट उद्दश्य समझा उसी म अपनी श्रेष्ठतम शक्तियां का लगा दिया यह बात दूसरी है कि ससार के विकास के साथ २ उसके उद्देश्य भी बदलते रहे हो परन्तु एक जाति एसी भी है जिसका उद्दश्य आज भी वही है जा सृष्टि के आदि मे था।

इतने उतार चढ़ाव म अनकों जातियां इतिहास के पृष्ठों पर आई और अपना २ अभिनय सा करके अन्तर्धान हो गई। आज जितनी जातियां हमारे सामने ह यदि अत्यन्त परिश्रम करक भी उनक इतिहास क छोर का पता लगाते हैं तो बहुत दूर नहीं जा पाते। और जहा तक पहुचते हैं वह समय इतिहास के लिये कोई बड़ा समय नही कह जा सकता। पुरानी जातियां की शृखला बहुत पहले ही टूट गई और अधिकाश जातियां जो अपना अभिनय करती प्रतीत हती ह उनका जन्म त नितान्त आधुनिक है न्ढ दा हजार वर्ष सृष्टि के लम्बे इतिहास मे क्या महत्त्व रखते हैं।

पर त यदि न ाम की पहच मे ी पगे या कहा जाय कि इतिहास को भी अमर बनाने वाली कोई जाति आज जीवित है तो वह आर्य जाति है न सृष्टि ने प्रारम्भ मे आखें खोलीं तब आर्य जाति थी, और उसके पश्चात् अनेकों बार ऐतिहासिक अन्धकार को चीर कर जब २ सृष्टि म सभ्यताओं का प्रकाश फैला तब २ आर्य जाति गौरव स अपना सर उठाये ससार का शान्ति का सन्देश दती हुई दिखाई देती है। उसकी अटूट परम्परा आज तक अपनी विशेषताओं के साथ जीवित है और हमारा विश्वास है कि अपने को सभ्य कहन वाले परन्तु मृतप्राय वैज्ञानिक जगत् का फिर जावन दान करने की क्षमता भी इसी जाति व सभ्यता म है। और समय आयगा जब इसकी सत्यता प्रमाणित हो जायगी।

जिज्ञासा हाती है कि ससार परिवतन शील है बडी बडी शक्तिशाली जातियां प्रकृति के थपेडों से लड़खड़ा कर गिर गई ता इसी जाति व सभ्यता म क्या विशेषता है जिससे यह अमिट है ?

हम पहले कह चुके हैं कि आदि काल स प्रत्येक जाति ने अपने अपने साधनों से तथा अपनी अपनी पहुंच के उद्दश्यों के लिये अपनी शक्ति लगाई। परन्तु उनके उद्देश्य प्राकृतिक (भौतिक) उपकरणों की चरम उन्नति के अन्तर्गत ही थे जिनस बदलती हुई प्रकृति उन्हें भी अपनी लपेट म लेती चली गई, वे जातियाँ अपना ऐसा उद्देश्य न बना पाइ जो प्रकृति की लपेट से बाहर हो।

परन्तु आर्य जाति ने वैदिक ऋषियां ने ही आध्यात्मिक उन्नति करते हुये परब्रह्म की प्राप्ति का अपना उद्दश्य बनाया "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा" के अमर गायकों ने प्रकृति के श्रेष्ठतम उपकरणों का उपयोग करते हुये भी अपना चरम लक्ष्य न छोड़ा, भौतिक परिवर्तन देखते रह गये वह ता उनकी चोट से बाहर था फिर जाति व सभ्यता मिटती कैसे ?

यदि एक मुसाफिर रेलगाडी म चलता हुआ किसी बड स्टेशन पर कोई अच्छी वस्तु देखकर उतर पड़ और गाड़ी छूट जाय तो फिर वह आगे कैसे जा सकता है। ससार की मिटने वाली जातियों भी सृष्टि की अनन्त गाडी से प्रकृति की छोटी छोटी वस्तुओं क आकर्षण को ही सब कुछ समझ कर वही तक रह गई और थोड़े समय के लिये अपने को सर्वाधिक समझती रहीं

परन्तु दुःख है कि कुछ सदियों बाद उनको यह बताने के लिये भी कोई न रहा कि "अब यहाँ तुम्हे कोई नहीं जानता।" आर्य जाति ने गाड़ी में यात्रा की और जो सुन्दर वस्तु देखी उसको भी गाड़ी में रख लिया, सब की सुविधा के लिये।

इसी परम्परा और उद्देश्य को लेकर "तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृध कस्य स्विद्धनम्,, का गान करते हुये "तत् पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूय.।" के मार्ग पर यह जाति सदा अग्रसर होती रही इसी के कारण संसार का इतिहास भी सुन्दर से सुन्दर तर और सुन्दरतम बनता गया।

आज लखनऊ मे होने वाला प्रथम अखिल भारतीय उपदेशक महा सम्मेलन भी इसी परम्परा का एक प्रतीक है जाति मे चेतना व जागृति उत्पन्न करने के लिये देश के कोने कोने मे आर्य सस्कृति की अलख जगाने वाले कर्मठ उपदेशकों का यह प्रयत्न, विश्वास है कि जाति में नई स्फूर्ति लायेगा और वैदिक सभ्यता को आगे बढ़ाने के लिये विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत करेगा।

आज संसार के पिछले अध्याय और पीछे छूटते जा रहें है। नया ससार नई नई समस्यायें लेकर सामने आ रहा है। ऐसे समय वैदिक संस्कृति के प्रचारकों को भी आवश्यक हो जाता है कि वे भी अपने विगत विशाल इतिहास के पृष्ठों में एक नये अध्याय का प्रारम्भ करे जो आ के संसार को उपयुक्त मार्ग दिखा सके, याथातथ्य को उसके समक्ष प्रस्तुत कर उसको भटकने से बचाये।

प्रभु करे यह प्रयत्न "कल्याण कृत्" हो और जग-नियन्ता की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव इसके प्रकाश मे अपना मार्ग ढूंढ सके।

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःख भाग्भवेत्॥

***

सम्पादकीय टिप्पणियाँ

गाजीपुर चलिये !

गत वर्ष इन्हीं पंक्तियों में हमने धामपुर चलने के लिये आर्य जनता को प्रेरणा की थी, आज उसी कार्य के लिये, धामपुर के बनाये कार्यक्रम की पूर्णता या अपूर्णता पर विचार करने के लिये, यदि पूर्णता है तो आगे बढ़ने के लिये और यदि अपूर्णता है तो उस पर विचार करने तथा सावधान रहने के लिये हमें फिर कहीं न कहीं एकत्रित होना पड़ेगा, होना भी चाहिये, यदि हमने ऐसा न किया तो यह निश्चय है कि हममें संगठन से मिलने वाले शक्तिदायक विचारों की न्यूनता बढ़ती ही जायेगी। व्यक्तिगत कितनी ही उन्नति करते हुये भी, एकाकी, यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता। यज्ञ के लिये सगठन आवश्यक है। विचारों के प्रवाह को यदि सगठन से बल न दिया जाय तो उनमें क्षीणता आना स्वाभाविक है, आपस की दूरी बढ़ती जायगी, एक दूसरे के प्रति आकर्षण कम होता जायगा, ऐसा होने से सामाजिक स्थिति कमजोर हो सकती है, जिसका परिणाम क्या हो सकता है, वह किसी से छिपा नहीं है। इसलिये एक वर्ष बाद आने वाले इस आत्म निरीक्षण के समय को हम यूं ही न जाने दें। कोई भी सस्था तभी तक जीवित है जब तक उससे सम्बन्धित व्यक्ति जीवित हैं। जीवित का अभिप्राय, उनके पास अपने मौलिक विचार है? दूसरे को प्रभावित करने या स्वयं में स्थिर रहने की शक्ति है? अनायास जो गै में नहीं बह जाते, गगादास और जमुनादास बनकर जो अपनी स्थिति को हास्यजनक नहीं बनाते, उन्मार्गगामिनी बड़ी से बड़ी शक्ति के मार्ग में भी जो चट्टान बनकर खड़े होने का साहस रखते है, वे हैं जीवित। ऐसे व्यक्ति जिस संस्था में भी चले जाते है वही सस्था आद बन जाती है, सब साधारण उसके निर्देश पाने को उत्सुक रहता है। और इसके विपरीत यदि बड़ी से बड़ी संस्था से सम्बन्धित व्यक्तियों में साहस तथा आत्म विश्वास की न्यूनता, अस्थिरता तथा सिद्धांत हीनता आ जाता है

तो वही संस्था तेजहीन हो जाती है, जनता उससे किनारा करने लगती है।

विचारना है इन दोनों में हमें कौन सी स्थिति रूचिकर है ? क्या ससार अपनी पूर्णता पर पहुँच चुका है कि अब वैदिक सस्कृति के प्रचारकों को अपने हथियार बन्द करके रख देने चाहिये ? या जो अन्य २ स्थायें कार्य कर रही है वे ही हमारे उद्देश्य को पूर्ण करती है ? देखा जाय तो इन दोनों में से कुछ भी नहीं। न तो ससार पूर्णता को ही प्राप्त है न ये विशेष विशेष उद्देश्यों को लेकर चलने वाली सस्थायें ही हमारे उद्देश्य की ओर उन्मुख है आज आर्य समाज में अधिकाधिक चेतना लाकर उसको प्रगति शील बनाने की आवश्यकता है।

वहां जाकर क्या होगा ? ऐसा कहने से काम न चलेगा। न जाने से जो कुछ हो रहा है या होगा उससे तो अधिक ही होगा, नहीं होगा तो करने का प्रयत्न करना चाहिये। बैठने से ही काम न चलेगा।

इसलिये हम प्रान्त के सभी आर्यजनों से कहेंगे कि जो प्रतिनिधि है वे अधिक से अधिक संख्या में ५-६ जून को गाजीपुर मे होने वाले सभा के वार्षिक अधिवेशन में भाग ले । और नई नई समस्याओं के नये रूप मे समाधान सोचें। आज सारा देश आध्यात्मिक व सांस्कृतिक नेतृत्व के लिये किसी की प्रतीक्षा कर रहा है, इस कार्य मे आर्य समाज ही अधिक सफल हो सकता है, क्योंकि उसका विगत इतिहास तथा उद्देश्य दोनों ही सुन्दर है। यदि अब चूके तो भविष्य की राम जाने।

++

हानिकारक, आकर्षक घोषणायें क्यों ?

कुछ समय पूर्व, मुजफ्फरपुर में बिहार पोलिटिकल कान्फेन्स के उद्घाटन के अवसर पर नहरूजी ने घोषणा की थी कि अन्ततोगत्वा भारत में अवश्य ही समाजवादी राज्य की स्थापना करना ही होगी ! उन्होंने यह भी कहा कि 'जहाँ तक कम्यूनिज्म के आधारभूत सिद्धांतों का प्रश्न है, उन्हे उनसे कोई विरोध नहीं। प० नेहरू जी के यह विश्वास बहुत पुरातन है कि न केवल भारत वर्ष अपितु ससार की समस्याओं का एक मात्र हल 'समाज वाद' द्वारा ही हो सकता है। उन्होंने सन १९३६ ई० मे लखनऊ मे अपने प्रसिद्ध भाषण में कहा था कि 'देश में अत्यन्त विस्तृत और क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता है, ससार मे एक नवीन सभ्यता का उदय हुआ है जिसकी कुछ २ उज्वल प्रकाशमयी छटा 'रूस' मे प्रस्फुटित हुई है और जो वर्तमान अन्धकार मय समय की एक आशाजनक प्रकाश रेखा है।"

यह कहना कठिन है कि अब भी प० नेहरूजी के ऐसे ही विचार है या नहीं ? 'यदि भविष्य में कुछ आशा है तो वह मुख्यतः सोवियट रूस के कारण है" इस प्रकार का अब भी प० नेहरूजी विश्वास रखते हैं, इसमें हमें बहुत सन्देह है। परन्तु प० नेहरूजी के इस कथन का कि समाज वाद के उद्देश्य 'समाजवादी ढङ्ग की नवीन समाज व्यवस्था निर्माण' की पूर्ति में 'अब केवल समय व उपायों' का ही प्रश्न शेष रह गया है" यह वाक्य अत्यन्त अधिक महत्वपूर्ण है।

गवर्नमैंट के प्रवक्ताओं ने गत वर्षों में व्यवसाओं में धन लगाने वालों मे विश्वास उत्पन्न करने के लिये बहुत ही प्रयत्न किया है। भू० पू० अर्थमन्त्री श्री षणमुखम् चेट्टी ने सन् १९४८ में भारत सरकार की ओर से बजट प्रस्तुत करते हुये बहस के अवसर पर वर्तमान सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था में बलपूर्वक एकाएक उथल पुथल करने से बचने की आवश्यकता पर अत्यन्त अधिक बल दिया था। इसी प्रकार भारत के उप प्रधान मन्त्री सरदार पटेल भी अनेक अवसरों पर शीघ्रता से राष्ट्रीय करण व समाजवादी ढांचा लाने की हानियों की ओर देशका ध्यान आकर्षित



स्व० श्री० मा नारायण स्वामीजी महाराज



सामवेद भाष्यकार स्व० पं० तुलसीरामजी

कर चुके हैं परन्तु दुर्भाग्य से इसके विरुद्ध अनेक प्रमुख नेताओं के उपरोक्त प्रकार के भाषण अनुत्साह, आशंका, व भय को और भी अधिक बढ़ाने का कारण हो रहे हैं। इससे देश के व्यवसायों में अस्थिरता, व अविश्वास बढ़ रहा है–उत्पादन घट रहा है।

व्यवसाय व व्यापारिक क्षेत्रों में उन्नति के लिये किसी भी प्रकार के आवेशपूर्ण शब्द व भ्रम की के सफल होने की सम्भावना नहीं होती प्रत्युत वास्तविक व्यावहारिक, दूर दर्शिता पूर्ण, संयम के बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य ही विश्वास व स्थिरता उत्पन्न कर सकते हैं। अतः यदि हमारे देश के नेता पुराने आन्दोलन कारी स्वभाव को छोड़कर व्यावहारिक गम्भीरता का आश्रय लेकर नेतृत्व करेंगे तभी देश का कल्याण होगा। अन्यथा अनिष्टकारक (कम्यूनिज्म) का झूठ मूठ 'भूत आया भूत आया' चिल्लाना भी, कम्यूनिज्म के भूत को रोकने में समर्थ न होगा। हाँ यह सम्भव है कि इसका आश्रय लेकर अपने राजनैतिक विरोधियों को दबाया जा सके।

थके हुए कलाकार से

सृजन की थकन भूल जा देवता !
अभी तो पड़ी है धरा अधबनी,
अभी आदमी की पलक में नहीं
खिल सकी है नए चाँद की चाँदनी !
अभी आदमी की भटकती हुई
आत्मा को नहीं मिल सकी रोशनी !
अभी तो पड़ी है धरा अधबनी,
अधूरी धरा पर नहीं है कहीं,
अभी स्वर्ग की नींव का भी पता !
सृजन की थकन भूल जा देवता !

रुका तू, गया रुक जगत का सृजन !
तिमिरमय नयन मे डगर भूल कर
कहीं खो गई है सुनहरी किरन !
अलस बादलों मे कहीं सो गया
है नई सृष्टि का सप्तरंगी सपन !
रुका तू, गया रुक जगत का सृजन !
अधूरे सृजन से निराशा भला
किस लिये, जब अधूरी स्वयम् पूर्णता ?
सृजन की थकन भूल जा देवता !

प्रलय मे निराशा तुझे हो गई ?
सिसकती हुई सास की जालियों मे
सबल प्राण की अर्चना खो गई !
थके बाहुओं मे अधूरी प्रलय
औ' अधूरी सृजन योजना खो गई !
प्रलय से निराशा तुझे हो गई ?
क्षितिज पर नई जिन्दगी का सितारा,
बड़ी आस से है तुझे देखता !
सृजन की थकन भूल जा देवता !

धर्मवीर भारती

(संगम से)



उपदेशेन वर्तामि

[श्री वासुदेवशरण अग्रवाल]

उपदेशेन वर्तामि नानुशास्मीह कंचन।

मैं उपदेश से बरतता हूँ, किसी को आज्ञा नहीं देता। अर्थात् मेरे जीवन के द्वारा मेरा उपदेश प्रकट होता है, वाणी के अनुशासन के द्वारा नहीं। भावार्थ यह हुआ कि कर्म के द्वारा दिया हुआ महत्वपूर्ण उपदेश संसार में सर्वश्रेष्ठ है, वाणी के द्वारा 'यह करो,—यह न करो' की रीति से कही हुई बात उतनी ग्राह्य नही होती।

उपदेश की भाषा जीवन का व्यवहार और वाणी का तूष्णी भाव है। इस सृष्टि का निर्माता सृष्टि रचकर सृष्टि की एक-एक बात से तूष्णी उपदेश दे रहा है। मेघों की अव्यक्त ध्वनि द-द-द से, उपनिषद् का ऋषि उपदेश सुनता है—

दत्त— दमयत—दयध्वम् दान दो, आत्म संयम करो और प्राणियो पर अनुकम्पा करो।

मेघ का सारा जीवनव्यवहार एक महान् उपदेश है। बिना वाणी से कहे कर्म से मिलने वाला उपदेश शतगुणित और सहस्रगुणित होता है। इस प्रकार सृष्टि व्यवहारों से मिलता हुआ अनादि अनन्त उपदेश प्रति क्षण हमारे पास आ रहा है—

यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यत.।
एवा मे प्राण मा बिभेः॥

जैसे सूर्य और चन्द्र न मन से डरते हैं, न शरीर से न्यून होते हैं, जैसे नियन्ता ने कर्म पथ में उन्हे ठहरा दिया है वैसे ही बरतते हैं—ऐसे ही मेरा प्राण भी उनसे अभय की शिक्षा ले।

जीवन उपदेश की तूष्णीं भाषा है। अथवा यों कहे कि मौखिक उपदेश तो एक या दो भाषाओं में एक व्यक्ति दे सकता है, किन्तु जीवन के उपदेश की भाषा सार्वभौम है। संसार के मानवों की जितनी भाषाएं हैं वे सब जीवन की ही व्याख्या करती हैं। जीवन के द्वारा दिये गए उपदेश को वे सब शब्दों में बिना कहे पकड़ लेती हैं। किसी भाषा कविने कहा है—

कामा जोग कथनि के कथे।
निकसै घिऊ न बिना दधि मथे॥

योग तो साधन की वस्तु है, उसका मुँह जबानी जमाखर्च किस काम का। बिना मथे दही या दूध में से मक्खन नही निकलता। करनी और कथनी में बहुत अन्तर है। करनी का प्रभाव मन पर पड़ता है, कथनी का नहीं। जिस कथन के पीछे जीवन का सत्य नही है वह निस्तेज है, बुझी हुई अग्नि की तरह राख मात्र है। जीवन में उपदेश के अनुसार बरताव करने से ही उसमें चिनगारी पैदा होती है। नोआखाली के हिंसा से भरे हुए वातावरण में उस दावानल का आचमन करने के लिये जब गांधी अकेले कूद पड़े तो किसी ने उनसे उपदेश मांगा और उन्होंने लिखकर दिया—

"आमार जीवनेइ आमार वाणी"। मेरा जीवन ही मेरी वाणी है। स्वामी दयानन्द का ब्रह्मचर्य व्रत, उनका तप. पूत जीवन, उनका ज्ञान प्रदीप्त ऋषित्व मानव के लिये तूष्णी भावेन जो उपदेश देता है वह सैकड़ों पोथों और व्याख्यानो से संभव नही। वह जीवन की अग्नि के प्रकाश से प्रकाशित है। उसमे प्राणो की हवि दी गई थी। सच्चा उपदेश इसी प्राण-हवि को चाहता है। उपदेशक कहता है-मैं स्वयं हवि हूँ [हविरस्मि नाम]

सौभाग्य से इस देश की महती आर्ष परम्परा उपदेश की चिरन्ती संहिता है जिसकी बारहखड़ी के अक्षर देशवासियों की समझ

में तुरन्त आ जाते हैं। यहाँ की संस्कृति एक साँचा है जिसमें उदात्त जीवन को ढालने की अपूर्व क्षमता है। उस संस्कृति का सदेश जानने और समझने की वस्तु है। देश वासियों को उसमें गहरी रुचि है। किन्तु उस संस्कृति के अनुसार जीवन को ढालना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा संस्कृति की भाषा गूढ़ अनबूझ पहेली बनकर रह जाती है। जीवन ही संस्कृति के आदर्शों की सच्ची व्याख्या प्रस्तुत कर सकता है। व्यक्ति शतायु है किन्तु राष्ट्र तो सहस्रायु या अमर है। ज्ञान की गुहाएं राष्ट्र में रहनी ही चाहिएं। हर एक वस्तु के रखने का जो उचित पात्र है वह उसकी निधिपा गुहा है। ज्ञान की गुहा हमारा मानस है। राष्ट्र के व्यक्ति विशेषों के मानसों में ज्ञान की मणि परम्परा से सुरक्षित रहती हुई अमर बनी रहती है। इसमें से हर एक का यह आदर्श या उत्साह होना चाहिए कि राष्ट्र में ज्ञान की एक गुहा मेरा मन भी हो, मेरा जीवन राष्ट्रीय संस्कृति का निधिपा या रक्षक बने। यही सच्चा उपदेश है, यही जीवन के लिये उपयोगी है।

सत्य के लिये जीवन में एक दिन भी जब सच्चा प्रयत्न किया जाता है तो वह प्रभाव शाली होता है। सत्य के परमाणु तत्व स्वयं अपने अनुकूल तत्वों को समेटते हैं और उसी केन्द्र से नई शक्ति, नया उत्साह, नई स्फूर्ति और नया आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार सत्यपरायण जीवन की उपासना ही सच्चा यज्ञ है—

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि" प्रत्येक मानव को निजी जीवन व्यवहार में जीवन की छोटी-से-छोटी बातों में इस सत्य को पकड़ना है।

उसका मन इस स्थिति की प्राप्ति या अप्राप्ति का स्वयं साक्षी है। यदि सत्य की अग्नि की एक चिन्गारी भी जीवन की वेदि में नहीं डाली जा सकी तो जीवन में स्थूल समिधाओं का चाहे जितना ऊँचा ढेर लगा हो, उसमें प्रकाश नहीं उत्पन्न हो सकता। जीवन के स्थूल उपकरणों की समिधाओं को सत्य की अग्नि से ज्योति में परिणत करना ही जीवन की सच्ची सफलता है। सत्य में नियुक्त जीवन सब को खींचता है। कोरा प्रज्ञावाद रुचिकर नहीं होता। कोरे उपदेश की गति तो ऐसी है जैसे—

ऊर्ध्व बाहुर्विरौम्येष न कश्चिच्छृणोति मे

ऊँची बाँह उठाकर धर्म की पुकार कर रहा हूँ, लेकिन कोई सुनता ही नहीं॥

"मंगला प्रसाद पारितोषिक विजेता ३ आर्य विद्वान्"

१—श्री पं. पद्मसिंह जी शर्मा [महाविद्यालय-ज्वालापुर] आप हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं।

२—श्री मती चन्द्रावती लखनपाल एम० ए० [श्री पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार की धर्मपत्नी तथा कन्या गुरुकुल देहरादून की प्रिन्सपल]

३—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली

कतिपय प्राचीन उपदेशक तथा समालोचना मार्ग व अध्ययन क उपज—

श्री पद्मसिंह शर्मा

[श्री प० हरिदत्त शास्त्री एम० ए०, मुख्या धष्ठाता म० वि० ज्वालापुर]

"स्व० श्री प० पद्म सिंह शर्मा सच्चे साहित्य सेवी थे, साहित्य सेवा, साहित्यसेवियों की सेवा, परलोकवासी साहित्य सेवियों का कनिरक्षा और साहित्य की वेदी पर वे सब कुछ निछावर करने के तैयार रहते थे।"

श्री प० श्रीराम शर्मा स० विशाल भारत)



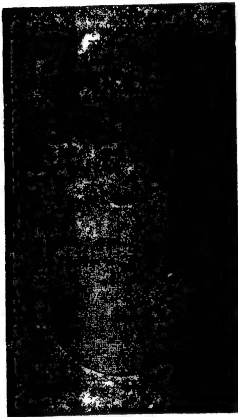
(लखक)

"पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा सुभाषितरत्नों के चलते फिरते भण्डार थे। राजनीति के साहित्य में श्रीयुत सी. वाई चिन्तामणि का जो स्थान है स्मरण शक्ति के नाते साहित्य जगत् में सुभाषितों के विचार से प० जी का भी वही स्थान है।"

—प० ज्वालादत्त शर्मा (मुरादाबाद)

ऐसा कौन साहित्यसेवी है जो आर्य समाज के सच्चे रत्न श्री प० पद्मसिंह शर्मा की लेखनी से परिचित नहीं, हिन्दी जगत् में जब तुलनात्मक अध्ययन तथा लेखन को लोग जानते भी न थे तब उन्होंने अपनी लेखनी इस विषय पर उठाई। कारण यह था क सम्पादक जी संस्कृत हिन्दी उर्दू अथवा भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनके अपने पुस्तकालय में एसी कोई पुस्तक नहीं जो लाल निशानी न्यान हो। श्लोकों का अर्थ व आत्मा व इतनी जल्दी पकड़ते थे कि अच्छे अच्छे साहित्याचार्य वह कार्य नहीं कर सकते। प० पद्मसिंह शर्मा संस्कृत समझते थे पर संस्कृत लिखना भी जानते थे। इस विषय में सम्भव है कि किन्हीं महानुभावों को सन्देह हो उसे दूर करने के लिए उनकी लिखित 'प्रबन्ध मञ्जरी" पाठकों को पढ़नी चाहिए। तथा महाविद्यालय ज्वालापुर के भारतोदय नामक मुखपत्र के ७म् वर्ष का १० म् अङ्क भी देखना चाहिए। उनकी गुणग्राहकता तथा योग्यता से मुग्ध होकर ही महाकवि शङ्कर जी ने अपना 'अनुराग रत्न' उन्हें भेंट किया था तथा ५ हज़ार की रकम पर लात मार दी थी, सम्पादक जी के कारण ही श्री प० मुकुन्द राम जी की पुत्री सावित्री के साथ कविवर सत्यनारायण जी का सम्बन्ध हुआ था। सत्यनारायण जी शर्मा कविरत्न भी आर्य समाजी थे। आर्य समाजी की कन्या से उनकी शादी हुई थी। उनके काव्य महाविद्यालय को अमर बना गये और बनाते रहेंगे। कविरत्न सत्य नारायण जी के गुण की परख सबसे प्रथम प० पद्म सिंह शर्मा जी ने ही की थी। उन्होंने उनको हिन्दी व उर्दू के कवियों का चिरस्मरणीय कर दिया पर श्री प० बनारसी दास चतुर्वेदी उनके जीवन चरित्र लिखने का मसाला लेकर भी न स्वयं लिखते हैं न किसी को लिखने के लिए देते हैं, हमें तो कुछ नहीं पर स्वर्गीय प० जी की आत्मा उन्हें क्या कहती होगी यह वे ही समझें। उनके पत्रों का प्रकाशन भी व हो रहा है। जिसके कारण हिन्दी साहित्य आज पत्र लेखन कला से शून्य सा हो रहा है। पत्र लिखने का प्रकार एक कला है जो भी

पं० पद्मसिंह शर्मा जी को भली प्रकार ही आता था श्री प० रुद्रदत्त जी सम्पादकाचार्य प्रसिद्ध पत्रकार थे वे आर्य समाजी थे ? "स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी" उनकी ही लिखी हुई एक हास्य प्रधान रचना है। प० पद्मसिंह जी के अनुरोध से ही उन्होंने अपने अन्तिम दिन महा विद्यालय में व्यतीत किये थे। तथा कुछ दिन भार



कविवर नाथूराम "शंकर"

तोदय का सम्पादन भी किया था। इस प्रकार हिन्दी जगत् के प्रति प० पद्मसिंह शर्मा प० रुद्रदत्त जी सम्पादकाचार्य प० सत्यनारायण शर्मा, श्री प० नाथूराम शर्मा का बड़ा भारी उपकार है, जिन पर पृथक् पृथक् लेख लिखे जा सकते हैं। पर आज हम इस उपदेशक अङ्क में इतना ही कहकर चुप होते हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रसिद्ध उपदेशक श्री प० दौलतराम जी का कौन नाम नहीं जानता जो कि अन्त में 'अच्युत मुनि, नाम से प्रसिद्ध हुए। तथा मेरिया 'भृगुतीर्थ' अनूप शहर में गंगातट पर वर्षों रहते रहे। यह आर्य समाज की ही कृपा थी जो उनके हृदय में भगवद् भक्ति इतनी अधिक उमड़ी कि उन्होंने उपदेशकी छोड़कर भगवत् चिन्तन आरम्भ कर दिया। श्री प० गणपति शर्मा आर्य समाज के सच्चे उपदेशक थे। जिन्हों ने जान साहब को कश्मीर में जाकर अपने अकाट्य तर्क से निरुत्तर कर दिया था। उनके वियोग में श्री महाकवि शङ्कर ने गणपति वियोग विलाप नामक एक छोटी सी पुस्तक रची थी यह छोटी होते हुए भी अनूठी है।

श्री स्वा० नित्यानन्द जी तथा श्री स्वा० विश्वेश्वरानन्द जी तथा श्री स्वा० सर्वदानन्द जी भी एक महान् उपदेशक थे। जिन्होंने राजा महाराजाओं को उपदेश देकर अपना शिष्य बनाया था। श्री स्वा० दर्शनानन्द जी महाराज को तो कौन नहीं जानता। जिन्होंने गुरुकुल को जन्म दिया। तथा अनेकों गरीब निस्सहाय छात्रों को मदद देकर पुस्तक आदि बाँटकर पढ़ाया। इन सब महानुभावों का नाम स्मरण कर श्रद्धाजंलि देना आज उपदेशक सम्मेलन का परम कर्तव्य है। इसी प्रकार श्री प० रामदत्त जी शुक्ल एम ए० एल० एल० बी० के पूज्य पितृ चरण श्री प० नन्दकिशोर देव शर्मा जी तथा श्री प० भगवान दीन जी को हम यदि इस समय स्मरण न करें तो फिर कब करेंगे। उपदेशक सम्मेलन को इन सब का जीवन चरित प्रकाशित कर एक अभाव की पूर्ति, तथा कृतज्ञता प्रकाशित करनी चाहिए। श्री प० सीताराम जी ताजपुरी भी प्रसिध्द उपदेशक थे। इन सब के साथ साथ आज भी उपदेशकों की एक विशिष्ट कोटि आर्य समाज में है। यह ठीक है कि वे अधिक नहीं हैं, यथा कथंचित वे इस परम्परा को निभा रहे हैं। इन सबका परिचय संग्रह तथा चित्रों का होना आवश्यक है।

◆◆◆



"मुझे यह जान कर हर्ष हुआ कि वैदिक संस्कृति के सार्वदेशिक प्रचार के लिये लखनऊ में एक अखिल भारतीय आर्य-उपदेशक महासम्मेलन होने जा रहा है। देश की सांस्कृतिक एकता उतनी ही आवश्यक है जितनी कि उसकी राजनैतिक एकता। संस्कृति राष्ट्रीयता का एक अभिन्न अङ्ग है जिसके बिना राज्य तो बन सकता है राष्ट्र नहीं, अतः उसे अक्षुण्ण बनाये रखना प्रत्येक देश प्रेमी का कर्तव्य हो जाता है।

इससे भी अधिक सन्तोष का विषय है आर्यसमाज में नवीन रक्त का प्रवेश। यह नव चेतना नवयुवकों की प्रगति की ओर संकेत कर रही है और आर्यसमाज के क्षेत्रमें जो थोड़ी बहुत निराशा फैली हुई है उसको निवृत्त कर देगी इसमें संदेह नहीं है।

आर्यसमाज की बलिवेदी पर स्वनामधन्य, ख्यातनामा अनेकों महात्माओं ने अपनी आहुति दी है जिनकी पावन परम्परा से ही आज भी वह गौरवान्वित है, परन्तु वह युग था जब आर्य जनता में सामूहिक चेतना थी, सब को एक ही धुन थी "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"।

उस परम्परा की रक्षा करना नवयुवक वर्ग का उत्तरदायित्व है, उन्हें आज ऋणों से उऋण होना है। यह कार्य गम्भीर आत्मनिरीक्षण का है। भय यह है कि बढती हुई पृथक करण की प्रवृत्तियाँ इस अभागे विभजित देश को अधिकाधिक ईर्षा द्वेष की ज्वालाओं के अर्पित न करदें।

आशा है यह सम्मेलन उपदेशक वर्ग के लिये कार्य प्रणाली रचने के अतिरिक्त सर्वसाधारण आर्य जनता को भी अनुप्राणित करेगा और इस चेतना को पुनर्जीवित करेगा—

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्, देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।"

मदनमोहन सेठ

भ्रमण पत्रिका

आज कल भारतीय विधान परिषद् के सामने यह प्रश्न है कि इस देश का नाम इण्डिया रहे या भारतवर्ष। यह तो सब को विदित है कि भारत नाम में हमारी अत्यन्त प्राचीन संस्कृति का इतिहास सन्निहित है। और इण्डिया शब्द विदेशियों का दिया हुआ है जिस में दासता की दुर्गन्ध आती है। अतः आर्य समाजों को चाहिये कि अपने स्थानों में सार्वजनिक सभा कर के निम्न लिखित प्रस्ताव पास करें और उसकी कापी अध्यक्ष विधान परिषद् नई दिल्ली, प्रधान मंत्री भारत सरकार और सार्वदेशिक सभा के पास भिजवा दें। यह काम अत्यन्तावश्यक है इसे १६ मई से पूर्व पूर्ण कर देना चाहिये।

"......की यह सार्वजनिक सभा यह निश्चय करती है कि हमारे देश का नाम भारतवर्ष ही होना चाहिये, न कि "इण्डियन डोमीनियन"। भारतवर्ष हमारे देश का अत्यन्त प्राचीन नाम है और इसमें हमारी संस्कृति का इतिहास सन्निहित है। इण्डिया नाम विदेशियों का का दिया हुआ है। अतः हम नहीं चाहते कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी हमारा देश, विदेशी नामसे सम्बोधित हो।

गंगा प्रसाद उपाध्याय एम० ए०, मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

संसार की आशा भारत

(आचार्य क्षितिमोहन सेन, शान्तिनिकेतन बोलपुर)

भारतवर्ष के साधक वर्ग में एक दन्तकथा प्रचलित है। यह कहानी कुछ मृगों के विषय में है और इस प्रकार है, पुराने जमाने में किसी राज्य में एक हिरनों का झुंड रहता था। इस राज्य का राजा बड़ा न्यायी और सच्चा था अत हिरनों का झुंड भी बड़े सुख शान्ति से जीवन बिता रहा था। कभी २ कुछ आक्रमणकारी आकर शिकार खेलने का प्रयास करते तो राजा इनको भगा दिया करता था। परन्तु हिरनों को इससे भी सन्तोष न हुआ और उनके नेता ने राजा से शिकायत की कि इस प्रकार बाधा पड़ते रहने पर उनका वहां रहना कठिन होगा और राजा इन बाहर के लोगों के हमलों का बिल्कुल रोक दे। राजा ने उत्तर दिया कि प्यारे बच्चो! मैं तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं देता। इस राज्य में अन्य भी कोई ऐसा नहीं है जो तुम्हें कष्ट दे परन्तु मैं यह विश्वास कैसे दिला सकता हूँ कि बाहर से कभी भी कोई हानि न पहुँचायगा।' इस पर हिरनों ने उत्तर दिया कि यदि वह ऐसा आश्वासन देने में असमर्थ हैं तो वे दूसरे देश में जा बसेंगे। राजा ने कहा कि "यदि तुम यहाँ से कहीं अन्यत्र जाकर अधिक सुख से रह सकते हो तो मुझे इसमें कोई भी आपत्ति नहीं है।"

हिरनों का यह झुंड इस प्रकार अपनी कल्पना के स्वर्ग प्रदेश की खोज में निकल पड़ा। एक स्थान पर उन्होंने एक शिला लेख देखा जिस पर अंकित था "यहां शिकार खेलने की आज्ञा नहीं है" इन सुन्दर शब्दों से आकृष्ट होकर उन्होंने पता लगाया कि यह विज्ञापन सच्चा था और वहां का राजा बाहर के किसी भी आक्रमणकारी को नहीं आने देता था। इस प्रकार वे सब नये देश में जा बसे, सारे भ्रम और आशंका से मुक्त होकर उनकी संख्या में बहुत वृद्धि हुई। परन्तु एक दिन अपने भृत्यों के साथ शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर राजा स्वयं शिकार खेलने आया। अनेक हिरन मार डाले गये अथवा घायल हुए और ऐसा प्रतीत होने लगा कि प्रलय आ गई है। हिरनों का नेता हताश होकर राजा के पास गया और कहा कि हम लोग आपके इस वचन पर विश्वास करके, कि यहाँ पर किसी को शिकार खेलने की आज्ञा नहीं है, यहां आ बसे थे, परन्तु यह सब क्या हो रहा है?' राजा ने उत्तर दिया कि "लेख को ध्यान पूर्वक पढ़ो, यहां अन्य कोई शिकार खेलने नहीं आ सकता परन्तु मैं जब चाहूँ शिकार खेल सकता हूँ। हिरनों के नेता ने दुखी होकर कहा कि हाय! अगर बाहर के लोग हमला करते तो हम में से कुछ फिर भी बच जाते परन्तु आपके विपुल शस्त्र और अनुयायियों के सामने तो हम में से एक भी न बचेगा, अब हम किससे रक्षा की याचना करें हमने अपने पुण्यात्मा और प्यारे राजा को छोड़ दिया। विनाश के उस क्षण में इस प्रकार उस हिरन ने परिताप किया।

विश्वकवि रवीन्द्र ने इस घटना के महत्व को इस तरह वर्णन किया है—"इस युग में हम ही वह हिरनों के झुंड हैं"। अब तक हम धर्म की ध्वजा के नीचे जीवित रहे। यह सत्य है कि हर तरह से रक्षा के लिए तत्पर रहने पर भी धर्म हमारी बाहरी शत्रु हमलों से रक्षा न कर सका। तब विज्ञान (साइन्स) के राजा ने घोषणा की कि मेरे राज्य में आओ, मैं तुम्हारे सब दुख दर्द दूर दूंगा" हम उसके शब्दों के जादू में फँस

आर्यसमाज का उपदेशक और उसका उत्तरदायित्व

[श्री प० बिहारीलालजी शास्त्री]

मैला कुर्ता, नङ्गा सिर, खिची धोती, बगल में बिस्तर, हाथ में ट्रङ्क, जल्दी जल्दी रेल के प्लेट-फार्म पर चलता हुआ यह कौन है ? आर्यसमाज का उपदेशक।

आज भारत के सब धर्मोपदेशको से कम वेतन और कठिन नियन्त्रण पर काम करने वाला सादा भोजन और रहन सहन मे उच्चकोटि के विशाल-उदार विचार रखने वाला, देश की उन्नति मे सदा रत और परपीडा का अनुभव करने वाला सहृदय है, आर्यसमाज का उपदेशक।

आर्यसमाज की उपदेशकी से तग आकर यदि आर्योपदेशक दूसरे पेशों मे चले गये तो मौज उडा रहे हैं।

सम्मान से रहित, अनेक अपमान और कठिनाइयो को सहते हुए भी आर्योपदेशक क्यों काम कर रहा है ? विचारों की महिमा, महर्षि के सिद्धातों

गए और धर्म को छोड कर साइन्स को अपना गुरु और साथी बना लिया। उसने हमारी बहुत सी आवश्यकताओं को दूर भी कर दिया और मानव जाति खूब बढी और सोचने लगा कि यह परिवर्तन अच्छा ही हुआ, परन्तु एक दिन हमारी आखें नैराश्य के अन्धकार मे खुली जब हमें यह पता लगा कि विज्ञान और उसके मारक शस्त्रास्त्र मानव जाति को ही मिटा देंगे। अब अपनी प्राण रक्षा के लिए हम फिर उस पुराने धर्म, नैतिकता और मानवता की दुहाई देने लगे हैं जिसको कि हम स्वय छोड आये थे।

मनुष्य मे स्वार्थ और परमार्थ दोनों की भावनाएँ काम करती हैं, वह समाज को बनाता भी है और बिगाडता भी है। इन दैवी और आसुरी प्रवृत्तियों में सतत सघर्ष रहता है। एक कहावत है कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया और शैतान ने राज्य या राष्ट्र को बनाया। आज की राष्ट्रीय भावना हमारी मानवता की भावना को पादाक्रान्त कर देती है और उसका फल होता है अनन्त वेदना। योरोप में जहाँ अनेकों अच्छे प्रयोग हुए वहाँ इस राष्ट्रीयता को अग्नि ने पृथ्वी पर नरक का द्वार खोल दिया है। भारत की मानवता और धार्मिकता में भी प्रगति नही है। दोनों और सतुलन का अभाव है।

अपने स्वर्णिम अतीत में परमार्थी और आदर्शवादी भारत ने मानव के हृदय पर राज्य किया था। भारत सर्वदा से अपनी सार्वभौमिक अनुभूतियो और विशाल आत्मिक प्रेरणाओं के लिए प्रसिद्ध रहा है जातीय और अन्तर्जातीय व्यवस्था स्थापित करने मे केवल भारत को ही नेतृत्व करने का अधिकार है। आज भारत यदि अपने उत्तरदायित्व के उच्चतम शिखर पर नही पहुँचता तो शताब्दियो के लिये अन्धकार के गर्त में गिर जायगा इस महान कार्य को हमें अति कठिन उत्तरदायित्व के रूप मे लेना है, हमे अपनी सारी शक्तिया निष्काम भाव से लगा देनी हैं। फल के लिए अधीर न होकर हमें अपने कार्य के लिए ही जीना और मरना है।

मैं अपने पूर्वजो से प्रार्थना करता हूँ कि भारत अपने निर्दिष्ट कार्य के योग्य बने। मै ससार के समस्त ज्ञानी और सुसस्कृत विद्वानों से प्रार्थना करता हूँ कि वह भारत के इस कार्य में सहायक हों क्योकि यद्यपि परिश्रम भारत का होगा तथापि लाभ सब का ही होगा। कार्य की पूर्ति स्वय ही उसका पुरस्कार होगी। केवल इसी प्रकार मानव अपने खोए हुए अधिकार को प्राप्त कर सकता है।"

[अनु० डा० राजेन्द्र वर्मा]

का प्रेम, स्वामी दर्शनानन्द का त्याग। आर्य पथिक और स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान। यहीं हैं आर्योपदेशक को प्रेरणा देने वाले।

आर्यसमाज की वेदी से देश दशा पर, समाज की रीति नीति पर, धर्मों की तुलनाओं पर जैसा सूक्ष्म और दार्शनिक विचार दिया जाता है वह अन्यत्र नाम मात्र को भी नहीं मिलता। फिर भी



लेखक

सूक्ष्म विषयों को मनोरंजक बनाकर सरल भाषा में दिया जाता है।

आर्यसमाज के उपदेशकों द्वारा लाखों मनुष्यों को प्रतिमास जो विचार थोड़ा सा व्यय करके मिलते हैं वह दूसरी संस्थाओं में कहाँ ?

परन्तु भारत के पत्रों ने शपथ खा रक्खी है भूल से भी आर्यसमाज के उत्सवों का वृत्तान्त प्रकाशित न करने की। आज कल के पत्रों में जब कि "लपूझन्ना" लीडरों के बयान और भाषण नित्य प्रकाशित होते हैं तब भी उच्च से उच्च कोटि के आर्य विद्वानों के भाषणों का समाचार तक प्रकाशित नहीं होता।

जिन्हों ने कु० सुखलाल जी, पं० रामचन्द्र जी देहलवी पं० सूर्य देव जी पं० प्रकाशवीरजी आदि आर्योपदेशकों के भाषण सुने हैं वह हमारे



(प० रामचन्द्रजी देहलवी)

इस कथन की यथार्थता को जान सकते हैं। श्री पं० अयोध्या प्रसाद जी के विद्वता पूर्ण भाषण, श्री प० ज्ञानेन्द्र जी सूफी के सप्रमाण व्याख्यान कैसे युक्ति युक्त होते हैं। श्री जोरावर-सिंह जी प० प्रकाश चन्द्र जी अपनी कविताओं से मनोरंजन के साथ साथ कैसी सुन्दर शिक्षा देते है।

आर्य भजनोपदेशकों ने मनोरंजन के साथ साथ जो नैतिक शिक्षा ग्रामीण जनता को दी हैं वह देश पर कम ऋण नहीं है। समाज सुधार का काम हमारे भजनीकों ने कंधे पर बाजा लाद कर जो किया है क्या मोटर

और जहाज में उड़ने वाले बड़े से बड़े नेता ने भी किया है ?

दयानन्द के दीवानो ने मौखिक भाषण, गायन और लेखन द्वारा देश की जागृति मे जो काम किया है वह सब संस्थाओ से अधिक किया है। और चुपचाप किया है । साथ ही सही सही किया है । दृढ़ता पूर्ण किया है। क्यो कि आर्योपदेशक क पास पुरातन काल की मजी मँजाई करोड़ो जनों से अनुभूत और अरबों मनुष्यों पर प्रयुक्त शिक्षा है । योगियों का दृष्ट ज्ञान है। प्रभु प्रदित वेद है । परन्तु आज कल आर्योपदेशक कुछ मुरझाया हुआ सा दीखता है । कुछ खोया हुआ सा कुछ भूला हुआ सा। क्यो ? दुनिया की चमक दमक, लीडरीइज्ञागत, और मिथ्या प्रचारो ने उसे चौंका दिया है। और कुछ यह भी कारण है कि कि आर्यसमाज की वेदी पर भी वह लोग अधिकार जमाते जारहे है जो दयानन्द के कहे जाते हुए भी दयानद के नही है। उन श्रद्धा विश्वास हीन लोगों ने आर्योपदेशक के मार्ग को घेर दिया है। कोई कहता है आर्य समाज अपनी नीति बदले। कोई कहता है स्वामी जी के ग्रन्थ और उपदेश अब अनावश्यक है। कोइ कहता है गाँधी वाद में सब प्रोग्राम स्वामी जी का आ गया है। अब आर्योपदेशकों को विराम करना चाहिये। ऐसे शोर गुल से आर्योपदेशक की मति डोल गयी है ।

"मतिर्दोलायते तात धूर्तैर्बुद्धिमतामपि"

परन्तु आर्योपदेशको ! यह सब आंधियाँ उतर जायेंगी। यह झोल उड जायेंगे। हिरण्यमय पात्रों को दूर कर सत्य का उद्घाटन करो। सत्य का प्रचार करो । भौतिकवाद अंधतम को प्राप्त कराने वाला है। तुम्हारा मार्ग सत्य है और सनातन धर्मतंत्र शास्त्रतंत्र। अपने पथ पर अग्रसर होओ और ऋषि के बताये मार्ग पर जनता का आह्वान करते रहो। जो विषमयी सरिता में बह गये हैं उन्हे जाने दो, जो प्रलोभन और सम्मान के शिकार हो गये है उनको छोड़ दो। इनके कल्याण के लिये प्रभु से प्रार्थना करो। कठिनाइयों के पर्वतों को लाँघो, विघ्न बाधाओं की नदियों को तैरो। नास्तिकता और मिथ्यावादी की वादियों को पार करो, हाथ में वैदिक प्रकाश लेकर सत्वार्थ तुम्हारा पथ प्रदर्शक है। फलाकांक्षा बिना किये पुरातन ब्राह्मणों के समान कार्य करो। स्वतंत्र भारत की स्वतत्रता और संस्कृति को दृढ़ तुम्हें बनाना है। ये दूध के मजनू, जरा जरा से बलि दानों का "मावज़ा" चाहने वाले ये मज़दूर, भारत का निर्माण नही कर सकते। आज स्वतंत्र भारत का भवन कोई मक्के के नक्शे पर बनाना चाहता है कोई मास्को के तो कोई मिला जुला। तुम्हे भारत माता का मंदिर अयोध्या मथुरा और इन्द्रप्रस्थ के मानचित्रो पर बनाना है भारतीय संस्कृति रहेगी महाभारत और बाल्मीकि रामायण की संस्कृति, यहा का विधान रहेगा मनुका वैदिक विधान। जो कहते हैं " अतीत की ओर लौटना मूर्खता है, उनकी उपेक्षा करो। जिनका अतीत अंधकार मय था वह अतीत से प्रेम क्यों करें और किस आशापर करें, परन्तु जिनका अतीत समुज्ज्वल रहा है, गर्व योग्य रहा है उन्हे तो अतीत की ओर ही लौटना होगा। जो यह कह कर भ्रमाते हैं कि "अतीत की ओर लौटना असंभव है" उनसे कह दो, खड़े रहो ! हम अतीत को ही लौटा कर लाते हैं। कैसे ? जैसे गुप्त सम्राटों ने लौटाया और जैसे शिवाजी ने। जैसा शंकरा चार्य ने लौटाया और जैसे ऋषि दयानद ने। नये बाजों पर भी पुरानी वीणा के स्वर बजाओ। नयी भौतिकता में पुरानी आध्यात्मिकता जाग्रत करो, अतीत को वर्तमान से मिलाकर भविष्य का निर्माण करो। काम कठिन है। परन्तु है कल्याणमय। प्रभु विश्वास पर दृढ़ रहकर अग्रसर होओ।

" अग्ने नय सुपथा "

++ ++++

दो दिवंगत उपदेशक

[श्री प्रो० सुखदेव विद्यावाचस्पति विश्व विद्यालय, काङ्गडो]

जिन दो दिवङ्गत उपदेशकों के विषय म मैं यहाँ चर्चा करने लगा हू उनसे आर्य जगत् अच्छी प्रकार परिचित है। सामान्यत प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक विशेष महत्व होता है, उसकी स्थान पूर्ति किसी अन्य से नहीं हुआ करती। फिर भी सर्व साधारण की अपेक्षा असाधारण व्यक्तिया का अभाव विशेषत: खटकता है, क्यों कि जाते समय वे अपनी उन असाधारण शक्तिया का अपने साथ ले जाते है जिससे सारा समाज उपकृत होता है।

दिवङ्गत प० रामदेव जी एव आचार्य चमूपति जी इसी प्रकार के असाधारण शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों मे से थे। लखनऊ म १५ से १७ मई तक होने वाले इस " आर्य उपदेशक महा सम्मेलन क अवसर पर तो इन दो दिवङ्गत उपदेशका की स्मृति का होना स्वाभाविक ही है।

प० गुरुदत्त विद्यार्थी की मृत्यु क पश्चात् उस समय के आर्य जगत् म यह समझा जाने लगा था कि हमारे परिवार स एक इस प्रकार का विद्वान् उठ गया जो स्वाध्यायशील था और अथक प्रचारक था। प० गुरुदत्त विद्यार्थी क गम्भीर तुलनात्मक अध्ययन का ही यह परिणाम हुआ कि हम अपनी वैदिक सस्कृति को नए ढाचे म ढालकर विदेशी विद्वानो को भी उस का रसास्वाद करा सके। अत उन का अभाव आर्य आर्य जगत् को बहुत खटका। परन्तु कुछ ही समय के पश्चात् ही हमने यह देखा कि इस कार्य का करने वाले दो विद्वान् आर्य जगत् के अखाड़े म आ उतरे हैं। वे आचार्य रामदेव जी तथा आचार्य चमूपति जी थे। आचार्य रामदेव जी ने तो अपने विद्यार्थी जीवन में ही कुछ समय तक प० गुरुदत्त विद्यार्थी के साथ रहकर अपने को प्रभावित किया था और एक प्रकार की दीक्षा ली थी। आचार्य चमूपति जी उनकी पुस्तकों से प्रभावित हुए थे और प्राय कहा करते थे कि हम उनके कार्य को पूरा करेंगे।

मै आर्य समाज के उपदेशको को तीन श्रेणियों मे विभक्त कर सकता हू।

(१) प्रथम श्रेणी के उपदेशक वे है जो अच्छे विद्वान् स्वाध्यायशील है और जिनकी लेखनी म शक्ति है। परन्तु उनम भाषण शक्ति सर्वथा नही है। इस लिए वे उन व्यक्तिया क लिए जिन्हें लेखबद्ध भाषा की विशिष्ट शैली को समझने का अभ्यास नहीं है विशेष लाभ कर सिद्ध नही हो सकते।

(२) दूसरे प्रकार के उपदेशक वे हैं जो भाषण देने म सिद्ध हस्त ह और अपने भाषण क समय श्रोताओ को जिधर चाहे उधर बहाकर ले जा सकते है। परन्तु उन्हे स्वाध्याय का अवकाश ही नहीं मिलता। इस लिए व कुछ लिख नही सकत व शिथिल जनता का अधिक उपकार नहीं कर सकते।

(३) तीसर प्रकारक उपदेशक व ह। जा उभयात्मक है। "उभयात्मकमत्र मन: सङ्कल्पकमिन्द्रियं च साधर्म्यात्" मन उभयात्मक ह। न तो उस कवल ज्ञानेन्द्रिय कहा जा सकता है और न कवल कर्मेन्द्रिय। उसे दोनो प्रकार की इन्द्रिय एक साथ कहा जा सकता है। इसी म उसका महत्व और श्रेष्ठता ह। ये तीसरी कोटि क उपदेशक भी उभयात्मक ह, इसी लिए श्रेष्ठ हैं।

ये अच्छे विद्वान् स्वाध्याय शील और लेखक भी होते है तथा साथ ही अच्छे वक्ता भी होते है। इसी प्रकार क उपदेशक ही वस्तुत शिक्षित एव सर्व साधारण का उपकार कर सकते हैं। हमारे ये दानों दिवङ्गत आचार्य उपदेशक भी इस तीसरी प्रकार की श्रेणी म रख जा सकते हैं। यही इनकी श्रेष्ठता का सूचक चिन्ह है। इन्होंने अपने वैदिक धर्म के विचारा को नवीन पद्धति का चोला पहिना कर उनकी मोहक सुगन्ध को केवल भारत म नही नहीं अपितु भारत स बाहिर भी फैलाया। उपदेशका के लिये इन का जीवन सदा अनुकरणीय हैं।

(शेष पृष्ठ ४६ में)

उपदेश्योपदेष्टृत्वात्तत्सिद्धिः (सांख्यः)

(ले०—विद्याभास्कर श्री प० रुद्रदेव शास्त्री धनुर्वेदाचार्य सेनापति—आर्यवीर दल
बङ्गाल, आसाम, (कलकत्ता)

अखिल भारतीय प्रथम आर्य उपदेशक सम्मेलन का अधिवेशन आगामी १५, १६ तथा १७ मई १९४६ को युक्तप्रान्त की राजधानी लखनऊ में होने जा रहा है। यह आर्य उपदेशक महानुभावों के लिये अत्यन्त गौरव एवं हर्ष का विषय है। आज समस्त आर्य जगत् के



लेखक

कुशल कार्य कर्त्ताओं एव विद्वान् नेताओं का किसी न किसी रूप में इस सम्मेलन के निमित्त सहयोग प्राप्त है।

राष्ट्र के किसी भी अग्रणी के लिये यह आवश्यक है कि वह मार्ग को निष्कण्टक बना दें और सैनिकों में सहिष्णुता की भावनायें कूट कूट कर भर दे।

भारतीय स्वातन्त्र्य बलिवेदी के निर्माता राष्ट्रोद्धारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती से देश का कौन सहृदय आज अपरिचित होगा। ७५ वर्ष पूर्व ऋषि ने बुरे से बुरे स्वदेशीय राज्य के उत्तम होने तथा अच्छे से अच्छे विदेशियों के राज्य के निकृष्ट होने की घोषणा की थी।

इस प्रकार ऋषि ने परतन्त्रता तथा कुरीतियों के पाश में आबद्ध राष्ट्र को मुक्त करने के निमित्त सर्व प्रथम अपने आप को सेनापति नियुक्त किया तथा बृहत् सेना के रूप में देश भर में आर्य समाज की स्थापना की। सुसङ्गठित आर्य सेना की संख्या तो यद्यपि न्यून थी फिर भी वह वीर सेनानी न केवल स्वराज्य अपितु सुराज्य प्राप्ति के निमित्त वेद एव वैदिक संस्कृति रूपी शस्त्रास्त्रों का सहारा ले कर आजीवन नाना प्रकार की विघ्न बाधाओं से युद्ध करता रहा।

उस वीर सेनानी के उद्दिष्ट लक्ष्य को पूर्ण करने के निमित्त आर्य समाज रूपी देश की सेना के सेनापति उपदेशक महानुभावों का प्रयत्न चलता रहा है और आज स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् भी यह प्रयत्न तब तक चलता रहेगा जब तक कि देश में भ्रष्टाचार मिटकर "सुराज्य" न हो जाय।

सहस्रों वर्षों की दासता और विदेशी सत्ता ने तो राष्ट्र की कमर ही तोड़ दी है। पूर्वकालीन समृद्ध भारत आज परमुखापेक्षी है। देश के करोड़ों निवासी निवास व भाग्य के

अभाव में क्लान्त हो रहे हैं क्षुद्र स्वार्थों के लिये राष्ट्र का अहित करने वालों की भी कमी नहीं है।

राष्ट्र की भीषण विश्रृङ्खलित अवस्था में भी ऋषि के अनुयायी उपदेशक निःस्वार्थ भाव से मूक सेवा करते रहे। जनता के कानों तक राष्ट्र के नेताओं के आदेशों को पहुँचा कर उसके स्तर को प्रत्येक दृष्टि से उन्नत करने में इन आर्य समाज के उपदेशकों का जो हाथ रहा है इतिहास में अन्वेषण के पश्चात् भी वह स्थान दूसरों को अप्राप्य है। क्योंकि उपदेशक सेनानी कर्मठ वीरों ने स्वराज्य प्राप्ति के मार्ग में आने वाली अनैक्यता, वैदेशिक शिक्षा, अस्पृश्यता, निरक्षरता, जन्मगत जाति विभेद बाल विवाह, वृद्ध विवाह, विधावओं का भयङ्कर अभिशाप स्त्री शूद्रों के पठन पाठन के अनधिकार, मिथ्या विश्वास, एवं भ्रान्त धारणायें इत्यादि अनेक कुरीतियों के मार्गकण्टों को हटाकर स्वदेश, स्ववेश, स्व सभ्यता स्व शिक्षा स्व दीक्षा स्व भाषा, और स्वाभिमान रूपी सुन्दर निष्कण्टक मार्गों का निर्माण किया। परिणाम स्वरूप जनता ने करवट ली। अमर महर्षि के बोये हुये तथा विश्ववन्द्य महात्मा गान्धी के द्वारा सींचे हुये वृक्ष में फल आये। और देश ने कृतज्ञता के साथ स्वतन्त्रता देवी के दर्शन किये।

परन्तु अभी राष्ट्र के आभ्यन्तरिक नैतिक पतन की डगमगाती हुई दीवार को एक धक्का और देना है। भ्रष्टाचार के गारे से लथ पथ यह दीवार जिस दिन टूटेगी– ऋषि दयानन्द के वैदिक काल के वे स्वप्न और महात्मा गांधी के राम राज्य के मनोरथ सफल हो जायेंगे।

यह ठीक है कि देश व समाज की रग रग में धंसी धसी हुई इन बुराइयों को निकालने में उपदेशकों को कभी कभी बड़ी विकट समस्या का सामना करना पड़ता है। कभी कभी आर्थिक परिस्थिति भी विचलित करने का कारण बन जाती है। क्योंकि यह युग अर्थप्रधान है। अति गर्हित मार्ग से धन प्राप्त करने वाला निर्गुण धनी भी गुणवान निर्धन उपदेशक को हेय समझता है। परन्तु इन सब परिस्थितियों में भी हमने अपने मार्ग पर बढ़ना है।

लक्ष्मी और सरस्वती का यह संघर्ष शताब्दियों से चला आ रहा है। ऐसी किम्बदन्ती है, न जाने कहाँ तक यह बात सत्य है। परन्तु स्मरण रहे लक्ष्मी की अनैतिकता पर सरस्वती की नैतिकता सदैव ही विजयी रही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिसने अपने लक्ष्य के उद्देश्य की पूर्ति के लिये आन्धी तूफान, धूप, वर्षा, गर्मी, सर्दी, मान, अपमान भूख, और प्यास, इन सब की भी तनिक भी चिन्ता न करते हुए आगे ही पग बढ़ाया है, बड़े बड़े पर्वतों ने भी उसको सिर झुका कर मार्ग दिया है। बीहड़ जंगलों ने भी शीतल वायु तथा छाया से उसकी सहायता की है।

इसी तरह देश के निर्माण में मूक भाव से कार्य करने वाले, समय समय पर खतरों से सावधान रहने के लिये जनमत को जागृत करने वाले उपदेशकों के त्याग को भुलाया नहीं जा सकता। आज के संक्रान्ति काल की अस्थिरता में भले ही संसार उसे न समझ पाये पर क्षितिज के स्वच्छ हो जाने पर वातावरण में स्थिरता आ जाने पर सब उसके महत्व को समझेंगे। और श्रद्धा से उसके समक्ष अवनत होंगे।

प्रभु उपदेशकों को शक्ति दे कि वह राष्ट्र निर्माण तथा उसके नैतिक स्तर को उन्नत करने में प्रकाश स्तम्भ बन सकें।

"उपदेशक कैसे हों और क्या करें

[श्री कुंवर चांद करण जी शारदा प्रधान "आर्य प्रतिनिधि सभा" राजस्थान व मालवा]

यह बड़े ही हर्ष की बात है कि अखिल भारतवर्षीय आर्य उपदेशक महासम्मेलन श्रीमान प्रकाशवीर जी जैसे, तेजस्वी, नवयुवक उपदेशक के उद्योग से ता० १५-१७ मई तक बड़े ही समारोह से हो रहा है। मैं इस सम्मेलन की हृदय से सफलता चाहता हूं। हमारे सामने इस समय स्वतंत्र भारत में वैदिक धर्म का प्रचार कैसे किया जाय, यह जटिल समस्या है। देश में क्रान्ति हो रही है और आर्य समाज भी संक्रान्ति काल से गुजर रहा है। और हमें प्रचार के लिये नये २ रूप और नये २ ढंग देश काल और परिस्थिति के अनुसार ग्रहण करने चाहिये। हमारे उपदेशक ऐसे हों जो आर्य जीवन बिताकर जनता के सन्मुख त्याग, तप, धर्म - प्रेम का आदर्श रक्खें। देश में कम्यूनिज्म (साम्यवाद) फैल रहा है और भ्रष्टाचार व रिश्वतखोरी बढ़ रही है अतः इन बुराइयों के उन्मीलन के लिये आर्य समाज को पूर्ण बल के साथ कार्य क्षेत्र में उतरना चाहिये। हमारे उपदेशकों को ग्रामों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। और ग्रामीण जनता की बोली में ही उनको समझाकर उनके साथ सम्पर्क बढ़ाना चाहिये। और ग्रामीण जनता में जो अविद्यान्धकार रूढ़िवाद, अन्धविश्वास और पाखण्ड घुसे हुये हैं, उन्हें मिटाना चाहिये। प्रत्येक भाई बहिन को ग्रामों में साक्षर बनाने के लिये प्रबल रचनात्मक कार्य करना चाहिये। हमारे उपदेशक अपनी लोक कल्याण कारिणी वाणी द्वारा दुःखी भाइयों के दुःखों को मिटावें, और व्यथित हृदयों को अपनी प्रशान्त शीतल वाणी द्वारा शान्त करें। वे अपने अविरल अमृत उपदेशों से दुखित हृदयों को सुधापान करा परितृप्त करें। उपदेशकों को लोक प्रिय और समाज प्रिय बनकर सत्यं शिवं सुन्दरं से परिपूर्ण अपने प्रतिभाशाली व्याख्यान देने चाहियें। उपदेशों को त्यागी, तपस्वी, निस्वार्थ सेवी होना अत्यन्त आवश्यक है। उनको वर्ण भेद, रंग भेद, प्रान्त भेद, भाषा भेद आदि सब भेदों से ऊपर उठकर अपना वेद प्रचार ही जीवन का मुख्य लक्ष्य रखना चाहिये। और अवसर आने पर सिद्धान्तों की रक्षा के लिये अपने व्यक्तित्व और स्वार्थों को भूल जाना चाहिये। उन्हे तो गीता के १६ वें अध्याय में बतलाई हुई दैवी सम्पदाओं को प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये। उपदेशकों का सबसे बड़ा गुण निर्भय रहना और राक्षसी प्रवृत्तियों के नाश के लिये सदा तत्पर रहना है। उपदेशक समाज के उत्तम अंग है वे हमारी आत्मायें हैं। वे ही हमारे बाहर के और मन के सुविचारों का वर्णन करने वाले महाकवि है। अतः हमारे हृदयों के भावों को गान करने वाले उपदेशक महानुभावों को मेरा बारबार प्रणाम हैं।

मैंने बड़े दुःख के साथ यह अनुभव किया है कि आर्य समाज में उपदेशकों की उतनी प्रतिष्ठा नहीं की जाती जितनी की दूसरे मत व सम्प्रदाय वाले करते हैं। उनके भोजन और आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये वह श्रद्धा व भक्ति नहीं प्रदर्शित की जाती जितनी कि करनी चाहिये। परमात्मा हमें बल दे कि हम अपने उपदेशक मण्डल की मान व प्रतिष्ठा करनी सीखें। ताकि आर्य समाज का भविष्य उज्वल हो।

उपदेशक सम्मेलन के विचारार्थ—

"आर्य उपदेशक विद्यालय"

(श्री वीरसेन आर्य, लखनऊ)

आर्य समाज अपनी आयु के ७४ वर्ष व्यतीत कर ७५ वे वर्ष में प्रवेश कर रहा है । इस काल में आर्य समाज के संगठन, प्रचार, तथा प्रभाव को प्रगति शील बनाने के लिये समय २ पर कई प्रकार के सम्मेलनो परिषदों तथा उत्सवों का आयोजन होता रहा है। छः बार अ० भा० आर्य महा सम्मेलन भी हो



लेखक

चुके हैं। किन्तु महर्षि दयानन्द के निर्वाण के पश्चात् वैदिक धर्म और आर्य समाज का सन्देश देश के कोने कोने तक पहुँचाने वाले आर्य उपदेशकों का अभी तक कोई सम्मेलन नहीं हुआ था। प्रसन्नता की की बात है कि कुछ उत्साही कार्य कर्ताओं के प्रयत्न से लखनऊ में आर्य उपदेशक महा सम्मेलन होने जा रहा है। इस प्रकार का यह प्रथम ही सम्मेलन है। वस्तुत. इस सम्मेलन से आर्य समाज के इतिहास में एक नवीन अध्याय आरम्भ होगा।

इस सम्मेलन में आर्य समाज के प्रचार कार्य को सुसगठित और प्रभावशाली बनाने तथा आर्य जाति में नवीन स्फूर्ति लाने के उपायों पर विचार तो होगा ही किन्तु साथ ही कुछ रचनात्मक कार्य भी होना चाहिए। मेरी समझ में एक अत्यन्त आवश्यक कार्य 'आर्य उपदेशक विद्यालय' को स्थापना है। आर्य समाज के पास अनेकों गुरुकुल कालेज, कन्या विद्यालय अनाथालय तथा अन्य संस्थाए हैं जिन पर लाखों रुपया प्रति वर्ष व्यय होता है। किन्तु कोई एक भी ऐसा विद्यालय नहीं है जहाँ पर आर्य समाज के प्रचारकों की ट्रेनिंग का प्रबन्ध हो। लाहौर का एक मात्र दयानन्द उपदेशक विद्यालय भी पाकिस्तानी तूफान में नष्ट हो चुका है। इसलिये एक ऐसे विद्यालय की बड़ी आवश्यकता है जिसमे शिक्षा और दीक्षा लेकर आर्य उपदेशक वैदिक संस्कृति का प्रचार करें। भारत को स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद विदेशों में भी आर्य समाज के संगठित प्रचार का समय आ गया है। आवश्यकता इस बात की है कि बदली हुई परिस्थिति के अनुसार आर्य समाज की प्रचार शैली में परिवर्तन किया जाय और उत्साही, योग्य उपदेशकों को भारत तथा बाहर के देशों में प्रचारार्थ भेजा जाय। उपदेशक विद्यालय द्वारा ही इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है विद्यालय के साथ एक उच्च कोटि का वैदिक पुस्तकालय भी हो जिससे अनुसन्धान कार्य में सुविधा हो। क्या ही अच्छा हो

ऋषि ऋण से उऋण होने का यही अवसर है

[ठा० अजुर्नसिंह भजनोपदेशक, आ० प्र० सभा, यू० पी०]

आर्य समाज का स्थापित हुये लगभग ७५ वर्ष व्यतीत होने जा रहे हैं। अब तक जिस व्यवस्था से इसका प्रचार प्रबन्ध तथा संस्थाओं का क्रम चलता रहा है, उसमें समयानुसार परिवर्तन की आवश्यकता है। इसी के लिये यह प्रथम भारतवर्षीय उपदेशक सम्मेलन सन्देश दे रहा है कि यदि आगे आने वाली भयंकर आंधी से अपनी स्वभाषा स्वसंस्कृति की रक्षा न की गई तो इसका उत्तरदायित्व आप के ही ऊपर होगा। अब हमारे समक्ष केवल एक ही कार्य है जो बिना धर्म प्रचार के पूरा नहीं हो सकेगा। अब तक इस प्रचार यज्ञ में कितने ही सन्यासी उपदेशक प्रचारक समय समय पर जीवन आहुति देते चले आये हैं यह यज्ञ बलिदानों से ही फलता फूलता है। यदि श्री प० लेखराम जी तथा श्री १०८ स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज अपने बलिदान से और श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी महाराज अपने शास्त्रार्थ से तथा श्री १०८ स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज अपने उपदेशों से जनता को सदेश न देते तो यह पौधा इस प्रकार न फूलता फलता।

अब भारत स्वतन्त्र हो गया है। यही आर्यों की परीक्षा का समय है। मैं तो कहता हूं कि महर्षि स्वामी दयानन्द के कार्यक्रम को पूर्ण करने का यही अनुपम अवसर है यदि इस युग में भी आर्यसमाज अपने पग दबी हुई नीति से छिप छिप कर रखता रहा तो इसका भविष्य कंटकाकीर्ण बन सकता है।

माननीय नेताओं को अब स्वयं सम्हल कर इसका पथ प्रदर्शन करना चाहिये। ऋषि का सन्देश निर्भीक कार्यों से फलेगा। जब तक हम त्याग और तप से अपनी सहिष्णुता न दिखलावेंगे तब तक इसकी सफलता कठिन है। आओ! इस वृहद यज्ञ के अवसर पर प्रतिज्ञा करें कि आगे जीवन में प्रचार की सुव्यवस्थानुसार कार्य करते हुये ऋषि ऋण से उऋण होने का सौभाग्य प्राप्त करें।

ध्वज-गीत

(ले० लक्ष्मी प्रसाद द्विवेदी 'चन्द्र' विशारद)

ओ३म्-ध्वजे, फहरो!
कम्पित अनिल में,
अम्बर, सलिल में,
नव-धार से—
छहरो!

ओ३म्-ध्वजे, फहरो!
अवनि सुषमा में,
गौरव गरिमा में,
नव भार से—
लहरो!

ओ३म्-ध्वजे फहरो!
मानव सुनीति में,
बांधव प्रीति में,
नव तार से—
थहरो!

ओ३म्-ध्वजे फहरो!

यदि लखनऊ में ही ऐसा विद्यालय स्थापित किया जाय जहाँ पर प्रथम ऐतिहासिक उपदेशक सम्मेलन होने जा रहा है।

आशा है आर्य विद्वान और नेता इस आवश्यक प्रस्ताव को कार्य रूप में परिणत करने के लिये योजना बनायेंगे।

अमर धर्मवीर से प्रेरणा

[प० धर्मदेव विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा, देहली]

अमर धर्मवीर श्री पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज जैसे तपस्वी परोपकारी वीर सन्यासी का पुण्यस्मरण किस के हृदय मे उत्साह और नवजीवन का सचार न कर देगा ? वे ईश्वर के सच्चे भक्त थे और निर्भयता तथा साहस की मूर्ति थ । उनका जीवन सरल और श्रद्धा से ओत प्रोत था उन्होने सन् १९१६ मे सन्यास आश्रम मे प्रवेश के समय श्रद्धानन्द नाम ग्रहण किया था । चिरकाल से लुप्त गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का पुनरुद्धार, आर्य भाषा प्रचार, शुद्धि दलितोद्धार, विधवाओं का उद्धार, वैदिक धर्म और आर्य सस्कृति का प्रचार आर्य (हिंदू) सगठन स्वराज्यान्दोलन प्रत्येक विषय म उनका कार्य अत्यन्त अभिनन्दनीय और अद्भुत था । वे ऐसे गुणी और साहसी महापुरुष थे कि जिस भी क्षेत्र मे जाते वहीं चमक जाते और सफल नेतृत्व करते थे । गुरुकुल विश्वविद्यालय कागडी के सस्थापक और आचार्य के रूप मे उनका ब्रह्मचारियों से व्यवहार पिता माता से भी बढ कर था । जब १९१९ मे उन्होने महात्मा गान्धी जी के असहयोगान्दोलन म कार्य किया तो उस निर्भयता और साहस का परिचय दिया जिस को जनता कभी भूल नहीं सकती और जो इतिहास म सदा स्वर्णाक्षरा मे लिखा जायगा । देहली घन्टाघर के सामने एक विशाल जलूस का नेतृत्व करते हुए जब उन पर नहीं साधारण जनता पर गुर्खों ने गोली चलाने की धमकी दी तो वे आगे बढे और छाती तान कर खडे हो गये और कहा कि मै खडा हू । मुझे मारो । ऐसी निर्भयता से ये शब्द कहे गये कि किसी को उन पर गोली चलाने का साहस न हुआ । उन दिनों उत्तेजित जनता को सयम में रखना और अमृतसर म स्वागताध्यक्ष के रूप में कांग्रेस का सफल अधिवेशन कराना श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का ही काम था । मलकाना राजपूतों तथा अन्य मुसलमानों की शुद्धि का आंदोलन जिस सफलता के साथ उन्होंने चलाया और २ लाख के लगभग ऐसे बिछुडे हुए भाइयों को राजपूत वर्ग म पुन मिला दिया इस को कौन भूल सकता है ?. यह सब कार्य वे सार्वभौम वैदिक धर्म और प्राचीन आर्य सभ्यता के सच्चे प्रेम से प्रेरित हो कर करते थे द्वेष वश नहीं । हिन्दू मुस्लिम एकता को लाने के लिये जितना प्रयत्न उन्होने किया था और जिस के परिणाम स्वरूप मुस्लिम इतिहास मे वे अकेले आर्य (हिन्दू) थे जिनसे जामा मस्जिद की वेदी से भाषण देने की मुस्लिम नेताओं ने प्रार्थना की थी ।

त्व हि न पिता त्व माता शतक्रतो बभूविथ अधाते सुम्नमीमहे।

इस वेद मन्त्र के आधारपर मनुष्य मात्र के भ्रातृत्व और बन्धुभाव का जामामस्जिद मे दिया उनका उपदेश इतिहास की वस्तु बन चुका है । ७०, ७१ वर्ष की वृद्धावस्था मे दक्षिण भारत की धर्मयात्रा करते हुए उन्होंने अस्पृश्यता निवारणार्थ प्रबल प्रेरणा वहाँ की रूददासी जनता को कर के उस मे नवजीवन का सचार कर दिया था । जहाँ कहीं अन्याय अत्याचार उन्होंने पाया वहीं वीरता से उस का उन्होंने विरोध किया । इसी कारण सिक्खो के गुरु का बाग आन्दोलन मे सक्रिय भाग लेकर वे जेलयात्री बने थे । उनका हृदय अत्यन्त सरल और दया पूर्ण था ।

वदनं प्रसादसदन सदय हृदयं सुधामुचो वाच ।
करण परोपकरणं, येषा केषा न ते वन्द्या ॥

यह वन्दनीय महापुरुषों का लक्षण उन पर अक्षरश चरितार्थ होता था । सन् १९१८ में गढवाल मे जब अकाल पडा तो उस समय गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को साथ ले कर वे दिन रात अकाल पीडितों की सहायता करने मे तत्पर थे । २०, २२ मील तक कई बार वे पैदल यात्रा किया करते थे । आर्यों के प्रति

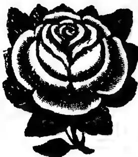
उनके अपने शब्दों मे निम्नदिव्य सदेश जो विशेष उल्लेखनीय है। इस म देश पर आचरण कर के ही हम सब उस अमर धर्मवीर का वास्तविक स्मरण कर सकते हैं और उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित कर सकते हैं। उन्हाने लिखा था "तुम यह मत भूलो कि वैदिक धर्म कोई सम्प्रदाय या पन्थ नहीं है। यह वह सत्य सनातन धर्म है जिस के बिना ससार की सामाजिक व्य वस्था एक पल के लिये भी नहीं रह सकती। प्राचीन काल म असख्य आध्यात्मिक कोषा का खोलने वाली चाबी तुम्हारे ही हाथों म दी गई थी और अब भी अशान्त ससार को शान्ति देना तुम्हारा ही कार्य है। किंतु पहले तुमको अपनी सब अपवित्रताओं को धाना होगा। आज गम्भीर भाव से यह प्रतिज्ञा करो कि तुम देनिक पचयज्ञो क अनुष्ठान म प्रमाद न करोगे, तुम अस्वाभाविक जाति भेद के बन्धन तोड़ कर वर्णाश्रम व्यवस्था को अपने जीवन म परिणत करोगे, तुम अपनी मातृ भूमि म से अस्पृश्यता के कलक का समूल नाश कर दोगे और तुम आर्य समाज के सार्वभौम मन्दिर का द्वार मत, सम्प्रदाय जाति, रङ्ग आदि के भेद भाव का कुछ भी विचार न कर मनुष्य मात्र के लिये खोल दोगे। परमपुरुषपरमात्मा इस गम्भीर प्रतिज्ञा क पालने म तुम्हारे सहायक हो।" पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी का जीवन जैसा वीरता पूर्ण और शानदार था एक मतान्ध मुसलमान युवक की गोलियो द्वारा उनका २३ दिसम्बर १९२१ में बलिदान भी उसके अनुरूप ही हुआ। ऐसे धर्मवीर क चरणचिन्हो पर चलने की भगवान् हम सब को शक्ति प्रदान करे यही प्रार्थना है। आत्म निरीक्षण करके अपनी निर्बलताओ को दूर करने का हम सब को दृढ सकल्प करना चाहिये और जात पात तथा अस्पृश्यता की दल दल से निकल कर आर्योचित उदारता का परिचय देना चाहिये। तभी अमर धर्मवीर द्वारा प्रवर्तित सगठन शुद्धि तथा दलितोद्धार के आन्दोलन सफल और सबल हो सकेंगे अन्यथा नही।

प्रभु करे आज उस महान् उपदेशक से प्रेरणा प्राप्त कर के उपदेशक सम्मेलन आर्य जगत् को कोई नया सन्देश दे सके।

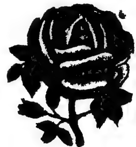


सुधारस धार बहे

[राजबहादुर आर्य "सरस"]



अवनी तल के दुख भार घटें,
कटु कष्ट कटें शुभ चाह लहे।
नभ में फहराय ध्वजा नित ही,
अरि का अरमान विचार दहे।
जगदीश दया करिये इतनी,
इस भारत में बहु प्यार रहे।
शुचि प्रेम पयोनिधि की फिर से,
वसुधा पै सुधा रस धार बहे।



—♦—

'प्रचारक प्रगति के अवतार हैं'

(—पं० शिवदयालुजी मेरठ)

—"देश की वर्तमान परिस्थिति में भारतीय संस्कृति से प्रभावित नेतृत्व की अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसा वातावरण लाने में उपदेशक वर्ग सफल हो"—लेखक के एतद्विषयक विचार तथा शुभकामना।

—सम्पादक

यह जानकर हर्ष हुआ कि आगामी मई मास में लखनऊ में अखिल भारतीय आर्य-उपदेशक महा सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। देश की वर्तमान् परिस्थिति में आर्य समाज की डावाडोल स्थिति में भारतवर्ष के समस्त आर्य-प्रचारकों का एक स्थान पर एकत्रित होकर भावी कार्यक्रम एवं नीति निर्धारित करना नितान्त आवश्यक है।



लेखक

१५ अगस्त सन् १९४७ तक भारत की राजनीति कुछ और थी। विदेशी साम्राज्य शाही के विरुद्ध सभी वर्ग, सम्प्रदाय एवं दलों का सम्मिलित मोर्चा था। जिस प्रकार भी सम्भव हो विदेशी शासन को उखाड़ फेंकना एक मात्र उद्देश्य था। ईश्वर की अपार अनुकम्पा से, भारत की हुतात्माओं के बलिदान से और अन्तर राष्ट्रिय परिस्थितियों के प्रभाव से प्रभावित होकर अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा और शासन सूत्र अपने देश वासियों के हाथ में आ गया।

अंग्रेज चला गया किन्तु अंगरेजियत विद्यमान है और अंग्रेजों की छत्र छाया में पनपने वाला यावनी प्रभाव भी ज्यों का त्यों विद्यमान् है। जिस समय तक ये दोनों प्रभाव नष्ट नहीं हो जाते और भारत में विशुद्ध भारतीय संस्कृति का साम्राज्य नहीं स्थापित हो जाता और अनादि काल से परम्परागत उपलब्ध आर्य ज्ञान का विस्तार समूचे भारत में नहीं होता तथा भारत के बाहर देश देशान्तर एवं द्वीप द्वीपान्तरों में उस आर्य ज्ञान की ज्योति जगाने का पुण्य कार्य भली भांति नहीं हो जाता उस समय तक भारत को पूर्ण स्वतन्त्र कहना विडम्बना मात्र है।

वर्तमान् सरकार इस लक्ष्य को अपनाएगी और उसकी ओर प्रगति करेगी यह आज नहीं कहा जा सकता। यह संभव है कि भविष्य में सरकार की नीति तदनुरूप हो जाय किन्तु उसके लिए भारतीय संस्कृति के उपासकों को और आर्ष ज्ञान के प्रचारकों को भगीरथ प्रयत्न करना होगा।

आधिभौतिक स्वतन्त्रता की चमक दमक, आकर्षण

एव प्रलोभन में आकर स्वार्थ-साधना में रत होकर अथवा तप, त्याग के प्रशस्त मार्ग की उपासना के स्थान में भोग मार्ग के पथिक बनकर हम कदापि अपने ध्येय को सिद्ध न कर सकेंगे। और न सरकार तदनुरूप गति ही करेगी।

इस क्रान्ति काल की वेला में उस महान् क्रान्त दर्शी आचार्य भगवान् दयानन्द के अनुयायी ही मार्ग-प्रदर्शन का कार्य करने में समर्थ हो सकते हैं। इस विकट परिस्थिति में होने वाले इस सम्मेलन का मैं हार्दिक स्वागत करता हूँ। और मुझे विश्वास है कि आर्य सन्यासी एव प्रचारक महानुभाव निश्चय जनता को सही मार्ग का प्रदर्शन कराएगे। प्रचारक को राजा और प्रजा दोनों के बीच में से होकर गति करनी होगी। राजा की चापलूसी और जनता का मनोरंजन इन दोनों का उसे त्याग करना होगा। ध्रुव सत्य का जिसके द्वारा आर्य-जाति एवं भारत वर्ष का कल्याण होना है दृढ़ता के साथ प्रचार करना होगा। और न्याय के पक्ष का प्रत्येक अवस्था में साथ देना होगा तथा अन्याय के पक्ष का किसी भी अवस्था में समर्थन नहीं करना होगा। दूसरों के पिछलग्गू बनना और ठकुर सुहाती बातें करना आर्यों का काम नहीं।

हमें निर्भीकता के साथ भर्तृहरि का यह दिव्य उपदेश:—

"निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरण मस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पद न धीरा."

जिसका आचार्य दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में केवल उल्लेख ही नहीं किया है अपितु अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में उसे चरितार्थ किया है और इस भांति इस अमर उपदेश को मूर्त रूप प्रदान किया है, हमें भी आर्य होने के नाते अपने जीवन में इस उपदेश को घटाना होगा।

"नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय"

केवल यही एक मार्ग है जिस पर चल कर हम अपने उद्देश्य में सफलता लाभ कर सकते हैं।

—मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य का निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वाद विवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो २ अनिष्ट फल हुये, होते हैं, और होंगे, उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा। तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य विशेष विद्वज्जन ईर्षा द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना, कराना चाहें, तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सबको विरोध जाल में फंसा रक्खा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंस कर सब के प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो सभी एक मत हो जायें।

—महर्षि दयानन्द

एशिया का महान उपदेशक
स्वा० दयानन्द

[श्री विश्वबन्धु शास्त्री]



परित्रत कोटि कोटि आर्य जनों को (मानव परिवार को) अपने अतीत की चिरन्तन पुण्यस्मृति के पावन रजकरण को विकीर्ण करने के लिये गुर्जरभूमि के क्षितिज में एक ऐसे वैदिक नक्षत्र का उदय हुआ जिसका प्रकाश रूपी सन्देश सौरभ एशिया के बाहर भी सुदूर देशों तक पहुँचा और आज भी अवनितल को आलोकित किये हुये हैं।

भारतीय राष्ट्र के इतिहास मे वह दिन कितना परम वैभवशाली होगा जिस दिन महान् उपदेशक दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना के व्याज से पाँच सहस्त्र वर्षो से भूली हुई आर्य जाति के लिये एक ऐसे सांस्कृतिक नीड की नीव डाली जिसमें अखिल मानव परिवार आश्रय ले सके और अपने उज्वल भविष्य की ओर बढे। आर्य जाति की जीवन सन्ध्या में सुखदजीवन प्रभात की कल्पनामयी भावना कितनी पुनीत थी जिसने महामानव दयानन्द को उपदेशक बनाया। अरुणोदय के समान स्फूर्तिदायिनी वह वैदिक संस्कृति उससे भी महान् है जिसने दयानन्द को सांसारिक सुखों की सरिता से हाटाकर एक ऐस कन्टकाकीर्ण मार्ग पर चलने को विवश कर दिया जिस में पग पग पर कष्ट, घोर अपमान, प्रबल विरोध एवं सहस्त्रों वर्षों की अनार्यता से परिपूर्ण घने जंगलों के अतिरिक्त कुछ न था।

उस अज्ञानता के सघन वन में उपदेशक देव दयानन्द ने मानवता को सिसकते हुये देखा। साथ में आर्य धर्म (मानवधर्म) के विकृत स्वरूप को भी देखा। ऐसी नितान्त विषम परिस्थितियों मे सर्व विषमताओं का प्रतीकार करते हुये घनीभूत अन्धकार के समय में आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्द ने वैदिक परम्परा के अनुसार एक बार फिर से आदि ऋषि मुनियों के परम पुनीत सत्य न्याय और अहिसा की प्रतीक सूर्य प्रणवाङ्कित अरुण आर्य ध्वज को ऊचाँ उठाने का महान् प्रयास किया।

यद्यपि इस उपदेशक के ईश्वरीय कार्य में आसुरी सम्पदाओं द्वारा अनेक बाधायें डाली गयीं, पर पवित्र जान्हवी के तट पर हरिद्वार मे कोट्यावधि धर्म पिपासु पथभ्रष्ट आर्य जनता के समक्ष आर्य केतु फहरा कर ऐतिहासिक कार्यक्रम का सूत्र पात किया, जहाँ से लोक कल्याण के लिये गंगा यमुना सरस्वती की भाँति धार्मिक सामाजिक तथा राजनैतिक प्रगतियों की धाराऐं बही जिन्होने तापत्रयी को शान्त किया। ऊच नीच के भावों को धोकर दलितों को उठाया' दीनता दासता कायरता के गढ़ों को पाटकर आर्योचित स्वाभिमान स्वातन्त्र्य और निर्भयता से युक्त आर्य गौरव की रक्षा की। स्त्री जाति को बन्धन विमुक्त किया। आर्य भाषा को पतन के गड्ढे से उठाकर गौरव गिरि पर चढ़ाया।

उनका विश्वास था कि अखिलभुवनों का सर्जन करने वाली एक महाशक्ति है जो समस्त लोकों की स्थिति सहार और रक्षा की हेतु है। वही शक्ति त्रिकालाबाधित सत्य के रूप में लोक में वेदज्ञान नाम से प्रचारित है जिसके सम्बन्ध में उनकी धारणा थी कि आज तक मनुष्य ने जो कुछ ज्ञान पाया है वह केवल वेदरूपी महातल का एक कण मात्र होगा

आर्यसमाज का प्रचार कैसे हो ?

श्री वेनीप्रसाद जी जिज्ञासु

आर्य समाज में उतरोत्तर कम होते हुये आकर्षण को देखते हुये मान्य लेखक ने कर्मठ बनने के लिये अपने विचार व्यक्त किये हैं। लेख मनन करने योग्य है।

—सम्पादक



खनऊ में उपदेशक महा सम्मेलन हो रहा है। सम्मेलन का होना बुरा नहीं अगर वह अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त करे। हम देख रहे हैं कि आर्य समाज के सम्मेलन प्राय वांछित सफलता प्राप्त नहीं कर रहे हैं। क्या यह आर्य समाज़ जैसी विचार शील संस्था के लिये उचित है ? अत हमे विचार करना चहिये कि सम्मेलन के द्वारा हम क्या लाभ दायक कार्य करें।

इस समय आर्य समाज का जो उपदेश कार्य हो रहा है वह सन्तोष प्रद नहीं कहा जा सकता। आर्य समाज की ज़नता के अन्दर वह जिज्ञासा रूपी अग्निप्रज्वलित नहीं हो रही है जिस अग्नि के द्वारा वेदों उपनिषदो के उन पवित्र उपदेशों का जीवन मे कुछ चमत्कार दिखाई पड़े। वे तो चिकने घड़े पर पानी की बून्द की तरह हो जाते हैं। हम प्रेम का उपदेश सुनते हैं परन्तु हमारी चाल बेढंगी ही रहती है, प्रेम कोसो दूर है। कथन और कर्म में अन्तर हो रहा है। ऐसा क्यों हो रहा है। इसका उत्तर तो ज्ञानी उपदेशक ही देंगे।

यज्ञ के लिये अग्नि को प्रज्वलित करना आवश्यक है। आज हमारे अधिक कर्म विना अग्नि में यज्ञ की

और हम सकते हैं कि महान्यग्रोधों के नीचे विराजमान हमारे पुराण पुरुष जितना ज्ञान पाये थे उससे कुछ भी अधिक भगीरथ प्रयत्नों के बाद भी आज का संसार नहीं जान सका है। इसीलिए उन्होंने प्रचलित विचार धारा का मुख विराट ज्ञान पुंज वेद की ओर मोड़ने का सफल महान् प्रयास किया। वेद के सम्बन्ध में अपनी समस्त तर्कमय शक्ति, बुद्धि, धैर्य युक्त परिश्रम और आविष्कृत वैज्ञानिक साधनों द्वारा निरन्तर अध्ययन के पश्चात् ऋषि दयानन्द ने स्वभावत ही अन्तर निहित सरस्वती की अमृतमयी धारा को बहाते हुए कहा "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।" इस प्रकार महर्षि ने राष्ट्रोत्थान के उषा काल के साथ साथ पुरुषोत्तम राम का आदर्श कृष्ण की राजनीति, दधीचि का त्याग अपने पूर्वज मनु की दिव्य मानवता, समता आस्तिकता, राष्ट्रीयता, आर्यत्व और विश्व की एकता का अमर उपदेश दिया।

यह सत्य है कि आज से बहुत दिनों पूर्व अपना शरीर आर्य सांस्कृतिक यज्ञ में होम करने वाला नव दधीचि दयानन्द का पंच भौतिक शरीर अन्तर्धान होकर प्रकृति माता की गोद में विलीन हो गया पर हमारे-पुरातन राष्ट्र के लिए दिया गया उनका अमर उपदेश आज भी चिरन्तन आर्य धरा के कण कण में व्याप्त है। हमारा उपदेशक सम्मेलन उसी विराट उपदेशक परम्परा का प्रतीक है।

पतद हो रहे हैं। हम बहुत आर्य भाइयों को यह कहते सुनते है कि कांग्रेस ने आर्य समाज का बेड़ा गर्क कर दिया है। यह तो ठीक है कि बहुत से आर्य समाजी कांग्रेस के कार्य मे लग गए है और देशोंन्नति का कार्य करने लगे हैं। पर क्या शेष आर्य समाज मे सब निकम्मों का समुदाय है? यह बात ठीक नहीं। आर्य समाज और कांग्रेस का कार्य अपना अपना पृथक पृथक है, उस पर चलने वाला अपना कार्य कर्त्ता है और आर्य समाज मे रहने वाले को अपना कार्य करना चाहिये। हम यह कहकर नहीं बच सकते कि कांग्रेस मे जाने वालों के कारण आर्य समाज का कार्य नहीं हो सका।

किसी समाज की उन्नति के लिये उस के सचालक, उपदेशक ही उसके उत्थान अध पतन के जिम्मेदार होते हैं। सौ उपदेशों से बढ़कर एक उपदेश को अपने जीवन मे घटाकर दिखाना लाभदायक होता है, इसकी कमी है। जब इ जन मे शक्ति न हो तो गाडी चले कैसे।

भगवान दयानन्द से पूर्व भी विद्वान् उपदेशक वेदों के पडित थे परन्तु ऋषि दयानन्द के तप त्याग मय जीवन ने काया पलट कर दी। सोते भारत को ही नहीं विश्व को जगा दिया।

"वेद का पढ़ना पढाना सुनना सुनाना सब आर्या का परम धर्म है" इस को निभाने वाले हम मे कितने हैं इसका उत्तर अपने हृदयो मे टटोले। आर्य समाज के अतीत काल पर एक दृष्टि डालें उस समय उगलियों पर गिने जाने वाले आर्य समाजी थे। उनमे संस्कृत हिन्दी को जानने वालों की सख्या बहुत कम थी। वह अपने तप, लगन, साधना द्वारा जीवन के उत्थान मे निमग्न थे। घर मे, बाहर जा जो कष्ट आपत्तिया आती थीं उनको सहर्ष सहते थे और प्रचार कार्य में रत थे। उनका वह उपदेश जनता के हृदय पटलपर जम जाता था। विरोधी लोहा मानते थे। वह पारस मणी के समान थे जिनके सत्संग से लोहा भी पारस बन जाता था।

इस समय आर्य समाज का उपदेश कार्य जोरों पर है। जिस समय कोई मनुष्य आर्य समाज के उपदेश सुनता है और नियमों को पढता है उसका मन उछल पडता है। आर्य समाज मे प्रवेश करता है, परन्तु जिस समय वह अपने से पूर्व के अधिकाश आर्य बन्धुओं से मिलता है, तो जो कुछ सुना व पढ़ा था उसके विपरीत ही देखता है आने वाले के हृदय पर चोट लगती है और सोचता है कि यह सब कुछ कहने लिखने के लिये होता है करने के लिये नहीं। नमक की कान मे आकर वह भी नमक बन जाता है।

अगर उपदेशक सम्मेलन इस बिगड़ी को बना ले तो अतीव उत्तम होगा।

आर्य जनता की ज्ञान वृद्धि तथा पवित्र जीवन बनाने के लिये कुछ स्थानो पर विशेष कार्य कर्त्ता प्रचारक नियत कीजिये। जिन का कार्य अपने हिस्से के आर्य नर नारियो को कर्म योगी बनाना हो। अगर थोडे से हिस्से म भी आर्य जीवन व्यतीत करने वाले बनाए जा सके तो उनकी देखा देखी दूसरे स्थानो मे भी नवजीवन पैदा हो जावेगा।

अब केवल व्याख्यानों का युग बीत गया। कांग्रेस और दूसरी सस्थाओ मे भी आर्य समाज से अच्छे व्याख्याता पैदा हो गये हैं। अब आर्य समाज को अपना पग आगे बढाना होगा। और वह करके दिखाना होगा जिसकी आशा ससार उनसे रखता है। ऋषि दयानन्द के पवित्र कार्य को ससार के उपकार के लिये तप और त्याग से करना होगा? प्रभु कृपा करे जिससे उपदेशक महा सम्मेलन बिगड़ी बना सके। बाल ब्रह्मचारी का पवित्र कार्य पूर्ण हो और ससार के कोने कोने म पवित्र आर्य जीवन बिताने वाले आर्य नर नारी पैदा हों।



उपदेष्टाओं की कार्यसीमा

[कविराज रत्नाकर शास्त्री, आयुर्वेद शिरोमणि]

जनता के सारे कार्य राजशासन से सिद्ध नहीं होते। राज शासन के अतिरिक्त धर्म शासन की भी आवश्यकता रहती है। राजशासन राजा चलाते हैं किन्तु धर्म शासन चलाने वाले उपदेशक ही होते हैं। निस्वार्थ भाव से की जाने वाली यह सेवा राजशासन से महान् है। जहां राज्यशासन नहीं चल सकता उस दुर्गम मार्ग पर धर्मशासन चलता है। यहां तक कि राजा भी धर्म शासन के आधीन रहता है। प्राचीन इतिहास में धर्मशास्त्र का गौरव प्रधान मन्त्री से कई गुना अधिक माना जाता था। रामायण में सुमन्त्र से अधिक वशिष्ठ को स्थान मिला है। और महाभारत में द्रोणाचार्य का स्थान विदुर से कम नहीं। इसका एक ही कारण है, राज शासन दण्ड बल से चलता हैं, किन्तु धर्म शासन चरित्र बल से। दण्ड बल से चरित्र बल कितना ऊंचा है यह सभी जानते हैं। उपदेष्टाओं का शासन चरित्र बल से ही चलता है। अपने चरित्र से पराङ्मुख होकर दूसरों का अनुशासन उपदेष्टा नहीं कर सकता, क्यों कि वह बलहीन है। स्वामी रामतीर्थ ने कहा था 'वह व्यक्ति जो अपने चरित्र को भुला कर दूसरे के चरित्र को सुधारने का प्रयास करता है, समाज का शत्रु है।';

अपना सुधार और सुधरी हुई दशा को परीक्षा लेने में ही उपदेष्टा का जीवन समाप्त हो जाता है। समाज तो उस तेजस्वी का अनुकरण करता है। गीता में कहा है 'स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते'। वस्तुत: उपदेष्टा का काम दूसरे को सुधारना नहीं है,। वह अपने सुधारे हुये चरित्र को दूसरों के सामने रखता है। लोग उस में कल्याण देखते हैं, अनुकरण करते हैं। उपदेश देने से कोई किसी की क्यों माने ? जो काम राज दण्ड नहीं करा सका, उसे उपदेश कैसे करा लेगा ? चरित्र बल में ही वह शक्ति है जो करा सकता है।

उपदेश में शिक्षा और दीक्षा दोनों का मिश्रण है। कोरी वाक्चातुरी और क्रिया चातुरी नाटक है। इसलिये उपदेष्टा में वाणी और क्रिया दोनों समन्वित होने चाहिये। एक युग में उपदेष्टा का कार्य क्षेत्र तीन सूत्रों में विभक्त किया गया था १ सम्यक ज्ञान २. सम्यक दर्शन ३. सम्यक चारित्र्य। पहिले पढ़िये, जो पढ़ा है उसे समझिये और और जो समझा है वह अमल में लाइये। बस यही उपदेष्टा की कार्य सीमा है,।

आर्य समाज ने उपदेष्टाओं का जैसा संगठन बनाया है वह भारत के इतिहास में नयी वस्तु है,। परन्तु अब उस में वह आकर्षण नहीं रहा। जिस में आकर्षण न रहे वही पुराना कहा जाता है। इस पुराने पन को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है।

हमने अपने उपदेष्टाओं की कार्य सीमा पर बहुत कम ध्यान दिया है। मैंने ऊपर तीन सूत्र दिये हैं, उन्हीं पर विचार करें : —

. सम्यक ज्ञान :—

आर्य प्रति निधि सभा ने अपने प्रारंभिक काल में उपदेष्टाओं के लिये कुछ आवश्यक पाठ्य क्रम रक्खा था, उसकी परीक्षायें भी नियत की गई थीं। यह इस अभिप्राय से किया गया होगा कि उपदेष्टा उस अध्ययन से यह समझ सके कि मुझे कौन से मार्ग पर चलना है। परन्तु आज कल हमारे बहुतेरे उपदेष्टा एक सूत्र बोलते हैं परन्तु उसका अर्थ ऐसा करते हैं जो उस सूत्र से सर्वथा भिन्न है। कभी २ तो सिद्धान्त भेद भी हो जाता है। यह स्वाध्याय की कमी का परिणाम है। प्राचीन युग में गुरु लोग किसी को सिद्धान्त का सूत्र तब सुनाते थे जब उसकी पूर्ण परीक्षा ले लेते थे। आज भी ऐसा पाठ्य क्रम अनिवार्य होना चाहिये।

सम्यक् दर्शन :—

जो कुछ जाना है उस के परिणाम की सत्यता पर भरोसा होना चाहिये। हम कहते हैं 'बच्चों को गुरुकुल में पढ़ाओ' सत्यार्थ प्रकाश निधि में पैसा दो, गुरुकुल निधि में जीवन दो, और जात पात की सकीर्णता हटा दो परन्तु उस पथ से दूर रहते हैं। हमारे वचन और कार्य में महान् अन्तर है। "स्वधर्मेस्वीयमनुष्ठान' होना परम आवश्यक है। आज हमारे पास क्षेत्र के उपयुक्त सामान नहीं। और जो सामान है उसके लिये क्षेत्र नहीं। श्रद्धा विश्वास तो हम खो चुके हैं।

अर्थ संग्रह के आधार पर उपदेशकों को प्रधानता देना उनके सम्मान और उन्नत विचार शक्ति को गिरा देना है। इस अर्थ लिप्सा की पूर्ति के लिये उपदेष्टा अपना आत्मिक बल खो बैठता है। यही कारण है कि स्वामी जी के निधन काल से लेकर जो काम आर्यसमाज के थोड़े से अवैतनिक उपदेष्टाओं ने किया उसकी तुलना में इधर अनेक वैतनिक उपदेष्टा नहीं कर सके।

यह दोष इतना उपदेष्टा का नहीं, जितना सचालन का है। जो ढांचा हमने बनाया है, उस में परिवर्तन कीजिये। सम्यक दर्शन को महत्व दीजिये। उसी से जनता में विश्वास बढ़ेगा। जो कहिये उसे करने को तत्पर रहिये।

सम्यक् चारित्र्य —

'हम जो कुछ कहेंगे उसे करके ही छोड़ेंगे' यह दृढ़ निश्चय सफलता की कुञ्जी है। आज हमारे पास दर्जनों उपदेष्टा हैं, फिर भी, हमारी सारी स्कीमें असफल। यह सब प्रकट करता है कि जनता का विश्वास हम में नहीं रहा। उसके लिये हम चरित्र बल बढ़ायें। प्रत्येक उपदेशक गुरुकुल का पढ़ा हो, प्रत्येक कार्यकर्ता के बालक गुरुकुलों में पढ़ते हों। अर्थसंग्रह ही उपदेशकों की योग्यता न मानी जाय। सकीर्ण भावना हमारे व्यवहार में न हो, और देश काल के अनुकूल एक विचार का परिवार बना दें तो निश्चय है कि हमारा चारित्र्यबल प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजयी होगा, उपदेशक अपनी निष्ठा से प्रेरित हो, न कि वेतन से।

उपदेष्टा को बुलाने में हमारे अन्दर गुरु की भावना आवे नौकर और नाटकी की भावना न हो। हमारे उपदेष्टा में भी जनता की भीषण बुराइयों पर विजय पाने के लिये उच्च कोटि का चरित्र बल होना ही चाहिये।

★ ★ ★

आर्यमित्र विज्ञापन
का
उत्तम साधन है ?

आर्यसमाज के उपदेशकों का भावी कार्यक्रम

[लेखक—स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक]

आर्य समाज के उपदेशकों के भावी कार्यक्रम पर विचार करने की आवश्यकता क्यों हुई इसके तीन कारण हैं—

१—"स्थान स्थान पर एवं प्रत्येक व्यक्ति के मुख से यह सुनने मे आता है कि आर्य समाज शिथिल हो गया, ढीला पड गया या समाप्त हो गया।"

२—"आज हमारा आर्यावर्त (भारत) देश स्वतन्त्र हो गया। परन्तु इस स्वतन्त्र देश की बागडोर जिनके हाथों मे है उनकी आर्य संस्कृति एव आर्यावर्तीय सस्कृति के प्रति भारी उपेक्षा है उपन (घूस—रिश्वत) चोर बाजारी बढ रही हैं, समाजवाद, साम्यवाद (कम्युनिस्ट) आदि दल बढते जा रहे हैं इत्यादि" इन के प्रतीकार के के लिये भी भावी कार्यक्रम बनाना है।

३—वेद के अनुसार "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" संसार को आर्य (श्रेष्ठ) बनाने का कार्य आर्य समाज के उपदेशकों को करना शेष है, इस लिये तथा—

(ख) मनु के अनुसार "एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद प्रजन्मन , स्वं स्व चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा " "इस कार्य को करना भी आर्य समाज का ही काम है इस कारण और—

(ग) ऋषि दयानन्द के अनुसार "सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो साम्राज्य सार्वभौम धर्म (वेद धर्म—आर्य धर्म) है जिसको सब लोग सदा से मानते आए हैं मानेंगे भी जिसका कोई भी विरोधी न हो वह ऐसा सनातन धर्म (वेद धर्म—आर्य धर्म) है,, उस वेद धर्म—आर्य धर्म को विश्व का धर्म, सार्वभौम धर्म, साम्राज्य धर्म समस्त राष्ट्रों का धर्म, विश्वराष्ट्र धर्म बनाना है इस लिये भी आर्य समाज के उपदेशकों को भावी कार्यक्रम पर विचार करना है।

आर्य समाज के चतुर्विध उपदेशक हैं जिन में एक नेता उपदेशक हैं जिनके हाथ मे आर्य समाज की प्रतिनिधि सभाओं और बड़ी बडी सस्थाओं की बागडोर है दूसरे शास्त्रार्थी उपदेशक हैं जो आर्य धर्मेतर मत वालों से शास्त्रार्थ करते हैं। तीसरे व्याख्याता उपदेशक जो व्याख्यान दिया करते हैं चौथे भजनोपदेशक जो भजनों द्वारा उपदेश देते हैं। इन चारो प्रकार के उपदेशको के भावी कार्यक्रम मे उपयुक्त तीनों कारणों पर क्रमशः विवेचन करते हैं।

१—आर्य समाज शिथिल हो गया इसका उत्तरदायित्व यद्यपि चारों प्रकार के उपदेशकों पर है परन्तु इसके विशेष उत्तरदायी नेता उपदेशक हैं जिनके हाथ मे आर्य समाज की बागडोर है। कारण कि आर्य समाज का ह्रास तीन प्रकार से दृष्टिगोचर होता हैं राष्ट्रीय दृष्टि से, सगठन की दृष्टि से और जीवन की दृष्टि से।

राष्ट्रीय दृष्टि से आर्य समाज का ह्रास—

आर्यावर्त देश स्वतन्त्र हो गया परन्तु इसके शासन की बागडोर आर्य समाज के हाथ मे नहीं आई। न इसका कोई व्यक्ति मन्त्री पद पर है, न विधान परिषद् मे। आर्य समाजी होने के नाते यद्यपि आर्य समाज ने ही भारतीयों मे सर्व प्रथम स्वतन्त्रता प्राप्ति की भावना को भरा। प्रारम्भ मे आर्य समाज राजनैतिक सस्था समझी जाती थी। ब्रिटिश गवर्नमेंट इसे सन्देह की दृष्टि से देखती थी। उस समय आर्य समाज स्वतंत्र विचारक व्यक्तियों के हाथ मे थी। परन्तु जब से राजसत्ता से सम्बन्धित वकील बैरिस्टर जज आदि महानुभाव नेता बने तब से आर्य समाज का राष्ट्रीय दृष्टि से ह्रास होता चला गया, ऐसे नेताओं ने आर्य समाज को राष्ट्रिय क्षेत्र में इसलिये नहीं उठने दिया कि वास्तव मे ये बेचारे राजसत्ता से सम्बन्धित थे। आज परिस्थिति भिन्न है। आर्य समाजी व्यक्ति भी राज्यशासन पर आरूढ हों परन्तु आर्य समाज द्वारा निर्वाचित। न कि कांग्रेस से निर्वाचित

या भारत सरकार द्वारा लिए हुये। आर्यसमाजी वकील बैरिस्टर जज आदि रिटायर्ड होकर उक्त कार्य के लिये यत्नशील हों।

संगठन की दृष्टि से आर्य समाज का ह्रास—

भिन्न भिन्न दलों की सभाएं और संस्थाएं बनजाने से तथा पदाधिकार एवं स्वत्वाधिकार के लिये संघर्ष रहने के कारण आर्य समाज का संगठन बिगड़ गया। और कुछ आर्य समाज को छोड़ अन्य क्षेत्रों में चले गए।

जीवन की दृष्टि से आर्य समाज का ह्रास—

जिनके हाथ में आर्य समाज की बागडोर है वे नेता उपदेशक आदर्श की ओर न चल सके। अनेकों ने वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम की अवहेलना की। वानप्रस्थाश्रम आवश्यक नहीं समझा एक प्रतिनिधि सभा के अधिकारी को तो मेने अनेक बार यह कहते देखा कि वेद मे संन्यास नहीं है, वृद्धावस्था मे धन और पुत्र पौत्र के मोह को न छोड़ ये नेता, उपदेशक न बन सके अपितु आर्य समाज मे जीवन की उदासीनता के कारण बने। अब आवश्यकता है वे नेता सन्यासाश्रम मे नहीं जा सकते हों तो वानप्रस्थी बने और अपना सारा समय और जीवन आर्य समाज को देकर आर्य समाज के कार्य को आगे बढ़ाए। स्वय आदर्श बनकर आर्य समाज मे जीवन का सचार करे।

२—स्वतन्त्र भारत की बागडोर सम्भालने वाले शासकों के अन्दर आर्य संस्कृति के प्रति उपेक्षा है, चोरबाजारी भी बढ रही है। इनके हटाने के लिये आर्य समाज के उपदेशकों को निर्देशमात्र यहां यही कहा जा सकता है कि उक्त अन्तर्राष्ट्रिय समस्या है इसमे से चोरबाजारी उपदा वृत्ति (घूस—रिश्वत खोरी) पददुरुपयोगिता, कम्युनिस्टिक विघातक प्रवृत्ति को दूर करने के लिये तो आर्य समाज के चारों प्रकार के उपदेशक सत्सगों सम्मेलनों और पृथक् पृथक् परिवारो मे सदाचार सद्वृति सद्भावनाओ का उपदेश दें। शासकों के अन्दर आर्य संस्कृति मे रुचि और तदनुसार शासन प्रणाली को प्रचारित कराने के लिये आर्य समाज के नेताओ और विद्वान् उपदेशको को उन शासकों से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें आर्य धर्म एवं प्राचीन राज नीति की महिमा बतानी तथा उनकी उचित रीति से समालोचना करनीं चाहिए।

३—विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाने, संसार को चरित्र की शिक्षा देने, वेद धर्म या आर्य धर्म को सार्वभौम या साम्राज्य धर्म बनाने या संसार के राष्ट्रों में वैदिक धर्म का साम्राज्य स्थापित करने का कार्य विशेषत पर राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध रखता है स्वराष्ट्र में भी हास्यरस प्रधान नहीं किन्तु चरित्र शिक्षण और सिद्धांत प्रधान आर्य धर्म का उपदेश इस ढंग से देना कि जनता अपनी ओर आकर्षित हो। शास्त्रार्थ दिढाने या पराजित करने की भावना से न किए जाये किन्तु तुलनात्मक, विचार विमर्श अथवा शङ्का समाधान द्वारा शास्त्रविवेचन के रूप मे मैत्रीपूर्ण हों। आर्य समाज के उपदेशकों को एक ऐसा विश्व प्रचारक मण्डल बनाना चाहिए जिसमे अंग्रेजी के उच्च विद्वान् और साथ ही संस्कृत एवं आर्य शास्त्रों के भी जानकार हों। उनकों विदेशों में भेज आर्य धर्म के मौलिक सिद्धान्तों और सदाचार की शिक्षा का प्रचार कराया जावे एव वैदिक राजनीति आर्य राजनीति का महत्त्व समझाया जावे, आर्य धर्म और आर्यराजनीति का साहित्य भिन्न भिन्न विदेशी भाषाओं में तैयार कराया जावे। इस प्रकार कार्य करने से विदेशों में आर्य धर्म का साम्राज्य न हुआ तो बीज अवश्य बोया जावेगा कम से कम आर्य धर्म का प्रचार तो होगा।



श्री ब्रजबहादुरजी प्रचारक सभा

जागृत राष्ट्र के पुरोहित

(श्री राममोहन आर्य, सम्पादक राष्ट्र सन्देश)

प्रति दिन कार्यक्रम में बुद्धि और योजना की अनिवार्यता स्पष्टतः सिद्ध है। बुद्धि हीन "प्रमत्त" एवं योजना हीन 'अवारा' इन नामों से सम्बोधित होते हुए दीख पड़ते हैं अतः मनुष्य को अपने जीवन में बुद्धि पूर्वक सार्थक कार्यों की ओर अग्रसर रहना ही चाहिए। सामाजिक जीवन भी इसी प्रकार के दृढ़ नियमों पर ही, आधारित है। जो समाज अपनी उन्नति के लिए विचार पूर्ण योजना बनाने में असमर्थ है वह सदा पतित अवस्था में ही पड़ा रह कर दूसरों की कृपा पर अवलम्बित रहता है।

इस प्रकार हम एक निश्चय पर पहुँचते हैं कि मनुष्य और समाज को सचेतन बनाए रखने के लिए विचारक शक्ति की आवश्यकता सर्व प्रथम है। बुद्धि और विचार शक्ति को कुण्ठित न बनने देने के लिए योजना (पूर्व निश्चित कार्यक्रम) और तदनुकूल कर्म यही एक मात्र मार्ग है।

इतिहास साक्षी है, विश्व के अनेकानेक समाज आज लुप्त प्रायः हो गए हैं, उनकी सन्ततियां आज जीवित हैं परन्तु विचार शक्ति के अभाव के कारण वे अपने पूर्वजों की सभ्यता संस्कृति व इतिहास से सर्वदा पृथक् हो कर आत्म समर्पण का भाव प्रकट कर चुकी हैं। एशिया को दहला देने वाली जातियां शक और हूण आज कहां और किस अवस्था में अवस्थित हैं, यह कहना दुष्कर है, सम्भवत: हूणिये नाम से पहाड़ों में बोझा ढोने वाले व्यक्ति ही उन पूर्वजों की सन्तान हैं। किसी कवि ने लिखा है—

"यूनानो मिस्रो रोमां सब मिट गए जहां से,
अब तक मगर है बाकी नामो निशां हमारा,

अन्य जातियों के ध्वंसावशेषों से हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि आर्य जाति की विचार शक्ति सुदृढ़ होने के कारण एवं अपनी अवनत दशा में भी इस शक्ति का उपयोग करते रहने के कारण वह अपने को जीवित रख सकी है।

भारतीय ऐतिहासिक परम्परा की यह विशेषता है कि जब २ समाज में शिथिलता या कुरीतियां आई तब तब महापुरुषों ने अवतरित होकर जनता में बुद्धि वाद का प्रचार कर जाति को नष्ट न होने दिया। इस प्रकार जनता में विचार शक्ति का आविर्भाव हुआ, उसने अपना गत वैभव पुनः प्राप्त कर लिया। भारतीय इतिहास में इन्हीं कारणों से व्यक्तिगत महापुरुषों के नाम पर भी युगों का नाम करण किया जा सकता है। राम, कृष्ण बुद्ध शंकर और, दयानन्द ये युगों के प्रतीक रूप में आज हमारे सामने प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर रहे हैं।

यह युग जिसे दयानन्द युग कहना ठीक होगा इसके पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दोनों भागों का निरीक्षण कर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि समाज के पतन का आधार समाज की विचारक शक्ति का खो जाना तथा उसके उत्थान का कारण समाज में विचारकों का जागृत रहना है।

हमारे सुदृढ़ मस्तिष्क वाले पूर्वजों द्वारा इस नियम को लक्ष्यगत कर ही सामाजिक योजना बनाई गई थी। मस्तिष्क के विस्तार को सर्वाधिक महत्ता देते हुये बुद्धि और ब्राह्मण वर्ग का उल्लेख सर्व प्रथम किया गया है। देश के शासकों व्यापारियों एव श्रमिकों को उचित मार्ग का दर्शन कराने वाला वह वर्ग बुद्धि एवं अनुभूति का साक्षात पुञ्ज था। ये आजन्म जीवन पर्यन्त अपनी बुद्धि को तीक्ष्ण बनाने में सदा चिन्तित रहते थे। इत्यादि गुणों के कारण उनकी बुद्धि की मलिनता धुल चुकी थी, स्वार्थ द्वेष, अहंकार को छोड़ कर बुद्धि का प्रयोजन समाज की उन्नति के निमित्त हो रहा था। इस प्रकार

एक वर्ग की कठोर साधना के कारण देश में जीवन के लक्ष्य दृष्टि गोचर होते थे। इन्हीं के कारण राजर्षि मनु ने इन्हीं व्यक्तियों से "स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्" कह कर इसकी पावन घोषणा की।

जब ये विचारकगण यश के तृष्णाजाल में फंस गए तभी से पाखण्ड और फूट आदि का प्रचार हुआ जनता आतंकित होकर अपने संरक्षण के उपाय सोचने लगी। अनेक वाद उत्पन्न हो गये। परन्तु अशान्त व्यक्तियों द्वारा शान्ति की ये योजनाएं मनुष्य हित करने में असमर्थ ही रहेंगी। अधिकारों से कर्तव्य की सृष्टि नहीं की जा सकती, कानूनों द्वारा सभ्य समाज का निर्माण असम्भव है।

वास्तविक शान्ति का प्रचार बुद्धि वादी शान्त स्वार्थ हीन प्रचारकों पर ही अवलम्बित है। यश के तृष्णाजाल में फंसे हुए अथवा धन की लालसा में लिप्त व्यक्ति समाज के मस्तिष्क को दूषित ही बनाएंगे।

वैदिक मर्यादा के अनुसार विचारकों का वर्ग बनाना आवश्यक है, जो बुद्धि को स्वाध्याय के साहचर्य से, विकसित करे तप व त्याग से उसकी शुद्धि करें, अपने सरल निष्काम कर्म द्वारा शान्ति योजनाओं को जनता में सक्रिय रूप से विस्तारित करें।

इन विचारकों को विचारना ही होगा कि वे देश के निर्माता हैं, नायक हैं, सुयोग्य क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों की उत्पत्ति उनके प्रयत्नों पर ही आधारित है। विश्व आज किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा है, इसलिए इस समय विशेष अध्यवसाय की आवश्यता है, कर्तव्य निष्ठ और निस्वार्थी व्यक्ति ही सामाजिक निर्माण में सफल हो सकते हैं चाहें उनकी संख्या थोड़ी हो।

इसी पर वैदिक योजनाओं की सफलता अवलम्बित है। अतः यह अवसर है जब प्रत्येक आर्य को विचारक बन कर, राष्ट्र का पुरोहित बन कर कहे "राष्ट्रे वयं जागृयाम पुरोहिताः।'



आर्य समाजों के होने वाले उत्सव जो निम्न तिथियों में समारोहपूर्वक मनाये जायेंगे

१—आ० स० कन्टूनमेन्ट सदर बाजार लखनऊ १८ से २१ मई तक
२—आ स नैनीताल २८ से ३१ मई
३—आ स मम्भ। २५ से २८ मई
४—आ स पुरैनी ६ से ८ जून
५—आ स टाडा अफजल २ से ५ जून
६—आ० स० लोको क्वार्टर जटेपुर (गोरखपुर) का महोत्सव ता० १८ से २० मई सन् १९५१ ई० सन् १९५१ ई० तक मनाया जायगा।
७—आ० स० खोडा १८, १९, २० जून १९५१।

—"जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा सहारनपुर का वार्षिक चुनाव ता० २२ मई रविवार को दिन के २ बजे आर्य समाज मन्दिर सिविल लाइन कचैरी रोड सहारनपुर में सम्पन्न होगा और इस ही दिन प्रात काल ८ बजे जिले की समाजों के प्रधान, मन्त्री तथा आर्य कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन होगा। जिले की सर्व आर्य समाजों के प्रतिनिधि तथा कार्य कर्ताओं को इस में भाग लेना चाहिये।

२८ अप्रैल के आर्य मित्र में २२ मई के स्थान पर २३ मई छप गया है। निर्वाचन २२ मई को ही होगा।

संशोधन

आर्य मित्र ता० २१ मार्च में पृष्ठ १२ कालम ३ पंक्ति ४० में १००) आर्य समाज देहरादून का गु वृन्दावन की मास दिसम्बर की दान सूची में छपा है, वास्तव में यह १००) आर्य समाज मसूरी का है।

—कृपया श्री स्वामी अमृतानन्द जी महाराज जहाँ कहीं भी हों वह ता० २४, २५, २६ मई को आर्य कुमार सभा किरतपुर के उत्सव पर पहुँच जावें स्वामी जी की अति कृपा होगी। उन्हें २२ मई को भोजपुर आ जाना चाहिये।

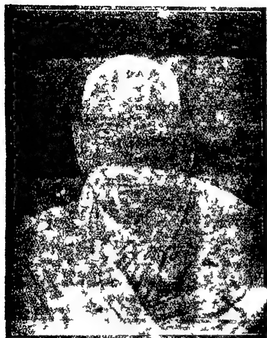
आचार्य श्री प० नरदेव जी शास्त्री
(आप राष्ट्रभाषा सम्मेलन में उद्घाटन भाषण देंगे)



श्री,राजेंकुमार एडजयसिंह जी (संयोजक राष्ट्रभाषा सम्मेलन)



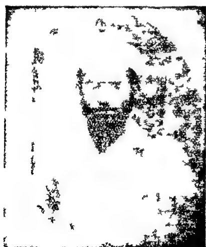
अमर शहीद स्वा० श्रद्धानन्दजी महाराज



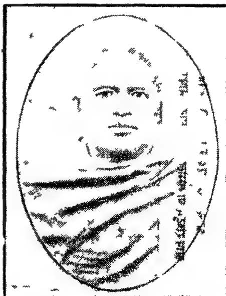
वाग्मिप्रवर स्वा० दर्शनानन्दजी सरस्वती



स्व० पं० गुरुदत्त एम० ए०



स्वर्गीय स्वा० नित्यानन्दजी



आज राष्ट्र का इन वीरों से है सिंहासन खाली

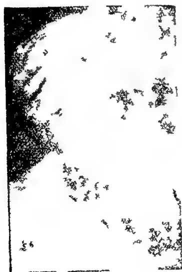
स्वर्गीय—श्री प० वंशीधर जी पाठक



स्वर्गीय प० देवीदत्त जी [illegible]



स्व० श्री महात्मा मुंशीराम जी



स्वर्गीय प० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ



किन्तु नागरी बलिवेदी पर इनकी रक्तिम लाली !

पं भोजदत्त जी आर्यमुसाफिर



महाराज सर्वदानन्दजी



घोर रही है नित्य शीश पर, काल रूप की ही छाया। रह न सके ये भी धरती पर, जिसने अमृत बरसाया।

आर्यों के प्रति !

विश्व के जीवन प्रदाता !

(ले० कुसुमाकर)

एक दिन था जब प्रथम आकर डटे थे सिन्धु तीरे।
बढ़ गया साहस - सलिल प्रतिद्वन्द्वियों का वक्ष चीरे।
लोक में आलोक फैला आदि कवि का गीत गाया।
साम - स्वर - लहरी सरस से मानसों में मोद छाया।
आत्म - विद्या का विलासी शीश चरणों में झुकाता।

ब्रह्म - रत - मुद्रा विपिन में सिंह शावक देखते थे।
शक्ति - सर में पुण्य - पंकज खिलखिलाते लेखते थे।
हो विनत वदना अहिंसा का मधुर आसव चढ़ाए।
बैठ जाते सजग प्रहरी से विशद - वैभव बढ़ाए।
सत्य का सागर समुन्नत साधना का ज्वार लाता।

यज्ञ का ध्रुव ध्येय मानव जाति का कल्याण होता।
वेद का वरदान अनुपम; प्राणियों का प्राण होता।
गन्धवाही शुचि समीरण नाश करती वासनाएं।
पुष्प बरसाती गगन से वरुण - पथ में कामनाएँ।
शस्य श्यामल मातृ वसुधा का हृदय आमोद पाता।

धर्म के दृढ़ कोट पर निर्भीक तन - मन वारते थे।
रूप - यौवन - बालपन सर्वस्व अपना हारते थे।
प्राण जाना था सुलभ पर धर्म जाना था असम्भव।
स्वर्ग का सोपान था, अभिमान था, सम्मान, गौरव।
आज क्यों होकर अनादृत पतन के तू गीत गाता।

दृष्टि जिस पर थी जगत की आज वह अदृष्ट बैठा।
भाल उन्नत था हिमालय सा वही निकृष्ट बैठा।
सभ्यता का स्रोत शुचि शीतल सुधा की धार लाता।
सरस्वती की बीन में था कौन मृदु झंकार लाता।
मोक्ष की मंदाकिनी श्रुति - सार अब लेकर बहाता।

चौकड़ी भरते कुरीतों के कुरङ्ग क्रूर काले।
भ्रात भालों पर भयानक चल रहे हैं भेद भाले।
जातियों के जाल में जकड़े हुए हैं आर्य नायक।
नित्य भीषण भाषणों मे ज्ञान देते हैं विधायक।
पर भला उत्थान - पथ में क्यों नहीं पग दो बढ़ाता ?

आज हम उन धर्म वीरों के सभी बलिदान भूले।
वीर व्रतधारी हकीकत के अमिट अरमान भूले।
आ रही 'श्रद्धा' शिविर से यह प्रतिध्वनि मर्म भेदी।
रक्त रंजित धर्म के हित रच सकेगा कौन वेदी।
जो बना था आर्य 'सेवक' आज वह 'स्वामी' कहाता।

धर्म वह है जो हमे अमरत्त्व का प्याला पिला दे।
नीति - नद मे कोकनद कर्त्तव्य के कोमल खिला दे।
धर्म वह है जो परस्पर प्रेम की ज्वाला जगा दे।
दम्भ अत्याचार पापाचार मे पावक लगा दे।
व्यर्थ मे आदर्श की अद्भुत छटा किसको दिखाता।



स्व० प० क्षेमकरणदासजी त्रिवेदी



श्री वी० एम० पाल जी
बी० एस० सी० एल० एल० बी०

पुस्तक प्रेमी ध्यान दें !

आर्य साहित्य की पुस्तकों का अधिक प्रचार क्यो नही होता ? इसलिये की उनका मूल्य अधिक होता है। प्रत्येक व्यक्ति मगा नहीं सकता। इसलिये हमने एक मास के लिय पुस्तकों का मूल्य काफी घटा दिया है। जिससे प्रत्येक व्यक्ति मगाकर लाभ उठा सके।

नाम पुस्तक	पू०मू०	घ०मू
नारायण उपदेश	२)	१।॥)
भारत में १८५७	२॥)	२)
वेदान्त रहस्य	१॥।)	१।)
वैदिक गीता	३)	२।)
भारत में अग्रजी अत्याचार	६)	४॥)
धर्म शिक्षा बड़ी	३)	२।=)
गीता केवल भाषा	२॥)	२)
आर्य पर्व पद्धति	१॥)	१।)
अर्चना काव्य	२)	१॥)
मृत्यु और परलोक	२)	१॥।)
साख्य दर्शनम्	१॥।)	१।)
वैदिक युद्धवाद	१)	॥।)
आस्तिक वाद	३)	२॥=)
सभ्यता व अन्डहर	१॥)	१।=)
हमारे बच्चे	१।)	१)
निश्वास	॥=)	॥)
स्वास्थ और जल चिकित्सा	२)	१॥।)
लक्ष्मी बाई	१)	॥।)
रुपया कमाने की मशीन	१)	॥।)
वीर दुर्गादास रा०	१)	॥।)
वेदान्त दर्शनम्	१॥	१।)
समुद्रक शास्त्र	४)	३)
पाकविज्ञान	३)	२॥)
सिलाई कटाई शि०	२॥)	२)
बाल प्रश्नोत्तरी	॥)	।=)
गीता महात्मा गाधी	२॥)	२।)
विवाह आनन्द	१॥)	१=)
लाल पजा	३)	२॥)
वीर राज पूत	१॥।)	१।=)
प्राणो के खीलाडी	१=)	॥।=)
अमृत वर्षा	१॥)	१।)
सरदार हरीसिंह नलवा	१।)	१)
काग्रेस लीग हिंदू महासभा	३)	२)
स्वास्थ और व्यायाम	२)	१॥।)
गीताजली	१।)	१)
राजा महेन्द्र प्रताप	१॥)	१≡)
हारमोनियम तबला शिक्षा	२)	१॥)
भारत में मत्री मिशन	१।)	॥≡)
घर वैद्य ...	२॥।)	३)
मनुष्य जीवन की उपयोगिता	१।)	१)
देश के दुर्दिन	॥।=)	॥=)
फल उनक गुण तथा उपयोग	१।)	१)
ग्रीस का इतिहास	१॥)	१)
ससार के आश्चर्य	१॥।)	१।-)
अन्धकार और प्रकाश	१।)	॥।=)
योरूप में आजाद हिन्द	२)	१॥)
शरीर बीबी	१॥।)	१।≡)
प्रतिहिंसा	१।)	॥=)
नरनामा	।)	=)
अभागनी समाजिक कहानी	२॥)	२)
नयन तारा ,,	२)	१॥)
अवसानीय की चन्द रातें	१।)	॥≡)
सौमीत्रा ,,	॥)	।=)
ब्रह्मचर्य के अनुभव	१)	॥।)
हम सौ वर्ष कैसे जीयें	२)	१॥=)
लोगों को अपना बनाने की कला	१)	॥।)
प्रणायाम तत्व	१।)	१=)
योग रहस्य	१॥)	१।)
बडा इगलिश टीचर	१।)	१)
भर्तृहरी शतकम्	१॥)	१=)
कालीदास और कविता	१॥)	१।)
हरमोनिय तबला	१)	॥।)
हरमोनिय मयूजिक गाइड	१॥)	१=)
व्योपार का खजाना	१।)	१)
विदुर नीति	१॥)	१=)
गोता रहस्य	१०)	६॥।)
वैदिक सम्पति	१०)	६)
सकल्प	४॥)	३)
महर्षि दयानन्द	२॥)	२=)
राष्ट्रीय वादी दयानन्द	१॥।-)	१।-)
पाक प्रवेशिका	॥)	।=)
चित्रमय स्वामी दयानन्द	२॥)	२)
वैदिक शिष्टाचार	।)	≡)
जयहिन्द काव्य	॥।)	॥-)
आजादी के गीत	॥।)	॥-)
एकान्त वास	१)	॥।-)
महाराणा प्रताप	१॥)	१।)
लाठी तथा शस्त्र शि०	१॥।=)	१।)
बुढ़ापा बिमारी से बचने व उपाय	॥।)	॥=)
विद्यार्थी जीवन रहस्य	॥=)	॥)
श्रीमती मजरी	॥=)	॥)
इब्राहिम लिंकन	१)	॥)
खुराक और आबादी की समस्यायें	२)	१॥।)
सेनानी नेता जी	१)	॥।)
आदर्श महिला	॥)	।=)
सचित्र योगासन	१)	॥।)
सुहाग रात	१)	॥।)

पता:— घनश्यामदास बुकसेलर पीपल मन्डी आगरा

समय का ध्यान रखिये !

रोगों का समूह भयङ्कर रूप धारण कर वायुमण्डल के साथ-साथ फैल रहा है। गृहस्थ जीवन रक्षार्थ

और

उनसे बचने के लिये आयुर्वेदीय औषधियों को

प्रयोग में लाइये !

(१) हमारे **आरोग्यसिन्धु** दवा के सेवन से कालरा, कै, दस्त, हैजा, आँव, लोहू, ज्वर, जुखाम, पेट दर्द, जी मचली, प्यास, जलन, अफरा, शूल, बेचैनी, हृदय की धड़कन दूर करता है। मूल्य फी शीशी ।।।) बारह आना। डा० ख० पृथक।

(२) **नवजीवन मुन्डी सालसा** के सेवन से रक्त विकार, खाज, खुजली, वातरक्त, गरमी, दिल की कमजोरी, धातु विकार दूर होता है। पौष्टिक बल-वर्धक है। की० फी० बो० २।।।) दो रु० बारह आना। डाक खर्च अलग।

(३) **गोपाल सुधातैल** के लगाने से सूखा जिम्ह जिन्हाँ ज्वर, तपन, जलन, बच्चों के शरीर की दुर्बलता को दूर करके आरोग्य बनाता है। मूल्य फी शीशी १) एक रु०। डाक खर्च अलग।

(४) **गोपाल घुन्टी** के पिलाने से दुबले कमजोर बालक को हृष्ट पुष्ट, ताकतवर, फुर्तीला बनाता है। मूल्य फी शीशी १) एक रु० डा० ख० अलग।

(५) **हिम राजेश्वर तैल** के लगाने से सिर पीड़ा, चक्कर आना, नाक से चैली व खून आना, आधाशीशी, अभवल वायु के लिये अक्सीर है। मू० फी शी० १) एक रु०। डा० व्यय अलग।

नोट—हमारे कार्यालय में असली रुद्रवन्ती बूट, गोरखमुण्डी, शङ्खपुष्पी, जल पीपरी सूखा संहार बटी, षटबिन्दु, लाक्षादि, विषगरभ सतावरी ज्वरगादि तैल, दशमूल अर्क, शुद्ध छोटी हरें इत्यादि सुलभ मूल्य पर मिलती हैं। बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाकर देखो।

मिलने का पता—बा० रामप्यारेलाल वैद्यभास्कर,
दी आरोग्यसिन्धु कम्पनी, पो० आगा, प्रान्त फतेहपुर यू. पी

आरोग्य-वर्धक

५० साल से दुनिया भर में मशहूर

मदनमंजरी गोलियां

कब्जियत दूर करके पाचनशक्ति बढ़ाती है, दिल, दिमाग को ताकत देती है और नया खून व शुद्ध वीर्य पैदा करके बल, बुद्धि आयु बढ़ाती है। कि० रु० १)

गर्भामृत चूर्ण

प्रदर प्रदरदोष, गर्भाशय की सूजन, प्रसूति रोग बन्ध्यत्व व कमजोरी दूर करके शरीर को सम्पूर्ण तन्दुरुस्त बनाता है। मू० रु० २।।)

मदनमंजरी फार्मेसी आर्मेनगर, कलकत्ता ब्रांच—१७७ हरिसन रोड. दें लखनऊ मातावदल पंसारी, अमी

ओ३म्

रोग राट "हिस्टीरिया, उन्माद एवं मृगी" नाशक जड़ी बूटी—घर बैठे सेवन कर सदैव के लिये निरोग हो जायें। लोग कहते हैं ये बीमारियाँ दम के साथ जाती हैं—हम कहते हैं ये बीमारियाँ दवा के साथ जाती हैं। डाक व्यय, विज्ञापन शुल्क एवं कार्यालय खर्च ३।।) भेज कर बूटी मगालें। ईश सहाय करेंगे आराम अवश्य होगा।

रोग राट "मधुमेह (Lialictes) नाशक जड़ी-बूटी बूटी-घर बैठे सेवन कर सदैव के लिये निरोग हो जायें। लोग कहते हैं यह बीमारी दम के साथ जाती है-हम कहते हैं यह बीमारी दवा के साथ जाती है। डाक व्यय, विज्ञापन शुल्क एवं कार्यालय खर्च ३।।) भेजकर बूटी मगालें। ईश सहाय करेंगे, आराम अवश्य होगा।

पं० शिवसागर शर्मा भिषक-जिज्ञासु, ब्रह्मवर्ग प्रयोगशाला, श्री हनुमंत निवास शिवरामपुर (बाँदा) यू० पी०



श्री मती प्रेम सुशीला वर्मा



देशराज जी भजनोपदेशक सपत्नीक



राजस्थान प्रतिनिधि
श्री प. रामसहाय,
विद्या भूषण





महर्षि द्वारा घोषित —

कतिपय शाश्वत सत्य सिद्धांत

वेदादि सत्य शास्त्र— ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको मैं मानता हूँ, मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एकसा मानने योग्य है। जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।

*

ईश्वर— जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फल दाता आदि लक्षणयुक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूँ।

*

वेद — वेदों को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूँ।

धर्म अधर्म— जो पक्षपात रहित, न्यायाचरण सत्य भाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको धर्म और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि, ईश्वराज्ञा भंग वेद विरुद्ध है उसको अधर्म मानता हूँ।

* * *

अर्थ— वह है जो कि धर्म ही से प्राप्त किया जाता है, और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको अनर्थ कहते हैं।

* * * *

वर्णाश्रम— गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूँ।

* * * *

राजा— उसी को कहते हैं जो शुभ गुण कर्म स्वभाव से प्रकाशमान पक्षपात रहित न्यायधर्म का सेवी प्रजाओं में पितृवत् वर्ते और उनको पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुखबढ़ाने में सदा यत्न किया करे।

* * *

आर्य— जो श्रेष्ठ स्वभाव धर्मात्मा परोपकारी सत्य विद्यादि गुणयुक्त और आर्यावर्त देश में सब दिन से रहने वाले हैं उनको आर्य कहते हैं



आर्यमित्र

वर्ष ५१ | दीपावली, ता० २० अक्टूबर १९४९ ई० | अङ्क ४०

स्मृति-पञ्चकम्

अविद्यान्धकारे पथभ्रष्टमेतत्,
जगत् सर्वमासीद् यदा मोहमग्नम्।
तदा मार्ग मुन्नाषभ्रत स्वीभासा,
दयानन्दमानन्दद संस्मरामः ॥ १ ॥
विलुप्तान् समलान्ध विज्ञानराशान्,
समुद्दिनानोश - वर्येण वेदान्।
समुद्धार कर्तार मायम-लीन, ॥
दयानन्दमानन्दद संस्मरामः ॥ २
अनैक्यादमामर्शीना धरायाम्-
मिम भारतीय विपन्ना भवाति।
अनो नेक्यमूल समुत्पाटयन्त,
दयानन्दमानन्दद संस्मरामः ॥ ३ ॥
अनास्थावत त्वीय धर्मे मनुष्यान्,
पुन धर्मतत्त्वपदेश ददान।
मन स्थां च शशति मुछेदयन्तम्,
दयानन्दमानन्दद संस्मरामः ॥ ४ ॥
असत्याम्बुद डम्बरे सत्य सूर्य -
समाच्छादित, तर्क झझा प्रव है।
निरस्याम्बुदान् सत्यमाभामयन्त,
दयानन्दमानन्दद संस्मरामः ॥ ५ ॥

ले०—विद्याभाकर शिवकुमार मिश्र एम० ए० साहित्याचार्य

निर्वाणोत्सव पर हमारा कर्तव्य

[ले —श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति प्रधान सार्वदेशिक आ० प्र० सभा, देहली]

महर्षि का निर्वाणोत्सव आर्यपुरुषों को उनके कर्तव्य का स्मरण कराने के लिये आता है। प्रति वर्ष हम एकत्र होकर वर्तमान परिस्थितियों पर विचार करें, और अपने कर्तव्यों को याद करके उनकी पूर्ति का नया संकल्प करें तो समझना चाहिए कि हमारा निर्वाणोत्सव मनाना सफल हुआ अन्यथा उत्सव नाम के सैकड़ों प्रचलित नाटकों की तरह वह भी एक नाटक ही रह जायगा। भारतवर्ष को राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने से भारत के आर्यजनों का कर्तव्य बहुत बढ़ गया है। मेरा मत है कि परतन्त्र भारत को आर्यसमाज और आर्य धर्म की जितनी आवश्यकता थी, स्वतन्त्र भारत को उससे भी अधिक आवश्यकता है। देश को इस समय न केवल एक उन्नतिशील सुधारक पक्षपाती धर्म की आवश्यकता है, अपितु शासन चलाने के लिये दृढ़ चरित्र वाले सच्चे नागरिकों की भी आवश्यकता है। ये दोनों आवश्यकतायें आर्यसमाज ही पूर्ण कर सकता है। आर्यसमाज के प्रचारकों, कार्य कर्ताओं और सभासदों के लिये सेवा का यह अलभ्य अवसर आया है। यदि इस अवसर से लाभ उठाकर आर्य धर्म के सन्देश का प्रचार और निजू जीवन के दृष्टान्त द्वारा देश भर में फैलाने का



लेखक

प्रयत्न करें, तो उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हो सकती है।

हम अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिये अधिक कटिबद्ध हों, यही हमारे लिये दीपावली का संदेश है।



वैदिक भानु दयानन्द

(श्री रणञ्जयसिंह "दद्दन")

नाना भाँति विश्व में फैले मत मतान्तर जो
एकता करेंगे ऐसी भावना भी भ्रान्त है,
माने या न माने कोई मानना है एक दिन
वैदिक-सुधर्म के प्रसार से ही शान्ति है।
यही सदुपदेश दे स्वामी दयानन्द जी ने
सर्व जन हिताय मचाई महा क्रान्ति है
'दद्दन' प्रकाश सब उसी भव्य भानु का है
चन्द्र और तारा में भी उसी की तो कान्ति है ॥१॥

* इस युग का चमत्कार *

[ले०—राजगुरु प० धुरेन्द्रजी शास्त्री प्रधान, आ० प्र० सभा, संयुक्तप्रांत]

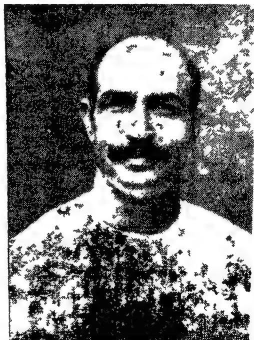
ऋषि दयानन्द ने अपने प्रसिद्ध चमत्कार पूर्ण ग्रन्थ, 'सत्यार्थप्रकाश', के ११ अध्याय में चमत्कारों का अत्यन्त तीव्र भाषा मे खण्डन किया है। प्रतिष्ठा व स्वाथ के उद्देश्य से प्रपचादि की रचना करना तथा जनता की अविद्या, व अज्ञान से लाभ उठा कर 'चमत्कार' प्रसिद्ध करने की अन्ध परम्परा से स्वाथ साधन के निराकरण का जैसा अपूर्व कार्य ऋषि दयानन्द ने किया है। वह स्वय ही एक इस प्रकार का 'चमत्कार' सिद्ध हुआ जिसका आधार अज्ञान अथवा स्वाथ नहीं था।

ऋषि दयानन्द का दूसरा चमत्कार यह हुआ है कि उन्होंने 'मनुष्य पूजा' के स्थान में 'सिद्धान्त पूजा' को प्रतिष्ठापित किया। इस सिद्धान्त पूजा का आधार परमात्मा का सत्यज्ञान 'वेद' था, परन्तु मैं यहाँ एक अन्य 'चमत्कार' की बात आर्यजनों के सम्मुख रखना चहता हू।

ऋषि दयानन्द का अलौकिक जीवन जब ५० वें वर्ष में प्रविष्ट हुआ तब उन्होंने 'मनुष्यों के हितार्थ' आर्यसमाज की आवश्यकता को अनुभव कर १८७५ ई० में आर्यसमाज की स्थापना की थी और प्रारम्भ में २८ नियम निर्माण किये थे। यही नियम आर्यसमाज के सगठन का मूल आधार है जो २ वर्ष बाद अधिक परिष्कृत और विश्व जनीन सगठन के रूप में 'ससार का उपकार करना' जैसे महान उद्देश्य से प्रथित हुये।

ऋषि दयानन्द के पश्चात् आर्यसमाज ने अपने आचार्य के बतलाये हुये मार्ग पर चलकर भारत की शिक्षा, सदाचार, धर्म ज्ञ न्य य आ स्वतन्त्रता आदि के सभी क्षेत्रों में जो अनेक चमत्कार पूर्ण कार्य किये देश के सभी क्षेत्रों में उनकी अमिट छाप है।

यह सब चमत्कार आर्यसमाज केवल इसलिये नहीं कर सका कि उसके उद्देश्य निर्भ्रान्त और उत्कृष्ट थे अपितु इन चमत्कार पूर्ण कार्यों का प्रमुख कारण स्वय उसका अपना दृढ़ सग उनके कार्यकर्ताओं का निर्मल चरित्र, अनुशासन तथा व्यवस्था पूर्वक कार्य करने की क्षमता जिसे 'जमाने की करामात' का सर्वोच्च ह्ण आर्य सम ज ने प्रस्तुत किया।



खकले

अब, कारण चाहे जो कुछ भी हो, स्थिति

विश्व विद्यालय गुरुकुल वृन्दावन की प्रगति कैसे हो

[लेखक—' त ब ब]

सन् १८८९ ई० से ही वैदिक - शिक्षणालय प्रारम्भ हो चुका था, परन्तु १८९८ से गुरुकुलों की स्थायी योजना आर्य-पुरुषों के सन्मुख हो चुकी थी और सिकन्दराबाद मे जिस गुरुकुल की स्थापना हो चुकी थी उसे जुलाई सन् १९०५ में सभा ने अपने प्रबन्ध में लेना स्वीकार किया। दिसम्बर १९०७ से वर्तमान गुरुकुल वृन्दावन सिकन्दराबाद से उठकर फरुखाबाद में आ गया। फरुखाबाद मे गुरुकुल में अपना स्थान न होने के कारण राजा महेन्द्रप्रताप जी द्वारा वृन्दावन में भूमि देने पर दिसम्बर १९११ में फरुखाबाद से स्थानान्तरित होकर गुरुकुल वृन्दावन में आ गया। आर्यसमाज के सुप्रसिद्ध नेता महात्मा नारायण स्वामी जी की कुशलता और तपस्या से लगाया अर्धशताब्दी से सञ्चालित आर्यसमाज की यह प्रिय संस्था दिन दुनी रात चौगुनी उन्नति करती हुई फलती फूलती गई। गुरुकुलों के निकले हुए स्नातकों का आर्यसमाज की प्रतिष्ठा को ऊँचा करने में बहुत बड़ा हाथ है।

इस समय देश में उपस्थित आर्थिक संकट का दुष्प्रभाव गुरुकुल वृन्दावन पर भी गहरा पड़ा है। गुरुकुल के अधिकारी एक ओर तो शिक्षा की उन्नति तथा गुरुकुल की प्रगति की नवीन २ योजनायें निर्माण करते हैं दूसरी ओर धन की चिन्ता में देश भर में मारे २ फिरते हैं परिणाम यह होता है कि उनकी योजना सफल नहीं हो पाती है। क्या आर्य जगत् इधर ध्यान देकर अपना कर्तव्य पूरा करेगा?

परिवर्तन हो गया प्रतीत होता है। आर्यसमाज के संगठन में शिथिलता आ रही प्रतीत होती है। आर्यसमाज के उद्देश्यों की महत्ता पर इस बुद्धि प्रधान युग' में सन्देह करने का किसी को साहस नहीं है। फिर यह शिथिलता क्यों?

मैं सम्पूर्ण देश में भ्रमण करता हूं। स्वभाव से स्वतन्त्र वैदिक धर्म प्रचारक उपदेशक हूं। प्रबन्ध व व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी बाधित होकर स्वीकार करता हूं परन्तु अनुभव यह है कि आर्यसमाज मे अनुशासन की न्यूनता तथा व्यवस्थित व केन्द्रीय ढंग से काय करने की क्षमता में कमी हो रही है।

समय रहते सावधान हो जाने और आत्म निरीक्षण का न केवल आवश्यकता ही है, अनिवार्यता भी है। अन्यथा बाद में पछताने से फिर कुछ हाथ न आयेगा। आर्यसमाज की सभी संस्थायें गुरुकुल, प्रेस तथा अन्य कार्य केवल इसलिये सफल रूप से प्रगति नहीं कर रही हैं कि उनके 'संगठन का अपील' प्रभाव रहित हो रही है। सम्भवतः आर्य जनता भी संगठन के महत्व को अधिक अनुभव नहीं कर रही है और सब शक्ति के प्रभाव को हम 'कलि-युग' में पूरा २ नहीं आँक रही। आर्य-पुरुषों से निवेदन है कि इस पर्व पर अपने २ मन्दिरों में दयानन्द की स्मृति में एकत्र होकर सम्पूर्ण स्थिति पर गम्भीरता से विचार करें और अपने कर्तव्य को पहचाने।

कार्य का यही उचित अवसर है

(श्री मदनमोहन सेठ रि० जज, का ०प्रधान आ० प्र० सभा युक्त-प्रान्त)

आज से लगभग पौन शताब्दी पूर्व ऋषि दयानन्द का देहान्त हुआ था, ससार दीपावली जैसे आनन्द मय पर्व के मनाने में मग्न था। दीवाली की अन्धकार मयी रजनी के छोटे छोटे दीपकों को शुद्ध आलोक से प्रकाशित करने वाली एक बड़ी ज्योति के समान वैदिक धर्म की प्रतिष्ठाता प्रकाश ज्योति बुझ रही थी 'अन्धकार' और 'प्रकाश' का यह दृश्य औ मेल अत्यन्त अद्भुत और अपूर्व था।

ऋषि दयानन्द की मृत्यु के अनन्तर आर्य पुरुषों के हृदयों में उसी प्रकार का प्रगाढ़ अन्धकार छा गया जैसे सूर्य के विलीन हो जाने पर सर्वत्र छा जाता है परन्तु वे हतोत्साह नहीं हुये। उन्होंने शीघ्र ही अपने उत्तरदायित्व को अनुभव किया। 'ऋषि सन्देश' को संसार में प्रचार करने का बीड़ा उठाया। प्रचार के सभी उपायों द्वारा देश के मानसिक जगत में क्रांति उत्पन्न कर दी। इसमें लेश मात्र भी अत्युक्ति नहीं कि आर्यसमाज सभी क्षेत्रों में देश का बहुत समय तक नेतृत्व करता रहा।

आर्यसमाज के कार्यकाल मे भारत में मोहनी क्षणिक उत्तेजना न थी। जितनी भी प्रगतियॉ और परिवर्तन होते थे वे शान्तिपूर्ण ढंग से स्थायी तथा संतुलित होते थे। आर्यसमाज सभी प्रगतियों का प्रतीक था। क्या बुद्धिवादी और क्या भावुक दोनों प्रकार की जनता का आर्यसमाज नेतृत्व कर रहा था। सदाचार, शिक्षा सामाजिक सुधार, वैदिक धर्म व आर्य संस्कृति की प्राचीन भव्यता व कल्याणकारी भावना के साथ आधुनिकता तथा नवीनता के आकर्षण का अद्भुत सम्बन्ध हो रहा था।

ऐसे समय एकाएक गत ४० वर्षों में स्वतन्त्रता के राजनैतिक आन्दोलन का आँधी के रूप में विस्फोट हुआ। आर्य पुरुष स्वतन्त्रता युद्ध में अधिकाधिक सम्मिलित होगये।

स्वराज्य में आर्य पुरुष विजयी हुये। देश में स्वदेशवासियों का राज्य स्थापित हो गया। अब देश का प्रजातन्त्रिक राज्य नवीन २ योजनायें बना रहा है यतः स्वदेशी राज्य देश की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति का उत्तरदायी है अतः प्रश्न किया जाने लगा है कि अब आर्यसमाज की आवश्यकता क्या है?



लेखक

आर्यसमाज मे भी शिथिलता के कुछ लक्षण दिखाई देने लगे। यही समय सावधान रहने का है। संघर्ष का रूप बदल गया है, दिशा भी बदल गई है। विदेशी भावना रूपी शत्रु स्वदेशी वेष धारण कर आर्यावर्त देश में घुस आया है। उसका रूप अत्यन्त मोहक, व घटायें अत्यन्त आकर्षक हैं। देश में अराजकता फैल रही है,

(शेष पृष्ठ ८ पर)

दे व द या न न्द

का

दुर्गम ———————— पथ

[ले—पं० श्री रामदत्त जी शुक्ल, एम० ए० एडवोकेट—मन्त्री सभा]

"क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति" कठ०

ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त प्रवाहित वैदिक परम्परा अत्यन्त पंकिल होकर मन्थरतम गति के साथ बह रही थी। उस सर्वथा विकृत और विपर्यासित धारा को अवलोकन कर किसी को भास तक नहीं होता था कि यह धारा कभी चिरकाल पर्यन्त पवित्रतम और असाधारण प्रगति के साथ प्रवाहित हो रही थी। जिस प्रज्ञान गंगा के सम्पर्कलेश ने सहस्रों मानवों, मुनियों, यतियों योगियों साधकों, सिद्धों, ध्यानियों, धीरों, ऋषियों और महर्षियों ने अपने अपने अनुकरणीय जीवनों से कोटि कोटि जनों को पूर्ण पुरुषत्व का प्रसाद वितरित किया, उसका कालक्रमागत दोषों से गत्यवरोध हो जाने से प्रभाव नितान्त क्षीण हो चुका था, विशुद्ध वैदिक आर्य मर्यादाओं, आर्ष विचार धाराओं और पावन आध्यात्मिक चिन्तनधारा का अभाव सा प्रतीत हो रहा था निदान अनेक प्रकार के मिथ्याचार रूढ़िवाद, संकुचित सम्प्रदाय अनाचार, अन्धपरम्परा, और कलुषित भावनाओं का भारत में प्रचण्ड झञ्झावात प्रबल वेग के साथ चल रहा था, ऐसे राजनीतिक, धार्मिक सांस्कृतिक और दार्शनिक ह्रास के अज्ञानतमिस्राग्रस्त युग में मूलशंकर का अवतरण हुआ।

अलौकिक प्रतिभा और संसार सम्पत् का समुदय होते ही बालक मूलशंकर वैराग्य भावापन्न होकर समस्त ऐहिक बन्धनों और सम्बन्धों को त्यागकर ब्रह्मचर्यावस्था में ही सन्यासाश्रम में दीक्षित होकर स्वामी दयानन्द सरस्वती के रूप में प्रकट हुये। बाह्य विश्व की समस्त मोहक वस्तुओं की ममता माया से सर्वथा पराङ्मुख होकर चिरकाल पर्यन्त घोर तप का अनुष्ठान किया, आध्यात्मिकता का स्वयं आस्वादन किया, किन्तु यौगिक भावना को भी श्रेयस्कर मोक्ष सुख का हेय साधन न बनाते हुये अलौकिक मनोयोग से लोकसंग्रह कर्त्तव्यानुष्ठान को ही अपने जीवन का एकमात्र अभीष्ट प्रयोजन अनुभव कर तदनुसार अनुष्ठान में प्राण पण से अग्रसर हुये। विश्वसाक्षी भगवान् को ही एक मात्र साक्षी और सखा मानकर मानव मात्र, नहीं २ प्राणिमात्र के कल्याण का पावन व्रत धारण कर 'वेदोऽखिलो धर्म मूलं' भगवान् मनु के इस अनुशासन और 'न वेद बाह्यो धर्मः' आचार्य चाणक्य के इस पावन मन्त्र को अपने कार्यक्रम का सुदृढ़तम आधार बनाकर नाना प्रकार के मिथ्या मतों, भ्रमात्मक विचारों, कुत्सित परम्पराओं, अज्ञानमूलक सिद्धान्तों और रूढ़िवादों का निराकरण तथा विशुद्ध वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति, वैदिक दर्शन, वैदिक आचार व्यवहार और सत्य सनातन आर्ष मर्यादाओं की प्रतिष्ठा करने के लिये अपने जीवन के अन्तिम श्वास पर्यन्त देव दुर्लभ पुरुषार्थ किया। अन्त में अपने दिव्य और अनुकरणीय जीवन के अप्रतिम आलोक से संसार को आलोकित करते हुये देव दयानन्द ने दिव्य दीपावली के भौतिक प्रकाश में एकान्ततः विनश्वर

शरीर को त्यागकर भूमा के भव्य भवन में प्रवेश किया अथवा औपनिषदिक श्रुति, "प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये यशो ह भवामि" को चरितार्थ किया यह जीवन यात्रा ५९ वर्ष में समाप्त हुई बाल्यकाल गृहत्याग, विद्याभ्यास, तप साधन पर्यटन प्रचार उपदेश, विचार चमश शास्त्रार्थ, ग्रन्थनिर्माण और आर्यसमाज स्थापना तथा संचालन सब कुछ हुआ।

"ईश्वर तेरी इच्छापूर्ण हो" इस अन्तिम वाक्य को कहकर महात्मा ने अपने शरीर का त्याग अथ से इति पर्यन्त देव दयानन्द के जीवन का सिंहावलोकन करने वाले व्यक्ति को उनके अन्तिम वाक्य के आशय को हृदयगम करने में कठिनाई हो नहीं सकती है किन्तु जो स्थूल दृष्टि से इस अलौकिक जीवन की महिमा और महत्व को मापना चाहते हैं, उनका समुचित बोध होना सम्भव नहीं है ईश्वर की इच्छा क्या है कि जिसकी ओर देव दयानन्द ने संकेत किया। इस महत्वपूर्ण महावाक्य को भलीभांति समझने में न केवल भारतीय विद्वानों और विदेशीय विद्वानों ने ही बड़ी भूल की है अपितु आर्यसमाज के प्रमुख विचारकों और नेताओं ने भी असाधारण भूल की है कि जिनके हाथों में विश्वास पूर्वक महर्षि ने अपने गुरुतर कार्य का सुसंचालनभार निहित किया था। क्योंकि आर्यसमाज के जन्मकाल १८७५ से लेकर आज तक के कार्यों का अनुसन्धान करने से स्पष्ट प्रतीत होगा कि जिस प्रकार मूलशंकर बालक ने दिव्य स्फूर्ति, देवप्रसाद तपप्रभाव और अलौकिक अध्यवसाय का अनुसरण करते हुये अपने निश्चित ध्येय के परिपालन में तन्मयता के साथ तत्परता प्रदर्शित की उसकी तुलना में किसी व्यक्ति या समष्टि ने तत्सम पुरुषार्थ प्रदर्शित नहीं कर पाया। ऐसा न कर सकने के कारण तो अनेकों हो सकते हैं, किन्तु वास्तविकता पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है उदाहरणार्थ 'आर्यों का परम धर्म वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना" इसका समुचित क्या आंशिक पालन भी आर्यों के बहुमत ने आवश्यक अनुभव नहीं किया। संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना, इस दिशा में भी अपेक्षाकृत कोई ऐसी प्रगतिशीलता नहीं दिखाई जा सकी कि जिसका आचरणीय प्रभाव अन्यों पर पड़ना सम्भव होता। वस्तुतः देव दयानन्द के द्वारा प्रदर्शित विशाल वेदपथ पर सफलता के साथ चलने के लिये तत्पर होकर ऋषि दयानन्द को अपने जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिये आध्यात्मिकता की जिस मात्रा में आवश्यकता है और साथ ही वेदविद्याभ्यास के द्वारा जिस विद्वता की अपेक्षा है, उसके स्थान में अन्य किसी लौकिक, वाचिक या सांसारिक प्रपंचपूर्ण आडम्बर प्रदर्शन प्रस्तुत करने से न तो देव दयानन्द के लक्ष्य की ही पूर्ति हो सकती है और न आर्यसमाज को ही यश की उपलब्धि होना सम्भव है क्योंकि ७० वर्ष पूर्व भारत या अन्य देशों में शिक्षा का स्तर अत्यन्त निम्न था प्रायः लोग अपढ़ होते थे इसलिये उस युग में इस बात के कहने का कि 'वेद समस्त विद्याओं का भण्डार है' जो प्रभाव पड़ना सम्भव था ठीक उसी प्रकार का प्रभाव वर्तमानकाल में शिक्षा का तल विस्तृत हो जाने से पड़ना कठिन है उस काल में मेघदूत और शकुन्तला के चमत्कार से ही अनेक विदेशीय विद्वान् भी चकित हो जाते थे किन्तु अब तो संस्कृत साहित्य के गूढ़तम महान् ग्रन्थों के आलोडन मंथन और अनुशीलन में सैकड़ों विद्वान अपने २ पूर्ण आयुष्य को लगा रहे हैं। अनेक प्रकार के ग्रन्थों का प्रकाशन कर रहे हैं, इधर भारत में भी वैदिक साहित्य के अनेक दृष्टिकोणों से देखकर उनके विषय में अनेक विचार प्रकाशित हो रहे हैं ऐसी अवस्था में आर्यसमाज के प्रमुख विद्वानों का कार्य यही हो जाता है कि

उन समस्त प्रतिज्ञा वाक्यों को सर्वथा सिद्ध करने का पूर्ण प्रयास कर कि जो देव दयानन्द ने वेद, वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति वैदिक दर्शन और वैदिक दर्शन वैदिक आचार व्यवहार के सम्बन्ध में समय २ पर कहे और स्थान २ पर अपने ग्रंथों में लिखे हैं। क्योंकि महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन और कार्यों का कथामात्र से उनके द्वारा दर्शाये उत्कृष्ट आदर्श की प्राप्ति सम्भव नहीं है। शरीर में जो स्थान प्राण का है, आर्यजीवन के लिये वही स्थान संस्कृत का है और आर्य समाज के लिये वही स्थान वेद का है, यह तीनों प्रतिज्ञायें व्यावहारिक रूप प्राप्त कर सकें, तभी यह भी सम्भव हो सकता है कि हम ठीक प्रकार जान कि वस्तुतः ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त वैदिक परम्परा का क्या स्वरूप है और उसको भलीभाँति समझकर उनको व्यावहारिक रूप में मानव जीवन को उत्कृष्ट बनाने के लिये उपादेय बनाने में समर्थ हो सकें। देव दयानन्द की दिव्य दीपावली प्रति वर्ष उपस्थित होकर आर्यों को सचेत और सावधान करती हुई वेद विज्ञान के दुर्गम पथ का देव प्रसाद और तपप्रभाव अनुभव करने के लिये अपूर्व प्रेरणा प्रदान करती है। "यदर्थं आर्या सूते तस्य कालोयमागतः" के अनुसार वेद के दिव्य आलोक की आभा से आर्य प्राण आर्य अनुप्राणित हों।

[पृ ३ पांच का शेष]

नैतिकता व सदाचार का लोप हो रहा है। स्वराज्य प्राप्ति व्यर्थ सिद्ध होती प्रतीत होती है। सर्वत्र अराजकता की आशंका अनुभव की जा रही है। 'समाजवाद' 'आम वाद' आदि अनेक भ्रामक विदेशी मतों से देश प्रभावित हो रहा है। संकुचित 'राजनैतिक सम्प्रदायों' की वृद्धि हो रही है।

अतः आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य कौन सी ऐसी संस्था है जो देशवासियों के सम्मुख 'सदाचार' व 'सत्य' का ठीक ठीक स्वरूप व मर्यादाओं को प्रस्तुत कर सके अथवा जो आर्यों के अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन निर्भय राज्य की कथा को स्वप्न से वास्तविक रूप में परिवर्तन करने की भूमि तैयार कर सके।

देश के सम्मुख इस समय सबसे बड़ी समस्या यह है कि राष्ट्र में नैतिकता व शिष्टाचार का इतना अधिक अभाव हो गया है, जैसा कि सरदार पटेल ने संकेत किया है, कि भ्रष्टाचार के कारण शासन यन्त्र ही नष्ट भ्रष्ट होने जा रहा है - 'आर्य सदाचार' का प्रतिष्ठापन ही इस देश को प्राप्त 'स्वराज्य' की रक्षा कर सकता है। यह क्या कुछ कम काम है ? सबसे कठिन और सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। आर्यसमाज के अतिरिक्त इसे अन्य कोई संस्था नहीं कर सकती है। प्रवाह में मत बहिये कर्तव्य के लिए कमर कस लीजिए।

—आर्यमित्र का 'दिवाली ऋष्यङ्क' पाठकों के सामने प्रस्तुत हो रहा है। 'आर्यमित्र' आर्यसंसार की ५२ वर्ष से जो सेवा कर रहा है उसका बहुत कुछ श्रेय आर्यजगत् के विद्वान् लेखकों को ही है।

ऋष्यङ्क में प्रकाशित होने के लिये अनेक लेखकों के लेख व कवितायें प्राप्त हुई उन सबको यदि प्रकाशित किया जा सकता तो हमें अत्यन्त प्रसन्नता होती, परन्तु स्थानाभाव के कारण तथा पत्र-प्रकाशन के उचित अवसर पर प्राप्त न हो सकने से उन सबको ऋष्यङ्क में स्थान देना किसी प्रकार सम्भव न हो सका। इसके लिये क्षमा याचना करते हुए लेखक तथा पाठकों की सहायता के लिये हम कृतज्ञता प्रकाशन करते हैं।

—सम्पादक

शिव संकल्प

[ले०— डा० वासुदेवशरण अग्रवाल]

शिव संकल्प क्या है? दृढ़ निर्माणात्मक विचारों की संज्ञा शिव संकल्प है। जो विचार दृढ़ नहीं है पर जो रचनात्मक शक्ति से रहित हैं वे शिवसंकल्प नहीं हैं।

पहला मन्त्र—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु ॥१॥

अर्थ—जो जागते, सोते, घुमक्कड़ स्वभाव वाला है, कभी स्थिर नहीं रहता एवं दूर दूर के चक्कर काटता है, जो ज्योतियों में ज्योति है वह मन दृढ़ निर्माणात्मक संकल्पों से युक्त हो।

टिप्पणी—दूर केन्द्र से बाहर। ज्योतियों की ज्योति, इन्द्रियों को मज्ञा अर्चि या ज्योति, मन उनकी ज्योति है उनको उजाला देने वाला है। मन का साथ न रहे तो इन्द्रियाँ शून्य या अन्धकार मय हो जाती हैं। जैसे बड़ी बत्ती छोटी बत्ती बत्तियों को प्रकाश देती है वैसे ही मन इन्द्रिय रूपी ज्योतियों की ज्योति है।

दूसरा मन्त्र—

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु ॥२॥

अर्थ—मनीषी यज्ञों में जिससे उत्कृष्ट कर्म करते हैं और लोग विदथ या विद्वत् सभाओं में जिसकी सहायता से कर्म करते हैं, जो प्रजाओं के भीतर रहने वाला यक्ष है, वह मन दृढ़ निर्माणात्मक संकल्पों से युक्त हो।

टिप्पणी—मन सब तरह के कर्म करने का साधन है। कर्म दो प्रकार के हैं। यज्ञीय कर्म जो आचार और हृदय की साधना पक्ष हैं एवं विदथ या विद्या सम्बन्धी साधनाएँ। संसार में जितने आचार के चमत्कार और विद्या के साधन हैं वे मन से ही हुए हैं और मन से ही होंगे। मन की इषणा शक्ति वाले मनीषी हैं जो आचार प्रधान जीवन के अनुयायी हैं। बुद्धि के धृति प्रधान मार्ग से ज्ञान का अभ्यास करने वाले धीर लोग हैं जो अनेक प्रकार के विदथ या ऊँचे ज्ञान प्रयोग सिद्ध करते हैं। दोनों में मन की एकाग्रनिष्ठा ही कारण है।

अपूर्व यक्ष—स्थूल जड़ पदार्थों के ढेर में से उत्पन्न यह मन एक अपूर्व शक्ति है। यह यक्ष है जिसमें कामों को निपटाने की अपूर्व शक्ति है। कथा में अनिरुद्ध यक्ष जैसे क्षण मात्र में सब काम पूरा कर देता था वैसे ही विलक्षण क्षमता मन रूपी यक्ष में है। प्रजाओं के अर्थात् सब प्राणियों के अन्तःकरण में बैठा हुआ यह यक्ष उनके निर्देशानुसार काम कर रहा है।

तीसरा मन्त्र—

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु ॥३॥

अर्थ—जो प्रज्ञान है, जो चेतस् है, धृति है, जो प्राणियों के भीतर न बुझने वाली अमर ज्योति है, जिसके बिना कोई कर्म नहीं होता, वह मन दृढ़ निर्माणात्मक संकल्पों से युक्त हो।

टिप्पणी—

प्रज्ञान—Intintion
चेतस—Intelligence
धृति—Vill

प्रज्ञा बुद्धि और इच्छा शक्ति मन की ही शक्ति हैं। ऊँची प्रतिभा या प्रज्ञा मन का ही गुण है। वह सबसे उत्कृष्ट ज्ञान का साधन है। प्रज्ञा से सत्य का साक्षात् दर्शन होता है। चेतस् या चेतना बुद्धि है जिसके व्यापार से तर्क वितर्क होते हैं। धृति वह शक्ति है जिससे दृढ़ संकल्प या इच्छा प्रकट होती है जो कार्य रूप में सामने आती है। मन ही अमृत ज्योति है। बार-बार

बुझने वाले संकल्प विकल्प या जीवन व्यापारों मे मन ही है जो पुनः पुनः नया होकर जीवन में नई आशा, नये ज्ञान नये संकल्पों का आधान करता है। जिससे सब कर्म किये जाते हैं (दूसरा मन्त्र) और जिसके बिना कोई कर्म नहीं होता (तीसरा मन्त्र) ये एक ही शक्ति के मन और प्राण द्विविध रूप हैं।

चौथा मन्त्र—

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥४॥

अर्थ—जो हुआ, जो है जो होने वाला है, सब जिस अमृत मन से पकड़ा हुआ है, जिससे सात आहुतियों वाला यज्ञ चल रहा है, वह मन दृढ़ निर्माणात्मक संकल्प युक्त हो।

टिप्पणी—भूत भविष्य वर्तमान को मिलाने वाली अमृत डोरिया अमर सूत्रात्मा मन है। शरीर मर्त्य है जब यह टूट जाता है पहले पीछे के सम्बन्ध अस्त व्यस्त हो जाते हैं। परन्तु भूत को वर्तमान जीवन से और वर्तमान जीवन को भविष्य में आने वाले जीवन से मिलाने वाला, उनमें एक सूत्रता लाने वाला मन है मन को इस लिए अमृत या दैवी अंश कहा गया है। सप्त होता यज्ञ—दो कान, दो आँख, दो नाक के छिद्र, एक मुंह—ये सात आहुतियाँ बराबर पड़ती रहती हैं जिनसे शरीर का यह सप्त होता यज्ञ चलता रहता है। मन इस यज्ञ का जगाये रखता है। इन्द्रियों को सात प्राण और सात ऋषि भी कहा गया है। मन धूप है, प्राण उसकी छाया है। "छाया तपौ" धूप छाँह की तरह मन और प्राण का सम्बन्ध है।

पाँचवा मन्त्र—

यस्मिन्नृचः सामयजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥५॥

अर्थ ऋक्—साम—यजु जिस मन में ऐसे नधे हैं जैसे रथ की नाभि में अरे

जिसमें सब प्राणियों का चित्त रूपी ताना बुना हुआ है, वह मन दृढ़ निर्माणात्मक संकल्पों से युक्त हो।

टिप्पणी—ऋक्—साम — यजु ज्ञान—उपासना—कर्म,

त्रिधा प्रकाशित जो जीवन है वह मनमें ऐसे पिरोया हुआ है जैसे रथचक्र की नाह में पहिये के अरे ठुके रहते हैं।

शरीर रथ है। मन रथचक्र की नाह है। जितना त्रिगुणात्मक जीवन है वह उन अरों की तरह है जो पहिये की नाह में पिरोये रहते हैं। नाह के बल पर ही अरे टिके रहते हैं। मन की शक्ति से ही त्रिगुणात्मक जीवन ठहरता है। मन के अभाव में ऋक् साम यजु का त्रिगुणात्मक रूप और कुछ नहीं है।

चित्त का ताना बाना उसी मन में बना है। चित्त विकल्पों का स्थान है। चित्त से फैलने वाले जितने संकल्प विकल्प के धागे हैं वे मन में ही बुने हैं। मन के धागे से चित्त के धागे बुनते हैं नाना प्रकार के जगजाल इस त्रिगुणात्मक जगत में मन की शक्ति से ही चित्त के संकल्प विकल्पों द्वारा उत्पन्न होते हैं। उन सबको दृढ़ निर्माणात्मक स्थिति में प्राप्त कराने वाला मन ही है।

छठा मन्त्र—

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥

अर्थ—सुघड़ सारथि जैसे लगाम से घोड़ों को ले जाता है वैसे ही जो इन्द्रिय रूपी घोड़ों को अपनी बागों से राह पर ले चलता है,

जो हृदय में पधराया हुआ है अर्थात् सबसे विशिष्ट पद पर बैठा है जो वेगशाली है, जो सबसे फुर्तीला है वह मेरा मन दृढ़ और निर्माणात्मक संकल्पों से युक्त है।

टिप्पणी—सुषारथि—चतुर सारथि जो चंचल घोड़ों को वश में रखने की योग्यता रखता है और जो रास को दृढ़ता से थाम कर उन्हें ठीक मार्ग पर चलाता है ऐसी योग्यता मन की होनी चाहिए। ठीक तरह से सधा हुआ मन इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वश में रखकर चलाने में सधे हुये सारथि की तरह होता है।

एक सौ पन्द्रह वर्ष के बाद

(ले०—श्री गयाप्रसाद उपाध्याय)

१८३३ ई० में लार्ड मैकाले साहब भारतवर्ष में इंग्लैण्ड की ओर से ला मेम्बर (धर्म सचिव) होकर आये और महाराजा राममोहनराय की सहायता से अंगरेजी शिक्षा का प्रस्ताव स्वीकृत कराया। उस समय ब्रिटिश सरकार के समक्ष यह प्रश्न प्रस्तुत था कि भारतीय युवकों की शिक्षा भारतीय भाषाओं द्वारा हो या अंगरेजी भाषा द्वारा दोनों पक्ष प्रबल थे और समान थे। मैकाले प्रधान था उसके अपने अतिरिक्त मत से अंगरेजी का पक्ष स्वीकार हो गया यदि राजा राममोहनराय अपना मत अंगरेजी के विरुद्ध देते तो अतिरिक्त मत की आवश्यकता ही न पडती। अतः अंग्रेजी के लिये राजा राममोहनराय का भी उतना ही उत्तरदायित्व है। परिणाम हुआ भारतीय भाषा, भारतीय भाव और भारतीय संस्कृति का ह्रास और पाश्चात्य वायुमण्डल का विस्तार। इस बीच में भारतवर्ष में बडे बडे विद्वान्, बडे बडे देश हितैषी और बडे बडे प्रभावशाली पुरुष हुये, परन्तु वे सब थे अंग्रेजी वातावरण के पले हुये। यहाँ तक कि मैक्स आदि ने पूर्व की पवित्र पुस्तकें आदि जो साहित्य निर्माण किया वह भी अंग्रेजी रंग में रंगा था, ऋषि दयानन्द पहले पुरुष थे जिन्होंने इस विष की बेल को पहचाना और इसके विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया। उन्होंने इस सम्बन्ध में चार बातें बताई :—

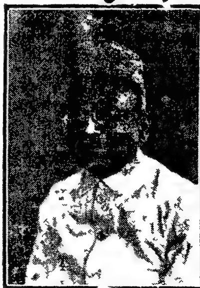
(१) यह सरासर गलत है कि भारतीय संस्कृत साहित्य दोष युक्त और अधूरा है और इसमें देश तथा जाति की आवश्यकता की सामग्री नहीं है।

(२) आर्य्य भाषा (हिन्दी) ऐसी भाषा नहीं है जिसमें नवीन आविष्कारों को सन्निहित करने की योग्यता न हो।

(३) अंग्रेजी के प्रचार से दासत्व की बेडियां कडी हो सकती हैं देश उन्नति नहीं कर सकता।

(४) भारतीयों को प्रान्तीयता की दलबन्दी छोडकर हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा बनानी चाहिये।

ऋषि के समय में ऋषि की आवाज को लोगों ने सुना तो सही, परन्तु उस पर श्रद्धा न की। वह समय अंग्रेजी के प्राबल्य का था। सभी अंग्रेजी के पीछे पागल थे जब १८८५ ई० में कांग्रेस बनी तो वह भी अंग्रेजी का ही माल हुआ। इण्डियन नेशनल कॉग्रेस" नाम में तीनों ही शब्द अंग्रेजी है। ऋषि दयानन्द की शिक्षा का मूलतत्व यदि



लेखक

समझा तो महात्मा गांधी ने। उन्होंने ऋषि दयानन्द की पहली बात पर तो अधिक बल नहीं दिया, परन्तु शेष तीनों बातों को जोर से आगे बढ़ाया। ऋषि दयानन्द के समान वे भी गुजराती थे, परन्तु देशहित के लिये उन्होंने प्रान्तीयता के

शुद्ध भाव को तिलाञ्जलि दे दी थी। जिस सूत्र को ऋषि दयानन्द छोड़ गये थे उसका महात्माजीने विस्तार किया और दक्षिण में हिन्दी प्रचार का अधिकतर श्रेय महात्मा गाँधी को है।

१४ सितम्बर १९४९ ई० या क्वार बदी सप्तमी २००६ वि० (बुधवार) का दिन भारत के इतिहास में पुण्यतम दिवस समझा जायगा जिस दिन भारत राज की धारासभा में मैकाले के लगाये हुये विष के पौधे की जड़ काट दी गई और यह निश्चित हो गया कि भारत की राष्ट्र-भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी हो। यह ऐसा निश्चय है जिसमें न केवल ऋषि दयानन्द के आदेश की प्रतिध्वनि है, न केवल महात्मा गाँधी की शिक्षा का पालन है अपितु भारतीय प्राचीनतम संस्कृति के उद्धार का मूलमन्त्र निहित है। आज से उलटी गंगा के बहाव को रोककर सीधा कर दिया गया। ११५ वर्ष से चली आती हुई गलती आज दूर हुई। यह हर्ष और अभिमान और गौरव की बात है।

इस निश्चय के चार परिणाम हुयेः—

(१) जो लोग भारतीयता के मार्ग में रोड़े अटकाते थे वह असफल हुये और वे दिल में नाराज़ हैं

(२) जो लोग स्वभाव से अंग्रेजी के रंग में रंग गये थे और जो अंग्रेजी के साथ इतने दिनों से हुये 'अनुचित सम्बन्ध' को छोड़ने की शक्ति नहीं रखते थे वे भीतर से लाभ को समझते हुये भी क्षणिक उपभोग के छूट जाने से खिन्न हैं।

(३) भारत देश के बलवान देश भक्त जो भारतीयता में ही देश का कल्याण समझते हैं अपनी विजय पर फूले नहीं समाते। उनके हृदय आनन्द से भरपूर हैं।

(४) जो इस प्रस्ताव में प्राचीन वैदिक संस्कृति के पुनरुत्थान का स्वप्न देख रहे हैं और "कृण्वन्तो विश्वमार्यम" के महान उद्देश्य की पूर्ति का विचार कर रहे हैं उनके आनन्द का तो पार पाना ही कठिन है। यह हैं ऋषि दयानन्द के भक्त आर्यसमाजी। मैं भी उनमें से अपने को एक गिनता हूँ।

परन्तु मुझे आनन्द भी है और चिन्ता भी। निर्धन सन्तान हीन अधेड़ पुरुष के घर में यदि पुत्र-जन्म हो तो उसे आनन्द होगा, परन्तु उसे चिन्ता भी होगी कि इसका पालन-पोषण कैसे हो। केवल धारासभा के प्रस्ताव से तो हिन्दी राष्ट्रभाषा होने से रही। इसकी त्रुटियों को दूर करना, इसका सब देश में प्रचार करना, इसके साहित्य को परिपुष्ट करना इसके लिये तो जी तोड़कर काम करना होगा।

और आर्यसमाज को तो साधारण भारतवासी की अपेक्षा कई गुना अधिक कार्य करना है। उसे हिन्दी-भाषा के स्रोत को इस प्रकार बहाना है कि उसमें वैदिक संस्कृति का अधिक-से-अधिक पुट हो। साधारण कांग्रेसी डार्विन या कार्ल मार्क्स की पुस्तकों को हिन्दी भाषा में पढ़कर अपने उद्देश को पूर्ण समझ सकता है क्योंकि हिन्दी भाषा उसके लिये एक साध्य है। देशहित के इसी अंश की पूर्ति से सन्तुष्ट है, परन्तु आर्यसमाजी तो हिन्दी भाषा और नागरीलिपि दोनों को साधन मात्र समझता है उसका ध्येय तो कोसों आगे है। यह तो ध्येय की पहली सीढ़ी है। ध्येय बहुत ऊँचा है। अतः आर्यसमाजी आनन्द मना सकता है, परन्तु चिन्ता-शून्य नहीं हो सकता। आज से आर्यसमाज को आर्य-साहित्य के निर्माण और प्रचार में जुट जाना चाहिए।

गत ७५ वर्ष में आर्यसमाज ने बड़े-बड़े प्रभावशाली काम किये हैं परन्तु उसने साहित्य उत्पन्न नहीं किया यह एक ऐसी त्रुटि है जो अक्षन्तव्य है। यदि आर्यसमाज के विशाल भवन आदि न होते और केवल साहित्य निर्माण की ओर ही ध्यान देता, तो आज आर्यसमाज का सिर बहुत ऊँचा होता, परन्तु हमने जड़को छोड़कर पत्तों का सींचा। साहित्य निर्माण का चिन्ता नहीं की साहित्यकारों का मान नहीं किया। उसी का फल भोग रहे हैं। क्या ऋषि दयानन्द के छयासठवें निर्वाण वर्ष पर हम अपने भावी प्रोग्राम का निश्चय करेंगे?

आर्यसमाज के लिये अपूर्व अवसर

[ले०—श्री पं० हरिशङ्करजी शर्मा]

आर्य्यसमाज को वैदिक धर्म प्रचार के लिये स्वतन्त्र भारत में अपूर्व अवसर है। पर हम देखते हैं कि वह इस स्वर्ण अवसर से कुछ भी लाभ नहीं उठा रहा। उसे अपने चुनावों में जितना मोह है, उतना अन्य कार्यों मे उत्साह नहीं। आर्य समाज को क्या करना चाहिए, इस विषय पर नीचे कुछ प्रकाश डाला जाता है। आशा है आर्य जनता इन सुझावों पर विचार करेगी।

(१) प्रत्येक आर्य को अपने विचार और आचार में आध्यात्मिक आधार को दृढ़ करना चाहिए। अर्थात् वह जो कुछ सोचे, कहे या करे उसमें सत्य न्याय और प्रेम का पूरा पुट हो। समाज संशोधक के साथ साथ वह धार्मिक भी बनने की पूरी चेष्टा करे।

(२) इसी भावना का युक्तियुक्त प्रचार करने के लिये लेखनी आदि वाणी की शक्ति को सुदृढ़ बनाया जाय अर्थात् सत्सग की कथा, व्याख्यान, उपदेश और प्रवचन की प्रत्येक पुर नगर में और घर घर में व्यवस्था हो। (ख) मासिक साप्ताहिक और और दैनिक पत्रों का प्रकाशन किया जाय। उपयोगी ग्रन्थों तथा पुस्तकों का प्रकाशन हो।

(३) दयानन्द-सेवा-सदन की स्थापना जिसमे निर्वाहार्थ वृत्ति लेकर निष्काम कार्य करने वाले विद्वान् सदस्य सम्मिलित किये जाँय।

(४) समस्त गुरुकुलों के लिये एक गुरुकुल विश्व विद्यालय का स्थापना हो जिसके द्वारा पाठ-विधि और शिक्षण-शैली में समानता हो। गुरुकुल प्रणाली समयोपयोगी तथा आकर्षक बनाई जाय।

(५) डी० ए० वी० हाई स्कूलों और कालिजों में धार्मिक शिक्षा को महत्व तथा प्राथमिकता देने की व्यवस्था की जाय। उनमें सहयोग या एक सूत्रता स्थापित हो।

(६) आर्यसमाजों के उत्सवों को गम्भीरता का रूप दिया जाय। सम्भव हो तो प्रत्येक समाज अलग अलग अपना उत्सव न करके जिले के उत्सव में सम्मिलित हो। और वह जिला आर्य समाज उत्सव, जिले में नवीन नवीन स्थानों में मनाया जाय।

(७) स्वाध्याय और सत्सग की प्रथा का प्रसार किया जाय और यथा सम्भव प्रत्येक समाज में प्रातः काल दैनिक सत्सग हो।

(८) बिरादरी वाद और अस्पृश्यता निवारण के लिये क्रियात्मक प्रयत्न हो, नशा निवारण के भी लिये पूरा प्रयत्न किया जाय।

(९) वैतनिक और अवैतनिक कार्य कर्त्ताओं के मध्य के विषम भेद-भाव का अन्त कर समता का व्यवहार किया जाय और उन्हें सामाजिक अधिकारों की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाय।

(१०) सघटन सम्बन्धी नियमों को अधिक महत्ता न देकर जाप्तापुरी अथवा महकमा परस्ती को शिथिल या गौण समझ कर धार्मिक सिद्धान्तों को मुख्य तथा प्रधान माना जाय।

(११) द्रव्य संग्रह का उत्तरदायित्व उपदेशकों पर न डाल अधिकारियों के कन्धों पर रखा जाय।

(१२) सत्सगों और अधिवेशनों तथा उत्सवों को गम्भीर एवम् आकर्षक बनाया जाय। उनमें आर्य समाज से बाहर के लोगों को भी बुलाने का पूर्ण प्रयत्न हो।

(१३) नगर कीर्तन यानी रंक-प्रदर्शन (Poor Show) का अन्त हो।

(१४) परिवारों और महल्लों में धर्मप्रचार। ग्रामों की जनता में सरल शुद्ध और सरस भजनों द्वारा प्रचार, तथा ज्ञान वर्द्धक व्याख्यानों की व्यवस्था।

(१५) विशेषज्ञ प्रथा प्रचलन-अर्थात् एक-एक विषय के जानकार उसके प्रचार के लिये तैयार किये जांय।

(१६) गुरुकुलों और डी. ए. वी. कालिजों में वक्ता, लेखक, सम्पादक, प्रचारक, प्राईवेट सेकेटरी, संगठन कर्त्ता, संस्था सचालक आदि तैयार करने के लिये विशेष श्रेणियों की स्थापना।

(१७) महिलाओं, नवयुवक विद्यार्थियों, शिक्षित जनता आदि के लिये विशेषज्ञ प्रचारकों और विद्वान् व्याख्याताओं की नियुक्ति।

(१८) नैतिकता प्रचार और भ्रष्टाचार नाश के लिये निर्भयता पूर्वक प्रचार करना

(१९) साहित्य-हीनता और संगीत शून्यता का दोष दूर करने के लिये उचित व्यवस्था

(२०) रोगियों की परिचर्या सेवा शुश्रूषा और चिकित्सा के लिये निःशुल्क आयोजन

(२१) अनाथालय, कन्या पाठशाला, विधवालय, आदि संस्थाओं का प्रांतीय संगठन के अन्तर्गत प्रबन्ध और नियन्त्रण।

(२२) प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा में केवल कर्मण्य सदस्य रखे जांय। नाम मात्र के लिये कोई न रहे।

(२३) आर्य समाजों और सभा के शिथिल संगठन को सुदृढ़ और सबल बनाने का पूरा प्रयत्न किया जाय।

(२४) सभा का अधिवेशन गुरुकुल वृन्दावन के महोत्सव पर हुआ करे, उत्सव के पश्चात्।

(२५) गुरुकुल महोत्सव को अधिक प्रभाव शाली और आकर्षक बनाया जाय।

(२६) आश्रम धर्म को क्रियात्मक रूप देने की चेष्टा की जाय, अर्थात् वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम का जीर्णोद्धार।

(२७) प्रान्तमें आर्यसमाजों द्वारा कोई संस्था, बिना प्रान्तीय आर्य प्रति निधि सभा की स्वीकृति के स्थापित न की जाय।

(२८) सभा के अन्तरंग-सदस्यों में से आठ दस सदस्यों की एक कार्य-समिति बनाई जाय जिसे काफी अधिकार हों!

(२९) शिक्षा केन्द्रों के लिये विद्वान् व्याख्याताओं की नियुक्ति हो।

(३०) वर्ष भर में १५ दिन के लिये किसी ठंडे स्थान में शिक्षण शिविर हों जिसमें उपदेशक, अध्यापक विचारक, वकील सरकारी कर्मचारी जो भी सम्मिलित होना चाहे अपने व्यय से सम्मिलित हो और आर्यसमाज का आगामी कार्यक्रम निश्चित करें। विचार विनिमय हो।

(३१) प्रान्त के चुने हुए पचास आर्यव्यक्तियों की एक समिति दिसम्बर से पूर्व बुलाई जाय जो आर्यसमाज का भावी कार्यक्रम निश्चित करे ये पचास व्यक्ति अपने अपने विषय के विशेषज्ञ हों आर्य समाज से बाहर के लोग भी इन में शामिल किये जाय जो आर्य समाज से हित रखते तथा उसकी उन्नति चाहते हैं। इन पर यदि कुछ व्यय करना पड़े तो वह भी किया जाय।

मैंने ऊपर कुछ क्रियात्मक बातों की ओर संकेत किया है निश्चय ही इस सारे आयोजन के लिये धन की बड़ी आवश्यकता होगी। परन्तु मेरा विश्वास है कि जिस जनता ने आर्य समाज के कार्यों के लिए अब तक करोड़ों रुपये दिये हैं, वही अब भी देगी। कुछ लोग निश्चित और क्रियात्मक कार्यक्रम लेकर स्वार्थत्याग पूर्वक सच्चे हृदय से कार्य क्षेत्र में अवतरित तो हों।



ऋषि दयानन्द की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था

[ले० महोपदेशक प० बिहारीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ उझियानी (बदायूं]

श्री स्वामी जी का वैदिक धर्म पर अटल विश्वास था वह वेदादि शास्त्रों की योजना को ही जगत् के लिये कल्याणकारिणी मानते थे। इसलिये वह "वर्णाश्रम व्यवस्था" वाला समाज ही पसन्द करते थे। सम्पूर्ण मानवसमाज चार प्रकार का स्वभाव लेकर जगत् म आता है —सात्विक, राजस, तामस और इनसे मिला जुला। मनुष्य ही नहीं सारा जड़ चेतन जगत् ही चार विभागों म बँटा हुआ है। शास्त्रकारों ने पशु पक्षी वृक्ष लतादि तक का वर्णों मे बाँटा है।

उस स्वभाव के अनुसार ही मनुष्य गुणों को ग्रहण करेगा और यही उसके विकास के लिए ठीक भी होगा और स्वभावानुसार ही कर्म मिलने से कर्म में रुचि भी होगी जिससे कि काम भी ठीक होगा। स्वभाव के लिये जन्मदाताओं के स्वभाव आने की अनिवार्यता नहीं है। माता पिता का स्वभाव आता भी है और नहीं भी आता है। तप से स्वभाव म परिवर्तन भी हो जाता है है। चारों ही वर्णों का ऐसा बाँटा गया है कि पृथक् रहते हुए भी मिलकर एक विराट् समाज के रूप म रहे। एक वर्ण दूसरे पर अवलम्बित रहे। पृथक् पृथक् काम होते हुए भी सारा मनुष्य समाज "विराट् भगवान्" का एक शरीर ही है। ऐसे समाज की कल्पना प्लैटो ने भी की थी परन्तु वह सफल न हो सका। उसकी असफलता का कारण यही था कि उसके पास त्याग और तप के संस्कार डालने वाला आध्यात्मिक शास्त्र वेद उपनिषद आदि नहीं थे। भौतिक शरीर की आत्मा भी भौतिकता ही हो वह यन्त्र पुरुष स्वतन्त्र नहीं काम कर सकता। यहाँ के ब्राह्मणादि वर्णों की आत्मा 'धर्म' है, श्रद्धा है, ब्रह्म विश्वास है। वर्ण व्यवस्थित समाज में वर्ण परम्परागत कार्य आने से कार्य का विकास अच्छा होगा और कर्तव्य को स्वधर्म मान लेने से कार्य में रुचि होगी। और शक्तियों का भी बँटवारा ठीक रहेगा। पूँजीवाद का विष भी इससे शमन होता रहेगा। ब्राह्मण के पास ज्ञान की शक्ति, क्षत्रिय के पास शस्त्र की शक्ति और वैश्य के पास धन की शक्ति तथा शूद्र के पास श्रम की शक्ति। किसी एक वर्ण के पास चारों शक्तियाँ न रहने से शक्ति संकर जैसा कि आज कल है नहीं हो सकता। और सर्वोपरि शक्ति ज्ञान की है ही इसलिये उसका मान रक्खा गया। मनुष्य मान को बड़ा समझता है। आज कल धन का मान होता है। इसी लिये सब धन की तरफ दौड़ते हैं।



लेखक

शास्त्रों ने यह मान ज्ञान के आधीन कर दिया इसलिये त्याग की ओर संसार बढ़ेगा यही वर्ण व्यवस्था का विशेष गुण है। मनुष्य के जीवन के भी चार भाग रक्खे हैं

पहले भाग म ज्ञान का प्राप्त करना यह सब के लिए समान है। इसम जो विशेष रहे वह ब्राह्मण, फिर क्षत्रिय, वैश्य और ज्ञान रहित शूद्र है। दूसरे भाग म भौतिकता का आनन्द लेना है तथा संसार के काम करने हैं। इसमें भी ब्राह्मण भौतिकता को छूता ही हुआ चला जायगा, उससे चिपकेगा नहीं। तीसरे भाग में तीनों ही वर्ण

भौतिकता को त्याग ज्ञान की उपासना में लगेंगे। चौथे भाग में ब्राह्मण अपने ज्ञान विज्ञान अनुभव से जगत् को लाभ पहुचायेगा। इस प्रकार वर्णाश्रम विधान में त्याग ही प्रधान है। जगद् में रहते हुये भी जगत् को माया से अलिप्त रहने का अभ्यास किया जाता है। सारा झगड़ा जगत् के भौतिक पदार्थों के ही लिये है। वर्णाश्रम व्यवस्था में त्याग को ही मान प्रतिष्ठा मिलती है, मान की इच्छा वाला त्यागी बने इस प्रकार एक बटा आठ = ही समाज संग्रही रहता है शेष ⅞ अपरिग्रही, फिर संघर्ष कैसा ? आज कल कुछ लोग "एक वर्ग" सब को एक सी दशा का घोष करते रहते हैं। सुनने मे तो यह घोष बड़े मीठे लगते हैं। सब निर्धन सधन, सब रोगी स्वस्थ, सब वृद्ध युवा, सब मूर्ख पण्डित हो जायेंगे। इन घोषकर्त्ताओं के विचार सबको उन्नति में बर बर करने का विचार नहीं, अवनति म बराबर लाना है। प्राकृतिक रूप मे सबकी बुद्धि, सबका पुरुषार्थ, सबकी मनोवृत्ति एक सी नहीं। यदि इन लोगों के कथनानुसार परिस्थिति को ही मनुष्य के भले बुरे होनेका कारण माना जाय तब भी तो भेद होगा ही। क्यों कि परिस्थितियाँ देशकाल को एक सी नहीं रहतीं

इसलिये बड़े बार बड़े बड़े समतावादी चार्वाक बुद्ध आदि ने यत्न किये थे पर मनुष्य समाज की भिन्नता ज्यों की त्यों रही। सबसे उग्र समतावादी इस्लाम है पर वह भी भाव कर रह गया और समता न कर सका। भौतिकता मे जैसी विषमता मुसलमानों म है वैसी और कहीं न मिलेगी इसलिये ऋषियों ने व्यावहारिक और भौतिक साधनों की भिन्नता रखते हुए आध्यात्मिक साम्यता का प्रतिपादन किया। आर्यधर्म भिन्न वको मानता हुआ भी समन्वयकारी है। नानात्व मे एकत्व दर्शन यही वेद का परम ज्ञान वेदान्त है। ऋषि दयानन्द ने ब्राह्मणादि के बालकों का वर्ण परिवर्तन हो जाने पर उन्हें दूसरे अपनी योग्यता वाले पिताओं को दे देने का विधान किया है। ताकि अयोग्य पुत्र योग्य पिता के यश सम्पत्ति आदि का अनुचित लाभ न उठा सकें। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता के ही फल को भोगे, यही इस नियम का प्रयोजन है। क़ानून म भावुकता भरी बातें नहीं चला करतीं।

आर्थिक वितरण में भी स्वामी जी यही भिन्नता रखते हैं। अर्थ क्या है ? जीवनोपयोगी वस्तुएँ अन्न, वस्त्र औषध, यान (सवारी) विलास सामग्री आदि अर्थ हैं। इनके उत्पादन के साधन भूमि यन्त्रादि है। उत्पादन के साधन यदि मूर्खों प्रमादियों पर हों तो वे उससे कोई लाभ नहीं उठा सकते। उत्पादित अर्थ पर बुद्धिमान व्यवसाय निपुण, व्यवहार कुशल वैश्य का अधिकार रहना चाहिए। संग्रही मनोवृत्ति वाला ही अर्थ को सुचारुरूप से संग्रह रख सकता है। स्वामी जी की योजना में यह काम वैश्य अपना कर्त्तव्य समझकर ही स्वतः कर देता है। दान द्वारा पदार्थ ले लेने और बलात् छीनने में यही भेद है कि एक में चित्त में उच्च वृत्ति आती है दूसरे में मन में ईर्षा द्वेष और क्षोभ का उदय होता है। वैदिकधर्म में पूँजी का स्वामित्व हानिकर नहीं, पूँजी का प्रयोग हानिकर या लाभ कर है। धनी अपने मान की रक्षार्थ अपनी संपत्ति को समाज के लिये देता था। इसलिये धनिक पूँजी के स्वामित्व सुख को प्राप्त करके दान के मान को भी प्राप्त कर लेता था। आज जो धन का संघर्ष है वह इसलिए है कि भौतिक आवश्यकतायें और विलासिता बढ़ गई हैं। पर वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था में जब ¼ भाग केवल योग क्षेम मात्र सम्पत्ति ले तो संघर्ष हो ही नहीं सकता। एक भावना ही की तो बात है। मेरी वस्तु मान कर फिर मेरी स्वीकृति से अपने काम में लाइये तो मेरा गौरव बढ़ेगा, मुझे सन्तोष होगा। मुझसे मेरी योग्यताके फल को छीन सबको बाँटेगा तो मेरा उत्साह गिरेगा उत्पादनमें आलस्यबढ़ेगा, योग्यलोग प्रयत्न नहीं करेंगे और करेंगे भी तो केवल राजदण्ड द्वारा। और दण्ड तथा केवल क़ानूनों से हुआ काम मानववृत्ति को गिरावेगा। इसलिये जन्म से ही संस्कारों और शिक्षा के द्वारा त्याग सेवा परोपकार का अभ्यास कराकर पूँजी का विष (स्वार्थीय उपयोग) दूर किया जाना ही ठीक है। स्वामी जी की ये पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैः—

"जब तक एकमत, एक हानिलाभ एक सुख दुःख परस्पर न मानें तबतक उन्नति होना कठिन है।" स. प्र. पूरे राष्ट्र का हानि लाभ सुख दुख एक होना क्या यह भाव "वर्ग वाद"से ऊँचा नहीं है ? यह केवल श्रद्धा और उच्चकोटि की आध्यात्मिक भावना को जाग्रत करने से ही होगा जिसका उपदेश वेद में है।

लुप्त वैदिक कर्मकाण्ड

[लेखक—श्री हरिदत्त शास्त्री एम० ए० मुख्याधिष्ठाता—महाविद्यालय ज्वालापुर)

कुछ समय हुआ मैंने 'कर्मकांड क्रन्दन' शीर्षक एक नोट "आर्यमित्र" के एप्रिल मास सन् १६४८ के अङ्क में लिखा था। उसके विषय में आर्यसमाज बीसलपुर के मन्त्री श्री पूर्णानन्द जी ने ता० ६ मई १६४८ के "आर्यमित्र" में लिखा था कि— 'उक्त सज्जन यदि पाक यज्ञ' आदि के विषय में कुछ लिखने की कृपा करें तो अत्युत्तम हो इत्यादि, पर मैं समयाभाव से कुछ न लिख सका। आज पुनः उस ही विषय को उठा रहा हूँ—अस्तु सुनिए आर्यसमाज ने जो वर्तमान कर्मकाड समझ रक्खा है वह यह है कि स्वस्तिवाचन शान्ति प्रकरण का पाठ किया और हवन कर दिया हवन में भी कतिपय महानुभाव यही समझते है कि यदि श्री स्वामी जी ने जो लिखा है व जितना लिखा है उससे न कम करो न ज्यादह। मै यह नहीं मानता, श्री स्वामी जो ने तो केवल हमारी आंखें खोली है—उन्होंने एक ज्ञानदीपक हमें सौंपा है—यह नही कि हम उस ज्ञानदीपक पर काली चिमनी चढ़ाकर उसका प्रकाश विस्तृत न करें तथा अन्धानुकरण या गुरुडम या कट्टर पन्थ जिसका खडन ही स्वामी जी के जीवन का प्रधान उद्देश्य था उसमें ही पड़े रहें, न यही होना चाहिये। मूल मार्ग जिसे महर्षि मूलशङ्कर ने बतलाया है उसे छोड़ ही दें। अतः उस उतने भाग को लेते हुए यदि हम कुछ तदनुकूल मन्त्रों को हवन या यज्ञों में और भी समाविष्ट कर सकते है तो कोई हानि नहीं, । तब भी हम श्री स्वामी जी के मतानुयायी या ऋषि भक्त ही रहेंगे ऋषि-द्रोही नहीं। इसकी पूर्ति हमें वेदों से ही करनी होगी। तथा भले ही उन यज्ञों के नाम आप अपने चलकर परिवर्तित करदें पर सम्प्रति तो उन्हे ही लेकर चलना उचित होगा।

आर्य जगत् जानता है कि सत्यनारायण की कथा को Replace करने के लिए आर्यसमाज में दो सत्यनारायण की कथाएँ प्रचलित हैं एक तो मैंने श्री सुहृद्वर प० विश्वश्रवा जी की देखी है। दूसरी किन्हीं बिहारी पण्डित की बनाई हुई



लेखक

है। इसी प्रकार हमारे मान्य सुहृद्वर प० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने 'वेद सप्ताह' के लिये एक 'वेद कथा' लिखी है—जो कुछ और बढ़ा दी जाय तो 'भागवत सप्ताह' का स्थान ले सकती है। यदि आप किसी को पैयजामा पहनने से हटाना चाहते हैं तो उसके लिये आपको धोती देनी होगी, जो कि 'आर्यवेष' है आप धोती पहनने को दें नहीं तथा पायजामा छुडाना चाहे तो यह कैसे हो सकता है। वह व्यक्ति नंगा कैसे रहना पसन्द

करेगा। फल यह होगा कि वह पुराना अन्यायवेष पार याग न करगा अत हम पंचआमा छु ने क लिय धोतियाँ मिलों मे तैयार कराना ही होगा, स यनारायण की 'आय कथा' अधिक प्रचार नहा पा सकी उसका कारण यह है कि उसमें रोच कता और सरलता नहो है, जैसी जनता है वैसा ही आपका उसकी योग्यतानुरूप पदार्थ प्रस्तुत करना होगा। हम रो स यनारायण कथा में घटा, घड़ियाल, पजीरी कले को फलो, दक्षिणा भी नहीं मिलती, न लीलावती, कलावती ही आती है फिर कथा रोचक कसे हो, अत 'गुडजिह्विका न्याय" तथा 'यत्नानुरूप बलिन्याय' से इन कमियों का भी दूर करद तो वह प्रचलित हो जायगी यह पूर्ण आशा है।

पाक यज्ञ

मीमांसा शास्त्र में पाक यज्ञ के सातभेद किये है। 'पाक यज्ञ' उसे कहते है जिस यज्ञ में अग्नि पकस्थाली पात्रादि का उपयोग किया जाय। वर्तमान पजीरी या हलुआ आदि एक पाक यज्ञ का ही स्वरूप है। शास्त्रोक्त पाकयज्ञों के सात भेद निम्नलिखित हैं—

१—औपासन होम, २—वैश्वदेव, ३—पावण ४—अष्टका, ५—मासश्राद्ध, ६ सर्पबलि और ७—ईशानबलि। इसी प्रकार १४ प्रकार के श्रौतयज्ञ होते हैं —

जो कि दो विभागो में विभक्त हैं—हविर्यज्ञ, और सोमयज्ञ। प्रत्येक ७-७ सात सात प्रकार का है— १—अग्न्याधान। २—अग्निहोत्र। ३—दर्श पूर्णमास। ४—आग्रहायण। ५—चातुर्मास्य। ६ निरूढ पशुबन्ध, ७ सौत्रामणि। यह सातो यज्ञ शुवन चरु पानी पुरोडाश, या पात्रद्वारा सम्पन्न होत है अत "हविर्यज्ञ' कहाते हैं। सोमयज्ञ के ७ सात भेद निम्नलिखित हैं—

१—अग्निष्टोम। २—अत्यग्निष्टोम। ३—उकथ्य। ४ षोडशी। ५—वाजपेय ३—अतिरात्र। और ७—अप्तोर्याम। इन सातों मे सोमलता सम्पादित होकर उसका विशेष रूप से होता है अतः यह "सोमयाग" नाम से पुकारे जाते हैं। यहाँ यह भी जान लेना चाहिये कि हम यही समझते हैं कि हवन केवल घृत या सामग्री से ही होता है पर ऐसा नहीं, केवल समिधाओ तथा केवल जल से भी हवन हो सकता है। जैसा कि— 'तदनन्तर श्रुतित्वो रहति सम्परिष्वक्त प्रश्ननिरूपणाभ्याम्" इस वेदान्त सूत्र में न्याय शास्त्र में एवं मनुस्मृति में ब्रह्मचारी को यदि घी न मिले तथा अरण्य में वास करता हो तब नैत्यिक होम कैसे करे—इस प्रश्न का उत्तर प्रदान करते हुए लिखा है। इन चौदह श्रौतयज्ञ के विवरण आश्वलायन, लाट्यायन द्राह्यायण आदि श्रौतसूत्रों में मिलता है। इसी प्रकार ५ महायज्ञ अर्थात्— देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, मनुष्य यज्ञ, जिनका विशेष विवरण पंच महायज्ञ विधि में श्री स्वामी जी ने किया है— भी जानने योग्य हैं। उक्त १४ श्रौतयज्ञ ७ पाकयज्ञ, ५ महायज्ञ तथा १६ संस्कार इन सबको मिलाकर कुल ४२ कर्म मनुष्य को करने चाहिये। १६ संस्कार कौन २ से हैं इसमें भी विवाद है—कुछ व्यक्ति—

१ गर्भाधान, २—पुंसवन ३—सीमन्तोन्नयन् अर्थात् गर्भवती का केश संस्कार, ४—जात कर्म, ३—नामकरण, ६—निष्क्रमण, ७—अन्नप्राशन, ८—चूडाकरण, ९—उपनयन, १०—वेदाध्ययन के समय महानाम्नाव्रत, ११—महाव्रत, १२—उपनिषद् व्रत, १३—गोदान व्रत, १४—समावर्तन, १५—विवाह,, १६ -अन्त्येष्टि। सोलह संस्कारों को मानते हैं। पर इटावा वाले पं० भीमसेन जी ने उक्त १० वें ११ वे १२ व का जगह कर्णवेध, वेदारम्भ और आवसथ्याधान यह तीन माने हैं। तथा अन्त्येष्टि की जगह श्रौताधान को मानकर १६ सोलह संस्कार की पूर्ति की है। इस प्रकार कुल सब मिलाकर ४२ संस्कार करने उचित हैं।

गौतम मुनि निष्क्रमण और अन्त्येष्टि को न मान कर केवल ४० संस्कार ही मानते हैं। इन संस्कारों के द्वारा हमें अपना शरीर ब्राह्मण शरीर बनाना है जैसा कि "सत्यार्थ प्रकाश" में—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

इस श्लोक की व्याख्या करते हुये ऋषि ने लिखा है कि—"यज्ञ अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या विज्ञान दि—यज्ञों के सेवन से इस शरीर को ब्राह्मी अर्थात् वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधार रूप ब्राह्मण का शरीर किया जाता है। इतने साधनों के बिना ब्राह्मण शरीर नहीं बन सकता।" इसका भाव यह है कि यहाँ ऋषि ने हमे एक और दृष्टि दी वह यह कि होम का अर्थ केवल हवन अर्थात् घी सामग्री का अग्नि में प्रक्षेप ही नहीं किन्तु सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग भी एक होम है। यथा यज्ञ नाम शिल्पविद्या का भी है—क्योंकि बिना अग्नि के लोहे का उपयोग नहीं होता अत. अग्निष्टोम का अर्थ अग्नि का शिल्पविद्या में सदुपयोग है इतना ही नहीं किंतु वर्तमान विज्ञानोन्नति भी अग्निष्टोम ही है। जब यह सब वस्तुएँ एकत्रित हो जायँगी—तब वह व्यक्ति सच्चा परमेश्वर का भक्त कहाने योग्य हो सकता अगली बार हम इन ४२ प्रकार के यज्ञों में जो विशेष प्रचलित व परिज्ञान नहीं है उनकी क्रम से एक एक की व्याख्या करेंगे। आशा है पाठक वृन्द यज्ञों की ओर और भी अधिक प्रवृत्त होंगे। हमने "उपदेशक सम्मेलन" लखनऊ पर 'वैश्वानर याग' रचाया था। पर उसकी पद्धति प्रकाशित नहीं हो सकी, उस पर भी पुनः प्रकाश डालेंगे।



आदर्श वैदिक विवाह

१२ अक्तूबर को लखनऊ मे श्री केशरराम जी नारङ्ग की आयुष्मती कन्या कुमारी स्वर्णलता का विवाह पंजाब आ० प्र० सभा के सुप्रसिद्ध उपप्रधान स्वर्गीय रायसाहब अमृतराय जी के प्रपौत्र तथा रविवर्मा स्टीलवर्क्स के मालिक अर्जुनदेव विद्यालंकार के पुत्र श्री विनयकुमार बी० ए० के साथ वैदिकरीति से सम्पन्न हुआ। विवाह संस्कार आर्यजगत के सुप्रसिद्ध नेता श्री पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री ने कराया। आ० प्र० सभा के कार्यकर्त्ता प्रधान श्री मदनमोहन जी सेठ जज, पं० रामदत्त शुक्ल मन्त्री, पं० धर्मपाल विद्यालंकार स० मन्त्री, पं० भृगुदत्त जी तिवारी इस समारोह में सम्मिलित हुए। पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री की वैदिक गृहस्थ के आदर्श की सामाजिक व्याख्या अत्यन्त सुन्दर और प्रभाव जनक थी। कन्या पक्ष तथा वरपक्ष दोनों की ओर से ५००), ५०० दान दिया गया जिसमें १५०) आ० प्र० सभा को प्राप्त हुआ। दोनों परिवार आर्य परिवार हैं, वर वधू चिरायु हों।

ऋषि दयानन्द कृत वेद भाष्य की स्थिति

[लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, अकमतगढ़ पैलेस बनारस,]

आज हम आर्य समाज के लिये एक अत्यन्त महत्व पूर्ण पत्र का प्रकाशन कर रहे है इस पत्र से ऋषि दयानन्द कृत वेद भाष्य की वास्तविक स्थिति का पूरा पूरा ज्ञान होता है। वैदिक यन्त्रालय मे छपे ऋग्वेद भाष्य की ६ जिल्दें (अर्थात्) सब भागों के मुख पृष्ठ (टाईटल) पर सभी संस्करणों में बराबर (प्रत्येक भाग पर) निम्न प्रकार छपता चला आ रहा है।

"इस भाष्य की भाषा को पंडितों ने बनाई, और संस्कृत को भी उन्होंने शोधा है'। ॥

इन शब्दों से भी स्थिति स्पष्ट नहीं होती तथा कई प्रकार की आशंकाएं उठती हैं।

यह पत्र महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज के शिष्य ब्रह्मचारी रामानन्द जी (जो पीछे सन्यास आश्रम में आकर रामानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए) के हाथ का लिखा हुआ है। यह रामानन्द ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द के साथ लेखक के रूप मे कई वर्षों तक रहे। मृत्यु के अंतिम समय में भी यह श्री महाराज की उपचर्या मे थे। इन का लेख बहुत अच्छा था। यह अलीगढ़ जिले म अतरौली के पास के रहने वाले थे। ऋषि भक्त महाशय मामराज जी के द्वारा हमें असली पत्र प्राप्त हुआ है। जो आर्य समाज खतौली जिला मुजफ्फर नगर (यू० पी०) के सभासद हैं। जिन्होंने अनेक वर्षों घोर परिश्रम और कष्ट उठा कर भारत के भिन्न भिन्न नगरों और स्थानों से ऋषि के पत्र और विज्ञापनादि संग्रहीत किये थे और जो लाहौर मे रामलाल कपूर ट्रस्ट के द्वारा प्रसिद्ध विद्वान् श्री पण्डित भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कालर द्वारा सम्पादित ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन नामक पुस्तक में छपा हुआ है। यत पत्र के फोटो (ब्लाक) का इस समय प्रबंध होना कठिन है, अत. हम उस पत्र की ही छाप रहे हैं।

यह पत्र ऋषि दयानन्द के निधन के लगभग दो मास पीछे का लिखा हुआ है जो श्री पंडित मोहन लाल विष्णु लाल पण्ड्या मन्त्री परोपकारिणी सभा के नाम उनके पूछने पर लिखा गया था। पत्र निम्न प्रकार है:—

श्री युत माननीया ऽनेका शुभ गुणालङ्कृत ब्रह्म कर्म समर्थ श्री मत्पण्डितवर्य मोहनलाल पण्ड्या ऽभिधेयेष्वितो रामानन्द ब्रह्मचारिणो ऽनेकधा प्रणतयः समुल्लसन्तुतराम् इति।

भगवन् आप ने जो मुझे श्री युत परमहंस परिव्राजका ऽऽचार्यवर्य्य श्री १०८ श्री मद्दयानन्द सरस्वती जी कृत ऋग्वेदादि भाष्य के विषयों की परीक्षा करके श्री मती परोपकारिणी सभा में निवेदन करने के लिये (एक साराश) बनाने को प्रेरणा की थी, सो आप की आज्ञानुसार उसको बना कर आप की सेवा में समर्पित करता हूँ अवलोकन कीजियेगा।

इत्यलं प्रशंसनीय बुद्धिमद्वर्य्येषु

मिति पौषकृष्ण ३ रवि सम्वत् १९४०

ऋग्वेद भाष्य

श्रीयुत परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य्य श्री १०८ श्री मद्दयानन्द सरस्वती जी कृत ऋग्वेद भाष्य की व्यवस्था निम्नलिखित परिमाणों जानना चाहिये

अर्थात्

ऋग्वेद का भाष्य १ मण्डल के आरम्भ से ७ मंडल के ६२ वें सूक्त के २ मंत्र तक रचा गया।

१ मंडल के ८६ सूक्त के ५ मंत्र तक मुद्रित हो चुका अर्थात् ५० + ५१ अंक तक।

१ मंडल के ८६ सूक्त के १ मंत्र ६१ सूक्त ३ मंत्र तक की शुद्ध प्रति छपने में शेष मुन्शी समर्थ दान जी के पास वैदिक यंत्रालय प्रयाग में है। प्रथम मंडल के ६१ सूक्त के ४ मन्त्र से १ मंडल के ११४ वें सूक्त के ५ वे मंत्र तक की शुद्ध प्रति लिखी हुई छापने योग्य है

१ मंडल के ११४ सूक्त के ६ मन्त्र से १ प्रथम मंडल के १२४ सूक्त के १२ मन्त्र तक की भाषा बनी हुई है।

१ मंडलके मंत्र से १ मंडल के .. ..सूक्त की समाप्ति पर्यन्त की भाषा पंडित ज्वालादत्त इस भाषा बनाने के लिये वैदिक यंत्रालय प्रयाग में है।

१ मंडल के १४४ वें सूक्त से ७ मंडल के ६२ वें सूक्त के २ मंत्र तक का भाष्य अशुद्ध संस्कृत में बना हुआ है।

१ मंडल के ६१ वें सूक्त ५ वें मंत्र से १ मंडल के ११४ वें सूक्त के ५ वें मंत्र के ऋग्वेद भाष्य के रद्दी पन्ने हैं। अर्थात् शुद्ध प्रति हो गई है।

यजुर्वेद भाष्य

यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण हो गया अर्थात् ४० वे अध्याय की समाप्ति पर्यन्त रचा। १५ वे अध्याय के ११ वे मंत्र तक का भाष्य मुद्रित हो चुका अर्थात् ५० और ५१ अंक तक।

१५ वें अध्याय के १२ वें मन्त्र से लेकर २१ वें मन्त्र तक की शुद्ध प्रति छपने मे शेष मुन्शी समर्थदान जी के पास वैदिक यंत्रालय प्रयाग में है। १५ वें अध्याय के २२ वे मन्त्र से २३ वे अध्याय के ४८ मन्त्र तक छपने योग्य शुद्ध प्रति लिखी हुई हैं।

२३ वें अध्याय के ५० वें मंत्र की भाषा बनी हुई शुद्ध प्रति मे लिखने योग्य है।

२३ वें अध्याय के ५१ वें मंत्र से ६५ मन्त्र तक अर्थात् अध्याय की समाप्ति पर्यन्त की भाषा नहीं बनी।

२४ वे अध्याय······ से अध्याय ··तक भाष्य भाषा बनाने के लिये पंडित ज्वालादत्त जी के पास वैदिक यंत्रालय प्रयाग में है।

२७ वें अध्याय के आरम्भ से ४० वें अध्याय की समाप्ति पर्यन्त का अशुद्ध संस्कृत भाष्य बना हुआ है। अर्थात् बिना शोधी संस्कृत है।

१३ वें अध्याय के २१ वें मन्त्र से २३ वें अध्याय के ४८ वें मन्त्र तक के रद्दी पन्ने हैं अर्थात् शुद्ध प्रति हो गई।

इस पत्र से स्पष्ट विदित हो जाता है कि:—

(१) ऋग्वेद भाष्यके प्रथम मण्डल के ११४ वें सूक्त से लेकर सातवें मण्डलके ६२ वें सूक्तके २ मन्त्र तक (जहां तक कि ऋग्वेद भाष्य महर्षि द्वारा संस्कृत में बना) की भाषा ऋषि की मृत्यु के पीछे बनाई गई। दूसरे शब्दों में ४७ सूक्त प्रथम मण्डल के तथा दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा ये पाँच मण्डल पूरे और सातवें मण्डल के ६७ सूक्त २ मन्त्र तक अर्थात् लगभग ६ मण्डल की भाषा ऋषि की मृत्यु के पीछे पण्डितों ने बनाई।

(२) इन उपर्युक्त ६ मण्डल की संस्कृत भी उस समय तक शुद्ध नहीं हो पाई थी, इसे भी पण्डित ज्वाला दत्तजी आदि पण्डितों ने ही शुद्ध किया।

(३) यजुर्वेद भाष्य में भी २३ वें अध्याय के १५ मन्त्र तथा अध्याय २४ से ४० तक पूरे १७ अध्याय की भाषा भी ऋषि की मृत्यु के पश्चात् पण्डितों द्वारा ही बनाई गई।

(४) इन उपर्युक्त १७ अध्याय तथा १५ मन्त्रों की संस्कृत को भी पण्डितों ने शोधा है। अर्थात् बिना शोधी संस्कृत थी।

(५) सम्पूर्ण यजुर्वेद तथा ऋग्वेद के सातवें मण्डल के ६७ वें सूक्त के २ मन्त्र तक का भाष्य बन चुका था।

(६) भाषा भी पण्डित ज्वालादत्त जी ने बनाई, संस्कृत के शोधने में उनका मुख्य हाथ रहा।

उपर्युक्त सारे लेख से स्पष्ट है कि वेद-भाष्य की यह स्थिति नहीं हो सकती, जो सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकादि की है। क्योंकि ऋषि दयानन्द के जीवन काल मे ही सत्यार्थ प्रकाश ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि लगभग सभी ग्रन्थ छप चुके थे, यहाँ तक कि कई एक के तो द्वितीय संशोधित संस्करण प्रकाशित भी हो चुके थे, पर आर्य जाति के दुर्भाग्य से वेद-भाष्य की यह स्थिति नहीं हो पाई। इसकी क्या स्थिति है। यह स्वामी

(शेष पृष्ठ २३ पर)

आर्य राष्ट्र ?

[ले० श्री डा० सूर्यदेव शर्मा सि० शास्त्री, एम० ए० एल० टी० डी० लिट, अजमेर]

वर्त्तमान काल में यह प्रश्न विशेष रूप से महत्व पूर्ण हो गया है कि आर्य्यसमाज का देश की प्रचलित राजनीति से क्या सम्बन्ध होना चाहिये। भारत के स्वाधीनता प्राप्त करने से पूर्व इस प्रश्न का उत्तर बहुत सरल था कि आर्य्यसमाज राजनीति में भाग ले परन्तु अब स्थिति कुछ और हो है। देश स्वाधीनता को प्राप्त कर चुका है, परन्तु अब भी हम क्या यह कह सकते है कि आर्य्यसमाज का राजनीति में भाग लेना चाहिये? अब देश के हर एक आदमी को कई अधिकार मिल गये हैं, इसी प्रकार आर्य्यसमाजो भी उन अधिकारों को अपने पास रखकर यदि सोचें तो वे भी कहेंगे कि आर्य्य समाज राजनीति में भाग लेवे तो उत्तम और हितकर है।

आज आर्य्यसमाज के विद्वान, उपदेशक, लेखक, वक्ता और अधिकांश नवयुवक कार्यकर्त्ता इस पक्ष में हैं कि आर्य्यसमाज को पूरे वेग के साथ राजनीति में भाग लेना चाहिये। क्योंकि वे समझते हैं कि 'राजनीति ही आर्य-राष्ट्र के लिये आवश्यक है" है बिना "आर्य राष्ट्र" बने आर्य्यसमाज अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता

आर्य्यसमाज एक "धार्मिक संस्था" है, यदि इस विचार में धर्म का अर्थ "मजहब" समझा जाय, तो यह किसी भी विद्वान विचारशील व्यक्ति द्वारा स्वीकृत नहीं हो सकता। "स्मार्त तथा दार्शनिक" साहित्य में यह शब्द विस्तृत अर्थ रखता है। भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के इतिहास में "धर्म" शब्द के धार्मिक रूप में सम्पूर्ण राजनीति तत्वों के आचरण रूप का समावेश हो जाता है। जिस तरह से अलग २ धर्मों को अलग २ राजनीतिक पुस्तकें हैं, जैसे कम्यूनिस्टों की "पूँजी" और नाजी लोगों की "मेरा युद्ध" जिसको हिटलर ने भी अपना राजनैतिक ग्रंथ माना था। इसी प्रकार "सत्यार्थ प्रकाश" आर्यसामाजिक नेतृत्व की पुस्तक है।

आर्य्यसमाज और वैदिक धर्म एक वस्तु नहीं, इनमें पोषक और पोष्य का सम्बन्ध है। आर्य्यसमाज कोई मजहब या मत नहीं, यह तो स्पष्ट रूप से ऋषि दयानन्दजी ने सत्यार्थ प्रकाश में इसको "आर्य राष्ट्र" कहा है। अंग्रेजी अनुवाद करते हुए इसे (Aryan State) के अर्थों में हम समझ सकते हैं। इस आर्य-राष्ट्र के "आधार मूल विधान" के रूप में आर्य्यसमाज के दस नियम हैं। हमारे राष्ट्र के तीन प्रबन्धक विभाग हैं, जो स्वामीजी ने छठे समुल्लास में दर्शाये ही हैं कि आर्य-राष्ट्र में तीन प्रकार की सभाएं हों। (१) विद्यार्य-सभा, (२) धर्मार्य सभा, (३) राजार्य-सभा। इस तरह से विद्यार्य सभा, धर्मार्यसभा और राजार्य सभा, इन तीन तत्वों के समुच्चय से नियन्त्रित राष्ट्र आर्यसमाज और 'आर्य राष्ट्र" बन सकता है। वर्त्तमान समय का आर्यसमाज, आर्य राष्ट्र के लिये बीज रूप में है अथवा उस राष्ट्र के लिये मूल स्थान है।

ऋषि ने आर्यसमाज को सत्यार्थ प्रकाश में मजहबी रूप नहीं दिया क्योंकि मजहबी संस्था कभी भी चिरायु नहीं रह सकती और न राजनीति में भाग ले सकती है। यदि लेती है तो वह कुछ समय तक टिके रहेगी, उदाहरणार्थ पाकिस्तान और जैन, बौद्ध साम्राज्य हमारे स्थानिक आर्य्यसमाज गुरुकुलों, स्कूलों, पाठशालाओं और कालिजों आदि शिक्षा संस्थाओं को चलाते हैं, तो ये आर्य राष्ट्र के विद्यार्य सभा के कार्यों को करते ।

आर्यसमाज धर्म के रूप में समन्वयात्मक रूप है। यह धर्म के अन्दर शास्त्रार्थ ही करता है, शस्त्रार्थ नहीं। यह कोई साम्प्रदायिक संस्था नहीं, जिससे दूसरे धर्म वाले

धर्म को निगाह म रखकर इससे जलें। हमारे वेद राजनीति के मन्त्रों स भरे पड़े हैं। स्थान २ पर राष्ट्रीय चिन्तन किये गये हैं। राम और कृष्ण आर्य राजनीति के प्रतीक हैं। स्मृति ग्रन्थों के अध्यायों पर अध्याय राजनीति के लिये अर्पित हैं। राजनैतिक ग्रन्थों मे शुक्र नीति, विदुर नीति, मह भारत शान्ति पर्व और कौटिल्य अर्थ शास्त्र आदि हैं जिनकी साक्षी सत्यार्थ प्रकाश का छठा समुल्लास दे रहा है। धर्म राजनीति और साहित्य राज नीति सब मिले पड़े हैं। इतने सब पर भी 'विश्वासात्मक मजहबों" को ही जानने वाले भारतीय "आचरणात्मक आर्य धर्म" की आत्मा को न पहिचान कर हमारे कुछ आर्यसमाजी भाई कहते हैं कि आर्यसमाज राजनीति म भाग न ले, अयथार्थ नहीं तो क्या है ?

आर्यसमाज आर्य-राष्ट्र की स्थापना करने वाला है। जिसके द्वारा प्रथम भारत आर्य राष्ट्र रूप म विकसित हो। फिर वही चक्रवर्ती रूप स र म धर्म साम्राज्य को उत्पन्न करे जिसका आधार मह न नतक "नियम" हो। अथर्व वेद के पृथवी सूक्त के प्रथम मन्त्र "सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति" का निर्देश भी इधर ही है।

इसलिये मेरा तो विचार है कि सबको आर्यसमाज के वास्तविक स्वरूप का ही प्रचार करना चाहिये। यह काई मजहब नहीं, परन्तु आर्य राष्ट्र के रूपम "आन्दोलन" है। हम ब्रह्म और क्षत्र को भी मिलाकर भारत म आर्य राष्ट्र की उत्पत्ति के लिये "पुण्य भूमि" पैदा करना चाहिये। देश के आर्यसमाजियों का मिलकर तन, मन धन से आर्य संस्कृति तथा आर्य राष्ट्र के उद्धार के लिये आन्दोलन तथा प्रयत्न करना चाहिये।



(पृष्ठ २१ का शेष)

रामानन्द जी के उपर्युक्त पत्र से स्पष्ट विदित हो जाता है।

सारभूत यह है कि ऋग्वेद भाष्य के ६ भागों में से ७ भागों की भाषा भी ऋषि की मृत्यु के पश्चात ही पण्डितों ने बनाई और इन ७ भागों की संस्कृत को भी पीछे ज्वालादत्तजा आदि पण्डितों ने ही ऋषि के जीवन काल के पीछे शोधा है।

इसी प्रकार यजुर्वेद भाष्य के ५ भागों में से आधा २॥ भाग की भाषा भी ऋषि के जीवन काल से पीछे पण्डितों द्वारा बनी, और संस्कृत को भी ज्वालादत्त जी आदि पण्डितों ने ही शोधा है।

वेदभाष्य के पहिले भागों की भाषा भी पण्डितों ने बनाई, और संस्कृत को भी पण्डित ने शोधा है। जैसा कि ऋग्वेद भाष्य के सब भागों पर सदा से छपता चला आ रहा है।

यह भी ध्यान रहे कि इन्हीं पण्डित ज्वालादत्त जी परोपकारिणी सभा वो स्वामी जी के ग्रन्थों में गड़बड़ डालने के कारण ही ५०) रु० दण्ड दिया गया था।

विज्ञ पाठक ! ऋषि दयानन्द का भाष्य पढ़ते समय उन उपर्युक्त सारी परिस्थिति जानकर ही पढ़े पढ़ावेंगे, तभी उन्हें यथार्थज्ञान हो सकता है। जो इस बात पर ध्यान नहीं देंगे, उन्हें भाष्य में कहीं २ सन्देह वा कठिनाइयों का सामना करना होगा, और निश्चय ही यथार्थ बोध न होगा।

हमारा यह लेख ऋषि भाष्य की यथार्थ स्थिति को आर्य जनता के लिये अवगत कराने में लिखा है। यह हमे पूर्ण विश्वास है। आशा है विज्ञ महानुभाव इससे अवश्य लाभ उठावेंगे।



मानव हित प्राण दिये तुम ने!

म्रियमाण अति का त्राण किया,
जन जनता का कल्याण किया।
नवराष्ट्र देश निर्माण किया ॥
युग युग के गीत सुनाये तुम ने।
मानव हित प्राण दिये तुम ने ॥

कोटानुकोटि की शक्ति लिये,
अगणित हृदयों की भक्ति लिये।
असहायों की अनुरक्ति लिये ॥
हंस हंस विष घूंट पिये तुम ने।
मानव हित प्राण दिये तुम ने ॥

तुम शांति क्रान्ति अवतार हुये,
अरिदल को प्रबल प्रहार हुये।
नय, विनय, स्नेह साकार हुये ॥
जग को वरदान दिये तुम ने।
मानव हेतु प्राण दिये तुम ने ॥

स्वातन्त्र सूर्य अब उदय हुआ,
भारत का पुनि अभ्युदय हुआ।
शुभ सत्य धर्म का विजय हुआ ॥
पग पग पर पुण्य लिये तुम ने।
मानव हित प्राण दिये तुम ने ॥

—हरिशङ्कर शर्मा



'राष्ट्र-पितामह दयानन्द'

[लेखक -प्रो० किशोरीलाल गुप्त एम- ए. साहित्य वाचस्पति, सिद्धान्तशास्त्री, काव्यतीर्थ]

अब से पचास वर्ष पूर्व की बात है। महारानी विक्टोरिया का राज था। गदर को समाप्त हुए लगभग चालीस वर्ष व्यतीत हो चुके थे। उस समय जो गर्दनें ऊँची उठी थीं, सबकी सब नीची दबोची जा चुकी थीं। ब्रिटिश-शासन का सूर्य भारतीय आकाश में अपनी मस्तानी चाल से आरोहण कर रहा था। चहुँओर गोरा-शाही का आतङ्क छाया हुआ था। किसकी मजाल जो उफ़ करता? हिन्दू और मुसलमान अंग्रेजी शासन के गुण-गान में बाजी लगाते थे। हमारे भोले सनातनी पण्डित तो विक्टोरिया को रावण की पतोहू सुलोचना का साक्षात् अवतार बताते थे, और कहते थे कि भगवान राम ने उसके पतिव्रत धर्म से प्रसन्न होकर उसे भारत में शासन करने का वरदान दिया था। जब स्वयं भगवान ही उसके शासन की अटल कीली गाड़ चुके, तब फिर कौन नास्तिक होगा जो उनके देव-कृत कार्य को अकृत करने की स्वप्न में भी सोचे?

मुसलमानों की वास्तविक दशा बड़ी दयनीय थी। वे अत्यन्त विलासी हो चुके थे। उनमें जो थोड़े बहुत नवाबी रङ्ग ढङ्ग के थे, वे अपने हाथ से जूते तक पहनने में अपनी शान में बट्टा लगना समझते थे। बैठक में तकिया लगे क़ालीन पर बैठे-बैठे यदि थूकने की आवश्यकता होती, तो बाहर उठकर कौन जाय? वहीं पीक-दान चाहिये, और उसे उठाने के लिये दो-एक बरक़न्दाज़! गरीब मुसलमानों का वर्णन करना इस लेख का विषय नहीं। बस इतना ही कहा जा सकता है कि उनमें अनगिनत अवगुण घर कर गये थे। अज्ञान का तो उनके अन्दर घोर अन्धकार छाया हुआ था। ज्वारी, शराबी, कबाबी, वेश्या गामी, तीतर-बाज़, कबूतर-बाज़, और न जाने क्या क्या बाज़ वे बन चुके थे। फिर भी अकड़ उनमें नवाब आसिफ़ुद्दौला के चचा की सी थी। हिन्दुओं को वे अपना शिकार समझते थे। और हिन्दू भी शताब्दियों की दासता के मारे इतने भीरु बन चुके थे कि उनके सामने कनपुटी खुजाने तक का साहस न कर सकते थे।

ऐसी दयनीय दशा में अंग्रेज़ी लौह-शासन के अन्दर यह आवाज़ बुलन्द करनी कि "अच्छे-से अच्छे विदेशी शासन से बुरे से बुरा देशी शासन कहीं अच्छा है।' किसी नृसिंह, किसी शेर-नर, का ही काम हो सकता था। उस निर्भय, निरीह, निशङ्क, अदम्य आदर्श-महा-पुरुष ने अपनी दिव्य दृष्टि देश में चहुँओर फैलाई। उसे भारत मां के शरीर में दासी होने के अतिरिक्त एक नहीं असंख्य फोड़े दृष्टि गत हुए। किस-किस की मरहम पट्टी करता? न जाने कितने विषैले मवाद शरीर में उत्पन्न हो चुके थे। मूल कारणों की चिकित्सा किये बिना इतने भयङ्कर सन्निपात का शमन असम्भव था। वैदिक धर्म, वैदिक आचार, वैदिक संस्कृति का जुल्लाब देना अनिवार्य्य प्रतीत हुआ। जुल्लाब की दवाएँ भी बड़ी कड़वी थीं। पुरान, क़ुरानो, किरानी आदि सभी बन्धुओं को इकट्ठा करने, और निष्पक्षतापूर्ण सद्भावनाओं से प्रेरित हो सत्य-धर्म का निर्णय कर एक मत हो जाने का भागीरथ प्रयत्न किया। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक अनथक भ्रमण किया, सहस्रों व्याख्यान दिये, न जाने कितने शास्त्रार्थ किये; पुस्तकें लिखी, वेद-भाष्य में जुटे, किन्तु कृतघ्नों को कृतज्ञता-प्रकाशन से क्या मतलब? पत्थर बर्षाये; काले नाग द्वारा

प्राणान्त करना सोचा गया, पान में विष खिला कर प्राणान्त करने का प्रयत्न किया गया। तलवार के घाट उतारने के षडयन्त्र रचे गये और अन्त में वही दशा हुई जो राष्ट्र पिता महात्मा गांधी की।

गाँधी जी का कोई आन्दोलन—स्वदेशी, अछूतोद्धार, एकता सम्पादन, मादक द्रव्य निवारण, कुरीति निवारणादि में से एक भी ऐसा नहीं जिसके लिये महर्षि ने प्राणपण से प्रयत्न न किया हो। और महर्षि के स्वर्गारोहण के पश्चात् भी जो दुर्गम मार्ग आर्यसमाज ने साफ किया उससे देश का कौन कृतघ्न इन्कार करेगा? यदि सच पूछो तो यह कहने में भी संकोच नहीं किया जा सकता, कि औसत के लिहाज से किसी भी अन्य समाज या संस्था ने स्वराज्य के लेने में इतना त्याग, इतना बलिदान और इतनी तपस्या नहीं की, जितनी आर्यसमाज और उसके प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द ने की। महात्मा गांधी और उनकी कांग्रेस को मार्ग में इतने झाड़ झंखाड़, और इतनी दुर्गम घाटियां पार नहीं करनी पड़ीं जितनी महर्षि को और उनके अनुयाइयों को। आर्यसमाज ने सर्वदा निरीह भाव से देश सेवा की है। उसने स्वराज्य में उच्च पद पाने की कभी लालसा नहीं की, और न आज ही उसके लिये वह लालायित है। वह विशुद्ध भाव से राष्ट्र निर्माण के पावन कार्य में बाहर से ही शासकों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कर्तव्य पालन करना चाहता है। दो चार इने गिने आर्य बन्धु घुणाक्षर न्याय से शासन में पहुँच गये हैं उन्होंने भी अपने उच्च चरित्र से आर्यत्व की छाप लगाई है, इसे निष्पक्ष आलोचक चाहे मुख से न कहें हृदय से अवश्य अनुभव करते हैं।

माना कि येन केन प्रकारेण 'स्वराज" प्राप्त हो गया है किन्तु "सुराज" अभी कोसों दूर है। ऐसा जान पड़ता है कि महात्माजी के 'राम राज" का सुख स्वप्न कोरा स्वप्न मात्र ही रह गया है। उसे सच्चा कर दिखाना अभी शेष है। नेहरू गवर्नमेंट जो राष्ट्र पिता के पद चिन्हों पर चलने का दावा करती है भ्रष्टाचार रूपी महामारी को जो देश भर में व्याप्त हो गयी है आमूल शान्त नहीं कर सकती। स्वयं राष्ट्रपिता की झोली में भी इसके शमन की कोई अद्भुत औषधि नहीं। इसके लिये राष्ट्र पितामह की शरण लेनी होगी। उसके पास रामबाण व अचूक महौषधि विद्यमान है। वह है उसका सत्यार्थ प्रकाश और संस्कार-विधि। भ्रष्टाचार मिटाने के संस्कार गर्भाधान से प्रारम्भ होंगे। जिन लोगों ने मक्कारी, धोखबाजी, असत्य विचार, असत्य भाषण और असत्य क्रिया के विषैले रस को माता की घुट्टी के साथ पिया है वे जहाँ भी होंगे, और जब भी अवसर पायेंगे, अपना 'असली' रङ्ग लाये बिना न रहेंगे। "संस्कारात् प्रबला जाति" जब तक माता पिता और आचार्य, और साथ ही उच्च वर्ग के शासक स्वयं योगी, तपस्वी, कर्मठ और निरभिमान न बनेंगे, सुधार के सारे बाहरी प्रयत्न ऊसर में बीज के सदृश सिद्ध होंगे। महर्षि के नुस्खे आज के नुस्खे नहीं वे सहस्रों लाखों और करोड़ों वर्षों के अनुभूत और आजमूदा नुस्खे हैं। वे साम्प्रदायिक नहीं, सार्वभौम और सार्वकालीन हैं। पक्षपात छोड़ कर उनका सेवन करने से समस्त राष्ट्र रोगों का शर्तिया शमन होगा, इति ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।

—०—

—एकता का स्वरूप—

जब तक एक मत, एक हानि लाभ, एक सुख दुख परस्पर न माने तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता। ॥सत्यार्थप्रकाश १० समु० ॥

दो विचार धारायें

[लेखक— प्रो० मुंशीरामजी शर्मा एम. ए.]

इस समय देश में दो विचार धारायें चल रही है। दोनों का बलाबल भी अत्यन्त सतुलित अवस्था में है। इनमें से एक विचार धारा हमें परम्परा से प्राप्त हुई है जिसके साथ कोटि-कोटि हिन्दुओ के बलिदान सम्बद्ध हैं और दूसरी विचार धारा परकीयो के भारत प्रवेश के साथ उत्पन्न हुई है। जिसमें अनेक सन्तो की साधना सन्निहित है। मै आर्य हूँ, साथ ही साहित्यिक, अतः मेरा ममत्व इन दोनो विचार धाराओ के साथ जुडा हुआ है। एक ओर मेरा हृदय अपनी परम्परा से प्राप्त स्मृतियो को सामने लाते ही उमड पडता है तो दूसरी ओर सन्तो के अपूर्व कार्य को अनुभव करके भी वह श्रद्धा से उनके सामने झुक जाता है मुझे दोनो ओर अच्छाइयो दिखाई देती है।

प्रथम विचार धारा का सम्बन्ध हमारी महती परम्परा से है। जिस दिन से पुनीत उद्गीथ गान इस वसुन्धरा के निवासियो के कानो में पडा है, उस दिन से इस परम्परा का प्रवर्तन हुआ है। और यह आज तक अनेक ह्रास विकास, जय-पराजय, उत्कर्ष-अपकर्ष, आदि के संघर्षो को पार करती हुई चली आई है। प्राचीनता में सभवतः कोई भी अन्य जाति इसकी समता नही कर सकती। उत्थान और पतन के भीषण दृश्यो में भी यह अनुपम है और अपनी जीवनी शक्ति में तो यह एकदम अद्वितीय है। इस विचार धारा के केन्द्र बिन्दु में तो नही, पर उसकी शाखाओ में समय के अनुकूल अनेक परिवर्तन हुए हैं और उन परिवर्तनो से हम ने लाभ भी उठाया है। वेद और उसके आधार पर जिस मानवता विधायिनी संस्कृति का विकास हुआ वही इसके केन्द्र बिन्दु का मूल है। स्मृति, पुराण आदि इसकी शाखायें हैं। इस मूल और इन शाखाओ की रक्षा में आर्य जाति ने अद्वितीय एवं अद्भुत प्रयत्न किया है और अपने प्राणो की भी बाजी लगा दी है। इस मूल की मोहिनी ने ब्रह्मा से लेकर दयानन्द तक एक अनुपम शृखला में बद्ध अध्यात्म प्रधान महा प्राण मनीषियो को प्रभावित किया है जिनके मानस का बिन्दु बिन्दु और शरीर का कण कण इस परम्परा का पोषक रहा रहा है और बाग्वती वाणी द्वारा उसका व्याख्यान करता रहा है। केवल शीर्ष मनीषी ही नही, अनेक उद्भट क्षत्रिय शूरवीर अपने रक्त द्वारा, अनेक वैश्य अपना धन शक्ति द्वारा और अनेक शिल्पी, कर्मकार तथा श्रम जीवी अपनी विविध कलाओं एवं श्रम साध्य कार्य कलापो द्वारा इसका सिंचन, परिवर्धन एव रक्षण करते आये हैं। जब जब विदेशी आक्रान्ताओं ने हमारी इस परम्परा पर आघात किया है, तब तब समूची आर्य जाति ने बिना किसी भेदभाव के, अपने सबल हस्तो मे शस्त्र ग्रहण करके उनका सामना किया है। विदेशियो ने यहाँ आकर हमारे इस मोर्चे की जातीय एकता को काफी धक्का पहुँचाया है। इन विदेशियों में अंग्रेजो की विषैली कूटनीति अधिक कारगर हुई। आज हम स्वाधीन हैं, अंग्रेज की भेदभरी, विषाक्त छत्र छाया हमारे शिर से दूर हो चुकी है, क्या इस प्रभु प्रदत्त पावन बेला में हम जातीय एकता के महा मंत्र का जाप करेंगे? क्या हम अपनी उस महती परम्परा का सरक्षण करेंगे? क्या हम संस्कृति के निमल सौरभ सम्पन्न कमल को अपने अपने मानस में विकसित एव प्रफुल्लित करेंगे?

हमारी इस पुनीत परम्परा ने जिन मानवोपयोगी विधियों, संस्कारों, पर्वों, प्रथाओं और उत्सवों की आयोजना विकसित की वे अपने प्रभाव में इतनी व्यापक और आकर्षक थीं कि विदेशी आक्रान्ता भी उन से प्रभावित हुए बिना न रह सके। कुछ तो हमारे अन्दर ही मग्न हो गये जो न हुए वे हमारे होकर रहने लगे। कुछ तो हमारे ही हाड़, मांस थे, हमारे ही रक्त बिन्दु थे—विरोध कई बातों में रहा, पर व्यवहार में सब एक थे, और अगर एक तीसरी शक्ति न आ गई होती, तो हम सब एक होकर ही रहते। इसी तीसरी शक्ति ने हमें पृथक पृथक किया, उर्दू की अरबी प्रवृत्ति और पृथक सांस्कृतिक दृष्टिकोण उत्पन्न कर के इसने मुसलमानों को एक पृथक जाति घोषित किया और पाकिस्तान बनाकर न जाने कब तक के लिये हमारे ही अंग को हमसे दूर कर दिया। हमारी प्राचीन परम्परा पर यह अत्यन्त गहरी चोट थी।

मार्ग में आने वाली इन प्रबल बाधाओं को सहते हुए, कुचलते हुए, हम अभी तक अपनी संस्कृति की इस पावन परम्परा को अक्षुण्ण रखे हुए हैं। हम जब एक संस्कृति और एक भाषा का नारा लगाते हैं तो हमारे हृदय में छिपी जातीय एकता की भावना ही प्रस्फुटित हो उठती है। यह देश एक है, इसकी संस्कृति एक है और उस संस्कृति के मानने वाले, उसमें पालित पोषित हुए, हम सब भी एक हैं। जो हमें देश में बांटना चाहता है, उसकी प्रवृत्ति के टुकड़े हमें करने ही पड़ेंगे, जो हमारी संस्कृत वाहिनी भाषा को स्वीकार करने में आनाकानी करता है, वह हम सब का दुश्मन है, देश और जाति का दुश्मन है, उसके साथ हम एकता का अनुभव कैसे कर सकते हैं? वह हमारी एकता की लता पर कुठाराघात कर रहा है।

स्वाधीनता के लिये हमारा युद्ध लगभग एक सहस्राब्द से चल रहा है। इस दीर्घ काल में हमने एक मिनट के लिये भी परकीयों की अधीनता स्वीकार नहीं की। हम बराबर उनसे लोहा लेते रहे। परम दुर्धर्ष महान और महान वैभव सम्पन्न मुग़ल हमारी स्वातन्त्र्य भावना के आखेट बने। हमारी ही बलशाली भुजाओं ने उन्हें नतमस्तक ही नहीं विध्वस्त भी किया और किया आर्य आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिये, गो ब्राह्मण की प्रतिपालना के लिये, आर्य संस्कृति की रक्षा के लिये। हमें अपने इस अतीत पर अभिमान है। हम क्रांतिकारियों की पंक्ति में खड़े होकर तथा विश्व की वन्दनीय विभूति महात्मा गाँधी के सेनापतित्व में कांग्रेस के सैनिक बनकर जो अंग्रेज़ों के विरुद्ध लड़ते रहे, वह भी इसी महान लक्ष्य को सामने रखकर। कोई एक व्यक्ति, फिर वह चाहे इस समय किसी भी पद पर समासीन क्यों न हो, यह घमण्ड नहीं कर सकता कि वही अकेला इस युद्ध का सर्व सर्वा रहा है। न जाने कितनी ज्ञात एवं अज्ञात आहुतियाँ स्वाधीनता के इस समर-कुण्ड में पड़ी हैं, तब आज की यह सौभाग्य बेला देखने को मिली है।

यदि हम अतीत के साथ इस बलिदान शृंखला को जोड़ते हैं, जैसा प्रत्येक इतिहासज्ञ करेगा, तो हमें इस प्रथम विचार धारा को मान्यता देनी ही पड़ेगी फिर चाहे कोई भले ही इससे मुँह सिकोड़े या बुरा माने। एक एक हिन्दू के हृदय में, स्वार्थी तथा पद-मद-मत्त मानव पशुओं को छोड़कर, यह विचार धारा घर किये हुये है।

दूसरी विचार धारा, जैसा पहले ही लिखा जा चुका है, सन्तों की लोक प्रिय साधना से सम्बन्ध रखती है। मुहम्मद गोरी से पहले जितने विदेशी आक्रान्ता इस सोने की चिड़िया को लूटने आये, उनकी कृतियों का प्रभाव क्षण स्थायी रहा। पर गोरी के पश्चात् विदेशियों ने यहाँ बस कर राज्य भी करना चाहा और किया भी। स्वाधीनता प्रिय आर्य जाति के लिये उनका विरोध करना स्वाभाविक था। आत्म समर्पण करना तो हमने जाना ही नहीं। युद्ध हम करते रहे; पर परकीयों के

हाथ में धर्म परिवर्तन का एक विशेष अस्त्र आ गया और हमारा एक दूषित अंग उसका आखेट बन गया। हमने इसकी भी चिन्ता न की। वृक्ष की यदि एक लकड़ी शत्रु की कुल्हाड़ी का बेंट बनती है तो बने।

ये युद्ध चल ही रहे थे कि कुछ सन्त लोकाराधन, जनहित साधन, की भावना लेकर उठ खड़े हुये। इन्होने परकीय मनोवृत्ति वालों को भी झिड़का और रूढ़ि प्रेमी स्वकीयों को भी। कबीर और नानक इन सन्तो के अग्रगन्ता बने और इनके उपदेशों के कारण साधारण जन पारस्परिक प्रेम का पाठ पढ़ने लगे। कबीर की शिष्य परम्परा में अन्य कोई भी व्यक्ति ऐसा कर्मठ न निकला जो लोक मानस को प्रभावित करता, पर गुरु नानक के शिष्यों में बलिदानी एवं प्रभविष्णु, अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने पंजाब के हिन्दुओं मे जीवन की ज्योति जागृत रखी। कबीर और नानक के पश्चात् मुसलमानो में कुछ सूफ़ी फ़कीर जनता के व्यावहारिक पक्ष को लेकर दोहे चौपाइयो द्वारा हिन्दू मुसलिम एकता का प्रचार करने लगे। इन सब सन्तो के प्रभाव से सामान्य जनता राम एवं रहीम, कृष्ण एवं करीम, ईश्वर और खुदा में एकता का अनुभव करने लगी। हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के सुख में सुखी और दुख मे दुखी होने लगे। ऊपर के वर्ग में युद्ध बराबर चलता रहा; पर श्रमजीवी, कृषक और व्यापारी वर्ग आपस में हिल मिलकर रहते थे।

जो व्यक्ति हिन्दू से मुसलमान बने थे, वे अपने रीति रिवाज, चाल ढाल, रहन सहन सभी बातों में मुसलमान होते हुये भी हिन्दुवों जैसे ही थे होली और दिवाली मनाते थे; निकाह के साथ पंडितों से विवाह वे पढ़ाते थे; चोटी रखते थे और नाम भी हिन्दुओं के जैसे ही। भाषा भी उनकी वही होती थी जिसे उनके प्रदेश वाले हिन्दू बोलते थे। जो कट्टर मुसलमान थे, वे भी हिंदुओं के रीति रिवाजों से प्रभावित हो चुके थे। हिंदू भी मुसलमानो का अलिफ़ लैला पढ़ने लगे थे। काश्मीरी ब्राह्मण और कायस्थ तो फ़ारसी तथा अरबी में मुसलमानों के भी कान काटने वाले बन गये थे। यह परस्पर का अन्योन्य आदान प्रदान दोनों के लिये हितकर सिद्ध हुआ। रणजीतसिंह की सेना में अनेक मुसलमान सरदार थे जो बराबर प्रतिपक्षी मुसलमानों के साथ डटकर मोर्चा लेते रहे। हिन्दुओं ने भी मुसलमानों का सर्वदा साथ दिया और उनका विश्वास किया। दुर्गादास राठौर ने कासिम अली के हाथ औरंगज़ेब के कोपभाजन राजकुमार अजीतसिंह को सौंपना श्रेयस्कर समझा। कर्णवती का हुमायूँ को राखी भेजना और हुमायूँ का उसकी रक्षा के लिये उलटे पैर दौड़ पड़ना इतिहास की प्रसिद्ध घटना है। मुसलमान उन दिनों हिंदुओं के साथ इतना हिलमिल कर रहने लगे थे कि उनमें कोई विशेष अन्तर दिखलाई नहीं पड़ता था। तभी तो हाली को नीचे लिखा पद्य कहनेके लिये बाध्य होना पड़ा:—

दीने हजाजी का बेबाक बेड़ा
न जेहूँमें उलझा, न कुलज़ममें अटका।
किये जिसने तै चल के सातों समन्दर,
वो डूबा दहाने में गंगा के आकर॥

मिलाप का परिणाम यह हुआ कि सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य युद्ध में, हिन्दू और मुसलमान दोनों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर, अंग्रेज़ों से युद्ध किया। प्रसिद्ध पठान वंशी अशफ़ाकुल्ला खाँ और विख्यात आर्य समाजी पं० रामप्रसाद बिस्मिल की मित्रता की बात भी हम सब को ज्ञात है। हिन्दू मुस्लिम एकता न कभी असम्भव थी और न अब है, केवल दोनों की मनोवृत्तियों

में परिवर्तन करने की आवश्यकता है सन्तों ने मुसलिम राज्य काल में यह परिवर्तन करके दिखा दिया गया था। अब स्वाधीन भारत के उन्मुक्त वातावरण में यह परिवर्तन पुनः सिद्ध किया जा सकता है।

विश्व वन्द्य महात्मा गांधी इन्हीं सन्तों की परम्परा में थे। हिंदू मुसलिम एकता के लिये उन्होंने जीवन भर अथक प्रयत्न किया। वे इसमें सफल न हुए क्योंकि उनके विरुद्ध अत्यन्त प्रबल शक्तियाँ कार्य कर रही थीं।

हिन्दू स्वभावतः उदार है। उसके विशाल हृदय में सबके लिये स्थान है। मुसलमान तो उसके साथ शताब्दियों से रहते आये हैं। अतः उनके प्रति वह अनुदार हो ही कैसे सकता है? पर इस उदारता का अनुचित लाभ किसी को भी न उठाना चाहिये। प्रत्येक देशकी, परम्परा द्वारा प्राप्त, अपनी गति विधि होती है। मुसलमानों का अधिकांश समुदाय तो इसी देश का वासी है। उसे इस देश की परम्परा का, संस्कृति का भाषा का सम्मान करना ही चाहिये। मत का परिवर्तन पूर्वजों की पीढियों को परिवर्तित नहीं कर सकता। उनके और हिंदुओं के पूर्वज एक है, तो दोनों के एक होने में, इस समय क्यों बाधा पड़नी चाहिये।

भारत वसुन्धरा मानवता का पालना है। इसका निवासी हिन्दू मानवता का पुजारी है। इस युग का सर्वश्रेष्ठ हिन्दू, महात्मा गाँधी, हिन्दू मुसलिम एकता का प्रचारक और पोषक था। अपनी प्रार्थना में वह कहा करता था:—

"ईश्वर अल्ला तेरे नाम
सबको सम्मति दे भगवान"

हिन्दुओं ने उसका अनुगमन किया, पर, हाय रे मुसलमान तेरी सम्मति न जाने कहाँ कूँच कर गई? क्या तू अब भी सोचेगा और समझेगा? तेरे अन्दर डर भर दिया गया था कि कांग्रेस वाले हिन्दू राज्य की स्थापना करेंगे। पर क्या इतिहास के किसी भी पन्ने से तू यह सिद्ध कर सकता है कि किसी हिन्दू राजा ने आज तक किसी मसजिद को तोड़ा फोड़ा हो, किसी भी मुसलमान के साथ अमानुषिक व्यवहार किया हो और उनकी पूजा, अर्चना में हस्त-क्षेप किया हो? हिन्दू राज्य तो सदैव असाम्प्रदायिक रहा है। जो व्यक्ति, चाहे वह हुकूमत का पुर्जा ही क्यों न हो, यदि इसके विरुद्ध कहता है, तो वह अपने इतिहास को धोखा देता है और निस्सन्देह किसी निकृष्ट स्वार्थ भावना में निरत है।

अतः जो अपनी परम्परा से प्रेम करता है, वह मेरी श्रद्धा का भाजन है, क्योंकि मेरी दृष्टि में वह सच्चा देश सेवक है, भारत माता का सच्चा पुत्र है। परन्तु जो सन्त प्रणाली पर चलकर देश के समस्त वर्तमान अंगों में एकता स्थापित करने की चेष्टा करता है, वह भी मेरे लिये आदरणीय है, क्योंकि वह मानवता के हित में अपने एक अत्यन्त पुनीत कर्तव्य का पालन कर रहा है। पर जो पार्टीबन्दी के दल दल में पड़कर न तो देश सेवा रखता है और न मानवता का हित, वह मेरी दृष्टि में सकीर्ण मनोवृत्ति रखता है, साम्प्रदायिक है और स्वार्थी है। ऐसे स्वार्थी व्यक्तियों के लिये मेरे हृदय के किसी भी कोने में स्थान नहीं है।

——०::०——

—जो मूर्खों का नाम सन्त होता है, वे विचारे वेदों की महिमा कभी नहीं जान सकते ... .. अविद्वानों में यह चाल है कि मरे पीछे उनको सिद्ध बना लेते हैं पश्चात् बहुत सा महात्म्य करके ईश्वर के समान मान लेते हैं [सत्यार्थप्रकाश ११ समुल्लास]

आर्यसमाज का भावी कार्यक्रम

[लेखक—श्री प्रीतमलाल जी एडवोकेट, अलीगढ [आर्यगढ]

महर्षि दयानन्द सरस्वती की इस निर्वाण तिथि पर जब उनका एक शिष्य ऋषि के जीवन और कार्य पर दृष्टिपात करता है, तो उसके हृदय म सहसा यह विचार दृढ होता है कि महर्षि का यह स्वप्न कि ससार में वदिक धर्म प्रचार से ही सुख ओर शान्ति प्राप्त होंगे, अ विश्व का आर्य बनाना हमारा पावन धर्म है।

महर्षि ने अपने कार्य की पूर्ति का काम आर्यसमाज को सौपा—और आदेश दिया कि ब्रह्मचर्य और वेद का प्रचार करके ससार का कल्याण करो। आर्यसमाज ने गुरुकुलों की स्थापना की—गुरुकुल प्रणाली की प्रत्येक विद्वान ने भूरि २ प्रशसा की—अपने सीमित साधन और विशाल कार्यक्रम को दृष्टि म रखते हुए, प्रत्येक निष्पक्ष मनुष्य स्वीकार करता है कि विद्याप्रचार, अछूतोद्धार, शुद्धि, देश प्रेम, सामाजिक सुधार आदि कार्यों मे आर्य आर्यसमाज ने प्रशसनीय कार्य किया - देश की स्वतत्रता प्राप्ति म महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का बहुत बड़ा श्रेय है। अब जब देश स्वतन्त्र हो गया है तो आर्यसमाज का भावी कार्यक्रम क्या हो इस पर इन पक्तियों म विचार प्रकट किये जाते हैं।

आर्यसमाज की शक्ति सीमित है अत उसको अपनी शक्ति ऐसे महत्वपूर्ण कार्य म लगानी चाहिये जिस में अन्य सस्थाओं की रुचि कम है अथवा जो वैदिकधर्म प्रचार के मुख्य महत्वपूर्ण साधन हैं। प्रचार के साधन दो प्रकार के हैं। १ लिखित २ मौखिक। लिखित साधनों मे आर्यसमाज को शीघ्र अति शीघ्र एक दैनिक समाचार पत्र और एक मासिक पत्र, अग्रेजी भाषा म प्रकाशित करना चाहिये—साथ ही विद्वत् मन्डली नियत करके और धन एकत्रित करके कम से कम ५ निम्न-लिखित पुस्तकें एक वर्ष में (अग्रेजी में तथा आर्य भाषा में) प्रकाशित करना चाहिये। पुस्तकें इस प्रकार हों —

१. श्री पूज्य प० गगाप्रसाद जी लिखित — Fountain head of Religion अर्थात् धर्म का आदि स्रोत (सशोधित तथा सम्वर्धित)

२ Social Orgnisation अर्थात् वर्णाश्रम धर्म, जिसम साशलिजम, कम्यूनिज्म आदि की तुलनात्मक दृष्टि से आलोचना हो

३ Sa is rit tne mot1e of al Languases of the world ससार की समस्त भाषाओं की माता सस्कृत है ओर सस्कृत ग्रथामे ज्ञान का भण्डार है।

४ Wo ld Peace and how to establish it विश्व म सुख और शान्ति वेदिक सिद्धान्तों के आधार पर ही प्राप्त हो सकते हैं।

५. In l in Civilization and its contr bution to the wor d प्राचीन भारतवर्ष की सम्पदा और उसका भिन्न प्रदेशों में प्रभाव तथा जातियों को देन। यह तथा इस प्रकार की पुस्तकें आर्य विद्वान रचे और प्रकाशित करें।

मौखिक प्रचार म हमारे आर्य साधु, सन्यासी, तथा गृहस्थी उपदेशक ओर प्रचारक त्याग के साथ काम कर रहे हैं, मै उनकी हृदय से प्रशसा करता हूँ परन्तु मै यह अनुभव करता हूँ कि अब वह स्थिति है जब इस प्रश्न को हम आँख से ओझल नहीं कर सकते हैं। हम का देश और काल की परिस्थिति को दृष्टि मे रखते हुये अपने उपदेशकों के भरण पोषण, सन्मान, स्वाध्याय आदि की व्यवस्था सगठितरूप से करनी पड़गी— पेशा की वृत्ति से काम में हानि हो रही है और उन्नति की आशा नहीं है—आर्यसमाज के उपदेशक देश देशान्तर म जाने चाहिये—उनको योग्य और सम्पन्न बनाने के साधन उपस्थित करना आर्यसमाज का आवश्यक काम है।

इस कार्य के अतिरिक्त भारत देश के भीतर ऐसे कार्य करने हैं जिनकी ओर अभीतक पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। उदाहरण के रूप में, हमारे वह भाई जिनको हम जगली अथवा आदिनिवासी आदि के नाम से पुकारते हैं, उनमे आर्य समाज को विद्याप्रचार,

जन जागरण का वह देवदूत —

आज ऋषि की आवश्यकता

[प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम० ए०]



सन् ५,७ की भारतीय क्रांति के पश्चात् हिन्दुस्तान में कई सामाजिक धारायें प्रबल वेग से प्रवाहित होने लगा। उनमे से प्रमुख दो हैं—ब्रह्मसमाज तथा आर्यसमाज। जनता पर जिस सस्था का सबसे अधिक प्रभाव उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पड़ा वह है आर्यसमाज। सन् १८७५ में स्वामी दयानन्दजी ने बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। यह वर्ष बड़े महत्व का है।

स्वामी दयानन्दजी का कार्य बड़ा विस्तृत और व्यापक था। उनके सामने एक निश्चित योजना एवं हृदय में दृढ़ता थी। उनके द्वारा सामाजिक सुधार और शिक्षा प्रसार का महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ। वे धर्म को बड़े विस्तृत दृष्टिकोण से देखते थे, जिसमें हिन्दुओं के धर्म में आदि से संकुचितता और कट्टरता को उन्होंने दूर किया। पाश्चात्य संस्कृति के विरुद्ध स्वामीजी ने जो मोर्चा कायम किया था, उसका स्वरूप विरोधात्मक ही रहा। उन्होने भारत को पाश्चात्य सभ्यता की आंधी से बचाया।

स्वामी दयानन्दजी का कार्यक्षेत्र बहुमुखी था। यद्यपि उनका प्रभाव भारत के कोने - कोने तक पहुचा किन्तु उनके प्रभाव से भारतीय शिक्षा, राजनीति, धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति अछूती न बच सकी। जन्म गत वर्ण भेद का त्याग, स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह का प्रचलन और बाल विवाह का उन्मूलन इनका मुख्य ध्येय थे। स्वामीजी की दृष्टि बड़ी व्यापक और उदार थी। वे हिन्दू को, मध्य काल मे उत्पन्न हो गई सब प्रकार की फली हुई कुरीतियों से मुक्त देखना चाहते थे। वे समता, स्वदेश प्रेम, हिंदू जाति के उद्धार के पक्षपाती थे। धर्म, समाज, शिक्षा, सस्कृति, राजनीति, अर्थ नीति इनके वैदिक आदश के स्वरूप का प्रतिष्ठापन महान् ध्येय था और इसी की पूर्ति मे वे सदैव लगे रहे।

आर्यसमाज के ध्येय महान थे। उसके द्वारा स्वामीजी सर्व प्रथम हिन्दुस्तान में बिगड़ी हुई सामाजिक शृङ्खलाएँ तोड़ना चाहते थे। छूआछूत को हटाने मे उन्होने दिलचस्पी ली। जन्मगत जाति पाँति के भेदभाव से हिन्दू पतित हो रहा था। उसे हटाना तथा मनुष्य मनुष्य के मध्य उचित न्याय, स्त्री पुरुष को समानता के अधिकार प्रदान करना, जन्मजात अधिकार के स्थान पर कर्म और योग्यता की कसौटी, अपनी उन्नति के लिए सबको समान अवसर प्रदान करना स्वामीजी के उद्देश्य ऐसे थे, जो उन्नीसवी सदी में सर्वथा क्रान्तिकारी थे।

उन्होंने दूसरे धर्मों से हिन्दू धर्म की रक्षा की। इस्लाम नीची श्रेणी के हिन्दुओं को खींच कर अपने में मिला रहा था; पढ़े लिखे लोग भी ईसाइयत की ओर आकर्षित हो रहे थे; भारत की धार्मिक आत्मा दुर्बल पड़ रही थी, विज्ञान के वातावरण में हम वर्गवाद में फसे हुए थे। स्वामी जी ने हमें इस स्थिति से मुक्त कर हमारा महान उपकार किया। आज हमें उन जैसे क्रांतिकारी व्यक्तियों की परम आवश्यकता है।

———

सामाजिक सुधार, तथा धर्म प्रचार कर । देश मे भिखमंगों का प्रश्न, दहेज आदि हानिकारक रस्में, घूंसखोरी, चोरबाजारी आदि के सुधार में आर्यों को अग्रभाग लेना है। चरित्र और आत्मिक बल के बिना इन कुप्रथाओं का अन्त नहीं हो सकता है और आर्य जन ही अपने त्याग और तप से इन दोषों को दूर कर सकते हैं।

आशा है आर्यबन्धु इस पर विचार करेंगे।

———

राष्ट्र गीत

[एक भारत-पुत्र]

शस्य श्यामला भारत माता ।
निखिल विश्व की संस्कृतियों की सर्व प्रथम निर्माता ।
शस्य श्यामला भारत माता ।

उत्तर स्वर्ग छू रहा ले नगराज तुषार-विमण्डित,
दक्षिण ले गंभीर सागर करता युग-पद-प्रक्षालित
ले केशर कुंकुम कर में करता पश्चिम आराधन,
वंगभूमि करती पूरब में नव विभूति से अर्चन।
रवि प्रतिदिन प्रकाश, शशि रजनी में अमृत बरसाता
शस्य श्यामला भारत माता ।

विकसित - सरस - कुसुम ले आता मधु ऋतु हर्ष बढाता,
ले प्रमोद पावस आता प्रेमाम्बु-प्रवाह बहाता ।
आतीं शारदीय सुषमाएं सज-धज ले हरियाली,
आ-आकर ऋतुएं क्रम से भर जाती जीवन-प्याली।
सुरभित - सुस्मित उषा हमारी नव जागरण प्रदाता।
शस्य श्यामला भारत माता।

भर देता नव प्राण समीरण दग्ध - तप्त उर-उर में,
बिखरा रहता नूतन यौवन इस भू के पुर-पुर में।
जीवन का उल्लास विहंसता इस के संकेतों पर,
न्योछावर शत - शत अलका छवि गङ्गा की रेतों पर ।

इसी पुण्य – वसुधा से जन – जन चरम लक्ष्य निज पाता
शस्य श्यामला भारत माता।

आदिकाल में चिर निद्रा से जब सजाग जगा था,
नव विकास, नव जीवन पाकर जग उन्माद पगा था।
इसी भूमि ने उस अतीत में आत्मनिमन्त्रण पाया,
कर के आत्मत्याग जगती को संयमशील बनाया।
रहा आज भी विश्व इसी से जीवन - ज्योति जगाता
शस्य श्यामला भारत माता।

थी जब प्रथम उषा की अरुणिम रश्मि विश्व ने पाई,
लो जब बन - बधुओं ने सुख की सर्व प्रथम अँगड़ाई।
जब द्रुमावलि स्निग्ध, मदिर, सुरभित मल यज से डोली,
पहली बार वनस्थल की छाया में कोयल बोली।
थी यह उस आदिम प्रभात में निखिल तत्व की ज्ञाता
शस्य श्यामला भारत माता।

राम, कृष्ण ने इसी भूमि मे आकर जन्म लिया था
भीष्म, बुद्ध, शङ्कर, विक्रम ने निज आदर्श दिया था।
त्याग, पराक्रम, शान्ति हमारा एकमात्र सम्बल है,
अत्र, तत्र, सर्वत्र हमारा सत्य, न्याय ही बल है!
जिये, मरे हम इसी हेतु, —इतिहास इसे बतलाता—
शस्य श्यामला भारत माता।

सीता, गार्गी, सती पद्मिनी इस भूपर आयीं थीं,
दर्शन, धर्म, चरित्र आदि मे ख्याति अधिक पाई थीं।
अब भी दयानन्द, गान्धी से देव यहाँ पर आये,
जिनसे युग सन्देश शान्ति का चिर भविष्य तक पाये।
हम स्वतन्त्र, स्वाधीन देश, हम भारत भाग्य विधाता
शस्य श्यामला भारत माता।

——:o——

आर्यसमाज का

शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष

[लेखक—आचार्य नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ]

जब स्वामी जी का जन्म हुआ था तब भारत वर्ष कृष्णपक्ष में था। जब स्वामी कार्य क्षेत्र में आये तब भारत वर्ष के शुक्ल पक्ष का प्रारम्भ हुआ। जब स्वामी जी का निर्वाण हुआ तब घोर अमावस्या थी स्वामी जी स्वयं दिव्य ज्योति की खोज में न जाने कहाँ गये पर भारतवर्ष की जनता को दीपावली की शुभ्र चाँदनी में छोड़ गये। आर्य समाज का प्रारम्भिक प्रबल प्रचार काल शुक्लपक्ष था। आर्य समाज का संस्थाकाल नं १ (डी ए० वी० कालेज की स्थापना आदि कृष्णपक्ष था क्यों कि आर्य समाज दो दलों में विभक्त हो गया। फिर दो दलों की दीर्घ काल तक परस्पर प्रति स्पर्द्धा के पश्चात् शुक्लपक्ष की चाँदनी छिटकी। आर्य समाज का संस्थाकाल नं० २ (गुरुकुलों को स्थापना) शुक्लपक्ष की पूर्णिमा थी क्यों कि स्वा० दयानन्द प्रदर्शित शिक्षा काल का प्रारम्भ हुआ और इस विषय में पूर्ण रूप से न सही हमको आंशिक सफलता तो मिली ही। और संसार पर आर्य समाज की धाक बैठ गई। आर्य समाज का समस्त बल संस्थाकाल पर लग गया इसलिए प्रचार काल ढीला पड़ गया यह बीच का कृष्णपक्ष था इस प्रकार शुक्ल पक्ष और कृष्णपक्ष का चक्र चलता ही आ रहा है। बीच में भाग्यनगर हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह आर्य समाज की पूर्णिमा रही। अंग्रेजों के जाते जाते देश का बटवारा आर्यसमाज के लिए अमावस्या थी। पंजाब जो कि आर्य जगत् का प्रबल गढ़ था, अभेद्य दुर्ग था, छिन्न-भिन्न हो गया। आर्य समाज की सैकड़ों समाजों संस्थाओं अतुल संपत्ति तथा संघटन का विनाश हुआ, यह हानि असहनीय रही।


लेखक

संसार में कौन सा ऐसा व्यक्ति समाज समुदाय देश, राष्ट्र है जिसके जीवन में पर्याय से शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष न आये हों, शुक्लपक्ष मे आल्हादित न हुए हों और कृष्णपक्ष मे ठोकरें न खायी हों। ईश्वर ने क्या ही अच्छा क्रम रक्खा है। शुक्लपक्ष के पश्चात् कृष्णपक्ष, कृष्णपक्ष के पक्ष के पश्चात शुक्लपक्ष। शुक्लपक्ष में एक पूर्णिमा का ही दिन होना

है जिसमें अन्धेरे का नाम नहीं और कृष्णपक्ष में एक अमावस्या का दिन ही ऐसा रहता है जिस दिन प्रकाश का नाम नहीं। वैसे शुक्लपक्ष में अन्धकार और कृष्णपक्ष में भी प्रकाश रहता ही है। सृष्टि के आदि से लेकर ऐसा कभी नहीं हुआ कि एक बार पूर्णिमा आकर बराबर पूर्णिमा ही चली आयी हो अथवा एक बार अमावस्या आकर बराबर अमावस्या ही चली आयी हो।

अंगरेजी राज्य गया, अंगरेज भी गया किन्तु उसकी छाया और माया अब तक बराबर चल रहा है यह आर्यसमाज के लिए कृष्णपक्ष है, क्योंकि उसको इस कृष्णपक्ष के अन्धकार मे यथार्थ मार्ग नहीं सूझ रहा है। देश का बटवारा होकर पंजाब, सिन्ध, बलूचिस्तान फ्रन्टियर में सैकड़ों सहस्रों स्कूलों कॉलिजों के महा नाश के पश्चात् भी आर्यसमाज का ध्यान फिर स्कूलों और कॉलेजों की संख्याएँ बढ़ाने की ओर है जिनसे आर्यसमाज का कभी भला नहीं होने वाला है। इसका प्रभाव गुरुकुलों पर भी पड़ा जो कि प्राचीन शिक्षा-दीक्षा की ओर झुके थे जो कि आर्यसमाज का असली काम था, जिसमें सफलता मिलने से आर्यसमाज को अपने उद्देश्य की पूर्ति में बल मिलता और आर्यसमाज संसार के उपकार के कार्य में दृढ़ता पूर्वक संलग्न रहता। ये संस्थाएँ भी अब वर्तमान शासन की शिक्षा-दीक्षा के प्रमाणपत्र की आकांक्षा करने लगी है। हिन्दी के राजभाषा होने के लक्षण के दीखते ही ऐसा कुछ वातावरण हो चला है कि आर्य समाज के छात्रों में संस्कृत की ओर उपेक्षा प्रकट होने लगी है। आर्यसमाज में दान का एक पैसा वेदशास्त्र, प्राचीन शिक्षा दीक्षा के प्रचार प्रसार मे लगना चाहिए। उसका पैसा स्कूल कालेजों की स्थापना और संचालन मे नहीं लगना चाहिए। अब तो यद्यपि अपना राज्य है, यद्यपि विदेशी नहीं तथापि पद्धति तो विदेशी है ही। वर्तमान सरकार स्वयं शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध करेगी। स्कूल कालेजों को, विश्वविद्यालयों की संख्याएँ बढ़ायेगी। आर्यसमाज इस विषय में अपना समय धन, बल, पुरुषार्थ का अपव्यय क्यों करे। स्मरण रहे आर्यसमाज तभी तक जीवित रहेगा जब तक वेदशास्त्र, वैदिक धर्म वैदिक शिक्षा दीक्षा को हाथ में रक्खेगा। आर्य संस्कृति का प्रचार तथा प्रचार करता रहेगा। आर्य समाज का वेदशास्त्र ढीला पड़ा कि आर्य समाज गया समझिए

आर्यसमाज के सामने एक बड़ा कार्य है। वह यह नवीन पाश्चात्य ढंग का विदेशी पद्धति के शासन पर भी अपना प्रभाव डालकर उसके दोषों को हटाकर उसको स्वधर्म तथा स्वसंस्कृति का पोषक बनाना है। इस कार्य का हमको इतना प्रबल-प्रचार तथा प्रसार करना पड़ेगा कि उस प्रचार तथा प्रसार का इस शासन पर भी अभीष्ट प्रभाव पड़े। इस पद्धति की जिन बातों का प्रभाव हमारे धर्म तथा संस्कृति पर प्रतिकूल पड़ेगा उनका हमको प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट रूप मे विरोध करना पड़ेगा और मार्ग में कष्ट आयें तो उनको सहना भी पड़ेगा,—अब यह कहकर काम न चलेगा कि आर्यसमाज का वर्तमान राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं। अंगरेजों के शासनकाल में हम प्रच्छन्न रूप में स्वदेश की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए प्रयत्नवान रहे, किन्तु अब वह नीति विधा तक रही। यदि उस समय में भी हम प्रकट रूप में सामयिक गति-विधि में भाग लेते तो आज हमारी स्थिति और ही रहती। मेरी समझ में यह उदासीनता का काल आर्यसमाज के लिए अमावास्या ही रही। पंजाब में ३०, ३२ लाख सिक्खों ने प्रत्यक्ष रूप में वह अड़गे दिये हैं कि सरकार भी परेशान है। हम चालीस लाख कुछ अपने ढंग का काम करते हुए बल पकड़ते तो हम भी अपनी संस्कृति के अनुकूल दो-चार बातें मनवाते ही। राज्य-शासनप्रणाली पर कुछ प्रभाव डालते ही—

वर्तमान स्वराज्य अपना होते हुए भी शासन पद्धति सर्वथा विदेशी है। शासनचक्र इस प्रकार की मतदान पद्धति पर निर्भर है कि किसी दिन समाजवादी भी शासक बन सकता है तो आर्यसमाज का वैदिक समाजवाद और पाश्चात्य ढंग का समाजवाद (जिसको समाजवादी लाना चाहते हैं) टकरायेगा कि नहीं, कि हमको राजनीति से

कुछ भी मतलब नहीं है यह कहकर अपने संकुचित मण्डल में (हमने ही अपनी निर्बलता से संकुचित कर रक्खा है) घुटते रहिएगा। समझ लीजिये कि भारतीय नेताओं द्वारा तैयार किया हुआ विधान आर्य-धर्म तथा आर्य संस्कृति का पोषक न होकर आर्य-संस्कृति के लिए घातक बैठता है। तब क्या समष्टिरूप से सुख न ले लियेगा। तब तो आर्यसमाज का कृष्णपक्ष लम्बा ही-लम्बा होता जायगा।

आर्यसमाज का कर्त्तव्य है कि प्रत्यक्षरूप से, स्पष्टरूप में बलपूर्वक धर्म मत बातों का प्रबल विरोध करता रहे जो भारतीय धर्म तथा संस्कृति को पोषक और संरक्षक न हो।

आर्यसमाज की पूर्णिमा तब समझिए कि इस विदेशी प्रजातन्त्र तथा जनतन्त्र पद्धति के समय में भी साम्यवादी, वर्गवादी तथा समाजवादी समुदायों का सर्वथा उन्मूलन होकर वर्तमान शासन-पद्धति भी वैदिक साम्यवाद और वैदिक समाजवाद को मानकर चलने के लिये विवश हो।—

आर्यसमाज, सातवें दिन समाज में एकत्रित होकर केवल धर्मोपासना करने का स्थान न रहे। अब तो आर्यसमाज को प्रत्यक्षरूप में वैदिक शासनपद्धति का प्रचार तथा प्रसार सम्पूर्णरूप, निःशङ्क होकर करना चाहिए—और भारत सब द्वारा स्वीकृत विधान में भारतीय वातावरण और संस्कृति के अनुरूप परिवर्तन कराने का प्रबल प्रयत्न करना चाहिए।

संसार के देश तथा राष्ट्र संकुचित राष्ट्रियता के कारण संसार को नरक बना रहे हैं। यदि आर्यसमाज इनको सर्व भूतैकत्व की भावना का पाठ नहीं पढ़ा सकता, यदि आर्यसमाज संसार को सच्चे विश्वबन्धुत्व का मार्ग दिखाकर 'अनभिद्रोहेण भूतानामल्प द्रोहेण वा पुनः' भावना में यह परस्पर अनभिद्रोह अथवा अल्पद्रोह की भावना जाग्रत नहीं कर सकता। यदि आर्यसमाज—

"आत्मनः प्रतिकूलानि
परेषां 'न' समाचरेत्"

जो अपने को प्रतिकूल लगे वैसा बर्ताव दूसरे के साथ भी नहीं करना चाहिए इत्यादि उच्च सार्वभौम राष्ट्रियता का प्रचार न कर सके तो समझ लेना चाहिए कि आर्यसमाज शुक्लपक्ष में भी अमावस्या की तरह अन्धकार में पड़ा हुआ है। उसको समझ लेना चाहिए कि उसके सामने ऐसी समस्या है कि इस अमावस्या के पश्चात कोई भी शुक्लपक्ष नहीं आनेवाला है।—आर्यसमाज की आवश्यकता ही क्या है यदि उसके होते हुए पाश्चात्य देशों के वर्गवाद, साम्यवाद, कोरा बुद्धिवाद, समाजवाद इत्यादि वाद भारतभूमि में आकर पैर जमा बैठे और वैदिक समाजवाद को जिसमें अब तो संसार को सुख-शान्ति धाम बनाने की शक्ति है पनपने न दे। आर्यसमाज की आवश्यकता ही क्या है यदि पाश्चात्य जनतन्त्र वैदिक जनतंत्र की ओर न झुकाया जाय।

सावधान!

दुर्गा नदीः, शिथिलबन्धविलम्बिनी नौः।
अभ्युन्नता जलधराः, विषमः समीरः॥
आरूढवान्निजकुटुम्बयुतोऽध्वनीनः।
तत्कर्णधार! कुरु, यत्सदृशं कुलस्य॥

नदी में भयङ्कर तूफान है और कील पुर्जे ढीले होने के कारण नाव ढीली चल रही है; मुसाफिर कुटुम्ब सहित नाव पर चढ़ा हुआ है ऐसी दशा में हे नाविक! ऐसे धैर्य का परिचय दे जो कि तेरे अनुरूप हो—

इस तूफान से बाहर हुए कि आर्यसमाज की पूर्णिमा आई समझिये, ईश्वर करे ऐसा ही हो—तथास्तु, एवमस्तु आकाशवाणी कहती है "अच्छा, अच्छा।" प्रतिध्वनि आ रही है "अच्छा अच्छा।"

ऋषि कृत वेदभाष्य से सम्बन्धित दो टीकायें—

"वेदार्थ यत्न और प्रकृतार्थ वाहिनी"

[लेखक—आचार्य विश्वश्रवाः वेद मन्दिर, बरेली]

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने अपने वेद भाष्य में तीन प्रकार के भाष्यों का खण्डन किया है—

१—सायणादि कृत पौराणिक संस्कृत भाष्य

२—डाक्टर विल्सन आदि कृत पाश्चात्य आंगलभाष्य

३—वेदार्थ यत्न

ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद भाष्य के प्रारम्भ के ही मन्त्रों में इस प्रकार लिखा है कि—

क. एवमस्मदर्थं सायणाचार्यादिभिरन्यथोक्तम् । तद्यथा···

ख. तद्घोरोप खण्डस्यैवकृतमितिशयक मायायाम् ।

ग. वेदार्थयत्नादिषु च व्यर्थेनम यत्नमशुद्धम् ।

घ. एतेनैतदनुसारिणामाङ्ग्लभाषया डाक्टर विल्सनाख्य वेदार्थयत्नादीनामपि खण्डनमागतमिति विज्ञेयम् ।

इस प्रकार स्थान स्थान पर तीन प्रकार के भाष्यों का नाम ऋषि के वेदभाष्य में आता है। इनमें से सायणाचार्य आदि के भाष्यों को और डाक्टर विल्सन आदि के किये अंग्रेजी अनुवादों को सब जानते है और आजकल मुद्रित प्राप्त भी हैं। परन्तु वेदार्थयत्न क्या है इसका ज्ञान आर्य विद्वानों को भी नहीं। जिसका वर्णन मैं आगे करूंगा

(वेदार्थयत्न)

ऋषि दयानन्द के अपने वेदभाष्य में इनका खण्डन संकेतमात्र ही किया है। विस्तार भय से स्पष्ट खण्डन विशेष नहीं है। मैंने जब ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य की विस्तृत टीका लिखनी प्रारम्भ की तो मेरे लिये यह आवश्यक हो गया कि इन सब का संग्रह करूँ सायण और विल्सन प्राप्त थे पर वेदार्थयत्न टीका का पता नहीं चलता था। ऐसी स्थिति में मैंने आर्य जगत् के सब विद्वानों को पत्र लिखे कि यह वेदार्थयत्न क्या है। इस वर्ष मई मास में लखनऊ मे उपदेशक महासम्मेलन में भी बहुत से विद्वान् पधारे वहां बातचीत करने पर भी वेदार्थयत्न का पता न चला प्रत्युत यह जानकर दुःख हुआ कि आर्य विद्वानों में ऋषि के वेदभाष्य का पठन पाठन ही नहीं है। किसी ने वेदार्थयत्न का नाम ही नहीं सुना था। मैं देहली गया वहां रहने वालों से पूछा वहां भी वेदार्थयत्न अनसुनी चीज थी।

बनारस गवर्नमेंट किंग्स कालेज के सरस्वती भवन पुस्तकालय में वेदार्थयत्न को ढूंढने बैठा। वहां पुस्तकों की कोई व्यवस्था नहीं है अभी पूरा सूची पत्र ही नहीं बना है। उस दिन प० वीरेन्द्र शास्त्री भी मेरे साथ थे। पं० वीरेन्द्र शास्त्री जी को भी मैंने वेदार्थयत्न के सम्बन्ध में सारा विवरण बताया कि इसको ढूंढने की आवश्यकता है। हम दोनों ही ग्रन्थों को लौट पोट कर रहे थे कि कहीं वेदार्थयत्न शब्द लिखा मिले। अचानक शास्त्री जी की दृष्टि एक स्थान पर पड़ी और उन्होंने वे पंक्तियां मेरे सामने रखी। मैं हर्ष से उछल पड़ा कि हे प्रभो कुछ पता तो चला। वहां से जो विवरण प्राप्त हुआ वह यह है कि:—

बम्बई नगर में अनेकों विद्वानों ने सामूहिक यत्न कर के ऋग्वेद को एक सम्मिलित टीका लिखी थी उसका नाम वेदार्थयत्न है। इसी टीका का खण्डन ऋषि ने अपने वेदभाष्य में किया है। अब बम्बई के पुस्तकालयों को मैंने पत्र लिखे है और वहां जाकर मैं उसे कहीं न कहीं से प्राप्त करने का यत्न करूँगा। अब निश्चय तो हो गया कि वेदार्थ यत्न क्या है। अन्यथा कुछ विद्वानों ने तो मुझे यही लिख दिया कि वेदार्थयत्न कोई टीका नहीं है जो-जो भी वेद के बारे में यत्न हुए हैं उनसे तात्पर्य ऋषि दयानन्द का वेदार्थयत्न शब्द से है। कुछ विद्वान् विश्वास पूर्वक यह लिखते थे कि विल्सन की टीका का नाम ही

वेदार्थयत्न है। पर यह सब बातें अप्रामाण्य हैं। श्री पूज्य स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी तथा श्री पं० भगवद्दत्त जी ने मुझे बताया कि उनके पास वेदार्थ यत्न था पर वह पाकिस्तान में नष्ट हो गया।

(प्रकृतार्थ वाहिनी)

प्रकृतार्थ वाहिनी नाम की टीका ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य के खण्डन में लिखी गई है इसके कर्त्ता है उमेश चन्द्र जी। यह टीका मुद्रित है। आश्चर्य की बात है कि ऋषि के वेदभाष्य की टीका तो किसी ने न लिखी पर खण्डन लिखा गया। प्रकृतार्थ वाहिनी टीका की कुछ पंक्तियां पाठकों के ज्ञानार्थ मैं यहाँ देता हूँ:—

वेदेषु अग्नि शब्देन आदित्यानल संसूचितः। जडाग्नि वहितया नराग्निश्चावबोधित इति। "ब्रह्म ह्यग्नि." इति यत् शतपथे अस्ति तत् लोकपितामह ब्रह्माणमेव बोधयितुं प्रयुक्तं न पुनः परमेश्वरमिति। विद्यावत्ता परमेश्वरस्य न, परन्तु ब्रह्मणोऽभीत। ईश्वरो विद्वान् गणितवित् इत्थं प्रयोगो न स्यात् व्यवहार विरुद्धत्वात् वस्तुतस्तु वेदे कुत्रापि अग्निशब्दः परमेश्वरार्थे प्रयुक्तो नाभूत् भ्रान्तिरेषा विदुषो दयानन्दस्य।

'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' एष मन्त्रस्तु द्वापर युगे पौराणिक भ्रान्त्या केनचिद् अर्वाचीनेन ऋषिणा प्रणीतः। (प्रकृतार्थ-वाहिनी)

ऋषि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में शतपथ ब्राह्मण आदि के प्रमाण देकर अपने भाष्य की पुष्टि की है। परन्तु इस प्रकृतार्थ वाहिनी टीका में यह बताया है कि शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में उन प्रमाणों के वे अर्थ नहीं है जो स्वामी दयानन्द जी ने समझे हैं। इत्यादि ढंग से ऋषि के वेदभाष्य के खण्डन में यह टीका लिखी गई है। जिसका उत्तर आर्यसमाज की ओर से नहीं दिया गया। वस्तुतः यदि कुछ दिन और उपेक्षा की जाती तो यह मालूम करना ही कठिन हो जाता कि वेदार्थ यत्न क्या है और प्रकृतार्थ वाहिनी भी कोई टीका थी भी या नहीं।

मेरा यह लेख बम्बई आदि के रहने वाले सज्जन पढ़ें और उनको कहीं भी वेदार्थ यत्न टीकाका ग्रन्थ मिले तो वे मुझे सूचित करदें। यदि रुपये देकर भी वह ग्रन्थ कोई देने को तैयार न हो तो मैं उस नगर में जाकर उसकी प्रति लिपि कर लूँगा। प्रकृतार्थ वाहिनी टीका को भी यदि कोई मूल्य लेकर भी दे दे तो मैं उसको हर भाव लेने को तैयार हूँ। क्योंकि ऋषि के वेदभाष्य की टीका जो मैं लिख रहा हूँ उस के लिये इन दोनों की अत्यन्त आवश्यकता है।

(ऋषि के वेदभाष्य की विस्तृत चार टीकायें)

वेदान्त आदि ग्रन्थों पर जब शंकर, रामानुज आदि ने भाष्य रचे तब उनके शिष्यों ने अपने अपने आचार्यों के भाष्यों की विस्तृत टीकायें लिखी जिससे उनका प्रचार और प्रकाश हुआ। ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य पर ऐसा प्रयत्न किसी ने नहीं किया है कि जिससे स्वामी जी का वेदभाष्य स्कूलों गुरुकुलों तथा अन्य विश्व विद्यालयों में पाठ्यग्रन्थ का स्थान न पा सका और भक्त आर्य लोग भी वैदिक विनय आदि पढ़कर ही कृतकृत्य हो जाते हैं और ऋषि के वेदभाष्य को वैसे ही प्रणाम कर छोड़ते हैं जैसे पौराणिक अपनी मूर्तियों को। ऐसी स्थिति में ऋषि के वेदभाष्य की चार टीकायें लिखने का मेरा विचार है।

१—एक टीका वह है जिसमें यह समझाया गया है कि ऋषि ने मन्त्र का स्पष्ट क्या अर्थ किया है। मन्त्र का सरल विस्तृत और परस्पर संगति भी। मैं यह यत्न कर रहा हूँ कि इसी अपनी वेदभाष्य टीका में सायण और डाक्टर विलसन के अनुवादों को भी छपाकर तीनों को सामने रखकर फिर तीनों की मीमांसा भी रखूँ अतः इस टीका का क्रम इस प्रकार है—

१—ऋषि के वेदभाष्य की विस्तृत संस्कृत टीका। उसके आगे—

२—सायण का भाष्य। उसके आगे—

३—विलसन का अंग्रेजी अनुवाद। उसके आगे—

४—तीनों भाष्यों की मीमांसा तुलना। उसके आगे—

५—ऋषि के वेदभाष्य टीका की सरल हिन्दी में व्याख्या। उसके आगे—

क्या स्वर्ग धरा पर लाई हो ?

[रचयिता.—रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' बी० ए० साहित्यरत्न]

खोए वीणा के तारों में, फिर नया राग नूतन स्पन्दन,
दीपावलि ! भरने आई हो ?
फिर अमा निशा के अञ्चल पर, धरती के जगमग दीपों से,
भर अन्तरिक्ष का सूनापन, ज्योतिर्मयि ! जीवन के सपने,
क्या शाश्वत करने आई हो ?
पल्कों मे रश्मिल अल्कें भर, सो गया तिमिर पी ज्योति लहर !
नन्दन-कानन का स्वर्ण हास, भर कर दीपों के प्राणों म,
क्या स्वर्ग धरा पर लाई हो ?
ज्योतिर्मुवि ! कवि की अभिलाषा, आशा की चल-परिभाषा-सी,
झिलमिल भाषा म बोल रही, "भर स्नेह चपलता नयनों में,
क्या मधु मयि ! भरने आई हो ?"

६—सायण भाष्य का हिन्दी अनुवाद। उसके आगे

७—विल्सन के अंग्रेजी अनुवाद की हिंदी में टीका। उसके आगे—

८—तीनों भाष्यों की मीमांसा और तुलना हिन्दी भाषा मे। उसके आगे—

९—ऋषि के वेदभाष्य का अंग्रेजी में अनुवाद। उसके आगे—

१० क्रिटिकल समालोचना अंग्रेजी भाषा में।

इतना विस्तृत वर्णन प्रत्येक मंत्र पर रहेगा। यह एक टीका है। अन्य तीन टीकायें इससे भिन्न हैं जिनका वर्णन किसी अन्य लेख में करूँगा। भगवान् का आशीर्वाद ऋषि दयानन्द में श्रद्धा, आर्य विद्वानों की कृपादृष्टि, और ऋषिभक्तों के सहयोग से इसमे सफलता अवश्य होगी। ऐसा विश्वास है।

स्वराज्य का सूत्रधार दयानन्द

(लेखक—विश्वप्रिय शर्मा आचार्य गुरुकुल मज्जर पूर्वी पंजाब)

भारतीय स्वराज्य के आदि सूत्रधार एवं विश्व प्रेम और विश्व शान्ति के सर्वप्रथम सन्देशवाहक महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज को विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न दृष्टिकोण से कसौटी पर परखा है। श्री एण्ड्रू जक्सन डेविस ने उन्हें 'एक सार्वभौम अग्नि' के रूप में देखा। "जो अग्नि सारे भूमण्डल के राज्यों साम्राज्यों तथा राजकीय बुराइयों को जलाकर भस्मसात कर देने वाली है"।

श्रीमती एनीबीसेन्ट ने—

स्वामी दयानन्द को "भारत भारतीयों के लिये" प्रथम जयघोष लगाने वाला स्वीकार किया।

श्री ब्लन्ट ने—

"दयानन्द केवल धार्मिक सुधारक ही न थे वह बहुत बड़े देश भक्त भी थे। यह कहना उचित होगा कि धार्मिक सुधारों को उन्होंने राष्ट्रीय सुधार के साधनरूप में ही अपनाया था", के रूप में देखा उन्होंने भारत की पराधीनता को अभिशाप समझा और पराधीन भारत में सर्वप्रथम स्वराज्य के नाद को उठाया। वह भी उस समय जब कि देश का मस्तिष्क गुलामी की लोहसारमयी शृङ्खलाओं से अच्छी तरह जकड़ा जा रहा था। ऐसे समय सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य की कल्पना तो दूर रही माण्डलिक अर्थात् औपनिवेशिक राज्य की मांग भी कल्पनातीत थी। स्वराज्य शब्द तो मानो उस समय संसार के कोषों से निकल गया था। वर्तमान राष्ट्रिय महासभा (इण्डियन नेशनल कांग्रेस) का जन्म भी उस समय न हो पाया था।

उस समय महर्षि ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में स्वराज्य सन्देश दिया।

आर्याभिविनय में—

"इषे पिन्वस्व" यजुर्वेद १८।१४ मन्त्र से प्रार्थना करते हुए लिखा है कि—

"अन्य देशवासी राजा हमारे देश में न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों" "अदीनाः स्याम. शरदः शतम्" की व्याख्या में महर्षि ने लिखा है कि—

"हम सौ वर्ष की आयु में कभी पराधीन न हों" सतत प्रयत्नों के उपरान्त भारत आज स्वराज्य प्राप्त कर चुका है और लगभग दो वर्ष से शासन की बागडोर देश के प्रतिनिधियों के हाथ में है।

ऋषि ने 'एकता' के लिखा है—

"भिन्न २ भाषा, पृथक पृथक शिक्षा तथा अलग २ व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध न होगा'।

राजा का लक्षण महर्षि ने अपने मन्तव्य प्रकाश में निम्न प्रकार किया है "राजा उसी को कहते हैं जो शुभ गुण कर्म स्वभाव से प्रकाशमान पक्षपात रहित न्याय-धर्म का सेवक प्रजाओं में पितृवत्‌वर्ते और उनको पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा प्रयत्न किया करें।

प्रजा उसको कहते हैं जो पवित्र गुण कर्म स्वभाव को धारण करके पक्षपात रहित न्याय-धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई विद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्ते।

इसलिये महर्षि ने अपने मन्तव्यप्रकाश में "जो पक्षपात रहित न्यायाचरण, सत्यभाषणादि, ईश्वराज्ञा, वेदों से अविरुद्ध, उसको धर्म और जो पक्षपात सहित,

मिथ्याभाषणादि, ईश्वराज्ञा भङ्गरूप वेद विरुद्ध है उसको अधर्म मानता हूं"। धर्म अधर्म की व्याख्या करते हुए लिखा है।

प्रश्न यह है कि धर्म का राजनीति से क्या सम्बन्ध है ?

शासन के उत्तम सञ्चालन के लिये उन्होंने विद्यार्य सभा, धर्मार्यसभा, राजार्य सभा तीन सभाओं का निर्देश किया है और राज्य व्यवस्था का स्वरूप निम्न शब्दों में वर्णन किया है।

"राज्य का अधिकार एक को नहीं देना चाहिए, किन्तु राजा जो सभापति तदाधीनसभा और सभाधीन राजा, राजा औरसभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे"।

"प्रजा की साधारण सम्मति के विरुद्ध राजा व राज पुरुष कभी न चलें' यह लिखकर राजा को सचेत किया है, इतना ही नहीं "विशेष सहाय के बिना सुगम जो कर्म हैं वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है। जब ऐसा है तो महान् राज्यकर्म कैसे हो सकता है इसलिये एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कर्म का निर्भर करना बहुत ही बुरा काम है" ऐसा लिखकर महर्षि ने प्रजातन्त्र का आदर्श उपस्थित किया है। ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में महर्षि ने लिखा कि "राज्य के लये एक को राजा कभी न मानना चाहिये क्योंकि जहाँ एक को मानते हैं वहाँ सब प्रजा दुखी और उसके उत्तम पदार्थों का अभाव हो जाता है, इसी से किसी की उन्नति नहीं होती"।

प्रसिद्ध देशभक्त स्व० रामप्रसाद बिस्मल ने भी अपने जीवन के अनुभव से फांसी के तख्ते पर झूलने से पूर्व यही कहा था कि वास्तविक क्रान्ति के लिये आचार दृढ़ता, सामाजिक सुधार और शिक्षा की आवश्यकता है बिना इसके क्रान्ति सफल नहीं हो सकती।

चक्रवर्ती राज्य

चक्रवर्ती राज्य के विषय में महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा कि "सृष्टि से लेकर पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सर्वोपरि चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि राज्य था, अन्य देश में माण्डलिक अर्थात् छोटे राजा थे"। आर्याभिविनय में भी परमेश्वर से प्रार्थना की है कि 'महाराजाधिराज परब्रह्म अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तमगुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर।

शिक्षा क्षेत्र में महर्षि ने उथल-पुथल मचादी। जहाँ देश अंग्रेजी शिक्षा के पीछे पड़ा था वहाँ आज अंग्रेजी शिक्षा देश के लिये घातक है यह आवाज चारों ओर से आ रही है, और हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने की स्कीमें सोची जा रही हैं, अनिवार्य शिक्षा आज उपादेय समझी जाने लगी है। महर्षिने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में उस समय लिखा है—

"राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पाचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के और लड़कियों को घर में न रक्खें। पाठशाला में अवश्य भेज दें।"

विदेशीय राजनीति कला कौशल नवीन विज्ञान को समझने के लिये भारतीय विद्यार्थियों को विदेश भेजने की महर्षिने आयोजना की। स्व० श्याम जी कृष्ण वर्मा को इसलिये इङ्गलैण्ड भेजा था। प्रार्थना समाजियों तथा ब्रह्मसमाजियों को केवल इसीलिये बुरा बतलाया कि —

"उनमें स्वदेशी भक्त न्यून हैं वह विदेशियों की प्रशंसा करते हैं भारतीय महापुरुषों की नहीं। ब्रह्मा से लेकर पीछे २ आर्यावर्त में बहुत से विद्वान् हो गये हैं उनकी प्रशंसा न करके योरोपियन की ही स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद के बिना क्या कहा जाय"।

इसी प्रकार "और को विद्या का चिन्ह यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़कर मुसलमान और ईसाईयों सदृश बन बैठना व्यर्थ है जब पतलून पहरते हो तमगों की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार हो गया था"। राष्ट्रीयता और देशभक्ति से सम्बन्ध रखने वाली कोई भी ऐसी बात नहीं जिस पर महर्षि ने प्रकाश न डाला हो। इतना ही नहीं महर्षि ने बलपूर्वक अनुरोध किया है कि—

"जो उन्नति चाहो तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा क्योंकि हम और आपको उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना और अब भी पालन होता है आगे भी होगा उसकी उन्नति तन मन धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिये आर्यसमाज जैसा आर्यावर्त देश की उन्नति का कारण वैसा दूसरा नहीं हो सकता"। यह लिखकर उन्होंने देश के नाम अपील की है, कि आर्यसमाज देश का हित चिन्तक है। यह दूसरी बात है कि आर्यसमाज ने सामूहिक रूप से राजनीति का डंका नहीं बजाया, परन्तु इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि व्यक्तिगत रूप से कोई भी समाजी ऐसा न होगा जिससे स्वतन्त्रता संग्राम के किसी न किसी प्रकार की सहायता न पहुँची हो। आर्यसमाज के आरम्भिक आन्दोलन को देखते हुए 'इण्डिया अनरेस्ट' के यशस्वी लेखक श्री वलेन्टाइन शिरोल ने आर्यसमाज की राजनैतिक प्रवृत्तियों को देखते हुए लिखा है कि "जहाँ २ आर्यसमाज का जोर है वहाँ २ पर राजविद्रोह प्रबल है"। हिन्दू राष्ट्रपति स्वातन्त्र्य के पुजारी वीर सावरकर के शब्दों में आर्यसमाज कांग्रेस की जननी है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह ऋषि के पुण्य स्मृति के अवसर पर उनके आदर्शों का पालनकर देशोन्नति में लग जाय।

——:o:——

अमर राही दयानन्द !

घन घोर निशा, बीहड़ जंगल, कांटों से लथपथ पथ सारा।
था हिंसक पशुओं का विहार, नभ बीच न था कोई तारा ॥
सब भटक गए पगडंडी से ठोकर खा गिर गिर जाते थे।
रोते थे भोले भाले जन, रजनीचर खुशी मनाते थे ॥
पर एक पथिक घन तिमिर चीर अपने पर कुछ परिहास लिए।
जा रहा राह में अविचल, चल उज्ज्वल धुंधली सी आस लिए ॥
कितनी खाई उसने ठोकर, कितने आघात सहे उसने।
कितने कांटों से बिंधा देह, निर्जल उपवास किये कितने ॥
वही जानता है इन सबको जिनको अपनत्व सताता है।
जिनकी छाती में धड़कन है, जिनका उससे कुछ नाता है ॥
वह आगे बढ़ता जाता, उसे था भूख प्यास से मतलब ?
वह कांटे चुनने आया था उसको पराग से क्या मतलब ?
उसने देखा तम-साम्राज्य, जुट गया दिवाकर लाने को।
वह मचल पड़ा, बढ़ गया कि फिर वह सोता देश जगाने को ॥
आया वृन्दा की गोदी में, व्रज मिला, और आनन्द मिला।
मिल गया सभी कुछ उसे वहाँ मानों कविता को छन्द मिला ॥
हो गई पिपासा शान्त, न रह पाया व्याकुल कोई कोना।
कुछ ही दिन में बन गया पथिक, अवदात कसौटी का सोना
फिर निकल पड़ा लेकर गुरु का वह मनोनीत पावन सुराग।
आवाज लगाई बार बार ओ ! सोने वाले जाग जाग ॥
अंगड़ाई लेकर उठा देश अस्तित्व सभी ने पहिचाना।
राही की राह चले सब ही जग ने उसका लोहा माना ॥
पर हाय ! भरत के ओ भारत ! तूने अपनी कर ही डाली।
उसके उपकारों के बदले दी पिला उसे विषकी प्याली ॥

[रचयिता—देवेन्द्रकुमार स्नेही]

सन् १६०० में आर्य समाज ने शिक्षा क्षेत्र में एक युगान्तर प्रस्तुत किया था। वह था गुरुकुलों की स्थापना। उस युग में आज से प्रायः पचास वर्ष पूर्व वह आन्दोलन नया था, उसके शिक्षा रूप की रचना तत्कालीन युगनायकों ने की थी वह बड़ी मनोहर, आकर्षक और उपयोगी थी। उस युग के साथ गुरुकुल के उस रूप का समुचित समन्वय होता था। जनता को वह कितना मनोहारी लगा था। इसकी कल्पना भी वे ही कर सकते हैं जिन्होंने उस युग को, और संस्था के उस रूप को देखा था।

वर्तमान के उद्यम में जो सकट मनुष्य को झेलने पड़ते हैं उनसे घबराकर वह मर जाय यदि भूत के मधुर स्वप्न और भविष्य की सुन्दर कल्पनायें उसे सान्त्वना न दें। गुरुकुल खुलने के समय भारत में अंग्रेजी सत्ता पैर जमाकर बैठी थी। भारतीय भाषा, वेष, और भावों का विनाश करने के सारे प्रयत्न अंग्रेज प्रचारक और राज कर्मचारी कर रहे थे। जिनके हृदय में भारतीयता का

गुरुकुल से कुछ नवीन अनुसन्धान, और शैलियाँ परीक्षित रूप से प्रकट की जानी चाहिये थीं। ऐसा कुछ नहीं हो सका। संस्कृत व्याकरण कठिन है। सुगम्य बनाने के लिये कोई परीक्षण नहीं। संस्कृत भाषा की ओर जनता की रुचि कैसे बढ़े इसके लिये कोई साहित्य सीरीज नहीं। आयुर्वेद के सन्दिग्ध द्रव्य गुण असन्दिग्ध रूप में जनता के सामने आयें, इसके लिये कोई अनुसन्धान शाला नहीं। शल्य, शालाक्य, भूत विद्या, अगदतन्त्र, रसायन, और बाजीकरण के क्षेत्रों में कोई विकास नहीं। आखिर ५० वर्षों से इन गुरुकुल रूपी प्रयोगशालाओं में हो क्या रहा है? हम स्वराज्य के दिन के लिये आन्दोलन कर रहे थे, स्वराज्य मिलने पर हमारी संस्था को प्रमुख स्थान मिलने की कोई सूरत नहीं दिखाई देती।

आज देश को कलाकारों की आवश्यकता है। इंजीनियरों, शल्य शास्त्रियों, अर्थ शास्त्रियों, नौविद्या, विमान-विद्या, संगीतज्ञ, राजनीतिज्ञ, चित्रकार आदि सभी

❋ युग बदला, आप बदलें ❋

(लेखक—कविराज रत्नाकर शास्त्री, आयुर्वेद शिरोमणि)

प्रेम जाग्रत था, उन्होंने गुरुकुल इसलिये खोले कि भारतीय भाव, भाषा और वेष की रक्षा का वही साधन हो सकता था। निस्सन्देह भारत की भाव, भाषा, और वेष की रक्षा गुरुकुलों से हुई। परन्तु आज से ५० वर्ष पूर्व भारत के भाव भाषा और वेष जिस मूर्छित दशा में थे वे अभी तक उसी दशा में गुरुकुलों में सुरक्षित रखे हुये हैं। अध्ययन, अध्यापन के वही ढग, रहन-सहन के वही ढर्रे, और शिक्षा दीक्षा के वही काल निक और मौलिक तरीके ही अभी गुरुकुलों की विशेषतायें बनी हुई है। पचास वर्ष पहिले की बीमारी तो अब नहीं रही, परन्तु नुस्खा बदलने की कोशिश नहीं हुई। इसीलिये वह नुस्खा अब मरीज को प्रिय नहीं लगता।

की आवश्यकता है। गुरुकुलों ने इन में से क्या तैयार किया है, और क्या तैयार कर रहे हैं? अभी तक की स्थिति यह है कि गुरुकुलों ने जो स्नातक तैय्यार किये उनके लिये सारे आर्यसमाज के कारखाने में कहीं स्थान नहीं है और सरकारी क्षेत्र में भी उनकी कोई जरूरत नहीं। आखिर ये किस मशीन के पुरजे हैं? कहाँ फिट होंगे?

पचास-चालीस वर्ष पहिले शिक्षा क्षेत्र में कुछ अधिक प्रतियोगिता नहीं थी। आज तो वह पदे पदे है। आज राष्ट्र निर्माण की बात पहिले, पीछे और कुछ। गुरुकुल का स्नातक सारी परलोक की बातें सुनाया करे तो उससे इस राष्ट्र का क्या भला होगा? अब तो कुछ न कुछ इस

लोक का निर्माण होने की बात भी सोचनी चाहिये। वेद शास्त्रों में इहलोक सभी कुछ है, हम दोनों में विकास की योजना बनायें, तभी हमारी लौकिक और पारलौकिक व्यवस्थायें सार्थक होंगी। यही लोक परलोक का निर्माण करता है।

आर्य समाज ने कई वर्ष पहिले घोषणा की थी कि हमारा कार्य धार्मिक आन्दोलन है। अर्थात् हम पुरोहितों और पुजारियों के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे थे। परन्तु ऋषि दयानन्द का अभिप्रायः तो राष्ट्रीय दासता और जीवन की प्रत्येक दुर्बलता के विरुद्ध आन्दोलन करते ही रहने के लिये था। हमें गुरुकुल की शिक्षा क इतने ऊंचे स्तर तक ले जाने की आवश्यकता है कि उसके स्नातक राष्ट्र की सारी संस्थाओं की प्रतियोगिता में प्रथम रहें। हम शिक्षा में पहिले कदम बढ़ाते आये हैं। आगे भी प्रथम ही रहना चाहिये।

इसके लिये हमें अपनी विसंगठित शक्ति को संगठित करने की आवश्यकता है। छोटे छोटे तमाम गुरुकुल और सारे के सारे विश्व विद्यालय अपने मुंह मियांमिट्ठू वाली बात है। मेरी राय में सार्वदेशिक सभा इन काल्पनिक विश्व विद्यालयों को एकत्र केन्द्रित करके एक आर्य समाज विश्वविद्यालय का सूत्रपात करे। निश्चित श्रेणियों तक पढ़ने के बाद केन्द्रीय विद्यालय में ही विद्यार्थी पहुंचते जावें और अन्तिम उपाधि एक ही स्थान से मिला करे। इस प्रकार हम कई गुनी अधिक शक्ति के साथ कई गुना अधिक कार्य कर सकेंगे।

शिक्षा शैली में बड़े परिवर्तन की आवश्यकता है। सारी शिक्षा क्रियात्मक अवश्य होनी चाहिए। विकसित शैलियों को प्राचीन शैली के सम्मिश्रण द्वारा आत्मसात् करने की नितान्त आवश्यकता है। याद रखिये प्रत्येक प्रतिष्ठित पद पर अपने ही स्नातक को सम्मान देने की और हमारा ध्यान अब भी न गया तो कितना भी बड़ा विश्व विद्यालय असफल होकर रहेगा। यदि लोगों को यह शिकायत हो कि पद के लिये जो योग्यता चाहिये वह आप के स्नातक में नहीं तो आप ने ऐसे स्नातक की रचना क्यों की है? स्नातक योग्य ही बनाइये और उसका सम्मान कीजिये। सम्मानित स्नातक ही आप की संस्था का सम्मान है। यदि हम अपने स्नातक का सम्मान नहीं करते तो विश्व से हमें और हमारी संस्था को सम्मान नहीं मिल सकता। यदि अब तक के पुरखों में कमी रही है तो आगे मत रहने दीजिये। युग बदला है आप बदलें।



महान् ऋषि दयानन्द

स्वामी दयानन्द निस्सन्देह एक ऋषि था, जब पण्डितों ने उस पर पत्थर फेंके। उसने अपने में महान् भूत और महान् भविष्य को मिला दिया। वह आया तुम्हारे कारागार तोड़ने के लिये, तुम्हारी आत्माओं को बन्धन से छुड़ाने के लिये। वह तुम्हारे समाधि—स्थानों को खोलने आया। वह तुम्हारे राष्ट्र को पुनर्जीवन देने आया।

—श्री पालरिचार्ड (प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक)।

पावन-पर्व

कैसे देव ! मनाऊँ बोलो पावन-पर्व तुम्हारा
उर में हर्ष-हिलोरें उठतीं पर दृग में जल धारा

(१)

श्रद्धांजलि लेकर बढ़ता जब
करने को अभिनन्दन
तभी नयन के अश्रु भिगो
देते हैं मेरा वन्दन
रुक जाती वन्दना, वेदना बन जाती है कारा
कैसे देव ! मनाऊँ बोलो पावन-पर्व तुम्हारा

(२)

होता है विश्वास नहीं
अब भी तुम यहाँ नहीं हो
होता है विश्वास नहीं
अब भी तुम कहाँ नहीं हो
कण-कण रहा पुकार पधारो हे जीवन ध्रुवतारा
कैसे देव ! मनाऊँ बोलो पावन-पर्व तुम्हारा

(२)

तुमने तो युग २ तप करके
करुणा ञ्चल लहराया
हमने एक पल में करदी
भस्म तुम्हारी काया
युग युगान्त तक दहकेगा अनुताप बना अगारा
कैसे देव ! मनाऊँ बोलो पावन-पर्व तुम्हरा

(४)

आओ बनकर अडिग भक्ति
तुम धरणी के कण - कण में
आओ बनकर अचल शक्ति
तुम जनतो के तन मन में
यह दिवस बन जाय तुम्हारी जयका नूतन नारा
कैसे देव ! मनाऊँ बोलो पावन-पर्व तुम्हारा

—श्री सोहनलाल द्विवेदी

यदि आज ऋषि दयानन्द होते?

लेखक श्री धर्मदेव शास्त्री, दर्शन केशरी (देहरादून)

मेरा विश्वास है कि ऋषि दयानन्द वर्तमान युग को प्रभावित करने वाले महापुरुषों में प्रमुख थे। स्वतन्त्र भारत का जन्म ऋषि के महान् संकल्प का और महात्मा गान्धी की इसी संगठन शक्ति का फल है। स्वराज्य और सुराज्य में यदि एक का चुनाव करना हो तो स्वराज्य को ही चुनना चाहिये यह बात ऋषि ने कही थी जिसे आज हम भारतीय प्रत्यक्ष देख रहे हैं। अब स्वराज्य प्राप्ति के बाद सुराज्य के लिये प्रयत्न करना है जिसका अर्थ है सामाजिक और आर्थिक क्रांति। प्रायः लोग ऋषि दयानन्द को सामाजिक और धार्मिक नेता ही मानते हैं। मेरे विचार से यह ऋषि दयानन्द का अपूर्ण दर्शन है ऋषि ने वर्ण व्यवस्था को गुण कर्म अनुसार चालू करने पर जोर देकर नया आर्थिक कार्यक्रम जगत् के समक्ष रखा है, वेदमन्त्रों में मनुष्यों की व्याख्या में ऋषि ने अग्नि वायु आदि देवों का वर्णन करके वैज्ञानिक आधार पर समाज के आर्थिक ... का विशद वर्णन किया है, जो ... ... शुद्ध आर्थिक है।

वास्तव में हमारा देश राजनीतिक दृष्टि से ही स्वतन्त्र हुआ है सांस्कृतिक गुलामी की बू हमारी शिक्षा में शेष है। जिस दिन हमारा शिक्षित समाज मस्तिष्क से स्वतन्त्र होगा तब ऋषि दयानन्द के द्वारा प्रतिपादित राष्ट्र निर्माण योजना के प्रति अवश्य आकर्षित होगा।

१५ अगस्त को एक प्रतिष्ठित आर्य भाई ने मुझ से प्रश्न किया कि यदि आज दयानन्द होते तो क्या करते? मैंने उत्तर दिया

१ शिक्षा संस्थाओं में वेद का पढ़ना अनिवार्य कर देते अर्थात् वेद की थोड़ी बहुत शिक्षा सभी लें इसका प्रचार करते, बल देते।

२ प्रत्येक शिक्षालय के साथ छात्रावास खोलने पर और उत्तम सदाचार की शिक्षा पर बल देते।

३ शासन तन्त्र को बहुत सस्ता करने पर और शिक्षा का बिना व्यय के चलाने पर जोर देते उद्योग की शिक्षा अनिवार्य करने पर बल देते।

४ चरित्र निर्माण और आत्म निर्माण के साथ भारत, नहीं नहीं विश्व में वेद का प्रचार करने की प्रेरणा करते।

———

—मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य का निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वादविवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो २ अनिष्ट फल हुए होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य का आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सबको विरोध जाल में फंसा रक्खा है यदि ये लोग अपने प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐकमत्य हो जायें। —दयानन्द

आर्य संस्कृति के रक्षक—

दयानन्द सरस्वती

ले० जीवानन्द "आनन्द" साहित्य भूषण राजस्थान

महर्षि दयानन्द सरस्वती का आविर्भाव उस समय हुआ जब वैदिक (आर्य) धर्म पर एक ओर से आधुनिक विज्ञान और दूसरी ओर से ईसाई धर्म का जबरदस्त दबाव पड़ रहा था। इस्लाम के प्रचारकों के आक्रमण भी हो रहे थे। ऋषि दयानन्द ने भारत की तत्कालीन अन्धकार-मय स्थिति से दुखित होकर उन न्यूनताओं को दूर करने की प्रतिज्ञा की, जो आर्य्य संस्कृति को धक्का पहुँचा रही थी। ऋषि के समय के इतिहास को पढ़कर निस्संकोच कहा जा सकता है कि यदि ऋषि दयानन्द सरस्वती उस समय नहीं होते तो अवश्य ही आज आर्य्य जाति विनाश को प्राप्त हो गई होता। हिन्दी भाषा आज राष्ट्र भाषा हो गई है परन्तु ऋषि ने आज से ७७ वर्ष पहले हिन्दी भाषा को राष्ट्र-भाषा स्वीकार किया था। हमारे प्राचीन ग्रन्थ वेद जिनका आर्य-हिन्दू नाम तक भूल गए थे ऋषि ने ही जर्मनी से मँगाकर उनमें आर्य-जाति की आस्था को दृढ़ किया। जिन पश्चिमी सभ्यता के गुण-गान गाते-गाते भारतीय अपने आपको गौरवान्वित समझते थे ऋषि ने उन्हें आर्य-भारतीय सभ्यता का महत्व जतलाकर स्वतन्त्र नागरिक बनने की प्रेरणा की और देश में स्वराज्य स्थापित करने के लिए भारतीय जनता को मार्ग दिखलाया। उन्होंने आर्य्य संस्कृति की रक्षा के लिए ही मुल्ला और पादरियों से शास्त्रार्थ करके आर्य्य संस्कृति की प्रतिष्ठा की।

आज ऋषि दयानन्द के इस पुण्य स्मृति पर्व पर प्रत्येक आर्य सभ्यताभिमानी को श्रद्धांजलि समर्पित कर आर्य संस्कृति की रक्षा के लिये, ऋषिकृत ग्रन्थों के स्वाध्याय द्वारा दृढ़ प्रतिज्ञ बनने का यत्न करना चाहिये।



यज्ञ भावना



[लेखक- श्री पूर्णचन्द्र एडवोकेट आगरा]

यज्ञ भावना व यज्ञ कर्म वैदिक धर्म के क्रियात्मक रूप और आधार हैं। यज्ञ भावना उस सभ्यता की परिचायक है जिसके बिना आज सारे जगत् में घोर अशान्ति प्रचलित है आज मार धाड खचा तानी, लूट खसोट आपा धापी छीना झपटी, रंजिश और व्यक्तिया में संघर्ष, पूँजी पति और गरीबों की लड़ाई, जमीदारों और किसानों में संघर्ष केवल यज्ञ भावना के अभाव के परिणाम के कारण है। युद्ध कलह और भिन्न भिन्न प्रकार के वादों का प्रचलित होना यज्ञ भावना के न होने के कारण है। इस यज्ञ भावना के अभाव ने हमारा दृष्टि कोण उलटा कर दिया है, हम सुख के साधन और दुःख के कारण को बाहर देखते हैं और इस बाह्य दृष्टिकोण से हमारी आन्तरिक भावनाओं का अन्त हो गया है। यज्ञ उस सभ्यता का नाम है जिसके आधार पर हर व्यक्ति, और व्यक्तियों के हर प्रकार का समूह केवल अपनी भलाई लक्ष्य में रख कर नहीं करता परन्तु वह सब की भलाई को लक्ष्य में रखता है। यज्ञशून्य सभ्यता हमें केवल अपनी भलाई का इच्छुक बनाती है। सब अपनी भलाई चाहते हैं दूसरों की भलाई का ध्यान नहीं है और परिणाम यह होता है कि किसी की भी भलाई नहीं होती और लाभ से दूसरे को को हानि और दूसरे के लाभ से मुझे हानि होती है। परिणाम हानि ही है। यज्ञ भावना को व्यावहारिक सभ्यता का अंग बनाने के लिये ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज का दसवां नियम निर्धारित किया है। आर्यसमाज के दस नियम आर्य समाज को एक विशाल यज्ञ के हमारे सामने रखते हैं। यज्ञ के तीन रूप हैं देव पूजा संगति करण और दान। पहिले चार नियम देव पूजा सम्बन्धी हैं पाँच से नौ तक संगति करण के और दसवां दान के रूप में हैं। यह आर्य समाज रूपी विशाल यज्ञ सारे विश्व को यज्ञ मय बनाने के लिये रचा गया है। यज्ञ भावना के बिना संगति करण एक भयानक और हानिकारक रूप धारण कर लेता है। संगति करण जीवन और उसका अभाव रोग या मृत्यु है। संगति करण का आधार देव पूजा और उसका व्यवहारिक रूप दान है। तप-त्याग और बलिदान सब दान के अन्तर्गत है केवल संगति करण की पुकार ने आज सारे संसार को एक युद्ध तंत्र का रूप दे दिया है। राष्ट्र निर्माण राजनैतिक दृष्टि से संगति करण के प्रचलित रूप है, परन्तु राष्ट्र के निर्माणों में देवपूजा अर्थात् व्यवहारिक आस्तिकता के अभाव से राष्ट्र स्वार्थ सिद्धि के गुट्ट हो गये हैं और इस गुट्ट की मनोवृत्ति ने दान और त्याग की भावना का अन्त कर दिया है आज सारा संसार बावनके लगभग राष्ट्रों में विभाजित है। सब राष्ट्र अपने को संगठित बनाना चाहते हैं, अपनी सीमा को सुरक्षित

और अपनी प्रजा को सुखी देखना चाहते हैं। प्रचलित विज्ञान ने सीमाओं की परिभाषा बिल्कुल परिवर्तन कर दी है देश और काल का अन्तर दूर हो गया है। नये २ आविष्कारों ने और तेज वाहनों ने भौगोलिक और प्राकृतिक आधार पर राष्ट्रों की सीमा को तोड़ फोड़ कर चकनाचूर कर दिया है। सागर पहाड़ और वन सब अब सीमा का रूप धारण नहीं कर सकते। विज्ञान ने सबको मिला देने के उपाय प्रस्तुत कर दिये हैं। जब बाह्य सीमायें मिट रही हैं हृदय जगत में स्वार्थ रूपी सीमा दृढ़ होता जा रहा है और हृदय जगत की सीमाओं को विशाल और मर्य्यादित केवल यज्ञ भावना ही कर सकती है। विशाल राजनैतिक और विशाल अर्थ शास्त्र को विशाल धर्म ही मर्य्यादित कर सकता है और धर्म का विशाल रूप ही यज्ञ भावना है। यज्ञ किसी एक क्रिया विशेष का ही नाम नहीं है। अग्निहोत्र या हवन उसका एकरूप है। देवयज्ञ भी केवल घृत और सामग्री डाल कर जलाने का नाम नहीं है। देवयज्ञ सारी दैविक शक्तियों से समन्वय उत्पन्न करने के लिये रचा गया है। यज्ञ की विधि में ईश्वर प्रार्थना आचमन अग्न्याधान, समिधाधान इत्यादि सब विधियाँ तप और याग का वातावरण उत्पन्न करने के लिये हैं वेदी के मध्य में जब हम अग्नि प्रज्वलित करते हैं उस समय हमारा लक्ष्य विशाल पृथ्वी और उज्वल दिव्य लोक है।

अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं को उत्पन्न करने के लिये अग्न्याधान करते समय जो भावना उत्पन्न होती है वह महान लाभदायक है। यज्ञ करने वाले के अन्दर प्रकाश और पृथ्वी दोनों होते हैं और कोई देश विशेष, जाति विशेष या समुदाय विशेष नहीं होते। वेदों में यज्ञवेदी को पृथ्वी का केन्द्र माना है। यज्ञ भावना जो यज्ञ द्वारा उत्पन्न होती है वह भावना सारे संसार को एक सूत्र में बाँध देती है। इसीलिये तो महर्षि ने आर्यसमाज के छठे नियम में संसार के उपकार करने को आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य बताया है। जब तक भारतवर्ष में वर्तमान शताब्दी में राष्ट्र निर्माण की भी कल्पना नहीं थी महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र निर्माण की सारी रूपरेखा सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में निर्धारित कर दी है उनके संसार निर्माण का विधि में एक ग्राम से प्रारम्भ होकर सारा विश्व एक सूत्र में बंध जाता है। सब स्वाधीन रहते हुए भी एक दूसरे के सहायक और पुष्ट करने वाले होते हैं और इस संसार की निर्माण की विधि का आधार और केन्द्र यज्ञ भावना है। लाओ लाओ नहीं, देना देना सीखना आवश्यक है। देने की भावना से मिलना स्वभाविक और अनिवार्य होता है। देने की भावना से जो मिलता है वह सन्तोषप्रद और अभिमान रहित है। लाओ २ की भावना से जो मिलता है वह असंतोष पैदा करने वाला और अभिमान पूर्ण है। मिलता दोनों में है परन्तु लाओ २ से मिल मिलाकर लाख का घर खाक में हो जाता है और देने की भावना से मिट्टी में सोना निकल आता है। खाक स्वर्ण का रूप धारण कर लेती है। आज कल की लाओ २ की भावना ने सारी की सभ्यता को प्रकम्पित किया है। देने की भावना प्रेम की भावना को विस्तृत करेगी। आज कल के दुखी और अशान्त संसार को महर्षि दयानन्द की यज्ञ भावना सम्बन्धी संदेश को घर २ पहुँचा देना है। इस संदेश को पहुँचा देने के लिये दैनिक पत्र एक अचूक साधन है, ऋषि उत्सव के उपलक्ष में आर्य मित्र के पाठक आर्य मित्र को दैनिक रूप देने के लिये कटिबद्ध हो जावें, तो ऋषि का प्रचलित किया हुआ यज्ञ सफल हो।



व्याख्या करके सुन्दर तथा सत्यरूप जनता के सामने रखा। आध्यात्मिकार्थ पौराणिकता तथा विनियोगविधि की सघन श्याम घटाओं में छुपा हुआ वेद-भानु उस सरस्वती के वर पुत्र वीर दयानन्द की कृपा से सहस्त्ररश्मि की भांति प्राची के प्राङ्गण में फिर एक बार उदय हुआ। एक बार फिर संसार को वेदों की ओर लौट चलने के लिये उत्कण्ठित कर दिया। यही ऋषि दयानन्द की महानता है।

———

ऋषि दयानन्द तथा याज्ञिक प्रक्रिया

[लेखिका—श्रीमती सुशीला देवी विद्यालङ्कृत, साहित्य रत्न]

याज्ञिक प्रक्रिया आर्य संस्कृति में बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। इसका उद्भव व उत्थान भारतीयों की आध्यात्मिक भावनाओं के प्राबल्य से हुआ। प्रत्येक सांसारिक जीव कर्मों के बन्धन में उलझा हुआ है। वेद के शब्दों में मनुष्य ऊपर नीचे तथा मध्य में वरुण के पाशों से बन्धा है। योगदर्शन के शब्दों में—

क्लेशमूल कर्माशय दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीय। कर्माशय-कर्मों का जाल क्लेशमूलक है। इन वरुण के पाशों तथा कर्मों के बन्धन से मुक्त होने के लिये मनुष्य ने यज्ञ का ही आश्रय बनाया। योगिराज कृष्ण ने भी 'यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म बन्धनः' कह कर यज्ञार्थ किये गये कर्मों के सिवाय अन्य कर्म बन्धक होते हैं यही सिद्धान्त स्थापित किया है। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर अग्निहोत्र को ऋषियों ने प्रतीक के रूप में सामने रखा। हम पापों को जलावें। पापों को जलाने के लिये अग्नि की आवश्यकता है। उसी अग्नि की प्रतीक यह बाह्याग्नि है। प्रातः सायं मनुष्य अपने पापों का दाह कर नष्ट करे। अग्निहोत्र में 'अयन्त इध्म आत्मा जातवेद स्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभि ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय' यह मन्त्र पढकर इदं मम्नय इदन्नमम' यह पाप मेरा नहीं। यह बन्धक कर्म मेरा नहीं अग्नि का है ऐसा एक बार नहीं पांच बार पाठ किया जाता है। अग्निहोत्र के अन्त में भीः—

'पूर्णमद पूर्णमिदम्' का उच्चारण करते हैं। 'अदः पूर्णम्' वह ब्रह्म पूर्ण है। 'इदं पूर्णम्' यह प्रकृति भी पूर्ण है। इन दोनों के मध्य में मैं ही अपने बन्धक कर्मों के कारण अपूर्ण हूँ। यज्ञ द्वारा मेरे कर्मों का बन्धक व नष्ट हो जायगा तो लो अब सब वे पूर्ण स्वाहा।

सभी पूर्ण हो गये वाह वाह !

प्राचीन आर्य ज्योति के उपासक थे।

प्रातः सायं अग्नि होत्र में—

ओ३म् सूर्यो ज्योतिः ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।

ओ३म् अग्निः ज्योतिः ज्योतिरग्निः स्वाहा।

का पाठ है। ज्योति सूर्य है, सूर्य ज्योति है। जब मैं भी अपना अज्ञान अन्धकार दूर कर ज्योति स्वरूप बन जाऊंगा तब मैं भी सूर्य 'आदित्य' कहलाने का अधिकारी हो जाऊंगा। अग्नि ज्योति है ज्योति अग्नि है मैं भी अग्नि के समान प्रकाशमय बन पाऊं ज्योति स्वरूप प्रभु पूर्ण हैं, ज्योति स्वरूप बन कर मैं भी पूर्ण बन जाऊंगा।

आर्यों का प्रत्येक कार्य यज्ञमय था। यज्ञ मंत्र पूर्वक होने से प्रत्येक कार्य मंत्र पूर्वक करना प्रारम्भ किया जाता है। मनुष्य से देव बनने के इच्छुक गीर्वाण वाणी अथवा वैदिक भाषा का प्रयोग करते थे। वेद की रक्षा का भी उन्होंने यही उपाय उपयुक्त समझा। इस तरह याज्ञिक प्रक्रिया तथा विनियोग विधि का सूत्रपात हुआ। आर्यों की कर्माशय की फांसी से उन्मुक्त होने की भावना ही याज्ञिक प्रक्रिया का प्राण है।

याज्ञिक प्रक्रिया कुछ उदात्त भावनाओं की प्रतीक मात्र है। विनियोग विधि से वैदिक कर्म काण्ड को प्रधान मानकर या वेद मंत्र केवल विधि परक अथवा मन्त्रों के अर्थ को ही विधि समझने से मंत्रों का महत्व व उनका आत्मिक सौन्दर्य नष्ट हो गया। बाह्य कलेवर ही सबकुछ समझा जाने लगा। ऐसे समय में ऋषिने जनताके सामने यज्ञके असली स्वरूप को रखा। विनियोग विधि के रहस्य को स्पष्ट किया। उदाहरणार्थ 'मनारश्वासि' का अर्थ सायण ने किया है विनियोग विधि के अनुसार 'मनुराजा की घोड़ी'। अपौरुषेय वेदों में मनुराजा तथा उसकी घोड़ी कहांसे आ टपके ? ऋषिने इसका निरुक्त शैली के अनुसार अर्थ दिया "हे स्त्री ! तू मनः अश्वासि ! मेरे मन में व्याप्त है इस लिये " नाध्वाभ्वरपाहि " दुराचारिणी स्त्रियों से मेरी रक्षा कर।

निर्वचन से अश्वा का अर्थ हुआ व्याप्त होने वाली। इसी प्रकार यज्ञ शाला में विनियोग होने के कारण पुत्रवती का अर्थ पृथ्वी भी किया जाता है। पत्नी के लिये पृथ्वी शब्द का प्रयोग उसके युवतीपन को सिद्ध करता है। विवाह सस्कार में पति 'द्यौरहं पृथ्वी त्वं' मंत्र पढ़ता है यहां भी पत्नी के लिये पृथ्वी शब्द का प्रयोग होता है। 'क्षेत्र भूता स्मृता नारी' कह कर इस बात की पुष्टि की है। इसी प्रकार इस 'अनर्थ' का ऋषि ने प्रतीकार किया।

संपूर्ण वेद मंत्रों को सायण, महीधर प्रभृति ने वेदों को यज्ञ प्रधान मान याज्ञिक प्रक्रिया में भी घटाया है। जहां कहीं भी 'मर्त्य' शब्द आया वहाँ सायण महाशय मर्त्यः का अर्थ मरण धर्मा करते हुये भी आगे यजमानः अर्थ कर देते हैं।

मर्त्यः मरणधर्मा यजमानः । ६ । २ । ४

विश्वे जनासः, विश्वे सर्वे जनासः ऋत्विजः ५ । २३ । ३, जनानां-यजमानानां पुत्रादीनाम् ६ । १ । ५

इसी प्रकार विप्र; विशः, जन्तुः, वाघुष, मनुष्यः, कविः, मघुमन्, अर्यम्णः, मरुत् पितृ, सूरिः, कृष्टिः, धीरः मनीषी, मुमुक्षु इन शब्दों को भी जिनके अर्थ सरल तथा स्पष्ट हैं सायण ने यजमान या ऋत्विजों के पक्ष में घटाया है। रत्न शब्द का अर्थ रत्न-रमणीय हविः १।१४१-१०। रमणीय हवन सामग्री किया है। ऋषि ने आकर वेदों का सच्चा स्वरूप सामने रखा। याज्ञिक प्रक्रिया को रहस्य समझाया। वेदार्थ सम्बन्धी अज्ञान को दूर कर सत्यार्थ का प्रकाश किया। जर्मनी का प्रसिद्ध वेद भाष्य कार 'रुडोल्फरोथ' सायण को दफनादो कहने लगे। वेदों को गडरियों के गीत तथा बच्चों की बिलबिलाहट बताने वाले 'मेकाले' की सन्तति भी अपने विचार बदलने के लिये बाधित हो उठी। मैक्स-मूलर के मुंह से भी बरबस निकल पड़ा 'वेदों के अन्दर के दार्शनिक विचार हमें चकरा देते हैं। किसी भाषा के ग्रन्थ ने जो काम नहीं किया वह वेदों ने कर दिखाया है, जिन्हें अपने व अपने पूर्वजों का अभिमान है, बौद्धिक विकास की इच्छा है उन सब को वेदों का अभ्यास करना नितान्त आवश्यक है'

ऋषि के भाष्य के द्वारा ही वेदों की पवित्र शिक्षाओं पर मुग्ध होकर आकृतिक विकासवाद के सुयुक्त प्रवर्तक 'डाक्टर अलफ्रेड' लिखते हैं:— "सूक्तों का आश्चर्यजनक संग्रह जो वेद के नाम से प्रसिद्ध है पवित्र और उदात्त शिक्षाओं से भरा हुआ है। इसी प्रकार अमेरिकन योगी 'थोरियो' तथा 'रेवरेन्ड फिलिप्स' आदि ने भी वेदों को एक दिव्य प्रकाश-स्तम्भ, सार्वभौम, ईश्वर तथा जगत् विषयक अत्युत्तम विचारों के प्रतिपादक मानकर सामाजिक विकासवाद का खण्डन किया है।

तात्पर्य यह कि ऋषिने याज्ञिक प्रक्रिया में बुरी तरह उलझे हुये वेदों को, आर्षशैली के द्वारा

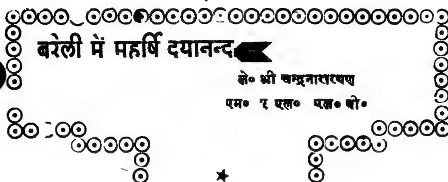
ऋषिराज

[ले० श्री० बहोरी लाल शर्मा उपाध्याय किंकर]

ऋषि तू जीवन का अलंकार।
तेरी पावन श्रुति वाणी की व्यापकता है कैसी अपार।
तू जीवन सरित तरङ्ग का शुचि सुन्दर कर्णधार बना।
माया की विकृत कुछ तर्कों का, तू वीर ध्वस्त तारक बना॥
तेरी स्वयार्थ प्रकाश कान्ति से, आलोकित जग सारा है।
विभु की उस सर्वमयी सत्ता का, दर्शक तुही पियारा है॥
तू मानव में मानवता का करने वाला है सु संचार॥१॥
ऋषि तू जीवन का अलंकार॥
तू विश्व विजेता शूर वीर, तू एक निराला धर्मवीर।
स्वच्छन्द राष्ट्र का निर्माता, तू धीर वीर और कर्मवीर॥
आ ? युवक आर्य पथ पर चल तू जीवन नैया अनायास तरे।
[illegible] आदि [illegible] हरे॥
"किंकर" [illegible] तू निर्भय होकर [illegible] विहार॥२॥
ऋषि तू जीवन का अलंकार॥



जग उठी आज रजनी काली।
विभु ने रत्नाकृत [illegible], अर्पण की यह नीलम थाली।
वह पुण्य स्मृति का दिवस एक, वह एक किन्तु जीवन अनेक।
मानवता का सन्देश एक, ऋषि एक किन्तु दानव अनेक॥
उस व्याप्त आत्मा की ध्वनि से हैं [illegible] मानवी खुशहाली॥१॥
जग उठी आज रजनी काली॥
हे ! आर्य-वीर तुम मार्ग एक; हैं ध्येय एक औ ज्ञेय एक।
ऋषि की वाणी का सार एक ऋषि जीवन का आधार एक।
शुचि 'सत्यमेव जयते' [illegible] "किंकर" का जग रखवाली॥
जग उठी आज रजनी काली॥



बरेली में महर्षि दयानन्द

ले० श्री चन्द्रनारायण
एम० ए एल० एल० बी०

महर्षि बरेली में दो बार पधारे। ऐसा उनके जीवन चरित्र में लिखा है। वे बरेली के प्रसिद्ध रईस श्री लक्ष्मी नारायण खजाँची की विख्यात कश्मीरी कोठी में ठहरे थे। यह कोठी बरेली नगर से तीन मील है। सन् १८६३ ई० में बनी थी फारसी का एक शेर कोठी के ऊपर अङ्कित है। महर्षि प्रथम बार सन् १८७६ में पधारे, द्वितीय बार १४ अगस्त सन् १८७६ को आये। आज से ७० वर्ष पूर्व की बात है।

कोठी अब बुरी दशा में है। निकटवर्ती ग्राम के एक व्यक्ति ने मुझे वह कमरा दिखलाया जिसमें स्वामी जी ठहरे थे। थोड़े दिनों पूर्व तक वह यज्ञ शाला विद्यमान थी जहां स्वामी जी यज्ञ किया करते थे। अब वह भी प्रायः नष्ट हो गई है। स्वामी जी नित्य वहाँ से पहर भर रात रहे चौधरी ताल पर आया करते थे। शौच आदि से मार्ग में निवृत होकर ताल में स्नान करते थे। तत्पश्चात् संध्या व योगाभ्यास करते थे और निवास स्थान पर लौट आते थे। उन दिनों स्वामी जी वेद भाष्य कर रहे थे उनको सेठ लक्ष्मीनारायण जी ने २००) भाष्य के हेतु दिए थे।

बरेली में स्वामी जी का आगमन बहुत ही महत्वपूर्ण घटना है। नित्य सायंकाल को 'टाउन हाल' में व्याख्यान होते थे जिनमें नगर के प्रतिष्ठित जनों के अतिरिक्त शासक जन भी पधारते थे। पादरी स्काट स्वामी जी के व्याख्यानों को बड़ी तत्परता से सुनते थे और नित्य ही आते थे। रविवार होने के कारण एक दिन वह न आ सके। पूछा 'आज भक्त स्काट नहीं दिखाई दिये' लोगों ने कहा महाराज आज इतवार है। गिरजे में उपदेश दे रहे हैं। कहा "चलो-भक्त स्काट का गिरजा देख आवें।" लगभग दो सौ व्यक्तियों का समूह साथ हो लिया। गिरजा निकट ही था। वहां पहुँचने पर जब भक्त स्काट को स्वामी के अकस्मात् पधारने की सूचना हुई तो पुलपिट से उतर आये और महाराज का अति शिष्टाचार पूर्वक स्वागत करके धर्मोपदेश की प्रार्थना की। महाराज ने पुलपिट पर खड़े होकर २० मिनट तक उपदेश किया कि मनुष्य की पूजा मत करो। ईश्वर निराकार है, एक है उसी की उपासना करनी योग्य है। उपस्थित ईसाइयों ने बड़े प्रेम से महाराज के उपदेश को सुना और सत्कार पूर्वक विदा किया।

इन्हीं पादरी स्काट से २४,२५,२६ अगस्त को स्वामी जी से टाउन हाल में शास्त्रार्थ हुआ। उभय पक्ष की सम्मति से सेठ लक्ष्मी नारायण ही मध्यस्थ निर्वाचित हुये। ईश्वर जीव और मुक्ति विषय पर विचार हुआ। जिसका संक्षिप्त वर्णन जीवन चरित्र में दिया हुआ है।

स्वामी जी समय पालने में दक्ष रहते थे एक दिन व्याख्यान में नियत समय के पश्चात् पहुँचे, मन में खेद था। व्याख्यान में कहा कि देर में आ

में मेरा अपराध नहीं, यह बच्चों के बच्चों का दोष है। बात यह थी कि सेठ जी की गाड़ी प्रति दिन स्वामी जी को लेने आया करती थी। उस दिन गाड़ी देर में पहुँचा किन्तु स्वामी जी निश्चित समय पर ही पैदल चल पड़े थे।

मूर्ति पूजा का खण्डन सनातन धर्मावलम्बियों को असह्य था, वेद से अपरिचित थे। पुराणों को ही सब कुछ समझे बैठे थे। आंवला निवासी श्री पंडित अंगद शास्त्री को शास्त्रार्थ हेतु बुलाया गया शास्त्री जी हेकड़ भी थे और वाक् पटु भी किन्तु महाराज से शास्त्रार्थ करने में हिचकिचाते थे। डींगे मारते थे। शेखी बघारते थे किन्तु सम्मुख जाने से कतराते थे। एक दिन एक कोलाहल कारी समूह को लेकर पहुँचे और कोठी के बाहर खड़े होकर कोलाहल भी मचाया और स्वामी जी को अपशब्द भी कहे। चाल यह थी कि इसी प्रकार महाशय की सभा में आकर कोलाहल मचा कर घोषित कर दें कि दयानन्द हार गया। सेठ जी को इसका पहले से ज्ञान हो गया था। इन सब को कोठी में आने से रोक दिया। यह लोग कोलाहल करते हुये चले गए। शास्त्री जी के सुपुत्र पं० दुर्गादत्त बाद के बाद में स्टेशन मास्टर थे। आर्य समाज से सहानुभूति रखते थे किन्तु अपने पिता की विजय का गर्व से वर्णन करते थे।

स्थानीय गवर्नमेंट हाई स्कूल के संस्कृताध्यापक श्री लक्ष्मण शास्त्री भी शास्त्रार्थ करने आये। संस्कृत सम्भाषण प्रारम्भ हुआ। स्वामी जी ने शास्त्री जी को संस्कृत की अशुद्धियां बतलाई इस पर शास्त्री जी निस्तेज हो गए। स्वामी जी ने मूर्ति पूजा का वेद से प्रमाण मांगा। तो शास्त्री जी ने कहा कि वेद कहां है ? वेद को तो शंखासुर पाताल में ले गया। तब स्वामी जी ने वेद की पुस्तक दिखाकर कहा कि, हम ने तुम्हारे प्रमाद रूपी असुर को मार कर वेद जर्मनी से मंगाये है दिखाओ इसमें मूर्ति पूजा का विधान कहां है ? इस पर शास्त्री जी चुप हो गए।

बरेली में स्वामी जी के व्याख्यानों की बड़ी धूम थी। सहस्रों नर नारी व्याख्यान सुनने आते थे। प्रारम्भ में 'ओ३म्' का सस्वर नाद करते फिर व्याख्यान प्रारम्भ करते एक दिन व्याख्यान में श्री रीड़ कमिश्नर, श्री एलेक्जण्डर कलेक्टर आदि भी विराजमान थे। स्वामी जी ने पुराणियों का खण्डन किया कि यह द्रौपदी के पांच पति बताते भी नहीं लजाते और कर्ण को कन्या कहते भी सकोच नहीं करते। इस पर सब लोग बहुत हँसे। अग्रेज शासक भी हंसे। स्वामी जी ताड़ गये, और प्रसंग बदल कर किरानियों पर आक्षेप किया कि यह निराकार प्रभु पर भी दोष लगाने में नहीं हिचकिचाते जो क्वारी मरियम के पेट से ईसा की उत्पत्ति बताते हैं। इस पर अंग्रेज लोग मन में कुपित हुये। दूसरे दिन कलक्टर ने सेठ जी को बुलाकर कहा अपने पंडित से कह दो सख्ती से काम न लें हम किरानी तो शान्त स्वभाव के हैं किन्तु यवन आदि उग्र होते हैं" आदि आदि।

कलक्टर को यह डांट सुनकर सेठ जी के पेट में पानी हो गया। तुरन्त स्वामी जी के पास गये बोले "स्वामी जी"-महाराज! कलक्टर साहब आगे कहने का साहस न हुआ। युवक मुंशीराम ने सेठ जी की घबराहट देखकर वास्तविक बात कहनी चाही स्वामी जी ने बीच में ही टोक कर कहा कि साहब ने यही तो कहा है कि-" स्वामी के व्याख्यान में मतों का खण्डन कटु नहीं होना चाहिये" एक पौराणिक यह सुनकर बोला-स्वामी जी तो अन्तर्यामी है और प्रसन्नता में नाचने लगा मुंशी राम ने कहा कि "हाँ महाराज, बात तो ऐसी ही है। इस पर स्वामी जी ने हँसकर कहा कि यह बात पहले ही क्यों न कह दी, व्यर्थ समय क्यों नष्ट किया ? उस दिन के व्याख्यान में स्वामी जी के बदन पर विशेष तेज था वाणी में विचित्र गर्जना थी कहा "लोग कहते हैं कि सच्ची बात मत कहो, कलक्टर क्रुद्ध हो जायेगा कमिश्नर नाराज हो जायेंगे, गवर्नर देश निकाला कर देगा। अरे!

चक्रवर्ती राजा भी क्यों न हो दयानन्द वही कहेगा जो सत्य है। सत्य को सत्य कहने में भयभीत नहीं होना चाहिए, दिखाओ वह कौन व्यक्ति है जो मेरे आत्मा को मार सकता है आत्मा अमर है। कमिश्नर और कलक्टर सब ने यह शब्द सुने, गर्दनें झुक गई, सभा में चारों ओर सन्नाटा था, अध्यात्मवाद् ने जडवाद् पर विजय पाई।

स्वामी जी का बरेली पधारना एक दैवी घटना थी। विधाता की ओर से प्रेरणा थी कि वे बरेली पधार कर एक नास्तिक को अपना सच्चा अनुयायी बना डालें। मूर्तिपूजक पिता नगर कोतवाल श्री नानकचन्द ने अपने नास्तिक पुत्र मुंशीराम को कहा—"मुंशीराम यहाँ एक स्वामी आया है उसका व्याख्यान सुन आ सम्भव है कि वह तेरी शङ्काओं का निवारण करे। पिता का यह उलहना सुनकर मुंशीराम व्याख्यान सुनने गए। महाराज की प्रबल युक्तियों का हृदय पर प्रभाव पड़ा। एक दिन निवेदन किया—"महाराज आपकी बात तो समझ में आती है, किन्तु हृदय को विश्वास नहीं होता"। उत्तर मिला—ईश्वर तर्क से नहीं, विश्वास से ही मिलता है जब उसकी कृपा होगी तब वह तुम्हारे हृदय में भी विश्वास अंकुरित कर देगा"। सोचते थे कि यह अंग्रेजी से अनभिज्ञ दण्ड कमण्डलधारी स्वामी ऐसी ज्ञान की बातें कैसे जानता है? कुतूहलवश स्वामीजी की सेवा में नित्य आने रहे। बरेली में प्रसिद्ध है कि एक दिन महाराज चौगरी ताल के समीप बैठे योगाभ्यास कर रहे थे। भूमि से बालिश्त भर ऊपर उठ गए। यह चमत्कार देखकर नास्तिक मुंशीराम ने चरणों में सिर झुका दिया गुरु ने मूकवाणी से हृदय आशीर्वाद दिया। शिष्य ने अपने जीवन में गुरु के आशीर्वाद को सार्थक कर दिखाया। उसी मार्ग से (बलिदान मार्ग) से संसार का परित्याग किया जिस मार्ग से गुरुदेव ने किया था। ईश्वर पर ऐसा विश्वास हुआ कि संगीनों के आगे सीना खोलकर खड़े हो गये। धन्य गुरु! धन्य शिष्य!!

महाराज जिस समय बरेली में थे—तो अनाथों और विधवाओं के दुःख से दुखी थे। बरेली में हिन्दू बच्चों को आठ आठ आने में ईसाइयों के हाथ बिकते देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठा। बरेली के नागरिकों को अनाथालय और विधवा आश्रम खोलने का आदेश दिया। तत्कालीन हिन्दू कार्यकर्त्ताओं ने महाराज की प्रेरणा पर बरेली में अनाथालय स्थापित किया। उत्तरी भारत में यह दूसरा अनाथालय था जो स्वामी जी के आग्रह से खुला।

प्रसिद्ध है सेठ लक्ष्मी नारायण के पास वेश्या थी। स्वामी जी के धर्मोपदेश से सेठजी ने उसका परित्याग कर दिया।

गुरुकुल कांगडी और उसके प्रवर्तक महात्मा मुंशीराम का बरेली के आर्यों पर विशेष प्रभाव पड़ा। इनमें से मुख्य श्री बाबू प्रमनारायण तथा डा० श्यामस्वरूप थे बाबूजो ने गोशाला, सरस्वती विद्यालय और अछूत पाठशाला स्थापित की डाक्टर जी ने स्त्री सुधार महाविद्यालय और कल्याणी पाठशालायें स्थापित की। श्री पडित इन्द्र विद्यावाचस्पति, प० बुद्धदेव विद्यालकार, प० ब्रह्मदत्त विद्यालकार ने साहित्याचार्य प० शालग्राम शास्त्री और श्री रामलोचन शास्त्री से शास्त्रार्थ किये। प० रामचन्द्र देहलवी व प० कालीचरण ने मुसलमान मौलवियों से मन्तजेर किये।

आज भी बरेली में सरस्वती इन्टर कालेज, डी-ए-वी स्कूल, स्त्री-सुधार महाविद्यालय, आर्य कन्या पाठशाला हाई स्कूल भूड़, आर्य-कन्या पाठशाला जखशन, ३४ कल्याणी पाठशालायें कार्य कर रही हैं।

माहिर कुरान मु० बलदेवप्रसाद मौलवी फाजल आचार्य विश्वश्रवा, प० विद्यासागर विद्यालकार जैसे योग्य व्यक्ति डा० सत्यव्रत की छत्र छाया में हैं। पांच सहस्र से अधिक आर्यसमाजी हैं—किन्तु बिखरे हुये। ईश्वर ही दया करे!

स्वाधीन भारत और आर्यसमाज

भारत जब पराधीन था तब आर्यसमाज का कार्य देश को स्वाधीन होने योग्य बनाना था। आर्यसमाज ने इस महान कार्य को अपनी शक्ति से अधिक किया। परन्तु आर्यसमाज के कार्य की इसके साथ 'इति श्री' नहीं हो गई। आर्यसमाज का काम समाप्त नहीं हुआ है, वह और बढ़ गया है। अब आर्यसमाज के सामने सबसे बड़ा कार्य यह है कि वह देश को इस योग्य बनाये कि वह अर्जित स्वाधीनता की रक्षा कर सके। प्रश्न यह है क्या आर्यसमाज परिवर्तन के कारण बदले हुए कर्यक्षेत्र के महत्व को समझा है और उसके लिये अपने को योग्य बनाया है।

आज स्थिति क्या है? ऋषि दयानन्द स्वराज्य के लिये जिस उच्च उदात्त और निष्कलंक चरित्र की आवश्यकता बताते थे, उसका जनता में ही नहीं जननायकों में भी अभाव पाया गया। फलत भ्रष्टाचार और उसके कारण अनाज महगी के कारण आज चारों ओर त्राहि त्राहि मची हुई है। प्रश्न यह है इस स्थिति से देश की रक्षा कौन करेगा?

आर्यसमाज को ईंटों का भट्ठा बनाया जाता था जिसकी ईंटें जिस किसी इमारत में लगती थी वह इमारत मजबूत और भव्य बनती थी। १९२५ में मथुरा में ऋषि दयानन्द की जन्म शताब्दी मनाई गई थी। पाँच लाख से अधिक व्यक्ति उस अनुपम और दिव्य समारोह में सम्मिलित हुए थे। पर उसका कुल व्यय कितना था? इसके मुकाबिले में जयपुर-कांग्रेस के अधिवेशन को रखिए ५० लाख रु० से अधिक खर्च हुआ। निस्सन्देह भीड़ भाड़ ज्यादा थी, मुद्रास्फीति का भी असर था। पर आर्यसमाज की मितव्ययिता और समाज के कार्यकर्ताओं की ईमानदारी को इस प्रसंग में न भूलना चाहिये। जयपुर कांग्रेस के अधिवेशन के बाद स्वागत समिति के अधिकारियों पर जो दोषारोपण किये गये यदि उनको ध्यान में रखा जाय, तो सार्वजनिक जीवन और संगठन में विशुद्ध चरित्र का महत्व और अधिक स्पष्ट हो जाता। आवश्यकता इस बात की है कि चारित्रिक विशुद्धता की अपनी इस विशेषता और अपने इस उत्कृष्ट गुण का प्रभाव व्यापक क्षेत्र में प्रचार और प्रसार करे। आर्यसमाज का जो कोई व्यक्ति जिस किसी संस्था में जाय, वहाँ समाज की इस विशेषता को प्रकट हुये बगैर न रहने दे।

महा भारतकार ने एक जगह लिखा है —

"जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः॥"

भारतीय जनता की आज यही अवस्था है। अन्यथा हम यह न सुनते कि तीन अरब रुपया इन्कमटैक्स देने वाले सरकार की नजरों से बचा ले गये और उन्होंने डकार भी नहीं ली। हमारा देश कृषि प्रधान देश कहा जाता है, पर आज शुद्ध घी और दूध के इस देश में दर्शन दुर्लभ हो गये हैं। न्यूयार्क और लन्दन में छः आना सेर शुद्ध दूध सुलभ है, पर दिल्ली में १ रु० सेर का शुद्ध दूध दुर्लभ है। आत्मा की चिन्ता में निरत भारत आज 'टका धर्म' का इतना कट्टर अनुयायी हो गया है नगद नारायण की पूजा के सिवाय और किसी की पूजा में उसका विश्वास ही नहीं रहा। आज यदि इस देश में भगवान साक्षात् अवतार लें — यदि यह सम्भव हो—और कहें कि धर्म का यह पथ है, तो दस प्रतिशत लोग भी उसपर चलेंगे यह सन्दिग्ध है। उनको भी भगवान व्यास के समान बाध्य होकर यही कहना पड़ेगा —

"ऊर्ध्वबाहु विरौम्येष,
न हि कश्चित शृणोति मे।"

भारत की सुप्त आत्मा के जगाने का महान् कार्य आज इसलिये आर्य समाज के सामने है। धर्म भावना पुनः भारतीयों के हृदय में प्रतिष्ठित हो, सच्चे धर्म का राज्य भारत में पुनः स्थापित हो, और अणु युग के मुकाबिले में रत में धर्म युग को प्रतिष्ठा हो, यह आर्य समाज हो कर सकता है। सेवा जिनकी वृत्ति न हो, पर सेवामय ही जिनका जीवन हो, और त्याग जिनके जीवन का उत्थान न हो, बल्कि व्रत हो, ऐसे आर्यसमाज के कार्यकर्ता और ऋषि दयानन्द की शिक्षा ही इस मिशनको सफल बना सकते हैं और दुनियाको अपने जीवन व्यवहार

(ले० अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार, हालदास सदन, दिल्ली)

से बता सकते हैं कि इस अणु युग में भी गुरु ऋषि वशिष्ठ का यह बचन ध्रुव रूप है।

"धिक् बलं क्षत्रिय बलं।
ब्रह्म तेजो बलं बलम् ॥"

कुम्भ के अवसर पर गंगा के पवित्र तट पर ऋषि दयानन्द ने 'पाखण्ड खण्डिनी पताका' फहराई थी। हरद्वार में कुम्भ पुनः आ रहा है। देखना है, ऋषि द्वारा फहराई 'प्रथम पताका' झुकने न पाये! हम देखें ऋषि द्वारा फहराई पताका को उठाने की शक्ति हमारे बाहुओं में है या नहीं। हमें सोचना है, जिस पाखण्ड का अन्त करने का बीड़ा ऋषि ने उठाया था, क्या उसका अन्त हो गया? जिस अविद्या अज्ञानान्धकार को दूर करने का महा प्रयत्न ऋषि ने किया था, क्या वह पूर्ण हो गया? आज भी क्या हमारा शिक्षित समाज हरिजनों से घृणा नहीं करता, और उनको अपनी बराबरी में बैठने देने का नाम तो दूर रहा, उसको घर के बरामदे तक में आने देने के लिए उद्यत नहीं। मानवता का यह अपमान क्या—

"'यथेमां वाचं कल्याणी मावदानी जनेभ्यः।"
के उद्घोषक मानवमात्र के समानाधिकार के प्रबल समर्थक ऋषि दयानन्द के अनुयायी सहन करेंगे? आज भी मानवता पीड़ित दलित, और शोषित है। उसकी रक्षा का भार आर्य समाज के सिवाय उठाने वाला कौन है?

ब्रिटिश शासन ने इस देश में सुन्दर न्याय पद्धति की स्थापना की। पर उसके कारण अविद्या और अज्ञान का अन्त नहीं हुआ। मद्रास जैसे शहर के पास के गांव में दिव्य-परीक्षा का लिया जाना, और एक स्वामी का भृत्यों पर चोरी का संदेह होने के कारण उनको उबलते तेल मे अंगुली डालने के लिये कहना अन्धविश्वास और रूढ़ि पूजा का परिणाम नहीं तो क्या है? भूत-प्रेतों पर आज भी विश्वास जनता का बना हुआ है। आज भी लोग इस सिद्धि के लिये देवी-देवताओं की मानता मना रहे हैं। आज भी अपनी सन्तान को सुखी देखने, अपने को रोग निवृत्त करने के लिये मुहल्ले और गली म खेलने दूसरे बच्चों को गरम लोहे से दागने से नहीं चूकतीं, उच्च शिक्षित भी दहेज लेने के लोभ का संयम करने में असमर्थ है, और ऐसे आर्यसमाजियों की कमी नहीं, जो आज भी चालीस साल शुद्ध हुये आर्योपदेशक को अपने घर पत्तल मे ही भोजन देते हैं। इसलिए यह सोचना कि ऋषि दयानन्द ने पाखण्ड खण्डिनी पताका जिस उद्देश्य से फहराई थी वह पूरी हो गई है, भ्रममात्र है। आर्य समाज के लिये आज पहले से भी अधिक काम है। आर्य समाज की परीक्षा का समय वस्तुतः अब आया है। नवीन भारतीय समाज की नीव में देने के लिये वस्तुतः उसके पास कुछ और सामग्री हैं, इसका परिचय अब विश्व को मिलेगा। नूतन भारतीय समाज का आधार क्या हो, इसका निर्णय मात्र यदि आर्य समाज प्रदान कर सका, तो वह भारत की ही नहीं, अपितु विश्व की भी अनुपम सेवा करेगा और एक ऐसे साधन की सृष्टि करेगा, जो उसके आदर्शों के अनुकूल होगा।

आर्यसमाज एक देशीय नहीं है। ऋषि का संदेश भी एकदेशीय नहीं है। आर्य समाज का विषय उन उपनिवेशों तक भी सीमित नहीं है जिनमें भारतीय बसे हुये हैं। प्रत्युत वह सर्वदेशीय है, और उसका मिशन भी सार्वजनीन है। अणु युग मे डरते डरते पैर बढ़ा रहा संसार विनाश से, और संहार से त्राण चाहता है। विश्व की दो महान शक्तियों की प्रतिस्पर्धा के कारण भावी महायुद्ध के कारण होने वाले महा विनाश से मानव की रक्षा कौन करेगा? क्या आर्य समाज मानव समाज की इस समय रक्षा के लिये आगे नहीं बढ़ेगा? अलखनन्दा की चोटी पर खड़े हुए जिसके संस्थापक ने विश्व की मुक्ति में अपनी मुक्ति मानी, उसके अनुयायी क्या आज कर्तव्य से विमुख होंगे? आज से पच्चीस साल पहले (१९२५ में) ऋषि की जन्मशताब्दी पर मथुरा की गलियों को जिन लोगों ने अपने इस संकल्प से गुंजा दिया था: —

"यहां बहेगी फिर प्रेम गंगा
जो संसार की ताप माला हरेगी"।

आज वही लोग क्या निराश और बंध-रचन की ओर विवशता के साथ व.ने रहे मानव समाज की रक्षा का पुण्य-संकल्प न करेंगे ? अणु-शक्ति का प्रयोग मानव समाज का सर्वनाश कर देगा आज आत्मिक और आध्यात्मिक ज्योति को प्रज्वलित करने से ही मानव-समाज की सर्वनाश से रक्षा सम्भव है। आर्यसमाज से अधिक और कोई संस्था इस महान कार्य को करने के लिए उपयुक्त नहीं है। दीपमाला के स्निग्ध प्रकाश के साथ ऋषि ने अध्यात्म ज्योति को इस दिन मिला दिया था। आज पुनः लौकिक और अलौकिक को मिलाने की आवश्यकता है। क्या आर्य समाज ऋषि के ऋण से उऋण होने के लिए मानव समाज की अणु-बमों के प्रहार से रक्षा करने लिए आगे नहीं बढ़ेगा ? अणु बम उसके आस्तिकता को चुनौती दे रहा है। क्या इस चैलेंज को स्वीकार करने से आर्यसमाज इन्कार करेगा।



आर्य मित्र के ग्राहक

बनिए

और बनाइये



दैनिक

आ र्य मि त्र

डेढ़ लाख के लगभग हिस्से प्राप्त

* * *

आर्य मित्र प्रकाशन लिमिटेड द्वारा दैनिक आर्य मित्र के प्रकाशन का प्रबन्ध किया जा रहा है। मैशीनें मंगवाने की आयोजना हो रही है। उचित स्थान की व्यवस्था होते ही पत्र का प्रकाशन आरम्भ हो जायगा

डेढ़ लाख हिस्सों का धन प्राप्त हो गया है। एक भाग २५) का है।

लाख रुपया और

* * *

आर्य पुरुषों का कर्तव्य

* * *

वर्तमान परिस्थिति में आर्य समाज को अपने विचार व्यक्त करने के लिये एक दैनिक पत्र की आवश्यकता को सभी आर्य पुरुष अनुभव तो करते हैं परन्तु विशेष ध्यान नहीं देते यह कार्य थोड़े प्रयत्न से ही सम्पन्न हो सकता है यदि आर्यपुरुष अपनेउत्तरदायित्व को पूर्ण करने का प्रयत्न करें।

❀ आर्यमित्र प्रकाशन लिमिटेड ❀

५ हिवेट रोड, लखनऊ

मुद्रक—लाला जगतप्रसाद भगवानदीन आर्य भास्कर प्रेस लखनऊ



क्रान्ति के अग्रदूत



महर्षि दयानन्द सरस्वती

ऋष्यङ्क




अमर ज्योति की  शाश्वत किरणें

जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रति-पादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किंतु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है।

सत्यार्थ प्रकाश (भूमिका)

● ● ●

जैसे परमेश्वर के सत्य न्याय दया सर्व सामर्थ्य और सर्वज्ञ-त्वादि अनन्त गुण हैं वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ वा जीव के नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है उसके गुण कर्म स्वभाव भी सत्य होते हैं इसलिए मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें उससे भिन्न की कभी न करें। (स० प्र० १ समुल्लास)

● ●

वह कुल धन्य ! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान हों जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न होवे तब तक सुशीलता का उपदेश करें।

(स० प्र० २ समुल्लास)

● ●

जो कोई रजवीर्य के योग से (जन्म से) वर्ण व्यवस्था माने और गुण कर्म के योग से न माने तो उससे पूछना चाहिए कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच अन्त्यज अथवा कृश्चीन मुसलमान हो गया हो उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते। तब यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये इसलिए वह ब्राह्मण नहीं है, इससे यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हों, वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में, और उत्तम वर्णस्थ हो के नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये। (स० प्र० ४ समुल्लास)

● ● ●

जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मत मतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है।

(अनुभूमिका ११ समु०




सम्पादक—  पं० धर्मपाल विद्यालंकार

आर्य्यमित्र

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति =)

इस अङ्क का
।=) छः आना

वर्ष ५२ | दीपावली, ता० ९ नवम्बर १९५० ई० | अङ्क ४३

जीवन - धन

गिरि, गह्वर, नदी, ताल, सागर
नारे, कछार, गृह, ग्राम, नगर,
मन्दिर, मठ, मस्जिद, गिरजाघर,
मैं फिरी खोजती वन - उपवन,
तुम मिले न मेरे जीवन - धन।

व्रत, उद्यापन, उपवास किये,
तप साधे तीर्थ - प्रवास किये,
निशि - वासर सङ्कट - त्रास दिये—
हो गया सूख कर काँटा तन,
तुम मिले न मेरे जीवन - धन।

भूली, भटकी, बहकाई मैं
रोई, घुट - घुट घबराई मैं,
प्रियतम का पता न पाई मैं,
आगई जरा, बीता यौवन,
तुम मिले न मेरे जीवन धन।

तम मिटा दिव्य दर्शन पाये,
अणु - अणु में देव दृष्ट आये,
भर अङ्क स्नेह से अपनाये,
हो गई मूक, अब व्यर्थ कथन,
तुम मिले न मेरे जीवन - धन।




रचयिता—श्री प० हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न'





दयालु दयानन्द

(लेखक—श्री प० राजगुरु धुरेन्द्रजी शास्त्री)



अजमेर में आना सागर का बड़ा ही सुन्दर, चित्ताकर्षक एवं मन मोहक दृश्य है इसी लिए अनेक नर नारी वहां जाते हैं। विवेकानन्द और श्रुतप्रिय नाम के दो विद्यार्थी भी यहा उस दृश्य को देखने के लिये गये। सीढ़ियों पर पैर लटका कर आना सागर की विशाल तरंगों को देख कर अपने मन को प्रमुदित करने लगे। अकस्मात श्रुतप्रिय की दृष्टि उधर गई जहा अनेक नर नारी विरक्त व्यापार होकर शान्त स्वभाव से बैठे थे। उसने विवेकानन्द से पूछा भाई विवेक? यह अपार जन समूह वहा क्यों है? क्या हो रहा है?

विवेकानन्द—अरे श्रुत! वह स्वामी का बाग है अर्थात् वहा ही महर्षि दयानन्द जी महाराज की अन्त्येष्टि हुई थी। आज दिवाली का दिन है। महर्षि ऋषि दयानन्द जी महाराज ने सम्बत १६४० में आज के ही दिन देह दीपक को बुझाया था और कैवल्य धाम में जा विराजे थे। उन्हीं की जीवन घटनाओं को सुनकर आनन्द की अगाध तरङ्ग गंगा में गोते लगाने के लिए ये सब समुपस्थित हैं।

श्रुतप्रिय, भाई विवेक! यदि आप कुछ जानते हों तो मुझे भी सुना दो?

विवेकानन्द, अच्छा भाई श्रुत ध्यान से सुनो मैं सुनाता हूँ।

जैसा इनका नाम है वैसे ही ये थे, अर्थात् इन के नाम में दया है इसलिए ये बड़े ही दयालु थे। बीच मे ही श्रुतप्रिय पूछ बैठे कि इन की दयालुता क्या थी? कोई घटना सुना दो।

तुम बीच की घटना क्यों सुनना चाहते हो मैं प्रारम्भ से ही सुनाता हूँ ऐसा विवेकान्द ने कहा परन्तु नहीं नहीं मुझे आरम्भ की घटना नहीं सुननी है अपितु दयालुता की घटना ही सुनाओ। श्रुतप्रिय ने आग्रह किया।

विवेकानद—अच्छा सुनो, बीच की घटना ही सुनलोः—

जिला बुलंदशहर में कर्णवास एक ग्राम है गंगा के किनारे पर है, वहाँ एक दिन ठाकुर कर्णसिंह ने तलवार से और उसके साथी ने लाठी से स्वामी जी महाराज पर आक्रमण किया। उसके आक्रमण को स्वामी जी ने रोक दिया। अन्य अनेक भक्तों के आग्रह करनेपर भी पुलिस में इसकी सूचना न की।

जीवन जी गोसाई ने बलदेवसिंह के द्वारा स्वामी जी को विष दिलाने का उपक्रम किया था, इसके विरुद्ध भी स्वामी जी महाराज ने कोई कार्यवाही न की।

अनूपशहर में एक व्यक्ति ने पान में विष दे दिया। स्वामी जी महाराज ने उस विष को यौगिक क्रिया से निकाल दिया परंतु उस व्यक्ति से कुछ नहीं कहा। जब स्वामी जी महाराज को यह ज्ञात हुआ कि वहाँ के तहसीलदार सैयद मुहम्मद ने उसको हवालात में बन्द करा दिया तो स्वामी जी ने यह कहकर उस व्यक्ति को हवालात से निकलवा दिया कि मैं किसी व्यक्ति को कैद कराने के लये नही आया हूँ प्रत्युत कैद से छुड़ाने के लिये ही आया हूँ। इसी प्रकार की अन्य अनेक घटनाएँ उनके जीवन की हैं। इसलिये उनका नाम दयालु दयानन्द था।

श्रुतप्रिय—क्या अपराधी को दण्ड न दिलाना दयालुता है?

विवेकानद—नहीं नहीं, अपराधी को दण्ड दिलाना तो दयालुता नहीं है परंतु स्वामी जी महाराज का व्यवहार ऐसा था कि उनके व्यक्तित्व पर कोई आक्रमण करे अथवा उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति का अपहरण करे तब तो दया का दरिया बहा देते थे जब कोई सार्वजनिक जीवन के सुन्दर सिद्धांतों को समाप्त करने की कुचेष्टा करे अथवा सार्वजनिक संपत्ति को स्वाधिकार में करने का प्रबल प्रयत्न करे तो दण्ड देने अथवा दिलाने का प्रचुर प्रयास करते थे, उदाहरणार्थ एक घटना प्रस्तुत करता हूँ। ध्यान से सुनो।








मा० श्री चौ० गिरधारी लाल जी मंत्री एक्साइज तथा जेल विभाग का संदेश

"मेरा विश्वास है कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने अथक प्रयासों से वैदिक संस्कृति के पुनर्जागरण तथा उसकी व्यावहारिकता की वृद्धि के लिये जो कुछ किया, उतना किसी एक व्यक्ति के लिये सम्भव नहीं है। जबतक आर्यमित्र प्रात स्मरणीय स्वामी जी के कार्य सम्पादन के लिये अग्रणी शक्ति बना रहेगा, तबतक मेरी तथा मेरे जैसे सभी लोगों की सद्भावना इसके साथ रहेगी।

मुझे प्रसन्नता है कि आर्यमित्र का दीपावली अङ्क निकल रहा है। मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि यह अङ्क हमारे सामाजिक जीवन को आलोकित करेगा। इसकी सफलता के लिये अपनी सद्भावना भेजने में मुझे अतीव प्रसन्नता हो रही है।

गिरधारीलाल

मुंशी बख्तावरसिंह ने कुछ रुपये प्रेस के गबन किये थे इसलिये स्वामी जी महाराज ने सेठ कालीचरण रामचरण को पत्र लिखा कि "बख्तावरसिंह ने टाइप, कागजादि, प्रेस की वस्तुओं और बाहर की छपाई में से हज़ारों रुपयों का गबन किया है। जो भद्र पुरुष उसके कागजात को देखता है, दांतों नीचे अगुली दबा शोक से कहता है कि उसने ऐसा क्यों किया," जब उसकी चोरी सिद्ध हो गई तो हमने नालिश करने से पहले चाहा कि उससे हिसाब समझ लेना अवश्य उचित है। 'इसी पत्र में आगे लिखा है कि" यदि वह यहाँ आगया और पंचायत करके हिसाब का फैसला कर दिया तो अच्छा है नहीं तो यह मामला अदालत में अवश्य जायगा 'आगे फिर हमको कोई दोष न देना क्योंकि हमने केवल परकार्य और स्वदेशोन्नति के कारण अपने समाधि और ब्रह्मानंद को छोड़कर यह काय ग्रहण किया है। पुन: इसी पत्र में आगे लिखा है कि "जो यह केवल हमारा ही धन होता तो कुछ पर्वाह न थी परंतु यह सब संसार का धन है।"

पुन. एक पत्र सेठ निर्भयराम जो को लिखा कि "प्रथम तो पंचायत निपट जाये तो बहुत ही अच्छा है। दूसरे नहीं तो उस पर हिसाब फहमी की नालिश और जो अब भी न माने तो फौजदारी वा दीवानी में दावा किया जावे"

इसी पत्र में आगे पुनः लिखा है कि "और जो तुम इसका प्रबन्ध कुछ न करोगे तो ऐसी लूटमार से हमारे पास के पुस्तकादि भी कोई लूट लेगा। वेद भाष्य आदि सब काम छोड़ देंगे। केवल एक लगोटी लगाके आनंद में विचरेंगे"

भूतप्रिय – दण्ड दिलाने के लिये यहाँ तो स्वामी जी महाराज बड़े समुत्सुक प्रतीत होते हैं। दण्ड दिलाने पर दयालुता कहाँ रही?

विवेकानन्द – अरे भूतप्रिय: तुम बड़े ही भोले व्यक्ति हो। दण्ड दिलाना ही तो बड़ी दयालुता है। यदि दण्ड न दिलाया जावे तो वह व्यक्ति अन्य अन्य उग्र अपराध करने पर उतारू हो जायगा उन अन्य अनेक उग्र पापों का फल दु.ख जन्म जन्मान्तर में भोगना पड़ेगा। दण्ड मिलने से अपराध न करेगा अपराध होने से जन्म जन्मान्तर से बच जावेगा। दण्ड में कैसी सुन्दर दयालुता है। इसलिये महर्षि दयानद जी महाराज का नाम "दयालु दयानद" सार्थक हो है।

ऐसा सुनकर भूतप्रिय ने दोनों हाथ ठोड़ी के नीचे रख कर कुछ सोच कर कहा कि भाई विवेक! दण्ड और दयालुता को मैं अब समझा हूं। अब तो वहाँ चलो और महर्षि दयानंद जी महाराज के जीवन की कृति को श्रवण कर अपने जीवन को उस सुन्दर सिद्धांत के सांचे में परिणत करने का प्रचुर प्रयास करें। दोनों ही चल दिये और वहाँ जाकर उन्होंने क्या सुना यह पाठक भविष्य में "आर्य मित्र" में ही पढ़ सकेंगे।

———







प्रचार योजना और उसकी सफलता

दुःख है कि आर्य समाज ने अपने असली काम को भुला दिया। समय जबकि वैदिक धर्म के प्रचार की अधिक आवश्यकता थी, हम लोग उस काम को छोड़कर साधारण निर्वाचन तथा रोटिन चक्र में लग गये। पहिला सा जोश और तत्परता जाती रही। अनेक संस्थाओं को खोलकर अपनी शक्ति को उस ओर लगा दिया। उन संस्थाओं को स्थिर रखने के लिये दिन रात धन जमा करने में लग गये देश में जो कुरीतियां फैली हुई हैं उनकी खंडनात्मक आलोचना बन्द कर दी।

मेरी ४०, ४५ वर्ष की समाज सेवा में ऐसा गम्भीर समय कभी नहीं आया जैसा यह है। अब भी यदि हम लोग चेते और अपने कर्तव्य को समझें तो सनातन वैदिक धर्म का प्रचार कर सकते हैं और ऋषि ऋण को थोड़ा बहुत चुका सकते हैं।

वैदिक धर्म के प्रचार के दो ही प्रकार हैं एक मौखिक तथा दूसरा लेख द्वारा। हम इन दोनों को सङ्गठित रूप से नहीं कर रहे हैं। हमारे देश में सड़कों और रास्तों की कमी होते हुये भी बहुत से लम्बे चौड़े और अच्छे मार्ग हैं जो उत्तर प्रदेश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचते हैं और आजकल के मोटर और चक्र के युग में यदि हम प्रयत्न करें तो अच्छे दो चार उपदेशक और भजनीक भी प्रान्त में बहुत बड़े भाग में वैदिक धर्म का प्रचार कर सकते हैं।

मेरा एक सुझाव है जो उत्तर प्रदेशीय आर्य जगत के सन्मुख प्रस्तुत करता हूँ। मुझे आशा है कि आर्य भाई बहिन इस पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे और उसे सफल बनाने का प्रयत्न भी करेंगे।

सुझाव यह है कि एक विशेष प्रचार यात्रा यान तैयार कराया जाय उसमें ४ ५ उपदेशक और भजन मंडली के यात्रा करने, रात्रि को सोने आदि की व्यवस्था की जाय। एक छोटा सा शामयाना और डेरा भी रखा जाय। माइक्रोफोन तथा लाउडस्पीकर भी लगाये जाय। प्रान्त के एक सिरे तक प्रचार कराया जाय। नगरों के अतिरिक्त बहुत से, ग्रामों में भी इस



लेखक

प्रकार प्रचार हो जाय। पहिले से ही प्रोग्राम तैयार करने से नगर और ग्राम समाजों के वार्षिक उत्सव भी बहुत थोड़े व्यय में हो सकेंगे। यात्रा में व्यय भी कम होगा। और रेल यात्रा में जो कठिनाइयां होती हैं वह भी न होंगी।

ऐसा यान बनाने और उपरोक्त वस्तुओं से सुसज्जित करने में २०,२५ हजार रुपये से अधिक व्यय न होगा। अनेक समाजें २५ अथवा ५० वर्षीय जयन्ती (जुबली) समारोह पूर्वक मनाती हैं जैसे कि अभी हाल में प्रयाग की कटरा आर्य समाज मनाने जा रही है। ऐसे उत्सवों के लिये बहुत धन इकट्ठा किया जाता है। यदि कोई समाज ऐसे यान बनाने के लिये उस एकत्रित धन में से पर्याप्त राशि व्यय कर दे तो उस यान का नाम उसी समाज पर रखकर



श्री मदनमोहनजी सेठ रि० जज कार्यकर्ता प्रधान आ०प्र०सभा उत्तरप्रदेश






कर्त्तव्य की पुकार

[श्री आनन्द स्वामी सरस्वती]

श्री स्वामीजी ज्येष्ठ से भाद्र पद तक गंगोत्री, गोमुख आदि के भ्रमण पर गये थे वहां आप ५ दिन तक उस गुफा में भी रहे जिसमें महर्षि ने तपस्या की थी। आपने बताया कि वह गुफा लगभग १८ फुट लम्बी तथा ६ फुट चौड़ी है। आप गङ्गोत्री के संस्मरण भी लिख रहे हैं। —सम्पादक।

ऋषि दयानन्द के जीवन की कुछ घटनायें अभी ऐसी हैं जिनका पता जनता को नहीं मिल सका परन्तु अब धीरे २ उन घटनाओं का परिचय होने लगा है। थोड़े दिन हुये मुझे यह पता लगा कि भारत को स्वतन्त्र बनाने के लिये सबसे प्रथम उद्योग जो सन् ५७ में हुआ और जिसे अंग्रेजी सरकार विप्लव के नाम से पुकारती रही उसमें ऋषि दयानन्द ने तांतिया टोपी के साथ मिलकर कार्य किया। लगभग २ वर्ष झांसी में इसी उद्देश्य के लिये उन्होंने निवास किया और भिन्न २ राजाओं को स्वतन्त्रता के युद्ध में भाग लेने के लिये वह प्रेरणा करते रहे।

सन् ५७ के इस विप्लव में ऋषि दयानन्द ने भली भांति देख लिया कि भारत में ऊंच नीच, मतभेद, परस्पर के वैमनस्य इतने बढ़े हुये हैं कि जब तक इन्हें दूर न किया जायगा तब तक वास्तविक रूप में भारत का स्वतन्त्र होना कठिन है, इसके साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि कोरी राजनीति और केवल मायावाद भारत को अपने लक्ष्य की ओर न ले जा सकेगा और जब स्वतन्त्रता का यह युद्ध असफल रह गया तब उन्होंने उत्तराखण्ड के पर्वतों की कन्दराओं की ओर पग बढ़ाया। मैंने वह कन्दरायें देखी हैं और उस गुफा में भी ५ दिन निवास कर आया हूँ जिसमें ऋषि दयानन्द ने आत्मदर्शन किया। यह गुफा गङ्गोत्री जाते हुये गंगोत्री से १२ मील नीचे गंगा के किनारे पर्वत के अन्दर अब तक विद्यमान है। निरन्तर कई वर्ष तपश्चर्या में व्यतीत करने के पश्चात् ऋषि ने जब आत्म दर्शन पा लिये तब वह फिर नीचे

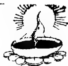


लेखक

उतरे और कार्य क्षेत्र में कूद पड़े। हर प्रकार के पूरे अनुभव के पश्चात् उन्होंने जो कार्य किया उसके अन्दर से यही ध्वनि उठती हुई प्रतीत होती है कि जब तक आपस की मतभेद ऊंच नीच की भावना भाषा भेद की भिन्नता और कोरा मायावाद दूर नहीं होता उस समय तक न तो भारत का और ना ही संसार के अन्य देशों का सुधार हो सकता है। और आज दीवाली की इस रात्रि में एकान्त में बैठकर विचार कीजिये कि ऋषि दयानन्द ने जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये माता पिता के लाड प्यार का त्याग किया और इससे भी बढ़कर मोक्ष आनन्द को त्याग किया क्या हमारा कर्तव्य नहीं कि हम उस तपस्वी त्यागी और ऋषि के बताये मार्ग पर चलने की आज प्रतिज्ञा करें ?

उसकी जयन्ती की स्मृति बहुत समय तक स्थिर रखी जा सकेगी। चलनाऊ व्यय और उपदेशकों का प्रबन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा किया जा सकता है। क्या मैं आशा करूं कि ऋषि के इस पुण्य दिन की स्मृति में कोई एक या एक से अधिक समाज मिलकर इस कार्य को करने का भार अपने ऊपर लेंगी।





तम का विनाशक पर्व

दीपावली आरही है, इसके प्रकाश में हमारा जातीय जीवन शताब्दियों रह चुका है और रहेगा, वह कौन सी खोज थी जो प्रतिवर्ष दीये जला २ उसके टिमटिमाते प्रकाश से हमारी जाति और हमारा राष्ट्र पूरा करना चाहता था, क्या बात थी, कि हमने प्रतिवर्ष दिये जलाये और अब तक जलाते आरहे हैं। हमारी आपेक्षा अतृप्त बनी है और हम अपनी वह खोज पूरी न कर पाये जो इस प्रकाश में हमें करती थी। आइये हम आज गम्भीरता के साथ इस प्रकाश में आत्म विशेषण करें आत्म निरीक्षण करे और आत्म परीक्षण करे।

हमारे राष्ट्रीय जीवन में ऐसा अनेक विभूतियों आई जिन्होंने जाति को आत्म दर्शन, चरित्र निर्माण और शक्ति संचय के लिये आँखे दीं, उन आँखों से देखने के लिए अपने अमृत उपदेश के प्रकाश दायिनी रश्मियां हमें उनसे मिली हैं, अपनी मौलिक विशेषताओं, प्राकृतिक सौन्दर्य और ऐश्वर्य की विशालताओं और आकर्षण के कारण यह भारत भूमि सदा बाहर के आक्रमणों का अखाड़ा रही है, मधुमक्खी परिश्रम करके अपना मधु पूप (छत्ता) बनाती है, अहेरी उसे तोड़कर मसल देता है, और मसल देता है उसके साथ मधुमक्खी के अंडे और बच्चे। हाय! इस धरातल के निवासियों के पूर्वजों ने अपना ज्ञान भण्डार विविध प्रकार के साहित्य के रूप में निर्मित किया। जिन महाप्रासादों और अट्टालिकाओं का निर्माण करके जिसे गौरवान्वित किया, जो रत्नादि संचित धन राशि जुटाई और और हरे भरे खेतों को लहराया उसे लुटेरों ने मनमाना लूटा और विध्वंस किया। अनाचार फैले, कुविचार बढ़ाये गये, राजनीतिक पराधीनता के पाश में पड़कर मानसिक दासता का दुर्दिन देखना पड़ा, ऐसा एक बार नहीं अनेक बार हुआ, और एक बार नहीं किन्तु अनेक बार इसी जाति ने महापुरुष उपजे जिन्होंने परिशोध किया, भग्न जातीय जीवन को फिर जोड़ा, मानों टूटे फूटे स्वर्ण पात्रों को गला पचाकर फिर से नये-नये आभूषण गणादि तैयार किये गये हों, शिवा, प्रताप, गुरु गोविन्द, शंकर, मण्डन मिश्र आदि महानुभाव उन्हीं विभूतियों में से थे जिन्हें परित्रस्त और पराक्रान्त भारतीय



जातीयता को फिर से उठाकर बैठाना पड़ा, ईश्वर का अनुग्रह होता कि हम आज इस दीपावलि के प्रकाश में उन विभूतियों की दिव्य प्रतिमा की एक झाँकी ले पाते, और देखते कि उनके दिव्यालोक में हमारे जातीय और राष्ट्रीय जीवन ने क्या २ अद्भुत निधियाँ प्राप्त की है, और तब कृतज्ञता में हम उनकी स्मृति में नत मस्तक होते।

ईश्वर की यह महती कृपा होती यदि आज हमारे देश वासी उस दिव्य विभूति को दीपावलि के इस सुन्दर प्रकाश में देख पाते और ठीक २ पहचान पाते जिसकी दया से इस राष्ट्र को सर्वोत्कृष्ट उन्नतियों



(श्री अलगूराय शास्त्रीजी एम. एल. ए. प्रधान मन्त्री उत्तर-प्रदेशीय कांग्रेस)






और विचारों का आनन्द प्राप्त हुआ है, महर्षि दयानन्द गुजरात में जन्मे अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके श्रुतियों के स्वाध्याय से मन, बुद्धि को विमल बना, वीतराग सन्यासी होकर देश को वह दे गये हैं जो अकथनीय और अवर्णनीय है कि जिसका ऋण हजार सहस्रों वर्ष में भी यह जाति उतार न सकेगी।

भारत राजनीतिक दासता के पाश में था दयानन्द ने कहा माता जैसा प्यारा विदेशी शासक भी स्वराज्य की तुलना कर नहीं सकता, स्वराज्य का महत्व बताकर महर्षि दयानन्द ने देश को पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने के लिये जो प्रेरणा दी वह भुलाई नहीं जा सकती।

देश दासता के कारण आत्म विस्मृत था न उसमें अपनी धार्मिक भावनाओं के लिए आदर था न धर्म में विश्वास और न धर्म अधर्म का भेद उसे ज्ञात रह गया था, पत्थर पूजा से लेकर भूत प्रेत पिशाच पूजा, कब्र औलिया पीर परस्ती, ओझा, सोखा, झाड़, दुहार, फूंक और देवी देवता, ईंट पत्थर इनके सामने माथा झुकाना हमारे जातीय जीवन में धर्म बन गया। दयानन्द ने वैदिक धर्म के मूल तत्वों को इस प्रकार उपस्थित किया कि मतवादों के गढ़ टूट गये, कपोल कल्पनाओं के भाण्डे फूट गये।

"अर्थ आया तब जानिये, जब अनर्थ छूटे।
दादू झगड़ा मतों का दिन चौके फूटे॥"

सत्यार्थ प्रकाश का उदय हुआ, अन्ध विश्वास के अन्धकार का विनाश हुआ।

चारों वेद कहानी "त्रैगुण्यविषया वेदा." 'त्रयो वेदस्य कर्तारः धूर्त, भाण्ड निशाचराः।" इत्यादि भ्रमात्मक बातें वेदों के प्रति प्रचलित हो गई थी जिनमें विहित ज्ञान के आधार पर हमारे समस्त वाङ्मय का निर्माण हुआ।

कोई कहता था वेद ग्राम्यगीत हैं जिन्हें मध्य एशिया के बड़े चराने वाले चरवाहे गाया करते थे कोई कहता था यह आदिम काल की कुछ कवितायें हैं और इन कविताओं में से किसी २ के भीतर कुछ गम्भीर भाव भी पाये जाते हैं इत्यादि २! अनेक अनर्थक और भ्रमात्मक बातें कही जा रही थी। दयानन्द ने अपने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका नामक ग्रन्थ रत्न के निर्माण से इन मिथ्या विचारों के कूड़े को फूंक दिया, और वह धारणा फिर से जीवित हुई जिससे हम यह देख सके कि 'आम्नायस्य स्वतः प्रमाणम्' वेद स्वतः प्रमाण हैं जैसे सूर्य प्रकाश के लिए किसी का भिखारी नहीं प्रत्युत सब उसी के प्रकाश के आश्रित हैं। ईश्वर करे आज हम दीपावलि के इस प्रकाश में और अपने जातीय गौरव को देख सके। उसकी रक्षा में अपना सर्वस्व मिटाने की क्षमता उत्पन्न कर सके। अपने संस्कृति के प्रति हममें अभिमान हो अपनी भाषा अपने भेष और अपने भोजन को हम एक राष्ट्रीय रूप दे सके, विदेशीयता के कुप्रभाव से बच सके। मानव मात्र के प्रति उदारता और शिष्टाचार का व्यवहार करें, किसी प्रकार के भी आक्रमण को सहन न करें, उसका तत्र प्रतिवाद करें, नारी-सम्मान, बच्चों का प्रतिपालन, राष्ट्र को समृद्ध और समुन्नत बनाने में हम सदा तत्पर रहें अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपनी कुशल वैदेशिक नीति के कारण हमारा सम्मान हो, न हम कहीं झुकें और न किसी को झुकावें आर्थिक राजनीतिक जीवन ऐसा हो जिसमें व्यक्ति वाद की अपेक्षा समाजवाद का अधिक महत्व हो और हमारी शासन व्यवस्था ऐसी हो जिसमें प्रत्येक नागरिक को अपने आत्म विकास का सुवर्ण अवसर मिल सके। रक्षा, शिक्षा का का सबको समान अवसर हो। यदि अपने में छोटे २ कर्तव्य हमें साफ २ स्पष्ट इस दीपावलि के प्रकाश में दिखाई पड़ सके और हम इनके पालन करने में सक्रिय ढंग से लग जाँय तो हमारा दिवा जलाना चरितार्थ होगा, ईश्वर करे ऐसा ही हो।









ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो !

(लेखक - श्री प० रामदत्त जी शुक्ल एडवोकेट)



वेदप्राण ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने भौतिक जीवन के अवसान समय में "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो," यह विचित्र किन्तु सारगर्भित शब्द कहे थे। सम्वत् १६४० वि० की कार्तिक अमावस्या कि जिस दिन समस्त भारतीय आर्य हिन्दूजन दीपराजी से भौतिक अन्धकार को दूर करने में संलग्न थे, अमा के उस तिमिर में अपने यश शरीर रूपी दीप को प्रदीप्तकर तपोधन ऋषि समस्त मानव जाति के हृदयों, मस्तिष्कों और आत्माओं को वेद ज्ञानज्योति से भासमान करने के लिये अपने प्राणों को उत्सर्गकर सर्वमेध सत्र की पूर्णाहुति प्रदान करने में ध्यानमग्न हो रहे थे। ब्रह्म निःश्वसित वेद की प्रतिष्ठा हो ऋषि के जीवन का परम ध्येय रहा। किन्तु उसकी पूर्ति सुचारु रूप से अपने जीवनमें करने में वह समर्थ न हो सके। इसी की ओर विशेष रूपसे ध्यान आकृष्ट करते हुए अपने अनुयायियों को इन शब्दों द्वारा सम्बोधित सा किया प्रतीत होता है —

'यदा सर्वविद्याभिः पूर्णा सन्ति नैव किं चत्तेषु मिथ्यात्वमस्ति। तदेतत्व सर्वे मनुष्यास्तदा ज्ञास्यन्ति। यदा चतुर्णां वेदानां निर्मितं भाष्यं यन्त्रितं च भूत्वा सर्वबुद्धिमतां ज्ञानगोचरं भविष्यति। एवं जाते खलु नैव परमेश्वरकृपया वेदविद्यातुल्या द्वितीया विद्या अस्तीति सर्वे विज्ञास्यन्तीति बोध्यम्।" (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका) अर्थात् वेद सब विद्याओं से पूर्ण हैं। उनमें कुछ भी मिथ्यापन नहीं है। इसको सब मनुष्य उस समय जानेंगे कि जब चारों वेदों का निर्मित भाष्य मुद्रितहोकर समस्त बुद्धिमानों के लिये ज्ञानगोचर होगा। ऐसा होने पर ही परमेश्वरकृत विद्या के तुल्य अन्य कोई भी दूसरी विद्या नहीं है, ऐसा सब लोग जानेंगे, यह समझना चाहिये। ऋषिदयानन्द सरस्वती के यह अमर वाक्य ही उनके जीवनकार्य के सुस्पष्ट प्रतीक हैं। इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऋषि ने स्वयं स्वल्पसाधनों के होते हुए भी जिस परिस्थिति बाधाबहुल वातावरण में वेदभाष्य जैसा कार्य आरम्भ किया था, उसका अनुमान भी साधारणतया नहीं किया जा सकता है। तथापि अपने जीवन की सन्ध्याकाल में भी अनेक कार्यों में सतत संलग्न रहते हुए पूरा यजुर्वेद और लगभग आधा ऋग्वेदभाष्य निर्मित एवं जैसे तैसे प्रकाशित हो सका। इस प्रकार चारों वेदों का यथाभिलषित संकल्प और प्रतिज्ञा के अनुसार ऐसा भाष्य न निर्मित हो हो सका और न मुद्रित होने का ही अवसर प्राप्त हुआ। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य अधूरा ही रहगया। इतना ही नहीं जो कुछ वेदभाष्य निर्मित और मुद्रित होकर प्रकाशित भी हुआ, उसको आकार प्रकार ऐसा नहीं बनाया जा सका कि जिससे संसार के प्रमुख वेदज्ञों और उच्चकोटि के गम्भीर विचारक विद्वानों के समक्ष सगर्व प्रस्तुत किया जा सकता। वस्तुतः सम्पादन, मुद्रण, प्रकाशन, आदि २ सम्बद्ध कलात्मक दृष्टि से प्रस्तुत वेदभाष्य संस्करण में अनेक सुधार और संस्कार अपेक्षित है।

ऋषि दयानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी एवं संस्थाओं का यह एक उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्य है कि वह अपने इस औचित्य के महत्व को अनुभव करते हुए अविलम्ब इस न्यूनता को पूर्ण करने में लगें। जबतक ऋषि दयानन्द सरस्वती प्रदर्शित प्रतिज्ञा के अनुसार चारों वेदों का भाष्य निर्मित और मुद्रित और प्रकाशित न हो जायगा, तबतक 'ईश्वर तेरी इच्छापूर्ण हो।" ऋषि की यह अंतिम अभिलाषा भी अपूर्ण ही रह जायगी।



दीपावली पर्व

दीपावलि भारतीय आर्य हिन्दुओं का एक प्रमुख पर्व दिवस है इस पर्व के दिन भारत में प्रत्येक स्थान में लक्ष्मी पूजन और दीपावलि समारोह के साथ मनाये जाते हैं। चिरकालीन परम्परा के अनुसार दीपावलि के पश्चात गोवर्धन और यमद्वितिया के पर्वों को भी मनाने की प्रथा है। राजनीतिक दासता में आबद्ध भारतीय नर-नारियों के लिए अपने पर्व दिनों को उत्साह पूर्वक मनाने में अनेक बाधाएं थीं किन्तु वह समस्त बहुरंग बाधायें भारत के स्वतन्त्र राष्ट्र हो जाने पर प्रायः दूर हो चुकी है किन्तु राजनीतिक दासता के चिरकालीन अभिशाप जनित दोषों का प्रभाव अभी तक भारतीयों को प्रभावित कर रहा है क्योंकि राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो जाने पर भी भारत की आर्थिक दशा अभी तक सर्वथा दयनीय ही है, इसलिए दरिद्रता और अशिक्षा दोनों के समन्वित प्रकोप से पर्व-दिन मनाने में भी सर्वसाधारण के हृदय में कठिनाई से उत्साह उत्पन्न होता है, लक्ष्मी पूजन और गोवर्धन से गवादि पशु सम्पत्ति की समृद्धि के प्रयोजन कष्ट से ही अनुभव हो सकते हैं। अतः अनेक प्रकार के अभावों से उत्पीड़ित भारतीय, इन पर्वों के उत्कृष्ट आदर्शानुसार समस्त भाई बहनों में अभिन्न स्नेह सम्बन्ध स्थापित करने में संकोच एवं असमर्थता अनुभव करते हैं।

आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्दने प्रायः सभी से आर्य जाति को पुनः अपने विस्मृत गौरवास्पद आदर्शों के अनुसार प्रवृत्त होने के निमित्त प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान की है। वैदिक संस्कृति के प्रतीक अथवा प्रदीपक दिव्य दयानन्द द्वारा आलोकित ज्योतिर्मय सनातन वैदिक आर्ष पथ पर स्वतन्त्र राष्ट्र के नागरिक दृढ़ता के साथ अग्रसर होने में अपने जीवन को संलग्न कर सकें यही हमारी हार्दिक कामना है। मंगलमय भगवान इस कामना को पूर्ण करें।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्,

इन शब्दों के साथ युग युग से अपने नन्हे नन्हे स्नेह भरे दीपकों से अमा को प्रकाशित करने वाले पवित्र पर्व पर हम अपने पाठकों के प्रति मङ्गलमय भविष्य की आशा से शुभ कामना करते हैं। प्रभु करे आज यह लक्ष्मी विहीन भारत लक्ष्मी पूजन करके अपने गौरव पर पुनः प्रतिष्ठित हो। दीप-पंक्तियाँ हमें मार्ग दिखाएं।

प्रत्येक व्यक्ति के लिये—
प्रत्येक समाज के लिये—
प्रत्येक राष्ट्र के लिये—
समस्त विश्व के लिये—

यह पर्व शुभ हो !

महर्षि द्वारा रचे गये यज्ञ के कतिपय होतागण :



वीतराग श्री स्वा० दर्शनानन्द जी



अमर शहीद श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी



श्री पं० गणपति शर्मा



श्री पं० शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थ



श्री स्वा० सर्वदानन्द जी महाराज



श्री म० नारायण स्वामी जी महाराज




आर्य समाज की अग्नि-परीक्षा

(लेखक— श्री प० वासुदेव शर्मा जी प्रधान मंत्री, आर्यप्रतिनिधि सभा बिहार)

भारत की मध्य भूमि में विदेशियों के आक्रमण, पारस्परिक विद्वेष, प्रमाद तथा कर्तव्य शून्यता से इसका सांस्कृतिक, साहित्यिक, सामाजिक तथा धार्मिक ह्रास तीव्रता से होने लगा। राजा राममोहन राय जैसे महापुरुष ने भी अंग्रेजी भाषा समर्थन और सम्मान किया नास्तिकता ने अपना माया जाल चारों ओर फैला दिया। भारत अपनी आध्यात्मिकता से दूर होकर भौतिकवादी विचार धारा से प्यास मिटाने के लिए तीव्रता से बढ़ने लगा।

कई सौ वर्ष की पराधीनता के अभिशाप से भारत का धार्मिक तथा सामाजिक स्वरूप अत्यन्त ही विकृत तथा दयनीय हो गया था। इस वातावरण से धर्म तथा वेद से अविश्वास होना भारतीय युवकों में स्वाभाविक ही था।

महर्षि दयानन्द ने अध्ययन काल समाप्त करने के पश्चात् आजीवन अखण्ड ब्रह्मचारी रह कर राष्ट्र सेवा तथा धर्मोद्धार का परम पावन व्रत लिया पाखण्डखण्डिनी पताका लेकर वे चलपड़े। अनेक स्थानों पर उन्हें शास्त्रार्थ करना पड़ा। और फिर विरोधियों के प्रहारों का उत्तर देना पड़ा।

आपने यथेष्ट रूप में स्थायी आर्य साहित्य की रचना की। धर्म के वास्तविक स्वरूप को संसार के सामने रख वेद की मर्यादा तथा गौरव को उसकी विशेषताओं द्वारा स्थापित किया। भारत में राष्ट्रीय भावना अपनी राष्ट्र भाषा हिंदी तथा अपनी वेश भूषा को पुनरुज्जीवित करने का सर्व प्रथम श्रेय महर्षि को ही दिया जा सकता है।

महर्षि द्वारा संस्थापित आर्य समाज ने धर्म के क्षेत्र में तथा स्वतन्त्रता के संग्राम में सर्वदा आगे रह कर कार्य किया। उसके प्रारम्भिक युग के सदस्यों का जीवन कितना अनुकरणीय आदर्श, पवित्र, सरल, स्वाध्यायशील कर्मठ तथा संयमी होता था।

लोगों की दृष्टि अब भी समाज की ओर लगी हुई है कि वह आगे बढ़कर देश का नेतृत्व तथा नव-समाज का सुन्दर निर्माण करेगा। आज भारतीय समाज में अनैतिकता, ईर्ष्या, द्वेष, भ्रष्टाचार, चोरबाजारी तथा विषमता का बाजार गर्म है।

अतः इस समय के आर्य सदस्यों का परम कर्तव्य हो जाता है कि अपने उत्तर दायित्व तथा समाजकी मर्यादा को ध्यान में रख कर ऋषि निर्वाण के महत्वपूर्ण पुनीत पर्व पर आर्य समाज को 'क्रियाशील' संगठित तथा लोक प्रिय बनाने का व्रत धारण करें।

आलस्य, उदासीनता तथा निराशा का विचार छोड़ कर आत्म निरीक्षण करते हुए अपनी शक्ति का सदुपयोग कर प्रति सदस्य को प्रति दिन सन्ध्या हवन स्वाध्याय तथा यथाशक्य सार्वजनिक सेवा को दिन चर्या का आवश्यक अंग बनाना होगा साप्ताहिक सत्संग, पर्व, वेद-कथा तथा उत्सवों में सपरिवार सम्मिलित होने का संस्कार करना होगा। परिवार में यथा समय संस्कार को करने का अभ्यास डालना होगा। आत्म शुद्धि के लिए यम नियम को जीवन में उतारने का प्रयत्न करना होगा।

ग्राहकों को सूचना

हम निम्नाङ्कित संख्यावाले अपने ग्राहकों से इस सूचना के द्वारा निवेदन करते हैं कि उनका वार्षिक मूल्य नवम्बर मास में समाप्त हो रहा है, अतः २० ता० तक यदि उनका आगामी वर्ष का मूल्य मनीआर्डर से प्राप्त हो सके तो सुविधा होगी। ऐसा न होने पर २१ नवम्बर का अङ्क उन्हे वी० पी० द्वारा भेजा जायगा। कृपया नोट करलें — व्यवस्थापक

ग्राहक सं०—२१४८ से ४३५४
७०५८ से ७ ६१
८५०५ से ८५३१
८४५७ से ८४८८
६५७६ से ६४६८
६८ ६ से ६ ८५०
१०२३८ से १०२११







गुण-कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था ही उन्नति की प्रेरणा दे सकती है

किन - किन गुणों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र माने जाते हैं ? गुण कर्मों के बदलने कर्मों के बदलने से वर्ण स्वतः बदल जाते हैं । इस विषय में मनु क्या कहते हैं ?

ब्राह्मण कौन है ?

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥१।८८
शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥१८।४२

अर्थात्—ब्राह्मण के, पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना, लेना ये छः कर्म है (पर "प्रतिग्रहः प्रत्यवरः" मनु । अर्थात् लेना नीच कर्म है) ॥१॥ शम, दम, तप, पवित्रता, सहनशीलता, नम्रता, ज्ञान विज्ञान, आस्तिक्य ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं ।

क्षत्रिय कौन हैं ?

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः । १ । ८९
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ १८।४३

अर्थात्—न्याय से प्रजा की रक्षा, सुपात्र में दान, यज्ञ करना कराना, वेदादि शास्त्रों का पढ़न और पढ़वाना, विषयों में अनासक्त ॥१॥ शौर्य, तेज, धैर्य चातुर्य, युद्ध से न भागना (विजयी होना), दान, प्रजा प्रतिज्ञा तथा तथा यथो योग्य व्यवहार ये क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं ।

वैश्य कौन हैं ?

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥१।९०

अर्थात्—पशुओं का पालन और वर्द्धन, सत्कर्म में धन व्यय करना, अग्नि होत्रादि यज्ञों का करना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, व्यापार करना, कुसीद (एक सैकड़े में चार, छः आठ, बारह, सोलह या बीस आनों से अधिक ब्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो सौ वर्ष में भी दो रुपये से अधिक ब्याज न ले और देना), खेती करना ये वैश्य के गुण-कर्म हैं ।

शूद्र कौन हैं ?

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥१।९१

अर्थात—निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़कर ब्राह्मण क्षत्रिय, और वैश्यों की सेवा यथावत करना ही शूद्र का कार्य है ।

वर्ण-परिवर्तन

"धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ" १॥
"अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।" आपस्तम्ब गृह्यसूत्र ॥

अर्थात—धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम २ वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे जिसके योग्य हो, वैसे ही अधर्माचरण से पूर्व २ अर्थात उत्तम २ वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे वाले वर्णों को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे । (स० प्र० ४ समुल्लास)









❋ वन्देमातरम् ❋

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे।
यस्या इदं विश्वं भुवनमाविवेश, तस्या नो देवः सविता धर्म साविषत्। यजु

पृथ्वी को माता मान कर उसकी आराधना करना एक स्वाभाविक वृति है। राष्ट्रीय जीवन यह प्रमुख आधार है। परन्तु आज कल प्रत्येक राष्ट्र की पृथक भावना सारे संसार को एक सूत्र में बांधने के लिए बाधक सी प्रतीत होने लगी है। वर्तमान शताब्दी में ऋषि दयानन्द वह पहिले सुधारक हे जिन्होने सारे संसार को लक्ष्य में रख कर देशभक्ति और राष्ट्र निर्माण की आधार शिला रखी। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में अन्तर्राष्ट्रीय विधान की पूर्ण रूपरेखा शास्त्रों के आधार पर अंकित की। यजुर्वेद के ऊपर दिये हुये मंत्र में सम्पूर्ण भूमि को माता दर्शाया है, वह वन्दना सारे संसार के लिये है। इस मंत्र में भूमि माता की भक्ति का उद्देश्य भी बड़ा सुन्दर बताया है। हर प्रकार के बल की प्राप्ति अर्थात अन्न, बल, और ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये मातृभूमि की भक्ति आवश्यक है। मातृभूमि के अन्तर्गत सारा विश्व इस मंत्र द्वारा संकलित समझना चाहिए और अदिति शब्द भी बड़ा शिक्षाप्रद है। अदिति से अभिप्राय अखण्डित का है। इस मंत्र में शिक्षा है कि सारी पृथ्वी को खण्डों में विभाजित नहीं समझना चाहिए। पृथ्वी माता के खण्ड नहीं हो सकते। केवल भारत माता के मुसलमानो के अनुचित आग्रह पर दो खण्ड बन जाने से कितनी भयंकर हानि हुई। यदि सारे विश्व को अदिति रूप से संयुक्त रखा जावे तो विभाजन की अनुचित भावना उत्पन्न नहीं हो सकती। इस मंत्र के अन्त में कहा है मातृभूमि की भक्ति हमारे लिये सदा धर्म कर्त्तव्य पालन की प्रेरणा करे। इस मंत्र ने कर्त्तव्य पालन पर बल दिया है अधिकार प्राप्ति पर नहीं। कर्तव्य पालन करने से जो अधिकार प्राप्त होते हैं वह स्थाई हैं और लाभ दायक हैं। छीना झपटी से व्यर्थ के पुकार से अनुचित आंदोलन से जो अधिकार प्राप्त हो जाते हैं वह अधिकार प्राप्त करने वालो को भी सुखकारी नहीं होते। हमारे राष्ट्र के निर्माता चरखे से पीछे हट कर अशोक के चक्र तक पहुँचे है परन्तु उन्हें वैदिक सूर्य तक पहुँचना है



सूर्य के चिन्ह वाली शक्ति संसार के लिये शिक्षाप्रद और उत्साह जनक है। इसके अन्तर्गत प्रकाश प्रगति अन्धकार का नाश और हर प्रकार के बल की प्राप्ति होती है। ऋषि निर्वाण के अवसर पर हम सबको प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि मनुष्य निर्माण, राष्ट्र निर्माण और समाज-निर्माण के उच्चतम सिद्धांत संसार के सम्मुख रखें जिससे सार्वजनिक प्रेम, उदारता की भावना का संचार हो।




[बा० पूर्णचन्द्र एडोकेट, आगरा]




'आर्यसमाज क्या करे ?

तीन वर्षों की स्वाधीनता ने ऋषि दयानन्द की इस बात को सत्यसिद्ध कर दिया है कि स्वराज्य प्राप्ति के लिए शुद्धाचरण और उच्च चरित्र की आवश्यकता है। त्यागमय जीवन और निर्लोलुप मानसिक वृत्ति की आवश्यकता है। प्रयाग आर्यसमाज द्वारा दिए गए मानपत्र का उत्तर देते हुए राजर्षि टण्डन ने आर्य समाज से अनुरोध किया है, कि वह कॉंग्रेस को शुद्ध करे और शुद्धि के कार्य को जारी रखे। निःसन्देह यह कार्य महान है आर्य समाज के लिए नया भी नहीं है। परन्तु प्रश्न तो यह है, कि इसको कैसे किया जाय ?

आचार्य और शिष्य —

केवल बातों से तो सफलता मिलना असम्भव है इसके लिये नींव को दृढ करना होगा। बचपन से बालक बालिकाओं को सदाचार और सरल जीवन पर उन्नत जीवन की शिक्षा देने वाले आचार्य और अन्तेवासी गुरु और शिष्य के बीच दृढ और निकट का सम्बन्ध स्थापित होने पर ही यह सम्भव है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का यह ही आधार है। तपपूर्ण जीवन बिताने की शिक्षा देने के साथ साथ गुरुकुलों ने सच्चे और योग्य नागरिक उत्पन्न करना अपना ध्येय बनाया। गुरुकुल संख्या में बहुत बने। परन्तु उनमें शिक्षा पाने वाले समस्त छात्रों की संख्या दस सहस्र से अधिक कभी नहीं पहुँची। ऐसा क्यों हुआ ? जहां अनेक कारण थे, वहाँ "यह" विश्वास था कि गुरुकुलों में छात्रों को सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। भारत जैसे देश में, जहाँ उद्योग धन्धों का अभाव हो, जीविका और वृत्ति का सुन्दर और सुविधापूर्ण साधन एकमात्र सरकारी नौकरी हो, यह शिकायत उपेक्षा योग्य नहीं कही जा सकती। 'सा विद्या या विमुक्तये" जहाँ विद्या होना चाहिये, वहाँ वह 'अर्थकरी' भी होनी चाहिये।

क्योंकि — 'धनात् धर्मं ततः सुखम्'

गुरुकुलों की शिक्षा आज भी अर्थकरी नहीं है। ९० प्रतिशत जिस देश में निरक्षर हैं, उस देश में एक व्यक्ति को भी जो शिक्षित बनाता है वह एक महापुण्य का काम करता है। आर्य समाज ने लाखों की संख्या में युवकों को शिक्षित बनाये हैं, और इसका वह उचित गर्व कर सकता है। परन्तु गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को यदि वस्तुतः सफल बनाना है, तो यह आवश्यक है, कि समस्त गुरुकुल आर्य सार्वदेशिक सभा द्वारा संचालित हों। यह विचार पहले भी सामने आ चुका है। परन्तु उसका महत्व आज भी पहले के समान बना हुआ है। गुरुकुलों पर सार्वदेशिक सभा का सर्वोच्च नियन्त्रण स्थापित हो जाने पर सब में एक जैसा अनुशासन, पाठ्यक्रम, प्रबन्ध आदि की व्यवस्था की जा सकेगी। इससे गुरुकुलों द्वारा दी गई शिक्षा का महत्व भी बढ जायगा। इसके अतिरिक्त गुरुकुल विश्वविद्यालय को चार्टर्ड विश्वविद्यालय बनाना चाहिये। और विभिन्न राज्यों में विश्वविद्यालय से सम्बन्धित महाविद्यालय स्थापित करने का अधिकार प्राप्त कर लिया जाय। यदि ऐसा किया गया तो सभी गुरुकुल, विश्वविद्यालय से सम्बधित होने पर अपना सौभाग्य समझेंगे।

लेख का काम बन्द न होना चाहिए—धर्मवीर पं० लेखराम अन्तिम समय सन्देश दे गये थे—आर्यसमाज से लेख का काम बन्द न होना चाहिए। इनके सन्देश का अवश्य पालन हुआ। आर्य साहित्य निकला, ।




[लेखक—श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार]






श्री प० धर्मपाल जी विद्यालङ्कार
सम्पादक 'आर्यमित्र' तथा उप मन्त्री सभा



श्री प० सुरेन्द्र शर्मा जी कोषाध्यक्ष सभा

परन्तु प्रश्न तो यह है, क्या विश्व साहित्य को 'सत्यार्थ प्रकाश', और ऋषि के अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त हमारे पास और कुछ भी देने को है ? परन्तु इसका उपाय क्या है ? गुरुकुल विश्वविद्यालय के अन्दर स्नातकोत्तर शिक्षा की यदि व्यवस्था की जाय और अनुसन्धान विभाग स्थापित किया जाय तो विश्वास किया जा सकता है कि आर्यसमाज विश्व को देने योग्य कुछ अनमोल साहित्य की रचना करने में समर्थ है। परन्तु अभी उसका प्रश्न ही कहां ? यदि समस्त आर्यसमाजों की शक्ति इसपर केन्द्रित हो तो यह असम्भव नहीं। ऋषि की वाणी को यदि हमें जगत के कोने कोने में पहुँचाना है, तो हमें इसके लिए उपयुक्त साहित्य उत्पन्न करना होगा, विद्वानों के मन को जीतना होगा और उनकी धारणा को बदलना होगा।

यदि हिन्दी संस्कृत साहित्य, वैदिक साहित्य और प्राचीन भारतीय इतिहास आदि विषयों में किसी विदेशी विद्वान को अध्ययन करना है, तो उसके उपयुक्त साहित्य भी हो।

साधारण जनता में प्रचार के लिए भी साहित्य प्रकाशित किया जाना चाहिए। वेदों के सुलभ और सरल अनुवाद प्रकाशित होने चाहिए। भारत का कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया के समान एक प्रामाणिक इतिहास भी निकले। स्व० आचार्य रामदेव जी ने इस दिशा में प्रयास किया था इसको नए ढङ्ग से परिष्कृत और परिवर्धित रूप से करने की आवश्यकता है

आर्यसमाज ने इस दिशा में जो कार्य किए हैं, हिन्दी संसार ने उसका सम्मान किया है आर्य विद्वानों का मंगलाप्रसाद पुरस्कार पाना इसका प्रमाण है। परन्तु ये सब प्रयत्न वैयक्तिक हैं। आवश्यकता है, संगठित रूप से प्रयत्न करने की इसके लिए विश्व विद्यालय के तपोवन मय वातावरण से उपयुक्त स्थान दूसरा स्थान नहीं हो सकता। ऐसा करने से ऋषि का सन्देश विश्व के कोने-कोने में पहुँच सकेगा। क्या ऋषि के पवित्र जीवन से आलोकित इस अमा निशा में इस सत्य का दर्शन करने और इसके अनुसार कार्य करने में हम समर्थ होंगे ?







हे अपरिवर्तनीय ?

[रचयिता—श्री कुंवर हरिश्चन्द्रदेव वर्मा "चातक" कविरत्न, साहित्यालङ्कार]

दूर्वादल ने सोचा मुझको पशु निज ग्रास बनाते।
तीक्ष्ण ताप देकर के रवि कर नित्य जलाने आते।
अर्थी निज माङ्गलिक कृत्य हित नोच नोच ले जाते।
असमय में मेरे कुटुम्ब को कठिन शोच दे जाते।
करते हैं पद दलित सभी, बढ़ने पर काटी जाती।
झंझानिल के विषम झकोरों से हूँ छाँटी जाती।
मैं होऊँगी फूल डाल पर नाचूंगी झूलूंगी—
रसवन्ती कोयल की तानों में सब दुख भूलूँगी।

वसुधा के अञ्चल से थोड़े अन्तर पर मैं रहता।
मुँह खुले पर व्यथा न अपनी हाय! किसी से कहता।
जो आता वह हाथ बढ़ाकर मुझे तोड़ लेता है—
मैं जोड़ूं सम्बन्ध न, पर वह निठुर जोड़ लेता है।
सूची से कर छेद सूत्र से करता ग्रीवा बन्धन—
मुझ से ही होता प्रेमोपायन, पयङ्क-प्रसाधन।
मैं न रहूंगा फूल, दीप बन दान ज्योति का दूंगा।
इस पृथ्वी का अँधकार सब पल भर में हर लूँगा।

नाम मात्र का स्नेह प्राप्त कर नित्य जला करता हूँ—
पापी हूँ प्रेमी शलभों की सृष्टि दग्ध करता हूँ।
क्रूर हृदय मेरे प्रकाश में कृत्य कर रहे काले—
ललनाओं की लज्जा के भी पड़े हुये हैं लाले।
विवश शीश धुनता हूँ मेरा वश न कहीं कुछ चलता।
हा! मेरी ही छाया में यह अँधकार है पलता।
मै न रहूँगा दीप, एक वह परिवर्तन का वर दो।
परिवर्तन से रहित, आप अपने सा मुझको कर दो।

वह झूठा निर्वाण और वह प्रतिपल का यों—जलना।
छूट सदा को जाये मुझसे भव की भीषण छलना॥










—: सिद्धान्त और सङ्गठन :—

[ले०—श्री गङ्गाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०]



किसी संस्था को सफलतापूर्वक चलाने के लिये दो चीजों की आवश्यकता है एक तो उसके सिद्धान्तों का निश्चित होना तथा उनका सर्वसाधारण में प्रचार, दूसरा उसके सदस्यों का एक सूत्र में पिरोया जाना। यदि सिद्धान्त सत्य पर आश्रित नहीं हैं और सदस्यों में अच्छा संगठन है तो वह उस माला के समान है जिसमें सूत तो है बहुमूल्य रेशम का परन्तु दाने [illegible] और यदि सिद्धान्त सर्वथा शुद्ध, पवित्र तथा उज्ज्वल हैं और सदस्यों में संगठन नहीं तो वह संस्था उस माला के समान है जिसमें कच्चे धागे में अमूल्य मोती पिरोये हों, दोनों अवस्थाओं में माला ठीक नहीं है।

आर्यसमाज की संस्था पर भी ऊपर का नियम लागू होता है। आरम्भ में समाज में दोनों बातें थीं और पुष्कल मात्रा में थीं, सनातन धर्म या हिंदूसमाज के न तो सिद्धान्त निश्चित थे और न हिंदुओं में संगठन था। सनातन हिंदूधर्म चूं चूं का मुरब्बा था जिसमें नास्तिक, आस्तिक, वैदिक, वेदनिन्दक सभी शामिल थे। हिन्दुओं का अभिमान था कि वह एक उदारमण्डल है जिसकी सीमा कोई नहीं। संगठन का यह हाल था कि आठ कनौजिया नौ चूल्हे, इसलिये हिन्दुओं का ह्रास अवश्यम्भावी था। आर्यसमाज हिन्दू मत के सर्वथा विरुद्ध था इसलिये उसके जीवन की अधिक आशा थी। ऋषि दयानन्द ने वेद, ईश्वर, जीव, प्रकृति, भाग्य, पुरुषार्थ, लोक, परलोक सभी के विषय में निश्चित विचार उपस्थित किये। ऋषि ने स्वमन्तव्य, अमन्तव्य लिखकर सिद्धान्तों को पूर्णरूप से निश्चित बना दिया। आर्यसमाज का संगठन भी ऋषि ने यथाशक्ति पूर्ण बनाया। इसकी आधारशिला बनी जनतन्त्रवाद। प्रत्येक सदाचारी को मत का अधिकार दिया गया। समाज को साम्प्रदायिकता के विष से अलग रखने के लिये ऋषि ने सब कुछ दूरदर्शिता की जो किसी मानव



लेखक

मस्तिष्क के लिये सम्भव थी। ऋषि न तो अपने जीवन में समाज के मुखिया बने और न अपनी मृत्यु के पश्चात् किसी को गद्दी पर बिठाया।

परन्तु आर्यसमाज का संस्थापक तो ऋषि अवश्य था, उसके सदस्य अल्पबुद्धि के साधारण मनुष्य थे। उन्होंने आर्यसमाज को अपनी भावनाओं के अनुकूल बनाना आरम्भ किया। उन्होंने वैयक्तिक आचार को सर्वथा भुलाकर सामाजिक, शिक्षा सम्बन्धी तथा राजनीतिक कार्यक्रम को प्रमुख ठहराया और लोगों में ऐसी प्रवृत्ति हो गई कि समाज के ठीक होने या स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर









क्योंकि तो स्वच्छ स्वय हो ही जायगे । इसलिये सिद्धान्तों का पठन पाठन बन्द हुआ। उपनिषदो और वेदो की जगह समाचार पत्रो ने ली, सन्ध्या और हवन की जगह जयघोष पर्याप्त समझ गय । सिद्धान्तों का ज्ञान हमारे नेताओं का भी नहीं के बराबर है । भला हो मुस्लिमलीग का जिसने कुछ दिनों पहले शोर मचाकर सत्यार्थप्रकाश क नाम को जीवित रक्खा परन्तु सत्यार्थप्रकाश के पढनेवाले तो बहुत ही कम है हा कभी कभी उसके नाम की दुहाई दे दी जाती है।

अब थोडा सा सगठन की ओर दृष्टिपात कीजिये। हमने आक्षेप किया कि हिन्दू सगठित नही है, हमने हिंदू सगठन का बिगुल बजाया। परन्तु आर्यसमाज क्या एक माला है या कई मालायें। जरा सोचिये, आर्य समाज का सम्विधान (कान्सटीट्यूशन) तो ठीक है परन्तु विचारा कागज क्या करे। आर्यसमाज में अब बीसियो सस्थाये समानान्तर रूप से कार्य कर रही हैं, एक छोटेसे खेत में बीसियो पीपल बरगद की तरह यह सब सस्थाये अखिल भारतवर्षीय हैं। कोई किसी क आधीन नही। साधारणतया स्थानिक समाज, प्रान्तीय सभा और सार्वदेशिक मिलकर एक बडा वृक्ष है। परन्तु कई अन्य भी तो अखिल भारतवर्षीय सस्थायें हैं, जो स्वतन्त्ररूपसे चल रही हैं। यह सब ऊपर से तो आर्यसमाज को सुदृढ करने के लिये हैं परन्तु इसका वास्तविक परिणाम है सगठन का तोडना, प्रत्येक सदस्य या कई सभाओं का अलग अलग दृष्टिकोण हो तो सगठन कैसा ? जिसके मुह में तेज जबान हुई वही आर्य समाजियो की जेब टटोल लेता है उन सब की एक ध्वनि होती है कि 'सभा कुछ नहीं करती, अत हमने अलग से काम करना शुरू किया है, हमको चन्दा दो।' जब मैं यू पी. सभा का प्रधान था तो एक समाज में पहुँचा । वहाँ क प्रधान ने मुझसे कहा, 'अमुक पडित जी आये थे। मैंने उनसे पूछा क्या आप सभा क उपदेशक है ? बिगडकर बोले, सभा क्या होती है ? सभा में कुछ काम नही होता । सब बोगस है। हम स्वतन्त्रता से काम करते है।" जहाँ इस प्रकार क स्वतन्त्र व्यक्ति हो वहा सगठन कैसे रहे। इस विषय पर विस्तारपूर्वक लिखा जा सकता है, परन्तु सकेत मात्र इतना ही पर्याप्त होगा। यदि आर्य समाज में सगठन क महत्व पर विश्वास नही रहेगा तो आर्यसमाज का भविष्य अन्धकार में ग्रसित समझना चाहिए । अलमिति विस्तरेण ।

**








आज भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता क्षात्रधर्म



जन जागरण के मङ्गल प्रभात में आज प्रत्येक भारत संतान हजारों कष्टों, मुसीबतों, भूकम्पों, जलविप्लवों, बेकारी और दरिद्रता में रहते हुये भी मस्तक ऊंचा करके अभिमान से अपने घर में दीपावली की ज्योति जगा कर कह रही है कि आज के पवित्र दिन मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम लङ्कापर विजय प्राप्त करके दुष्ट रावण को मारकर सीता माता के साथ अयोध्या में पधारे थे, उसी खुशी में हम दीपक जला रहे है। तब से अब तक इस प्राचीन गौरव को हमारे पूर्वज स्थायी रखने के लिये बराबर दीपावली का त्यौहार मनाते चले आ रहे हैं। ऋषि दयानन्द ने इस त्यौहार पर अपने बलिदान से चार चाँद लगा दिये और देश में ईश्वर विश्वासी बनकर आज के दिन क्षात्रधर्म को जागृत कर गये। परन्तु आर्यसंस्कृति के विरोधी विदेशी और विदेशी सभ्यता में पले हुए लोग आज हमारी प्राचीन संस्कृति और गौरव को मिटाने के लिये हमारे विरुद्ध नानाप्रकार के षड्यन्त्र रच रहे है।

विदेशी राष्ट्र जो स्वयं युद्ध के हर प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित हे व हमें निःशस्त्रीकरण की योजनाये बतला रहे हैं। भारत में एक दल भारतवासियों का निरन्तर व्याख्यान देकर युद्ध के भयङ्कर परिणाम बताकर खून और लड़ाई से डरा रहा है। कायर मानव कर्तव्य च्युत होकर शांति की अभिलाषा से ममता और स्वार्थ में फँसकर युद्ध से भाग रहा है और अपनी कायरता छिपाने के लिए अहिंसा का हिरण्यमय पात्र अपने सिर पर ढांप रहा है परन्तु १ अरब ९७ करोड़ २९ लाख ३९ हजार वर्ष पुरानी भारतीय आर्य संस्कृति की रक्षा करनेवाले कदापि इन विरोधियों के षडयन्त्रों में नहीं फसेंगे। हम तो अपने अतीत के गौरव को सामने रखकर दासता की शृङ्खलाओं में जकड़े हुए मानव को महर्षि दयानन्द के भक्त होने के नाते आत्म गौरव का पाठ पढ़ाते ही रहेंगे। वास्तव में आज भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता क्षात्र धर्म है। अकेले



लेखक

अहिंसा के हथियार से स्वतन्त्रता स्थिर नहीं रह सकता है। संसार की राजनैतिक शक्तियाँ और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ हमें यह बतला रही हैं। अव्यवहारिक और कायरतापूर्ण नीति से अब काम नहीं चलेगा। हमारा वैदिक धर्म हमको यथायोग्य बर्ताव करने और अत्याचारी के नाश तथा निर्बलों की सेवा का आदेश देता है। आज दीपावली के दिन जिस प्रकार भगवान राम माता सीता को रावण के पंजे से छुड़ाकर अयोध्या लाये उसी प्रकार हमको हमारी हजारों माँ बहिनों का सतीत्व पाकि




ले०—देशभक्त कुंवर चांदकरण शारदा, प्रधान आ०प्र० सभा राजस्थान, मालवा,




ऋषि दयानन्द मनुष्य थे

लेखक—श्री धर्मदेव शास्त्री, दर्शन केसरी, अशोक आश्रम कालसी, देहरादून

"ध" में और सम्प्रदाय तथा मत मतान्तर में भेद है यह बात जगद्गुरु आचार्य दयानन्द ने बहुत निर्भयता के साथ कही है। जिस समय दयानन्द ने पाखण्ड खण्डिनी पताका चढ़ाई उस समय मतवाद और मठाधीशों के विरुद्ध कहना बहुत खतरा मोल लेना था। दयानन्द ईश्वर के अतिरिक्त किसी से डरते नहीं थे। गुरुवर्य दयानन्द मृत्युञ्जय थे। मत मतान्तरों का खण्डन करते हुए आचार्य दयानन्द ने कुछ भी मन्द शरीर में नहीं रहने दिया, इसलिए राणा श्री स्वामी विक्रम रूप में पीड़ा हुई, उसने अपने निर्विष करनेवाले मित्र को ही विष पिला दिया। दयानन्द की सहिष्णुता का और दया का उदाहरण विश्व में नहीं मिलेगा। विष देनेवाले को भी दयानन्द ने बचा लिया।

मैंने संसार के अन्य महापुरुषों का जीवन चरित्र पढ़ा है सब का मेरे हृदय में आदर है। महात्मा ईसा का सूली उठा कर ले जाने का दृश्य, महात्मा बुद्ध का बोधिवृक्ष के नीचे अटल आसन, महात्मा गांधी का हरिजनों और दुखिया को संग लेकर उपवास करके मर जाने का संकल्प यह सब दृश्य भुलाये नहीं जा सकते परन्तु मुझे स्वीकार करना चाहिए कि शिव के दर्शन के लिए गोमुख से आगे गल जाने का क्षणिक कल्पना जिस धैर्य और हिम्मत के साथ दयानन्द ने मनाई है वह अन्य महापुरुष में मुझे नहीं मिलता। दिन भर शास्त्रार्थ करके मध्यरात्रि में योग करनेवाला मेरा आचार्य सच्चा मनुष्य था, यदि दयानन्द मानव न होता तो मैं कभी उसे आचार्य न मानता, दयानन्द ने सच्चे धर्म की प्रतिष्ठा की है उसने ढोंग और व्यक्तिपूजा को हेय बताया है। दयानन्द ने हमें खुली आँख से देखने और मानसिक बल पर विश्वास करने का अभ्यास कराना चाहा, हमें सब से प्रथम अपनी आँख खोलनेवाले को खुली आँख से देखना चाहिए।

दयानन्द ने भारत की परतन्त्रता का मूल कारण खोज लिया था उनके विचार भारत की परतन्त्रता का कारण विदेशी आक्रमण नहीं था इसका कारण हमारा धार्मिक और सांस्कृतिक अधःपतन ही था। मैं राजनीतिक स्वतन्त्रता का मूल्य कम नहीं आँकता, परन्तु धार्मिक और सामाजिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना अपेक्षाकृत अधिक कठिन है। करोड़ों देशवासियों के दिमागों पर आज भी पाखण्ड संकीर्णता और गुरुडम के ताले लगे हैं धर्म के नाम पर आज भी हमारे देश में दम्भ और अज्ञान को प्रश्रय मिल रहा है, इसे कौन दूर करेगा? यह काम दयानन्द के शिष्यों का है। मानव दयानन्द हम मनुष्यों का सच्चा आदर्श है।

... स्वामियों के हाथ से बचाने के लिये कटिबद्ध होना पड़ेगा। नवयुवकों को इसके लिए तैयार होना चाहिए। संसार में सबसे बड़ी अनैतिकता दुर्बल रहना है क्योंकि हमारे उपनिषदों में कहा है —

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य'

अर्थात् बलहीन मनुष्य कभी परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। मैं नवयुवकों से कहता हूँ कि "क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप" अर्थात् हृदय की दुर्बलता छोड़कर उठो और संसार से अन्याय, अत्याचार मिटा दो तथा स्वतन्त्र भारत के गौरव को पुनः स्थापित करो।

———







स्त्री-शिक्षा— लेखिका —सुश्री उषा गांधी



सब देशों की तुलना में भारत की शिक्षा बहुत ही कम है। यूरोप अमेरिका इत्यादि देशों में जहां एक निरक्षर ढूंढे नहीं मिलता यानी सौ में से सौ पढ़े लिखे रहते हैं वहां भारत में छः प्रतिशत मनुष्य पढ़े लिखे हैं। और उसमें भी स्त्रियां तो प्रतिशत २ ही पढ़ी लिखी हैं। यह देखकर समझदार मनुष्य जरूर सोच विचार में पड जावेगा।

भारत के उन्नत न होने के कई कारण हैं। उसमें स्त्री शिक्षा का अभाव मुख्य कारण है। ऋषि मुनियों के काल में स्त्रियां को उच्च शिक्षा दी जाती थी। उसके बाद मध्य काल में मुसलमानी शासन में अनेक अत्याचार के डर से स्त्रियों की शादी जल्दी होने लगी। साथ ही साथ उन्हें चार दिवारी के बीच में रहने के लिये बाधित किया गया। इस तरह स्त्रियों की शिक्षा में पूरी तरह रुकावट आ गई। उसे कई पुरुष ऐसा समझने लगे कि यदि स्त्रियां पढ़ेगी तो वे बाहर घूमेंगी और इस तरह अपने शील को न सम्भाल सकेंगी। इस पर स्त्री शिक्षा के प्रति उपेक्षा बढ़ने लगी। इसका बुरा परिणाम केवल स्त्रियां पर ही नहीं पुरुषों पर भी हुआ क्योंकि पुरुषों में भी शिक्षा दिन पर दिन कम होने लगी। परन्तु अब वह समय नहीं है। भारत के भाग्याकाश में शिक्षा रूपी सूर्य की लालिमा देखने लगी है। इस सुअवसर का हमें लाभ उठाना चाहिए।

शिक्षित माताओं के अभाव से बच्चों का मन तथा शरीर सुसंगठित नहीं हो सकता है माता की अज्ञानता के कारण ही कई बच्चे बाल्यावस्था में मर जाते हैं। प्रसूति काल में स्त्रियां की मृत्यु संख्या यहां अधिक है यह भी उनकी अज्ञानता का ही कारण है। स्वच्छता तथा अन्य व्यावहारिक सद्गुण माता पिता द्वारा बच्चों को मिलते हैं दस बारह साल की आयु तक के संस्कार आयु पर्यन्त नहीं मिटते। यह आयु बालक अधिकतर अपनी माता के साथ ही बिताता है। यदि माता पढ़ी लिखी, विदुषी और चतुर हो तो बच्चों को खेल में ही बहुत ज्ञान मिल सकता है।

इसमें भी विधवा स्त्रियां की हालत बहुत भी ही बुरी है उनके लिए तो समाज में कहां सुख नहीं है यह अपने को अभागी तथा निकम्मी समझती है परन्तु यदि वह अच्छी पढ़ी लिखी होगी तो ऐसा न मानेगी और जो दुख ईश्वर ने डाला है उसको धैर्य पूर्वक सहन करके उसमें से कोई अच्छा रास्ता निकाल लेंगी। शिक्षित विधवा, समाज सेवा इत्यादि काम करके अपने जीवन को सफल बना सकती है। और इस तरह कार्य करके समाज के लिये उपयोगी हो सकती है। इस प्रकार समाज में जो संकुचित भाव दुःख और निराशा इत्यादि दिखाई देते हैं उनका कारण स्त्री शिक्षा की कमी ही है।

स्त्रियां के कार्य क्षेत्र का विचार करके उनको शिक्षा पद्धति निश्चित करनी चाहिए।

कालेज की शिक्षा तो समाज के लिए इतनी उपयोगी नहीं हुई है। यह आजकल के कई लोग मानने लगे हैं। परन्तु कालेज

सुश्री उषा गांधी महात्मा गांधी जी के सुपुत्र श्रीरामदास गांधी की योग्य पुत्री है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ही स्त्री शिक्षा का उत्तम प्रकार है यह बात योग्यता के साथ कुमारी उषा गांधी ने लेख में स्पष्ट की है। —सम्पादक







ऋषि दयानन्द के अप्रकाशित हस्तलेख

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का सब सामान, खड़ाऊँ, यज्ञ के पात्र, बैखाता, डायरी आदि तथा ऋषि के सब हस्तलेख जिन से वर्तमान ग्रन्थ छपे हैं सबको मैंने अजमेर आकर वहां दयानन्द आश्रम में रह कर देखा।

यह सारा सामान गोडरेज की अलमारी में बन्द पृथिवी के अन्दर गाड़ दिया गया था, अब वह निकाल लिया गया है। एक अलमारी पर्याप्त न थी कुछ हस्त लेख बाहर थे। अतः बा० हरबिलासजी सारदा ने दो अन्य अलमारियां गोडरेज की लेकर सब हस्त लेख सुरक्षित रख दिये हैं। ऋषि के समय में बहुत से ग्रन्थ छपे ही नहीं थे। उन प्राचीनकाल के ऋषियों के ग्रन्थों तथा सम्प्रदायों के ग्रन्थों के बहुत से हस्त लेख ऋषि के अपने संग्रह में हैं जो आर्यसमाज की अमूल्य सम्पत्ति हैं। ऋषि ने उन्हीं हस्त लिखित ग्रन्थों से काम लिया है जिनके प्रमाण अपने ग्रन्थों में दिये हैं। कुछ लोग आज कल के क्रिटिकल एडिशन कहाने वाले ग्रन्थों के आधार पर ऋषि के ग्रन्थों में दिये प्रमाणों की समालोचना करते हैं, परन्तु ऋषि ने अपने काल में अपने पास रखे जिस हस्त लिखित ग्रन्थ से प्रमाण दिया है उस ऋषि के संग्रह वाले हस्त लेख को वे अजमेर आकर देखें। परिवर्तन करने से यह बात ही नष्ट हो जायगी कि ऋषि के काल में कौन सा हस्तलेख था जिससे प्रमाण दिया है।

परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि ऋषि के हस्त लेखों के सग्रह में से अद्भुत चोरियां हुई हैं। लकड़ी के तख्तों के बीच में हस्तलेख हैं। ऊपर से बस्ता बधा हुआ है। कई बस्तों को खोल कर देखा तो अन्दर लकड़ी के तख्ते तो हैं पर उनके अन्दर का हस्त लेख गायब है। ऊपर से बस्ता बधा हुआ है। कुछ बड़े हस्त लेख बिना तख्तों



लेखक

के केवल बस्तों में बधे हैं उनमें से बस्तों के कपड़े पड़े हैं हस्त लेख नहीं हैं। ऋषि ने बस्तों के ऊपर हस्त लेख का नाम लिख कर ढग से हस्तलेखों को रखा था। जो हस्तलेख गायब हैं उन बस्तों पर लिखे हस्त लेखों के नामों को बिगाड़ने का यत्न किया गया है फिर भी अभी पढ़ने में आते हैं।

ऋषि दयानन्द के सब ग्रन्थों के प्रथम संस्करण के मुख पृष्ठ बहुमूल्य हैं। उन पर बहुत सी बातें ऋषिवर छाप दिया

की शिक्षा ठीक न होने से शिक्षा को बदनाम करना ठीक नहीं है। गुरुकुलों में जो शिक्षा दी जाती है वह भारत की संस्कृति की दृष्टि से अधिक अच्छी मालूम होती है। जैसे जैसे हमको अनुभव मिलता है वैसे वैसे हमें सच्ची शिक्षा का स्वरूप दिखाई देगा।




(लेखक—आचार्य विश्वश्रवाः वेदमन्दिर बरेली)





❀ जग को जगा दिया ❀

(युवराज रणञ्जयसिंह एक्स एम. एल ए. केन्द्रीय, अमेठी राज्य)



लेखक

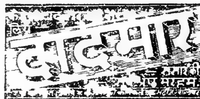
अग्नि, वायु आदित्य, अंगिरा चार ऋषियों ने,
ईश्वरीय ज्ञानालोक आदि सृष्टि मे किया।
ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद
जिन्हे पढा जिसने भी, ज्ञानामृत है पिया।
किन्तु ज्ञान कर्म बिना, कर्म बिना ज्ञान वृथा,
ऋषि दयानन्द ने था मर्म पूरा पा लिया।
तभी तो 'रणञ्जय' सत्यार्थ का प्रकाश कर,
सोते हुए जग को फिर से जगा दिया ॥१॥

करते थे। किसी ने मुखपृष्ठों को फाडकर पुस्तकें वहीं छोड दी है और मुखपृष्ठों को ले गया। ऋषिदयानन्द के वेदभाष्य के प्रथम सस्करण की सब जिल्दें एक सन्दूक में बन्द थी किसी ने कुछ जिल्दें प्रथम सस्करण की निकाल कर उनके स्थान पर नवीन सस्करण की जिल्दे रख कर संख्या पूरी कर दी है। एक फायल सत्यार्थप्रकाश की है। उसके अन्दर के सब क़ाग़ज़ कोई निकाल कर लेगया और फायल वही पड़ी है।

(ऋषि का किया हुआ वेद भाष्य) ऋषि दयानन्द का वेद भाष्य यजुर्वेद कासम्पूर्ण और ऋग्वेद का अपूर्ण छपा है वेदभाष्य का नमूना भी विस्तृत भाष्य वाला पृथक् छपा मिलता है वर्तमान ऋषि के छपे वेद भाष्य से कही अधिक विस्तृत है। ऐसा बहुत सा वेदभाष्य हस्तलिखित बिना छपा लिखा पड़ा है। इसके अतिरिक्त चारों के मण्डल आदि क्रम से विषय लिखे पड़े है जो शेष वेद भाष्य के लिये आर्ष दर्शन हैं। परोपकारिणी सभा में फोटो की मशीन कई हज़ार रुपयों की ला हुई रखी है पर वह बिगडी पडी है।

ऋषि की डायरी ऋषि के बैखाने आदि सब वस्तुए जिन्हे स्वामीजी ने अपने हाथ से लिखा है सुरक्षित रखने योग्य है उनके अन्दर भी कई समस्याएं हल हुई धरी है।













धर्म-राज्य

ले०—श्री डा० सूर्यदेव शर्मा सिद्धान्त शास्त्री, साहित्यालङ्कार, एम ए एल टी , डी लिट, अजमेर

कब धर्म-राज्य होगा, इस देश में हमारा ?
कब जगद् गुरु बनेगा, भारत पुनीत प्यारा ?

(१)

छाया हुआ जगत में, अज्ञान का अँधेरा।
जड़वाद के तमस ने, अध्यात्म चाँद घेरा ॥
मानव हृदय पटल पर, है स्वार्थ का बसेरा।
इस मोह रात्रि का क्या, होगा नहीं सवेरा ?
कब विश्व फिर चलेगा, ले वेद का सहारा ?
कब धर्म-राज्य होगा, इस देश में हमारा ?

(२)

काली कुटिल कुलिश सम कटु कूट नीति छाई।
सौजन्य के सुजल पर है छद्म रूप छाई ॥
सर्वत्र ही कलह की ज्वाला जले, जलाई।
दे देख में दशों दिशि दुर्भावना दिखाई।
इस बैर भाव ने बस, वातावरण बिगारा।
कब धर्म राज्य होगा, इस देश में हमारा ॥

(३)

यह देश धर्म-पथ का प्रेमी पथिक रहा है।
नित वेद-ज्ञान गङ्गा की धार में बहा है ॥
यदि विपति वज्र आया उसको सदा सहा है।
पर "सत्य शिव सुन्दर" का ध्येय ही गहा है ॥
जिसने जहान तारा, क्या फिर डगे न तारा ?
कब धर्म-राज्य होगा, इस देश में हमारा ?

(४)

वह ब्रह्म ज्ञान दर्शन, वह वेद की ऋचायें।
कर वश ब्रह्मचारी, बन गुरुकुलस्थ गायें ॥
प्राचीन सभ्यता की, पावन परम्परायें।
इस राष्ट्र की रगों में, सम्पूर्णत समायें ॥
जब वेद भारती का हो भारतीय नारा।
तब धर्म-राज होगा इस देश में हमारा ॥

(५)

मानव मनोज सर में, श्रुति जलज जब खिलेंगे।
माँ की पुकार पर जब, सबके हृदय हिलेंगे ॥
भारत अखण्ड होगा बिछुड़े हुये मिलेंगे।
जो फट चुके ह[illegible] हैं, वे प्रेम से सिलेंगे ॥
फिर से वही बहेगी, जब पुण्य प्रेम धारा।
तब धर्म राज्य होगा, इस देश म हमारा ॥

(६)

फल फूल अन्न जल से, भरपूर जब मही हो।
धन्य धान्य साधनों की, कुछ भी कमी नहीं हो ॥
जब बाह्य और भीतर, सब ओर शान्ति ही हो।
जब राष्ट्र की प्रशंसा, सब ओर हो रही हो ॥
हो विश्व का शिरोमणि, भारत समृद्ध सारा।
तब धर्म राज्य होगा इस देश मे हमारा ॥

(७)

जब सत्य धर्म ही का जग में प्रचार होगा।
अन्याय युद्ध पीड़न का बहिष्कार होगा ॥
श्रुति "सूर्य" से विलय जब सब अन्धकार होगा।
गाँधी व दयानन्द का तब जन्म सार होगा ॥
चमके सभी जगत् में इस देश का सितारा।
तब धर्म-राज्य होगा, इस देश में हमारा ॥









आर्यसमाज एक उच्चकोटि का :—

धार्मिक ट्रेनिंग कॉलेज है

लेखक—
आचार्य नरदेव शास्त्री,
वेदतीर्थ



ट्रेनिंग कालेज ? हाँ ट्रेनिंग कॉलेज है । जहां धर्म विषयक सब प्रकार की शिक्षा मिलती है। आप चाहे सब कुछ भी न करें, आप केवल समाज के साप्ताहिक सत्सगों में नियमित रूप से जाया कीजिए, आप अनायास ही, बिना कुछ पुस्तक देखे ही बिना कुछ रटे रटाये ही धर्म, सदाचार, प्राचीन रीति, नीति, पद्धति, प्राचीन शिक्षा दीक्षा, धर्म कर्म आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेंगे।

यही बात है कि साधारण से साधारण आर्य भी वाद विवाद में किसी से भी भिड जायगा। निशङ्क होकर तर्क-वितर्क चलायेगा, निर्भीक होकर विचरेगा क्योंकि आर्यसामाजिक साप्ताहिक सत्सगों में धर्म विषय पर भिन्न भिन्न दृष्टि से इतने व्याख्यान होते हैं कि उनको सुनने के पश्चात् किसी की भी बुद्धि प्रसुप्त नहीं रह सकती।

स्वामी दयानन्द ने समाज के हाथों में ऐसा तर्क रूपी शस्त्र दिया है कि आर्यसमाज के सदस्य, सहायक प्रतिष्ठित सदस्य इस विषय में इतने प्रवीण हो गये कि उन्होंने और इनके उपदेशकों और महोपदेशकों ने प्रायः सभी मतावलम्बियों का मुख बन्द कर डाला है। उनका हृदय अपनी ओर नहीं खींच सके हैं यह और बात है। अब तो आर्यसमाज से कोई टकराता ही नहीं। आर्यसमाज का ढर्रा भी बदल गया है। यह तो हुआ इस ट्रेनिंग कॉलेज का संक्षिप्त वृत्तान्त, इस शिक्षणालय के नियम उपनियम, सगठन बड़े ढंग से चलते हैं समाजें, समाजों से मिल कर प्रान्त प्रान्त की प्रतिनिधि सभाएँ फिर प्रतिनिधि सभाओं से निर्मित सार्वदेशिक सभा, अच्छी खासी प्रजातन्त्र की प्रतीक है। इस सगठन में लगभग २००० समाजें हैं। आर्यविचार के लोग होंगे कोई पचास साठ लक्ष।

इस ट्रेनिंग कालेज ने आज तक भारत को सहस्रों लक्षों देश भक्त दिये, इस ट्रेनिङ्ग कालेज में शिक्षा प्राप्त किये हुये लोग, किसी



भी कार्यक्षेत्र में आर्य किसी से पीछे नहीं रहेंगे। धर्म क्षेत्र, शिक्षा क्षेत्र, समाज सुधार क्षेत्र, राजनैतिक क्षेत्र इन क्षेत्रों में जितने आर्यसमाजी गये उतने किसी भी अन्य सोसायटी के लोग नहीं गये।

आर्यसमाज अपनी शिक्षा दीक्षा देकर लोगों को स्वतन्त्र छोड देता है। वैसे आर्यसमाज समष्टि रूप में राजनीति में नहीं पड़ा। इससे अछूता सा रहा पर व्यक्तिगत रूप में इसने किसी को राजनैतिक आन्दोलन में आने से नहीं रोका। 'यदि कहीं यह समाज विद्यासभा, धर्म सभा के साथ साथ राजसभा भी बना कर समष्टिरूप में राजनीति में भाग









लेता तो समस्त भारत वर्ष इसकेपीछे हो लेता'

और फिर कदाचित् कॉग्रेस को आवश्यकता ही नहीं रहती। स्वामी दयानन्द की एक एक बात देश और धर्म के प्रश्न पर इतना बल देती रही है कि आज तक किसी नेता ने भी इन दो बातों पर इतना बल नहीं दिया। कांग्रेस ने धम की बात को बिल्कुल छोड दिया। स्वामीजी स्वराज्य और स्वतन्त्रता के पूर्ण पक्षपाती थे, पर वे स्वधर्म की बात को छोडना नहीं चाहते थे। अर्थात वे स्व 'मं शून्य स्वराज्य नहीं चाहते थे। जब तक वैसा स्वराज्य न होगा भारतवर्ष का सच्चा सुख नही मिलेगा। कांग्रेस का धर्म शून्य स्वराज्य पाश्चात्य पद्धति का अनुकरण मात्र है। स्वदेशानुरूप 'राज्यपद्धति' को लाने के लिये आर्यसमाज को नये सिरे से उग्र तप करना होगा। तब जाकर भारतवर्ष प्राचीन स्थिति पर आ सके तो आ सके।

इसमें एक दोष आ गया है कि इसका उग्र तर्क वितर्क स्वय इसको खाने लगा है। आर्यसमाज यदि पुनः शक्तिशाली, बनाना चाहता है तो उसको श्रद्धा भक्ति का आवाहन करना पडेगा, नहीं तो तो यह शक्तिशाली आर्य समाज भी भक्ति शून्यता के कारण नाम शेष रह जायगा। आर्यसमाज को शक्त भी होना चाहिए और भक्त भी।

आर्यसमाज ने अपने जन्म दिन से इतना बोला है, इतना बोला है कि और कोई क्या बोलेगा। जितना बोला है उसका शतांश भी तो काम नहीं कर सका। इसकी युक्ति शक्ति भक्ति साथ साथ चलती रहती तो बडा कार्य होता।

ससार का उपकार करना कोई बच्चों का खेल थोडे ही है? आर्यसमाज अब तक अपनी स्थिति से भारत का तो उपकार कर सका वह भी अंशतः पर ससार भर के उपकार की बात तो अभी दूर है।

वह किनारा कहां है जहाँ से कि आर्यसमाज की नौका चली थी?

"वह बहुत दूर पीछे रह गया"

और वह किनारा कहा है जहां कि नाव को जाकर लगना है?

"वह अभी बहुत दूर है"

आकाशवाणी कहती है कि —

"अभी इस दिशा में हुआ ही क्या है"

इस ट्रेनिंग कॉलेज में "ह०" से जितने भी अर्थ निकलते हैं अथवा निकल सकते हैं उन सबकी शिक्षा देने का प्रयत्न किया जा रहा है। हमें तो आर्यसमाज से एक ही बडा लाभ हुआ है वह यह कि हम नास्तिक होने से बच गये। पहले आङ्ग्ल शिक्षा में लालित-पालित पोषित होने के कारण और उधर के संसर्ग से हम नास्तिक हो चले थे, कैसे बचे यह कभी शान्ति पूर्वक बैठ कर लिखने की बात है।

आर्यसमाज के सामने विस्तृत कार्यक्षेत्र है और यदि मिशनरी स्पिरिट के सौ दो सौ विद्वान् उपदेशक मिले और देश विदेश में विचरें तो बड़ा काम हो सकता है। ईश्वर करें इस समाज में पुनरपि प्राण प्रतिष्ठा होकर, यह भारत तथा ससार का उपकार कर सके।

आर्यसमाज रूस के वर्गवाद में विश्वास नही रखता, आर्यसमाज पाश्चात्य समाजवाद को नहीं मानता। आर्यसमाज के पास भारतीय उच्च कोटि का वैदिक साम्यवाद है। इसका अपना अनोखा समाजवाद है जो कि वर्णाश्रम व्यवस्था पर निर्भर है। आज कल का संसार अनेक उलझनों में फसा हुआ है। उन सब उलझनों को सुलझाने की आवश्यकता है। आर्यसमाज और कुछ न कर सके तो पाश्चात्य वर्गवाद, पाश्चात्य समाजवाद का कुचल डाले तो भी वह एक बड़ा कार्य कर जायगा।

आर्यसमाज भक्ति से शक्ति का संपादन करे और उस शक्ति का युक्ति से यथास्थान प्रयोग करें।








गद्य गीतः—

—: दीपावली की रात :—



सवेरे की सुहावनी सद्यः समीर ने चुपके से कहा—आज विभावरी राग द्वेष भूल आलोक को अपनी गोद में खिलायेगी।

सचमुच हुआ भी ऐसा ही । तमिस्रा जगमगा उठी । श्यामल अंचल पर पीत दीपावलियां ! अहा ! अमाँ निशा का कलुषित मुख ज्योर्तिमय हो गया ।

दीपावलि ने धरती पर स्वर्ग बिखरा दिया । नयनों में स्नेह चपलता भर कर सब लोग एकटक उसी को ओर निहार रहे थे । दीपावली की रात धरा पर मधु बरसा रही थी ।

कार्त्तिक की अमावास्या मधुर मञ्जु यामिनी हो गई । आश्चर्य ! आखिर यह वही निशा तो है जो सावन भादों में नागिन की तरह डसने आती थी ।

निशा ने राग द्वेष भूल कर आलोक को अपनी गोद में उठा लिया शायद तभी यह इतनी सुन्दर हो उठी सबकी प्रीति - पात्र हो गई ।

यह जग जीवन दुख का सागर माना जाता है और इससे मुक्ति पाना ही मानव जीवन का हेतु कहा जाता है । यदि यह राग द्वेष भुला कर, स्वनिर्मित पाप शैल को चूर कर दे, तो क्या जीवन दीपावलि की रात की भांति मधुर न होगा ।

काश ! ऐसा होता । तो कितना सुन्दर होता । इस भूतल पर स्वर्ग निछावर होता । फिर इससे मुक्ति पाने की कोई इच्छा भी न करता मुक्त कण्ठ से सभी यह कहते—

सुन्दर, सुन्दर रे जग जीवन
सुन्दर जीवन का क्रम रे ।

और—और दीप शिखा हँस - हँस कर सोये वीणा के तारों में नया राग और नया स्पन्दन भर देती ।

—रानी कान्ता








क्या कोई है ? (श्री विद्यानन्द विदेह)

"आर्याभिविनय" में अनेक स्थलों पर महर्षि दयानन्द ने प्रार्थना की है "प्रभो! इस समस्त भूमण्डल पर हम आर्यों का चक्रवर्ती सार्वभौम आर्य साम्राज्य हो।" सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में स्थान स्थान पर ऋषि ने वेद को विश्वधर्म बनाने की उत्कट प्रेरणा की है। प्रत्यक्षतः विश्व में वेदप्रचार के स्थायित्व के लिये संस्कृत को विश्वभाषा बनाना भी परम आवश्यक है। (१) सार्वभौम आर्य साम्राज्य की स्थापना करना (२) वेद को विश्वधर्म बनाना (३) संस्कृत को विश्वभाषा बनाना— दिव्यस्वप्नद्रष्टा देव दयानन्द के ये ही तीन उदात्त स्वप्न थे।

इस साध की सिद्धि के लिये ऐसे तपस्वियों की आवश्यकता है, जो आजीवन ब्रह्मचर्य धारण करके अपने व्यक्तित्व का निर्माण करें और अपने सुनिष्पन्न जीवनों को इन स्वप्नों की साधना में खपादें। इस साध की सिद्धि के लिए आवश्यकता है ऐसे दम्पतियों की, जो गृहस्थ के सुख भोगों और विषय विलासों पर लातमारकर दृढ़ता के साथ ऋषि-पथ पर आरूढ हो जाये और पग पीछे न हटाएँ।

"अप्रतीतो जयति स धनानि"

'पग पीछे न हटानेवाले ही दिव्य साधों की सिद्धि करते है।"

क्या कोई है, जो अपने आपको इन साध को सिद्धि के लिये समर्पित करेंगे !!

पूज्य विरजानन्द वन्दे

श्री बहोरीलाला शर्मा उपाध्याय

शुभ्र संसृति के विधायक,
आर्य कैरव चन्द वन्दे।
श्रुति, निकुञ्जों के विहारी,
शाश्वतीयानन्द वन्दे।

* * *

विमल कविता मञ्जरी के,
मधुमय मकरन्द वन्दे।
ऋषि दयानन्द के प्रणेता,
"पूज्य विरजानन्द वन्दे,, ॥








"राजधर्म"

'श्री श्यामासुन्दर विद्याभास्कर"

"प्रजानां पालनं धर्मो राज्ञां राजीवलोचन"

महाभारत से

प्रजाधीन राज्य या राजाधीन राज्य, या प्रजातन्त्र अथवा राजतन्त्र, शब्दों में भेद अवश्य है, पर प्रजा का अनुरंजन, परिपालन, संरक्षण तथा संवर्धन राजा का कर्तव्य है। राजा का प्रतिनिधि आजकल प्रेसीडेन्ट रक्खा जाता है। प्राचीन राजतन्त्र



लेखक

प्रणाली भी सुयोग्य, गम्भीर, धीर, सुविज्ञ कुलीन मन्त्रियों के परामर्श से ही सफल होती थी।

जहाँ राजा के लिए, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, और ऐश्वर्य की आवश्यकता है ! वहाँ मन्त्रियों को भी बृहस्पति, विश्वामित्र, ब्रह्मा, वशिष्ठ की पदवी प्राप्त करने की जरूरत है।

आज राजर्षि जनक, तेजस्वी धार्मिक व स्वाभिमानी भरत जैसे राजा कहाँ। तपःपूत याज्ञवल्क्य, महर्षि व्यास, ऋषि पराशर, गौतम प्रभृति महात्मा होते हुए भी शासकों के मार्ग दर्शक महामन्त्री कहाँ ?

प्रजा का पुत्रवत् पालन, विधवा हीन राज्य का शासन, यथा समय जलवर्षा, अवसर पर अन्नों का दर्शन, दुर्भिक्ष का पलायन, भ्रूण हत्या का हनन, नीरोगता का निदर्शन अच्छे राजा के राज्य के सूचक थे।

जिस राज्य में सस्य श्यामला भूमि, आयुष्मती प्रजा सब साधनों से सम्पन्न हो, धर्मरत तथा सन्तुष्ट, स्वतन्त्र निर्भय हो सत्यव्रती नर नारियाँ हो जिसमें नित्य पुष्पफलों से हरे भरे वृक्ष, तथा प्रचुर मात्रा में दुग्धवती गायें रहेगी, वही राज्य रामराज्य की तरह चिर जीवित रह सकेगा। प्रकृति और पुरुष की तरह राजा और प्रजा भी अन्योन्याश्रय है ! बिना प्रजा राजा पंगु है, बिना राजा प्रजा भी अराजकता से भरी है।

आज की राज्य प्रणाली भी उन्हीं पद चिन्हों पर चलकर सफल होगी। कोई भी शासन प्रणाली, प्रजा की उपेक्षा नहीं कर सकती। यदि राजसत्ता (शासन पद्धति) के रहते प्रजा दरिद्र है पापरता है, पीड़ित है, नर नारियों का हाहाकार सुनती है तो निश्चय ही वह राज्य पद्धति अल्प जीवी तथा आशु मृत्युमुखाभिमुखी होगी।

जिस राज्य पद्धति में अन्नों का अभाव, वस्त्रों की दरिद्रता, हरेक व्यवसाय पर प्रतिबन्ध, प्रजा की अस्वस्थता, करों की बहुलता फिजूल खर्ची व्यर्थ का व्यय बढ़ रहा हो, वह शासन व्यवस्था एक ही झोंके से पानी पानी में मिल जायगी।

वही राज्य के प्रतिनिधि श्रेष्ठ कहे जायेंगे —

"यस्य वृत्तं नमस्यन्ति, स्वर्गस्थस्यापि मानवाः
पौर जानपदामात्या स राजा राजसत्तम ॥

म राज, प २१। १६

जिसके व्यवहार तथा आचारों के सामने स्वर्ग के देवता भी सिर झुका दें। पुरवासी और नगर निवासी प्रजा जनों का तो कहना ही क्या ?







डाबर
आँवला केश तैल
मनोरम गन्धयुक्त श्रेष्ठ
केश उपादान
डाबर (डा० एस० के० बर्मन) लि०

सबसे भयंकर और दुष्ट रोग	T.B. टी० बी०	तपेदिक	राजयक्ष्मा



भारत के कोने २ में इस दुष्ट रोग ने जो तबाही ... रखी है, वह किसी से छिपी नहीं है। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार लगभग १० लाख व्यक्ति, प्रति वर्ष काल के भयंकर गाल में चले जाते हैं। दसों प्रकार की विदेशी औषधियां व इंजेक्शन आदि इस रोग को नष्ट करने के लिये लम्बे, चौड़े दावों के साथ निकाल जाती हैं। परन्तु—होता है क्या? (मर्ज बढ़ता गया—ज्यूं ज्यूं दवा की) वाली कहावत ... रही है। पहले "स्टेप्टो माईसीन" (एक अंग्रेजी दवा) की बड़ी लम्बी चौड़ी प्रशंसा की गई थी, जिसको देखो, इसी के गुण गाता था। विदेशी शिक्षा में रंगे हुए हमारे देशी भाई भी, अं... ...शी इलाज पर विश्वास न करके, हजारों रुपये विदेशी इलाज पर नष्ट क...के जब फकीर हो जाते हैं। फिर पछता कर इधर उधर दौड़ते हैं। परन्तु ... तो वही कहावत होती है कि—(अब पछताए क्या होत है जब चिड़ियां चुग गईं खेत) अब इस "स्टप्टो माईसीन" जिसे इस रोग के लिए अचूक "ईश्वरी देन" समझा जाता था, उसका हाल ही देखलें। हमारी तरफ से नहीं बल्कि सरकारी रिपोर्ट के अनुसार। स्वास्थ्य विभाग की एक विज्ञप्ति है कि—"स्टप्टो-माईसीन" का प्रयोग घातक है। (देखो विख्यात दैनिक पत्र "विश्वमित्र" कानपुर ता० १६ जून)

विदेशी औषधियों पर हजारों रुपये लुटाने वालों—नोट करो!

T. B. तपेदिक के रोगियों—फिर क्यों विदेशी इलाज में अपने धन और जीवन को नष्ट कर रहे हो? क्या अभी तक आपने भारत विख्यात महौषधि "जबरी" का नाम नहीं सुना, जो इस दुष्ट और भयंकर रोग से लड़ रहे हैं। भारत के कोने २ से दसों प्रशंसा पत्र आप प्रतिदिन समाचार पत्रों में देखते ही होंगे। हजारों रोगियों का कहना है कि "जबरी" दवा नहीं है बल्कि रोगी के काल के भयङ्कर गाल से बचाने वाली 'ईश्वरीय शक्ति है जबरी' भारत के लंगोट बन्द पूज्य ऋषियों की अद्भुत खोज और आयुर्वेदिक विद्या का एक अनोखा चमत्कार है। यदि आप सब तरफ से नाउम्मेद हो चुके हों, ऐक्सरे (Xray) आदि के बाद डाक्टर, हकीमों ने भी जवाब दे दिया हो तो भी एक बार परमात्मा का नाम लेकर 'जबरी' की परीक्षा जरूर करें। परीक्षार्थ ही १० दिन का नमूना रखा गया है, जिससे तसल्ली हो सके।

T. B. टी० बी० 'तपेदिक' व पुराने ज्वर के हताश रोगियो?

अब भी समझो अन्यथा फिर वही कहावत होगी 'अब पछताये क्या होत है जब चिड़ियां चुग गईं खेत' इसलिये तुरन्त आर्डर देकर रोगी की जान बचावें। सैकड़ों हकीम, डाक्टर, वैद्य अपने रोगियों पर व्यवहार करके नाम पैदा कर रहे हैं और तार द्वारा आर्डर देते हैं। तार आदि के लिये हमारा पता केवल 'जबरी जगाधरी' JABRI Jágadhri लिख देना ही काफी है। तार से यदि आर्डर दें तो अपना पूरा पता लिखें मूल्य इस प्रकार है— 'जबरी' स्पेशल नं० १ अमीरों के लिये जिसमें साथ साथ ताकत बढ़ाने के लिये सोना, मोती, अभ्रक आदि कीमती भस्में भी पड़ती हैं। मूल्य पूरा ४० दिन का कोर्स ७५) रु. नमूना १० दिन के लिये २०) रु०। 'जबरी' नं. २ जिसमें मूल्यवान जड़ी बूटियां हैं, पूरा कोर्स २०) रु० नमूना १० दिन के लिये ६) रु०। महसूल आदि अलग। आर्डर में पत्र का हवाला तथा नम्बर 'जबरी' साफ साफ लिखें। पार्सल जल्द प्राप्त करने के लिये मूल्य आर्डर के साथ भेजें। यदि AIRMAIL से मंगाना हो तो ३) रु० डाक खर्च अधिक भेजें।

पता—रायसाहब के० एल० शर्मा एण्ड सन्स रईस एण्ड बैंकर्स (२१) 'जगाधरी' (E. P.)




ऋषि वाक्य ही अचूक औषधि हैं

ले०—पीतमलाल जी एडवोकेट मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश

हमारा प्यारा भारत देश गत ३ वर्ष से स्वतन्त्र हो गया है, यह परमात्मा की महती दया है। देश निवासियों की आशा थी कि स्वतन्त्रता से देश में राम राज्य की स्थापना होगी, परन्तु जब अनुभव से एक २ देश निवासी को अपनी आवश्यक वस्तुओं को प्राप्ति में कठिनाई, वा महगाई, व्यवहार में मिथ्याचरण, चोरबाजार, रिश्वतखोरी आदि दृष्टिगोचर होते हैं तो वह सहसा प्रश्न करता है कि क्या यह ही राम राज्य के लक्षण हैं? यदि नहीं, तो इन दोषों ने जाति और देश का बखान की क्या औषधि है?

महर्षि दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका में लिखा है:—

"इस हानि ने, जो स्वार्थी मनुष्यों का प्रिय है, सब मनुष्यों का दुःख सागर में डुबा दिया है। इनमें से जो कोई सार्वजनिकहित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है, उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर अनेक प्रकार विघ्न करते हैं। परन्तु सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः॥ अर्थात् सवदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय, और सत्य ही विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है—इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थ प्रकाश करने से नहीं हटते। यह बड़ा दृढ़ विश्वय है कि:—

यत् तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्

अर्थात् जो २ विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं।"

निष्कर्ष निकला कि स्वतन्त्रता देश और जाति के लिये सुखकर है और अधिक सुखकारी होगी, परन्तु स्वार्थी मनुष्य इसमें विघ्नडाल रहे हैं जिससे हानि हो रही है

इन स्वार्थी हानिकर मनुष्यों को कैसे वशीभूत किया जावे? इसका समाधान ऋषि इस प्रकार करते हैं.—

जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः

॥ मनु० अ० ७, ४० ॥

अर्थात् जितेन्द्रिय ही प्रजा को अपने वश में करने में समर्थ होता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती आप्त विद्वान थे-आप्त विद्वानों का यही मुख्य काम होता है

श्री बा० पीतमलाल जी एडवोकेट एक कर्मठ आर्य है, आप आजकल आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के मन्त्री हैं, प्रान्त में समाजों की उन्नति के लिए तथा आर्यों को कर्तव्य निर्देश कराने के लिये आपने इससे पूर्व भी अनेक योजनायें तथा सुझाव प्रस्तुत किये हैं। इस लेख में आपने ऋषि निर्दिष्ट मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा की है। —स.

कि वह ससार के सामने सत्यासत्य का वास्तविक स्वरूप दिखावें — महर्षि ने अपना जीवन परोपकार में ही बिताया और अन्त में प्राण तक निछावर किये— आर्य पुरुषों को आदेश किया कि सुख, शान्ति के जीवन के लिये तपस्वी, त्यागी, सयम का जीवन आवश्यक है। आर्य समाज के नियम "ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना" तथा "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।" — स्वर्ण अक्षरों में लिखे जाने योग्य और







निर्भीक क्रांतिकारी दयानन्द

श्री विराज (साहित्य मन्दिर कनखल)



इस बार सन् १९५० में हरद्वार में हुआ कुम्भ मैंने देखा। जो कुछ देखा उसे देख कर विस्मय, क्षोभ और दुख से मन कड़वा हो उठा। बार बार मन में यही बात आती थी कि आज ७२ या ८४ साल बाद जब यह हालत है तो उस समय क्या दशा रही होगी जब ऋषि दयानन्द ने यहां अपनी पाखण्डखंडिनी पताका गाड़ी थी। इन चौरासी सालों में शिक्षा का प्रचार कुछ न कुछ हुआ ही है। बहुत से कारणों से अन्ध विश्वासों में भी कुछ कमी आई है। परन्तु आज भी इतना बड़ा पाखंड, इतने गर्हित प्रदर्शन इतनी विशाल जनता के सामने किये जा सकते हैं तो उस समय क्या दशा रही होगी। रह रह कर मन कह उठता था। कि इसे हटाने को एक नहीं, कम से कम सौ दयानन्द चाहिये थे।

साधु सन्यासियों के अखाड़े कुम्भ से एक महीना भर पहले ही आ आ कर अपनी छावनियों में प्रवेश करने लगे थे; जो भी वस्तुयें भौतिक सुख दे सकती हैं, वे इनके अभिन्न अंग थे। अन्धे से अन्धा और मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी प्रश्न कर सकता है कि विरक्त सन्यासियों को इस सबसे क्या प्रयोजन है? पर प्रश्न करता कोई नहीं क्यों कि प्रश्न करने के लिये साहस चाहिये।

नागों के प्रदर्शन को मैं विशेष महत्व और चिंता की दृष्टि से देखता हूँ। यह बात मुझे समझ आती है कि नग्न रह कर साधना करना शरीर और मन दोनों की दृष्टि से हितकारी हो सकता है परंतु उसका समूह-बद्ध हो कर इस प्रकार प्रदर्शन करना धर्म या तपस्या से कोई भी सम्बंध नहीं रखता। इसका उद्देश्य केवल बेहूदा आकर्षण उत्पन्न करके लोगों को बीभत्स और मूर्ख बनाना है। ये लोग निकृष्ट चरित्र के मनुष्यों से भी गये बीते हैं। भ्रष्ट से भ्रष्ट लोग भी इतना अश्लील वार्तालाप क्या करते होंगे। फिर एक बार नहीं जब जब भी मैं गया तभी उनको उसी प्रकार की बातचीत और हरकतें करते करते पाया।

ये स्त्रियों विशेष कर तरुणियों के पास से गुजरने पर अधिकाधिक अश्लील नग्न प्रदर्शन करने का प्रयत्न करते थे। जीवन का सबसे अधिक मोह साधु कहाने वाले इन प्राणियों को ही होता है, किसी भी प्रकार का खतरा ये लोग सबसे कम उठा सकते हैं। जहाँ वास्तविक खतरा हो वहाँ तो ये फटकते नहीं। देश की स्वाधिनता की लड़ाई इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है।

ऐसे लोगों को, जो किसी महत् उद्देश्य के लिये भी कोई खतरा उठाने को तैयार

सर्वमान्य नियम हैं। इनके पालन से देश में स्वार्थ परायणता घटेगी। महर्षि दयानन्द ने आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व भारत देश के लिये अपनी अचूक औषधि का नुसखा अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में इन शब्दों में लिखाः—

"इस लिये जो उन्नति करना चाहे तो आर्य समाज के साथ मिलकर इसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्यों कि हम और आप को अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें।

रामराज्य की स्थापना में जो दोष आज उपस्थित हैं उनकी अचूक औषधि महर्षि दयानन्द ने बहुत पूर्व बताई है। हमारा कर्त्तव्य है कि उसका उपयोग करें, आर्यसमाज में प्रविष्ट होकर वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करें जिससे देश, जाति और संसार में सुख-शान्ति का राज्य हो।







न हों और वैसे बात बात बात पर लड़ने पर को उतारू रहें, क्या नाम दिया जाय सोचना कठिन नहीं है। कम से कम यदि ऐसे लोग समूह बाँध कर देश की तरुणी माँ बहनों के सामने नगे निकलें तो यह तभी सह्य हो सकता है ? जब कि समाज नपुंसक हो गया हो खास कर तब जब कि सदा कपड़े पहनने वाले लोग केवल उस थोड़े से समय के लिये नगे हो कर झुंड में शामिल हो जाय।

ये लोग प्रभूत मात्रा में गांजे का सेवन करते हैं, फिर भी ऐसे नग्न प्रदर्शन चलते हैं इसका कारण है। कुम्भ का सबसे बड़ा आकर्षण ये ही हैं। यदि ये न हो जाय तो शायद कुम्भ आधा भी न भरे। ऐसी भी अनेक संस्थाएं हैं जिन्हें कुम्भ में भारी आय होती है। वे ही अपनी अपनी आय को बनाने के लिए इन प्रदर्शनों को जारी रखती हैं। सरकार इन प्रदर्शनों को रोक सकती है पर वह इन धर्म के ठेकेदारों से विरोध मोल नहीं लेना चाहती। जो भी इसका विरोध करेगा उसे अवश्य ही बहुत बड़े संकट का सामना करना पड़ेगा। सामाजिक संस्थाएं और राजनीति दल भी इस मामले को हाथ में लेते हिचकिचाते हैं। आज के उत्तयुग में भी सोशलिस्ट और कम्युनिस्ट कहे जाने वाले लोगों ने भी यह प्रश्न सामने आने पर ऐसी उपेक्षा का भाव दिखाया जो उनके साहस को तली तक स्पष्ट दिखा देने वाला था।

इन सब बातों को देखते और सोचते हुए मेरे मन में एक आस बहुत बड़ी बन कर सब ओर व्याप्त हो जाती है। आज से ७२ या ८४ साल पहले जिस आदमी ने अकेले निर्भय हो कर पाखण्डखण्डनी पताका फहरा दी थी, उसकी छाती कितनी चौड़ी रही होगी। उसका कलेजा कितना बड़ा रहा होगा। लाखों लाख आदमियों की भीड़ में एक भी तो आदमी ऐसा नहीं था, जिससे वह सहायता की कुछ भी आशा कर सकता। यहां शरीरिक बल काम नहीं आता, यहां तो मनोबल की आवश्यकता है, जिसके द्वारा अकेला सिंह हजारों भेड़ों बकरियों पर हावी हो जाता है।

लाखों आदमी एक के पीछे एक चले जा रहे हैं सब आँखें मींचे। कोई किसी से पूछता नहीं 'यह सब क्या है ? यह सब क्यों है' विरोध सहने का धैर्य किसी में नहीं है। अज्ञान की पराकाष्ठा है और साथ ही ज्ञान के प्रकाश का आने का मार्ग भी सब ओर से बलपूर्वक अवरुद्ध है।

उस महान अन्धविश्वास की, प्रचण्ड काली शक्ति के विनेद्ध सहसा कहीं से अकेले सिंह गर्जना की सी आवाज गूंज उठती है, "यह सब धोखा है। यह सब पाखण्ड है। यह सब अपने लाभ के लिए रचा हुआ प्रपंच है।" अज्ञान और अन्धविश्वास प्रबल शक्तिशाली हैं तो यह आवाज भी उतनी ही शक्तिशाली है, क्योंकि यह उस दिन से लेकर आज तक दबाई नहीं जा सकी।

इस रूप में ऋषि दयानन्द एक निर्भीक क्रांतिकारी के रूप में प्रगट होते हैं। यह क्रांति यद्यपि सामाजिक थी पर इसका महत्व उन दो ऐतिहासिक क्रांतियों से किसी प्रकार कम नहीं है, जो फ्रांस में रूसो और रूस में कार्ल मार्क्स की प्रतिमा के परिणामस्वरूप हुई थीं। रोबेस्पियर और लेनिन की तरह ऋषि दयानन्द को कोई तेजस्वी अनुयायी मिला नहीं तो देश में आज अज्ञान और अन्धविश्वास कहीं ढूंढे न मिलते और घर घर में उनका दिखाया हुआ प्रकाश जगमगा रहा होता।








छन्द किसको ?

[लेखक—श्री वृन्दावनलाल वर्मा]



ह चुप बैठा था।

परन्तु नेत्र और कान उसके सतर्क थे।

भद्रावती के राजतन्त्रका चुनाव होना था। पाँच वर्ष पहले हेमेन्द्र को चुना गया था। उसके समय में कृषि, गोधन, शासन व्यवस्था, यज्ञ इत्यादि धर्म कार्य कोई भी समुन्नत न हो सके हेमेन्द्र विवादों को बढ़ाने की प्रेरणा दे सकता था' उनको शान्त करके जनपद के विकास मार्ग को स्वच्छ करने की प्रतिभा उसमें न थी।

अबकी बार वह फिर राजन्य चुने जाने के लिये दौड़ धूप कर रहा था। पौर जानपद के मण्डप में बड़ी चहल पहल थी। वितान सजा हुआ था। तोरण, बन्दनवार, केले के खम्बे घट कलश सब यथा स्थान, मानो कोई यज्ञ होने जा रहा था।

आसन प्रज्ञापक ने छन्ददाताओं* को आसनें दीं। बीच में ऊंचे मञ्च पर पौर जानपद सभा का प्रधान चन्दन चर्चित और श्वेत परिधान से भूषित बैठा था। उसके निकट रंग बिरंगी शलाकाओं* के व्यवस्थित ढेर लगे हुए थे। शलाका सग्रहक प्रधान के पास ही मञ्च पर बैठा था।

मण्डप में देवदत्त एक ओर चुपचाप परन्तु सतर्क बैठा था।

हेमेन्द्र अपने पक्ष में छन्द बढ़वाने के निमित्त भद्रावती नगरी और भद्रों के जनपद के प्रमुखों का पीछा सभा मण्डप में भी नहीं छोड़ रहा था। कोई कोई छन्ददाता उसको छन्ददान का वचन दे रहे थे, कोई मुस्करा कर रह जाते थे और कोई कोई तिरछी आँखें करके मुंह फेर लेते थे, परन्तु हेमेन्द्रका प्रयत्न दृढ़ और सतत था।

भद्रावती नगरी के साधारण जन बड़ी देर से चुनाव की क्रिया और उसका परिणाम देखने के लिये कुतूहल वश मण्डप से बाहर इधर उधर घूम रहे थे। पांच वर्ष उपरान्त यह घड़ी आई थी। पाँच वर्ष उपरान्त फिर आवेगी। नगर जन उत्सुकता और थकावट के बीच में झूल से रहे थे। राजन्य पद के छन्दाभिलाषी दो थे। एक हेमेन्द्र, दूसरा चुप्पा देवदत्त।

[२]

मण्डप में आसन्न एक छन्ददाता ने खड़े होकर कहा 'मेरा अनुरोध है कि अबकी बार आर्य हेमेन्द्र को फिर राजन्य पद से सुशोभित किया जाय। उनको ही फिर राजन्य मनोनीत किया जावे।'

दूसरा खड़े होकर बोला, 'मैं समर्थन करता हूँ।' प्रधान ने अपने लम्बे श्मश्रु पर हाथ फेरते हुये खनकते हुए स्वर में कहा, 'आर्य हेमेन्द्र का कोई विरोध करना चाहता है? यदि करना चाहता है तो उसके पक्ष का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जावे।'

सामयिक प्रेरणा तथा उचित निर्देश देना साहित्यिक का पवित्र कर्तव्य है। हिंदी के गौरव श्री वर्मा जी ने आसंघर्षमय वर्तमानमें कर्तव्य की उदात्तप्रेरणा देने के लिये यह कहानी प्रस्तुत की है। स




*उस युग में वोटर को छन्ददाता और वोट को छन्द कहते थे।
*शलाकाएँ आज कल के बैलट का काम करती थी। ये काठ की होती थी।




तुरन्त एक ने देवदत्त का प्रस्ताव किया और दूसरे ने समर्थन।

प्रधान ने बतलाया, ये दो नाम हमारे शास्त्रोक्त नियमों के अनुसार आगये हैं। और कोई नाम? किसी अन्य के लिये प्रस्ताव?"

मण्डप में सन्नाटा छा गया। मण्डप के बाहर खड़े हुए भद्रावती के जन गर्दनें उचका कर सचिन्त इधर उधर देख उठे। प्रधान को को विधान के अनुसार कुछ क्षण चुपचाप प्रतीक्षा करनी थी।

उसी समय उपस्थित जनता में किसी के गिरने का शब्द हुआ। दस बारह वर्ष का एक निरीह सा बालक, थकावट के मारे हो या प्यास के मारे हो, गिर पड़ा। जनता चञ्चल हो गई। मण्डप में आसीन छन्ददाता भी उठ कर बाहर आने को थे कि जन समूह में से सुनाई पड़ा,—कोई बात नहीं, कोई बात नहीं, हम उपचार कर रहे हैं; आप अपना काम करिये।'

छन्ददाता अपने-अपने स्थान पर आ बैठे। देवदत्त अपना आसन छोड़ कर जनता की भीड़ में चला गया। जब कोई तीसरा नाम प्रधान के सामने नहीं लिया गया, तब प्रधान ने छन्दशलाकाओं पर आँख घुमाते हुए शलाका संग्राहक को सकेत किया। शलाका संग्राहक ने हरे रंग की गिनी हुई कुछ शलकायें लीं और उतनी ही लाल रंग की। वह जानता था कि मण्डप में कुल कितने छन्ददाता बैठे हैं।

शलाका संग्राहक और छन्ददाताओं ने देखा कि देवदत्त मण्डप में नहीं है, उस बालक की परिचर्या के लिये भीड़ में चला गया है जिसका उपचार जनता के कुछ लोग कर रहे थे।

उन सबने हेमेन्द्र की उत्सुक मुद्रा को भी देखा जिससे राजन्य पदप्राप्ति की लालसा टपकी पड़रही थी। उसकी आंखोंमें छंद-दाताओं के प्रति बड़ा अनुनय था, बड़ी भीख — छन्द मुझको देना; इन पाँच वर्षों में यदि जनपद के लिये उतना नहीं कर सका, तो आगे अवश्य करूँगा।

प्रत्येक छन्ददाता के हाथ में दो-दो शलाकाएं—एक हरे रंग की एक लाल रंग की—शलाका संग्राहक को देनी थीं। वह देता जाता था सब शलाकाओं का वितरण हो गया, तब प्रधान ने उच्च स्वर में कहा, 'जिसको आर्य हेमेन्द्र के पक्ष में छन्ददान करना हो वह हरी शलाका संग्राहक को लौटा दे, और जिसको अपना छन्द आर्य देवदत्त के पक्ष में देना हो वह लाल शलाका संग्राहक को दे दे दूसरी शलाका अपने पास रक्खे रहे। जब परिणाम की घोषणा, शलाकाओं की गणना के उपरान्त, हो जावे, तब शेष शलाकाएँ मञ्च पर रख दी जावें।'

देवदत्त अब भी मण्डप में न आ सका। हेमेंद्र की आंखों में अब भी वही भीख थी।

शलाका संग्राहक ने शलाकाएँ एकत्र की। प्रधान ने उनको गिना। देवदत्त को पंचानवे छन्द मिले, हेमेन्द्र को पांच। शलाकाओं का यही अनुपात रहा। हरी शलाकाओं का छोटा सा ढेर प्रधान के सामने।

प्रधान ने खड़े होकर तीन बार घोषणा की, 'आर्य देवदत्त भद्रावती जनपद के राजन्य पाँच वर्ष के लिये मनोनीत हुए'।

देवदत्त उस समय भी बालक का उपचार कर रहा था। हेमेंद्र नीचा मुँह किये हरी शलाकाओं के उस छोटे से ढेर पर आँख गड़ा कर रह गया था।

———







"सत्यार्थ - प्रकाश" का प्रकाश

(लेखक—श्री वीरसेनजी आर्य, मन्त्री नगर आर्यसमाज लखनऊ)

महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों में सत्यार्थ प्रकाश सबसे अधिक लोकप्रिय है और आधुनिक वैदिक साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। इस अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का आधार भी वैदिक धर्म है। वैदिक धर्म में धर्म नीति, समाज नीति और राजनीति आदि सभी का समावेश है। इसलिये इस ग्रन्थ में भी व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाला गया है। धार्मिक दृष्टि से प्राय. लोग इसे आर्य समाज का बाइबिल अथवा कुरान समझते हैं। राजनैतिक दृष्टि से इसमें स्वराज्य और अखण्ड चक्रवर्ती साम्राज्य का प्रतिपादन देख कर कुछ लोग इसकी तुलना हर हिटलर की "मीन कैम्प" से करते हैं। कुछ ऐसे लोग भी है जो इसके अन्तिम चार समुल्लासों को पढ़कर इसे केवल खण्डनात्मक ग्रन्थ समझते हैं। किन्तु वास्तव में सर्वतोमुखी क्रान्ति के अमर सन्देश से ओतप्रोत यह महान ग्रन्थ एक प्रकाश स्तम्भ है जिसका निर्माण ऋषि दयानन्द ने समस्त मानव जाति की उन्नति के लिये किया है। इसीलिये आर्य समाज जिसका मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना है अपने जन्म काल से इस महान ग्रन्थ का प्रचार करता रहा है।

देश की धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति में इस ग्रंथ ने अपूर्व क्रान्ति की है परन्तु प्रकाश से भय खाने वालों की भी इस संसार में कमी नहीं है। हठ, दुराग्रह, स्वार्थ और अज्ञान के वशीभूत होकर जब मनुष्य अपनी भलाई को भी नहीं समझ सकता, तब वह विरोध पर उतर आता है और अंधेरे में अपने पथप्रदर्शक दीपक को भी बुझाने लगता है। यही कारण है कि कतिपय संकुचित धार्मिक, साम्प्रदायिक और राजनीतिक ख्याल वाले क्षेत्रों से सत्यार्थ प्रकाश के विरुद्ध समय २ पर आवाज़ उठायी जाती रही है लेकिन, योगी दयानन्द ने जिस दिव्य ज्योति का प्रसार किया था वह दिन दिन अधिक चमक रही है।

सत्यार्थ प्रकाश का अब तक जितना प्रचार हुआ है यह सन्तोष-जनक होते हुए भी पर्याप्त



लेखक

कहे नहीं है। विरोध के दिनों में आर्य समाजों का ध्यान इस ओर अधिक हो जाता है किन्तु उसके पश्चात् उदासीनता आ जाती है। हमें सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार का सदा यत्न करते रहना चाहिये, क्यों कि वेदों का द्वार होने से इस ग्रन्थ का प्रचार वेद प्रचार में बहुत सहायक है। दयानन्द निर्वाणोत्सव मनाते समय हमें इस बात की प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम स्वयं सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय करेंगे और दूसरों को भी इसके प्रकाश से लाभ पहुँचाने के लिये प्रयत्नशील होंगे।







महर्षि दयानन्द और रचनात्मक कार्यक्रम

महर्षि दयानन्द के ग्रंथों एवं उनके जीवन-चरित्र के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम को अपने जीवन का सबसे प्रमुख कार्य माना था। इसी का परिणाम यह है कि महर्षि दयानन्द का दृष्टिकोण संकुचित एवं सीमित न होकर अन्तर्राष्ट्रीय और सार्वजनीन है। इसी के आधार पर उन्होंने 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का उद्देश्य घोषित करके सब धर्मों में एकता स्थापित करने का परिश्रम किया। विश्व की वर्तमान समस्याओं को सुलझाने के लिए उन्होंने भौतिकवाद के स्थान पर अध्यात्मवाद को अधिक उपयुक्त हल निर्धारित किया है, भारतीय संस्कृति और सभ्यता को उन्होंने इसलिए विशेष आदर का स्थान प्रदान किया है। क्योंकि उसमें जीवन की सादगी, सरलता, उच्च लक्ष्यता और विश्व बन्धुत्व की शिक्षा दी गई है। प्रत्येक धर्म, प्रत्येक धर्मों के जन्मदाता तथा प्रत्येक धर्म ग्रंथों पर भारतीय संस्कृति और शिक्षा की छाप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है। इसीलिये आर्य समाज की स्थापना महर्षि दयानंद ने की आर्य समाज अपने जन्मकाल से ही आशावादी और प्रगतिशील रहा है। निराशा के विषाक्त वातावरण उसके जीवन में शिथिलता न ला सके। वह असंख्य विषम परिस्थितियों में भी निर्भीक भाव से अपने पथ पर अग्रसर रहा।

आर्य समाज ने धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में कार्य किया है यद्यपि इस दिशा में अब भी अधिक कार्य करना शेष है। स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करना, गो-वध एवं अन्य उपयोगी पशुओं का वध सर्वथा निषिद्ध करना, भारतीय आर्थिक उन्नति का एक मात्र साधन है। सांस्कृतिक दृष्टि से आर्यसमाज को ही यह श्रेय प्राप्त है, जिसने इस युग में प्राचीन संस्कृति को शुद्ध रूप में विश्व के सम्मुख रक्खा है। नास्तिकता के बढ़ते हुए विषाक्त वातावरण से युवकों और युवतियों को बचाने में आर्य समाज का विशेष हाथ रहा है। शिक्षा प्रसार राष्ट्रभाषा हिंदी प्रचार, स्त्रियों को उचित अधिकार, दिलाना जन साधारण के धार्मिक अधिकारों की रक्षा आदि के लिए आर्य समाज ने विशेष कार्य किया है।

भावी रचनात्मक कार्य

यद्यपि आर्य समाज का अतीत गौरवान्वित है, परंतु अतीत पर ही निर्भर होकर अकर्मण्य हो जाना उचित एवं शोभाजनक नहीं है। जो कार्य विशेषतया करने शेष हैं, उनमें से कुछ कार्य निम्नलिखित हैं, जिन पर आर्य विद्वानों का ध्यान आकृष्ट मैं करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

(१) महर्षि दयानंद ने जिन ग्रंथों को प्रामाणिक माना है, उनका प्रामाणिक और सुसम्पादित संस्करण निकालना।

(२) उच्च कोटि के आर्य विद्वानों द्वारा प्रामाणिक ग्रंथों का सरल, साधारणजनोपयोगी हिंदी भाषानुवाद निकलवाना और अल्प मूल्य में विक्रय कराना।

(३) वैदिक सिद्धांतों की पुष्टि के लिए उच्च साहित्य का प्रकाशन।

(४) छोटे-छोटे ट्रैक्टों का वितरण बहुत अधिक मात्रा में हो।

(५) वैदिक सिद्धांतों पर यूरोपीय एवं भारतीय तथा अन्य धर्मावलम्बी विद्वानों ने जो आक्षेप किए हैं उनके प्रामाणिक, उत्तर रूप में ग्रंथ लिखें जाएं।

आशा है आर्य समाज के कर्णधार उक्त बातों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे यदि इस दिशा में प्रयत्न किया गया तो सफलता भी अवश्य प्राप्त होगी।

'क्रियासिद्धः सत्वे भवति महतां नोपकरणे'




(श्री विद्याभास्कर डा० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य एम० ए० डी० लिट्)

गीत

"मधुप" हि० प्रभाकर

दीप दीप की लौ मङ्गलमय,
उर को जगमग सी कर देती।
* * *
तमस-पटल को आज त्यागकर,
रजनी दीपावलि बन आगी।
उन्मन थी वह अन्धकार से,
इसलिए दीपक लौ माँगी॥
* * *
हे शाश्वत पावन आभा यह,
कवि के, मनु के, जग के उर में।
रसमय उर में कविता भर देती,
थकते जग के कठिन डगर में॥
* * *
नगर, ग्राम, सब सूने पथ भी,
दीप-राजी जगमग कर देती।
दीप दीप की लौ मङ्गलमय,
उर को जगमग सी कर देती॥
* * *
मानव आज पर्व तेरा यह,
पावन प्रबल प्रभा से पूरित।
भरे स्फूर्ति के एक गान से,
इसका अन्तरतम है कूजित॥
* * *
दीपावलि तव चरण वन्दना,
अन्तराल यह मेरा करता।
ओह! प्रकाश तेरा मम मन में,
पुलक पूरित शान्ति भरता॥
* * *
दीप स्वामिनी शिव, मंगलमय,
मृदु भाव भव में भर देती।
दीप दीप की लौ मंगलमय,
उर को जगमग सी कर देती॥




दीपावली कैसे मनाएँ ?

[लेखक—श्री हरिदत्त शास्त्री एम० ए०, मु० अ० महाविद्यालय ज्वालापुर]

"आर्य संस्कृति के उपासक को आज यह पता चलाना मुश्किल है कि दिवाली ने ऋषि दयानन्द को अमर किया या ऋषि दयानन्द ने दिवाली को। दिवाली पर भगवान् बुद्ध, महावीर, सिक्खमुनि स्वा० रामतीर्थ आदि अनेक महान् आत्माओं का पर ज्योति से आत्म ज्योति का मेल कर देना जगद् विश्रुत है। ऋषि दयानन्द ने भी अपना पाञ्चभौतिक देह आज के ही दिन परित्याग करके जगत् को धधक दहकती चिता की लपटों से प्रकाशित कर दि या और कहा था कि भारतीय वीरो ! कायरता न दिखाओ ! रणाङ्गण में बढ़े चलो, विपत्ति के पर्वत भी यदि सामने आवे तो न डरो। अतएव ऋषि ने अपना आदर्श बनाया था —

"न्यायात् पथ. प्रविचलन्ति पद न धीराः"

अर्थात् धर्मवीर वही है जो विपत्तियों के आने पर भी न्याय (उचित) मार्ग से एक पैर भी पीछे न हटे। वही गीता के शब्दों स्थित धः कहलाता है। दिवाली प्रति वर्ष आती है अपना सन्देश देती है और चली जाती है। पर उसके सन्देश को सुनने वाले ही कम हैं, अतः ऋषि भक्तों का परम कर्तव्य है कि वे किसी न किसी रूप में 'ऋषि ऋण' उतारने का प्रयत्न करें। यही दिवाली मनाने का सर्वोत्तम प्रकार होगा। दिये जला कर 'दीपावली' मनाना पर्यंत त्यक्तों के लिए विशेष महत्व नहीं रखता। अर्थों की दूसरी बात है। आर्य जाति का कर्तव्य है कि वह ऋषिकृत सारे ग्रन्थ अर्थात् पूरे २ सेट ले कर रखें जिससे उनका प्रचार हो। दूसरी बात है उनके ग्रन्थों का प्रामाणिक मुद्रण। ऋषि के ग्रन्थ प्रायः छापे की अशुद्धियों तथा भाषा की उलट फेरों से भरे पड़े हैं। कहीं २ कुछ का कुछ हो गया है। दृष्टान्त के लिए हमने व्यवहार भानु के मुख पृष्ठ की अशुद्धियाँ एक वर्ष पूर्व दिखलाई थी, आज वेद सम्बन्धी भूलें दिखलाते हैं-यजुर्वेद २ य अध्याय का १७ वाँ मन्त्र है "यं परिधि पर्यधत्था अग्ने देव पणिभि गुह्यमानः। तन्त एतमनु जोषं भराम्येष मे त्वद् अपचेतयाता अग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥ यहाँ पर सब वेद भाष्यकारों ने "त्वद् की जगह 'ने त्वद्' यह पाठ प्रचलित माना है। अब ऋषि ने 'मेत्व द' क्यों लिखा यह मननीय बात है। 'उरुगाय' शब्द की सिद्धि करते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि अत्र गै शब्दे इत्यस्मात् घञर्थे क विधानमिति कर्मणि कः।" वैयाकरणों की दृष्टि से 'क' प्रत्यय करने पर उरुगाय शब्द की सिद्धि होना कठिन है। यही बात श्री प० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने भी अपनी दभाष्य की टिप्पणी में लिखी है। यह पद्य यजुर्वेद के छठे अध्यायके ३ य मन्त्र में आया है। इसी प्रकार यजुर्वेद १२ वे अध्यायके ४७ वें मन्त्र में 'सहस्रियम्' पाठ है पर ऋषि 'अहस्रियम्' पाठ मानकर 'सह प्राप्ता भार्याम्' यह अर्थ भावार्थ में व न्वय में किया है। अब यहाँ भी एक ऋषि भक्त सन्देह में पड़ सकता है कि वह क्या करे। १२ वे अध्याय के ३८ वें मन्त्र की व्याख्या करते हुए जो ऋषि के नाम से प्रसिद्ध लेख है वह तो अच्छे २ विद्वानों को चक्कर में डाल देता है। उसका संस्कृत में भावार्थ लिखते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं. "हे जीवा ! भवन्तो यदा शरीर त्यजत। तदैतद् भस्मीभूतसत् पृथिव्यादिनासह संयुनक्तु। यूयमात्मानश्च शरीरेषु गर्भाशये प्रविश्य पुन. सशरीरा. सन्तो विद्यमाना भवन्तु।" यहाँ भवन्तः, यूयं, संयुनक्तु भवन्तु इत्यादि क्रियापदों का कर्ता किसे बनाया जाय, यह एक गम्भीरता के साथ विचारणीय प्रश्न है। इनबातों का यदि कुछ उत्तर हो सकता है तो सिर्फ एक यह कि दिवाली के दिन सब मिलकर ऋषि का असली श्राद्ध—अर्थात् जिससे ऋषि के वेदभाष्य प विपक्षियों की भी श्रद्धा बनी रहे वह कार्य-करें। वह कार्य यही है कि परोपकारिणी







श्रद्धा के फूल

स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की कही हुई छोटी सी जीवनी मैंने बाल्यकाल में पढ़ी थी। उसने मेरे बाल हृदय पर गहरा छाप डाल दी। मैंने उसे पढ़कर अपने उस परम आदरणीय गुरुदेव के पद चिह्नों पर चलने का निश्चय कर लिया।

जब मेरे विवाह का समय आया तो उस समय मेरी आयु सोलह वर्ष की थी। मैंने पिता जी से साफ कह दिया कि मैं विवाह नहीं करूंगा। ऐसा इन्कार करने पर घर में कुरुक्षेत्र खड़ा हो गया। श्री स्वामी जी की जीवनी के प्रभाव ने मेरे जीवन में क्रान्ति कर दी और मैंने घर से निकलने की योजना बना ली।

यह उसी योजना का परिणाम है कि मैं आज अपनी इस बहत्तर वर्ष की आयु में अपनी गुफा में बैठा हुआ अपने देश की स्वाधीनता का रूप देख रहा हूँ और अपने पिछले जीवन का सिंहावलोकन कर रहा हूं। मुझे जो कुछ मिला है, वह महर्षि जी की कृपा का फल है, जिसके कारण मैंने पृथ्वी प्रदक्षिणा कर नवीन अनुभव प्राप्त किये। कैसा संग्राम मुझे अपने जीवन में करना पड़ा है और स्वामी जी के आदर्शों पर चलने के लिये कैसे कैसे भीषण युद्ध करने पड़े हैं। आज उनका स्मरण कर बड़ी श्रद्धा से स्वामी जी को वन्दना करता हूँ।



लेखक

महापुरुषों की जीवनियां हमारे लिये प्रकाश-स्तम्भ का काम देती हैं, जो हमें अन्धकार से निकालकर उजाले में ले जाती हैं और हमारी कठिनाइयों को आसान कर देती हैं। निराशा के भंवरों से निकालकर आशा के सूर्य की ओर ले जाती हैं और हममें साहस भरकर सच्चा सैनिक बना देती हैं। मैंने तो स्वामी जी की जीवनी से ही बाधाओं के साथ लड़ना सीखा है, इसलिये मैं महर्षि जी के ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

आज इस दीपावलि के महोत्सव पर उस महान आत्मा की पुण्य स्मृति में अपनी यह श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं और प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि वे सर्व शक्तिमान ईश्वर मुझे बल दें कि मैं अपने जीवन को आर्य संस्कृति के प्रचार में खर्च कर दूं और श्री स्वामी जी के उद्देश्य की सिद्धि करूं।

सभा से अनुरोध करें कि वह सारे ऋषि प्रणीत ग्रन्थों का प्रामाणिक संस्करण निकलवावे। तथा योग्य एक दो पण्डितों को रखकर तथा कतिपय विद्वानों को बुलाकर—वर्ष में एक बार कम से कम—संदिग्ध स्थलों पर ऊहापोह करवावे—तथा फिर वह ग्रन्थ शुद्ध पाठसहित प्रकाशित हो चाहे वह शुद्ध पाठ टिप्पणी में ही क्यों न दिया गया हो। ऐसा करने से ऋषि का 'श्राद्ध' भी वास्तविक हो सकेगा, तथा कुछ लाभ भी होगा अन्यथा 'ऋषि ऋण' उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। परोपकारिणी सभा से सादर तथा सविनय निवेदन है कि वह इस कार्य को शीघ्र आरम्भ करावे तभी दिवाली ठीक प्रकार से मनाई जा सकेगी—यथा—जैसे दिवाली पर घर की सफाई होती है वैसे ही 'अज्ञान' की भी सफाई होनी ही चाहिए यदि दीपावली ही के दिन 'ऋषि निर्वाण' होने का जीता जागता सन्देश है जो वे मरते समय भी दे गए हैं, पर यह हो कैसे? यही प्रश्न फिर सामने आता है।







आर्यधर्म और आर्य संस्कृति के देवदूत ऋषि दयानन्द

दयानन्द अपने समाज, अपने राष्ट्र और संसार का कायाकल्प करना चाहते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने आर्यसमाज रूपी भट्टी में एक भीषण आग जलाई, ताकि विश्व भर की सामाजिक संकीर्णता, सारी बुराइयां और धार्मिक अन्धविश्वास जलकर राख हो और संसार के लोग सुख की सांस लें, ऋषि की गर्जना बड़ी भयङ्कर थी। अन्तर्ज्वाला बड़ी प्रचण्ड थी, हृदय वेदना बड़ी तीव्र थी। वह संसार में विशुद्ध धर्म और विशुद्ध संस्कृति का राज्य चाहते थे अतः महान् क्रान्ति का बिगुल फूंका।

मतवादियों ने अपने मतों के ग्रन्थों के नये अर्थ करने शुरू किये ताकि क्रान्ति के वेग से बच सकें। ऋषि का आदर्श था संसार का उपकार तथा शान्ति और सुख की स्थापना, विश्व कल्याण के लिये शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति की आवश्यकता बताते हुये उन्होंने इसका आरम्भ भारत से किया। और यह घोषित किया कि इस देश का नाम आर्यावर्त है और इसमें बसनेवाले सब आर्य हैं, आर्यों का मन्तव्य यह होना चाहिये कि सब सत्य विद्या का आदि मूल परमेश्वर है और सब सत्य विद्याओं का पुस्तक वेद है, जो बात वेद विरुद्ध है वह मानने योग्य नहीं। सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करना, हमारे हर काम से संसार का उपकार हो, सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य बर्ताव, और अपनी उन्नति से सन्तुष्ट न होकर सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझना, स्वतन्त्र होकर परहित में हानि न करना, अपने समस्त जीवन को परोपकार में लगा देना, प्रत्येक आत्मा में ईश्वर का प्रकाश देखना यह है वह क्रान्ति जो ऋषि दयानन्द संसार में लाना चाहते थे।

शारीरिक उन्नति के लिये ब्रह्मचर्य का पालन तथा बालविवाह, वृद्धविवाह और बहु विवाह का परित्याग बताया।

स्त्रियों का समाज में उचित स्थान घोषित किया। दलित जातियों को उन्नत करने और छुआछूत को मिटाने का यत्न किया, छुआछूत के विषय में ऋषि ने लिखा— 'इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते २ विरोध करते कराते, सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा कर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं" देश काल और पात्र को देख कर दान का निर्देश किया क्योंकि तीर्थ, मन्दिर और मठ विलासिता के केन्द्र बने हुये हैं। अनेकता को छोड़ कर एक अभूत परमेश्वर को उपास्य बताया।

आत्मिक उन्नति के लिए उन्होंने पञ्चयज्ञ बताये, और सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य को जो ऋषियों द्वारा प्रणीत न था धार्मिक तर्क से निकाल बाहर किया, और आर्य धर्म, आर्य संस्कृति का आधार वेद और उसके अनुकूल ग्रन्थों को ठहराया, वे ग्रन्थ चुन लिये जिनमें असत्य का आभास तक नहीं था, उनको आर्ष ग्रंथ कहा। यह उस देव दूत का पन्थ है इस पर चलने से सबका कल्याण होगा।

———

[श्री मेलाराम वर्मा प्रिंसिपल, दयानन्द हाई स्कूल करनाल]







हमारी सामाजिक प्रगतियो के सूत्रधार



श्री प० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय
मन्त्री सार्वदेशिक सभा देहली



राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री प्रधान सार्वदेशिक सभा देहली तथा आ०प्र० सभा उत्तर प्रदेश।

उत्तरप्रदेश



श्री भृगुदत्त तिवारी एम ए०
उपमन्त्री, अधि० आर्यमित्र, प्रेस



श्री मदनमोहनजी सेठ रि० जज
का० प्रधान



बा० पीतमलाल जी एडवोकेट
मन्त्री







हमारी उत्कट इच्छा थी कि दीपावलि विशेषांक में प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं के सभी प्रधान तथा मन्त्रियों के चित्रों के साथ उनका संक्षिप्त परिचय भी दें, क्योंकि इस तरह हमारे पाठकों का आर्य जगत् के प्रमुख व्यक्तियों से परिचय बढ़ता और हम जान पाते कि कहाँ २ कौन २ व्यक्ति कार्य संचालन कर रहे हैं, परन्तु प्रथम तो हमसे ही इस कार्य में कुछ विलम्ब हो गया फिर दूसरे सभाओं से भी ब्लाक और इच्छित परिचय प्राप्त न हो सका, समय कम होने से कठिन भी था। जितना सम्भव हो सका वह पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

—सम्पादक

श्री प० रामदत्तजी शुक्ल, अधिष्ठाता धा० प्र० विभाग,
तथा भूतपूर्व मन्त्री आ० प्र० सभा उत्तर प्रदेश





हैदराबाद दक्षिण—

श्री विनायकरावजी बॉर ऐट ला



श्री प० मनोहरलालजी मन्त्री



भूतपूर्व प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा तथा वर्त्तमान सदस्य मन्त्री हैदराबाद सरकार



श्री नरेन्द्रजी प्रधान







बङ्गाल आसाम—



श्रीयुत मिहिरचन्द्र जी धीमान प्रधान



श्री बटु कृष्ण बर्मन, मन्त्री

राजस्थान



कुंवर चाँदकरण जी शारदा प्रधान



पं० भगवान स्वरूप जी मन्त्री








बिहार



श्रीयुत प० वासुदेव शर्मा, मन्त्री
प्रधान— श्रीयुत ब्रजनन्दन सिंह जी रिटयर एक्साईज कमिश्नर बिहार उडीसा [इस समय वानप्रस्थ आश्रम में प्रविष्ट] (ब्लाक अप्राप्त)

मध्य प्रदेश



मा०घनश्याम सिंह जी गुप्त प्रधान
मध्यप्रांतीय आर्य सभा

मन्त्री — श्रीभीम सेन वर्मा
(ब्लाक अप्राप्त)

अ० भा० उपदेशक संघ



श्री अयोध्याप्रसाद जी बी. ए.
प्रधान



श्री प्रकाशवी जी शास्त्री
मन्त्री









शेष प्रान्तों की नामावली, जिनके चित्र प्राप्त नहीं हुये

५—पंजाब

महाशय कृष्ण जी प्रधान

बाबू मानक चन्द्र जी प्रिंसिपल दोआबा कालेज जालन्धर शहर, मन्त्री।

६—मध्य भारत

पं० तिलोकी नाथ जी भार्गव प्रधान

श्री वीरसेन जी मन्त्री

७—बम्बई

श्री कान्तिलाल जी प्रधान

स्नातक सत्यव्रत जी मन्त्री

९—सिन्ध

प्रो. ताराचन्द्र जी एम ए प्रधान

श्री वेहड़ोमल जी मंत्री

१०—बड़ौदा

श्री पं० शान्तिप्रिय जी प्रधान

श्री प्रतापचन्द्र जी मन्त्री

११—आर्य प्रतिनिधि सभा नेटाल दक्षिण अफ्रीका

प्रधान—राजदेव सिंह बोध सिंह

मंत्री—सत्यदेव जी शर्मा

१२—आर्य प्रतिनिधि सभा मौरिशस

प्रधान—गोपीचन्द्र जी बल्लर

मंत्री—दीप नारायण पदार्थ

१३—आर्य प्रतिनिधि सभा ईस्ट अफ्रीका

प्रधान—डी. डी. पुरी

मंत्री—कृष्णदेव जी कपूर

१४—आ. प्र. नि. सभा फिजी

प्रधान—जे. पी. महाराज

मन्त्री—गोपेन्द्र नारायण जी पथिक

१५—आ० प्र० नि० सभा डच गायना

मन्त्री—के. ज्ञान, भूमरा

१६—आर्य सार्वदेशिक सभा

प्रधान—श्री म० आनन्दस्वामी सरस्वती जी महाराज

मन्त्री—श्री देशराज जी

सत्यार्थ प्रकाश का सुन्दर संस्करण

आर्य जगत् को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि परोपकारिणी सभा सत्यार्थ प्रकाश का सर्वाङ्ग सुन्दर संस्करण प्रकाशित करने का निश्चय कर चुकी है, यह संस्करण चित्ताकर्षक टाइप एवं विशुद्ध रूप में प्रकाशित होगा।

परोपकारिणी सभा द्वारा अब तक २५ संस्करण प्रकाशित हुए हैं, विचार यह है कि प्रत्येक संस्करण का परस्पर मिलान किया जाय, पुनः उसका मिलान महर्षि स्वा० दयानन्द महाराज की हस्तलिखित प्रति से किया जाय। प्रतीक भी शुद्ध रूप में पते सहित हों, परन्तु यह कार्य उसी अवस्था में सफल हो सकता है जब प्रत्येक नर नारी इसमें सक्रिय सहयोग प्रदान करें।

परोपकारिणी सभा के पुस्तकालय और वैदिक यन्त्रालय में निम्न लिखित संस्करणों की एक भी प्रति नहीं है:—

प्रथम संस्करण	१८७५,	द्वितीय सं०	१८८४
नवम ,,	१९०९,	दशम ,,	१९११
ग्यारहवाँ ,,	१९१३,	तेरहवाँ ,,	१९१५
पन्द्रहवाँ ,,	१९१९,	सत्रहवाँ ,,	१९२५
उन्नीसवाँ ,,	१९२४,	बीसवाँ ,,	१९२६
बाइसवाँ ,,	१९२८,	सत्ताईसवाँ ,,	१९४४

(चौदहवें संस्करण की एक प्रति श्रीयुत गोरलकृष्ण जी आर्य सुभाषनगर देहरादून से प्राप्त हो चुकी है)

जब तक इन संस्करणों की एक २ प्रति न मिल जावे, मिलान करना उचित न होगा। इसलिये प्रत्येक समाज के अधिकारियों और प्रत्येक नर-नारी से मेरी प्रार्थना है कि इन संस्करणों में से जिस २ संस्करण की प्रति जहाँ २ या जिसके पास हो मुझे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नया बाजार देहली के पते से शीघ्र सूचित करने का अनुग्रह करें और अपना पूरा पता भी मेरे पास लिखें जिसके आधार पर भविष्य में पत्र व्यवहार कर सकूं।

निवेदक—
राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री प्रधान
सार्वदेशिक आ० प्र० सभा देहली








भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धारक ऋषि

सन् ५७ के गदर में बिजली के समान चमक कर भारतीय वीरता विलीन हो गई थी। संस्कृति, अंग्रेज़ी शिक्षा का क्लोरोफार्म सूंघकर बेहोश होती जाती थी, राजनैतिक पराश्रय के साथ साथ भारतीय अपनी सांस्कृतिक हीनता भी अनुभव कर रहे थे। अपने उच्चकोटि के साहित्य पर उन्हें कोई प्रेम न था। लोकोत्तर उच्च चरित्रवान और ज्ञानी अपने ऋषि मुनियों पर कोई आस्था न थी। भारतीय अपनी दृष्टि में अपने को अंग्रेजों से हीन मानते थे। मुसलमान अंग्रेजों की छाया में ही अपने को दृढ़ करने लगे। अंग्रेजी के साथ २ उर्दू को प्रधानता मिली।

ऐसे समय में तेजस्वी ऋषि ने भारतीय संस्कृति के दिव्य रूप को द्योतित कर दिया। भारतीय वेश, भूषा, भाषा, साहित्य और धर्म का अपमान देखकर ऋषि की आत्मा तप्त हो उठी। उसने आह भर कर अंग्रेजी सभ्यता के मतवाले भारतीयों को सम्बोधन किया:—

"देखो! (अंग्रेज) अपने देश के बने हुये जूते को आफिस और कचहरियों में आने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं। इतने ही से समझ लो कि अपने देश के बने जूतों का भी कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं। उतनी भी अन्य देशस्थ मनुष्यों की नहीं करते।

देखो! कुछ सौ वर्ष के ऊपर इस देश आये यूरोपियनों को हुए और आजतक ये मोटे कपड़े आदि पहनते हैं, जैसा कि स्वदेश में पहरते थे परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा। और तुम में से बहुत से लोगों ने उनकी नकल करली। इसी से तुम निर्बुद्धि और वे लोग बुद्धिमान ठहरते हैं।"

स. प्र. ११ स.

उधर ऋषि ने बेहोश हिंदू जाति पर धार्मिक प्रहार करनेवाले ईसाई मुसलमानों को फटकारा जो हिन्दुओं का मखौल उड़ाते थे।

ऋषि के समय में भी बड़े बड़े संस्कृत के विद्वान् स्वधर्म पर, रूढ़ियों पर विश्वास रखने वाले बहुत थे, पर साहस और सूझ की इनमें कमी थी। कुछ आत्मविश्वास खोचुके थे। ऋषि को आत्मविश्वास था। जिसको उन्होंने



लेखक

भारतीयों में भी उत्पन्न किया। और फिर यह आत्मविश्वास भारतीयों में बढ़ता ही गया।

भारतीय वेष, भारतीय भाषा, भारतीय धर्म, और भारतीय महापुरुष सबका ही ऋषि ने आत्मविश्वास पूर्वक मण्डन किया और इस पर बाहर से जो कुछ कूड़ा करकट, धूल धक्कड़ आ गिरा था उसे ऋषि ने तर्कवायु के झोंकों से उड़ा दिया। यही मण्डन था।

ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज के बीज




ले०—श्री बिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थ




महर्षि दयानन्द और स्वतन्त्र भारत

(ले श्री मूलचद्र अग्रवाल गोविन्दगढ़—जयपुर)

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष के काठियावाड़ प्रदेश ने दो महापुरुषों को जन्म दिया, पहले महर्षि स्वामी दयानन्द और दूसरे महात्मा गाँधी। भारतवर्ष में स्वराज्य की स्थापना की आवाज राष्ट्रीय महासभा के जन्म के भी बहुत पहले स्वामी दयान्यद ने उठाई, स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में दिखाया है कि 'कि कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य (स्वराज्य) होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है' अथर्व वेद के एक मन्त्र का अर्थ करते हुए ऋषि ने लिखा है कि "जब कि कर्म योगी प्रजागण सबसे प्रथम संगठित होता है, तब वह स्वराज्य प्राप्त करता है, जिस से श्रेष्ठ दूसरा कोई राज्य नहीं है"

मेरा ऐसा ख्याल है कि स्वामी दयानन्द के बाद महात्मा गान्धी ने शायद ही ऐसी कोई मूल भूत बात कही हो जिस का प्रारम्भ स्वामी दयानन्द ने नहीं किया हो इस लिए मैं श्री स्वामी जी को राष्ट्रीय

(शेष अगलेपृष्ठ पर)

अंग्रेज़ी शिक्षाकी वायु से उड़कड़ कर भारतीयों के मस्तिष्क में जा पहुँचे। राजनैतिक परिस्थिति इनके अनुकूल पड़ी। भारतीय सभ्यता संस्कृति, भाषा, इतिहास किसी में इनकी आस्था न थी। न वह इनके महत्व को जानते ही थे। आज भी शासनसूत्र ऐसे ही व्यक्तियों के हाथ में है, इनके पीछे 'अन्धेनैव नीयमाना यथा अन्धा" के अनुसार प्रजा रोष में अकर पथभ्रष्ट हो रही है। पर मुसलमानों पर इनका कोई प्रभाव नहीं पडता। जिस विषैली संस्कृति के प्रभाव से एक आर्य जाति के दो टुकड़े हो गए, वही संस्कृति आज फिर लाड़ प्यार से पाली जा रही है। हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने पर भी कल्पित हिन्दुस्तानी भाषा की "हाँक" आज भी लगाई जा रही है। भारतीय संस्कृति के विरोधी अपना जयघोष कर रहे हैं। "हरे-रव द्वारे शिव शिव शिवानां कलकलः।" आवश्यकता है कि वैदिक केसरी आर्य समाज एक बार गरजकर इन भ्रमग्रस्तों को चुप करे, आर्य जाति को सही मार्ग दिखावे, संस्कृति के विषय में भ्रान्ति फैलानेवाले संकर संस्कृति के पक्षपातियों से माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी के शब्दों में स्पष्ट कहे:—

'जब हम अपनी संस्कृति को भारतीय संस्कृति कहते हैं तो ठीक कहते हैं। लेकिन यह भूलना नहीं चाहिए कि यद्यपि हमारी सांस्कृतिक धारा को विभिन्न छोटी २ धाराओं ने पुष्ट किया है, फिर भी उसकी मूलधारा का उद्गम उनलोगों की बौद्धिक और आध्यात्मक विचार परम्परायें हैं, जिनकी संस्कृति का प्रतिनिधित्व वैदिक साहित्य करता है'। आर्य समाज ऋषि का उत्तराधिकारी है। उसे ऋषि के कार्य को पूरा करना है

सैकड़ों वर्ष की तपस्या और सहस्रों बलिदानों के उपरांत आर्यजाति को स्वतन्त्रता मिली है पर यह स्वतन्त्रता भी अन्तराय बहुल है। घर में लड़नेवालों के भुजदण्ड मां बहनों की लाज लुटने पर ठंडे पड जाते है। ईश्वर दया की वर्षा करे जयचन्द की चिता की इन चिनगारियों पर। आज देश भक्त राष्ट्रीय लोगों को संस्कृति का नाम लेते ही साम्प्रदायिकता का टीका लगाया जाता है। आर्यसमाज ही इन लोगों से कुछ कह सकता है। कड़ककर कह सकता है। अध्यात्मज्ञान मौन पड़ा है। मेंढक शोर मचा रहे हैं। भौतिकवाद टर्रा रहा है। अब ऋषियों की सहस्रों वर्ष की तपस्या और अनुभूतियों के फल हमारी संस्कृति को भी हड़पना चाहते हैं। यह नहीं होगा। यह आर्यावर्त है। पुण्य भूमि है। बड़े बड़े असुर यहीं ध्वस्त हुए हैं। सावधान!








प्राचीन आर्य संस्कृति—

("सुशीला' विद्यालंकृता साहित्यरत्न)

आज संस्कृति शब्द की धूम है। पर साधारण जन इस अर्थ से अपरिचित है। एक विनाशोन्मुखी यूरोपियन संस्कृति दूसरी पूंजी पतियों और श्रमजीवियों में भेद करने वाली संस्कृति है। जिनसे भीषण नर संहारक दो विश्वयुद्ध के फल मिले। तीसरी सती पद्मिनी की चिता की चिनगारियों की, युद्धों की विभीषिका का स्मरण कराने वाली है। संस्कृति से समाज और तथा राष्ट्र का निर्माण होता है। आर्य संस्कृति की आधार शिला धर्म, अर्थ, काम मोक्ष है। अर्थ से शरीर की भूख काम से नर नारी का मनोरंजन, धर्म से बुद्धि मोक्ष से आत्मा का विशेष सम्बन्ध है।

आर्य संस्कृति में चतुर्वर्ग का परस्पर सम्बन्ध है। अन्योन्ये श्री है महर्षि व्यास ने धार्मिक संस्कृति का सुन्दर स्वरूप दिया है।

ऊर्ध्वबाहुः विरोम्येष न च कश्चित् शृणोति माम्
धर्मादर्थश्च कामश्च, सधर्मः किं न सेव्यते।

आर्य संस्कृति में अर्थ और काम पर धर्म का अंकुश रहा है। शरीर पोषण के लिये अर्थ आवश्यक है, पर संग्रह की अति, और चोरबाजारी ने पूंजी-को जन्म दिया इसके लिए आर्य-संस्कृति संसार को

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यचिद् धनम्"

का सन्देश देती है। इसी से वर्तमान क्षुब्ध, अशांत वातावरण में सच्ची शांति और संतोष अमृत पिलाया जा सकता है। आज का धनिक अधिक लोभी, स्वार्थी बाजार चोर तथा लम्पट प्रतीत होता है आर्य संस्कृति तो—"अद्रोहेणैव भूतानामल्प द्रोहेण वा पुना' का मूल मन्त्र देकर उचित वृत्ति से जीवन यात्रा का सन्देश देती है। आर्य संस्कृति का पालक अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह" पांच यमों को अपना लक्ष्य मानता है। इसी प्रकार आर्यों की चतुराश्रम व्यवस्था में केवल २५ वर्ष के लिए गृहस्थाश्रम में ही संयमित काम की आवश्यकता बताई है। अजितेन्द्रियों के लिए गृहस्थाश्रम त्याज्य है। अधार्यो दुर्बलेन्द्रियै,' आज की बढ़ती हुई जन संख्या इस देश के लिए विषम समस्या (अभिशाप) है। इसी से महर्षियों ने काम को भी धर्म से बाँधा था। आर्य संस्कृति की चौथी सीढ़ी मोक्ष है। मोक्ष के अर्थ, पापों से, दुःख से छूटना। कानून अपराधों की संख्या कम नहीं करते। राज्य व्यवस्था, मनुष्य के मन को बदल सकते। पुलिस शारीरिक अपराधों को देख नहीं सकती है। मानसिक दोषों को नहीं मन तो " सत्येन शुध्यपति" सत्य से शुद्ध होना है। निर्विषय मन से ही मोक्ष की प्राप्ती होती है। यही आर्य संस्कृति का सार है। पुरुषार्थ चतुष्टय की नींव पर आर्य संस्कृति का भव्य भवन सुशोभित है उसी की ओर पुनः सबको आना होगा।

' 'पूर्वा संस्कृति विश्ववारा"

[पिछले पृष्ठ का शेष]

जागृति का जन्म दाता और महात्मा जी को उनसे बचे हुए कार्य क्रम को सुन्दरता से पूरा करने वाले कर्मवीर के रूप में मानता हूँ।

कुछ लोगों का ऐसा ख्याल है कि आर्य समाज का कार्य पूरा हो चुका है परन्तु आज हमारे देश के सात लाख गावों की क्या स्थिति है? वही अज्ञान, वही अन्ध विश्वास, वही निष्क्रियता और गावों में वही गन्दगी अभी ज्यों की त्यों है इस लिए भारतवर्ष के समस्त आर्य समाजों को चाहिये कि अपना एक कार्यक्रम बनाकर नये युग का आरम्भ करें. आर्य समाज के कार्य को देख कर अन्य अनेक संस्थायें भी कार्य करने लगेंगी जैसा कि अब तक होता रहा है.

महात्मा गांधी का आर्य समाज से किंचित मतभेद होते हुए भी उनकी स्वामी दयानन्द के कार्य और आर्य समाज के विषय में क्या भावना रही है. ता० ३० अप्रैल १९३४ को अपने हाथ से मुझे लिखे पत्र में वे लिखते हैं " उनके (स्वामी दयानन्द के) कार्य की कीमत मेरे नजदीक बहुत है .... आर्य समाज की भी मेरे नजदीक बहुत कीमत है"

इस कीमत को सुरक्षित ही नहीं रखना अपितु ऊँचा करना है।








हम किधर जा रहे हैं

प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

उपरोक्त शब्द क्रान्ति के अग्रदूत महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने भारत की सुविशाल नगरी मुम्बापुरी (बम्बई) में कहे थे। ऋषि ने सन् १८५७ ई० की क्रान्ति को भली प्रकार अपनी आंखों से देखा था और यह भी विचार किया होगा कि इतनी बड़ी क्रान्ति और संगठन के के साथ चलाई हुई क्रान्ति क्यों विफल हो गई। भगवान जाने उनके हृदय में क्रान्ति की विफलता को देखकर क्या २ भाव आये होंगे और देश की तात्कालिक दुरवस्था को अनुभव कर कैसे धर्य धरा होगा। परन्तु हमारे पास सम्प्रति जो उनके लेख हैं उनसे हमें यह अनुमान करना पड़ता है कि जो व्यक्ति घर का त्याग परमेश्वर की प्राप्ति के हेतु करता है वह बीच मार्ग में ही चलते २ कैसे रुक गया।

उन्होंने कहा था कि मैं अपनी विशाल आर्य जाति को दुरवस्था में पड़े छोड़कर अकेले स्वर्ग जाना तुच्छ समझता हूं। अतः मैं अपने सर्वस्व को निछावर करके भी इस जाति का उत्थान करूंगा और इसी को स्वर्ग बनाऊँगा।

उन्होंने समाज धर्म और राष्ट्रीय आदि सभी दृष्टियों से जो देश की सेवा की है वह महान है उनके ग्रंथों में पग-पग पर सर्व प्रकार की देश जाति और समाजोपयोगी भावनाओं का बाहुल्य पाया जाता है। उन्होंने लिखा है कि "माता और पिता के समान भी सुखदाई विदेशी राज्य स्वदेशी जन्म शासकों से हीन है" ये हैं ऋषि के देश भक्ति से भरे हुये शब्द।

स्वदेशी राज्य के नष्ट होने और विदेशी राज्य के स्थापित होने के सम्बन्ध में ऋषि कहते है कि "आपस की फूट वैर भाव ईर्षा द्वेष ब्रह्मचर्य का अभाव स्वार्थ परायणता आदि अनेक दुर्गुणों के कारण ही आर्य जाति का सार्व-भौमिक चक्रवर्ती राज्य नष्ट हुआ, यही तक नहीं किंतु आर्य जाति अपने देश में भी अखण्ड राज्य स्थापित न रख सकी" फलतः ऋषि ने आर्य जाति के खोये हुये गौरव की प्राप्ति के हेतु आर्य समाज की स्थापना बम्बई में की और देश वासियों को सन्देश दिया कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।"

ऋषि दयानन्द जी सरस्वती हमे तथा हमारे देश को जिस रूप में देखना चाहते थे आज हम उससे कोसों दूर हैं। आज भले ही हम स्वतन्त्रता का अनुभव करें परन्तु जो स्वतन्त्रता स्वराज्य अच्छा राज्य या सुख का राज्य प्राप्त कराने में असमर्थ हैं वह स्वतन्त्रता कुछ नहीं हैं कोरी विडम्बना है।

हमारे देश के आज के शासक जो कल स्वतन्त्रता की लड़ाई में कंधे से कंधा भिड़ा कर मातृभूमि के उद्धारार्थ लड़ रहे थे उनको आज पदलोलुपता स्वार्थ परता की बीमारी ने ऐसा दबोच रखा हैं कि वे देश के भावी इष्टानिष्ट के विचार से शून्य हो पारस्परिक ईर्षा द्वेष दम्भ चोर बाजारी घूंस खोरी अनुचित पक्ष पात आदि के शिकार होते जा रहे हैं जिसका फल होगा देश की स्वतन्त्रता सुख सम्पत्ति ऐश्वर्य का सर्व-नाश। अतः मैं ऋषि के अनन्य भक्त अनुयाइयों से कहना चाहता हूं कि आर्य-वीरो उठो और महर्षि के दिये हुये आदेश का स्वयं पालन कर जनता जनार्दन के सम्मुख इस ऋषि के निर्वाण महोत्सव पर प्रतिज्ञा करो और व्रत लो कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न होना चाहिये किंतु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये", इस आदेश का पालन प्रत्येक भारतीय नागरिक तथा शासक वर्ग से जब तक न करा लेंगे शांतिसे न बैठेंगे।




[लेखक—श्री जियालालजी अजमेर]




महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा स्वराज्य

[लेखक—श्री प० द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री, सिद्धांत शिरोमणि]

वर्तमान युग में सब प्रथम 'स्वराज्य' शब्द का उल्लेख महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमूल्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में किया, विदेशी राज्य ऋषि को काटे की तरह खटकता था। भारतवासियों को पादाक्रान्त देखकर जो मर्मभेदी उद्गार ऋषि के मुख से निकले हैं उन्होंने देश में एक प्रबल वातावरण उत्पन्न किया जिसके परिणाम स्वरूप ही स्वराज्यान्दोलन खड़ा हुआ, इधर कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस तथा आर्य समाज के सहयोग ने इस आन्दोलन को एक विराट रूप प्रदान किया। जनता के त्याग और बलिदानों ने अंग्रेजों में मस्तिष्क में एक भयङ्कर विभीषिका उत्पन्न कर दी—कुछ अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बदली और भारत को स्वतन्त्रता मिली। यह रचनात्मक कार्य का प्रारम्भ काल है—किस प्रकार का राष्ट्र बनाना है, यह एक विचारणीय है। इस निर्माण काल में यदि हमने खूब सोच विचारकर समझ बूझकर राष्ट्र निर्माण के नकशे का चुनाव न किया तो इससे अधिक गम्भीर भूल अन्य क्या हो सकती है? महर्षि दयानन्द सरस्वती जिस राष्ट्र का स्वप्न ले रहे थे महात्मा गांधी जी जिस राम राज्य की कल्पना कर रहे थे क्या हम आज उसी की आधार शिला स्थापित कर रहे है?

सोश्यलिज्म, कम्यूनिज्म, आदि अनेक इज्मो की दौड़ हो रही सी प्रतीत होती है। हमारे नेता पश्चिम की चमचमाहट से प्रभावित हुए हैं, वे पश्चिम की बाह्य भौतिक आभा को भारत राष्ट्र में देखना चाहते हैं। परन्तु मानवता, सहृदयता, आस्तिकता, विश्वबन्धुता, धार्मिकता, की तरफ आज के नेता यथेष्ट विचार करने में प्रयत्न नहीं प्रतीत होते। क्या इस तरह शान्ति सम्भव है?

"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो, न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरो स्वैरिणी कुत॥" की घोषणा क्या आज के शासक कर सकते हैं? अनेक स्वर्णा रश्मि के साथ आर्य समाज ने भी 'स्वराज्य' के आन्दोलन में पूर्ण भाग लिया और तीव्र सवेग से लिया जिससे आर्य समाज की संस्थाओं में उसके प्रचार के कार्यक्रम में स्वभावतः शिथिलता आई। ब्रिटिश गवर्नमेंट की क्रूर दृष्टि भी आर्य समाज पर पड़ी—परन्तु सब बाधाओं को पार करता आर्य समाज आगे ही बढ़ता गया।

अब आर्य समाज का यह सुस्पष्ट कर्त्तव्य हो जाता है कि वह अपनी तेजस्विता प्रकट करें। अपनी वाणी तीव्र करे, अपनी समस्त शक्तियों को संगठित कर महर्षि प्रदर्शित पथ पर ही स्वयं चलें तथा अन्यों को चलने के लिये प्रेरित करें। हमें तो अपनी आश्रम व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था की ही वास्तविक रूप में पुनः स्थापना करनी है। शिक्षा पद्धति में गुरुकुल पद्धति को ही प्रचारित करना है। व्यापार उद्योग शिल्प कला, विज्ञान की उन्नति कर उनका सदुपयोग करना है। हमारा पूर्ण विश्वास है कि भारतीय संस्कृति द्वारा ही भारत का तथा समस्त विश्व का उद्धार होगा। और भारतीय संस्कृति का कोष संस्कृभारती में भरा हुआ है। यदि हमारी शिक्षा में संस्कृत साहित्य का प्रवेश अनिवार्य रूप से हो जावे तो सरलता से ही जनता के मस्तिष्क में भारतीय संस्कृति की छाप पड़ सकती है। मनोवृत्ति, विचारधारा ठीक हो जायगी। मनुष्य स्वयं बुराई से बचेगा। वह बलवान, शक्तिशाली सत्य सन्ध तथा न्यायप्रिय बनेगा। यही महर्षि का स्वर्ण स्वप्न था। आशा है महर्षि का उत्तराधिकारी आर्य समाज अब चेतेगा और अपने कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर होगा।

———




* आप्यक्क *

अनुपम पुस्तकें

पुस्तक का नाम	लेखक	मूल्य
१ प्रभुभक्ति	श्री आनन्दस्वामीजी	१।)
२ प्यारा ऋषि	,,	।।=)
३ महात्मा हंसराज	,,	२।।)
४ प्रभुदर्शन	,,	छप रही है।
५ नवीन व प्राचीन समाजवाद	म० नारायणस्वामीजी	१)
६ महर्षि दर्शन	प्रिं० दीवानचन्दजी	२)
७ दयानन्द शतक	,,	।।=)
८ जीवनज्योति	,,	१)
९ अमृतवाणी	श्री प्रकाशानन्दजी	।-)
१० व्याख्यानमाला	श्री अच्युतानन्दजी	।।।)
११ आर्यसमाज का दिग्दर्शन	श्री रामप्रसादजी	१।।)
१२ षड् दर्शनसमन्वय	श्री बुद्धदेव मीरपुरी	१।)
१३ वैदिक धर्म का महत्व	श्री त्रिलोकचन्दजी	=)

प्राप्ति-स्थान—अधिष्ठाता, महात्मा हंसराज वैदिक साहित्य विभाग, जालन्धर नगर।




जाति भेद कैसे मिटाया जाय ?



ह बताने की आवश्यकता नहीं कि जातपांत की प्रथा भारत राष्ट्र के लिए कैसी अनिष्टकारी प्रमाणित हुई है। प्रश्न उठता है कि इस विनाशकारी प्रथा का अन्त कैसे हो ? वस्तुतः जातपात कोई भौतिक वस्तु नहीं है जैसे कुर्सी मेज इत्यादि जिसको हम तोड़ सकें। इसे हम न देख सकते हैं, न सूंघ सकते हैं, न चख सकते हैं और न स्पर्श कर सकते हैं। वास्तव में जातपांत केवल एक परिपाटी अथवा प्रथा है जिसने मनुष्य मनुष्य के बीच गहरा द्वेष उत्पन्न कर दिया है अथवा यों कहिये कि मनुष्य को मनुष्यत्व से गिरा दिया है। एक प्रभु की सन्तानों, को भी यह भाई भाई की तरह प्रेम से नहीं रहने देती। जात पांत एक अदृश्य हौआ या भूत है हमारा अज्ञान तथा बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक विकार है।

इससे छूटने का सीधा उपाय यही है कि आप परम पिता परमात्मा के पितृत्व, धरती माता के मातृत्व एवं मनुष्य मात्र के भ्रातृत्व के सच्चे ज्ञान एवं रहस्य को समझें। इस्लाम धर्म संसार को दो भागों में बांटता है दारुल इस्लाम व दारुल हरब अर्थात् इस्लामी संसार तथा युद्ध का अथवा दुश्मनों का संसार, पर वर्तमान हिन्दु धर्म हिन्दू समाज को ही ३००० से अधिक संसारों में बांटता है। जितनी जातियां या बिरादरियां हैं स्वयं में एक संसार हैं। मैं वैदिक धर्म को प्रेम करता हूँ क्योंकि उसमें मनुष्यमात्र से प्रेम करने की शिक्षा है। इस्लाम से मुझे उसके दो संसारों के सिद्धान्त के कारण द्वेष है। वर्तमान हिन्दू धर्म से मुझे हिन्दुओं को ही ३००० से अधिक संसारों में बांटने के कारण घृणा है। हिन्दू धर्म केवल एक सामाजिक संगठन है जिसका आधार जात बिरादरी की प्रथा है। इस प्रथा के ही कारण स्वातन्त्र्य वीर सावरकर का 'समस्त राजनीति का हिन्दू करण" का नारा विफल हो गया और पाकिस्तान बन गया। यदि वीर सावरकर और हिंदू महासभा "समस्त हिन्दू समाज में एकता, समता, तथा भ्रातृत्व की भावना" अर्थात् जातपात को नष्ट करने का नारा लगाते तो समस्त राजनीति का हिंदूकरण अपने आप हो जाता। न पाकिस्तान बनता न हिन्दुओं के राजनैतिक नेताओं सरदार पटेल एवं पंडित नेहरू को ७६ प्रतिशत हिन्दुओं के लिए २४ प्रतिशत मुसलमानों के बराबर बराबर अधिकारों की भीख मांगनी पड़ती और न यह भीख २४ प्रतिशत मुसलमानों के प्रतिनिधि जिन्ना द्वारा तिरस्कृत की जाती। अपने ही देश में भारी बहुमत होते हुए भी हिन्दुओं की जो दुर्गति दुर्दशा एवं अप्रतिष्ठा हुई वह सब अपने ही दोष के कारण थी।

४००० वर्ष से अपनी जातपात की प्रथा द्वारा हिन्दू जो परमात्मा के प्रति पाप करते आए है उसी पाप का दण्ड न्याय प्रिय परमात्मा की ओर से हमें मिला है। महान दुख का विषय यह है कि इतना होते हुए भी हम नहीं चेत रहे हैं।

प्रत्येक पाप के मूल में कोई असत्य अथवा अवैज्ञानिक विचार रहता है। जातपात के पाप के मूल में रक्त भिन्नता एवं रक्त शुद्धता का असत्य एवं अवैज्ञानिक विचार है। पशु और मनुष्य के रक्त में भेद हो सकता है पर मनुष्य २ के रक्त में कोई भेद नहीं है। मनुष्य




(लेखक श्री दयास्वरूप बी ए., काम. एफ. आर. ई. एस., प्रयाग)




मात्र का भ्रातृत्व, एक नैतिक आवश्यकता ही नहीं, एक वैज्ञानिक सत्य भी है। वैदिकधर्मियों को उचित है कि इस निश्चित गुण का विकास करें। यह जनसाधारण का कार्य नहीं है। जनसाधारण तो लकीर के फकीर होते हैं। उनके धर्म का गुरु मन्त्र होता है "बाबा वाक्यम प्रमाणम्"।

आजकल जो कुछ थोड़े या बहुत पढ़े लिखे हैं उनमें एक विशेष रोग हो गया है। वह है अपने नाम के आगे जातीय उपनामों का जोड़ना जैसे बाजपेई, शुक्ल, सेठ, सक्सेना, अग्रवाल इत्यादि। साधारणतया यह प्रथा निर्दोष नहीं है। पहली बात तो यह है कि यह विदेशियों की नकल है। यूरोपियन लोगों में एक नाम तथा एक उपनाम होता है इसी उपनाम की प्रथा को अपनाकर भारतीय हिन्दू जातीय उपनामों का प्रयोग करने लगे। यह प्रथा २०० वर्ष के अन्दर की है। मुसलमानी काल में भी हिन्दुओं में जातीय उपनामों के जोड़ने की प्रथा नहीं थी।

योरोपियनों के उपनाम (सरनेम) जाति सूचक नहीं होते अतएव वह निर्दोष हैं। कुछ भारतीयों ने भी अपने उपनाम रखने के शौक को निर्दोष रूप दिया है जैसे भारतीय, आजाद, विद्यार्थी, सत्यार्थी, मलिहाबादी इत्यादि इत्यादि। परन्तु जातीय उपनामों के विषय में ऐसा नहीं है। वे अत्यन्त दोषपूर्ण हैं और उनका प्रयोग में लाना दूषित भावनाओं को जागृत करना है। इससे एक को समीप और दूसरे को दूर समझने का वातावरण २४ घंटा हमारे सामने रहता है। इस जातीय भावना को बल देने में अंग्रेज शासकों ने बड़ा योग दिया। वह चाहते थे कि हिंदुओं में राष्ट्रीय भावना का स्थान जातीय भावनाएं ले लें। इसीलिए वह जातीय भावना को बराबर प्रोत्साहन देते थे। प्रत्येक सरकारी कागजमें लिखा रहता था (Caste if Hindu) 'जाति यदि हिन्दू हो'। यदि मुसलमान अथवा ईसाई हो तो उसकी जात न पूछी जाती थी मुसलमान अपनी जाति मुसलमान बता देता था तो सब विभागों के सरकारी अफसर सतुष्ट हो जाते थे। परन्तु हिन्दू के लिए ऐसा न था, उसे अपनी जात यानी ब्राह्मण कायस्थ ठाकुर बनिया और इसमें भी जो और छोटे भेद हैं सब बताने पड़ते थे।

ब्रिटिश सरकार निर्दयता के साथ जाति के पुछल्ले से हिन्दू नागरिक का जन्म से मृत्यु पर्यन्त पीछा करती थी। पुत्र का जन्म हो तब, आप बच्चे को पाठशाला में पढ़ने ले जाते हैं तब भी यही [illegible] न [illegible] नहीं छोड़ता। नाम, पिता का नाम, स्थान, तो आवश्यक और सार्थक प्रश्न हैं। "आपकी जात?" यह प्रश्न राष्ट्रीय जीवन का विघटक एवं विध्वंसक है। अब आप कोई जायदाद बेचिए अथवा खरीदिये तो रजिस्ट्री कराने के हेतु आपको रजिस्ट्रार के कार्यालय में जाना पड़ता है। वहाँ भी तीसरा प्रश्न यही है 'यदि आप हिन्दू हैं, तो आपकी जात?' यह जात का प्रश्न मरने के पहिले ही नहीं, मरने के बाद भी पीछा नहीं छोड़ता। यदि यह कहा जाय तो भी अनुपयुक्त न होगा कि ब्रिटिश शासन अपनी सत्ता के बल पर जाति बिरादरी के नियमों को मनवाता था। यदि एक बिरादरी का युवक दूसरी बिरादरी की युवती से विवाह कर लेता था तो ऐसे विवाह की संतान को पिता की सम्पति में कोई अधिकार नहीं था।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद हमारे राजनैतिक नेताओंने इस कलंक को सहारा देना छोड़दिया है अब किसी भी सरकारी प्रपत्र (फार्म) में जात बिरादरी लिखना आवश्यक नहीं।

कोई भी हिन्दू आर्यसमाजी, सनातनी







शैड़ सिक्ख जैन ब्राह्म समाजी इत्यादि आपस में विवाह कर सकते हैं। वह विवाह भी क़ानून के अनुकूल हैं और ऐसे विवाहों की सन्तान भी अपने पिता की सम्पत्ति में पूर्ण अधिकारी समझी जायगी। अब हिन्दू यदि वह चाहे, तो जन्म से मृत्यु पर्यन्त जन्मना जातपाँत के ज़हरीले पचड़े से मुक्त रह कर एक सच्चा मानवीय, राष्ट्रीय, नैतिक एवं स्वतन्त्र जीवन बिता सकता है। राज्य की ओर से इसमें कोई रुकावट नहीं। राज्य को इतना और करना है कि वह जातपाँत को लिए जितनी संस्थायें हैं उनको अवैध घोषित कर दे, जैसे ब्राह्मण सभा, खत्री सभा, कायस्थ पाठशाला, अहीर कालिज इत्यादि। इनमें जो शिक्षण संस्थायें हैं वह तो उपयोगी है अतएव उनका नाम बदल देना पर्याप्त होगा। [परन्तु जहाँ तक जाति सभाओं का प्रश्न है भारत की राज्यसत्ता को उन्हें बलपूर्वक नष्ट कर देना चाहिये।

साधारण नागरिकों का कर्तव्य है कि राज्य-सत्ता को वह इसके लिये प्रेरित करें। आर्य समाज को ऐसे अवसर पर बढ़ना चाहिए और देश में एक सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात करना चाहिए। आर्यसभासदों को चाहिए कि वे किसी भी जातीय संस्था के सदस्य न न हों, जो हैं वह तुरन्त त्यागपत्र दें। आर्य समाजों, स्त्री समाजों एवं कुमार सभाओं के साप्ताहिक सत्सङ्गों में भूल से भी ऐसा होने पर दण्ड की व्यवस्था हो। यह राष्ट्र निर्माण के सच्चे आन्दोलन का प्रथम पग है।








ऋषि ऋण से उऋण कैसे हों ?



दी पावली का परम पावन पर्व आगया । उस महर्षि की याद आज भी हमारे हृदयों पर वैसा ही प्रभाव डाल रही है जैसा कि उन्होंने मृत्यु के समय अपने अन्तिम शब्दों में कहा था "मन्दिर के कपाट खोल दो—मेरे पीछे खडे हो जाओ" क्या हमने उस आज्ञा का पालन किया है यदि नही तो क्यों ? यही प्रश्न है जिन पर आज विचार करना नितान्त आवश्यक है। महर्षि न्याय सत्य पथगामी बन कर विष के घोल हँस २ कर पीते गये, और बडे २ महाराजाओं के भी प्रलोभन पर अपने पथ से विचलित नही हुये। आज हमारी पद लोलुपता हमारे सामने बाधक है। हमारा स्वार्थ हमें पतन की ओर ले जा रहा है जब तक विचारो की एकता नहीं है तबतक ऊपर की बनावट क्या फल दे सकेगी । सत्यार्थ प्रकाश के अन्तिम चार समुल्लास इसीलिये लिखे गये है कि दुनियाँ अंधेरे से निकल कर प्रकाश की ओर बढ़े तथा सत्य और असत्य का निर्णय करले। आज नवीन युग निर्माण हो रहा है। हमारे नेता गण दूसरे प्रवाह में बहे जा रहे हैं। यदि सत्य और न्याय पर होनेवाले कुठाराघातो की उपेक्षा कर दी गई तब आप सारे संसार को आर्य किस प्रकार बना सकेंगे। भारत स्वतन्त्र हो गया है। परतु धार्मिक भावनाओ पर भीषण कुहरा छाया हुआ है। युवक समाज नवीन दलदल में फस रहा है। चरित्र निर्माण का प्रश्न ही नही रहा। अश्लील सिनेमाओं तथा चोरबाजारी को खुला प्रोत्साहन मिल रहा है। जब तक सदाचार की व्यवस्था नही होगी तबतक असफलता ही दृष्टिगोचर रहेगी। ऋषि ने तो ५ साल के बालक तथा बालिकाओं को पृथक शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था लिखी है आज की पद्धति में आमूल चूल परि-



लेखक

वर्तन करने की आवश्यकता है । इस ऋषि की वाटिका को निर्भीक त्यागी और तपस्वियो की आवश्यकता है। केवल बातों से काम नहीं चलेगा। हमारी अकर्मण्यता हमको यहाँ तक ले गई है कि संसार को भ्रम हो रहा है अब आर्य समाज क्या करेगा ? इस समय कार्य में उदासीनता भविष्य को अनिश्चित बना देगी । जिस शुद्धि कार्य के लिये हमारे कर्मवीर बलिदान होते चले गये वह अब कहाँ है ? धर्म की आधार शिला बलिदानों पर ही रखी जाती है जब इसमें त्यागी और तपस्वी भेट चढ़ते हैं तभी यह वाटिका फूलती फलती है।

अवकाश सूचना

दीपावली के अवकाश के कारण आर्य मित्र का १६ नवम्बर का अङ्क बन्द रहेगा । अगला अङ्क २३ नवम्बर को प्रकाशित होगा । कृपया ग्राहक नोट करलें ।

—सम्पादक

[श्री श्रवणसिंहजी प्रचारक सभा, यू० पी०)





समाजों के उत्सव

—श्री सर्वदानन्द साधु आश्रम (पु० काली नदी) का ४०वाँ उत्सव १८ से २० नवम्बर तक मनाया जायगा।

—आर्यसमाज खालापार (सहारनपुर) का उत्सव २४ से २७ नवम्बर तक।

—आ० स० बाराबंकी १० से १३ नवम्बर तक।

—आ० स० मैनपुरी २० से २४ नवम्बर तक।

—आ० स० प्रतापगढ़ १५ से १६ नवम्बर तक।

—आ० स० उन्नाव १६ से २१ नवम्बर तक।

—आ० प्र० सभा मुरादाबाद की ओर से १६ से २५ नवम्बर तक गढ़मुक्तेश्वर के मेले पर एक शिविर लगाया जायगा, जिसके संचालक श्रीराममोहन तथा संयोजक श्रीजगदीशप्रसाद होंगे

श्रद्धांजलि

र० श्रीलालचन्द्र जी

धन्य धन्य तू ऋषि दयानन्द,
भारत भाग्य विधाता है।
भारत की जागृति उन्नतिहित,
पुण्य कार्य निर्माता है॥
नायक है तू मानव गण का,
मानवता विकसाने में।
आर्यत्व का सत्व सुझाने,
पावकता सरसाने में॥
धन्य धन्य तू अग्रगण्य है,
मग में ज्योति जगाने में।
धन्य धन्य तू जगत वन्द्य है,
जग में सत्य फैलाने में।
अमर काव्य जो वेद जगत में,
परमहितों की शिक्षा है।
उसके फिर विकसित करने में,
फिर से सत्य सुझाने में॥
मानव फिर निज मानवता में,
उन्नत हो और विकसित हो"।
इस आर्यतत्व के बतलाने में,
परम सत्य के जतलाने में॥

———

वर चाहिये

एक १५॥ वर्षीय गहोई अग्रवाल वैश्य गोभीय स्वस्थ सुन्दर सिद्धान्त रत्न, उत्तीर्ण गृह कार्य में हर प्रकार से दक्ष कन्या के लिये। वर स्वस्थ सुन्दर सुशिक्षित आयु, २३, २५ वर्ष कुमार वैदिक धर्मी वैश्यमात्र से हो। कन्या एक प्रसिद्ध कुलीन धर्मनिष्ठ आर्य परिवार से है विवाह पूर्ण वैदिक रीति से होगा कृपया अधिक दहेज के इच्छुक व असत्यवादी सज्जन पत्र लिखने का कष्ट न करें।

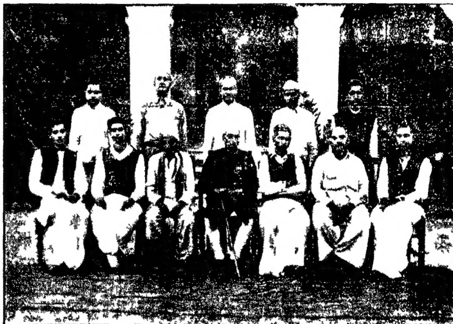
लेखराज आर्य
ग्र म भटपुरा पो० अमरोली
मुरादाबाद

सूचना

आर्य जगत के सुप्रसिद्ध कवि एवं भजनोपदेशक कविरत्न प० प्रकाशचन्द्रजी 'प्रकाश' के सुयोग्य शिष्य श्री पन्नालाल जी पीयूष 'संगीत सुधाकर' सिद्धान्त शास्त्री को जो आर्य समाजें या आर्य सज्जन अपने उत्सव, पर्व, विवाह आदि संस्कारों में बुलाना चाहें वे निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें।

संगीत कला मन्दिर
द्वारा के० एल० वर्मा
केसरगंज अजमेर

कार्यालय—आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर-प्रदेश के कार्यकर्ता गण



बैठे हुये—(बायें से दायें) १—श्री गोपालदत्त शास्त्री विद्याभास्कर स० सम्पादक आर्य मित्र, २—श्री रमेशचन्द्र जी शास्त्री विज्ञापन विभाग ३—श्री ला० जगनप्रसाद जी अकाउन्टेन्ट प्रेस व मित्र, ४—श्री देवी प्रसाद जी जौहरी स० मन्त्री सभा ५—श्री पन्नालाल जी पत्र प्रेषक, ६—श्री कामेश्वरबली श्रीवास्तव चीफ अकाउन्टेन्ट, ७—श्री डा० राजेन्द्र कुमार जी आर्य-मित्र प्रकाशन लिमिटेड।

खड़े हुये - (बॉयें से दायें) १—श्री वीरसेन आर्य पोस्टमास्टर आ० प्र० सभा पोस्ट आफिस २—श्री देवनाथ भारद्वाज उपदेशक, ३—श्री बाबूराम जी भारतीय मुख्य लेखक सभा, —श्री गुरुदीन कर्मचारी ५—श्री सत्ये द्रबंधु जी कार्यकर्ता उपदेश विभाग।